Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

DCEHI-103

आधुनिक भारतीय साहित्य

नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन

खण्ड

1

नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन

इकाई- 1

आधुनिक युग की भूमिका 9

इकाई- 2

राष्ट्रीय स्वाधिनता आंदोलन का विकास 22

इकाई- 3

नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का विकास 41

इकाई- 4

भारतीय साहित्य में नवजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति 64

पाठ्यक्रम विशेषज्ञं समिति

प्रो. चंद्रकांत बांदिवडेकर
हिंदी विभाग
मुंबई विश्वविद्यालय

प्रो. बी.एच. राजूरकर
मराठवाडा विश्वविद्यालय
औरंगाबाद

प्रो. मलिक मुहम्मद
हिंदी विभाग
कालीकट विश्वविद्यालय
कालीकट, केरल

प्रो. भीमसैन निर्मल
उस्मानिया विश्वविद्यालय
हैदराबाद

प्रो. रमेशकुंतल मेघ
हिंदी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

प्रो. इंदनाथ चौधुरी
सचिव, साहित्य अकादमी
नयी दिल्ली

प्रो. अंबाशंकर नागर
गुजरात विद्यापीठ
अहमदाबाद

प्रो. जी.पी. देशपांडे
सेन्टर फार ईस्ट एशियन स्टडीज
स्कूल आफ इन्टरनेशनल
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली

संकाय सदस्य
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
प्रो. वी.रा. जगन्नाथन

डा. शत्रुघ्न कुमार
व्याख्याता, हिन्दी
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक
डा. परमानंद श्रीवास्तव (इकाई सं 1, 2)

प्रोफेसर, प्रेमचंद पीठ
हिंदी विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर

डा. सल्लनराय (इकाई सं. 3)
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिंदी विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
शिमला

डा. ज़वरीमल पारख (इकाई सं. 4)
रीडर
हिंदी विभाग
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली

संकाय सदस्य
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक
डा. शत्रुघ्न कुमार
व्याख्याता, हिंदी

खंड संयोजक
डा. जवरीमल पारख
रीडर, हिंदी

डा. रीता रानी पालीवाल
रीडर, हिंदी

डा. सत्यकाम
व्याख्याता, हिंदी

डा. राकेश वत्स
व्याख्याता, हिंदी

श्रीमती स्मिता चतुर्वेदी
व्याख्याता, हिंदी

श्रीमती विमल खांडेकर
व्याख्याता, हिंदी

मुद्रण प्रस्तुति

सुश्री पुष्पा गुप्ता
कॉपी एडिटर
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

मई 1997

© इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

ISBN-81-7263-420-X

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की अनुमति से पुनः मुद्रित। उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित- 2024.

मुद्रक : सिग्नस इन्फार्मेशन सल्यूसन प्रा०लि०, लोढ़ा सुप्रीमस साकी विहार रोड, अन्धेरी ईस्ट, मुम्बई।

ETH-049

DCEHI-103(I)/2

पाठ्यक्रम परिचय

हिंदी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम-05 आधुनिक भारतीय साहित्य : राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण से संबंधित है। इसका उद्देश्य आपको 19वीं एवं 20वीं सदी में विकसित हुए नवजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना से परिचित कराना है। 19वीं सदी का काल जितना विश्व के अन्य देशों के लिए महत्वपूर्ण था उतना ही भारत के लिए भी महत्वपूर्ण था। इस समय देश में एक ओर सामाजिक चेतना फैलाने का कार्य हुआ वहीं राष्ट्रीयता की लहर भी फैली। साहित्यकारों एवं समाज सुधारकों ने मिलकर जनजागरण एवं राष्ट्रीय आंदोलन के लिए कार्य किया। 8 क्रेडिट का यह पाठ्यक्रम 9 खंडों में विभाजित है तथा इसमें कुल 41 इकाइयाँ हैं। पहले खंड में चार इकाइयाँ हैं, जिनमें मुख्य रूप से नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन के बारे में बताया गया है। दूसरा खंड पूर्वांचलीय भारतीय साहित्य से संबंधित है, जिसमें बांग्ला, असमी तथा ओड़िया भाषा साहित्य में व्यक्त राष्ट्रीय चेतना एवं नवजागरण को आधार बनाया गया है। तीसरा खंड दक्षिणांचलीय साहित्य से संबंधित है, इसमें तमिल एवं मलयालम भाषा साहित्य में व्यक्त राष्ट्रीय चेतना एवं नवजागरण को लिया गया है। चौथा खंड भी दक्षिणांचलीय साहित्य पर आधारित है, इसमें तेलगु एवं कन्नड़ भाषा साहित्य शामिल है। पाँचवा खंड पश्चिमांचलीय साहित्य से संबंधित है, इसमें मराठी एवं गुजराती साहित्य में व्यक्त नवजागरण एवं राष्ट्रीय आंदोलन को आधार बनाया गया है। छठा खंड उत्तरांचलीय साहित्य पर आधारित है, इसमें कश्मीरी, सिंधी, पंजाबी तथा उर्दू भाषाएँ शामिल हैं। सातवाँ, आठवाँ, एवं नवां खंड हिंदी साहित्य पर आधारित है जिनमें भारतेन्दु से लेकर दिनकर तक के उन साहित्यकारों को शामिल किया गया है जिन्होंने राष्ट्रीयता के विकास में योगदान दिया है साथ ही साथ सामाजिक चेतना भी जगायी। शीर्षक सहित पूरे पाठ्यक्रम का विवरण इस प्रकार है :

खंड	इकाई सं.	शीर्षक
1		**नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन**
	1	आधुनिक युग की भूमिका
	2	राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का विकास
	3	नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का विकास
	4	भारतीय साहित्य में नवजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति
2		**पूर्वांचलीय साहित्य**
	5	बांग्ला साहित्य I
	6	बांग्ला साहित्य II
	7	बांग्ला साहित्य III
	8	असमी साहित्य
	9	ओड़िया साहित्य
3		**दक्षिणांचलीय साहित्य**
	10	तमिल साहित्य I
	11	तमिल साहित्य II
	12	मलयालम साहित्य I
	13	मलयालम साहित्य II
4		**दक्षिणांचलीय साहित्य**
	14	तेलुगु साहित्य I
	15	तेलगु साहित्य II
	16	कन्नड़ साहित्य I
	17	कन्नड़ साहित्य II

5		**पश्चिमांचलीय साहित्य**
	18	मराठी साहित्य I
	19	मराठी साहित्य II
	20	गुजराती साहित्य I
	21	गुजराती साहित्य II
6		**उत्तरांचलीय साहित्य**
	22	कश्मीरी साहित्य
	23	सिंधी साहित्य
	24	पंजाबी साहित्य
	25	उर्दू साहित्य I
	26	उर्दू साहित्य II
7		**हिंदी साहित्य**
	27	युगीन पृष्ठभूमि
	28	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
	29	मैथिलीशरण गुप्त
	30	सियारामशरण गुप्त
	31	अयोध्या सिंह उपाध्याय "हरिऔध"
	32	रामनरेश त्रिपाठी
8		**हिंदी साहित्य**
	33	प्रेमचंद
	34	जयशंकर प्रसाद
	35	सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला
	36	सुमित्रानंदन पंत
	37	महादेवी वर्मा
9		**हिंदी साहित्य**
	38	बालकृष्ण शर्मा "नवीन"
	39	माखनलाल चतुर्वेदी
	40	रामधारी सिंह "दिनकर"
	41	राष्ट्रीयता के विकास में आधुनिक भारतीय साहित्य का योगदान

पूरे पाठ्यक्रम का अवलोकन करने पर आप पायेंगे कि इस पाठ्यक्रम में 19वीं सदी एवं 20वीं सदी के पूर्वार्द्ध के भारतीय साहित्य को समेटने का प्रयास किया गया है। भारतीय साहित्य केवल एक भाषा का साहित्य नहीं बल्कि कई महत्वपूर्ण भाषाओं का साहित्य है। 19वीं सदी में जनजागरण की लहर फैली, इस लहर को फैलाने वालों में सर्वप्रथम राजाराममोहन राय का नाम आता है। भारतीय समाज पुरानपंथी मान्यताओं एवं कुसंस्कारों से ग्रसित था। अंधविश्वास एवं बाह्याचार द्वारा समाज जर्जरित हो गया था। ऐसे समय में समाज सुधारकों ने समाज को इन बुराइयों से मुक्त करने का बीड़ा उठाया। साहित्यकारों ने इस कार्य में सहायता पहुंचाई। साहित्य द्वारा समाज सुधार एवं चेतना फैलाने का यह कार्य संपूर्ण भारत में हुआ। यद्यपि देश के किसी क्षेत्र में यह कार्य पहले शुरू हुआ तो कहीं कुछ समय बाद लेकिन नवजागरण की प्रवृत्ति सभी जगह समान रूप से दिखाई देती है। पूरे पाठ्यक्रम के अध्ययन के बाद आप महसूस करेंगे कि चाहे बांग्ला हो या गुजराती, तमिल हो या असमी सभी भाषाओं के साहित्य में यह चेतना समाहित है।

नवजागरण के साथ राष्ट्रीय चेतना का उदय भी हुआ। व्यापार के उद्देश्य से भारत में आई ईस्ट इंडिया कंपनी ने देश की राजनीतिक सत्ता पर अधिकार जमा लिया था। अब देशी राज्य विदेशी सत्ता के अधीन थे। एक ओर जनता शासन से त्रस्त हो चली थी तो दूसरी ओर राजाओं द्वारा फिर से सत्ता प्राप्त करने का प्रयास चल रहा था। चाहे जो भी कारण रहे हों लेकिन कंपनी सरकार से त्रस्त भारतीयों के हृदय में सुलग रही अग्नि ज्वाला

बनकर फूट पड़ी। यद्यपि सन् 1857 ई. की क्रांति का उद्देश्य स्थानीय राजाओं द्वारा सत्ता वापस लेने का प्रयास भले रहा हो किंतु राष्ट्रीयता के लिए संघर्ष का यह पहला प्रयास था। इन सभी घटनाओं का प्रभाव तत्कालीन साहित्यकारों पर निश्चित रूप से पड़ा था, परिणाम था जनजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत साहित्य की रचना।

पूरे पाठ्यक्रम के अध्ययन के बाद आप पाएंगे कि तत्कालीन समय में देश के हर क्षेत्र से अपनी-अपनी मातृभाषा में लेखकों ने विभिन्न विधाओं के माध्यम से जेहाद छेड़ दिया था। बुद्धिजीवियों द्वारा विभिन्न प्रकार के संगठन बनाए जा रहे थे। सन् 1885 ई. में राष्ट्रीय कांग्रेस का उदय इसी का परिणाम था। इस संगठन द्वारा सरकार तक अपनी बात पहुँचाने का कार्य शुरू हुआ। प्रथम तो अनुनय विनय द्वारा अपने अधिकार को पाने का प्रयत्न किया गया, किन्तु जब इसका कोई असर नहीं हुआ तो संघर्ष का रास्ता अपनाया गया। जनजगारण के साथ लोगों में सरकार के प्रति कठोर रूख भी अपनाया जाने लगा। गांधी आदि के प्रयास से कांग्रेस ने अहिंसक क्रांति का रास्ता अपनाया। लेखकों ने कांग्रेस द्वारा अपनाए गए कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए रचनाएँ की। जनता की भाषा में समाज के विभिन्न समस्याओं को लेकर साहित्य रचना हुई।

पाठ्यक्रम के खंड एक में मुख्य रूप से उन पृष्ठभूमियों की चर्चा की गई है। जिससे वैचारिक एवं साहित्यिक आंदोलन का रास्ता तैयार हुआ। चार इकाइयों में विभक्त इस खंड में नवजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना की पृष्ठभूमि को स्पष्ट किया गया है। पहली इकाई में मुख्य रूप से उन बिंदुओं की चर्चा की गई है जिनपर आधुनिक युग की शुरुआत हुई। दूसरी इकाई में स्वाधीनता आंदोलन के विभिन्न बिंदुओं को लिया गया है। तीसरी इकाई में उन महत्वपूर्ण बातों को विस्तार से बताया गया है जिनसे राष्ट्रीय चेतना एवं नवजागरण का विकास होता है। चौथी इकाई में समग्र रूप से भारतीय साहित्य में व्यक्त नवजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

दूसरा खंड पूर्वांचलीय भारतीय साहित्य से संबंधित है, इसमें कुल पाँच इकाइयाँ हैं। इनमें से तीन बांग्ला साहित्य से संबंधित है। माईकेल मधुसूदन दत्त, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शरतचंद्र तथा नजरूल को केन्द्र में रखकर इन इकाइयों में बांग्ला साहित्य में व्यक्त नवजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना को दर्शाया गया है। चौथी इकाई में असमी साहित्य में व्यक्त राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना को दर्शाया गया है। इसमें बेजबरूआ, नलिनी बाला देवी तथा चन्द्रकुमार अगरवाला जैसे जागरूक रचनाकारों के साहित्य को केन्द्र में रखा गया है। खंड की पाँचवीं इकाई ओड़िया साहित्य से संबंधित है। इसमें फकीर मोहन सेनापति, राउतराय तथा गोपीनाथ मोहंती के साहित्य को लिया गया है।

तीसरा खंड दक्षिणांचलीय साहित्य से संबंधित है। इसमें हमने दक्षिण के दो समृद्ध एवं महत्वपूर्ण भाषाओं को लिया है। ये हैं तमिल एवं मलयालम। तमिल भाषा की साहित्यिक परंपरा अति प्राचीन एवं समृद्ध है। उन्नीसवीं सदी में यहाँ के रचनाकारों ने भारत के नवनिर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्र कवि सुब्रमण्यम भारती ने जहाँ राष्ट्रगायन किया तो अन्य कवियों ने सामाजिक उत्थान के लिए साहित्य रचना की। कल्कि एवं पुदुमैपित्तन ऐसे ही साहित्यकार थे। दो इकाइयों में आप भारत के इस क्षेत्र में हुए नवजागरण से परिचित होंगे। खंड की अन्य दो इकाइयाँ मलयालम साहित्य से संबंधित है। इनमें वल्लतोल, कुमार आशान तथा वशीर जैसे रचनाकारों के साहित्य को लिया गया है। इन साहित्यकारों ने अपने साहित्य द्वारा जनता में राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना फैलायी।

चौथा खंड भी दक्षिणांचलीय साहित्य पर आधारित है। इस खंड की चार इकाइयों में प्रथम दो तेलुगु तथा बाद की दो कन्नड़ भाषाओं से संबंधित है तेलगु भाषा की इकाइयों में भानुमूर्ति, गुरु अप्पाराव, पंतुलु, सुब्बाराव तथा बि.सत्यनारायण जैस रचनाकारों की रचनाओं में व्याप्त राष्ट्रीय चेतना तथा समाज सुधार को आधार बनाया गया है। कन्नड़ की दो इकाइयों में कुवेंपु मुदवीडु कृष्णराव, कामत, मास्ती की रचनाओं में व्यक्त राष्ट्रीय चेतना एवं सामाजिक सुधार का विश्लेषण किया गया है।

पाँचवें खंड में पश्चिमांचल के दो महत्वपूर्ण भाषा साहित्य को लिया गया है। मराठी एवं गुजराती की दो-दो इकाइयों में पूरा खंड विभाजित है। सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना के

क्षत्र में महाराष्ट्र अग्रगण्य रहा है। वैचारिक एंवं सामाजिक क्रांति के क्षेत्र में जहाँ महात्मा ज्योतिबा फूले से लेकर बाबा साहब अम्बेडकर जैसे महामानवों का योगदान रहा तो राष्ट्रीय चेतना के क्षेत्र में तिलक का नाम अग्रगण्य है। साहित्यकारों ने इन आंदोलनों का साहित्य रचकर आगे बढ़ाया। गुजराती भाषा साहित्य में परिवर्तन का दौर बहुत पहले से शुरू हो गया था। मध्य काल के नरसी मेहता के "वैष्णव जण तेण कहिए जे जाणि पीर पराई रे" का प्रभाव दूरगामी हुआ। गांधी ने इसी को अपना मूल मंत्र बनाया। सामाजिक परिवर्तन एवं राष्ट्रीय चेतना के लिए प्रेरणा के रूप में भी इसी मूल मंत्र को अपनाया गया। नर्मद, वलवंत राय कं. ठाकोरे न साहित्य के माध्यम से यही कार्य किया।

छठा खंड उत्तरांचलीय भाषा साहित्य से संबंधित है। कुल पाँच इकाइयों में विभक्त खंड में तीन क्रमशः कश्मीरी, सिंधी तथा पंजाबी साहित्य पर है तथा दो उर्दू साहित्य पर। कश्मीरी में जहाँ दीनानाथ नादीम, महजूर गुलाम मुहम्मद जैसे साहित्यकारों को केन्द्र में रखा गया है तो सिंधी में मिर्जा खालिज वेग, तथा कौरव मल्ल खिल्लानी आदि साहित्यकारों के उन रचनाओं को इकाई का आधार बनाया गया है जिनमें जनजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना के तत्व समाहित हैं। पंजाब के साहित्यकारों पर तत्कालीन समान सुधार आंदोलन का प्रभाव था। नानक सिंह भाई वीर सिंह, मोहन सिंह तथा धनी राम चातरिक जैसे लेखकों ने एक साथ राष्ट्रीय चेतना तथा सामाजिक चेतना संबंधी रचनाएँ की। इकाई में आप इन्हीं का विस्तृत अध्ययन करेंगे। उर्दू की दो इकाइयों में आजाद, हाली, अकबर, रत्ननाथ सरशार, इकबाल तथा चकवस्त जैसे रचैनाकारों की रचनाओं का अध्ययन कराया जाएगा। उर्दू भाषा किसी विशेष राज्य से संबंधित नहीं हैं। देश के भिन्न क्षेत्रों में हुए साहित्यकारों ने राष्ट्रीय आंदोलन एवं नवजागरण में अन्य साहित्यकारों की भाँति कदम से कदम मिलाकर कार्य किया। उनके सामने एक बड़ी समस्या थी मुस्लिम समाज को दकियानूंसी विचार के घेरे से बाहर निकालना जिसे उन्होंने बखूबी निभाया।

सातवें खंड से हम हिंदी भाषा साहित्य में व्यक्त राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना का अध्ययन कराएंगे। इस खंड में कुल छहः इकाइयाँ हैं। पहली इकाई तत्कालीन युगीन पृष्ठभूमि पर है, बाकी पाँच इकाइयाँ क्रमशः भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, हरिऔध तथा रामनरेश त्रिपाठी जैसे रचनाकारों के साहित्य पर आधारित है। आप इन इकाइयों का अध्ययन कर जान पाएंगे कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रारंभ की गई नव चेतना के कार्य को किस प्रकार बाद के साहित्यकारों ने आगे बढ़ाया।

आठवें खंड के पाँच इकाइयों में क्रमशः प्रेमचंद, जयशंकर प्रसाद, निराला, सुमित्रा नंदन पंत तथा महादेवी वर्मा के साहित्य का अध्ययन कराया जाएगा। इन रचनाकारों के निम्नलिखित रचनाओं सेवासदन, कर्मभूमि, चंद्रगुप्त नाटक, राम की शक्ति पूजा, परिवर्तन तथा रेखा चित्र को केन्द्र में रखकर उनके साहित्य में व्यक्त सामाजिक चेतना तथा राष्ट्रीय चेतना का विश्लेषण कराया जाएगा।

नवें खंड एवं इस पाठ्यक्रम के अंतिम खंड की चार इकाइयों में से तीन में क्रमशः बालकृष्ण शर्मा "नवीन", माखनलाल चतुर्वेदी तथा रामधारी सिंह दिनकर के साहित्य का अध्ययन कराया जाएगा। इसमें रचनाकारों के उन रचनाओं को ही लिया गया है जिनमें नवयुग की चेतना मिलती है। अंतिम इकाई समग्र रूप से भारतीय साहित्य से संबंधित है। इसमें सभी भाषाओं को साहित्य में व्यक्त राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना का विहंगावलोकन एवं मूल्यांकन कराया जाएगा। इस पाठ्यक्रम के अध्ययन से आप यह तथ्य जान सकेंगे कि भारतीय इतिहास में एक ऐसा समय आया था जब सारा देश वैचारिक आंदोलन से आंदोलित हो उठा था। चाहे राष्ट्रीयता के स्तर पर हो या सामाजिक चेतना के क्षेत्र में यह काल समग्र रूप से भारतीयता के उत्थान का काल था। नवनिर्माण के इस कार्य में तत्कालीन साहित्यकारों का बहुत बड़ा योगदान था। पाठ्यक्रम में प्रत्येक इकाई के साथ बोध प्रश्न दिए गए हैं आप इन बोध प्रश्नों के उत्तर देने का प्रयत्न कीजिए। यदि उत्तर न दे पाएं तो पाठ को दोबारा पढ़िए। इसी प्रकार दिए गए अभ्यासों का उत्तर दीजिए इससे आपकी लेखन क्षमता बढ़ेगी। पाठ्यक्रम के साथ कुछ आडियो एवं वीडियो कार्यक्रम बनाए गए हैं। ये कार्यक्रम सभी केन्द्रों पर उपलब्ध होंगे उन्हें देखें और सुनें। इससे आपको पाठ्यक्रम को समझने में आसानी होगी। इकाइयों के साथ उपयोगी पुस्तकों के नाम भी दिए गए हैं। इन्हें पढ़ने का प्रयत्न कीजिए। ये पुस्तकें जहाँ पाठ्यक्रम को समझने में उपयोगी होगी वहीं उच्च शिक्षा के लिए भी प्रेरणा का कार्य करेगी।

खंड 1 का परिचय

'आधुनिक भारतीय साहित्य : नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन' स्नातक उपाधि कार्यक्रम के अंतर्गत हिंदी का पाँचवा ऐच्छिक पाठ्यक्रम है। पाठ्यक्रम का पहला खंड "नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन" आधुनिक भारतीय साहित्य की उस पृष्ठभूमि से आपको परिचित कराएगा, जिसको जानने के बाद आपके लिए आगे की इकाइयों को समझने में आसानी होगी। इस खंड में कुल चार इकाइयाँ हैं।

इकाई। : आधुनिक युग की भूमिका
इकाई 2 : राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का विकास
इकाई 3 : नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का विकास
इकाई 4 : भारतीय साहित्य में नवजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति

पहली इकाई में आधुनिक युग के बारे में बताया गया है। भारत में आधुनिक युग का आरंभ उन्नीसवीं शताब्दी से माना जाता है जब भारत अंग्रेजी शासन के अधीन था। अंग्रेजों ने राज्य व्यवस्था के संचालन के लिए और भारत का आर्थिक शोषण करने के लिए कई परिवर्तन किये। इन परिवर्तनों ने भारतीयों की मानसिकता को बदलना आरंभ किया। उन्हें यह एहसास हुआ कि हमारा देश तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक कि हम गुलाम हैं और गुलामी से मुक्ति हमें तब तक नहीं मिल सकती जब तक कि हम सामाजिक कुरीतियाँ, धार्मिक रूढ़ियों से मुक्त होकर एक आधुनिक भारत का निर्माण न करें। पहली इकाई में आपको यही बताने का प्रयास किया गया है।

दूसरी इकाई में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के विभिन्न चरणों का परिचय दिया गया है। 1857 की असफल क्रांति के बाद अपने अधिकारों के लिए भारतीयों ने संगठित होकर आवाज उठाने के लिए कई संगठन बनाए। 1885 में कांग्रेस की स्थापना हुई जिसने आजादी के आंदोलन का नेतृत्व किया। लेकिन कांग्रेस के अलावा भी कई अन्य संगठन थे जो स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे थे। क्रांतिकारी, समाजवादी और साम्यवादी संगठनों का प्रभाव भी तत्कालीन साहित्य पर पड़ा। इन सबका उल्लेख आप इस इकाई में पाएंगे।

तीसरी इकाई में इस युग के वैचारिक पक्ष पर विचार किया गया है। नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना क्या है, उसके वैचारिक बिंदु कौन-कौन-से हैं। आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में इनकी अभिव्यक्ति किन-किन रूपों में हुई। क्या इस दौर के कुछ नकारात्मक पहलू भी थे जिसने एक राष्ट्र के रूप में भारत के उदय के सामने कठिनाइयाँ पैदा कीं। सांप्रदायिकता ऐसा ही एक पहलू था। इकाई में इस पर भी प्रकाश डाला गया है।

अंतिम इकाई में राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण की तत्कालीन साहित्य में अभिव्यक्ति का संक्षिप्त लेखाजोखा प्रस्तुत किया गया है। आधुनिक भारतीय साहित्य के उदय से पूर्व किस तरह का साहित्य लिखा जा रहा था। भारतीय भाषाओं के विकास का परिचय भी इकाई में दिया गया है। नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की वे कौन-सी विशेषताएँ हैं जो साहित्य के विभिन्न रूपों में व्यक्त हुई हैं। भाषा और शिल्प दोनों स्तर पर भी क्या नवजागरण ने अपना प्रभाव डाला है तथा अंत में इस युग के साहित्य के ऐतिहासिक महत्व पर प्रकाश डाला गया है। यद्यपि आप विभिन्न भाषाओं के साहित्य का विस्तृत अध्ययन आगे के खंडों में करेंगे परंतु इस खंड को पढ़ने से आपके सामने इस युग और इसके साहित्य के ऐतिहासिक अवदान का महत्व अच्छी तरह स्पष्ट हो जाएगा।

इकाई 1 आधुनिक युग की भूमिका

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 आधुनिक युग का महत्व
  1.2.1 आधुनिक युग का सीमांकन
  1.2.2 आधुनिक युग की विशिष्टता
  1.2.3 आधुनिक साहित्य की मूल संवेदना
1.3 आधुनिक युग : राजनीतिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक संदर्भ
  1.3.1 आधुनिक युग : राजनीतिक संदर्भ
  1.3.2 आधुनिक युग : सांस्कृतिक संदर्भ
  1.3.3 आधुनिक युग : साहित्यिक संदर्भ
1.4 आधुनिक युग की मूल संवेदना
  1.4.1 राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना
  1.4.2 नवजागरण
1.5 मूल्यांकन
  1.5.1 आधुनिक युग का अवदान
  1.5.2 आधुनिक युग के संदर्भ में भारतीय साहित्य की पहचान
1.6 सारांश
1.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
1.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन से सम्बद्ध पाठ्यक्रम के पहले खंड की यह पहली इकाई है। आधुनिक युग की भूमिका को समझना इस इकाई का मुख्य उद्देश्य है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- आधुनिक युग का महत्व बता सकेंगे;
- आधुनिक युग का आरंभ कहाँ से माना जाय, यह स्पष्ट कर सकेंगे,
- आधुनिक युग किस अर्थ में अलग और विशिष्ट है; बता सकेंगे,
- भारतीय साहित्य के विकास में आधुनिक युग की भूमिका का परिचय दे सकेंगे;
- आधुनिक युग का राजनीतिक-सांस्कृतिक-साहित्यिक संदर्भ क्यों महत्वपूर्ण है, इसकी व्याख्या कर सकेंगे,
- राष्ट्रीय स्वाधीनता और नवजागरण की आधुनिक युग की संवेदना के निर्माण में क्या भूमिका रही है, इसे समझा सकेंगे, और
- आधुनिक युग का मुख्य अवदान क्या है और उसके मुख्य लक्षण क्या हैं, इसे स्पष्ट कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

ऐच्छिक पाठ्यक्रम-05 "आधुनिक भारतीय साहित्य", "राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण" के खंड-01 की यह पहली इकाई है—"आधुनिक युग की भूमिका"। आधुनिक युग का आरंभ उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण के साथ हुआ। राष्ट्रीयता को एक नया अर्थ इसी

समय मिला। राजनीतिक स्वाधीनता के लिए संघर्ष-सामाजिक न्याय और समता के लिए संघर्ष से जुड़ा हुआ था। आधुनिक युग की व्यापकता और पूर्णता मिली—बीसवीं शताब्दी के लम्बे ऐतिहासिक संघर्ष के साथ—जब उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के विरोध की गति तेज हुई। समाजवाद उज्ज्वल भविष्य का प्रतीक बना। साथ ही उसे नयी चुनौतियाँ भी मिलीं। आधुनिक युग का राजनीतिक संदर्भ जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही सांस्कृतिक-साहित्यिक संदर्भ भी।

इस इकाई में हम आधुनिक युग के सीमांकन पर विचार करेंगे क्योंकि आधुनिक युग का आरंभ सभी देशों और भाषाओं के साहित्य में एक ही निश्चित समय पर नहीं हुआ। यूरोप के आधुनिक युग से हमारा आधुनिक युग भिन्न है। भारतीय साहित्य के संदर्भ में आधुनिक युग की पहचान ही बनी नवजागरण और स्वाधीनता-संघर्ष के साथ। आपके लिए आवश्यक है कि आप आधुनिक युग की मूल प्रकृति या संवेदना को तथा उसकी पहचान बनाने वाले प्रमुख तत्वों को ठीक से जानें। इस इकाई को पढ़ते हुए आप देख सकेंगे कि आधुनिक युग क्यों पहले के युगों से भिन्न है। यह तो सही है कि प्रायः सर्वत्र आधुनिक युग का उदय स्वतंत्रता की माँग के साथ हुआ। आधुनिक युग के पहले साहित्य में एक तरह की, एक ढर्रे पर बंधी हुई भावधारा दिखाई देती है। शास्त्रीयता के इस रूझान के विरुद्ध अक्सर आधुनिक युग अधिक स्वच्छन्द दिखाई देता है। इस स्वच्छन्दता के प्रेरक तत्व या ऐतिहासिक कारण भिन्न हो सकते हैं। भारतीय साहित्य में आधुनिक युग आया तो उसके पीछे मुक्ति की व्यापक आकांक्षा प्रबल थी। स्वाधीनता-संघर्ष की चेतना के लिए सामाजिक-सांस्कृतिक सुधार के आंदोलन प्रोत्साहन दे रहे थे। स्त्री-पुरुष समानता के लिए संघर्ष इसी स्वाधीनता संघर्ष का हिस्सा था। इसलिए आधुनिक युग के भारतीय साहित्य में प्रकृति के प्रति, मानव संबंधों के प्रति, जीवन के प्रति नया रूख दिखाई देता है तो वह केवल साहित्यिक अभिव्यक्ति के रूप में महत्वपूर्ण नहीं है, उस राजनीतिक-सामाजिक संदर्भ के कारण भी महत्वपूर्ण है, जिससे कटकर साहित्य सृजन असंभव हो जाता है। आधुनिक युग के विकास की प्रक्रिया में गद्य के उदय पर भी ध्यान देना चाहिए जो प्रेस की स्थापना के बगैर असंभव था। यह तो स्पष्ट ही है कि गद्य के आने के साथ नयी साहित्यिक शैलियां ही नहीं चल पड़ी, वैज्ञानिक विचार चेतना का व्यापक प्रसार भी संभव हुआ। आधुनिक युग की कल्पना इस अलोचनात्मक वैचारिक दृष्टि के अभाव में नहीं की जा सकती। इस युग में पहले के युगों की तुलना में बौद्धिकता के लिए एक नया आकर्षण था। अब साहित्य विशेष वर्ग तक सीमित न रहा। पाठक-समाज का निरंतर विस्तार हुआ। इस प्रकार इस इकाई को पढ़ते हुए आप आधुनिक युग के उदय के पीछे ऐतिहासिक-सामाजिक कारणों को समझने के लिए उत्सुक होंगे।

1.2 आधुनिक युग का महत्व

आधुनिक युग के महत्व को समझने से पूर्व हमारे लिए यह जानना जरूरी है कि भारत में आधुनिक युग की शुरुआत कब से हुई और क्यों हुई। यह भी जानना आवश्यक है कि इस युग की विशिष्टता क्या है। आइए, इस पर विचार करें।

1.2.1 आधुनिक युग का सीमांकन

यूरोप के संदर्भ में आधुनिक युग का आरंभ पंद्रहवीं-सत्रहवीं शताब्दी से माना जाता है। पर यह धारणा दुनिया के हर क्षेत्र या देश पर लागू नहीं की जा सकती। यूरोप के आधुनिक युग से हमारा आधुनिक युग भिन्न है। यूरोप की आधुनिक चेतना ने औद्योगिक पूंजीवाद से महाजनी पूंजीवाद तक की यात्रा करते हुए अपना स्वरूप विकसित किया। भारत के संदर्भ में आधुनिक युग के अब तक के जटिल विकास में सामंतवाद के अवशेष बचे रह गये हैं। पंद्रहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के बीच पश्चिमी यूरोप के कुछ देशों में आधुनिक युग के उदय की संभावना उभरने लगी थी। नवजागरण, सुधार के प्रयत्न, आधुनिक विज्ञान का उदय, सामंतवाद का विघटन, उपनिवेशीकरण, औद्योगिक क्रांति—प्रायः जहाँ भी, जिस रूप में भी आधुनिक युग का उदय हुआ, उसके कुछ प्रमुख लक्षण यही थे। 1789 में फ्रांस की राज्य

क्रांति के साथ स्वतत्रता, समानता, नागारक अधिकार—जैसी धारणाएँ विकसित हुईं जो आगे भी आधुनिकता की चेतना के उपादानों के रूप में जानी गयीं। भारतीय साहित्य में आधुनिक युग की पहचान राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष और नवजागरण की चेतना के साथ संभव हुई। 19वीं शताब्दी के आरंभ में जब अंग्रेजों के भारत में पैर जमने लगे और आधुनिक शिक्षा का प्रचलन आरंभ हुआ, उसके साथ-साथ यहाँ के शिक्षित वर्ग में एक नयी चेतना का उदय भी हुआ जो राष्ट्रीय भावना, समाज सुधार और सामंतवाद विरोधी चेतना के रूप में उभरकर सामने आई। बीसवीं शती तक आते-आते इसमें प्रति-उपनिवेशीकरण तथा साम्राज्यवाद विरोध की चेतना आ जुड़ी।

1.2.2 आधुनिक युग का विशिष्टता

इस पाठ्यक्रम के संदर्भ में हमारा संबंध उन्नीसवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी के मध्य तक के विकास के क्रम से है। इस अवधि में आधुनिक युग की विकास अवस्थाओं का अध्ययन रोचक और उपयोगी हो सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण के दौरान राष्ट्रीयता की अपनी अवधारणा विकसित करने का प्रयास दिखाई देता है। यह भारतीयता की अपनी पहचान निश्चित करने वाला दौर था। कुछ आगे मैथिलीशरणगुप्त के यह सवाल पूछने तक—*''हम कौन थे/क्या हो गये हैं/और क्या होंगे अभी''*। आधुनिक युग की यह आरंभिक उलझन बनी हुई थी कि हमारी अतीतोन्मुखता, वर्तमान की चिन्ता और भविष्य की कल्पना के बीच ठीक-ठाक क्या रिश्ता बने। एक ओर अतीत पर जोर देते हुए वैदिक युग की वापसी की बात की जा रही थी, तो दूसरी और अतीत को पूरी तरह से छोड़कर पश्चिम के अनुगमन को आदर्श बताया जा रहा था। उन्नीसवीं शती के अंत तक आते हम अतीत और वर्तमान के बीच एक सही वस्तुपरक और संतुलित दृष्टिकोण विकसित कर सके जो विवेकानंद, ज्योतिबा फुले, रवींद्रनाथ के माध्यम से सामने आया। फिर भी भविष्य का हमारा मार्ग क्या हो, यह द्वंद्व बना ही रहा। इसका मंथन 20वीं शती के आरंभ से ही शुरू हुआ और 1917 की सोवियत क्रांति ने एक तरह से यह स्पस्ट कर दिया कि हमारा रास्ता क्या होना चाहिए। सन् 1920 के आसपास कांग्रेस में समाजवादी मंच की स्थापना, कम्युनिस्ट पार्टी का गठन तथा अन्य कई बातें इसी सच्चाई की द्योतक थी। साहित्य में प्रेमचंद, निराला, नजरूल, जोश महीलाबादी, श्री श्री; आदि ने इस दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया। प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना भी इसी दृष्टिकोण के बढ़ते प्रभाव का परिणाम थी।

बीसवीं शताब्दी का आरंभिक इतिहास दो-दो महायुद्धों का इतिहास है जिसका मनुष्य की संवेदना, संबंध भावना और मूल्य भावना प्रर व्यापक असर पड़ा। भारत का स्वाधीनता संघर्ष, नवजागरण, सुधार के प्रयत्न, बौद्धिक दृष्टि का विकास, विश्व दृष्टि या विश्वभावना का विकास इस युग की विशिष्टता देने वाले प्रमुख तत्व हैं। क्लासिक या शास्त्रीय युग की तुलना में यह युग साधारण या सामान्य की प्रतिष्ठा का युग है। आधुनिक युग के विकास के क्रम में समाजवाद के विभिन्न रूपों का विकास, समाजवादी आंदोलन का विकास, साधारण जन की प्रतिष्ठा में यथार्थवाद जैसी विचारधाराओं के उदय और विकास में सहायक रहा है। इस युग में हम देख सकते हैं कि किस तरह यूरोप के सम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन ने आधुनिक राष्ट्रवाद और लोकतंत्र की जड़ें मजबूत कीं। 1920-30 के दशक में नीग्रो जाति की प्रतिष्ठा के पक्ष में जो आंदोलन चला, उसके पीछे महात्मा गांधी का संघर्ष याद किया जा सकता है।

आधुनिक युग के विकास के क्रम में यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि किस तरह यूरोप का वर्चस्व या प्रभाव क्षीण हुआ। दूसरे विश्व युद्ध के बाद के वर्षों में एशिया, अफ्रीका, लैटिन अमरीका के अनेक देशों को स्वतंत्रता मिली। कितने ही राजनैतिक परिवर्तन के साथ विश्व साहित्य जैसी पहचान भी बनाता है। आधुनिक भारतीय साहित्य अनेक सामाजिक परिवर्तनों की चेतना के साथ विश्व साहित्य की परिकल्पना से अछूता नहीं है। आधुनिक युग के अनुरूप चेतना का निर्माण जिन परिस्थितियों ने किया उनमें यातायात और संचार साधनों के विकास की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण रही है।

1.2.3 आधुनिक साहित्य की मूल संवेदना

आधुनिक साहित्य जिन शर्तों के साथ आधुनिक हुआ वे आधुनिक युग की विशेष ऐतिहासिक आवश्यकता का परिणाम थीं। जैसे इतिहास-दृष्टि, परम्परा का बोध, समग्र जीवन दृष्टि और वैज्ञानिक विवेक। आधुनिक साहित्य जिस नवजागरण और स्वाधीनता संघर्ष के बीच लिखा गया उसका एक व्यापक अखिल भारतीय संदर्भ था। हिंदी में आधुनिक युग के प्रवर्तक भारतेंदु हरिश्चंद्र यदि साहित्य की विषयवस्तु में युगान्तकारी परिवर्तन कर सके तो इसलिए कि उन्हें अपने युग की समस्याओं का आभास था। साधारण जन से उनका गहरा तादात्म्य था। साधारण लोगों पर वे लिख सकते थे। गांधी जी से पहले ही वे स्वदेशी आंदोलन का सूत्रपात कर चुके थे। स्पष्ट है कि भारत में आधुनिक साहित्य के उदय के पीछे सांस्कृतिक पुनर्जागरण का व्यापक ऐतिहासिक प्रयत्न है। राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष के अगले चरण में उपनिवेशवाद-विरोध का सजग प्रयत्न भी दिखाई देता है। यह प्रयत्न विश्व भर में चल रहे उपनिवेशवाद विरोध की ही एक कड़ी है। भारत में आधुनिक साहित्य की चेतना का निर्माण करने वाले लेखकों में महत्वपूर्ण रवींद्रनाथ ठाकुर ने स्वीकार किया था कि आधुनिक युग ने हमारे साहित्य को एक ओर राष्ट्रीय चेतना से, दूरी ओर एक प्रकार की विश्व दृष्टि से सम्पन्न किया।

बंकिम चंद्र का 'आनंद मठ', मैथिलीशरण गुप्त की "भारत भारती' और हाली का "मुसद्दस" आधुनिक युग की महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं जो राष्ट्रीय चेतना का पक्ष लेती है और साम्राज्यवाद का विरोध करती है। जवाहरलाल नेहरू की "विश्व इतिहास की झलक" और "भारत की खोज" महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं जो आधुनिक युग की समस्याओं और चुनौतियों के प्रति हमें संवेदनशील बनाती हैं। एक जरूरी तथ्य यह है कि स्वाधीनता संघर्ष के दौर में प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में महत्वपूर्ण रोमांटिक कविता लिखी गयी। साथ ही राष्ट्रीय भावधारा के भीतर एक नयी स्वच्छन्द चेतना का विकास देखा गया। ऐसा कवियों में उर्दू के मुहम्मद इकबाल, हिंदी के निराला, बंगला के नजरूल इस्लाम, मराठी के केशवसुत, मलयालम के जी शंकर कुरूप, तमिल के सुब्रहमयमयभारती के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आधुनिक भारतीय उपन्यास के इतिहास में ऐसी अनेक महत्वपूर्ण रचनाएं आती हैं जो राष्ट्रीय अस्मिता जैसे सवाल से टकराती हैं। जैसे रवींद्रनाथ का उपन्यास "गोरा"। शरतचंद्र के उपन्यास जहाँ सामंतवाद के दबावों के विरुद्ध हैं और भीतर-बाहर के विद्रोह को वाणी देते हैं वहीं स्त्री की पड़ा या करुणा को भी आधुनिक युग के संदर्भ में मूर्त करते हैं। प्रेमचंद (रंगभूमि, गोदान), ताराशंकर वंद्योपाध्याय (गणदेवता), विभूति भूषण वंद्योपाध्याय (पथेर पांचाली), मानिक वंद्योपाध्याय (पदमानदीर माझी), तक्षीशिवशंकर पिल्ले (चेम्मीन), पन्नालाल पटेल (ममेला जीव), यू.आर. अनंत मूर्ति (संस्कार), फणीश्वरनाथ रेणु (मैला आंचल) की कृतियों में आधुनिक युग की संवेदना व्यक्त हुई जिसे समझने के लिए नवजागरण तथा स्वाधीनता जैसी ऐतिहासिक परिस्थितियों की याद जरूरी है।

बोध प्रश्न

नोट : नीचे दिये गये प्रश्नों का सही उत्तर दीजिए और अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

1) भारत में आधुनिक युग का आरंभ कब से माना जाता है :
   क) पंद्रहवीं शताब्दी से
   ख) बारहवीं शताब्दी से
   ग) बीसवीं शताब्दी से
   घ) उन्नीसवीं शताब्दी से

2) आधुनिक युग को विशिष्ट पहचान देने वाले तीन प्रमुख तत्वों का उल्लेख कीजिए :
   क) .....
   ख) .....
   ग) .....

३) आधुनिक साहित्य की मूल संवेदना को ध्यान में रखते हुए इन प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर कोष्ठकों में लिखिए :

क) आधुनिक साहित्य किन प्रमुख शर्तों या लक्षणों के साथ आधुनिक हुआ।

[ ]

ख) राष्ट्रीय अस्मिता जैसे प्रश्न से टकराने वाले किसी महत्वपूर्ण उपन्यास का नाम लिखिए।

[ ]

अभ्यास

१) भारत में आधुनिक युग की विशिष्टता क्या है? लगभग पाँच पंक्तियों में बताइए।

.....

.....

.....

.....

1.3 आधुनिक युग : राजनीतिक-सांस्कृतिक-साहित्यिक संदर्भ

आधुनिक युग ने हमारे राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक जीवन में जबर्दस्त परिवर्तन ला दिया था। ये परिवर्तन इन क्षेत्रों में कैसे घटित हुए, उसका संक्षिप्त लेखा-जोखा हम यहाँ पेश कर रहे हैं।

1.3.1 आधुनिक युग : राजनीतिक संदर्भ

औद्योगिक क्रांति ने जहाँ यूरोप में पूंजीवादी लोकतंत्र की नींव डाली और उसे मजबूत किया वहीं अपने उद्योगों की जरूरतों के चलते और नये बाजार की खोज में यूरोप के कई देशों ने एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमरीका के देशों को अपना उपनिवेश बना लिया। लेकिन पूंजीवाद के साथ स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के जो नये आदर्श स्थापित हुए उसकी हवा आधुनिक शिक्षा के साथ-साथ इन देशों में भी पहुंची। इसने इन देशों में भी राष्ट्रवाद की भावना को मजबूत किया। बाद में मार्क्सवादी विचारों के प्रभाव ने भी लोकतंत्र, सामाजिक न्याय, समानता के आदर्श को राजनीतिक व्यवस्था के लिए आवश्यक बना दिया।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक से पहले विश्वयुद्ध (1914) तक यूरोप का प्रभुत्व बना हुआ था। वह धीरे-धरे कम होता गया। संयुक्त राज्य अमरीका, जापान मुख्य शक्ति के रूप में उभर रहे थे। युद्ध खत्म होते-होते रूसी क्रांति (1917) हो चुकी थी। उधर साम्राज्यवादी ताकतों के बीच संघर्ष तेज हो रहा था। अनुभव किय जा रहा था कि पूंजीवादी व्यवस्था का अंत मनुष्य के हित में है। रंगभेद, के चलते काले लोगों के दमन की प्रक्रिया शुरू हुई। दुनिया के कई राज्यों में स्त्रियों मताधिकार से वंचित थीं। अमरीकी संविधान के अंतर्गत महिलाओं ने यह अधिकार बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के अंत तक प्राप्त किया। भारत में स्वाधीनता आंदोलन के उदय के साथ एशिया के दूसरे भागों में भी राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की लहर उठी। दोनों विश्वयुद्धों के बीच संयुक्त राज्य अमरीका, रूस, जापान प्रमुख शक्ति के केंद्र थे। रूसी क्रांति के पहले वे परस्पर सहयोगी थे। रूस के अलग होने पर शांति प्रस्तावों की पहल में संयुक्त राज्य अमरीका की महत्वपूर्ण भूमिका थी। 1934 में सोवियत संघ ने राष्ट्र संघ की सदस्यता स्वीकार की। उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का विरोध आधुनिक युग के इस खास दौर का चरित्र था। चीन की क्रांति (1911) में सुन यान सेन की महत्वपूर्ण भूमिका थी जिसका प्रभाव अगले दशकों तक बना रहा। जर्मनी में फासीवाद की विजय हुई। सैनिक शक्ति के चरम विस्तार का परिणाम था

दूसरा विश्वयुद्ध। दुनिया के सारे फासिस्ट विरोधी संगठन सोवियत संघ के साथ थे। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की आंतरिक क्षमता और एकजुटता प्रकट करने के लिए जवाहरलाल नेहरू स्पेन गये। उल्लेखनीय है कि दुनिया के अनेक लेखकों, कलाकारों, विचारकों ने स्पेन के गृहयुद्ध में हिस्सा लिया। दूसरा विश्वयुद्ध (1939-1945) सबसे अधिक विनाशकारी था। बाद के शीतयुद्ध का परिणाम था—इस अमरीका का महाशक्तियों के रूप में उदय और आपसी संघर्ष। अमरीका का वियतनाम से लम्बा युद्ध एक ऐसी घटना है जिसने लेखकों—कलाकारों को विशेष रूप से विचलित किया।

भारत में आधुनिक युग की राजनीतिक भूमिका को समझने के लिए महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू के राजनीतिक संघर्ष को याद करना जरूरी है। अहिंसा, सत्याग्रह जैसे गांधी जी के राजनीतिक कार्यक्रमों के पीछे महत्वपूर्ण विचार थे जिनके प्रभाव एक लम्बे समय तक दिखाई देते हैं। आधुनिक भारत के निर्माता जवाहरलाल नेहरू ने अपने राजनीतिक संघर्ष के दौर में जिन मूल्यों को युगीन सार्थकता की दृष्टि से प्रतिष्ठित किया, वे हैं—धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र। नेहरू की इतिहास दृष्टि और वैज्ञानिक चेतना ने भारत में आधुनिक युग की विशेष पहचान बनायी। गुटनिरपेक्षता जैसी उनकी नीतियाँ विश्व के आधुनिक राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण तथा विचारणीय मानी जाती है। अनेक छोटे देशों के मुक्ति आंदोलन में नेहरू युग की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

1.3.2 आधुनिक युग : सांस्कृतिक संदर्भ

उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय नवजागरण को यूरोप के जिन विचारकों से प्रेरणा मिली उनमें रूसो, कान्ट, जान स्टुअर्ट मिल, हर्बर्ट स्पेंसर आदि महत्वपूर्ण हैं। इस जागरण में वैज्ञानिक दृष्टि के लिए विशेष आकर्षण था। यह नवजागरण उपनिवेशवादी, दौर की ही उपज था इसलिए उसकी अपनी सीमाएँ थीं। स्वाधीनता संघर्ष ने इस मानसिकता में आगे चलकर गुणात्मक परिवर्तन उपस्थित किया। यह एतिहासिक सच्चाई है कि दुनिया में नवजागरण का काल अलग-अलग संदर्भों के साथ आता है। वह एक ही समय तक ही नियम से नहीं आता। भारत में नवजागरण का आरंभ 19वीं शताब्दी में हुआ जब यूरोपीय वैज्ञानिक-संस्कृति और भारतीय धार्मिक-संस्कृति में टकराहट हुई। भारतीय नवजागरण के केंद्र में एक समग्र मनुष्य की कल्पना थी जिसका आरंभ राजाराममोहन राय (1772-1833) के विचारों में तथा परिणति महात्मा गांधी (1869-1948) के जीवन-दर्शन में दिखाई देती है। राजाराममोहन राय ने 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की। उसी प्रेरणा से महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज स्थापित हुआ। राममोहन राय ने सती प्रथा का विरोध किया और उस पर प्रतिबंध लगवाने में सफल हुए। उन्होंने हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए भी देश की जनता को शिक्षित किया। वे बहुविवाह जैसी सामाजिक विकृति के विरुद्ध थे और अतंर्जातीय विवाह को प्रोत्साहन दे रहे थे। स्त्री शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए उनके प्रयत्नों का ऐतिहासिक महत्व है। आगे चलकर देवेन्द्र नाथ ठाकुर और केशवचंद्र सेन ने ब्रह्म समाज का नेतृत्व किया। ईश्वरचंद्र विद्यासागर के प्रयत्नों से विधवा विवाह का प्रचलन आरंभ हुआ और स्त्री-शिक्षा के लिए स्कूल, कालेज खोले गये। स्वामी दयानंद (1824-1883) ने आर्य समाज की स्थापना (10 अप्रैल, 1875) करके नवजागरण की प्रक्रिया तेज की। वे भी जातीय संकीर्णता के विरुद्ध थे और स्त्री शिक्षा के पक्ष में थे। एक अर्थ में प्रेमदर्शन को रामकृष्ण परमहंस (1836-1886) ने सामाजिक नवजागरण का मूल मंत्र बनाया। वे सभी धर्मों की मूलभूत एकता के लिए अपने विचारों से नयी जमीन बना रहे थे। विवेकानंद (1863-1902) ने रामकृष्ण के संदेश को यूरोप-अमरीका तक फैलाया। वे वेदांत दर्शन और हिंदू धर्म की नयी व्याख्या के लिए तथा भारत की एक नयी खोज के लिए प्रसिद्ध हुए। 1873 में एनीबेंसेट भारत आयीं। उन्होंने थियोसोफिकल सोसायटी के लिए कार्य करते हुए जातिवाद जैसी संकीर्णताओं के विरुद्ध वातावरण बनाया। सर सैयद अहमद ने मुस्लिम स्त्रियों की शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया। मुस्लिम समुदाय के बीच नई जागृति लाने में उनका विशेष योगदान है। फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना (कलकत्ता/1800) से नवजागरण की विचारधारा को प्रसार के लिए अवसर मिला था। जब 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई तब तक नवजागरण की चेतना स्वाधीनता संघर्ष की चेतना के साथ

घुलमिल चुकी थी। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना का जितना राजनीतिक महत्व है उतना ही सांस्कृतिक महत्व है।

आधुनिक युग की एक बड़ी सांस्कृतिक चिंता थी—देश, प्रेम, राष्ट्रीय अस्मिता और विश्वभावना या विश्वदृष्टि में सामंजस्य। एक ओर परम्परा के ग्रहण या रक्षा की नैतिक जिम्मेदारी थी तो दूसरी ओर नवीनता के साथ उसके उपयुक्त सामंजस्य के विवेक का भी प्रश्न था। सत्रहवीं-अठारहवीं सदी में अंग्रेज व्यापारियों ने जो विश्व बाजार बनाया था वह मानवीय स्वाभिमान के लिए चुनौती बना। हिंदी लेखक महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 1908 की "सरस्वती" में इसके लिए चिंता प्रकट की है। अनुमान किया जा सकता है कि भारतीय लेखक आधुनिक युग में मनुष्य मात्र की चिंता के लिए अधिक उद्विग्न थे। रवींद्रनाथ और प्रेमचंद्र का साहित्य इसी गहरी विकलता का उदाहरण है। दुनिया में मनुष्य के साथ कहाँ क्या घट रहा है यह जानने के लिए बेचैन भारत की अपनी सामाजिक संरचना को देखें तो यहाँ सामंतवाद की रूढ़ियाँ प्रबल थीं। वे बार-बार नये रूपों में प्रकट होती थीं। वर्ण-व्यवस्था कट्टर थी। वह भी नये-नये रूपों में चुनौती की तरह प्रकट होती थी। विज्ञान की स्वीकृति के लिए बहुत लंबा संघर्ष जरूरी था। महावीर प्रसाद द्विवेदी, चंद्रधरशर्मा गुलेरी और प्रेमचंद का संघर्ष इसी दृष्टि से महत्वपूर्ण है। महाराष्ट्र में निम्न वर्ण में जन्म लेकर ज्योतिबा फुले (1827-1890) ने नवजागरण की प्रक्रिया न सिर्फ तेज की, बल्कि नवजागरण की एक दूसरी धारा के प्रवर्तन से प्रभुत्वशाली वर्ग को चुनौती दी। 1848 में उन्होंने निम्न जाति के लड़कों के लिए स्कूल खोला। 1851 में लड़कियों के लिए स्कूल खोला। ब्राह्मणेतरों को संगठित कर उन्होंने जो आंदोलन उन्नीसवीं शताब्दी में चलाया, उसी की अगली कड़ी बीसवीं शताब्दी में भीमराव आम्बेडकर कहे जा सकते हैं जिनके योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता।

स्वेदशी भाषाओं की प्रतिष्ठा के लिए विकसित नयी जागरूकता को भी बृहत्तर नवजागरण का जरूरी हिस्सा समझना चाहिए। गद्य का विकास कमोबेश सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में एक साथ हुआ। मुद्रण कला का विकास, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन, पाठक वर्ग का उदय, पूर्व-पश्चिम की संस्कृति का संबंध और संघर्ष, मुक्ति संघर्ष की चेतना, दलितों-उपेक्षितों का उत्थान, सामाजिक न्याय समता के लिए निरंतर संघर्ष, सौन्दर्याभिरुचि में बुनियादी बदलाव, विश्वभावना का विकास—ये तमाम संदर्भ मिलकर आधुनिक युग की मानसिकता का निर्माण करते हैं। भारतीय भाषाओं का आधुनिक साहित्य इसका उदाहरण है कि जिस यूरोप के संपर्क में हमारे यहाँ आधुनिक चेतना का विकास हुआ उसी ने नये अवरोध भी पैदा किये। पर इतिहास में आगे देखना जरूरी होता है, पीछे लौटना नहीं। अतः यूरोप के सकारात्मक अवदान को ग्रहण करते हुए ही हमें अपनी भारतीयता और अपनी आधुनिकता में संगति बिठानी है। आधुनिक भारतीय साहित्य आज विश्व साहित्य का जरूरी अंग है—यह स्थिति प्राप्त करने में भारतीय नवजागरण और स्वाधीनता आंदोलन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

1.3.3 आधुनिक युग : साहित्यिक संदर्भ

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के आरंभ तक यूरोप ही विश्व साहित्य का केंद्र था। साम्राज्य विस्तार और उपनिवेश निर्माण के क्रम में वह अफ्रीका, एशिया और अमरीका के साहित्य के संपर्क में आया। दूसरी ओर पूरे विश्व में आधुनिक युग की महत्वपूर्ण पहचान बनी उपनिवेशवाद-विरोध और साम्राज्यवाद विरोध की चेतना। आधुनिक युग की यह महत्वपूर्ण पहचान बनाने में प्रेस की भूमिका महत्वपूर्ण रही है जिसके चलते गद्य आया और कितने ही नये रूपों और शैलियों को विकास का अवसर मिला।

प्रेस की स्थापना

प्रेस का उदय उन्नीसवीं शताब्दी के सांस्कृतिक जगत की बड़ी घटना है। प्रेस को ही साहित्य में आधुकिता का वाहक कहा गया है जिसके प्रचार के सहायक हैं यातायात और संचार के विकसित साधन। प्रेस ने साहित्य को प्रजातांत्रिक रूप दिया। अब साहित्य के केंद्र में देवता या राजरानी न रहे। उनका स्थान साधारण जनता ने ले लिया। यूरोपीय संपर्क में जो नया युग शुरू हुआ उसमें अंग्रेजी शासकों, ईसाई मिशनरियों की अपनी भूमिका थी।

सामाजिक सुधार के कार्यक्रमों में भी उन्होंने हिस्सा लिया। 1832 में श्रीरामपुर के मिशनरियों ने भारत की लगभग चालीस भाषाओं में अपने धर्मग्रंथ छापे। उनमें बघेली, छत्तीसगढ़ी, कन्नौजी, भोजपुरी जैसी बोलियाँ भी थीं। प्रेस आया तो गद्य आया और उसके विभिन्न रूप आये। जैसे उपन्यास, कहानी, जीवनी, आत्मकथा आदि। पत्र-पत्रिकाओं का प्रसार बढ़ा। शिक्षित जनता के उदय और नवजागरण में उनकी हिस्सेदारी के कारण साहित्य की संवेदना में गुणात्मक अंतर आया। गद्य को अगर निराला ने जीवन संग्राम की भाषा कहा है तो उसके व्यापक अर्थ है। विदेशी भाषा के विरुद्ध अपनी भाषा की रक्षा औ विकास के संदर्भ में गद्य के उदय की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

आधुनिक युग का साहित्य : आंदोलन और शैलियाँ

आधुनिक युग की संवेदना के निर्माण में यूरोपीय उपन्यास की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। उन्नीसवीं शताब्दी में गद्य की नयी विधा के रूप में विकसित उपन्यास ने आधुनिक समाज के यथार्थ चित्रण के लिए बड़ी लोकप्रियता अर्जित की। तोल्सतोय के "पुनर्जीवन" (1899 जैसे उपन्यास आधुनिक समाज की आलोचना करते हुए नयी चेतना या नये मनुष्य के जन्म की संभावना की ओर संकेत करते हैं। कविता में स्वच्छन्दतवाद ने एक नयी संबंध भावना को जन्म दिया। रवीन्द्रनाथ ठाकुर (1861-1941) की कृति "गीतांजलि" (1913) को नोबेल पुरस्कार मिला। वे एशिया में राष्ट्रीय पुनर्जागरण की अभिव्यक्ति के लिए पहले प्रतिनिधि तथा अग्रणी लेखक के रूप में प्रसिद्ध हुए। उनमें प्राचीन भारतीय परम्परा और नयी यूरोपीय चेतना का सार्थक सामंजस्य है। अनेक विधाओं में उपलब्ध उनका साहित्य आधुनिक युग की सच्ची संवेदना विकसित करने में सबसे अधिक सहायक सिद्ध हुआ। बंकिम, शरत चंद्र, फकीर मोहन, सेनापति, तकषी शिवशंकर पिल्ले, रवीन्द्रनाथ, प्रेमचंद आदि के उपन्यासों ने भारतीय समाज के बदलते रूपों को सार्थक झलक दी।
स्वच्छन्दतावाद, प्रतीकवाद, बिम्बवाद, यथार्थवाद वे अनेक आंदोलन हैं जिन्होंने आधुनिक युग की संवेदना विकसित करने के लिए नयी शैलियों का आश्रय लिया। परम्परा और आधुनिकता के द्वंद्व को समझने में "द वेस्ट लैंड" (1922) के लेखक टी.एस. इलियट का साहित्य एक हद तक सहायक है। हिंदी कवि जयशंकर प्रसाद "कामायनी" (1936) लिखकर आधुनिक मनुष्य के संकट की ही पहचान करा रहे थे। लैटिन अमरीकी कवियों, कथाकारों ने यूरोपीय आधुनिकता के समानांतर ठेठ देसी आधुनिकता को महत्व दिया जो आंचलिकता के रंग में रची-बसी है।

राष्ट्रीय अस्मिता और विश्वभावना के गहरे संबंधों को लेकर आधुनिक युग में रूसी लेखक प्रायः चिन्तित रहे हैं। अफ्रीका का आधुनिक साहित्य उपनिवेषवाद विरोधी है और गहरे अर्थ में राष्ट्रवादी है। व्यापक अर्थ में आधुनिक भारतीय साहित्य नवजागरण और स्वतंत्रत की चेतना से अनुप्राणित रहा है। मुक्ति संघर्ष की प्रक्रिया में लगे हुए अनेक देशों की मूल भावधारा इसी नवजागरण और स्वाधीनता संघर्ष से स्फूर्ति प्राप्त करती है।

बोध प्रश्न

4) आधुनिक युग की चेतना का निर्माण करने वाले तीन प्रमुख तत्वों का उल्लेख कीजिए:

   क) .....

   ख) .....

   ग) .....

5) वर्ष 1800 किस लिए महत्वपूर्ण है (√) का चिह्न लगाकर बताइए।

   क) प्रेस की स्थापना के लिए (

   ख) गीतांजलि के प्रकाशन के लिए (

   ग) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के लिए (

   घ) फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के लिए (

6) निम्नलिखित कृतियों के लेखकों के नाम लिखिए :

क) द वेस्ट लैंड .....

ख) पुनर्जीवन .....

ग) रंगभूमि .....

घ) कामायनी .....

7) महाराष्ट्र में निचले वर्ण में जन्म लेकर दलितों और स्त्रियों की शिक्षा के लिए आंदोलन चलाने वाले विचारक और कर्मयोद्धा का नाम लिखिए।

.....

.....

अभ्यास

2) राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों को किन विचारकों और विचारधाराओं ने प्रभावित किया। उत्तर पाँच पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) प्रेस के उदय ने साहित्य पर क्या प्रभाव डाला ?

.....

.....

.....

.....

1.4 आधुनिक युग की मूल संवेदना

आधुनिक युग की अब तक की पृष्ठभूमि को समझने के बाद आइए हम इसकी मूल संवेदना को समझें। चूंकि उस दौर में भारत पर विदेशी शासन था इसलिए राष्ट्रीयता और स्वाधीनता की भावना का उदय स्वाभाविक था। इसी प्रकार इस सोच ने कि हम गुलाम क्यों बने, हमारे यहाँ समाज सुधार के आंदोलनों की शुरुआत का कारण बना। एक ओर हमने अतीत की गलत रूढ़ियों और परंपराओं से मुक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न किया तो दूसरी ओर हमने अपनी परंपरा के श्रेष्ठ मूल्यों की रक्षा का दायित्व भी ग्रहण किया, यही नवजागरण की भावना थी।

1.4.1 राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना

परदेशी वस्तु और "परदेशीभाषा" के विरुद्ध भारतेन्दु ने जिस स्वाधीन चेतना की मांग की थी वह उत्तरोत्तर विकसित होती गयी। हाली का "मुसद्दस" और भारतेंदु के नाटक देश में उठती नयी जातीय राष्ट्रीयता की भावना को व्यक्त कर रहे थे। प्रसाद के नाटकों में यह स्वाधीन चेतना मौजूद है। इसे निराला, प्रेमचंद भी अपने साहित्य में महत्वपूर्ण अभिव्यक्ति दे रहे थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने आधुनिक होने के प्रयत्न में इस चेतना को अनिवार्य सहयोगी माना था। विश्व परिप्रेक्ष्य में माना जाता है कि सामंतवाद की समाप्ति और पूंजीवाद के उदय के साथ ही राष्ट्र जैसी अवधारणा का उदय हुआ। पूंजीवाद के विकास के साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन का विकास हुआ। इसी तरह भारत में आधुनिकयुग के आगमन

का श्रेय उपनिवेशवाद का दिया जाता है। फिर भी भारतीय संदर्भ में राष्ट्रीय स्वाधीनता की चेतना के उभार के पीछे निजी कारण हो सकते हैं। आधुनिक भारतीय साहित्य में भी जहाँ-तहाँ मातृभूमि की कल्पना जिस रूप में मौजूद है, उसे देखते हुए ऐसे निजी कारणों की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। यह राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना आधुनिक युग की मूल संवेदना है पर उसकी भी कई धाराएँ हैं। वे आधुनिकता जैसे मूल्य बोध के लिए कभी-कभी उलझन भी पैदा करती हैं। साधनों (हिंसा, अहिंसा) की दृष्टि से ही नहीं, अधिक बुनियादी रूप में भी। कई बार "हिंदू चेतना" जैसे विचार राष्ट्रीयता की और संकीर्ण सीमित अवधारणा लेकर चलते हैं जो अंततः दूसरे धर्मावलंबियों में राष्ट्रविरोधी प्रतिक्रिया के रूप में उभरता है इससे संघर्ष करते हुए हमने आधुनिक युग की चुनौतियों के अनुरूप राष्ट्रीयता की व्यापक धारणा विकसित की है—जिसके अपने मूल्य हैं—लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता आदि।

1.4.2 नवजागरण

उन्नीसवीं सदी के नवजागरण में हिंदुत्व के आग्रह के सभी रूप एक से न थे। कहीं दृष्टि अधिक उदार थी और परम्परा के सार्थक ग्रहण को महत्व देती थी (ब्रह्म समाज, विवेकानंद)। कहीं वैदिक हिन्दुत्व के पौषण पर अतिरिक्त बल था (आर्य समाज)। उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय नवजागरण के अग्रदूत राजाराम मोहन राय अपने समय की सांस्कृतिक चेतना को नवजागरण कह देते थे जबकि बंकिम चंद्र पंद्रहवीं शताब्दी के भक्ति आंदोलन को सच्चे अर्थों में नवजागरण मानते थे। हिंदी आलोचक डा. रामविलास शर्मा ने भक्तिकालीन आंदोलन को लोकजागरण कहा और उन्नीसवीं शताब्दी के जागरण को नवजागरण कहा। अधिक महत्वपूर्ण संदर्भ यह कि उन्होंने अलग से हिंदी नवजागरण की विशिष्टता खोजने और स्पष्ट करने की कोशिश की। हिंदी नवजागरण की विशिष्टता बताने के लिए उन्होंने सन् अठारह सौ सतावन की राज्य-क्रांति को उसका बीज माना। विचार के लिए यह एक संदर्भ हो सकता है पर यह एक सच्चाई है कि भारतेंदु तथा उनके सहयोगियों ने बंगाल के नवजागरण से ही प्रेरणा ली थी। आधुनिक युग की बहुत सी विशेषताएँ, नयी सबंध भावना, नयी सौंदर्य दृष्टि आदि बंगाल के नवजागरण की ही देन है।

बोध प्रश्न

8) नयी जातीय राष्ट्रीयता के प्रतिनिधि किन्हीं दो लेखकों के नाम बताइये।

क) .....

ख) .....

9) उन्नीसवीं सदी के नवजागरण में हिन्दुत्व के आग्रह मुख्यतः दो प्रकार के थे। उनमें मुख्य अंतर बताइये।

.....

.....

.....

.....

.....

1.5 मूल्यांकन

विश्व इतिहास में आधुनिक युग की शुरुआत मानव सभ्यता के नये चरण की शुरुआत थी। ज्ञात इतिहास में पहली बार मनुष्य ने अपने सोच के केंद्र में स्वयं मनुष्य को रखा—न धर्म को, न भाग्य को, न राजा को, न पुरोहित को। धर्म, जाति, लिंग, नस्ल, भाषा, क्षेत्र के आधार पर मनुष्य-मनुष्य के बीच किसी तरह का भेदभाव करने को बुरा माना गया। मनुष्य के बीच समानता को एक आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित किया गया और लोकतंत्र के द्वारा एक ऐसी राजनीतिक प्रणाली को विकसित किया गया जिसमें सभी की बराबर की भागीदारी हो। आधुनिक युग के इसी अवदान को मूल्यांकन पर यहाँ विचार कर रहे हैं।

1.5.1 आधुनिक युग का अवदान

हिंदुस्तान की कहानी लिखते हुए जवाहरलाल नेहरू ने अनुभव किया था कि हम मानव जाति के एक महायुग में रह रहे हैं और इस सौभाग्य की हमको कीमत देनी होगी। हर महायुग में संघर्ष और अस्थिरता की भरमार होती है, पुरानी व्यवस्था को छोड़ कर नई के लिए कोशिश होती है। उन्नीसवीं शताब्दी से बीसवीं शताब्दी के इस अंतिम दशक तक आधुनिक युग समस्याओं और चुनौतियों से घिरा रहा है। इस अर्थ में भी यह एक महान् युग है। आधुनिक युग वस्तुतः इसलिए महान् है क्योंकि पहली बार इसमें मनुष्य को सभ्यता के केंद्र में रखा गया और उसके बीच समानता पर बल दिया गया। सामंतवाद के संकट और पूंजीवाद के विकास के साथ ही उपनिवेशवाद विरोधी चेतना का विस्तार हुआ और राष्ट्रीय स्वाधीनता जैसी चेतना ने रूप और आकार ग्रहण किया। पुनर्जागरण या नवजागरण के युग का एक महत्वपूर्ण अवदान है—मध्ययुगीन मानसिकता से मुक्ति, अनेक सामाजिक रूढ़ियों से मुक्ति। उसका दूसरा पहलू है नयी प्रगतिशील विचारधारा, नयी संबंध भावना का उदय। दलित और शोषित का मुक्ति के लिए संघर्ष, स्त्री की मुक्ति के लिए संघर्ष, सामाजिक न्याय और समानता के लिए संघर्ष, लोकतंत्र धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद के पक्ष में संघर्ष आधुनिक युग को महत्वपूर्ण बनाते हैं। इस नवजागरण और स्वाधीन चेतना के सम्यक विकास के पीछे यूरोपीय शिक्षा की भूमिका रही है, प्रेस एवं पत्रकारिता का विकास है, शिक्षात्मक समितियों-संस्थाओं का उदय है, राष्ट्रीय और क्षेत्रीय भाषाओं का प्रचार-प्रसार है।

1.5.2 आधुनिक युग के संदर्भ में भारतीय साहित्य की पहचान

आधुनिक युग के संदर्भ में भारतीय साहित्य की एक अपनी नयी पहचान बनी। नवजागरण के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में हम देख चुके हैं कि राजा राममोहन राय, माइकेल मधुसूदन दत्त, बंकिम चंद्र चट्टोपाध्याय राष्ट्रीयता के साथ अंतर्राष्ट्रीयता या विश्व भावना के विकास के लिए सचेष्ट थे। स्वच्छंदतावाद और यथार्थवाद जैसी विचारधाराओं के पीछे नवजागरण और स्वाधीन चेतना के लिए चलाया गया लंबा संघर्ष था। 1936 के प्रगतिशील लेखक आंदोलन में रवींद्रनाथ, शरत चंद्र, वल्लतोल, हसरत मोहानी, जवाहरलाल नेहरू की हिस्सेदारी थी। आधुनिकता के उदय और विकास में केवल इंग्लैंड-अमरीका की भूमिका महत्वपूर्ण नहीं रही है। अफ्रीकी, एशियाई लातीनी अमरीकी साहित्य ने आधुनिकता की चेतना को नया अर्थ दिया। जहाँ तक एशियाई देशों के साहित्य का सवाल है उसकी अंतर्वस्तु प्रायः स्वदेशी ही रही। एशियाई देशों का आधुनिक साहित्य मुक्ति की चेतना से संपन्न है। आधुनिक भारतीय साहित्य एक साथ अपनी आधुनिकता और भारतीयता, आंचलिता और लोकोन्मुखता तथा विश्वजनीनता के लिए महत्वपूर्ण है। एक और आधुनिक युग ने भारतीय साहित्य को विश्व चेतना से संपन्न किया, दूसरी ओर उसे अपनी जड़ों को खोज के प्रति उत्सुक बनाया।

बोध प्रश्न

10) आधुनिक युग किस अर्थ में महान् युग है?

.....

.....

11) राजा राममोहन राय, बंकिम चंद्र आदि राष्ट्रीयता के साथ किस विशेष संदर्भ पर बल दे रहे थे?

.....

.....

अभ्यास

4) राष्ट्रीयता स्वाधीनता की चेतना का आशय स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

5) आधुनिक युग का प्रमुख अवदान बताइए।

.....

.....

.....

.....

1.6 सारांश

- "आधुनिक युग की भूमिका" नाम की इकाई में आपने आधुनिक युग का आरंभ कब से हुआ इसका अध्ययन किया है। यूरोप में वैसे तो पंद्रहवीं शताब्दी के पुनर्जागरण से नये जीवन मूल्य उभरने लगे थे परंतु आधुनिक युग की शुरुआत फ्रांस की राज्य क्रांति और औद्योगिक क्रांति से ही हुई जिसने स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के नये मूल्य दिये।
- भारत में जब 1757 में प्लासी युद्ध के बाद अंग्रेजों के राज की स्थापना हुई, तब यहाँ सामंती व्यवस्था का ही वर्चस्व था। अंग्रेजों ने 19वीं शती के आरंभ में पश्चिमी ढंग की शिक्षा पद्धति आरंभ की और राज्य व्यवस्था में भी कई नये बदलाव किये। इनके संपर्क में आने से भारतीयों में भी नये विचारों का उदय हुआ। कल कारखानों की स्थापना, प्रैस की स्थापना आदि ने भारतीय जीवन में व्यापक परिवर्तन किये। एक नये मध्यवर्ग का उदय हुआ जिसने आधुनिक चेतना को अपने देशवासियों में प्रचारित करने का जिम्मा लिया।
- उन्नीसवीं शताब्दी में आरंभ हुए इस नवयुग की प्रमुख विशेषता है, समाज सुधार, अतीत का पुनर्मूल्यांकन, स्वाधीन चेतना, राष्ट्रीय भावना और समानता विवेकशीलता और लौकिकता के नये मूल्य।
- इन्हीं आधुनिक भावनाओं और विचारों की अभिव्यक्ति उस युग के साहित्य के माध्यम से भी हुई। बंकिम चंद्र, गालिब, हाली, रवींद्रनाथ ठाकुर, प्रेमचंद, निराला, वल्लातोल, सुब्रह्मण्य भारती, कुमारन आशान आदि रचनाकारों ने आधुनिक भावबोध को अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की और इस प्रक्रिया में उन्होंने सामंतवाद विरोध और साम्राज्यवाद विरोध की भावना को पुष्ट किया।
- आधुनिक युग पर पश्चिम के पूंजीवादी व्यवस्था, 1917 की सोवियत क्रांति और प्रथम एवं द्वितीय विश्वयुद्धों का प्रभाव पड़ा। इसी दौर में भारत अपनी राष्ट्रीय मुक्ति के लिए भी प्रयत्नशील रहा और विभिन्न मंजिलों से गुजरते हुए 15 अगस्त 1947 को देश ने स्वतंत्रता हासिल की।
- इस युग में ही समाज सुधारकों और विचारकों ने नये भारत के निर्माण की मुहिम चलाई। सामंती सामाजिक और धार्मिक रूढ़िवाद के विरुद्ध समाज सुधार आंदोलन चलाया गया।
- प्रेस की स्थापना ने भारतीय भाषाओं के साहित्य के नये युग का सूत्रपात किया। स्वच्छंदतावाद और प्रगतिवाद ने साहित्य में नयी चेतना को अभिव्यक्ति प्रदान की।
- आधुनिक युग की मूल संवेदना राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना और नवजागरण की भावना है जिनका अध्ययन आप आगे की इकाइयों में विस्तार से करेंगे।

आशा है इस इकाई को पढ़ने के बाद उपर्युक्त को अपने शब्दों में व्यक्त कर सकेंगे।

1.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

रामविलास शर्मा : *भारतेन्दु हरिश्चंद्र*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

रामविलास शर्मा : *महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण*, राजमल प्रकाशन, नई दिल्ली

पूरनचंद्र जोशी : *परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम*, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली

के. दामोदरन : *भारतीय चिंतन परंपरा*, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।

1.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) घ)

1) क) स्वाधीन चेतना
   ख) नवजागरण
   ग) विश्व दृष्टि

3) क) इतिहास-दृष्टि, परम्परा का बोध, वैज्ञानिक विवेक
   ख) गोरा

4) क) उपनिवेशवाद विरोध
   ख) साम्राज्यवाद विरोध
   म) सामंतवाद विरोध

5) घं

6) क) टी.एस.इलियट
   ख) तोल्सतोय
   ग) प्रेमचंद
   घ) जयशंकर प्रसाद

7) ज्योतिबा राव फुले

8) क) हाली
   ख) भारतेंदु

9) एक में अतीत के पुनरुत्थान पर बल था जबकि दूसरे में नये युग के अनुरूप परिवर्तन पर बल था।

10) देखिए उपभाग 1.5.1

11) राष्ट्रीय[illegible] के साथ विश्व भावना पर भी बल दे रहे थे।

अभ्यास

1) देखिए उपभाग 1.2.2

2) राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को फ्रांस की राज्य क्रांति, मार्क्सवाद तथा 1917 की सोवियत क्रांति ने प्रभावित किया। वाल्तेयर, रूसो, मार्क्स, लेनिन तालस्ताय आदि विचारकों ने भी अपना प्रभाव डाला।

3) देखिए 1.3.3 उपभाग।

4) देखिए उपभाग 1.4.1

इकाई 2 राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का विकास

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 स्वाधीनता आंदोलन की पृष्ठभूमि
  2.2.1 आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद से पहले
  2.2.2 आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद का उदय
2.3 राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का विकास
  2.3.1 पहला चरण 1857 से 1905 तक
  2.3.2 दूसरा चरण 1905 से 1919 तक
  2.3.3 तीसरा चरण 1919 से 1947 तक
2.4 स्वाधीनता आंदोलन का व्यापक परिप्रेक्ष्य
  2.4.1 संदर्भ : संस्कृति और समाज
  2.4.2 संदर्भ : आधुनिक भारतीय साहित्य
2.5 मूल्यांकन
2.6 सारांश
2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें
2.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई से हमने राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का परिचय दिया है। इसमें स्वाधीनता आंदोलन के महत्व से तथा संस्कृति और समाज पर उसके व्यापक प्रभाव से आपको परिचित कराया जाएगा। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- भारतीय राष्ट्रवाद के उदय की पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगे;
- पराधीन भारत के लोगों की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थिति को समझ सकेंगे;
- अंग्रेजों द्वारा भारत के आर्थिक शोषण के प्रभाव को स्पष्ट कर सकेंगे;
- स्वाधीनता आन्दोलन के विकास-क्रम को तथा विकास-क्रम में आने वाले विभिन्न सामयिक कार्यक्रमों और आन्दोलनों को बता सकेंगे;
- स्वाधीनता आन्दोलन की महत्वपूर्ण घटनाओं से परिचित हो सकेंगे;
- स्वाधीनता आन्दोलन में हिस्सेदारी निभाने वाले महत्वपूर्ण व्यक्तियों, संगठनों की भूमिका का ठीक-ठाक आकलन कर सकेंगे; तथा
- आधुनिक भारतीय साहित्य पर स्वाधीनता आन्दोलन के प्रभाव को समझ सकेंगे और उसका मूल्यांकन कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

ऐच्छिक पाठ्यक्रम-05 "*आधुनिक भारतीय साहित्य : राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण*" के खंड-01 की यह दूसरी इकाई है जिसमें आप राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के विकास का विभिन्न चरणों में अध्ययन करेंगे। इससे पहले की इकाई में हमने आपको आधुनिक युग की विशिष्टता और महत्व के बारे में बताया था। राष्ट्रीय स्वाधीता आंदोलन से संबंधित

इस इकाई में हमनें 1857 के बाद के इतिहास का परिचय दिया है। 1857 से 1947 के बीच के इस आंदोलन को मुख्यत: तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है :

पहला चरण : 1857 से 1905 तक

दूसरा चरण : 1905 से 1919 तक

तीसरा चरण : 1919 से 1947 तक

इस अवधि में ब्रिटिश उपनिवेशवाद और अंग्रेजों द्वारा भारतीयों के शोषण के विरुद्ध राष्ट्रवादी व्यक्तियों और संगठनों द्वारा आन्दोलन चलाये गये। भारत की जनता में स्वतंत्रता के लिए नयी जागृति पैदा हुई। इन आन्दोलनों के हिंसक–अहिंसक दोनों रास्ते थे लेकिन आन्दोलन का मुख्य स्वर अहिंसा के पक्ष में था। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना और गांधी जी के नेतृत्व से इसी स्वर को बल मिला।

आपके लिए यह जानना आवश्यक है कि राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठभूमि क्या थी। आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद के उदय से पहले क्या स्थितियाँ थीं। उभारने वाले कारण क्या थे। हमने इस इकाई में ऊपर बताए गए आंदोलन के तीनों चरणों का भी संक्षिप्त लेखा-जोखा पेश किया है।

स्वाधीनता आंदोलन का प्रभाव हमारे समाज और संस्कृति पर किस रूप में पड़ा। इस पर भी इकाई में विचार किया गया है। इस परिप्रेक्ष्य में आधुनिक भारतीय साहित्य के विकास में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के प्रभाव पर भी रोशनी डाली गई है। अंत में स्वाधीनता आंदोलन के महत्व तथा उसके अवदान पर विचार किया गया है। आशा है इकाई को पढ़ने से आपको राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के विकास को समझ सकेंगे

2.2 स्वाधीनता आन्दोलन की पृष्ठभूमि

इस भाग में हम भारत में अंग्रेजों का राज कैसे स्थापित हुआ। इस राज का मूल चरित्र क्या था और इसने भारत का किस तरह शोषण किया, इस पर विचार करेंगे।

2.2.1 आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद से पहले

1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद से ही मुगल साम्राज्य लड़खड़ाने लगा था। शीघ्र ही उसने अपनी शक्ति और वैभव को खो दिया। अमीरों द्वारा कठपुतली बादशाह सिंहासन पर बैठाये, उतारे जाते थे। इस कमजोरी का लाभ उठाकर क्षेत्रीय और प्रांतीय शासकों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। इस प्रकार शक्ति का विकेन्द्रीकरण हो गया। इन शक्तियों में आपसी संगठन के अभाव में बाहरी आक्रमणों के समय उनके लिए गंभीर खतरा उपस्थित हो गया। इसी समय विभिन्न यूरोपीय कम्पनियों (पुर्तगाली, डच, अंग्रेज, फ्रांसीसी) का व्यापारी वर्ग के रूप में भारत में आगमन हुआ। अन्ततः सभी पर ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी का वर्चस्व स्थापित हो गया। धीरे-धीरे कम्पनी का लोभ बढ़ता गया और उसने स्थानीय शासकों की कमजोरी और आपसी ईर्ष्या का लाभ उठाते हुए उनके शासन में हस्तक्षेप करना आरंभ कर दिया।

1757 के प्लासी युद्ध और 1764 के बक्सर युद्ध में भारतीय शक्तियों के पराजित होने के बाद से ही भारत में अंग्रेजी व्यापारिक संस्था ईस्ट इंडिया कम्पनी का एक राजनीतिक शक्ति के रूप में उदय हुआ। धीरे-धीरे समस्त भारतीय शक्तियों को समाप्त करती हुई वह पूरे भारत की शासक बन गयी। सम्पूर्ण रूप में भारत का शासक हो जाने के बाद भी ब्रिटिशों का मूल चरित्र विदेशी ही रहा। उन्होंने न भारत को अपना देश माना, न उसके विकास के लिए ठोस प्रयत्न किये। इसके पूर्व जिन तुर्कों ने भारत को जीता था वे यहाँ के निवासी हुए और इन्होंने इस देश को बनाने सँवारने में सीधी रुचि ली। ब्रिटिश शासकों ने अपने आर्थिक लाभों को ही प्राथमिकता दी और भारतीय किसानों शिल्पकारों दस्तकारों का अतिशय शोषण किया।

2.2.2 आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद का उदय

आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म ब्रिटिश आधिपत्य की चुनौती के रूप में हुआ। अंग्रेजों द्वारा शासित होना ही भारत के आर्थिक पिछड़ेपन का आधार बनता गया। भारत में स्वाधीनता आन्दोलन का आधार मुख्यतः यही तथ्य और संदर्भ था। विदेशी शासन भारत के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक और राजनीतिक विकास में प्रमुख बाधक तत्व बन चुका था। किसानों की उपज का एक बड़ा हिस्सा लगान के नाम पर ले लिया जाता था। इस कार्य में अंग्रेजों के सहयोगी व जमींदार, भूस्वामी, व्यापारी और सूदखोर थे जो किसानों का शोषण करते ओर धोखा देकर उनकी जमीन हथिया लेते। किसानों के असंतोष को पुलिस और सेना द्वारा दबा दिया जाता था। नवशिक्षित भारतीयों का उभरता वर्ग अपने देश की राजनीतिक-आर्थिक स्थिति को समझने के लिए नये-नये प्राप्त आधुनिक ज्ञान का प्रयोग कर रहा था। 1857 में जिन लोगों ने ब्रिटिश शासन का समर्थन इस आशा में किया था कि वह भारत को आधुनिक तथा औद्योगिक देश बनायेगा, उन्हें भी अब निराश होना पड़ा। भाषण, प्रेस तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगते जा रहे थे। अंग्रेजों ने भारतीयों को स्वशासन की दृष्टि से अयोग्य घोषित कर दिया। साम्राज्यवादी सरकार की व्यापार, चुंगी, कर तथा यातायात संबंधी नीतियाँ नये तथा कमजोर भारतीय पूँजीपति वर्ग के विकास में बाधक थीं। उन्हें अधिक सुविधा प्राप्त विदेशी पूँजीपतियों से कड़ी प्रतिस्पर्धा करनी पड़ती थी। भारत में विदेशी शासन का अंत तक समर्थक जमींदार, भूस्वामी तथा राजे-महाराजाओं का वह वर्ग बना रहा जिनके हित विदेशी शासकों के हितों से सम्बन्धित थे। इन्हीं परिस्थतियों में आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद की सच्ची भावना का विकास हुआ। जनता के हृदय में देशभक्ति की भावना का उभार इन्हीं स्थितियों के दबाव से संभव हुआ।

नोट : नीचे दिये प्रश्नों का सही उत्तर दीजिए और अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

1) अंग्रेजों के भारत–आगमन का मूल या प्राथमिक उद्देश्य क्या था?

   क) उपनिवेश बनाना

   ख) व्यापार करना

   ग) शासन करना

   घ) भारतीयों की सहायता करना [ ]

2) आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म किस रूप में हुआ ?

   क) सांस्कृतिक चेतना के उभार के रूप में

   ख) ब्रिटिश आधिपत्य की चुनौती के रूप में

   ग) सुधारवाद की प्रेरणा के रूप में [ ]

3) नवशिक्षित भारतीयों का वर्ग नये-नये प्राप्त आधुनिक ज्ञान का प्रयोग किसलिये कर रहा था?

   क) सांस्कृतिक चेतना के प्रचार-प्रसार के लिए।

   ख) अपनी स्वतंत्रता की अनुभति के लिए।

   ग) अपने देश की राजनीतिक-आर्थिक वास्तविकता को समझने के लिए।

2.3 राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन का विकास

वैसे तो 1757 ई. से ही भारत में अंग्रेजों के आधिपत्य के विरुद्ध संघर्ष आरंभ हो गया था। सन्यासी, फकीर आंदोलनों तथा किसानों के अन्य आंदोलनों ने अंग्रेजों के आधिपत्य को समय-समय पर चुनौती दी पर ये आंदोलन न तो अपने चरित्र में राष्ट्रीय थे और न ही उनके लक्ष्य स्वतंत्रता प्राप्त करना था, वरन् वे स्वतः स्फूर्त विरोध आंदोलन थे। लेकिन

इनका महत्व यह है कि इनसे साबित होता है कि भारतीयों ने अंग्रेजों का प्रभुत्व कभी स्वीकार नहीं किया।

2.3.1 पहला चरण 1857 से 1905 तक

मार्क्स एवं एंगेल्स ने 1857 के भारतीय विप्लव का अध्ययन करते हुए माना था कि यह विप्लव उत्पीड़ित राष्ट्रों के उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष का अभिन्न अंग था। 19वीं शताब्दी में भारत का एकीकरण हो चुका था और वह एक राष्ट्र के रूप में उभर चुका था। इसलिए भारतीय जनता में राष्ट्रवादी भावना का विकास स्वाभाविक था। अंग्रेजों ने धीरे-धीरे पूरे देश में सरकार की एक समान आधुनिक प्रणाली लागू कर दी थी। ग्रामीण आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के विनाश और अखिल भारतीय स्तर पर उद्योग तथा व्यापार का प्रसार हो जाने से देश के भिन्न-भिन्न भागों में रहने वाले लोगों के आर्थिक हित परस्पर जुड़ गये थे। रेल, तार तथा केन्द्रीकृत डाक व्यवस्था ने भी देश की जनता और नेतृत्व सूत्रों के आपसी संपर्क को प्रोत्साहित किया। शिक्षा के आधुनिक पश्चिमी रूप के प्रचार प्रसार के कारण भारतीयों ने बुद्धिसंगत आधुनिक, धर्मनिरपेक्ष, जनतांत्रिक तथा राष्ट्रवादी दृष्टिकोण अपनाया। रूसो, जान स्टुअर्टमिल, तथा अन्य पाश्चात्य विचारक उनके राजनीतिक मार्गदर्शक बन गये। विदेशी दासता के अपमान की पीड़ा भरी अनुभूति इसी आधुनिक शिक्षित वर्ग को हुई। आधुनिक शिक्षा प्रणाली ने भारतीयों को इस दृष्टि से तैयार किया कि वे राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व कर सकें और उसे जनतांत्रिक आधार दे सकें। इस आधुनिक शिक्षा और शिक्षा माध्यम अंग्रेजी के साथ भारतीय जनता का दुहरा सम्बन्ध बना। एक ओर अंग्रेजी विभिन्न क्षेत्रों की जनता को जोड़ने में सहायक हुई, दूसरी ओर शिक्षित नगर जनों और ग्रामीण अशिक्षित या अल्पशिक्षित जनों के बीच व्यवधान पैदा करने लगी। वस्तुतः साधारण जनता में आधुनिक विचारों का प्रसार विकासमान भारतीय भाषाओं, उनमें विकसित हो रहे साहित्य तथा भारतीय भाषाओं के लोकप्रिय संचार माध्यम (प्रेस) द्वारा संभव हुआ। उन्नीसवीं सदी उत्तरार्द्ध के पत्रों ने सरकारी नीतियों की नियमित आलोचना के लिए उपयुक्त मंच सुलभ किया। इस समय लिखे जा रहे राष्ट्रीय साहित्य ने भी राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में योग दिया। बंगला में बंकिम चंद्र, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मराठी में विष्णुशास्त्री चिपलुणकर, तमिल में सुब्रमन्यमभारती, उर्दू में अल्ताफ हुसैन हाली तथा हिन्दी में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का योगदान इस दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व का है।

उन्नीसवीं सदी का उत्तरार्द्ध राष्ट्रवादी चेतना के क्रमिक विकास और संगठित राष्ट्रीय आन्दोलन के आरंभिक उदय का दौर है। राजा राममोहन राय ऐसे पहले भारतीय नेता थे जिन्होंने राजनैतिक सुधार के लिए आन्दोलन का सूत्रपात किया। उन्होंने प्रेस की स्वतंत्रता, जूरियों द्वारा मुकदमों की सुनवाई, कार्यपालिका और न्यायपालिका के अलगाव, उच्चतर पदों पर भारतीयों की नियुक्ति तथा भारत में औद्योगिक विकास के लिए संघर्ष किया। स्वाधीनता, जनतंत्र, राष्ट्रीयता उनकी सुधार चेतना के प्रमुख मुद्दे थे। भारत में पहली राजनीतिक संस्था 1838 में कलकत्ता में "लैंड होल्डर्स सोसायटी" नाम से बनी। इस तरह की अन्य संस्थाएं थीं—"ब्रिटिश इंडिया सोसायटी" "ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन" "मद्रास नेटिव एसोसिएशन"। इन सभी पर अभिजात वर्ग का प्रभुत्व था। उन्होंने ब्रितानी भारतीय शासन के सामने राजनीतिक आर्थिक मांगे रखीं। जैसे प्रशासनिक सेवाओं में अधिक संख्या में भारतीयों की नियुक्ति आदि। 1858 के बाद के दौर में शिक्षित भारतीय भारत में ब्रिटिश नीतियों के मुखर आलोचक बन गये। 1866 में लंदन में दादाभाई नौरोजी ने भारतीय प्रश्नों पर विचार विमर्श करने और ब्रितानी जनता के पत्र को प्रभावित करने के उद्देश्य से "ईस्ट इंडिया एसोसिएशन" की स्थापना की। भारत के बड़े नगरों में उसकी शाखाएँ स्थापित की गयीं। दादाभाई नौरोजी ने अपना पूरा जीवन राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रति समर्पित कर दिया। अपने अर्थशास्त्रीय अध्ययन में उन्होंने दिखाया कि भारत की गरीबी का कारण अंग्रेजों द्वारा उसका शोषण और यहाँ का धन ब्रिटेन भेजना था। भारतीय धन के विदेश जाने की वही पीड़ा भारतेन्दु हरिश्चंद्र जैसे लेखकों ने अनुभव की। स्वदेशी के सिद्धांत का प्रथम प्रयोग 19वीं शताब्दी के सातवें दशक में भारतीय उद्योग को ब्रितानी उत्पादकों के हमले से बचाने की प्रणाली के रूप में सामने आया। सुरेन्द्र नाथ बनर्जी और आनंद मोहन बोस के नेतृत्व में 1876 में "इंडियन एसोसिएशन" का गठन हुआ। 1870 में जस्टिस रानाडे, गणेश वासदेव जोशी, चिपलणकर तथा अन्य लोगों ने "पना सार्वजनिक

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना

विदेशी शासन और शोषण के विरुद्ध राष्ट्रीय स्तर पर एक अखिल भारतीय राजनीतिक संगठन की स्थाना का समय आ चुका था। भारतीय नागरिक सेवा के अवकाश प्राप्त अंग्रेज अधिकारी ए.ओ. ह्यूम ने प्रमुख भारतीय नेताओं के समर्थन से 1885 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के पहले अधिवेशन का आयोजन किया जिसकी अध्यक्षता वोमेश चंद्र बनर्जी ने की। राष्ट्रीय कांग्रेस के घोषित उद्देश्य थे : देश के विभिन्न भागों के राष्ट्रवादी राजनीतिक कार्यकर्त्ताओं के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध विकसित करना, जाति, धर्म, प्रांत के भेद से पूरे राष्ट्रीय एकता की भावना विकसित करना, जनप्रिय माँगों को सरकार के सामने रखना और देश में जनमत को प्रशिक्षित और संगठित करना। कहा जाता है कि ह्यूम का उद्देश्य था राष्ट्रीय कांग्रेस को प्रोत्साहन देते हुए शिक्षित भारतीयों और किसानों के विरोध अथवा असंतुष्ट मानसिकता को शांत रखना। पर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस को उत्तरोत्तर भारतीय जनता की राष्ट्रीय भावाना के अनुरूप अपनी गतिविधियाँ निर्धारित करनी थीं।

प्रारंभिक दौर के राष्ट्रवादियों ने साम्राज्यवाद का आर्थिक विश्लेषण करते हुए आर्थिक शोषण के प्रतिरोध का संकल्प किया। भारतीय उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए स्वदेशी अर्थात् भारतीय मालों के उपयोग तथा विदेशी चीजों के बहिष्कार की माँग की गयी। 1896 में पूना तथा महाराष्ट्र के अन्य नगरों में विदेशी वस्त्रों की होली जलायी गयी। किसानों पर करों का बोझ कम करने, मालगुजारी घटाने, नमक कर समाप्त करने तथा बागान मजदूरों के काम की परिस्थितियों में सुधार लाने के लिए प्रशासन पर लगातार दबाव डाला गया।

1885 से 1892 तक भारतीय राष्ट्रवादी विधायी परिषदों के प्रसार और सुधार की माँग करते रहे। फलस्वरूप 1892 में भारतीय परिषद कानून पारित करना पड़ा। आगे ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रह कर ही स्वशासन का दावा पेश किया गया। कांग्रेस के मंच से इसकी पहल गोखले और नौरोजी ने की। आर्थिक दृष्टि से उच्च पदों पर यूरोपीय एकाधिकार को भी चुनौती दी गयी। 1897 में बम्बई की सरकार ने बालगंगाधर तिलक तथा अन्य नेताओं और समाचार पत्र-संपादकों को सरकार के विरुद्ध असंतोष को बढ़ावा देने के जुर्म में गिरफ्तार कर लिया। मुकदमा चलाकर उन्हें कैद की लम्बी सजाएँ दी गयीं। नाट् बंधु के रूप में विख्यात पूना के दो नेताओं को बिना किसी मुकदमे के अन्डमान भेज दिया गया। इस तरह के दमन को देशव्यापी विरोध का सामना करना पड़ा। बाल गंगाधर तिलक की छवि महाराष्ट्र से निकलकर अखिल भारतीय नेता की हो गयी। जनता ने उन्हें "लोकमान्य" की उपाधि दी।

1905 तक भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन पर नरमपंथी राष्ट्रवादियों का ही प्रभुत्व था। नरमपंथियों की राजनीतिक कार्य पद्धति कानून की सीमा में रहकर संवैधानिक आन्दोलन चलाने की थी। वे भारतीय जनता में राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीय भावना को विकसित करते हुए एक शक्तिशाली जनमत तैयार करना चाहते थे। इसी क्रम में भारतीय पक्ष को सामने रखने के लिए प्रमुख भारतीयों के दल ब्रिटेन भेजे गये। 1889 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की एक ब्रिटिश समिति बनायी गयी। 1890 से "इंडिया" नामक पत्र का प्रकाशन आरंभ हुआ। सब मिलाकर फिलहाल योजना ब्रिटिश शासन के चरित्र के रूपांतरण की ही थी जो भारतीय जनता को आधुनिक विकास के रास्ते पर ले जा सके।

प्रारंभिक दौर के राष्ट्रीय आन्दोलन की बुनियादी कमजोरी उसके सामाजिक आधार की संकीर्णता में थी। जनता व्यापक रूप से आन्दोलन के प्रति आकृष्ट नहीं हुई थी। उसका प्रभाव क्षेत्र नगरों तक और अधिक प्रबुद्ध या शिक्षित वर्ग तक ही सीमित था। नरमपंथी नेताओं ने जनता के सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनैतिक पिछड़ेपन को ही देखा। वे यह देख नहीं सके कि जनता के पास ही साम्राज्यवाद विरोधी लम्बा संघर्ष छेड़ने की अकूत संकल्पशक्ति थी। पर आगे कांग्रेस ब्रिटिश अधिकारियों के हाथों की कठपुतली बनने के लिए तैयार न थी। आरंभिक राष्ट्रीय आन्दोलन ने अपनी सीमाओं में भारतीय जनता को राष्ट्रीय जागृति के लिए तैयार किया। जनतंत्र, नागरिक स्वतंत्रता, धर्मनिरपेक्षता तथा राष्ट्रवाद के विचारों को लोकप्रिय बनाया, भारत में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के चरित्र को

निर्ममतापूर्वक उजागर किया। उन्होंने जो जमीन बनायी उसी पर आगे राष्ट्रीय आन्दोलन और अधिक विकसित हुआ।

2.3.2 दूसरा चरण 1905 से 1919 तक

उन्नीसवीं सदी के अंत तक भारतीय राष्ट्रवादियों का आत्मविश्वास बहुत बढ़ गया था। तिलक, अरविंद घोष और विपिन चंद पाल ने राष्ट्रवादियों का आहवान किया कि वे भारत की जनता के संघर्षशील चरित्र को पहचानें। स्पष्ट रूप से अनुभव किया जा रहा था कि अब राष्ट्रीय आन्दोलन को शिक्षित वर्ग से निकलकर बृहत्तर जनता तक फैल जाना चाहिए। शिक्षित भारतीयों की संख्या और बेरोजगारी में वृद्धि होने से यही शिक्षित वर्ग उग्र राष्ट्रवाद का प्रबल अनुयायी सिद्ध हुआ। आयरलैंड, मिश्र, तुर्की और जापान के क्रांतिकारी आन्दोलनों ने भारतीयों को विश्वास दिया कि यदि जनता एकजुट और बलिदान के लिए तैयार हो तो वह शक्तिशाली निरंकुश सरकारों के लिए चुनौती बन सकती है।

उग्र राष्ट्रवाद का अस्तित्व : राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रारंभ से उग्र राष्ट्रवाद का एक सम्प्रदाय देश में मौजूद था जिसके प्रतिनिधि बंगाल में राजनारायण बोस और अश्विनी कुमार दत्त तथा महाराष्ट्र में विष्णुशास्त्री चिपलुणकर जैसे नेता थे। इस सम्प्रदाय के सबसे महत्वपूर्ण नेता थे बालगंगाधर तिलक जिन्होंने अपना पूरा जीवन राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन के प्रति समर्पित कर दिया था। न्यू इंगलिश स्कूल (बाद में फर्ग्यूसन कालेज) की स्थापना, अंग्रेजी में "मराठा" तथा मराठी में "केसरी" नामक पत्रों का प्रकाशन "गणपति" और "शिवाजी" जैसे उत्सवों का आयोजन विशेष रणनीति के अंग थे। 1896-97 में उन्होंने महाराष्ट्र के अकालपीड़ित किसानों को संगठित किया कि वे मालगुजारी न चुकायें। विपिन चंद्र पाल, अरविन्द घोष, लाला लाजपत राय उग्र राष्ट्रवाद को प्रोत्साहित करने वालों में थे। 1905 तक भारत में अनेक ऐसे नेता थे जो स्वभाव से ही उग्र असहिष्णु तथा विद्रोही थे।

बंगाल का विभाजन : 1905 में बंगाल के विभाजन के साथ ही भारत के राष्ट्रीय आंदोलन का दूसरा चरण प्रारंभ होता है। 20 जुलाई 1905—कर्जन के आदेश से बंगाल बँट चुका था। वास्तविक उद्देश्य था बंगाल में राष्ट्रवाद के प्रसार को नियंत्रित करना। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और बंगाल के राष्ट्रवादियों ने इस विभाजन का डटकर विरोध किया। बंगाल की समस्त जनता विरोध में उठ खड़ी हुई। बंगाल के राष्ट्रीय नेताओं के प्रयत्न से बंगभंग विरोधी—आन्दोलन के साथ स्वदेशी आन्दोलन और बहिष्कार आन्दोलन में तेजी आयी। रवीन्द्र नाथ ठाकुर के प्रसिद्ध गीत "आमार सोनार बांग्ला" की यही पृष्ठभूमि है जिसे बंगाल की जनता सड़कों पर गाती। उल्लेखनीय है कि 1971 में बंगला देश ने इसी को अपना राष्ट्रीय गीत स्वीकार किया। "बन्देमातरम" (बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय) रातों रात बंगाल में लोकप्रिय हो गया। वही राष्टरीय आन्दोलन के आभार के दौर में राष्ट्रगान बना। स्वदेशी के पक्ष में आत्मनिर्भरता का मंत्र फूंकने वालों में प्रमुख थे रवीन्द्रनाथ ठाकुर, रजनीकांत सेन, सैयद अबू मुहम्मद, मुकुंददास आदि। ब्रिटिश शासन की दमन नीति में भी तेजी आ चुकी थी। लाला लाजपत राय, अश्विनीकुमार दत्त जैसे नेताओं को देश से निष्कासित कर दिया गया। 1908 में तिलक को भी देश निकाला दिया गया। वे मांडले भेजे गये। उग्र राष्ट्रवादियों ने स्वदेशी और विभाजन विरोधी आन्दोलन को राष्ट्रव्यापी जन आन्दोलन बनाने का प्रयत्न किया। अरबिन्द घोष ने कहा—"राजनीतिक स्वंतत्रता किसी भी राष्ट्र की प्राणवायु है।" अब भारत की पूर्ण स्वतंत्रता राष्ट्रीय आन्दोलन का मुख्य लक्ष्य थी। भारत के राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन का यह एक क्रांतिकारी मोड़ था।

क्रांतिकारी संगठनों की भूमिका : 1905 के बाद बंगाल के "सन्ध्या" और "युगान्तर" तथा महाराष्ट्र के "काल" आदि समाचार पत्र क्रान्तिकारी आतंकवाद को समर्थन देने लगे थे। 1908 में खुदीराम बोस तथा प्रफुल्ल चन्द्र चाकी ने मुजफ्फरपुर में जज किंग्सफोर्ड के घर में एक बम फेंका। प्रफुल्ल चाकी ने स्वयं को गोली मार ली। खुदीराम को फाँसी दे दी गयी। क्रांतिकारियों की गुप्त संस्थाओं में प्रमुख थी— 1906 में बारीन्द्र घोष द्वारा गठित "अनुशीलन समिति"। घोष ने दिल्ली में वायसराय हार्डिंग पर भी बम फेंका। लंदन में श्याम जी कृष्णवर्मा, विनायक दामोदर सावरकर और लाला हरदयाल ने क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन किया।

विभाजन के विरोध में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने बंगाल के स्वदेशी आन्दोलन और बहिष्कार आन्दोलन का समर्थन किया। नरमपंथी और गरमपंथी राष्ट्रवादियों के मतभेद प्रकट हुए। शासन को इसका लाभ मिल रहा था। गरमपंथियों के दमन में तेजी आयी। नरमपंथियों को अपनी तरफ मिलाने की कोशिश की गयी। कुछ संवैधानिक सुधारों की घोषणा भी नरमपंथियों को अनुकूल करने के लिए की गयी। 1911 बंगभंग को रद्द करके पश्चिमी और पूर्वी बंगाल को फिर एक कर दिया गया। बिहार और उड़ीसा नामक दो प्रांत अलग बना दिये गये। केन्द्र सरकार की राजधानी कलकत्ता से दिल्ली स्थानान्तरित कर दी गयी।

देश में बढ़ रही राष्ट्रवादी भावना के प्रसार के कारण कांग्रेस द्वारा 1916 के लखनऊ अधिवेशन में कांग्रेस के दोनों गुटों को फिर निकट लाने की कोशिश की गयी। कांग्रेस और मुस्लिम लीग को भी एक दूसरे के निकट लाने के लिए तिलक और मुहम्मद अली जिन्ना ने प्रयत्न किये। शिक्षित मुस्लिम युवक उग्र राष्ट्रवाद की दिशा में आगे बढ़ रहे थे। 1914 में सरकार ने अबुलकलाम आजाद के पत्र "अल-निलाल" और मौलाना मुहम्मद अली के पुत्र "कामरेड" को बंद कर दिया। कुछ सुधारों की फिर घोषणा की गयी पर भारतीय राष्ट्रवाद उससे संतुष्ट न था।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि राष्ट्रवाद की मुख्यधारा के साथ-साथ साम्प्रदायिकता के लक्षण भी जहाँ-तहाँ दिखाई दे रहे थे। 1857 के विद्रोह में हिन्दू-मुसलमान साथ-साथ लड़े थे। इधर ब्रिटिश अधिकारियों ने धार्मिक आधार पर उन्हें बाँटने की कोशिश की। 1880 के आसपास सैयद अहमद खान ने अपने पूर्ववर्ती प्रगतिशील विचारों को छोड़कर घोषणा की, कि हिन्दुओं और मुसलमानों के राजनीतिक हित एक दूसरे से अलग हैं। शिक्षा, व्यापार, उद्योग में मुसलमानों के राजनीतिक हित एक दूसरे से अलग हैं। शिक्षा, व्यापर, उद्योग में मुसलमानों का पिछड़ापन भी अलगाववादी प्रवृत्ति के लिए एक प्रमुख कारण था। साम्प्रदायिक इतिहासकार भी भारतीय इतिहास के मध्यकाल की व्याख्या "मुस्लिम काल" के रूप में कर रहे थे और इस प्रकार भारतीय साँझी संस्कृति के विरुद्ध अलगाववाद के बढ़ावा दे रहे थे। यह भी कम दुर्भाग्यपूर्ण नहीं है कि उग्र राष्ट्रवादियों के वक्तव्य अतिरिक्त "हिन्दू रंग" लिये हुए थे। तिलक ने शिवाजी और गणपति उत्सवों को प्रतिष्ठा दी। आतंकवादी "काली" के समक्ष शपथ लेते थे। धर्म और राजनीति का यह मिश्रण मुसलमानों में भ्रम फैला सकता था। फिर भी हसरत मोहानी और अबुल कलाम आजाद जैसे मुस्लिम बुद्धिजीवी राष्ट्रीय आन्दोलन में शरीक थे क्योंकि उसका मुख्य चरित्र धर्मनिरपेक्ष ही बना रहा। गांधी जी, चित्तरंजन दास, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, अबुलकलाम आजाद, खान अब्दुल गफ्फार खान, सुभाषचंद्र बोस, सरदार पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, चक्रवर्ती राजगोपालचारी के आ जाने पर राष्ट्रीय आन्दोलन अधिक मजबूत और अधिक धर्मनिरपेक्ष हुआ। फिर भी साम्प्रदायिकता निर्मूल न हुई। इसी समय कतिपय हिन्दू सम्प्रदायवादी मध्यकाल में मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं के उत्पीड़न का प्रश्न उठा रहे थे। बिहार तथा संयुक्त प्रांत में भाषा के सवाल को साम्प्रदायिक रंग देने की कोशिश की जा रही थी। 1909 में पंजाब हिन्दू सभा की स्थापना इसी साम्प्रदायिकता की एक कड़ी है।

स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है : 1915-16 में दो होम रूल लीगों की स्थापना हुई जिनमें एक के नेता थे लोकमान्य तिलक ओर दूसरे की श्रीमती एनी बेसेंट और एस. सुब्रमण्यम अय्यर। उन्होंने पूरे देश में यह मांग प्रचारित की, कि युद्ध के बाद भारत को स्वशासन का अधिकार दिया जाय। इसी आन्दोलन के दौरान तिलक ने अपना प्रसिद्ध नारा दिया : स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। कांग्रेस की निष्क्रियता से खिन्न अनेक नरमपंथी भी इस उग्र आंदोलन में शामिल हो गये। 1913 में अमरीका, कनाडा में बसे भारतीय क्रांतिकारियों ने "ग़दर पार्टी" की स्थापना की जिसके प्रमुख नेताओं में थे—लाला हरदयाल, मुहम्मद बरकतुल्लाह, भगवान सिंह, रामचंद्र। गदरपंथियों ने सुदूर पूर्व, दक्षिण पूर्वी एशिया और सम्पूर्ण भारत में सैनिकों से सम्पर्क करके अनेक रेजीमेन्टों को विद्रोह के लिए तैयार किया। पंजाब में सशस्त्र विद्रोह के लिए 21 फरवरी 1915 की तिथि निश्चित की गयी। दुर्भाग्य से इस योजना का पता ब्रिटिश अधिकारियों को पहले ही लग गया। उन्होंने व्यापक स्तर पर गिरफ्तारियाँ करके कैद या फाँसी की सजा दी। 1915 में एक असफल क्रांतिकारी प्रयास में जतीन मुखर्जी पुलिस मुठभेड़ में मारे गये। इस समय भारत से

बाहर क्रांतिकारी गतिविधियों का संचालन करने वालों में प्रमुख थे—रासबिहारी बोस, राजा महेन्द्र प्रताप, भाई परमानंद, बाबा गुरमुख सिंह आदि। उन्होंने समाजवादियों और साम्राज्य विरोधी शक्तियों का समर्थन भारत की स्वतंत्रता के लिए प्राप्त किया। राजनीति से दूर रहने वली "सरस्वती" (संपादक : महावीर प्रसाद द्विवेदी) पत्रिका ने इसी दौर में दुनिया के अनेक देशों में जारी स्वाधीनता संग्राम से सम्बन्धित टिप्पणियाँ प्रकाशित कीं।

2.3.3 तीसरा चरण 1919 से 1947 तक

प्रथम विश्व युद्ध (1914-18) के दौरान विदेशी आयात बंद हो जाने के कारण जिन भारतीय उद्योगों को बहुत प्रोत्साहन मिला था, वे युद्ध बंद होने के बाद घाटे के कारण बंद होने लगे। अब फिर से विदेशी पूँजी का भारत में निवेश बड़े पैमाने पर होने लगा। भारतीय समाज के सभी वर्गों को आर्थिक कठिनाइयों का अनुभव हो रहा था। प्रथम महायुद्ध के बाद मित्र राष्ट्रों ने न केवल अपने उपनिवेशों को स्वतंत्रता देने का वचन भुला दिया, बल्कि जर्मनी और तुर्की के जीते गये क्षेत्रों को आपस में बाँटकर उपनिवेशवाद को बढ़ावा ही दिया। इस दौर में उपनिवेशों की जनता के मन से गोरों की श्रेष्ठता का डर दूर होने लगा। 1917 में लेनिन के नेतृत्व में रूस में हुई बोल्शेविक क्रांति के द्वारा भी राष्ट्रीय आन्दोलनों को काफी प्रेरणा मिली। जार का तख्ता पलटकर विश्व के प्रथम समाजवादी राज्य की स्थापना की गयी थी। इस क्रांति को जनता के भीतर छिपी अथाह शक्ति से सम्बद्ध करके ही देखा गया। अब भारत के साथ एशिया और अफ्रीका के देशों में भी राष्ट्रवादी आन्दोलन तेजी से आगे बढ़ा।

सरकार विरोधी भावनाओं में हो रही वृद्धि से निपटने के लिए ब्रिटिश सरकार के छूट और दमन नीति के अंतर्गत "मांटेग्यू चेम्सफोर्ड" सुधारों का उपयोग किया। 1919 का भारत सरकार अधिनियम बनाया गया। इसके अन्तर्गत प्रांतीय विधायी परिषद का आकार बढ़ाने, उसके अधिकांश सदस्यों के निर्वाचन तथा दुहरी शासन प्रणाली के अंतर्गत प्रांतों को अधिक अधिकार देने का प्रावधान था। पर कांग्रेस ने सुधार के ऐसे प्रस्तावों को "निराशाजनक" बता कर प्रभावी स्वशासन की माँग रखी। सरकार ने सुधार का प्रस्ताव रखने के साथ ही दमन की कार्रवाई भी जारी रखी। मार्च 1919 का रौलेट ऐक्ट इसका उदाहरण था जिससे सरकार को अधिकार दे दिया कि वह किसी भी भारतीय का बिना मुकदमा चलाये जेल में बंद कर सके। इसके विरुद्ध उपजे असंतोष ने व्यापक आन्दोलन का रूप ले लिया। इसी समय महात्मा गांधी भारतीय राजनीतिक आन्दोलन में उभर कर सामने आये और शीघ्र ही उनके हाथों में राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व आ गया। इसके पहले उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में नस्लवाद से संघर्ष करते हुए असहयोग और सत्याग्रह जैसे नये अस्त्रों का आविष्कार तथा प्रयोग किया था जिसे भारत में अंग्रेज शासकों के विरुद्ध आजमाने की घड़ी आ गयी थी। गांधी जी पहली बार भारतीय किसानों को राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्यधारा में ला सके। अब समूची जनता आन्दोलन में शामिल थी।

गांधी जी के नेतृत्व में रौलेट ऐक्ट का विरोध करने के लिए फरवरी 1919 में सत्याग्रह सभा का गठन हुआ जिसके सदस्यों द्वारा कानून का उल्लंघन करने, गिरफ्तारी देने और जेल जाने की शपथ ली गयी। इसी समय खादी भी ब्रिटिश शासन के विरोध का प्रतीक बनी। मार्च-अप्रैल 1919 में आन्दोलन में और तेजी आयी। गांधी जी ने 6 अप्रैल 1919 को बड़े पैमाने पर हड़ताल का आह्वान किया। सरकार ने इस व्यापक जन प्रतिरोध का सामना करने के लिए आधुनिक इतिहास का जघन्यतम अपराध किया। 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर (पंजाब) में जनता रौलेट ऐक्ट का विरोध करने वाले सैफुद्दीन किचलू जैसे अपने लोकप्रिय नेताओं की गिरफ्तारी का विरोध करने के उद्देश्य से बड़ी संख्या में (जिसमें स्त्रियों बच्चों की संख्या कम न थी) जलियाँवाला बाग में एकत्र हुई। अमृतसर के सैनिक कमांडर जनरल डायर ने बाग को घेर कर सैनिक टुकड़ी को भीड़ पर राइफलों मशीनगनों से गोली बरसाने का आदेश दिया। यह सबसे बर्बर हत्याकांड था। पंजाब में मार्शल लॉ लगाकर और भी बर्बर अत्याचार किये गये। विरोध में कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने सरकार द्वारा दी गयी "नाइट" की उपाधि लौटा दी।

गांधी जी की राजनीतिक गतिविधियाँ इस बीच राष्ट्रीय आन्दोलन की दिशा निर्धारित करने वाली थीं। 1917 में गांधी जी ने सत्याग्रह का पहला प्रयोग चम्पारन, बिहार में किया था

जहाँ नील उत्पादक किसान अपने हित तथा अधिकारों के लिए संघर्ष कर रहे थे। गांधी जी ने अहमदाबाद में मजदूर आन्दोलन का नेतृत्व किया। गुजरात के खेड़ा जिले में किसानों की फसल नष्ट हो जाने पर लगान न देने के लिए तैयार किया। इसी संघर्ष के दौरान सरदार बल्लभभाई पटेल गांधी जी के अनुयायी बने। गांधी जी जनता के जीवन से अपनी जीवन पद्धति को एकाकार कर चुके थे। उनके उद्देश्यों में हिन्दू मुस्लिम एकता, छूआछूत विरोधी संघर्ष, स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में सुधार जैसे संकल्प शामिल थे। इस नयी विचारधारा का प्रभाव साहित्य और संस्कृति पर व्यापक रूप से देखा गया।

साम्राज्यवाद के आलोचक अली बंधुओं (मुहम्मद अली तथा शौकत अली), मौलाना आजाद, हसरत मोहानी के नेतृत्व में गठित खिलाफत कमेटी ने देशव्यापी आन्दोलन छेड़ा। हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए इसे महत्वपूर्ण अवसर मानकर गांधी सहित अनेक कांग्रेसी नेताओं ने इसमें हिस्सेदारी निभायी। इसी ने आगे अहिंसक असहयोग आन्दोलन का रूप लिया। कांग्रेस अब विदेशी शासन से मुक्ति के राष्ट्रीय संघर्ष में ऐसी संस्थाओं की स्थापना का औचित्य भी समझ में आया जो राष्ट्रीय विचारधारा को व्यापक प्रसाद दे सकते थे। इसी दृष्टि से जामिया मिलिया इस्लामिया, बिहार, काशी तथा गुजरात विद्यापीठों की स्थापना की गयी।

चौरी चौरा कांड (1922) असहयोग आन्दोलन की ही कड़ी थी पर क्योंकि इसमें हिंसा हुई और क्रुद्ध भीड़ द्वारा थाने में आग लगा देने से 22 पुलिसकर्मी मारे गये अतः गांधी जी ने उन गतिविधियों पर रोक लगा दी जिनसे कानून का उल्लंघन होता था। युवक राष्ट्रवादियों में अधिकांश गांधी जी की रणनीति से संतुष्ट न थे। पहला असहयोग और नागरिक अवज्ञा आन्दोलन इसी तरह समाप्त हुआ।

10 मार्च 1922 को गांधी जी गिरफ्तार किये गये। 6 साल कैद की सजा हुई। खिलाफत आन्दोलन भी प्रासंगिक नहीं रह गया। जहाँ उसने असहयोग आन्दोलन को जन्म दिया, वहीं राजनीति में धार्मिक चेतना और आगे धार्मिक संकीर्णता के प्रवेश को रोक न सका। यद्यपि प्रकट रूप में ये आन्दोलन असफल रहे, पर इन्हीं के प्रभाव से आन्दोलन में किसान, दस्तकार, स्त्रियाँ अर्थात् भारतीय समाज के सभी वर्ग शामिल हुए।

स्वराज्यवादी : चितरंजन दास और मोतीलाल नेहरू अनुभव कर रहे थे कि राष्ट्रवादियों को विधानमंडलों का बहिष्कार समाप्त कर उनमें भाग लेना चाहिए और उनके संचालन में बाधा डालनी चाहिए। "अपरिवर्तनशील" कहे जाने वाले सरदार पटेल, डा. अंसारी तथा डा. राजेन्द्र प्रसाद दे रहे थे इससे राष्ट्रवादी उत्साह कम होगा और जनता की भागीदारी में उदासीनता आयेगी। कांग्रेस के विरोध के बावजूद दिसम्बर 1922 में "स्वराज्य पार्टी" की स्थापना की गयी। नवम्बर 23 में केन्द्रीय विधानसभा के चुनावों में स्वराज्यवादियों ने 101 में से 42 सीटें जीतीं। मार्च 1925 में वे विट्ठलभाई पटेल को केन्द्रीय विधान सभा का अध्यक्ष चुनवाने में भी सफल हुए। विदेशी सरकार की निरंकुश नीतियों में बदलाव न आने से उन्हें विधानसभा का त्याग करना पड़ा।

उधर साम्प्रदायिक शक्तियाँ राजनीति में उभरने लगी थीं। दंगों की राजनीति के विरोध में गांधी जी ने मौलाना मुहम्मद अली के घर दिल्ली में 21 दिनों का उपवास (1924) किया। प्रभाव न देखकर वे राजनीति से सन्यास लेने पर विवश थे। 1927 में "साइमन कमीशन" की घोषणा हुई। इसी समय मार्क्सवाद या समाजवादी विचारधारा का प्रभाव बढ़ा। कांग्रेस के भीतर जवाहरलाल नेहरू और सुभाष चंद्र बोस के नेतृत्व में जो "वामपंथ" उभरा उसने साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के साथ पूंजीपतियों और जमींदारों के आंतरिक वर्गीय शोषण का सवाल भी उठाया। मानवेन्द्रनाथ राय कम्युनिस्ट इंटरनेशनल (मास्को) के प्रथम भारतीय सदस्य थे। 1924 में सरकार ने मुजफ्फर अहमद, श्रीपाद अमृत डांगे और कुछ अन्य लोगों पर कम्युनिस्ट विचारों के प्रचार का आरोप लगाकर "कानपुर षडयंत्र का मुकदमा चलाया। 1925 में कम्युनिस्ट पार्टी का विधिवत गठन हुआ। 1928 में गुजरात के बारदोली में किसानों ने कर ने देने के लिए पटेल के नेतृत्व में सत्याग्रह चलाया। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस के नेतृत्व में मजदूर संघों का तेजी से विकास हुआ। सबसे बड़ी हड़ताल बम्बई के कपड़ा मिलों में हुई। इस तरह क्रांतिकारी आन्दोलन पुनः सक्रिय हो उठा।

अक्टूबर 1924 में सशस्त्र क्रांति के उद्देश्य से एक संगठन "हिंदुस्तान प्रजातंत्र संघ" नाम से स्थापित हुआ। सरकार ने इस पर कड़ा प्रतिबंध लगाते हुए बड़ी संख्या में आतंकवादी युवकों को गिरफ्तार कर उन पर "काकोरी षड़यंत्र केस" (1925) चलाया। राम प्रसाद बिस्मिल और अशफाकुल्लाह सहित चार लोगों को फांसी दी गयी। जेल से लिखी हुई बिस्मिल की आत्मकथा एक मार्मिक दस्तावेज है। समाजवादी विचारों से प्रभावित क्रांतिकारियों ने 1928 में चंद्रशेखर आजाद के नेतृत्व में अपने संगठन को नया नाम दिया : "हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ"। 30 अक्टूबर 1928 को साइमन कमीशन का विरोध करते हुए लाला लाजपत राय शहीद हुए। प्रतिशोध में 17 दिसम्बर 1928 को भगतसिंह, आजाद और राजगुरु ने लाठी चार्ज का नेतृत्व करने वाले ब्रिटिश पुलिस अधिकारी जनरल सांडर्स को गोलियों से भून दिया। 8 अप्रैल 1929 को भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने केन्द्रीय विधान सभा में एक बम जिसका उद्देश्य सिर्फ "बहरों को सुनाना" था, किसी की हत्या करना नहीं। उन्होंने जानबूझ कर अपने को गिरफ्तार कराया। वे अदालत का इस्तेमाल क्रांतिकारी विचारों के प्रचार मंच के रूप में करना चाहते थे। चटगांव (बंगाल) में अप्रैल 1930 में मास्टर सूर्यसेन के नेतृत्व में क्रांतिकारियों ने सरकारी शस्त्रागार पर छापा मारा। इस आन्दोलन में स्त्रियाँ भी शरीक थीं। देशव्यापी जनविरोध के बावजूद भगतसिंह, सुखेदव ओर राजगुरु को 23 मार्च 1931 को फांसी दी गयी। जेल से लिखे अंतिम पत्रों में भगतसिंह ने समाजवाद में अपनी आस्था प्रकट की और धर्मनिरपेक्षता का समर्थन किया। उल्लेखनीय है कि 1926 में पंजाब में भगतसिंह ने "नौजवान भारत सभा" की स्थापना की थी जिसके उद्देश्यों में साम्प्रदायिक शक्तियों का बहिष्कार भी सम्मिलित था। चंद्रशेखर आजाद 27 फरवरी 1931 को इलाहाबाद के एक पार्क में पुलिस का सामना करते हुए मारे गये। सूर्यसेन को 1933 में गिरफ्तार कर फाँसी दी गयी। अनेक क्रांतिकारियों को लम्बी सजाएँ देकर अंडमान के "सेलुलर जेल" में भेज दिया गया। मेरठ षड़यंत्र केस (1929) में पहले ही कई नेताओं को गिरफ्तार किया जा चुका था।

दिसम्बर 1928 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में गांधी जी पुनः सक्रिय राजनीति से जुड़े। जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता वाले 1929 के लाहौर अधिवेशन में "पूर्ण स्वराज्य" को कांग्रेस का लक्ष्य घोषित किया गया। 31 दिसम्बर-1929 को पहली बार स्वाधीनता का नवस्वीकृत तिरंगा झंडा फहराया गया और 26 जनवरी 1930 को पहला स्वाधीनता दिवस घोषित किया गया।

सविनय अवज्ञा आन्दोलन (1930) : दूसरा सविनय अवज्ञा आन्दोलन 12 मार्च 1930 को गांधी जी की प्रसिद्ध दांडी यात्रा के साथ शुरू हुआ। गांधी जी अपने 78 अनुयायियों के साथ गुजरात के साबरमती आश्रम से 200 किलोमीटर की पैदल यात्रा कर समुद्रतट पर स्थित दांडी ग्राम पहुंचे और 6 अप्रैल 1930 को मुट्ठी भर नमक बनाकर "नमक कानून" तोड़ा। यह जन विद्रोह का प्रतीक था। स्त्रियों ने विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया और शराब बेचने वाली दुकानों पर धरना दिया। अब आन्दोलन भारत की उत्तर पश्चिम सीमा पर पठानों तक भी पहुंचा। खान अब्दुल गफ्फार खाँ (सीमांत गांधी) के नेतृत्व में पठानों ने "खुदाई खिदमतगार" संगठन बना लिया। "लाल कुर्तीवाला" यह संगठन अहिंसा और स्वाधीनता संघर्ष के प्रति समर्पित था। आन्दोलन की चमक पूर्वी हिस्सों तक भी पहुंची। नागालैंड की वीर बाला रानी गिगल् ने 13 वर्ष की अल्पायु में गांधी जी की प्रेरणा से ब्रिटिश शासन का विरोध किया। 1932 में इस वीरांगना को आजीवर कारावास की सजा दी गयी। उसे अंधेरी काल कोठरी से मुक्ति मिली—1947 में ही—भारत के स्वतंत्र होने पर।

आन्दोलन के उभार के दौर में कांग्रेस को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया। समाचार पत्रों पर कड़ा सेंसर लगा कर उनकी स्वतंत्रता सीमित की गयी। मार्च 1931 में गांधी जी और वायसराय लार्ड इर्विन के बीच समझौते के फलस्वरूप कांग्रेस सविनय अवज्ञा आन्दोलन रोकने पर सहमत हो गयी। गांधी जी दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने 1931 में इंग्लैंड गये पर उनकी जोरदार अपील के बावजूद ब्रिटिश सरकार ने भारत को "डोमिनियम स्टेट्स" का दर्जा देने से इनकार कर दिया। इधर भारत में विश्वव्यापी मंदी के फलस्वरूप कृषि पैदावारों के मूल्य गिरे गये। दिसम्बर 1930 में कांग्रेस ने "न लगान न टैक्स" का अभियान चलाया। सरकारी दमन जारी था। सविनय अवज्ञा आन्दोलन फिर कमजोर हुआ।

कांग्रेस ने मई 1934 में उसे वापस ले लिया। गांधी जी फिर सक्रिय राजनीति से अलग हुए। राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं में निराशा फैली।

1932 में कांग्रेस की उपस्थिति के बगैर लंदन में तीसरा गोलमेज सम्मेलन हुआ। 1935 के भारत सरकार अधिनियम में एक भारतीय संघ में प्रांतीय स्वतंत्रता और केन्द्र में द्वि-सदनात्मक विधायिका की व्यवस्था थी। जुलाई 1937 में ग्यारह में से सात प्रांतों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल बने। कांग्रेस ने दो प्रांतों में सांझी सरकारें बनायीं। 1938 में कांग्रेस ने रूसी पद्धति पर आर्थिक योजना का विचार स्वीकार किया। 1942 में गांधी जी ने घोषणा की—"जमीन उनकी है जो उस पर मेहनत करते हैं।" यहाँ कुछ और तथ्य उल्लेखनीय हैं—1934 में आचार्य नरेन्द्र देव और जय प्रकाश नारायण ने कांग्रेस समाजवादी पार्टी का गठन किया। 1935 के बाद कम्युनिस्ट पार्टी का नेतृत्व और सांस्कृतिक क्षेत्र में कम्युनिस्ट विचारों का प्रचार प्रसार पूरन चंद्र जोशी के हाथ में आया। 1936 में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ स्थापित हुआ। 1938 में—सुभाष चंद्र बोस कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। वर्किंग कमेटी में विरोध के कारण उन्होंने 1939 में इस्तीफा दिया और "फारवर्ड ब्लाक" की स्थापना की। 1936 में लखनऊ में स्वामी सहजानंद सरस्वती की अध्यक्षता में पहला अखिल भारतीय किसान सम्मेलन हुआ। प्रेमचंद, निराला जैसे लेखक किसान आन्दोलन की भूमिका को महत्वपूर्ण बता रहे थे।

यह एक दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि जिन्ना के नेतृत्व में मुस्लिम लीग ने हिन्दू-मुसलमान भेद के आधार पर द्विराष्ट्र सिद्धान्त का समर्थन किया। उधर हिन्दू सम्प्रदायवादी (हिंदू महा सभा और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ) भी भारत को हिन्दुओं का देश बता रहे थे। सितम्बर 1939 में दूसरा विश्वयुद्ध शुरू हुआ। हिटलर के नेतृत्व में नाजी जर्मनी ने पौलेंड पर आक्रमण कर दिया। भारत की विदेशी सरकार राष्ट्रीय कांग्रेस के परामर्श के बिना ही युद्ध में शामिल हो गयी। प्रतिक्रिया में सभी कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने इस्तीफा दे दिया। अक्टूबर 1940 में गांधी जी ने व्यक्तिगत सत्याग्रह चलाने का आग्रह किया। इसमें विनोबा भावे आगे आये। दिसम्बर 1941 में अमरीका पर आक्रमण कर जापना भी जर्मनी-इटली की ओर से युद्ध में शामिल हो गया। शीघ्र ही उसने फिलीपीन, हिंद चीन, इंडोनेशिया, मलाया और बर्मा पर अधिकार कर लिया। और मार्च 1942 में रंगून पर अधिकार करके युद्ध को भारत की सीमाओं तक पहुंचा दिया। कांग्रेसी नेताओं ने जापानी आक्रमण की निंदा करते हुए कहा कि यदि ब्रिटेन तत्काल प्रभावी शक्ति भारतीयों को सौंप दे और युद्ध के बाद पूर्ण स्वाधीनता का वचन दे तो वे भारत की रक्षा के लिए सहयोग देने को तैयार हैं। ब्रिटिश सरकार ने क्रिप्स के नेतृत्व में मार्च 1942 में एक मिशन भारत भेजा पर क्रिप्स मिशन और कांग्रेस के बीच बातचीत विफल हुई।

भारत छोड़ो आन्दोलन 1942

1942 में जापान की जीत के भय से जनता में चिंता व्याप्त थी पर गांधी जी का तेवर अधिक उग्र हुआ। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की 8 अगस्त 1942 को बम्बई में हुई बैठक में प्रसिद्ध "भारत छोड़ो" प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। गांधी जी ने "करो या मरो" का नारा दिया और कहा—"मैं पूर्ण स्वाधीनता से कम किसी चीज से संतुष्ट होने वाला नहीं हूं।" 9 अगस्त 1942 को गांधी जी तथा अन्य बड़े नेता गिरफ्तार कर लिये गये। कांग्रेस फिर गैरकानूनी घोषित हुई। जन आन्दोलन पूरे देश में तीव्रतर हो गया। स्कूलों कालेजों में हड़तालें, व्यापक प्रदर्शन, फायरिंग, दमन-चक्र और तेज हुआ। संयुक्त प्रांत, बिहार, बंगाल, उड़ीसा, आंध्र, तमिलनाडु, महाराष्ट्र के अनेक भागों में ब्रिटिश शासन प्रभावहीन हो गया। क्रांतिकारियों ने अनेक जगहों पर समानांतर सरकारें बना लीं। इस जन विद्रोह के मुख्य आधार थे—छात्र, मजूदर और किसान। आन्दोलन को अब भी निर्मम दमन चक्र चलाकर दबा दिया गया पर अब इतना साफ था कि जनता की इच्छा के बिना शासन चला पाना ब्रिटिश सरकार के लिए असंभव है।

मार्च 1941 में सुभाषचंद्र बोस सोवियत संघ, जर्मनी होते हुए 1943 में जापान पहुँचे ताकि जापानी सहायता प्राप्त कर ब्रिटिश शासन के विरुद्ध संघर्ष चला सकें। उन्होंने रास बिहारी बोस की मदद से सिंगापुर में "आजाद हिन्द फौज" गठित की और "जयहिन्द" का मंत्र

दिया। बर्मा से भारत पर आक्रमण करते हुए उन्होंने जापान का साथ दिया। आजाद हिन्द फौज को आशा थी कि वे स्वतंत्र भारत की अस्थायी सरकार का प्रमुख सुभाष चंद्र बोस को बनाकर भारत में मुक्तिदाताओं के रूप में प्रवेश करेंगे। 1945 में जापान की हार के बाद आजाद हिन्द फौज भी पराजित हुई और सुभाष बोस टोकियो जाते हुए एक वायुयान दुर्घटना के शिकार हो गये।

अप्रैल 1945 में यूरोप में युद्ध समाप्त होने के बाद भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन ने एक नये दौर में प्रवेश किया। सरकार ने लाल किला दिल्ली में आजाद हिन्द फौज के तीन अधिकारियों शाहनवाज खां, गुरुदयाल सिंह ढिल्लो और प्रेम सहगल पर देशद्रोह का आरोप लगा कर उन्हें अपराधी घोषित किया। उनकी रिहाई के लिए विशाल जन प्रदर्शन हुए। फरवरी 1946 में बम्बई में भारतीय नौ सेना का प्रसिद्ध विद्रोह हुआ। ब्रिटेन के स्थान पर उभरी नई शक्तियों अमरीका, सोवियत संघ ने भारत की स्वतंत्रता का समर्थन किया। ब्रिटेन में भी लेबर पार्टी सत्ता में आयी जिसके अनेक सदस्य कांग्रेस की माँगों के समर्थक थे। अंग्रेजों ने जून 1948 तक भारत छोड़ने का निश्चय किया। 1946 के बाद ही हिन्दू-मुसलमानों के बीच साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे। मार्च 1947 में लार्ड माउंटबैटन भारत के वायसराय बनकर आये। उन्होंने दोनों सम्प्रदायों के नेताओं से बातचीत के क्रम में अन्ततः यह हल निकाला कि भारत स्वतंत्र तो होगा पर खंडित होकर। भारत के साथ ही पाकिस्तान एक स्वतंत्र राष्ट्र होगा। देशी रजवाड़ों को किसी भी देश में सम्मिलित होने की छूट दी गयी। गृहमंत्री वल्लभ भाई पटेल की कूटनीति के कारण अनेक देशी राज्यों ने भारत का अंग बने रहना ही स्वीकार किया। जूनागढ़ के नवाब, हैदराबाद के निजाम, कश्मीर के महराजा ने आनाकानी की पर अन्ततः सैनिक हस्तक्षेप और जनमत के दबाव पर उन्होंने भारत में रहना ही स्वीकार किया।

अन्ततः भारत ने 15 अगस्त 1947 को पहला स्वतंत्रता दिवस मनाया। यह एक लम्बे संघर्ष का अन्त था और समस्याओं से घिरे एक नये युग का आरंभ। 14 अगस्त की आधी रात को जवाहरलाल नेहरू ने ऐतिहासिक सम्बोधन में कहा था—"मध्यरात्रि को जब बारह का घंटा बजेगा और सारी दुनिया सो रही होगी तब भारत नये जीवन और स्वतंत्रता की ओर अग्रसर होगा...। आज हम एक दुर्भाग्यपूर्ण अवधि को समाप्त कर रहे हैं...भारत को अपने महत्व की अनुभूति हो रही है! आज हम जिस उपलब्धि की खुशी मना रहे हैं वह निरन्तर प्रयासों का फल है...।" अभी सबसे कठिन दुर्भाग्य का सामना भारत को करना ही था। भारतीय जीत के लिए इस कलंक से मुक्ति कठिन है कि एक धर्मांध हिन्दू हत्यारे ने महात्मा गांधी को ही गोलियों का निशाना बनाया जिनके लम्बे संघर्ष से हमने यह मूल्यवान आजादी हासिल की थी।

बोध प्रश्न

4) 1866 और 1876 के बीच स्थापित तीन संगठनों के नाम लिखिए जिनका स्वाधीनता आन्दोलन के इतिहास में विशेष महत्व है:

   क) .....

   ख) .....

   ग) .....

5) राष्ट्रवादियों ने साम्राज्यवाद के किस पक्ष के विश्लेषण पर सबसे पहले जोर दिया? (√) का चिन्ह लगायें :

   क) सामाजिक

   ख) आर्थिक

   ग) नैतिक ( )

6) बंगाल को विभाजित करने के पीछे ब्रिटिश सरकार का क्या उद्देश्य था? रिक्त स्थान में लिखें:

   .....

7) राजनीतिक स्वतंत्रता किसी भी राष्ट्र की प्राणवायु है—किसका कथन है? (√) चिन्ह से निर्दिष्ट करें :

क) रवीन्द्रनाथ ठाकुर

ख) भगतसिंह

ग) अरविन्द घोष

घ) बंकिम चंद्र

8) खिलाफत आन्दोलन के तीन प्रमुख नेताओं के नाम बताइए :

क) .....

ख) .....

ग) .....

9) समाजवादी विचारों से प्रभावित क्रान्तिकारियों का संगठन इनमें से कौन था?

क) अभिनवभारती

ख) हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातंत्र संघ

ग) हिन्दुस्तान प्रजातंत्र संघ

घ) गदर पार्टी ( )

10) स्वाधीनता का नवस्वीकृत तिरंगा झंडा पहली बार कब फहराया गया ? (√) चिन्ह से निर्दिष्ट करें :

क) 1942

ख) 1929

ग) 1947

11) निम्नलिखित संगठन/सम्मेलन का स्थापना समय लिखिए :

क) अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ.....

ख) पहला अखिल भारतीय किसान-सम्मेलन.....

ग) आजाद हिन्द फौज.....

अभ्यास

1) कांग्रेस की स्थापना का उद्देश्य क्या था और क्या अंग्रेज उस उद्देश्य में सफल हुए?

.....

.....

.....

.....

2) स्वतंत्रता आंदोलन में समाजवादी विचारों का प्रवेश कब हुआ और उसने क्या प्रभाव डाला?

.....

.....

.....

.....

3) आपके विचार में देश का विभाजन क्यों हुआ?

.....

.....

2.4 स्वाधीनता आंदोलन का व्यापक परिप्रेक्ष्य

स्वाधीनता आंदोलन महज एक राजनीतिक आंदोलन नहीं था। इसने हमारे जीवन के प्रायः सभी पक्षों पर गहरा असर छोडा। राजनीति के साथ-साथ सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रश्नों पर भी इस अवधि में गहरा मंथन चला और हमने इन सभी क्षेत्रों में नयी दिशाएँ ग्रहण कीं, नये आदर्श स्वीकार किये। आइए, स्वाधीनता आंदोलन के इस व्यापक परिप्रेक्ष्य पर विचार करें।

2.4.1 संदर्भ : संस्कृति और समाज

स्वाधीनता संघर्ष तथा नव जागरण के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक भारतीय संस्कृति का विश्लेषण करने वालों ने यूरोप के आधुनिक सांस्कृतिक जागरण और भारतीय सांस्कृतिक जागरण में यह मौलिक भेद बताया है कि यहाँ का सांस्कृतिक जागरण औपनिवेशिक मानसिकता से टकराकर ही विकसित हुआ। पहले चरण के सांस्कृति जागरण में अस्मिता की तलाश मुख्य थी। फिर उसी ने राजनीतिक जागरण के लिए जमीन तैयार की। भारत में संस्कृति राजनीति के बीच सकर्मक सम्बन्ध बना। रवीन्द्रनाथ ठाकुर भारत के आधुनिक पुनर्जागरण को पश्चिम की आधुनिक दृष्टि से जोड़कर देखते थे पर यहाँ के स्वाधीनता आन्दोलन तथा सांस्कृतिक जागरण में घनिष्ठ सम्बन्ध भी मानते थे।

अठारहवीं शताबदी के बाद जब भारत के राजाओं का प्रभुत्व समाप्त हो गया और वे अंग्रेजों के साम्राज्यवादी शासन में आ गये, भारतीय कला के लिए बहुत संभावनाएँ शेष न थीं। चित्रकला, मूर्तिशिल्प, स्थापत्य अब बहुत कुछ खंडहरों में स्मृति चिन्ह की तरह थे। विदेशी शासन में जो शैक्षणिक संस्थाएं बनीं वे ब्रिटिश रायल एकेडेमी को ही आदर्श मानती थीं। 19वीं शताब्दी के अंत में जब भारत एक राष्ट्र के रूप में उभरा तो कला की शैलियों में राष्ट्रीय आकांक्षाओं के अनुरूप परिवर्तन घटित हुआ। कला की लोकोन्मुख और स्थानीयता इसी के उदाहरण हैं। 19वीं शताब्दी में अजन्ता के भित्तिचित्रों, अजन्ता के गुफा मंदिरों के मूर्तिशिल्प का पता चला। नंदलाल बोस जैसे चित्रकारों ने उनसे सीधी प्रेरणा ली। दक्षिण में राजा रवि वर्मा भारतीय पौराणिक कथाओं को अपनी चित्रकला में ढाल रहे थे। बंगला शैली (रवीन्द्रनाथ, अवनीन्द्रनाथ ठाकुर) की कला का इतिहास स्वाधीन चेतना के स्पर्श से भरा पुरा है। अमृता शेरगिल की स्थानीयता आधुनिकता को एक नया परिप्रेक्ष्य देती है।

राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से जो मूल्य विकसित हुए उनका संस्कृति और समाज रचना पर व्यापक प्रभाव पड़ा। वे मूल्य थे—साम्राज्यवाद—उपनिवेशवाद-विरोध, राष्ट्रीयता देशप्रेम, आर्थिक सामाजिक शोषण का विरोध, जनतंत्र, समाजवाद, साम्प्रदायिकता—विरोधी धर्मनिरपेक्ष चेतना। भारतेन्दु के समय में स्वाधीन चेतना की अभिव्यक्ति के लिए व्यंग्य प्रधान अभिव्यक्ति—रूपों या शैलियों का उपयोग किया गया। आगे स्वच्छन्दतावाद, देश-प्रेम, प्रकृति प्रेम, राष्ट्रीयता से लगाव को महत्वपूर्ण मानकर शैली और अंतर्वस्तु के रूप में उभरा। हिन्दी छायावादी कवियों में प्रसाद, पंत, निराला में अपने ढंग की स्वाधीन चेतना मौजूद है। प्रसाद के नाट्यगीत (हिमाद्री तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती या अरुण यह मधुमय देश हमारा) इसी स्वाधीन चेतना को व्यक्त करते हैं पंत ने "भारत माता ग्रामवासिनी" लिखकर ग्रामीण संस्कृति के बीच इस स्वाधीन चेतना का मूर्त रूप देखा। निराला के यहाँ स्वाधीन होने का अर्थ ही है निर्भय होना। यह दृष्टि स्वाधीनता-संघर्ष के अनुभवों से ही विकसित हुई थी। "भारति जय विजय करे" कविता भारती के दुहरे रूपों को व्यक्त करती है जिसमें एक "सरस्वती" वाला रूप भी है। जागरण की चेतना इसी स्वाधीन चेतना का सहजीवी भाव है। "जागो फिर एक बार" जैसी कविताएँ इसे प्रभावित करती हैं। प्रकृति में भी प्रभाती विषय कविताएँ इसी जागरण का

संकेत देती हैं। स्वाधीनता संघर्ष के क्रम में किसानों का संघर्ष, सत्याग्रह आदि संदर्भ प्रेमचंद के उपन्यासों से भरे पड़े हैं।

स्वाधीनता की चेतना को पूरे समाज तक फैलाने के प्रयत्न में लेखक राजनीतिक कार्यकर्त्ता, इतिहासकार, पत्रकार, समाज वैज्ञानिक साथ थे। "स्वदेश", "कर्मवीर" "प्रताप" जैसी पत्रिकाएँ इस चेतना को वृहत्तर पाठक समुदाय तक ले जाने के प्रयत्न में शामिल थीं। नर्तक उदयशंकर भी स्वाधीन चेतना की अभिव्यक्ति के लिए कवि पंत के साथ एक नये तरह का संवाद स्थापित कर रहे थे। लोकगायकों ने लोकगीतों में बार-बार आन्दोलन का स्वर भरा।

2.4.2 संदर्भ : आधुनिक भारतीय साहित्य

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत और बीसवीं शताब्दी के आरंभ में असमिया के लक्ष्मीनाथ बेजबरूआ, हेमचंद्र गोस्वामी जैसे लेखक उसी राष्ट्रीय चेतना को वहन कर रहे थे जिसक अपने समय के नवजागरण से गहरा सम्बन्ध था। बंगला उपन्यासकार बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति के लिए एक प्रकार की जातीय चेतना और स्वच्छन्दता देशप्रेम के मिश्रित अनुभव को इस प्रकार व्यक्त कर रहे थे कि जब तक वहाँ हिन्दू राष्ट्रीयता पर अतिरिक्त बल दिखाई देता था। रवीन्द्रनाथ का उदय इन्हीं परिस्थितियों के बीच हुआ पर वे परम्परा के अधिक गहरे साहचर्य में स्वाधीन चेतना की अधिक आधुनिक परिकल्पना को रूप और आकार दे सके। "निझरिर स्वप्न भंग" कविता इसी मानसिकता को व्यक्त करती है।

गुजराती साहित्य में गांधी जी के राजनीतिक संघर्ष की छाप अधिक गहरी है। अफ्रीका से गांधी जी की वापसी के साथ पूरे भारतीय मानस में जो उद्वेलन था उसकी गहरी छाप गुजराती के आधुनिक साहित्य में है। रूसी क्रांति जैसी घटनाओं ने भी इस राष्ट्रीय भावना को उभारने में योग दिया। झवेर चंद मेघाणी, पन्नालाल पटेल की कृतियाँ अपने भीतर इसी चेतना को छिपाये हुए हैं। मैथिलीशरणगुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर, नवीन, सुभद्राकुमारी चौहान की कविताएँ स्वाधीनता आन्दोलन में प्रकट जन आकांक्षाओं को व्यक्त करती हैं। क्रांति या विप्लव का स्वर इनमें साफ सुना जा सकता है। इमानदार और कट्टिमनी के उपन्यासों में "भारत छोड़ो" आन्दोलन की गूंज मौजूद है। विश्वमानवता का संदेश भी यहीं इसी आन्दोलन की प्रेरणा से उभरा। वल्लतोल, कुमारा आशान की मलयालम रचनाएँ इसी चेतना से अनुप्राणित हैं। तमिल के सुब्रमण्यम भारतीय इस चेतना के प्रमुख संदेशवाहकों में हैं। केशवसुत की कविताएँ, हरिनारायण आप्टे के उपन्यास इस स्वाधीन चेतना को व्यक्त करने में सक्षम हैं। उड़िया कथाकार फकीर मोहन सेनापति ने "छः बीघा जमीन" नामक उपन्यास में बुनकरों और किसानों की जिन्दगी से परिचित कराते हुए एक युग की सामाजिक वास्तविकता की ओर ध्यान आकृष्ट किया। ब्रिटिश उपनिवेशवाद और पश्चिम के प्रभाव से पंजाब अधिक समय तक मुक्त रह सका अतः नव जागरण की चेतना भी वहाँ देर से आयी। भाई वीर सिंह जैसे कवि इस चेतना के वाहक बने। हाली का 'मुसद्दस' उदाहरण है कि राष्ट्रीय चेतना सामाजिक जागृति से घुली मिली चीज है। स्वाधीनता आन्दोलन का क्योंकि अपने आप में एक अखिल भारतीय संदर्भ है इसलिए स्वाभाविक है कि उसका प्रतिबिम्ब समूचे भारतीय साहित्य में मौजूद है।

बोध प्रश्न

12) यूरोप के आधुनिक सांस्कृतिक जागरण और भारतीय सांस्कृतिक जागरण में मौलिक भेद क्या है? रिक्त स्थान में लिखें।

13) राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से विकसित ऐसे मूल्यों का उल्लेख करें जिनका आधुनिक भारतीय समाज और संस्कृति पर व्यापक प्रभाव पड़ा :

क) .....

क) .....

ग) .....

घ) .....

14) स्वाधीन चेतना को अभिव्यक्ति देने वाले, निम्नलिखित भाषाओं के, एक-एक प्रतिनिधि तथा महत्वपूर्ण लेखक का नामोल्लेख करें :

क) बंगला

ख) तमिल

ग) गुजराती

घ) हिन्दी

15) निम्नलिखित रचनाओं के लेखकों के नाम लिखें :

क) निर्झरिर स्वप्न भंग : .....

ख) छह बीघा जमीन : .....

अभ्यास

4) राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का हमारे सांस्कृतिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा?

.....

.....

.....

.....

2.5 मूल्यांकन

इस इकाई को अंत तक पढ़ते हुए हम अनुभव कर सकते हैं कि भारतीय साहित्य में आधुनिकता का उदय अचानक नहीं हुआ। स्वाधीनता आन्दोलन के अभाव में हमारी इस ठेठ देसी आधुनिक दृष्टि की कल्पना नहीं की जा सकती। स्वाधीनता आन्दोलन के समानान्तर ही साहित्य में आधुनिक दृष्टि के लिए, आधुनिकता की पहचान और प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष चलता रहा है। यह एक सच्चाई है कि स्वाधीनता आन्दोलन का परिप्रेक्ष्य व्यापक था। यह संघर्ष कई स्तरों, कई मोर्चों पर चल रहा था। समाज के सभी वर्गों, समुदायों की हिस्सेदारी इसमें बढ़ती गयी। स्त्री शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ ही स्त्रियाँ इस आन्दोलन में आगे आयीं। इससे सामंती सम्बन्ध रचना पर स्पष्ट प्रभाव पड़ा। साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में इसने हमारे कलाबोध और सौन्दर्यबोध को प्रभावित किया। छात्र, किसान, मजदूर आगे चलकर ये सभी आन्दोलन को तेज करने में सहायक हुए। इस व्यापक आन्दोलन के मूल में था उपनिवेशवाद विरोध। यह आन्दोलन आधुनिक धर्मनिरपेक्ष जनतांत्रिक राष्ट्रवादी दृष्टिकोण का परिणाम था। स्वाधीनता आन्दोलन ने भारतीय साहित्य की अपनी अस्मिता की पहचान करायी। बंकिम, रवीन्द्रनाथ, सुब्रमण्यम भारती, प्रेमचंद का साहित्य इसी आन्दोलन से ऊर्जा और स्फूर्ति ग्रहण कर रहा था। इस आन्दोलन में गांधी जी का प्रवेश एक नये युग के उदय का संकेत है। गांधी जी व्यक्तित्व आन्दोलन को जन चरित्री बनाने में दूर तक प्रेरक सिद्ध हुआ।

सार्थकता का आकलन : आज के संदर्भ में :

आज जब राष्ट्रीय एकता की मूल धारा जहाँ-तहाँ अलगाववादी तत्वों से बाधित होती है, इस वृहत्तर राजनीतिक–सांस्कृतिक आन्दोलन की याद एक मूल्यवान विरासत की याद की तरह उपयोगी होगी। जवाहरलाल नेहरू ने "आत्मकथा" में कहा था : *"सच्ची संस्कृति को दुनिया के हर कोने से प्रेरणा मिलती है, लेकिन वह अपनी ही जगह पर उगती है और उसकी जड़ें सारी जनता में समायी रहती हैं।"* भारत का स्वाधीनता आन्दोलन बाहर से भी प्रेरणाएँ ग्रहण कर रहा था पर उसकी जड़ें अपनी ही भूमि में दूर तक गयी थीं। देश की समूची जनता धर्म और भाषा से परे उसमें शरीक थी। इस इकाई के अध्ययन से हम एक स्वाधीन राष्ट्र के रूप में अपनी समस्याओं को ठीक–ठीक समझ सकेंगे। और पश्चिमी आधुनिकता के फलस्वरूप आधुनिक साहित्य में अयी हुई शैलियों की सीमाओं के विरुद्ध देसी लोकोन्मख साहित्यिक उपलब्धियों को समझने की दृष्टि पा सकेंगे।

इस इकाई को आज के संदर्भ में पढ़ने से कुछ सवाल भी हमारे दिमाग में उठेंगे—जैसे, इतने लम्बे स्वाधीनता—संघर्ष से गुजर कर भी हमारे यहाँ मूल्यों या मूल्यों के व्यवहार में सामंती अवशेष क्यों कायम है? जिस जातिगत संकीर्णतावाद और सांप्रदायिकता का विरोध आन्दोलन का एक आवश्यक मुद्दा था, वह अब तक क्यों नहीं निर्मूल हो सका है? आज भी दलित साहित्य को एक स्वतंत्र धारा के रूप में क्यों पहचान बनानी पड़ रही है? सांप्रदायिकता का विष इतना फैल गया है कि भारत में फासीवाद के उभरने का खतरा पैदा हो गया है। उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का दबाव खत्म नहीं हुआ है पर उसके प्रतिरोध के लक्षण समकालीन साहित्यिक-सांस्कृतिक परिदृश्य से क्यों गायब हैं? क्या यह एक विडम्बनापूर्ण सच्चाई नहीं है कि जिस देश ने 1905 में बंगभंग का प्रस्ताव ठुकरा दिया था उसने 1947 में देश का विभाजन स्वीकार कर लिया? क्या इससे हमारा आधुनिक भारतीय साहित्य कोई नयी चुनौती अनुभव नहीं करता?

बोध प्रश्न

16) भारतीय आधुनिकता को प्रभावित करने वाला सबसे महत्वपूर्ण संदर्भ क्या है?

.....

17) स्वाधीनता आंदोलन में शिक्षित स्त्रियों के आगे आने से साहित्य पर क्या प्रभाव पड़ा?

.....

18) भारतीय स्वाधीनता आंदोलन की जड़ें कहा थीं?

.....

अभ्यास

5) राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन से हम क्या-क्या सीख सकते हैं?

.....

.....

.....

.....

2.6 सारांश

- हिंदी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम-5 की इस दूसरी इकाई में आपने राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के इतिहास से परिचय प्राप्त किया। आपने जाना कि भारत में अंग्रेजों का शासन किन परिस्थितियों में स्थापित हुआ। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम का क्या महत्व है और भारतीयों ने कांग्रेस की स्थापना से पूर्व अपने अधिकारों के लिए कौन-कौन से संगठन बनाए। आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद की यह पृष्ठभूमि है।
- 1885 में कांग्रेस की स्थापना के साथ स्वाधीनता के लिए संगठित प्रयास शुरू हुआ। आरंभ में कांग्रेस के नेताओं ने अंग्रेजों के प्रति नरम रूख अपनाकर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष किया परंतु उसकी असफलता देखकर बालगंगाधर तिलक जैसे नेताओं ने संघर्ष का उग्र रास्ता अपनाया। भारतीय राष्ट्रवाद की रीढ़ तोड़ने के लिए अंग्रेजों ने 1905 में बंगाल का विभाजन कर दिया लेकिन जनता के लगातार प्रतिरोध के कारण 1911 में विभाजन समाप्त करना पड़ा।
- स्वतंत्रता आंदोलन में महात्मा गांधी का आगमन एक महत्वपूर्ण घटना है जिन्होंने स्वतंत्रता के आंदोलन को मध्यवर्ग से निकालकर आम जनता तक पहुँचाया। गांधी जी के नेतृत्व में भारतीय जनता स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करती रही और अंग्रेज अपना दमन चक्र चलाते रहे। 1919 के जलियांवाला बाग का हत्याकांड अंग्रेजों के दमन की पराकाष्ठा था।

- कांग्रेस के जन आंदोलनों के साथ-साथ आजादी के लिए क्रांतिकारी गतिविधियां भी जारी रहीं। भगत सिंह, चन्द्रशेख आजाद, अशफाकुल्ला खां इनमें अग्रगणी थे। 1930 के आसपास ही सोवियत क्रांति के प्रभाव में समाजवादियों और कम्युनिस्टों का प्रभाव बढ़ा। किसानों, छात्रों, मजदूरों के अखिल भारतीय संगठन बने। कांग्रेस की नीतियों में भी वामपंथी रूझान पैदा हुआ।
- द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व के बदलने राजनीतिक परिदृश्य तथा जन आंदोलनों के व्यापक होते स्वरूप के कारण ब्रिटेन भारत को स्वतंत्रता देने के लिए विवश हुआ लेकिन हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिकता के कारण यह स्वतंत्रता देश के विभाजन के साथ मिली। सांप्रदायिक वैमनस्य के कारण दबे हुए और एक हिंदू उग्रवादी ने महात्मा गांधी की हत्या कर दी।
- राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन ने हमारे सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक जीवन पर भी गहरा असर डाला। इस दौर के साहित्य और कला पर, विभिन्न अनुशासनों पर और हमारे संपूर्ण सोच पर स्वाधीनता आंदोलन का व्यापक प्रभाव पड़ा। यद्यपि आज हम फिर एक नये राष्ट्रीय संकट से गुज रहे हैं और हमारी स्वाधीनता, धर्मनिरपेक्षता और लोकतंत्र पर सांप्रदायिकता व फासीवाद की काली छाया मंडरा रही है। आशा है इकाई को पढ़कर आप उपर्युक्त सभी पहलुओं को अपने शब्दों में व्यक्त कर सकेंगे।

2.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

विपन चंद्र, अमलेश त्रिपाठी, बरूण डे : *स्वंतंत्रता संग्राम*, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

विपन चंद्र : *भारत का स्वाधीनता संघर्ष*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन विदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय

रामलखनशुक्ल (संपादन) : *आधुनिक भारत का इतिहास*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय

ए.आर. देसाई : *भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिके पृष्ठभूमि*, मैकमिलन इंडिया लि. दिल्ली

रजनी पाम दत्त : *आज का भारत*, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस

2.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) (ख)
2) (ख)
3) (ग)
4) क) ईस्ट इंडिया एसोसिएशन, ख) इंडियन एसोसिएशन, ग) पूना सार्वजनिक सभा
5) ख) √
6) राष्ट्रवाद के प्रसार को नियंत्रित करना।
7) ग √
8) क) मुहम्मद अली; ख) मोलाना आजाद, ग) हसरत मोहानी
9) ख,
10) ख √
11) क) 1936, ख) 1936, ग) 1943

12) भारत का सांस्कृतिक जागरण औपनिवेशिक मानसिकता से टकराकर ही विकसित हुआ।

13) क) साम्राज्यवाद-उपनिवेशवाद विरोध, ख) जनतंत्र, ग) समाजवाद, घ) राष्ट्रीयता

14) क) रवीन्द्रनाथ ठाकुर, ख) सुब्रमण्यम भारती, ग) झवेरचंद मेघाणी, घ) मैथिलीशरण गुप्त

15) क) रवीन्द्र नाथ ठाकुर, ख) फकीर मोहन सेनापति

16) स्वाधीनता आंदोलन

17) साहित्य के सौंदर्यबोध और संबंध भावना पर प्रभाव पड़ा।

18) अपनी भूमि और अपनी जनता में।

अभ्यास

1) कांग्रेस की स्थापना के पीछे अंग्रेजों का उद्देश्य राष्ट्रीय कांग्रेस को प्रोत्साहन देते हुए शिक्षित भारतीयों के विरोध को शांत रखना परंतु अंग्रेज इस प्रयास में सफल नहीं हुए। आरंभ में अंग्रेजी सत्ता से वे अपने अधिकारों के लिए आवेदन करते रहे परंतु बीसवीं सदी के आरंभ से ही कांग्रेस एक व्यापक जन आंदोलन का रूप लेने लगी।

2) 1917 की सफल बोल्शेविक क्रांति का असर सारी दुनिया पर पड़ा। भारत में भी 1930 के आसपास समाजवादी विचारों का प्रभाव दिखाई देने लगता है। 1925 में कम्युनिस्ट पार्टी की स्थापना हुई। कांग्रेस में समाजवादी मंच बना। किसानों, मजदूरों, छात्रों के अखिल भारतीय संगठन बने। इनका असर कांग्रेस की नीतियों पर भी पड़ा। कांग्रेस ने पहली बार सामंत विरोधी भूस्वामी विरोधी प्रस्ताव पारित किये। रियासतों में चलने वाले जन आंदोलन को समर्थन दिया। समाजवादी राज्य स्थापित करने की बातें कांग्रेस मंचों से की जाने लगी।

3) देश के विभाजन का कारण सांप्रदायिक संगठनों की भूमिका और साम्राज्यवाद की फूटपरस्त नीति थी। मुस्लिम लीग ने द्विराष्ट्र का सिद्धांत रखा तो हिंदू महासभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ आदि ने भारत को हिंदू राष्ट्र मानने पर बल दिया। सांप्रदायिक वैमनस्य ने दंगों को जन्म दिया और इस स्थिति का लाभ साम्राज्यवाद ने उठाया। अंग्रेजों ने भारत के दो टुकड़े कर दिये।

4) देखिए उपभाग 2.4.1

5) स्वयं लिखिए।

इकाई 3 नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का विकास

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 भारतीय नवजागरण की पृष्ठभूमि
3.3 नवजागरण की अवधारणा
  3.3.1 नवजागरण और पुनर्जागरण
  3.3.2 नवजागरण, पुनरुत्थान और सामाजिक सुधार
3.4 यूरोपीय नवजागरण की विशेषता
3.5 भारतीय परिस्थितियों में नवजागरण की स्थिति
  3.5.1 मध्ययुगीनता की समाप्ति
  3.5.2 औपनिवेशिक पराधीनता और पूंजीवादी विकास
  3.5.3 ब्रिटिश शासन और अंग्रेजी शिक्षा
3.6 विभिन्न धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलनों की भूमिका
3.7 राष्ट्रीय चेतना से अभिप्राय
  3.7.1 एक राष्ट्र के रूप में भारत का विकास
  3.7.2 उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष
3.8 नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का अंतःसंबंध
3.9 सारांश
3.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
3.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

3.0 उद्देश्य

यह ऐच्छिक पाठ्यक्रम-5 के पहले खंड की तीसरी इकाई है। इसमें आप भारतीय नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के विकास से संबंधित जानकारी प्राप्त करेंगे। इस इकाई में हम नवजागरण के स्वरूप और भारतीय नवजागरण की विशेषताओं के साथ ही राष्ट्र और राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप से भी आपको परिचित करवाएंगे। इस इकाई के पढ़ने के बाद आप :

- नवजागरण और पुनरुत्थान में अंतर बता सकेंगे;
- नवजागरण और पुनर्जागरण का आशय स्पष्ट कर सकेंगे;
- यूरोपीय नवजागरण और भारतीय नवजागरण में परिस्थितिगत अंतर कर सकेंगे;
- आधुनिकता और मध्ययुगीनता के अंतर को बता सकेंगे;
- नवजागरण के प्रमुख कारणों को बता सकेंगे;
- राष्ट्रीयता के उदय के कारणों को स्पष्ट कर सकेंगे;
- राष्ट्र और राष्ट्रीय चेतना के स्वरूप को स्पष्ट कर सकेंगे, तथा
- नवजागरण और राष्ट्रीयता की चेतना में समानता और अंतर को बता सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व आपने ऐच्छिक पाठ्यक्रम-5 के खंड-1 की पहली और दूसरी इकाई का अध्ययन कर लिया है। खंड-1 की पहली इकाई "आधुनिक युग की भूमिका" में आधुनिक युग के

आरंभ, उसकी विशेषताओं, मध्यकाल से उसके अंतर आदि की जानकारी आपने प्राप्त कर ली हैं। पहली इकाई में आप को आधुनिक साहित्य की अवधारणा और उसके वास्तविक आशय से भी अवगत करा दिया गया है। जिन राजनीतिक एवं सांस्कृतिक-सामाजिक कारणों से आधुनिक युग अस्तित्व में आया, उन्हीं कारणों ने आधुनिक भारतीय साहित्य को भी जन्म दिया—इस बात से भी आप पहली इकाई में ही परिचित हो चुके हैं। आप आधुनिक युग की मूल संवेदना नव जागरण और राष्ट्रीय चेतना से भी परिचित हो चुके हैं।

राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना को लेकर खंड-1 की दूसरी इकाई "राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का विकास" है। चूंकि भारतीय राष्ट्रीयता की चेतना का उदय गुलाम या परतंत्र भारत की परिस्थितियों में हुआ था, इसलिए उसमें राष्ट्रीय स्वाधीनता अथवा राष्ट्रीय मुक्ति का भाव अत्यंत प्रबल रहा है। इसीलिए भारतीय साहित्य पर भी इसका गहरा प्रभाव दिखाई देता है। इस तथ्य को ध्यान में रख कर ही भारत के राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन से विस्तार के साथ आपका परिचय कराया गया है। इस क्रम में आपने अच्छी तरह यह समझ लिया होगा कि इस आंदोलन ने भारतीय संस्कृति, समाज और साहित्य को अनेक रूपों तथा अनेक दृष्टियों से प्रभावित किया। यह प्रभाव सर्वत्र सकारात्मक ही नहीं कहा जा सकता, कहीं-कहीं इसके नकारात्मक प्रभाव भी स्पष्ट रूप से दिखायी देते हैं। अतः राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की महत्वपूर्ण देन से आपको परिचित कराते हुए, आज के संदर्भ में उसकी सार्थकता का भी आकलन किया गया है।

पाठ्यक्रम-5, खंड-एक की इस तीसरी इकाई का संबंध आधुनिकता के दूसरे महत्वपूर्ण पक्ष नव जागरण से है। इसमें—नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के विकास से आपको परिचित करवाया जाएगा। इसमें आप भारतीय नवजागरण की पृष्ठभूमि, नवजागरण की अवधारणा, नवजागरण और पुर्नजागरण के अंतर तथा पुनरुत्थान और सामाजिक सुधार का आशय भी समझेंगे। भारतीय नवजागरण को तब तक नहीं समझा जा सकता जब तक कि हम यूरोपीय नवजागरण की विशेषताओं से परिचित न हों। इस इकाई में हमने उन परिस्थितियों पर भी विचार किया है जिनके बीच नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ। मध्ययुगीनता से आधुनिकता का अंतर, पूंजीवादी विकास, औपनिवेशिक पराधीनता का उल्लेख इसी संदर्भ में किया गया है। नवजागरण में विभिन्न धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलनों की भूमिका पर भी विचार किया गया है। भारत में राष्ट्रीय चेतना का विकास कैसे हुआ और नवजागरण तथा राष्ट्रीय चेतना के अंतःसंबंध पर भी इकाई में विचार किया गया है। इकाई आपको नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना को समझने में मददगार होगी।

3.2 भारतीय नवजागरण की पृष्ठभूमि

19वीं शताब्दी में सारे देश में नवजागरण की जो लहर उठी थी उसने एक आंदोलन का रूप धारण कर लिया था। हर आंदोलन की जड़ अपने सामाजिक आधार में होती है, जिस आधार को समझे बिना आंदोलन की मूलभूत विशेषता को सही ढंग से नहीं समझा जा सकता। अंग्रेजों के आने से पहले भारतीय समाज में पूंजीवादी तत्वों का उदय अवश्य हो चुका था, लेकिन वे इतने शक्तिशाली नहीं बन सके थे कि मध्यकालीन सामंती ढाँचे को बदल पाते तथा मानव संबंधों और नये जीवन मूल्यों को सामने लाते। इसमें तत्कालीन आत्मनिर्भर ग्राम-व्यवस्था भी बाधक थी। उसके माध्यम से सामंती सामाजिक संबंधों और उसके मूल्यों-मानदंडों की कारगर ढंग से रक्षा हो रही थी। पूरा समाज कर्म फल, भाग्यवाद, पुनर्जन्म, बहुदेववाद, मूर्ति पूजा, सती प्रथा, बाल विवाह जैसी कुरीतियों से ग्रस्त था। इससे पहले कि भारतीय व्यावसायिक पूंजीवादी तत्व शक्ति संचित कर इसके विरुद्ध खड़े होते, इनसे कहीं अधिक शक्तिशाली विदेशी पूंजीवादी शक्तियां देश के रंगमंच पर आ गयीं। इन्होंने पहले तो व्यापार का सहारा लिया, जिसमें भारत का बना माल विदेशों में बेचना और विदेशों का माल यहां बेचना ही मुख्य कार्य था। लेकिन ब्रिटिश पूंजीपतियों के दबाव से यह अधिक दिन नहीं चल सका। फलस्वरूप भारत के उद्योग धंधों को नष्ट करने और उसे कच्चे माल का निर्यात करने तथा तैयार माल की मण्डी बनाने की प्रक्रिया का

आरंभ हुआ। बाजार के इस नये दबाव से यहां कि आत्मनिर्भर ग्राम व्यवस्था छिन्न-भिन्न हुई।

उपर्युक्त परिस्थितियों में भारतीय नवजागरण का आरंभ हुआ, जो मुख्यतः धार्मिक और सामाजिक सुधार के रूप में सामने आया। अतः इसका स्वरूप यूरोप के तमाम देशों से भिन्न दिखायी देता है। यहां सामंतीय तत्वों और पूंजीवादी शक्तियों के बीच वैसा सीधा संघर्ष नहीं हो पाया जैसा कि यूरोप में हुआ। औद्योगिक मजदूर वर्ग का अभाव और ब्रिटिश शासन सत्ता की नीतियाँ भी इसमें मुख्य रूप से बाधक सिद्ध हुईं।

3.3 नवजागरण की अवधारणा

नवजागरण एक ऐतिहासिक अवधारणा है, जिसका संबंध आधुनिक काल की उस नयी चेतना से है जो मध्यकालीन चेतना से गुणात्मक रूप से भिन्न है। इसे अच्छी तरह समझने के लिए जरूरी है कि इससे मिलते-जुलते या इसके विरोध में पड़ने वाले कुछ शब्दों के अर्थगत अंतर की जानकारी भी आपको दी जाए। इस दृष्टि से नवजागरण (रिनेसां), पुनर्जागरण, पुनरुत्थान, सुधार आदि शब्दों के अर्थगत अंतर पर ध्यान रखना आपके लिए जरूरी है।

3.3.1 नवजागरण और पुनर्जागरण

भारतीय संदर्भ में कुछ विद्वानों ने आधुनिक काल के नवजागरण को पुनर्जागरण की संज्ञा दी है। उनके अनुसार भारत का भक्ति आंदोलन नवजागरण का सूचक था, अतः आधुनिक काल में घटित होने वाला जागरण उसी की अगली कड़ी के रूप में पुनर्जागरण है। यह सही है कि भक्ति का आंदोलन एक व्यापक सांस्कृतिक जागरण का परिचायक था, जिसमें जनसाधारण की सृजन शक्ति मध्यकालीन बहुत सी जकड़नों को तोड़कर विकसित होने लगी थी। लेकिन यह सारा विकास मध्यकालीन सामंतवादी व्यवस्था के भीतर ही घटित हुआ था, अतः लोगों के चिंतन और संवेदना की बहुत सारी कमजोरियों को दूर करने में यह कामयाब नहीं हो सका। फलस्वरूप तत्कालीन व्यवस्था ने इसके प्रगतिशील तत्वों को कुण्ठित करते हुए इसे अपने अंदर पचा लिया। इसके साथ ही इसकी सबसे बड़ी कमजोरी थी—इसका ईश्वर केंद्रित स्वरूप और धर्म पर पूर्णतः निर्भरता। क्योंकि धार्मिक भावना सामाजिक समस्याओं के तर्कसंगत विश्लेषण और विवेक सम्मत समाधान के लिए अक्षम होती है, अतः भक्ति आंदोलन एक धार्मिक जागरण बन कर रह गया, उसे नवजागरण की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इसकी आधारगत कमजोरी की ओर संकेत करते हुए श्री के. दामोदरन ने लिखा है, "*इसका कारण यह था कि कारीगर, व्यापारी और दस्तकार, जो इस आंदोलन के मुख्यतः आधार थे, अब भी कमजोर और असंगठित थे। और, इससे पहले कि उदीयमान पूंजीपति वर्ग एक वर्ग के रूप में अपना पूर्ण विकास प्राप्त करे। ब्रिटिश पूंजीपतियों ने देश को जीतकर अपने कब्जे में कर लिया और उसे ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बना लिया।*" (**भारतीय चिंतन परम्परा**, पृ. 337) इससे पहली बात जो स्पष्ट होकर हमारे सामने आती है वह यह है कि भक्ति आंदोलन को नवजागरण की संज्ञा नहीं दी जा सकती। उन्नीसवीं शताब्दी के नवजागरण के लिए उसने एक सम्पन्न विरासत की भूमिका अवश्य अदा की है। इससे दूसरा तथ्य हमारे सामने आता है कि नवजागरण मध्यकालीन सामंतवाद विरोधी अवधारणा है, जिसका सूत्रधार उदीयमान पूंजीपति वर्ग है। अतः उन्नीसवीं सदी के नवजागरण को पुनर्जागरण की संज्ञा न देकर नवजागरण कहना ही अधिक उचित है।

3.3.2 नवजागरण, पुनरूत्थान और सामाजिक सुधार

नवजागरण और पुनर्जागरण जैसे शब्दों के अर्थगत अंतर की जानकारी के साथ ही आपको नवजागरण और पुनरूत्थान के अंतर की जानकारी भी जरूरी है। ये दोनों शब्द वैचारिक दृष्टि से परस्पर विरोधी भावों के सूचक हैं। नवजागरण में जहाँ एक नये, तर्कसंगत,

विवेक-सम्मत और युग की आवश्यकताओं के अनुरूप व्यापक सुधार की भावना पर अधिक जोर होता है, वहाँ पुनरूत्थान में अतीत की पुनर्प्रतिष्ठा को अधिक महत्व दिया जाता है। भारतीय संदर्भ में 19वीं शताब्दी के नवजागरण में धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। लेकिन इन आंदोलनों में नवजागरण और पुनरूत्थान के तत्व प्रायः मिले-जुले दिखायी देते हैं। यही नहीं, सामाजिक सुधार और धार्मिक पुनरूत्थान को लेकर उस आंदोलन में विवाद की स्थिति भी रही है, जो आज भी दिखायी देती है। सुधार की प्रवृत्ति और पुनरूत्थान में अंतर करते हुए लाला लाजपतराय ने कहा था, *"इन शब्दों—सुधार और पुनरूत्थान—में यदि कोई वास्तविक महत्व है तो वह, सामाजिक मामलों में पथ-प्रदर्शन के लिए सुधारवादी और पुनरूत्थानवादी क्रमशः जिस अधिकार या अधिकारों से प्रेरणा ग्रहण करते हैं, उसमें या उनमें निहित है। सुधारवादी तर्क और योरोपीय समाज के अनुभव पर अधिक निर्भर करते हैं, जब कि पुनरूत्थानवादी शास्त्रों, अतीत के इतिहास तथा जनता की उन परम्पराओं तथा देश की उन संस्थाओं की ओर अधिक उन्मुख हैं, जो उस समय प्रचलित थीं, जब यह राष्ट्र गौरव के शिखर पर था।"*

यहाँ लाजपतराय ने दो विरोधी प्रवृत्तियों की ओर संकेत अवश्य किया है, लेकिन उनका यह कहना सही नहीं है कि सुधारवादी देश की गौरवशाली परम्परा की उपेक्षा करते थे। अतीत और वर्तमान में सामंजस्य स्थापित करने के लिए वे वेद और शास्त्रों की शिक्षाओं से पर्याप्त सहायता लेते थे। अपने को हिन्दू और हिन्दू धर्म का अनुयायी मानते हुए भी वे इस्लाम और ईसाई धर्म के विरोधी नहीं थे। यहाँ तक कि वे सभी धर्मों के समन्वय द्वारा एक विश्व धर्म का स्वप्न देखते थे। देश में नवजागरण की स्वस्थ परम्परा का सूत्रपात इस कोटि के सुधारकों द्वारा ही हुआ। इनके महत्व को रेखांकित करते हुए श्री के. दामोदरन ने लिखा है, *"मोटे तौर पर कहा जाए तो उनकी विचार पद्धति में मानवतावाद को अधिक बल दिया जा रहा था और वे मनुष्य और मनुष्य के बीच भेदभाव समाप्त करने के इच्छुक थे। किन्तु अपने इन प्रयत्नों में वे पश्चिमी विज्ञान और उसके साथ जुड़े हुए तर्कयुक्त दृष्टिकोण को भी आत्मसात करना चाहते थे। राजा राममोहन राय के बाद इस नये दृष्टिकोण के दृढ़ प्रचारक महादेव गोविन्द रानाडे थे।"* **(भारतीय चिंतन परम्परा,** पृ. 381)।

रानाडे ने पुनरूत्थानवादियों की आलोचना करते हुए कथा था, *"आखिर हम किस चीज का पुनरूत्थान करें?..... क्या हम पुत्रों को उत्पन्न करने की बारह विधियों अथवा विवाह की आठ विधियों का पुनरूत्थान करें, जिसमें लड़की को ज़बर्दस्ती उठा ले जाना सही माना जाता था तथा मिश्रित और अनैतिक संभोग को स्वीकार किया जाता था?..... क्या हम उस उन्मुक्तता का पुनरूत्थान करें, जो विवाह के बंधनों के मामले में ऋषियों और ऋषि-पत्नियों के बीच व्याप्त थी? क्या हम वर्ष-प्रति वर्ष बलि दिये जाने वाले पशुओं के अम्बारों को फिर खड़ा करके बलि प्रथा का पुनरूत्थान करें, जिसमें देवताओं के प्रसादन के लिए मनुष्यों की बलि चढ़ाने में भी संकोच नहीं किया जाता था।"* इस तरह के दर्जनों प्रश्न उपस्थित करने के बाद रानाडे ने कहा है कि *"इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाना चाहिए कि पुरानी प्रथाओं और रस्म-रिवाजों का पुनरूत्थान करने से हमारा कल्याण नहीं होगा, न ही यह व्यावहारिक रूप से संभव ही है।"* **(भारतीय चिंतन परम्परा** पृ. 382-83 से उद्धृत) इससे पुनरूत्थान के तहत अतीत की पुनर्प्रतिष्ठा की स्थिति स्पष्ट हो जाती है, जो आगे चलकर हिन्दू और मुस्लिम पुनरूत्थानवाद के रूप में नवजागरण और स्वस्थ राष्ट्रीय चेतना के विकास में बाधक बनी है। यहाँ आपके सामने लाला लाजपत राय और महादेव गोविन्द रानाडे के दो लम्बे उदाहरण और उनकी व्याख्या इसलिए प्रस्तुत की गयी है कि आप नवजागरण और पुनरूत्थान के मूल आशय को अच्छी तरह समझ जाएँ और दोनों में आसानी से अंतर कर सकें।

जहाँ तक नवजागरण की अवधारणा का प्रश्न है, वह सामाजिक विकास के एक ऐतिहासिक मोड़ की सूचक है, जिसे मध्यकाल से आधुनिक काल में संक्रमण की स्थिति माना जा सकता है। मध्यकालीन सामंती सामाजिक संबंधों के विघटन और नवीन पूंजीवादी सामाजिक संबंधों के संघटन की प्रक्रिया में इसका आरंभ होता है। अतः नवजागरण का सूत्र संचालन प्रायः नवोदित पूंजीवादी शक्तियों और उनकी प्रभाव छाया में विकसित होने वाले चिंतकों

के हाथ में होता है। यूरोप में यह मूलतः सामंत विरोधी जागरण रहा है, जब कि भारत में इसे सामंतवाद विरोध के साथ ही साम्राज्य-विरोधी स्वरूप प्राप्त हुआ है। विद्वानों ने इसकी प्रायः तीन प्रमुख विशेषताओं की ओर संकेत किया है--इसका धर्मनिरपेक्ष स्वरूप, मानवतावादी विश्व दृष्टि और प्राचीन संस्कृति पर इसकी निर्भरता।

अपने धर्मनिरपेक्ष स्वरूप के कारण नवजागरण कालीन चिंतन का केन्द्र ईश्वर के स्थान पर मनुष्य बना। इस मानव-केन्द्रित चिंतन में धर्म को व्यक्ति का निजी मामला घोषित करते हुए धर्मान्धता का विरोध किया गया। इस चिंतनधारा के उदीयमान पूंजीवादी विचारधारा की प्रभाव छाया में उसके विकास की आदश्यकताओं के अनुरूप राजतंत्र, सामंतवाद और तमाम सारे सामंतवादी सड़े-गले मूल्यों-मान्यताओं के विरुद्ध कठोर संघर्ष किया। इस प्रक्रिया में उसने अंधविश्वास, भाग्यवाद, परलोकवाद और तमाम सारी अतार्किक सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों का भी विरोध का प्रयास किया। फलस्वरूप एक मानवतावादी विश्वदृष्टि के विकास में सहायता मिली।

नवजागरण की मानवतावादी विश्व दृष्टि के तहत मानव को, व्यक्ति मनुष्य को, विश्व का केन्द्र घोषित किया गया। उसके अनुभव, उसकी मानवीय गरिमा, उसका जीवन मानव-चिंतन का प्रमुख विषय बना। व्यक्ति की स्वतंत्रता, मानव मात्र की समानता, भाईचारे की भावना, सामाजिक जीवन और उसकी विभिन्न गतिविधियों को तथ्यों के अनुरूप तर्क के आधार पर समझने-परखने की वैज्ञानिक दृष्टि और सामाजिक उत्थान के प्रति आस्था जैसे स्वस्थ पूंजीवादी मूल्य नवजागरण की मानवतावादी उपलब्धियाँ हैं। मानवतावादी विश्वदृष्टि के तहत स्वतंत्रता और समानता को एक व्यापक आधार मिला। समाज में व्यक्ति की स्वतंत्रता के साथ ही परिवार में नारी की मुक्ति, नारी-पुरुष की समानता, आर्थिक क्षेत्र में सबको विकास के समान अवसर, सांस्कृतिक क्षेत्र में सबके विकास की समान सुविधाएँ, शिक्षा के समान अवसर आदि जैसे जनतांत्रिक मूल्य नवजागरण द्वारा प्रतिष्ठित हुए।

जहाँ तक प्राचीन संस्कृति पर नवजागरणकालीन संस्कृति की निर्भरता का प्रश्न है, इस पर विचार करते हुए पर्याप्त सावधानी की जरूरत है। आपको यह पहले ही बताया जा चुका है कि नवजागरण मध्यकालीन पतनशील सामंतवाद-विरोधी और आधुनिक पूंजीवादी युग की नयी अवधारणा है। मध्यकाल में भी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत को व्यापक रूप से, ग्रहण किया गया था। लेकिन अपने पतनशील दौर में उसे इतना विकृत, जड़ और मानव-विरोधी बना दिया गया था कि उसने सामाजिक विकास के मार्ग को पूरी तरह अवरुद्ध कर दिया था। इसका विरोध करने के बावजूद नवजागरणकालीन चिंतकों ने अपनी नयी विश्वदृष्टि की पुष्टि के लिए प्राचीनता की विरासत का भरपूर उपयोग भी किया। इस क्रम में मध्यकालीन श्रेष्ठतम उपलधियों से भी प्रेरणा ली गयी। यह सही है कि "अतीत की ओर चलो" (बैक टु द नेचर) या "नेक जंगली" (बोनोबुल सेवेज) जैसी रूसों की मान्यताएँ और "वेदों की ओर लौटो" जैसी स्वामी दयानन्द की मान्यताओं में पुनरूत्थान (रिवाइवलिज्म) की एक छाया अवश्य मिलती है। लेकिन नवजागरण प्राचीन संस्कृति या पुरातन का पुनरूत्थान नहीं था। नवजागरणकालीन मानवतावादियों ने अपनी नयी व्याख्या द्वारा प्राचीन विरासत का पुनरूद्धार किया और अपने युग की नयी परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप उसे एक नया रूप दिया। अतः नवजागरण की संस्कृति प्राचीनता की ओर प्रत्यागमन नहीं थी। उसमें प्राचीन और नवीन दोनों असाधारण रूप से जुड़े हुए थे और इस योग से निर्मित एक सर्वथा भिन्न और नयी वस्तु के रूप में वह हमारे सामने आती है।

बोध प्रश्न

1) आधुनिक भारतीय नवजागरण को किस आंदोलन के संदर्भ में पुनर्जागरण माना गया?

क) समाज सुधार आंदोलन

ख) भक्ति आंदोलन

ग) भक्ति आंदोलन

घ) पुनरूत्थान आंदोल ( )

2) अतीत की पुनर्प्रतिष्ठा का आग्रह था :

क) भक्त कवियों में

ख) पूंजीपतियों में

ग) पुनरूत्थानवादियों में

घ) नास्तिकों में ( )

3) वेदों की ओर लौटो का आह्वान किसने किया?

.....

.....

अभ्यास

1) नवजागरण और पुनर्जागरण के अंतर को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

2) नवजागरण और पुनरूत्थान के अंतर को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3.4 यूरोपीय नवजागरण की विशेषता

भारतीय नवजागरण की विशेषताओं को समझने के लिए आवश्यक है कि आपको संक्षेप में यूरोपीय नवजागरण से भी परिचित करवाया जाए। यूरोप का इतिहास इस तथ्य का स्पष्ट साक्षी है कि पश्चिमी यूरोप का नवजागरण मध्यकाल और आधुनिक काल के मध्य एक संक्रमण का काल था। इसमें सामंतवादी व्यवस्था और उदीयमान पूंजीवादी शक्तियों के बीच सीधी टक्कर हुई थी। चौदहवीं शताब्दी के आरंभिक दौर में इटली के उत्तरी और मध्यवर्ती क्षेत्रों में पूंजीवादी तत्व सबसे पहले प्रकट हुए। वहाँ के सौदागरों की बढ़ती हुई व्यापारिक गतिविधियों में अवरोध उत्पन्न करने वाली एक शक्ति परम्परागत सामंतवादी व्यवस्था थी। लेकिन यह व्यवस्था पूरी तरह अपने विघटन के कगार पर पहुँच चुकी थी। यहाँ के शहरी क्षेत्रों में सौदागरों और सामंतों के बीच भीषण संघर्ष हुआ, जिसमें सामंतों का प्रायः सफाया हो गया। इस प्रक्रिया में सामंती सामाजिक संबंधों को दृढ़ बनाने वाली शक्ति चर्च और पादरी वर्ग की परलोकमुखी नैतिकता और तमाम सारी मध्यकालीन रूढ़ियों, धार्मिक अंधविश्वासों के विरुद्ध भी संघर्ष हुआ। साधारण जनता को इनके बंधन से मुक्ति मिली, जिससे नये चिंतक, कवि-कलाकार सामने आए। उन्होंने अपने को और अपने आसपास की दुनिया को बंधन मुक्त होकर देखा। इससे उसकी मानवीय विकास संबंधी दृष्टि, सौंदर्य-शास्त्रीय अभिरुचियाँ, अतीत को परखने और वर्तमान को समझने की दृष्टि में व्यापक बदलाव आया। सामंतयुगीन जड़ता, निराशावाद और भ्रामक आध्यात्मिक भटकनों से मुक्त होकर लौकिक विज्ञान, लौकिक साहित्य और कला का उदय हुआ। इस नयी मूल्य-व्यवस्था में मनुष्य समूचे चिंतन और क्रियाकलाप का केन्द्र बना। उसका अनुभव, उसकी आशा, आकांक्षा, भूख-प्यास अर्थात् उसका सांसारिक जीवन साहितय और कला के मुख्य विषय बने।

इटली में पन्द्रहवीं शती के अंत और सोलहवीं शती के मदय तक चलने वाले अनेक युद्धों की वजह से इटली की मानवतावादी संस्कृति का संपर्क यूरोप के अन्य देशों से हुआ। फ्रांस,

नीदरलैंड, जर्मनी, इंग्लैंड, स्पेन आदि जैसे यूरोपीय देशों में राष्ट्रीयता के विकास के साथ नवजागरण का मार्ग सुगम हो गया। इन सभी देशों के लिए इटली की मानवतावादी संस्कृति एक प्रेरक आदर्श बनी। इस दृष्टि से 14-15वीं शती का फ्रांसीसी क्रांति का विशेष महत्व है। फ्रांस के साथ ही जर्मनी की क्रांति का स्वरूप भी भू-स्वामित्व को लेकर किसानों और भू-स्वामी सामंतों का संघर्ष था। अपनी आंशिक सफलता के बावजूद इन दीर्घकालीन किसान युद्धों ने मानवतावादी संस्कृति के विकास की ठोस पृष्ठभूमि तैयार की। आगे चलकर राष्ट्रवाद की तीव्र लहर के साथ उदीयमान पूंजीवादी व्यक्तियों के नेतृत्व में किसान-मजदूर जनता ने सामंतवाद विरोधी संघर्ष में ऐतिहासिक सफलता हासिल की। फलस्वरूप नवजागरणकालीन संस्कृति को एक ठोस आधार प्राप्त हुआ। राष्ट्रीय चेतना के प्रभाव ने इसे एक जनतांत्रिक स्वरूप प्रदान किया।

यूरोपीय नवजागरण में समय और विशेषता की दृष्टि से एकरूपता नहीं मिलेगी। सांस्कृतिक विरासत, भौतिक और ऐतिहासिक विकास तथा राष्ट्रीय परम्परा की दृष्टि से इनकी भिन्नता और विशिष्टता इन देशों के नवजागरण में प्रतिबिंबित हुई। इटली के नवजागरण में आरंभ से ही व्यक्ति की स्वतंत्रता और व्यक्तित्व के स्वतंत्र निर्माण के आग्रह के साथ मध्यकालीन परलोकवाद या वैराग्यवाद का विरोध प्रमुख रहा है, जबकि फ्रांस के नवजागरण में फ्रांसीसी राष्ट्रवाद का स्वर प्रमुख है। वह ऐसा राष्ट्रवाद था जो समूचे यूरोप को मध्यकालीन सामंतीय सांस्कृतिक बंधनों से मुक्त करने को आतुर था। जबकि ब्रिटेन के नवजागरण की परिस्थिति और प्रकृति फ्रांस से एकदम भिन्न थी। इस भिन्नता पर प्रकाश डालते हुए डा. रामविलास शर्मा ने लिखा है, *"ब्रिटेन का औद्योगिक पूंजीपति वर्ग अपनी क्रांतिकारिता के लिए कभी विख्यात नहीं रहा। उसने पग-पग पर किसानों और मजदूरों के विरुद्ध जमींदारों से समझौता किया। सामंत विरोधी क्रांति फ्रांस में हुई जहां बड़ी-बड़ी जमींदारियां तोड़ दी गई और जमीन किसानों में बांट दी गयी। सामंत विरोधी क्रांति ब्रिटेन में नहीं हुई, जहां बड़ी-बड़ी जमींदारियां कायम रहीं, और 18वीं शती में उनमें सैकड़ों एकड़ नयी जमीन मिला दी गयी। ब्रिटेन में पूंजीपतियों ने जमींदारों से समझौता किया, क्रांति नहीं की। यही कारण है कि ब्रिटेन के पूंजीपतियों और जमींदारों ने फ्रांस की राज्य क्रांति का जोरदार विरोध किया। उन्होंने यूरोप के प्रतिक्रियावादी सामंत वर्ग से मिलकर फ्रांस को परास्त किया।"* (महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण, पृ. 10) वस्तुतः ब्रिटेन में व्यापारिक पूंजी का सबसे अधिक जोर था, वहाँ की राजसत्ता भी प्रायः भूस्वामियों के हाथ में थी। इसलिए आगे चलकर वहाँ जनतांत्रिक प्रणाली आरंभ होने पर भी राजतंत्र को प्रतीकात्मक रूप में बनाए रखा गया। "हाउस ऑफ लार्ड्स" के रूप में भी सामंतों को प्रसन्न रखने का ही प्रयास वहाँ किया गया। इस समूचे क्रम में इजारेदार व्यापारियों की भूमिका सबसे महत्वपूर्ण थी। ईस्ट इंडिया कंपनी ऐसे ही इजारेदार व्यापारियों की कम्पनी थी, जिसके प्रतिनिधियों ने व्यापार के माध्यम से भारत जैसे विशाल देश को पराधीनता की बेड़ियों से जगड़ लिया। इस तरह की पराधीनता और औपनिवेशिक गुलामी की परिस्थितियों में भारतीय नवजागरण आंदोलन विकसित हुआ। फलस्वरूप वहाँ के नवजागरण की विशेषताएँ यूरोप के अन्य देशों से पर्याप्त भिन्न है।

अपनी तमाम सारी भिन्नताओं के बावजूद यूरोपीय नवजागरण की कुछ सामान्य विशेषताएँ भी हैं, जिससे उसे एक निश्चित स्वरूप प्राप्त होता है। इसकी वजह से अलग-अलग देशों में वहाँ की लोक भाषाओं का साहित्यिक भाषा के रूप में उदय हुआ, सामंतवाद-विरोधी नयी जातीयता के आधार पर राष्ट्रीय चेतना का आविर्भाव हुआ और इन सबके कारण उसमें एक मानवतावादी विश्वदृष्टि उभर कर सामने आयी। आधुनिक इटालियन, जर्मन, स्पेनिश, इंग्लिश आदि भाषाओं को नया संस्कार मिला। नवजागरण की चेतना के पोषण और विस्तार में इनसे पर्याप्त सहायता मिली। नवजागरण आंदोलन मूलतः व्यक्ति मानव की स्वतंत्रता का आंदोलन था। फलस्वरूप इसका आरंभ बिंदु सामंतवादी मध्ययुगीन धर्मिक-सामाजिक रूढ़िवादिता का विरोध था। नवजागरण आंदोलन का सूत्रपात आधुनिक काल में व्यक्तिवाद को लेकर हुआ। इससे पूर्व यूरोप के जीवन पर खर्च छाया हुआ था। पोप, पादरी और उनके गिरिजाघर व्यक्ति की स्वतंत्रता पर कठोर अंकुश लगाए हुए थे। सम्राट-सामंत अपने दैवी अधिकारों की मान्यता की आड़ में साधारण जनता का क्रूर शोषण करते थे। इनके सहयोग धर्म तंत्र ने व्यक्ति मानव को दैवी चमत्कारों, अनेक सामाजिक

रूढ़ियों और धार्मिक अंधविश्वासों की श्रृंखला में बांध रखा था। जब नवजागरण के समय स्वतंत्रता की बात उठायी गयी तो उसका मतलब था कि व्यक्ति को उन श्रृंखलाओं से जिनमें सम्राटों-सामंतों ने, चर्च ने, धर्म ने, रूढ़ियों और अंधविश्वासों ने बांध रखा था—उससे मुक्त किया जाए। इसके लिए दैवी अधिकार के सिद्धांत को चुनौती देना अनिवार्य था। इसका प्रारंभिक प्रयास इटली में ही हुआ। आगे चलकर महान फ्रांसीसी क्रांति ने इसे चरमोत्कर्ष प्रदान किया। राजाओं के दैवी अधिकार पूरी तरह नष्ट हो गए, जिसके फलस्वरूप यूरोप के अनेक देशों में लोकतांत्रिक प्रणाली स्थापित हुई। इस तरह यूरोपीय नवजागरण ने आधुनिक जनतंत्र को एक ठोस सांस्कृतिक आधार प्रदान किया।

यूरोपीय नवजागरण द्वारा निर्मित मानसिक स्वाधीनता के वातावरण में वैज्ञानिक प्रगति के साथ ही चिंतन के क्षेत्र में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। राजनीति एवं अर्थशास्त्र के क्षेत्र में मानव केन्द्रित नये सिद्धांत अस्तित्व में आए। साहित्य और कला के क्षेत्र में मानव केन्द्रित नये सौन्दर्यशास्त्र की रचना हुई। रूसो, वाल्टेयर, डिडरो जैसे मानवतावादी चिंतकों ने विवेकसम्मत एवं धर्मनिरपेक्ष मानवीय मूल्यों के रूप में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का नारा देकर यूरोपीय नवजागरण को एक ठोस आधार प्रदान किया।

3.5 भारतीय परिस्थितियों में नवजागरण की स्थिति

भारत की परिस्थितियाँ यूरोप से पर्याप्त भिन्न रही हैं। यहाँ आठवीं शती के बाद जिस मतवाद का सबसे अधिक प्रभाव बढ़ा वह इहलोक के परे का चिन्तर अर्थात् वेदांत दर्शन था। वेदांत में भौतिक जगत को माया, मानव शरीर को आत्मा का बन्दीगृह तथा जन्म-मरण के बंधनों से मुक्ति को मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य बताया गया था। आत्म संयम, इन्द्रिय निग्रह, ब्रह्मचर्य, निष्कामता तथा ब्रह्म में ध्यान को मनुष्य का सर्वोच्च गुण समझा जाने लगा। इस प्रकार जब देश के महान् चिंतक लौकिक जगत से परे परलोक के प्रश्नों का समाधान ढूंढने में व्यस्त थे तब बहुसंख्यक समाज महत्वाकांक्षी राजाओं और उनके सहयोगी स्वार्थपरायण पण्डे-पुरोहितों के प्रभाव में आ गया। यहाँ के आम जन-जीवन में बहुप्रचारित कर्म-फल का सिद्धांत अपनी जड़ जमाए हुए था। वह सिद्धांत यह प्रतिपादित करता है कि वर्तमान जीवन के कष्ट हमारे पूर्वजन्म में किए गए पापों के फल हैं, इन्हें किसी भी मानवीय प्रयास से दूर नहीं किया जा सकता। इस मान्यता ने गरीब और उत्पीड़ित बहुसंख्यक समुदाय को अपने निष्ठुर भाग्य से समझौता करने के लिए मानसिक रूप से तैयार कर लिया। प्रचलित जाति-प्रथा एवं अस्पृश्यता का अमानवीय रूप और भी क्रूर बन गया। यूरोप के मध्ययुगीन अंधकार युग की तरह भारत में भी एक अंधकार युग जैसी स्थिति बनी।

चौदहवीं-पन्द्रहवीं शती के भक्ति आंदोलन ने सामाजिक-धार्मिक जड़ता एवं विषमताओं के विरुद्ध एक सार्थक विद्रोह अवश्य किया लेकिन कई कारणों से इसे सफलता नहीं मिली और अंततः यह एक धार्मिक सुधार आंदोलन ही बनकर रह गया। फिर भी इसमें नवजागरण के अनेक तत्व विद्यमान थे। इसके महत्व पर प्रकाश डालते हुए के. दामोदरन ने लिखा है, *"सांस्कृतिक क्षेत्र में इसने राष्ट्रीय नवजागरण का रूप धारण किया, सामाजिक विषयवस्तु में वह जाति-प्रथा के आधिपत्य और अन्यायों के विरुद्ध अत्यंत महत्वपूर्ण विद्रोह का द्योतक था। इस आंदोलन ने भारत में विभिन्न राष्ट्रीय इकाइयों के उदय को नया बल प्रदान किया, साथ ही राष्ट्रीय भाषाओं और उनके साहित्य की अभिवृद्धि का मार्ग भी प्रशस्त किया। ..... इस प्रकार मध्य युग के इस महान् आंदोलन ने न केवल विभिन्न भाषाओं और विभिन्न धर्मों वाले जन समुदायों की एक सुसम्बद्ध भारतीय संस्कृति के विकास में मदद की, बल्कि सामंती दमन और उत्पीड़न के विरुद्ध संयुक्त संघर्ष चलाने का मार्ग भी प्रशस्त किया।"* (भारतीय चिंतन परम्परा, पृ. 327) यह समस्त भारत में एक निश्चित उद्देश्य को लेकर चलने वाला आंदोलन था, जिसमें हिन्दू और मुसलमान दोनों ही शामिल थे। "भारतीय नवजागरण की पृष्ठभूमि" शीर्षक के अंतर्गत आपको इस आंदोलन की असफलता के कारणों के संबंध में परिचित करा दिया गया है, इनमें सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण है व्यापारी, कारीगर, दस्तकार के रूप में आर्थिक आधार की कमजोरी। इससे

पहले कि एक वर्ग के रूप में उदीयमान पूंजीपति वर्ग संगठित रूप से सामंती व्यवस्था को चुनौती देता, एक अधिक शक्तिशाली विदेशी पूंजीपति वर्ग अर्थात् ब्रिटिश पूंजीपतियों ने इस देश को ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बना लिया। आगे हम भारत की विशिष्ट परिस्थितियों में नवजागरण की स्थिति की संक्षिप्त जानकारी आपको दे रहे हैं।

3.5.1 मध्ययुगीनता की समाप्ति

नवजागरण की एक महत्वपूर्ण विशेषता है आधुनिकता की शुरुआत और मध्ययुगीनता की समाप्ति। अंग्रेज जब यहाँ आए तो उस समय हमारी सांस्कृतिक विरासत में बहुत कुछ ऐसा था जो गला-सड़ा और जड़ हो चुका था। कर्मफल, भाग्यवाद, परलोकवाद, चमत्कारवाद, जातिवाद, जात-पांत पर आधारित ऊँच-नीच की भावना जैसी सामंतवादी विकृतियाँ हमारे सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन पर हावी थीं। ब्रिटिश शासन काल में जब यहाँ पूंजीवाद का विकास होने लगा तो यहां की सामंतवादी व्यवस्था को चुनौती देने की संभावना अवश्य बनी। लेकिन ईस्ट इंडिया कंपनी और साम्राज्यवादी ढाँचे के अंदर यहाँ जिस प्रकार का पूंजीवाद पनपने लगा उसमें सामंतवादी व्यवस्था और उसके मूल्य-मानों से टक्कर लेने की क्षमता नहीं थी। ऐसा करना उसके हितों के भी विरुद्ध था। अतः देशी पूंजीवादी शक्तियों के उदय के बावजूद यहाँ मध्यकालीनता की समाप्ति और आधुनिकता का आरंभ देर से हुआ। इसका सूत्रपात राजा राममोहन राय के नेतृत्व में हुआ, जिन्हें आधुनिक भारत का पिता कहा जाता है।

राजा राममोहन राय ने मध्यकालीन सड़ी-गली धार्मिक-सामाजिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों का जोरदार विरोध किया। बहुदेवोपासना, अवतारवाद, पुनर्जन्म, मूर्तिपूजा आदि जैसी मान्यताओं के विरोध के साथ ही समाज सुधार की भावना से प्रेरित होकर सती-प्रथा की समाप्ति और विधवा-विवाह को कानूनी मान्यता दिलाना, नारी शिक्षा को प्रोत्साहन देना, बाल-विवाह और जात-पांत, छुआछूत की मान्यता का विरोध करना, अंतर्जातीय विवाह की स्वीकृति आदि जैसे कार्यों के लिए उन्होंने कठोर संघर्ष किया। इसके लिए उन्होंने 1828 ई. में ब्रह्म समाज की स्थापना के साथ ही प्रचार-प्रसार के माध्यम के रूप में राष्ट्रीय पत्रकारिता को भी जन्म दिया। 1821 ई. में "संवाद कौमुदी" (बंगला), 1822 ई. में मिरातउल अखबार (फारसी) और 1829 ई. में "बंगदूत" (हिंदी) जैसी पत्रिकाएँ निकालीं। ये तीनों ही पत्र राष्ट्रीय नवजागरण के संदेशवाहक बने। बंगाल में राममोहन राय के साथ ही ईश्वरचंद विद्यासागर और आगे चलकर केशवचन्द्र सेन, देवेन्द्रनाथ ठाकुर आदि चिंतकों ने इस नये आंदोलन का नेतृत्व किया। महाराष्ट्र में महात्मा ज्योतिबा फुले, आगंरकर और आगे चलकर महादेव गोविन्द रानाडे आदि उदारवादी नेताओं ने नवजागरण की परम्परा को विकसित किया।

3.5.2 औपनिवेशिक पराधीनता और पूंजीवादी विकास

दुनिया के सबसे बड़े और शक्तिशाली साम्राज्य ब्रिटेन का गुलाम होने के कारण भारतीय नवजागरण का विकास अवरुद्ध रहा। ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन काल में सत्ताधारी वर्ग का उद्देश्य केवल व्यापारिक लाभ प्राप्त करना था। देश के नव निर्माण में उसकी कोई रुचि नहीं थी। 1857 के महा जन-विद्रोह के बाद ब्रिटिश शासकों की नीति में एक मौलिक परिवर्तन हुआ। राष्ट्रीय स्वाधीनता के इस प्रथम संग्राम ने विदेशी सत्ता की नींव हिला दी थी। इसमें समूचे देश की एकता और विदेशी पराधीनता से मुक्ति का स्पष्ट उद्देश्य निहित था। धर्म और वर्ण की सीमाओं को तोड़ कर इसमें हिन्दुओं के साथ हजारों की संख्या में मुसलमान भी शामिल हुए थे। इसकी प्रमुख विशेषता की ओर संकेत करते हुए डा. रामविलास शर्मा ने लिखा है, "*इसका नेतृत्व उन किसानों ने किया जो (ब्रिटिश) फौज में सिपाहियों और सूबेदारों के रूप में काम कर रहे थे। अनेक छोटे-बड़े सामंत इनके सहायक थे, संग्राम के नेता नहीं। फौज के भीतर वाले किसानों के साथ गांवों के गैर-फौजी किसान थे, और इन दोनों ने मिलकर जो हथियारबंद लड़ाई चलाई, वैसी लड़ाई न तो सन् 57 से पहले कभी चलाई गयी थी और न उसके बाद कभी चलाई गयी।*" (महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण) इस संग्राम की गंभीरता के फलस्वरूप ही ब्रिटिश शासकों को अपनी नीतियों में मौलिक परिवर्तन करना पड़ा। इसके पूर्व उनकी नीति आमतौर पर देशी राजे-रजवाड़ों और सामंत-सरदारों के खिलाफ थीं। क्योंकि उन्हें जीत कर समस्त भारत

भूमि पर अधिकार करना उन्हें जरूरी लगा था। इसीलिए ब्रिटिश शासकों ने स्वयं द्वारा बनाए गए नये जमींदारों, बिचौलिए भारतीय व्यापारियों, कम्पनी राज पर निर्भर पढ़े-लिखे बाबुओं और भारतीय ईसाइयों को अपना सामाजिक आधार बनाया था। लेकिन 1857 के बाद उन्होंने भारतीय सामंतों को अपने शासन का सामाजिक आधार बनाया। अब देशी रियासतों को बनाए रखने की नीति अपनायी गयी, उनके मुखियों को प्रशासन में शामिल किया गया, उन्हें हर तरह की सुविधा और सुरक्षा प्रदान की गयी। इसके साथ ही जमींदारी और रैयतवारी भूमि-व्यवस्था चालू कर भारत की आत्मनिर्भर ग्राम-व्यवस्था को पूरी तरह ध्वस्त किया। अब ब्रिटिश शासकों का प्रधान कार्य नवजात औद्योगिक पूंजीपति वर्ग और भारतीय जनता को अपने काबू में रखना रह गया।

इस संबंध में इस इकाई के आरंभ में ही आपको बताया गया है कि नव जागरण का अनिवार्य संबंध पूंजीवादी विकास के साथ है। विदेशियों की पराधीनता के अंतर्गत यहाँ होने वाले प्रतिबंधित पूंजीवादी विकास में वह क्षमता नहीं थी कि इस देश के सांस्कृतिक जीवन में व्याप्त पिछड़ेपन को दूर करने में सफल हो पाता। इसके विपरीत इस तरह के पूंजीवादी विकास के कारण यहाँ कुछ नहीं विकृतियां पैदा हुईं। असहाय पूंजीपति, वर्ग के साथ ही मध्यवर्ग के अधिकांश लोगों में ओछी स्वार्थपरता, अवसरवादिता, समझौतापरस्ती, आपा-धापी का प्रभाव ही अधिक रहा। अपने आत्म सम्मान की रक्षा करने, पहलकदमी करने, बौद्धिक ईमानदारी और साहसिकता दिखाने, सामाजिक जीवन में सुधार लाने, वैज्ञानिक दृष्टि को विकसित करने वाली मध्यवर्गीय बेहतर प्रवृत्तियाँ यहाँ बहुत कम दिखायी दीं।

ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन के विरुद्ध जब देश की स्वाधीनता की लड़ाई शुरू हुई तो इससे एक गुणात्मक परिवर्तन आया। देशी पूंजीपतियों के एक बड़े हिस्से ने भी जनतांत्रिक मूल्यों और आदर्शों का सहारा लेकर विदेशी शासनतंत्र के विरुद्ध मेहनतकश जनता को खड़ा करना शुरू किया। इससे समाज में नयी चेतना का उदय हुआ। ग्रामीण किसानों में जागृति के चिह्न प्रकट होने लगे। मध्यवर्ग के बहुत से लोगों में भी अवसरवादी कायरता के स्थान पर जनतांत्रिक आदर्शों के लिए जोखिम उठाने की प्रवृत्ति ने जोर पकड़ा। इस प्रकार ज्यों-ज्यों स्वतंत्रता आंदोलन का प्रभाव व्यापक होता गया, देश में नवजागरण की लहर भी तेज होती गयी। जब किसान-मजदूर वर्ग हिस्सेदारी इस आंदोलन में काफी बढ़ गयी तो हमारे जनतांत्रिक आदर्श अधिक ठोस और व्यापक होने लगे। हमारी प्राचीन सांस्कृतिक विरासत में जो कुछ रूढ़, सड़ा-गला और अप्रासंगिक हो चुका था, उसे छोड़ने के साथ ही वहां जो कुछ स्वस्थ और ग्राह्य था, उसे आत्मसात करते हुए नवविकसित जीवन मूल्यों के साथ उसे जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य भी आरंभ हुआ। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में भारतेन्दु और उनके मण्डल के लेखकों से लेकर द्विवेदीयुगीन पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से ये मूल्य समाज के एक बड़े हिस्से तक पहुँचे। छायावाद के प्रसाद, निराला, पंत आदि ने भी अपने ढंग से इन्हें आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। प्रेमचंद की रचनाओं में स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे नवजागरण के मूल्यों के धर्मनिरपेक्ष स्वरूप का चरमोत्कर्ष हम देख सकते हैं। प्रगतिशील साहित्यान्दोलन ने इसे और अधिक विस्तृत और ठोस बनाने का प्रयास किया। ऐसा ही विकास हम बंगला, मराठी, तेलुगु, मलयालम, उर्दू, गुजराती आदि अन्य भारतीय भाषाओं में भी देख सकते हैं।

3.5.3 ब्रिटिश शासन और अंग्रेजी शिक्षा

बहुत से विदेशी और कुछ भारतीय विद्वानों की मान्यता है कि भारत में राष्ट्रीय जागरण का प्रमुख कारण ब्रिटिश शासन और अंग्रेजी की शिक्षा का प्रचार-प्रसार है। इस संबंध में औपनिवेशिक दासता के अंतर्गत आपको पहले ही बताया जा चुका है कि ब्रिटिश व्यापारिक पूंजीपतियों ने भारत पर इसलिए कब्जा नहीं किया था कि वे भारत में राष्ट्रीय जागरण लाना चाहते थे। अपने पूरे शासन काल में उनका उद्देश्य यही रहा है कि भारत जैसे कृषि प्रधान विशाल देश को कच्चे माल के निर्यात और ब्रिटेन में बने पक्के माल के आयात का बाजार बनाया जाए। यही उनका उद्देश्य था, जिसमें उनका आर्थिक लाभ भी निहित था। अतः उन्होंने जो भी प्रशासनिक सुधार किए, आर्थिक नीतियां निर्धारित कीं, अंग्रेजी भाषा को उच्च शिक्षा का माध्यम बनाया, आधुनिक विज्ञान की उपलब्धियों का सहारा लेकर रेल

और संचार के माध्यमों का विकास किया, प्रेस की स्थापना की—इन सब कार्यों में उसका अपना आर्थिक-भौतिक लाभ निहित था। लेकिन उनकी इच्छा के विरुद्ध इससे राष्ट्रीय एकता, नवजागरण और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों को भी सहायता मिली—इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। इन पर अलग-अलग विचार करके हम इसकी वास्तविकता को आसानी से समझ सकते हैं।

जहाँ तक ब्रिटिश शासन का प्रश्न है, कुछ विचारकों ने इस बात पर जोर दिया है कि भारत को एक देश और फिर एक राष्ट्र के रूप में विकसित करने में उसकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। लेकिन यह मान्यता गलत है कि ब्रिटिश शासन की अनुपस्थिति में यहाँ राष्ट्रीय चेतना का विकास ही संभव नहीं था। राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय नवजागरण का संबंध पूंजीवादी शक्तियों के उदय के साथ जुड़ा हुआ है। अंग्रेजों के न आने पर भी इन शक्तियों का उदय यहाँ होता और राष्ट्रीय चेतना का प्रसार होता। इस संबंध में श्री अयोध्या सिंह ने लिखा है, भारत में ब्रिटिश सौदागरों के आने के समय तक पूंजीवाद का जिस हद तक विकास हुआ था, उससे स्पष्ट है कि वह उन्नीसवीं सदी तक अवश्य ही शक्तिशाली हो जाता, राजसत्ता या तो उसके हाथ में होती या उसपर उसका बहुत अधिक प्रभाव होता। वह साम्राज्यवादियों के अनुप्रवेश को रोकने के लिए देश के अन्य वर्गों को अपने नेतृत्व में गोलबंद करता।" भारत का मुक्ति संग्राम, पृ. 23)। इससे स्पष्ट है कि ब्रिटिश शासन ने पूरे देश को एक शासन सूत्र में अवश्य बांधा, लेकिन उसने देश के औद्योगीकरण के मार्ग में रोड़े ही अटकाए। उनकी अनुपस्थिति में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया सहज और स्वाभाविक होती तथा यूरोप के बहुत सारे देशों की तरह सामंतवाद विरोधी आंदोलन की प्रक्रिया में यहां भी नवजागरण के मूलभूत तत्वों का अधिक ठोस और व्यापक ढंग से प्रचार-प्रसार होता।

जहां तक अंग्रेजी शिक्षा के महत्व का प्रश्न है, राष्ट्रीय चेतना के विकास में इसकी भूमिका से इंकार नहीं किया जा सकता। लेकिन इसके अभाव में राष्ट्रीय आंदोलन और नवजागरण की संस्कृति का विकास ही न होता—यह मानना एकदम गलत है। अंग्रेजी शिक्षा द्वारा ब्रिटिश साम्राज्यवादी भारत में प्रशासन और व्यापारिक फर्मों के लिए सस्ते क्लर्क और दूसरी तरह के कर्मचारी पैदा करना चाहते थे। मैकाले की उच्च शिक्षा का उद्देश्य एक ऐसा पढ़ा-लिखा समूह तैयार करना था, जो ब्रिटिश शासन का मजबूत आधार बन सके। इस संबंध में उन्हें पूरा विश्वास था कि अंग्रेजी स्कूलों से कोई भी भारतीय नौजवान अपने माता-पिता और पूर्वजों के धर्म में अविश्वास करना सीखे बिना नहीं निकलेगा। मैकाले को पूरा विश्वास था कि उनकी शिक्षा प्रणाली भारतीय युवकों की राष्ट्रीय चेतना को कुण्ठित कर उन्हें सच्चा ब्रिटिश राजभक्त बनाएगी। लेकिन उसके विश्वास के विपरीत इससे नवजागरण के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हुआ।

यहाँ यह तथ्य भी विचारणीय है कि भारत में 19वीं शती में अंग्रेजी भाषा का ज्ञान न भी होता तो भी यहाँ राष्ट्रीय चेतना का विकास अवरुद्ध नहीं होता। नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के विकास का सीधा संबंध तत्कालीन सामाजिक आवश्यकता से है। इसकी ओर स्पष्ट संकेत करते हुए रजनीपाम दत्त ने लिखा है, "भारतीय बूर्जुआ वर्ग (पूंजीपति वर्ग) का उदय और ब्रिटिश बूर्जुआ वर्ग के आधिपत्य के खिलाफ उसकी बढ़ती प्रतियोगिता अवश्यंभावी थी। शिक्षा की पद्धति चाहे जो भी होती और अगर भारतीय बूर्जुआ वर्ग को, अन्य प्रत्येक विचारधारा से बिल्कुल अलग रख कर, साधु-संन्यासियों की तरह सिर्फ संस्कृत के वेदों की शिक्षा दी जाती तो संस्कृति के वेदों में भी सुनिश्चित तौर से उन्हें प्रेरणादायक सिद्धांत और नारे मिले जाते।" (आज का भारत पृ. 608) कहने का मतलब यह कि राष्ट्रीय चेतना के विकास और नवजागरण की मुख्य प्रेरणा तत्कालीन परिस्थितियों में निहित थी, अंग्रेजी शिक्षा में नहीं। नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के विकास में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका बंगला, हिंदी, मराठी जैसी देशी भाषाओं की रही है।

बोध प्रश्न

4) यूरोप के नवजागरण के उदय का कारण था :

क) सामंतवाद की समाप्ति और समाजवाद का आरंभ

ख) लोकतंत्र की स्थापना और राजतंत्र की समाप्ति

ग) पूंजीवादी शक्तियों की पराजय और सामंतों की विजय

घ) सामंतवादी व्यवस्था और उदीयमान पूंजीवादी शक्तियों में टक्कर ( )

5) मध्ययुगीनता की पहचान है :

क) भाग्यवाद और कर्मफल में विश्वास

ख) जातिवाद में विश्वास

ग) परलोकवाद में विश्वास—

घ) उपर्युक्त सभी ( )

6) 1857 के बाद ब्रिटिश शासकों की नीति में मौलिक परिवर्तन क्या हुआ?

.....

.....

अभ्यास

3) नवजागरण में प्राचीन सांस्कृतिक विरासत के तर्कसंगत और विवेक सम्मत उपयोग के महत्व को रेखांकित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

4) नवजागरण में अंग्रेजी शिक्षा की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3.6 विभिन्न धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलन की भूमिका

राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण के विकास की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करने में 19वीं शती के सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलनों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इनमें राजा राममोहन राय और उनके ब्रह्म समाज (1828), केशवचन्द्रसेन और उनके प्रार्थना समाज (1867), दयानंद सरस्वती और उनके आर्यसमाज (1875) आदि का उल्लेखनीय योगदान रहा है। इन सभी आंदोलनों का मूलाधार प्राचीन संस्कृति और धर्म रहा है, जो मध्ययुगीन अवैज्ञानिक अवधारणाओं से कभी पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाए। फिर भी उनकी सामाजिक अंतर्वस्तु सामंतवाद विरोधी और उपनिवेशवाद विरोधी थी।

राजा राममोहन राय और उनके ब्रह्म समाज ने केवल मध्यकालीन सामाजिक-आर्थिक रूढ़ियों और विकृतियों के विरुद्ध ही संघर्ष नहीं किया, बल्कि भारतीय जनता के व्यक्ति स्वातंत्र्य, अंग्रेजों के साथ उनकी समानता और जनतांत्रिक मूल्यों पर आधारित अनेक प्रशासनिक सुधारों के लिए भी कठोर अभियान चलाया। उनके सभी सुधार भारतीय जनता के सामाजिक-राजनैतिक लाभ के उद्देश्य से प्रेरित थे। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषित किया था, *"मुझे यह कहते हुए दुख हो रहा है कि हिन्दू धर्म की जिस वर्तमान प्रणाली पर हम लोग चल रहे हैं, वह हमारे राजनीतिक हितों को बढ़ावा देने वाली नहीं है। जात-पांत, के भेद-भावों ने, जिन्होंने जनता को कितने ही छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट रखा है, हमें राजनीतिक भावनाओं से शून्य कर दिया है।...मेरा विचार है कि इस हिन्दू धर्म में*

कुछ-न-कुछ परिवर्तन होने ही चाहिएं, कम-से-कम इसलिए कि हमको राजनीतिक तौर से लाभ हो और जनता को सामाजिक सुख मिल सके।'' इस कार्य के लिए उन्होंने पश्चिमी विज्ञान द्वारा निर्मित नये मूल्यों का आत्मसात करते हुए भारत के परम्परागत मूल्यों के साथ उन्हें जोड़कर नये युग की चुनौती का सामना करने लायक बनाया।

राजा राममोहन राय और उनके ब्रह्म समाज की परम्परा आगे केशवचन्द्र सेन और महादेव गोविन्द रानाडे ने प्रार्थना समाज के माध्यम से आगे बढ़ाया। न्यायमूर्ति रानाडे ने प्रार्थना समाज के लिए अपना पूरा जीवन ही अर्पित कर दिया। इस ''समाज'' द्वारा रानाडे ने हिन्दू धर्म और समाज के सुधार के साथ ही हिन्दू-मुस्लिम जनता की एकता का भी महत्वपूर्ण प्रयास किया। उनका सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य था, ''सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध संघर्षरत देश भर में बिखरे विभिन्न संगठनों और आंदोलनों के प्रतिनिधियों को आपसी विचार-विमर्श के लिए प्रतिवर्ष एक स्थान पर एकत्र करना। 1885 में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों के बाद उसी पण्डाल में ''राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन'' का भी अधिवेशन होता था। लेकिन 1895 के पूना सम्मेलन में बाल गंगाधर तिलक-आदि गरमदल के नेताओं के विरोध से यह प्रक्रिया समाप्त कर दी गयी। तिलक के उकसावे में आकर चापेकर बंधुओं ने यहाँ तक धमकी दे डाली कि यदि ''सामाजिक-राष्ट्रीय सम्मेलन'' कांग्रेस के पण्डाल में किया गया तो उसमें आग लगा दी जाएगी। इससे स्पष्ट होता है कि कांग्रेस के गरमदली नेता सामाजिक सुधार के आंदोलनों से खुश नहीं थे। वे परम्परागत हिन्दू धर्म की मान्यताओं पर किसी भी तरह का आघात बर्दाश्त करने के लिए तैयार नहीं थे। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि 1890 में जब लड़कियों के विवाह की उम्र 10 साल से बढ़ाकर 12 साल करने का कानून बनने लगा तब तिलक ने इसका जबरदस्त विरोध किया था, जबकि रानाडे, गोखले आदि इसका समर्थन कर रहे थे।

दयानंद सरस्वती और उनके ''आर्य समाज'' का सुधार संबंधी दृष्टिकोण राममोहन राय, रानाडे आदि जैसे सुधारकों से पर्याप्त भिन्न था। आर्य समाज के आंदोलन ने भी बाल विवाह, वृद्ध विवाह, बहुविवाह और जात-पांत का विरोध किया। स्त्री शिक्षा और विधवा विवाह का समर्थन भी इसकी एक मुख्य विशेषता थी। मध्यकालीन कर्मकांडी व्यवस्था और पुरोहितवाद का भी इसने विरोध किया। लेकिन इसके साथ ही बौद्ध, जैन, ईसाई, इस्लाम आदि सभी धर्मों की निन्दा करते हुए इन्होंने केवल वेद विहित हिन्दू धर्म को ही सच्चा धर्म माना। ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज आदि के सुधारों की निंदा करते हुए उन्हें देशभक्ति से हीन और ईसाइयों का अनुकरण बताया। दयानंद सरस्वती ने ईसा, मोहम्मद की शिक्षाओं की आलोचना करने के साथ ही मध्यकालीन, कबीर, नानक, चैतन्य आदि संतों के आदर्शों का भी विरोध किया। ईसाइयों और मुसलमानों को हिन्दू बनाने के अपने ''शुद्धि आंदोलन'' द्वारा उन्होंने राष्ट्रीय एकता में बाधक साम्प्रदायिकता की भावना में वृद्धि की। इसके बावजूद स्वदेशी राज्य को सर्वोत्तम और विदेशी राज्य को दुखदायक बताकर इन्हीं राष्ट्रीयता की भावना को दृढ़ किया। लेकिन इनकी राष्ट्रीयता की भावना हिन्दू राष्ट्रवाद तक सीमित हो गयी। इसके संबंध में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है कि *''आर्य समाज प्रतिरोधात्मक और गतिरोध से पीड़ित हिन्दू धर्म को एक आक्रामक, प्रचारात्मक धर्म बनाने का प्रयत्न था। उसका उद्देश्य हिन्दू धर्म का पुनरूत्थान करना था। इस आंदोलन को जिस कराण कुछ बल प्राप्त हुआ, वह था उस पर राष्ट्रीयता का रंग चढ़ाना। वास्तव में यह हिन्दू राष्ट्रवाद अपना सर उठा रहा था, उसका भारतीय राष्ट्रवाद बनना कठिन हो गया।''* (विश्व इतिहास की झलक, पृ. 436)। आर्य समाज अपनी इस्लाम विरोधी और ईसाई विरोधी प्रवृत्ति के बावजूद समाज के शिक्षित मध्यवर्ग को अपनी ओर तेजी से आकृष्ट करने में सफल हुआ। आर्य समाज से प्रभावित बहुत सारे लोगों ने राष्ट्रीय आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया।

हिंदुओं की तरह मुसलमानों में समाजसुधार और नई जाग्रति लाने का कार्य सैयद अहमद खां (1817-1898) ने किया। उन्होंने मुसलमानों को नये जमाने के अनुसार ढालने, नयी शिक्षा में दीक्षित करने और नये विचारों को अपनाने के लिए प्रेरित किया। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना इस दृष्टि से महत्वपूर्ण थी।

उपर्युक्त तथ्यों से यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि ये सभी आंदोलन सुधारवादी

आंदोलन थे, जिनमें पुनरूत्थान और नवजागरण के प्रगतिशील मूल्यों का मिश्रण था। उन्होंने भारत की सामंती समाज व्यवस्था के मुख्य आधार वर्ग व्यवस्था, जात-पांत, भाग्यवाद और रूढ़िग्रस्त तमाम अंधविश्वासों पर आक्रमण कर उदार पूंजीवादी विचारधारा के लिए मार्ग प्रशस्त किया। 19वीं शती के अंतिम और 20वीं शती के आरंभिक दशकों में राष्ट्रीय आंदोलन की तीव्रता के साथ जब किसान-मजदूर शक्तियों की सहभागिता भी बढ़ी तब राष्ट्रीयता के साथ ही नवजागरण की स्वस्थ चेतना का विस्तार हुआ।

बोध प्रश्न

7) निम्नलिखित संगठनों की स्थापना किसने की?

   1) आर्य समाज .....

   2) प्रार्थना समाज .....

   3) ब्रह्म समाज .....

8) गरमपंथी नेताओं का समाज सुधार आंदोलनों के प्रति क्या रुख था?

   .....

   .....

अभ्यास

5) आर्य समाज का दृष्टिकोण किस रूप में ब्रह्म समाज और प्रार्थना समाज से भिन्न था? स्पष्ट कीजिए।

   .....

   .....

   .....

   .....

   .....

3.7 राष्ट्रीय चेतना से अभिप्राय

आधुनिक अवधारणा के रूप में राष्ट्रीय भावना की परिभाषा : राष्ट्र और राष्ट्रीय भावना एक आधुनिक अवधारणा है, जिसका उदय सर्वप्रथम यूरोप में पूंजीवाद के विकास के साथ हुआ। नवजागरण की भांति यह भी एक पुरानी समाज व्यवस्था की समाप्ति और नयी समाज-व्यवस्था के उदय काल में विकसित होने वाली अवधारणा है। मध्यकालीन यूरोप एक धर्मतंत्र के तहत रोम के पोप के अधीन था, जिसे रोमन साम्राज्य के नाम से जाना था। उसके शासनादेशों से विभिन्न सम्राट और सामंतशाहियाँ अपना शासन चलाती थीं। लेकिन पूंजीवादी शक्तियों के उदय और विकास में इससे बाधा पड़ती थी। सामंत-सरदारों के दैवी अधिकारों की मान्यता की वजह से उनकी अधिकार सीमा में रहने वाले किसान-मजदूर और विभिन्न धंधों में लगे कारीगर-शिल्प की जनता का भी निर्मम शोषण होता था। उन्हें अपने पेशा बदलने या अन्यत्र जाकर काम करने तक ही स्वतंत्रता नहीं थी। अतः सौदागरों और पूंजीपतियों के नेतृत्व में सामंतशाही के विरुद्ध शोषित-उत्पीड़ित आम जनता का गोलबंद होना स्वाभाविक था। इस प्रक्रिया में इटली, फ्रांस, इंगलैंड, स्पेन, नीदरलैंड में पूंजीवादी क्रांतियां हुईं। अपने देशी बाजार की सुरक्षा के लिए "एक राज्य एक राष्ट्र" का सिद्धांत सामने आया। औद्योगिक उत्पादन को अधिक गतिशील करने के लिए सबकी स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की भावना के जनतांत्रिक नारे सामने आए। साधारण किसान-मजदूर और कारीगर जनता को अपना श्रम बेचने की स्वतंत्रता मिली, जिससे औद्योगिक क्षेत्रों के लिए आसानी से मजदूर उपलब्ध हुए। इसी प्रक्रिया में आधुनिक राष्ट्र की परिकल्पना साकार हुई। नवोदित पूंजीपति वर्ग के लिए सबसे बड़ी समस्या बाजार की होती है। वह स्वयं अपने को और अपने "देशी" बाजार को सुरक्षित रख कर अन्य देशों के

पूंजीपतियों के साथ प्रतियोगिता में विजय प्राप्त करना चाहता है। राष्ट्र और राष्ट्रीय भावना उसके इस उद्देश्य का कारगर हथियार बनी है। इन तथ्यों को ध्यान में रखकर स्टालिन ने राष्ट्रीयता के प्रश्नों पर विचार करते हुए कहा है, *"बाजार पहली पाठशाला है, जिसमें पूंजीपति वर्ग अपने राष्ट्रवाद की शिक्षा ग्रहण करता है।"*

पूंजीपति वर्ग की "बाजार की भूख" उसे अपने देशी राष्ट्र की सीमाओं से बाहर औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए देशों को उपनिवेश बनाने के लिए प्रेरित करती है। लेकिन वहाँ के उदीयमान देशी पूंजीपति वर्ग को यह स्थिति बर्दाश्त नहीं होती। अतः राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए संघर्ष की स्थितियाँ पैदा होती हैं। अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रेलिया आदि इसी प्रक्रिया में संप्रभुता सम्पन्न राष्ट्र बने हैं। भारत जैसे एशियाई देशों में राष्ट्रीयता का विकास ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की पराधीनता के वातावरण में हुआ है। ऐसे देशों में राष्ट्रीयता की भावना और राष्ट्रीय आंदोलन के आरंभ के संबंध में स्टालिन ने लिखा है, *"हर तरफ से दबाए गए उत्पीड़ित राष्ट्र का पूंजीपति वर्ग स्वभावतः आंदोलन के मैदान में उतर पड़ता है। वह अपने 'देशी भाइयों' से अपील करता है और 'मातृभूमि' के बारे में शोर मचाने लगता है। वह दावा करता है कि उसका पक्ष ही राष्ट्र का पक्ष है।...'देशी भाई भी उसकी अपीलों को सुनकर हमेशा कान में तेल डालकर नहीं बैठते। वे उसके झंडे के नीचे गोलबंध होते हैं। ऊपर से चलने वाला दमन उन्हें भी प्रभावित करता है और उनके असंतोष को भड़का देता है। इस तरह राष्ट्रीय आंदोलन शुरू हो जाता है।"* सामाजिक विकास की दृष्टि से यह पूंजीपति वर्ग का प्रगतिशील कदम है। यह तो हुई राष्ट्र और राष्ट्रीय भावना के उदय की बात।

जहा तक राष्ट्र की परिभाषा का प्रश्न है, इस पर राजनीति शास्त्र के विचारक एक मत नहीं हैं। "नेशन" के रूप में राष्ट्र शब्द की उत्पत्ति लैटिन के "नेसियो" (NATIO) शब्द से हुई है, जिसका मूल अर्थ है "जाति"। 16-17वीं शती में "नेशन" शब्द किसी देश या राज्य की उस आबादी का सूचक था, जिसमें जातीय एकता या समानता पाई जाती थी। लेकिन 19वीं शती में राष्ट्र और राष्ट्रीयता (जातीयता के रूप में) के अर्थ में अंतर भी किया जाने लगा है। इसके साथ ही राष्ट्रीयता की भावना किसी राष्ट्र की विशेषता के रूप में भी स्वीकृत है। वस्तुतः आज राष्ट्र राजनीतिक एकता और संप्रभुता का सूचक शब्द है, जिसमें अनेक राष्ट्रीयताएँ या जातीयताएँ हो सकती हैं। इस अर्थ में भारत, रूस ही नहीं, इंगलैंड, अमेरिका, स्विट्जरलैंड, कनाडा आदि सशक्त आधुनिक राष्ट्र बहुराष्ट्रीय (मल्टीनेशनल) राष्ट्र हैं, जो अनेक जातियों (राष्ट्रीयताओं) से निर्मित हैं। इंगलैंड, स्विट्जरलैंड, अमेरिका आदि बहुत सारे आधुनिक राष्ट्रों की बहुराष्ट्रीयता उनकी राष्ट्रीय एकता में बाधक नहीं बन पायी है, जबकि भारत की बहुराष्ट्रीयता उसकी एकता और संप्रभुता में बाधा उत्पन्न करने लगी है। रूस की बहुराष्ट्रीय प्रकृति उसके राष्ट्रीय बिखराव का कारण बन कर उसे अनेक स्वाधीन राष्ट्रों में बांट दिया है। इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय भावना को इन शब्दों में परिभाषित किया जा सकता है, *"प्रत्येक ऐसे मनुष्यों का समूह जिसकी अपनी एक पृथक संस्कृति, सभ्यता, भाषा और इतिहास है, एक स्वतंत्र राष्ट्र बनने की क्षमता रखता है।"* इसे और अधिक उदार और व्यापक बनाने के लिए कहा जा सकता है कि अपने अतीत पर उचित गर्व, वर्तमान पर स्वस्थ विश्वास और उज्ज्वल भविष्य के प्रति दृढ़ आस्था वे महत्वपूर्ण तत्व हैं, जो राष्ट्रीय भावना को जीवंत और शक्तिशाली बनाते हैं।

राष्ट्र के निर्माणकारी बाह्य तत्वों की ओर संकेत करते हुए प्रायः निम्नलिखित बिन्दुओं को रेखांकित करने का प्रयास भी किया गया है–

1) जाति या वंश की एकता, 2) धार्मिक एकता, 3) भाषा की एकता, 4) भौगोलिक एकता, 5) राजनीतिक संप्रभुता, 6) समान शासन, 7) समान ऐतिहासिक परम्पराएँ और स्मृतियाँ, 8) समान स्वार्थ और आर्थिक हित।

इनमें से कोई भी तत्व आधुनिक समुन्नत राष्ट्रों के लिए अनिवार्य नहीं रह गया है। जाति और धर्म संबंधी एकता अब राष्ट्र के लिए कोई अनिवार्य तत्व नहीं रह गयी है। फिर भी धार्मिक मतभेद राष्ट्र की एकता में बाधक अवश्य बन सकते हैं। ऐसे राष्ट्रों में राजनीति और प्रशासन के लिए धर्मनिरपेक्षता की नीति अनिवार्य बन जाती है। धार्मिक मतभेद के

कारण हिन्दुस्तान और पाकिस्तान अलग राष्ट्र बने। इंगलैंड, जर्मनी, स्विटजरलैंड, रूस, अमेरिका, भारत आदि में विभिन्न जातियों और धर्मों के लोग एक साथ रहते हैं। चीन बौद्ध, इस्लाम और इसाई मतावलंबियों के बावजूद एक राष्ट्र है। भौगोलिक एकता कई कारणों से राष्ट्र के स्थायित्व के लिए एक आवश्यक तत्व माना जा सकता है। इसके अभाव में सांस्कृतिक भिन्नता, भाषा आदि का अंतर तो आता ही है, साथ ही प्रशासनिक दृष्टि से भी असुविधा होती है। यही कारण है कि पूर्वी बंगाल बहुत दिनों तक पाकिस्तान का अंग नहीं रह सका। राजनीतिक संप्रभुता राष्ट्र को एक अखण्ड इकाई बनाने के लिए आवश्यक तत्व हैं। इसी के कारण विभिन्न राष्ट्रीयताओं या जातीयताओं के लोग सद्भावपूर्वक, भाईचारे की भावना के साथ एक राष्ट्र में रहते हैं। समान शासन राजनीतिक एकता का वह तत्व है जो राष्ट्र की अखण्डता को सुरक्षित रखता है। "एक राष्ट्र : एक राज्य" की परिकल्पना को साकार करने में एक सरकार का होना अनिवार्य है। कनाडा में फ्रांसीसी और अंग्रेज सदियों से एक ही राज्य और सरकार के अधीन रहने के कारण अपने को कनाडा निवासी समझते हैं। इसी तरह भारत में हिन्दू, मुसलमान और इसाई जब तक अपने को और एक दूसरे को पूरी तरह भारतीय नहीं मान लेते तब तक राष्ट्र की एकता के लिए खतरा बना रहेगा। धर्मनिरपेक्षता की नीति और उसका दृढ़तापूर्वक पालन समान शासन द्वारा इस उद्देश्य को आसानी से प्राप्त किया जा सकता है। राष्ट्रीयता का सबसे स्पष्ट तत्व भाषा है, जिसके माध्यम से राजनीतिक एकता में भी सहायता मिलती है। बहुत से बहुराष्ट्रीयता वाले देश बहुभाषी भी हैं। ऐसे देशों में सभी भाषाओं में समानता और एकता का भाव आवश्यक है। इसी प्रकार समान ऐतिहासिक-सांस्कृतिक विरासत भी राष्ट्रीयता की भावना को दृढ़ करती है। अधिकांश राष्ट्र अपना पृथक इतिहास रखते हैं। इतिहास सदियों में बनता है, जिसके माध्यम से हमारी संस्कृति और साहित्य सुरक्षित रहता है। इनसे गुलाम देश में विदेशी शासन से मुक्ति के लिए लड़े गए स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्रीय भावना का निर्माण होता है। इसी प्रकार समान हित और समान आर्थिक लाभ भी एक क्षेत्र विशेष के लोगों को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बांधने के लिए आवश्यक है। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है उपर्युक्त सभी तत्व राष्ट्रीय भावना के प्रसार और उसके एकीकरण में सहायक होते हैं। देशकाल की परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप कभी और कहीं कोई तत्व अधिक महत्वपूर्ण बन जाता है, तथा कुछ तत्वों की अनुपस्थिति में भी राष्ट्रीय भावना दृढ़ हो सकती है।

3.7.1 एक राष्ट्र के रूप में भारत का विकास

यहाँ आपके सामने एक ऐसे प्रश्न पर विचार किया जा रहा है, जिसके संबंध में आपकी कुछ अपनी भी मान्यताएँ होंगी। आप यह सोच सकते हैं अशोक, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, अकबर के समय में भी भारत एक राष्ट्र रहा है। लेकिन राष्ट्र की आधुनिक परिभाषा पर विचार करते हुए हमने अच्छी तरह देख लिया है कि इस संबंध में हमारी परम्परागत धारणाएँ भ्रामक हैं। राष्ट्र और राष्ट्रीय भावना की अवधारणा आधुनिक औद्योगीकरण और पूंजीवाद के विकास की देन है। अशोक, चन्द्रगुप्त, अकबर का भारत के बहुत बड़े भू-भाग पर अधिकार अवश्य था लेकिन देश के शासन की बागडोर विभिन्न क्षेत्रीय सामंतों-सरदारों के हाथ में थी। यह सामंती व्यवस्था देश के राष्ट्रीय स्वरूप में बाधक थी। इस व्यवस्था के टूटने पर ही राष्ट्रीय चेतना का विकास संभव था। यह कार्य सम्पूर्ण देश के ब्रिटिश शासन के अधीन होने के बाद आरंभ हुआ। इसका मूल केन्द्र बना साम्राज्यवादी विरोधी या औपनिवेशिक गुलामी से मुक्ति का संघर्ष।

उपर्यक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि राजा राममोहन राय ने राष्ट्रीयता के बीज बोये थे। विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलनों ने उससे अंकुर उगाने में मदद की। सही अर्थों में भारत का एक राष्ट्र के रूप में देखने की भावना का उदय राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के दौरान हुआ। इसका प्रस्थान बिन्दु 1857 का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम बना। 1857 से पूर्व भी कुछ ऐसे संगठन अवश्य बने थे, जिन्होंने अखिल भारतीय स्तर पर, राजनीतिक रूप से कुछ समस्याओं को उठाया था। ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन (1851), "बाम्बे एसोसिएशन" (1882), "पूना डक्कन एसोसिएशन" (1852) आदि के नाम इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। "ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन" ने बहुत सारे भारत

विरोधी कानूनों की आलोचना की, भारतीय प्रशासन के जनतंत्रीकरण और उसमें भारतवासियों के प्रतिनिधित्व की मांग उठायी। सिविल सर्विस आंदोलन, अनेक जनतांत्रिक मांगों और वैधानिक अधिकारों की लड़ाई को वह बराबर राजनीतिक रंग देता रहा। लेकिन 1857 के सशस्त्र विद्रोह के बाद ब्रिटिश सत्ताधारियों ने इन तमाम संगठनों पर कठोर अंकुश लगा दिए। सशस्त्र आंदोलन में भाग लेने वाली हिन्दू-मुसलमान जनता का कठोर दमन किया गया। इसके फलस्वरूप 1870 के बाद अनेक राष्ट्रीय संगठनों का निर्माण हुआ। इस दृष्टि से "पूना सार्वजनिक सभा" (1870) "इंडियन एसोसिएशन" (1876), "मद्रास महाजन सभा" (1884), "डक्कन एजुकेशन सोसायटी" (1884) आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

उपर्युक्त सभी संगठनों का चरित्र राष्ट्रीय और धर्मनिरपेक्ष था। इनके द्वारा एक और समाज के विभिन्न वर्गों का असंतोष व्यक्त हो रहा था तो दूसरी ओर भारत की राष्ट्रीय चेतना का तीव्र प्रवाह भी प्रकट हो रहा था। इन संगठनों ने राष्ट्रीय आंदोलन को अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त लोगों तक सीमित न रखकर उसे भारतीय जनता के विभिन्न वर्गों तक ले जाने का प्रयास किया। अतः इनके माध्यम से समूची भारतीय जनता का तीव्र असंतोष व्यक्त हो रहा था। इस असंतोष को नियंत्रित करने के लिए ही 1885 में "भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस" की स्थापना हुई थी। लेकिन दो-तीन वर्ष तक सरकारी नियंत्रण में रहने के बाद लगभग 50 वर्षों तक राष्ट्रीय आंदोलन की बागडोर इसी संगठन के हाथ में रही है। इसके नेतृत्व और राष्ट्रीय आंदोलन के विकास के संबंध में आपको पिछली इकाई में विस्तार से बताया जा चुका है। इस संस्था ने भारत को एक राष्ट्र का रूप प्रदान करने और राष्ट्रीय चेतना के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

3.7.2 उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष

भारत को एक राष्ट्र का रूप प्रदान करने और राष्ट्रीय चेतना का विकास करने में औपनिवेशिक दासता के विरुद्ध समस्त भारतीय जनता के संघर्ष का सबसे अधिक महत्व है। भाषा, धर्म, संप्रदाय, जाति-प्रजाति, रहन-सहन, खान-पान, भौगोलिक दूरी, जलवायु आदि के संबंध में भारत में इतनी विविधता है कि इसका एक राष्ट्र के रूप में विकसित हो पाना बहुत कठिन था। सांस्कृतिक एकता को लेकर कहा जाता है कि यहां विविधता में भी एकता है। यह बात तो पूरे यूरोप के संबंध में, विशेष रूप से पश्चिमी यूरोप के संबंध में भी कही जा सकती है। इसके बावजूद वहां दर्जनों राष्ट्र अस्तित्व में आए। अतः भारत में एकता की अपेक्षा विभेदक तत्व अधिक हैं। लेकिन एक लम्बे समय तक ब्रिटिश शासन की गुलामी से मुक्ति के लिए चलने वाले संघर्ष ने भारत की जनता को एकसूत्रता प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है। इस गुलाम देश में विदेशी शासन से मुक्ति प्राप्त करने के लिए लड़े गए स्वतंत्रता संग्राम द्वारा राष्ट्रीय चेतना को ठोस रूप प्राप्त हुआ है। इस संग्राम में क्षेत्रीयता, भाषायी, धार्मिक, जातीय, सभ्यता और संस्कृति संबंधी मतभेदों को भूलकर भारतीय जनता एक हुई है। उसने आपसी प्रेम, पारस्परिक सद्भाव, समानता और भाई-चारे की भावना को इस संग्राम के माध्यम से दृढ़ किया है। क्योंकि इसी में उनका अपना लाभ निहित था।

भारत में नयी भूमि व्यवस्था के अंतर्गत जमींदारी और रैयतवारी व्यवस्था के लागू होते ही यहां की आत्मनिर्भर ग्राम व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गयी। अब उसका उत्पादन बाजार से जुड़ गया, जिस पर ब्रिटिश शासन सत्ता के माध्यम से ब्रिटेन का पूंजीपति वर्ग हावी था। अतः देशी (राष्ट्रीय) नवजात पूंजीपति वर्ग का उसके साथ प्रतियोगिता में आना स्वाभाविक था। हर देश का पूंजीपति वर्ग अपना राष्ट्रीय बजार सुरक्षित रखना चाहता है। ब्रिटिश शासनतंत्र अपनी सत्ता का दुरुपयोग केवल नवोदित भारतीय पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध ही नहीं कर रहा था, बल्कि ग्रामीण किसान और मजदूर वर्ग के आर्थिक शोषण को भी तीव्र कर रहा था। ऐसी स्थिति में भारत के पूंजीपति वर्ग की ओर से पहले कुछ अधिकारों और प्रशासनिक सुधारों की मांग उठाई गयी। आगे चलकर उसने भारत के शोषित-उत्पीड़ित वर्गों को भी गोलबंद किया और उनका नेता बनकर क्रमशः अधिक अधिकारों की मांग उठायी। इसी प्रक्रिया में स्वदेशी के प्रयोग, असहयोग, सत्याग्रह आदि जैसे देशभक्ति पूर्ण नारों को प्रचारित किया गया। ये राष्ट्रीय नारे बने। स्वदेशी आंदोलन वस्तुतः देशी

(राष्ट्रीय) बाजार की प्राप्ति का पूंजीवादी आंदोलन था चूंकि यह पूरे देश में फैला, इसलिए यह स्वदेश प्रेम और स्वाधीनता का आधार भी बना। स्थान-स्थान पर विदेशी कपड़ों और अन्य विदेशी वस्तुओं की होली जलाई गयी। विदेशी माल की दुकानों पर धरने दिये गये। स्वदेशी का यह आंदोलन विदेश में बनी वस्तुओं के विरोध तक ही सीमित नहीं रहा। इसने भाषा, संस्कृति आदि अनेक क्षेत्रों में भी अपने को प्रकट किया। स्वदेशी भाषा, भारतीय संस्कृति को विदेशी भाषा और विदेशी संस्कृति के विरुद्ध खड़ा किया गया। विभिन्न भारतीय भाषाओं को राष्ट्रीय आंदोलन के दौर में विकसित होने में सफलता मिली। हिंदी, उर्दू, मराठी, बंगला आदि का राष्ट्रीय साहित्य सामने आया। अगली इकाइयों में इस संबंध में आपको पूरी जानकारी मिल सकेगी।

वैसे तो 1857 के सशस्त्र संग्राम के बाद भारतीय समाज में एक वर्ग के रूप में विभिन्न वर्गों का उदय और उनके अंतर्विरोध उभरने लगे थे। लेकिन प्रथम विश्वयुद्ध के परिणाम स्वरूप भारतीय समाज के सभी प्रमुख वर्गों के मध्य उपस्थित अंतर्विरोध तेज हुए। युद्ध से उत्पन्न आर्थिक मंदी का सबसे गहरा प्रभाव भारतीय मजदूर और किसान के जीवन पर पड़ा। इस आर्थिक संकट ने एक ओर ब्रिटिश पूंजीपतियों और भारत के बड़े राष्ट्रीय पूंजीपतियों के बीच विरोध को तेज किया तो दूसरी और देश के बड़े और छोटे पूंजीपतियों के बीच के अंतर्विरोध को भी बढ़ाया। इसके साथ ही देशी पूंजीपतियों और मजदूरों के बीच तथा किसानों और जमींदारों के बीच के अंतर्विरोध भी तीव्र हुए। 1928 के आसपास वेतन में कटौती, मजदूरों की छंटनी, बढ़ती हुई महंगाई के बावजूद कृषि-उपज के मूल्यों में स्थिरता, बढ़ते हुए भूमिकर आदि ने भारतीय जनता में व्यापक आक्रोश पैदा किया। इन स्थितियों के बीच जो सबसे तीखा और प्रमुख अंतर्विरोध सिद्ध हुआ, वह समस्त भारतीय जनता और ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के बीच का अंतर्विरोध था। इन सबकी वजह से देश की जनता में एक क्रांतिकारी उभार नजर आया। इसमें सशस्त्र क्रांतिकारियों की गतिविधियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये सभी तथ्य भारत को एक राष्ट्र का रूप देने में सहायक सिद्ध हुए।

राष्ट्रीय चेतना के विस्तार और उसे दृढ़ बनाने में 1930 के बाद की परिस्थितियों ने विशेष योग दिया। बहिष्कार, असहयोग, सत्याग्रह, सविनय अवज्ञा जैसे नारों की वजह से महात्मा गांधी देश के निर्विवाद नेता बने। उनके आह्वान का देश की जनता पर गहरा असर पड़ता था। लेकिन इन आंदोलनों को वे जिन सीमाओं में रखना चाहते थे, वह कभी संभव नहीं हुआ। मिल मजदूरों की हड़ताल, किसानों के लगानबंदी और जमींदारों के शोषण के विरुद्ध आंदोलन सभी को राजनीतिक रंगत मिलने लगी। जमींदार विरोधी किसान आंदोलनों का चरित्र भी उपनिवेशवादी शोषण के विरुद्ध आंदोलन का रूप धारण करने लगा। राष्ट्रीय आंदोलन के दमन और नेताओं की गिरफ्तारी से देशव्यापी आंदोलन होने लगे। इसमें समाज के सभी तबके सक्रिय हुए थे। 6 मई 1930 में गांधी जी की गिरफ्तारी पर पूरे देश में व्यापक हड़ताल हुई। इन सारी गतिविधियों से समस्त भारतीय जनता की एकता दृढ़ हुई। भाषा, क्षेत्र, धर्म, सम्प्रदाय आदि की दीवारें ढह गयीं। कहने का मतलब कि उपनिवेशवादी गुलामी से मुक्ति के संघर्ष के दौरान भारत की राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ, जिसका एक लम्बा और संघर्षपूर्ण इतिहास है। इस प्रक्रिया में अपनी ढुलमुलपन की नीति को त्याग कर मध्य वर्ग के एक बड़े हिस्से ने भी अपना अमूल्य योगदान किया है।

3.8 नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का अंतःसंबंध

भारतीय संदर्भों में नवजागरण की चेतना के विकास में मध्यकालीन सामंतीय रूढ़ियों के विरोध के साथ ही आगे चलकर उपनिवेशवादी दासता के विरोध की भावना का भी पर्याप्त योगदान रहा है। यहाँ ब्रिटिश शासन सत्ता एक तरफ भारत की स्वाधीन चेतना को अवरुद्ध कर रही थी तो दूसरी ओर सामंतविरोधी चेतना के विकास में भी बाधक थी। क्योंकि वह सामंतीय तत्वों के साथ गठजोड़ द्वारा ही अपने शासन को स्थायी और दृढ़ बनाने के प्रयास में थी। अतः जनता की स्वतंत्रता, समानता और भातृत्व जैसी जनतांत्रिक

चेतना का विकास उसके हित में नहीं था। यूरोप में नवजागरण ने जिस प्रकार राष्ट्रीयता की भावना के मार्ग को प्रशस्त किया वैसा भारत में नहीं हो पाया। लेकिन आगे चलकर वहाँ भी राष्ट्रीय चेतना के उदय और विकास के क्रम में नवजागरण के मूल्य अधिक ठोस हुए। यूरोप का नवजागरण मूलतः सामंत-विरोधी जागरण था, जिसकी तीन प्रमुख विशेषताएँ थीं—धर्मनिरपेक्षता, मानवतावादी विश्वदृष्टि तथा प्राचीन संस्कृति पर निर्भरता। ये विशेषताएँ न्यूनाधिक मात्रा में "एक राज्य—एक राष्ट्र" के रूप में राष्ट्रीयता की चेतना के उदय और विकास में भी सहायक बनीं। यह बात इटली के नवजागरण और राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से एकदम सही है। क्योंकि वहाँ प्राचीनता और राष्ट्रीयता की दोनों परम्पराएँ एक साथ आईं।

यूरोप के अन्य देशों में राष्ट्रीय विकास ने बाद में चलकर नवजागरण के विस्तार का मार्ग प्रशस्त किया। लेकिन भारतीय परिस्थितियों में राष्ट्रीय चेतना के उदय के पूर्व ही ब्रिटिश शासन सत्ता की इच्छा के विरुद्ध विभिन्न सुधार आंदोलनों के माध्यम से नवजागरण का सूत्रपात हुआ। इसका भी आरंभिक रूप धर्मनिरपेक्ष एवं मानवतावादी ही रहा। लेकिन प्राचीन संस्कृति के प्रति इसमें प्रगति और पुनरूत्थान का मिश्रण भी प्रायः बना रहा। राष्ट्रीयता की चेतना के उदय और राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलनों की शुरुआत से नवजागरण आंदोलन को यहाँ बल मिला। इस दृष्टि से राष्ट्रीयता की भावना और नवजागरण में प्रायः समानता दिखायी देती है। इन दोनों के बीच अविरोध भाव ही दोनों के स्वस्थ विकास के लिए अनिवार्य शर्त है। लेकिन भारतीय परिस्थितियों में राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण संबंधी मान्यताओं के बीच पर्याप्त अंतर्विरोध भी दिखायी देता है। यह अंतर्विरोध राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय प्रमुख शक्तियों के अंतर्विरोधों के कारण अधिक गहरा भी हुआ है। सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलनों में जो अंतर हमें राजा राममोहन राय और स्वामी दयानंद सरस्वती के विचारों में मिलता है, उसका स्पष्ट प्रतिबिंबन 1885 ई. में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के उदारवादी और उग्र राष्ट्रवादी नेताओं के विचारों में भी स्पष्ट रूप से हुआ है।

कांग्रेस के पुराने नेताओं विशेष रूप से सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, फिरोजशाह मेहता, महादेव गोविन्द रानाडे, गोपाल कृष्ण गोखले आदि कांग्रेस को एक उदारवादी मार्ग पर चलाना चाहते थे। जबकि बाल गंगाधर तिलक, विपिन चन्द्र पाल, अरविंद घोष, लाला लाजपत राय आदि उसे एक संघर्षशील उग्र मार्ग पर ले जाना चाहते थे। दूसरी इकाई में नरमदल और गरमदल या उदारवादी और राष्ट्रवादी के रूप में इन दोनों धड़ों का परिचय आपको दिया जा चुका है। यहाँ राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण संस्कृति के मध्य उपस्थित तीखे अंतर्विरोध पर प्रकाश डालना ही हमारा लक्ष्य है। इस संबंध में श्री अयोध्या सिंह का यह कथन अत्यंत महत्वपूर्ण है। *"नेशनलिस्ट (राष्ट्रवादी) माडरेटों (उदारवादियों) से राजनीतिक विचारों में जितने आगे थे, सामाजिक विचारों में उतने ही पीछे थे। नेशनलिस्टों के राजनीतिक विचारों और माडरेटों के सामाजिक विचारों को लेकर अगर कोई नेतृत्व पैदा होता तो देश राष्ट्रीय स्वाधीनता और समाजवाद की तरफ बड़े तेज कदमों से चलता और प्रतिक्रियावादी तथा विभाजनवादी शक्तियों को सिर उठाने का मौका न मिलता।"* (भारत का मुक्ति संग्राम, पृ. 158-59)।

1890 में जब लड़कियों की शादी की उम्र 10 वर्ष से बढ़ाकर 12 वर्ष करने का कानूनी प्रस्ताव उपस्थित हुआ तो तिलक ने इसका विरोध किया, जबकि रानाडे, गोखले आदि इसका समर्थन कर रहे थे। तिलक ने शिवाजी उत्सव और गणेश पूजा जैसे साम्प्रदायिक रंगत वाले उत्सवों को राष्ट्रीय उत्सव के रूप में मनाना शुरू किया यही नहीं, उन्होंने गोरक्षा समिति बना कर उसके लिए आंदोलन किया और कांग्रेस के मंच से ऐसी समस्या को उठाने का असफल प्रयास किया। बंगाल में भी काली पूजा को इसी रूप में लिया गया। यह सब स्वस्थ नवजागरण की चेतना के विपरीत ही नहीं था, बल्कि धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय चेतना के विकास में भी बाधक बना। ऐसी चीजों का फायदा उठाकर अंग्रेज शासकों के लिए हिन्दू-मुसलमानों के बीच शत्रुता पैदा करने में आसानी हुई और कांग्रेस को सहज ही हिन्दू संगठन साबित कर दिया गया। इसका परिणाम था 1906 में मुस्लिम लीग की स्थापना और मिस्टर जिन्ना जैसे कट्टर कांग्रेसी और धर्मनिरपेक्ष मान्यताओं वाले नेता का 1921 में मुस्लिम लीग का अध्यक्ष बनना और अंततः 1947 में भारत-पाक विभाजन। इसके बावजूद

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि राष्ट्रीयता चेतना के प्रसार में उग्र राष्ट्रवादियों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इनमें विशेष रूप से तिलक ने राष्ट्रीय आंदोलन को साधारण जनता के बीच ले जाने का सफल प्रयास किया है। फिर भी इसे स्वीकार करना पड़ेगा कि इस बिन्दु पर आकर राष्ट्रीयता और नवजागरण के मध्य एक गहरा विरोध-भाव भी पैदा हुआ तथा दोनों का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप एक सीमा तक खंडित हुआ।

नवजागरण मूल्य-मानों के दृढ़ीकरण में राष्ट्रीयता की भावना और राष्ट्रीय आंदोलन की भूमिका

राष्ट्रीयता की भावना और नवजागरण संस्कृति के जिन अंतर्विरोधों की ओर संकेत किया गया है, वे परिस्थितिजन्य होने के साथ ही तत्कालीन नेतृत्व की प्राचीन संस्कृति के प्रति भिन्न-भिन्न दृष्टि को रेखांकित करते हैं। इस तरह की भिन्नता हमें यूरोपीय नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के पारस्परिक संबंधों में भी दिखायी दे सकती हैं। यह भिन्नता या अंतर्विरोध किसी स्थायी विशेषता के संकेतक नहीं हैं। राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण प्रायः परस्पर अवलंबित हैं और दोनों ही एक दूसरे के विकास में सहयोगी बन कर आते हैं। कुछ अंतर्विरोधों के बावजूद भारतीय स्थितियों में भी हम इस तथ्य को आसानी से देख सकते हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलनों के माध्यम से भारतीय नवजागरण में भाग लेने वाली प्रगति एवं पुनरूत्थान की दोनों धाराएँ समानांतर प्रवाहित हुई हैं। अपनी पुनरूत्थानवादी दृष्टि के बावजूद तिलक अपने समय में राष्ट्रीय आंदोलन के सर्वाधिक लोकप्रिय नेता सिद्ध हुए। उन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को अपेक्षाकृत अधिक व्यापक जनाधार दिया। कम-से-कम उसे निम्न मध्य वर्ग तक ले गए। आगे चलकर महात्मा गांधी ने कांग्रेस की बागडोर संभाली। सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से उनकी अधिकांश मान्यताएँ पुनरूत्थानवादी दृष्टि से अनुप्राणित थीं। फिर भी राष्ट्रीय आंदोलन को किसान-मजदूर जनता तक ले जाकर उन्होंने राष्ट्रीय चेतना के साथ ही नवजागरण संस्कृति के मार्ग को प्रशस्त किया।

महात्मा गांधी के आह्वान पर, समूचे देश की जनता राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय ही हुई। गांधी जी की वर्ण-व्यवस्था और जाति प्रथा संबंधी मान्यताओं की सीमाओं को तोड़कर स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे की भावना से परिपूर्ण होकर देश की किसान-मजदूर साधारण जनता ने अपनी राष्ट्रीय एकता का परिचय दिया। देश की आजादी के लिए लड़े जाने वाले राष्ट्रीय संघर्ष ने बीसवीं शती के तीसरे और चौथे दशक में नवजागरण की प्रक्रिया को केवल तेज ही नहीं किया, वरन् उसे ठोस और व्यापक भी बनाया। महात्मा गांधी के नेतृत्व से पूर्व राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण का प्रभाव क्षेत्र उच्च वर्ग या अधिक-से-अधिक शिक्षित मध्यवर्ग तक ही सीमित था। लेकिन गांधी जी के नेतृत्व में सेवा समितियों के गठन और असहयोग तथा सत्याग्रह के माध्यम से स्वाधीनता संघर्ष की भावना शहरों के साथ गांव-गांव तक सभी तबकों के बीच पहुँची। यह सही है कि सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्रीय जागरण को एकसूत्रता प्रदान करने में उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष सबसे महत्वपूर्ण है। लेकिन यह संघर्ष राजनीतिक स्वाधीनता या राष्ट्रीय जागरण तक ही सीमित नहीं रहा, नवजागरण के रूप में व्यापक सामाजिक जागरण भी इसके साथ जुड़ा। देश की स्वतंत्रता के साथ जन-जन की स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की भावना का मेल किसी एक व्यक्ति का कार्य न होकर जनता के प्रयास का प्रतिफल है। यही राष्ट्रीयता तथा नवजागरण की चेतना का भी आधार है। इससे स्पष्ट है कि राष्ट्रीय भावना और नवजागरण एक दूसरे के पूरक हैं। किसी एक की अनुपस्थिति में दूसरे का अस्तित्व में आना, बने रहना और स्वस्थ तथा ठोस रूप धारण करना संभव नहीं है।

बोध प्रश्न

9) राष्ट्र की अवधारणा का उदय कैसे हुआ?

.....

.....

10) धर्म आधारित राष्ट्रीयता भारत के लिए अहितकर क्यों है?

.....

.....

.....

11) एक राष्ट्र के रूप में भारत का उदय कब हुआ?

.....

12) उदारवादियों और राष्ट्रवादियों में मुख्य अंतर क्या है?

.....

अभ्यास

6) भारत में राष्ट्रीय चेतना के विकास में उपनिवेशवाद विरोधी संघर्ष की भूमिका स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

7) भारतीय संदर्भ में राष्ट्रीय भावना और नवजागरण की चेतना के अंतर्विरोधों के प्रमुख बिंदुओं का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3.9 सारांश

- नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का विकास नामक इस इकाई में आपने भारतीय नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के विकास के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया है। भारत में पूंजीवाद के स्वाभाविक विकास से पूर्व ही यहाँ ब्रिटिश सत्ता की स्थापना हो गई जिसने भारत में पूंजीवाद के विकास को प्रभावित किया।
- नवजागरण की चर्चा सबसे पहले यूरोप में हुई जब पंद्रहवीं शताब्दी में इटली तथा दूसरे यूरोपीय देशों में उदीयमान पूंजीवादी शक्तियों और सामंतवाद के बीच सीधी टक्कर हुई और इससे नये जीवन मूल्य अस्तित्व में आए।
- नवजागरण की अवधारणा को पुनर्जागरण, पुनरूत्थान और समाज सुधार के संदर्भ में ही समझा जा सकता है। नवजागरण न तो अतीत के किसी जागरण का पुनर्जागरण है और न ही अतीत की पुनर्प्रतिष्ठा। नवजागरण तो अतीत के सड़े-गले मूल्यों को त्याग कर नये युग के अनुरूप नये मूल्यों की स्थापना है।
- यूरोप के नवजागरण से भारतीय नवजागरण का मुख्य अंतर यह है कि भारत में नवजागरण की भावना का विकास राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के दौर में हुआ। भारत में नवजागरण का उदय मध्ययुगीनता की समाप्ति, औपनिवेशिकता के दौर में पूंजीवाद के विकास और अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव के बीच हुआ। विभिन्न धार्मिक और सामाजिक सुधार आंदोलनों ने इसे गति और शक्ति प्रदान की यद्यपि पुनरूत्थानवादी भावनाओं ने इस पर नकारात्मक प्रभाव भी डाला।
- राष्ट्र के रूप में भारत का विकास भी राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष के दौर में हुआ। भारत एक बहुराष्ट्रीयता का देश है जहाँ विभिन्न धर्म, जाति, भाषा और संस्कृति के

लोग रहते हैं इसलिए भारत में राष्ट्रीयता का विकास के आधार बने धर्मनिरपेक्ष, लोकतंत्र और समाजवाद के मूल्य।

- नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का गहरा संबंध है यद्यपि उग्र राष्ट्रवादी विचार सांप्रदायिक और पुनरूत्थान रूप में उभरे जिसकी प्रतिक्रिया ने द्विराष्ट्र के सिद्धांत को जन्म दिया। लेकिन अंततः नवजागरण के श्रेष्ठ मूल्य और राष्ट्रीय भावना का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप ही हमारे देश को बनाये और बचाये रख सकता है। इकाई को पढ़कर आप इन सभी पक्षों को अपने शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं।

3.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- रजनी पामदत्त : *आज का भारत*, मैकमिलन, नयी दिल्ली।
- डॉ. अयोध्या सिंह : *भारत का मुक्ति संग्राम*, रेखा प्रकाशन, कलकत्ता।
- इरप्रकाश गौड : *सरस्वती और राष्ट्रीय नवजागरण*, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।
- ए.आर. देसाई : *भारतीय सष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि*, मैकमिलन नयी दिल्ली।
- के. दामोदरन : *भारतीय चिंतन परंपरा*, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली।
- डॉ. रामविलास शर्मा : *महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
- डॉ. रामविलास शर्मा : *भारतेन्दु हरिशचंद्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएँ*, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।

3.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) ख)

2) ग)

3) स्वामी दयानंद सरस्वती ने।

4) घ)

5) घ)

6) उन्होंने सामंती शासकों के साथ समझौता कर लिया।

7) 1. स्वामी दयानंद, 2. महादेव गोविंद रानाडे 3. राजा रामामोहन राय

8) गरम पंथी राष्ट्रवादी नेता समाज सुधार आंदोलनों के विरोधी थे। उनका दृष्टिकोण धर्म और समाज के मामले में पुरातनपंथी था।

9) राष्ट्र की अवधारणा का उदय पूंजीवाद के उदय के साथ हुआ।

10) भारत में कई धर्मों के मानने वाले लोग सदियों से साथ-साथ रहते आए हैं। उनके बीच सच्ची एकता किसी एक धर्म के वर्चस्व की स्थापना से नहीं हो सकती। वह तो धर्मनिरपेक्षता के द्वारा ही संभव है।

11) एक राष्ट्र के रूप में भारत का उदय राष्ट्रीय स्वाधीनता संघर्ष के दौरान हुआ।

12) उदारवादी सामाजिक विचारों में प्रगतिशील थे जबकि राष्ट्रवादी राजनीतिक विचारों में अधिक उग्र थे।

अभ्यास

1) अतीत के किसी युग में हुए जागरण को आदर्श मानकर अपने युग के जागरण को उसी की अगली कड़ी मानना पुनर्जागरण है। जैसे भक्ति आंदोलन के जागरण की ही अगली कड़ी 19वीं सदी के जागरण को मानने पर उसे पुनर्जागरण कहा जाएगा जबकि नवजागरण का इस तरह से अतीत के किसी आंदोलन से संबंध नहीं होता।

2) नवजागरण में एक नये तर्कसंगत, विवेकसम्मत और युग की आवश्यकताओं के अनरूप व्यापक सुधार की भावना पर अधिक जोर होता है जबकि पुनरुत्थान में अतीत की पुनर्प्रतिष्ठा को अधिक महत्व दिया जाता है। 19वीं सदी के समाज सुधार आंदोलन में कई समाज सुधारकों ने "वेदों की ओर लौटो" का नारा दिया तो वस्तुतः पुनरूत्थानवादी दृष्टि का ही परिणाम था।

3) नवजागरण के दौरान मध्यकालीन सामंती रूढ़ियों का विरोध स्वाभाविक है। सतीप्रथा, बाल विवाह, जाति-प्रथा, बहुविवाह, अस्पृश्यता आदि कुरीतियों का विरोध इसीलिए किया गया क्योंकि ये मानवीय समानता के विचार से मेल नहीं खाते थे। लेकिन हमारी प्राचीन संस्कृति के वे तत्व जो आज भी उपयोगी हो सकते हैं, उन्हें स्वीकार भी किया गया जैसे विश्व मानवता, धार्मिक सहिष्णुता आदि की भावना।

4) देखिए उपभाग 3.5.3

5) यद्यपि आर्य समाज ने भी बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बहुविवाह एवं जाति प्रथा का विरोध किया और स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, का समर्थन किया। परंतु धार्मिक मामलों में उसका दृष्टिकोण असहिष्णु था। न केवल दूसरे धर्मों के प्रति वरन् हिंदू धर्म में भी स्वामी दयानंद केवल वेदों की शिक्षा को ही श्रेष्ठ और सत्य मानते थे और दूसरे पंथों की निंदा करते थे। इससे राष्ट्रीय एकता में सहायता नहीं मिल सकती थी।

6) भाग 3.7 के अंश "उपनिवेशवाद के विरुद्ध संघर्ष" को देखिए।

7) देखिए भाग 3.8

इकाई 4 भारतीय साहित्य में नवजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 आधुनिक भारतीय साहित्य की पृष्ठभूमि
4.3 आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास
4.4 नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन की सामान्य विशेषताएँ
4.5 आधुनिक भारतीय साहित्य का उदय
4.6 पूर्वांचलीय साहित्य
- 4.6.1 बंगला साहित्य
- 4.6.2 असमिया साहित्य
- 4.6.3 उड़िया साहित्य

4.7 पश्चिमांचलीय साहित्य
- 4.7.1 मराठी साहित्य
- 4.7.2 गुजराती साहित्य

4.8 दक्षिणांचलीय साहित्य
- 4.8.1 तमिल साहित्य
- 4.8.2 तेलुगु साहित्य
- 4.8.3 कन्नड़ साहित्य
- 4.8.4 मलयालम साहित्य

4.9 उत्तरांचलीय साहित्य
- 4.9.1 उर्दू साहित्य
- 4.9.2 सिंधी साहित्य
- 4.9.3 पंजाबी साहित्य
- 4.9.4 कश्मीरी साहित्य

4.10 हिंदी का आधुनिक साहित्य
4.11 आधुनिक भारतीय साहित्य का ऐतिहासिक योगदान
4.12 सारांश
4.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें
4.14 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

4.0 उद्देश्य

"भारतीय साहित्य में नवजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति" नामक इस इकाई में आप आधुनिक भारतीय साहित्य में अभिव्यक्त नवजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना की विशेषताओं का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- आधुनिक भारतीय साहित्य की पृष्ठभूमि का उल्लेख कर सकेंगे,
- आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास को स्पष्ट कर सकेंगे,
- नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की सामान्य विशेषताएँ बता सकेंगे,
- आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे, तथा
- आधुनिक भारतीय साहित्य के ऐतिहासिक योगदान को बता सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

'आधुनिक भारतीय साहित्य : राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण" नामक इस पाठ्यक्रम में पहले खंड की यह चौथी और अंतिम इकाई है। पहली इकाई "आधुनिक युग की भूमिका' में आपने आधुनिक युग के आरंभ, उसकी विशेषताओं, मध्यकाल से उसके अंतर तथा आधुनिक साहित्य की अवधारणा से आपको परिचित कराया जा चुका है। दूसरी इकाई में आपने राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के विभिन्न चरणों का परिचय प्राप्त किया है। तीसरी इकाई "नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का विकास" में भारतीय नवजागरण की पृष्ठभूमि, नवजागरण की अवधारणा, नवजागरण और पुनर्जागरण के अंतर तथा पुनरुत्थान और सामाजिक सुधार का आशय स्पष्ट किया गया है। इकाई में यूरोपीय नवजागरण की विशेषताओं से भी परिचित कराया गया है। आप उन परिस्थितियों से भी परिचित हो चुके हैं जिनके बीच नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ। नवजागरण में विभिन्न धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलनों का परिचय भी आप पा चुके हैं। भारत में राष्ट्रीय चेतना के विकास और नवजागरण से उसके संबंध में विभिन्न पहलुओं को भी आप समझ चुके हैं। इस चौथी इकाई में आधुनिक भारतीय साहित्य में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति पर प्रकाश डाला गया है। आधुनिक भारतीय साहित्य का आरंभ कब हुआ, वह पहले के साहित्य से किन अर्थों में भिन्न था तथा आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास ने इसमें क्या योग दिया। इस पर इस इकाई में विचार किया जाएगा। नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की उन सामान्य विशेषताओं से भी आपको परिचित कराया जाएगा जिनकी अभिव्यक्ति आधुनिक भारतीय साहित्य में हुई है।

वैसे तो आप नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के संदर्भ में विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्य का अध्ययन आगे के खंडों में करेंगे। परन्तु इस इकाई में हम आपको सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं के साहित्य में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति का संक्षिप्त परिचय देंगे ताकि आप आगे के खंडों में व्यक्त बातों को सही परिप्रेक्ष्य में समझ सकें। इकाई के अंत में हमने आधुनिक भारतीय साहित्य के ऐतिहासिक योगदान पर भी विचार किया है, जिससे आपको इन साहित्य के महत्व को समझने में सहायता मिलेगी। इकाई में दिये गये बोध प्रश्न और अभ्यास से आपने इकाई में कही गई बातों को कितना समझा, यह जानने में भी मदद मिलेगी।

4.2 आधुनिक भारतीय साहित्य की पृष्ठभूमि

जैसा कि हम इस खंड की पहले की इकाइयों में बता चुके हैं भारत में आधुनिक युग की शुरुआत 19वीं सदी से मानी जाती है। वैसे तो अंग्रेज़ों का शासन स्थापित होने से पूर्व मुग़लों के शासन काल में भारतीय व्यापार और उद्योग ने अभूतपूर्व वृद्धि कर ली थी जिसने कारीगरों, शिल्पकारों के जीवन स्तर को बेहतर भी बनाया और भक्ति आंदोलन के माध्यम से उन्होंने अपनी सामाजिक स्थिति को परिवर्तित करने की भी कोशिश की, परंतु वे हमारे संपूर्ण सामाजिक-राजनीतिक ढांचे में गुणात्मक बदलाव लाने में असफल रहे। भक्ति आंदोलन इस दिशा में कोई कारगर भूमिका निभा पाता उससे पूर्व ही उस पर वर्णवादी उच्च वर्ग का वर्चस्व स्थापित हो गया जिसने भक्ति आंदोलन की क्रांतिकारी सारवस्तु को लगभग समाप्त कर दिया। भक्ति आंदोलन का पतन इस बात का द्योतक भी था कि सामंती शक्तियां इतनी कमजोर नहीं हुई थीं कि वे समाज पर अपने वैचारिक प्रभुत्व को खत्म होने देती। वरन् मुग़ल शासन के उत्तर काल में जब औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद केंद्रीय सत्ता काफ़ी हद तक कमज़ोर हो गई थी तो सामंती शासकों के कई छोटे-छोटे केंद्र उभर आए। इन राजाओं और नवाबों ने आपस में लड़ने-झगड़ने और भोग-विलास में ही अपना गौरव समझा। इसका असर इस युग के साहित्य पर भी पड़ा।

17वीं-18वीं सदी में जो साहित्य लिखा गया, या तो वह परंपरागत रूप से भक्ति (धार्मिक) साहित्य था जिसमें भक्ति आंदोलन के दौर की विशेषताएँ भी नहीं थीं, या फिर वीर और

श्रृंगार रस को व्यक्त करने वाली रचनाएं थीं जो अपने आश्रयदाता राजाओं की वीरता के अतिरंजित गुणगान और उनके मनोरंजन के उद्देश्य से लिखी गई थीं। अपने आश्रय में रहने वाले कवियों को राजा-नवाब इनाम में धन देते थे इसलिए ऐसा ही साहित्य लिखा गया जो इन विलासी और निकम्मे राजाओं को पसन्द आए। इस दौर में काव्यशास्त्र के नाम पर नायिका भेद और विभिन्न नायिकाओं के सौंदर्य वर्णन, नायक-नायिकाओं के मिलन और विरह की भावनाओं के छिछले वर्णन से ही साहित्य भंडार भरा गया। स्पष्ट है कि ऐसा साहित्य अपने समाज और समय का सच्चा दर्पण नहीं हो सकता। 19वीं शताब्दी में इस तरह एक अवरोध की स्थिति पैदा हो गई। कविता में विकास की संभावनाएँ नष्ट हो गई थीं। साहित्य का संबंध केवल उच्च वर्ग से रह गया था। शिक्षा के अभाव में जनता का साहित्य से संबंध भी कट चुका था। इसी पृष्ठभूमि में आधुनिक साहित्य का जन्म हुआ। निश्चय ही इस साहित्य की उत्पत्ति में उन नयी परिस्थितियों का हाथ है जो अंग्रेज़ों के शासन काल में उपजी थीं।

1757 के प्लासी युद्ध में विजय के बाद अंग्रेजों ने अपने शासन को सुचारू रूप से स्थापित करने के लिए कई प्रशासनिक कदम उठाये। अंग्रेज़ी शिक्षा के द्वारा आधुनिक शिक्षा प्रणाली आरंभ की। रेल लाइनें बिछाई गईं। डाक एवं तार की नई संचार प्रणाली आरंभ हुई और प्रेस की स्थापना भी हुई। इन सबके प्रभाव से भारत में भी समाचारपत्रों एवं पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ हुआ। अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से आधुनिक विचारों और यूरोप के आधुनिक साहित्य से परिचय बढ़ा। इसके प्रभाव से भारत के शिक्षित वर्ग में भी नये ढंग के साहित्य की रचना की तरफ रुझान बढ़ा, विशेष रूप से गद्य लेखन की प्रवृत्ति का विकास हुआ। इस नये तरह के साहित्य के लिए मध्ययुगीन भाषाएँ पर्याप्त नहीं थी इसलिए आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास हुआ।

4.3 आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास

इस पाठ्यक्रम के अंतर्गत हम जिन भारतीय भाषाओं के साहित्य का अध्ययन करेंगे, उन्हें हम दो भाषा-परिवारों में रख सकते हैं। दक्षिण भारत की चारों भाषाएँ द्रविड़ भाषा परिवार के अंतर्गत सम्मिलित की जाती हैं। तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम—इन चारों भाषाओं का अपना लंबा इतिहास है और तमिल भाषा और साहित्य तो लगभग इतना ही पुराना है जितना संस्कृत साहित्य। यद्यपि इन सभी भाषाओं पर संस्कृत का काफी प्रभाव रहा है परंतु इनका अपना स्वतंत्र इतिहास है। हिंदी, बंगला, गुजराती, मराठी, उर्दू, कश्मीरी, असमिया, उड़िया, सिंधी, पंजाबी आदि भाषाओं को आधुनिक आर्य भाषाओं के अंतर्गत शामिल किया जाता है और इनका विकास अपभ्रंश के विभिन्न रूपों से माना जाता रहा है। यद्यपि अब कई भाषाविदों की राय में यह सही नहीं हैं। संस्कृत से प्राकृत, प्राकृत से अपभ्रंश और अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के विकास की अवधारणा अब स्वीकार नहीं की जाती वरन् यह माना जाता है कि इन सभी भाषाओं का संस्कृत आदि प्राचीन भाषाओं से स्वतंत्र विकास हुआ है और लोक भाषाओं के रूप में पहले से विद्यमान थीं। हां, यह अवश्य है कि इनके वर्तमान स्वरूप को तय करने में संस्कृत का योगदान काफी रहा है।

यद्यपि भक्ति आंदोलन के दौर में ही उपर्युक्त भाषाओं का प्रयोग साहित्य रचना के लिए होने लगा था परंतु इनमें से कई भाषाएँ या तो उस दौर में कम विकसित हुईं या फिर उनकी जो बोलियां उस दौर में प्रयुक्त हुई थीं वह आधुनिक युग में साहित्य रचना के लिए अनुप्रयुक्त मानी गई। उदाहरण के लिए, भक्ति आंदोलन दौर में खड़ी बोली का प्रयोग प्रायः साहित्य रचना के लिए नहीं हुआ जबकि इसी से उर्दू और आधुनिक हिंदी का जन्म हुआ और मध्ययुग में प्रयुक्त होने वाली अवधी, ब्रज, मैथिली आदि लगभग हाशिए पर चली गई कश्मीरी और असमिया जो मध्ययुग में साहित्य रचना के लिए काफी प्रयुक्त हुईं और कई महत्वपूर्ण कवि इन भाषाओं में हुए लेकिन आधुनिक युग में इनकी वही स्थिति नहीं रही। उर्दू के प्रभाव के कारण कश्मीरी में साहित्य बहुत कम लिखा गया तो जम्मू क्षेत्र में डोगरी को साहित्यिक महत्व प्राप्त होने लगा। 19वीं सदी में असमिया को भाषा ही नहीं

माना गया और उसे बंगला की ही शैली समझ लिया गया जबकि वह एक स्वतंत्र भाषा थी। लेकिन बाद में असमी भाषी जनता के अथक प्रयास से इसे पनः स्वतंत्र भाषा का दर्जा प्राप्त हुआ।

आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास का एक संदर्भ यह भी है कि इन भाषाओं और इनके साहित्य को कभी राज्याश्रय प्राप्त नहीं हुआ। जिस प्रकार प्राचीन भारत में संस्कृत, मध्ययुग में फ़ारसी उसी प्रकार आधुनिक युग में अंग्रेज़ी शासक वर्ग की भाषा रही तथा अंग्रेज़ी की नीति भारतीय भाषाओं को आपस में लड़ाने की रही। उर्दू-हिंदी का द्वंद्व इसी का परिणाम था। उर्दू को मुसलमानों की और हिंदी को हिंदुओं की भाषा बताकर उन्हें सांप्रदायिक रंग दिया गया। दुर्भाग्यपूर्ण यह था कि हिंदी-उर्दू भाषी क्षेत्र की शिक्षित जनता भी अंग्रेज़ों के इस षड्यंत्र का शिकार हो गई जबकि खड़ी बोली से उर्दू का विकास काफ़ी पहले 11वीं-12वीं सदी में ही हो गया था। 17वीं-18वीं शती में दक्कनी के रूप में उर्दू का साहित्य रचना के लिए भी उपयोग होने लगा और हिंदी में भारतेन्दु आदि के आने से पूर्व एक परिनिष्ठित भाषा के रूप में उर्दू स्थापित हो चुकी थी। अपने उदयकाल से ही उर्दू में हिंदू और मुसलमान दोनों लिखते रहे थे। लेकिन यह भी सच्चाई है कि व्यवहार में उर्दू और हिंदी में शब्द भंडार के अतिरिक्त ज़्यादा फ़र्क नहीं है। आज उर्दू और हिंदी साहित्य की अपनी स्वतंत्र समृद्ध परंपराएँ हैं। इनमें से किसी एक को मिटाकर दूसरे का विकास असंभव है।

आधुनिक भारतीय भाषाओं में लिपि का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। नागरी लिपि हिंदी और मराठी दोनों भाषाओं के लिए प्रयुक्त होती हैं जबकि उर्दू जिस लिपि में लिखी जाती है उनमें पंजाबी, सिंधी भी लिखी जाती थी लेकिन पंजाबी बाद में गुरूमुखी लिपि में और सिंधी अब नागरी लिपि में लिखी जाने लगी है जबकि पाकिस्तान में अब भी ये भाषाएँ अरबी-फ़ारसी लिपि में ही लिखी जाती हैं। इसी प्रकार उड़िया, बंगला, असमिया आदि भाषाओं में काफ़ी निकटता होने के बावजूद उनकी लिपियाँ अलग-अलग हैं यद्यपि उनमें भी वैसी ही निकटता पाई जाती है जैसी उनकी भाषाओं में है।

ख़ास बात यह है कि सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं में महत्वपूर्ण परिवर्तन इसलिए हुआ क्योंकि अब व्यवहार में उसका अनुभव क्षेत्र पहले के किसी युग की तुलना में अधिक व्यापक हो गया था। दूसरे, मुद्रण के व्यापक प्रसार ने गद्य का प्रचलन काफ़ी बढ़ा दिया जिसने भाषाओं के स्वरूप को बदलने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। अब बोलचाल की भाषा और साहित्यिक भाषा की दूरी पहले की तुलना में काफ़ी कम हो गई। यद्यपि इसी कारण अच्छी रचनात्मक भाषा की रचना उतनी ही बड़ी चुनौती भी साबित हुआ।

4.4 नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन की सामान्य विशेषताएँ

अंग्रेज़ों के शासन काल में जो नये परिवर्तन हुए उससे भारतीय समाज के सभी पक्षों में आमूलचूल परिवर्तन घटित हुआ। वास्तव में यह नये युग की शुरुआत थी। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में एक नयी उथल-पुथल दिखाई दे रही थी। भारत एक ज़बर्दस्त करवट ले रहा था। इसी बदलाव में नये समाज की, नये विचारों की और नये जीवन-मूल्यों की नींव रखी जा रही थी। 1857 की क्रांति में सामंती शक्तियों की पराजय ने एक तरह से सामंती व्यवस्था के पुनरोदय की संभावना को पूर्णतः समाप्त कर दिया था। औपनिवेशिक शासन व्यवस्था के अतंर्गत भारत जिस पूंजीवादी विकास की ओर अग्रसर हो रहा था उसने कई नयी समस्याएँ पैदा कीं तो भारतीयों के मन में नयी आकांक्षाएँ भी जगाईं। उनकी पूर्ति में सबसे बड़ी बाधा स्वयं ब्रिटिश शासन था जिसके विरुद्ध लगातार संघर्ष ने राष्ट्रीय चेतना को विकसित किया। ब्रिटिश शासकों के आर्थिक शोषण ने स्वयं भारतीय पूंजीपति वर्ग के लिए भी मुश्किलें पैदा कर दी थीं जबकि किसानों और मज़दूरों के लिए तो अकल्पनीय कठिनाइयों का दौर-दौरा शुरू हुआ। इसने भारतीयों को इस बात का एहसास कराया कि केवल स्वशासन से ही भारत आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर और शोषण मुक्त हो सकता है। इस सोच ने भी राष्ट्रीय चेतना को विकसित करने में मदद की।

परंतु एक आधुनिक भारत के निर्माण में केवल ब्रिटिश शासन ही बाधक नहीं था बल्कि सामंती समाज के रीति-रिवाज और जीवन-मूल्य भी बाधक बने हुए थे। जाति प्रथा और छुआछूत ने हिंदू समाज को जर्जर बना रखा था। बाल-विवाह, पर्दा प्रथा, बहु-विवाह, सती प्रथा और कठिन वैधव्य ने नारी जीवन को नरक बना रखा था। धर्म के क्षेत्र में अंधविश्वास और तरह-तरह की रूढ़ियाँ प्रचलित थीं, पुरोहितों का जीवन के हर क्षेत्र में दख़ल था। सांस्कृतिक जीवन भी रूढ़ हो चुका था, कुछ भी नया नहीं रचा जा रहा था। इन सबसे मुक्ति बिना भारतीयों का जीवन नहीं बदल सकता था। मानवीय और समानता पर आधरित समाज की स्थापना के लिए इन सबके विरुद्ध संघर्ष की आवश्यकता थी। नवजागरण की भावना का उदय इसी आवश्यकता से हुआ। आइए, इन सभी पक्षों में व्यक्त नये विचारों की विशेषताओं से परिचय प्राप्त करें।

आर्थिक चेतना

अंग्रेज़ों के आगमन का सबसे ज़्यादा असर देश की आर्थिक दशा पर हुआ। वे यहाँ से कच्चे माल के रूप में, टैक्स, वेतन आदि अनेक माध्यमों से न केवल यहाँ का धन इंग्लैंड ले गये, वरन् अंग्रेज़ों ने यहाँ के परंपरागत उद्योगों और शिल्प को भी नष्ट कर दिया। गांव में यूरोप के ढंग की जमींदारी प्रथा लागू करने की कोशिश की गई। किसानों को ज़बर्दस्ती निर्यात के लिए उत्पादन करने को मजबूर किया गया।

देश की आर्थिक दशा का चित्रण तत्तकालीन भारतीय लेखकों ने अपनी रचनाओं में किया है। अकालों का वर्णन, टैक्सों का अधिक भार, खेती की दुर्दशा, उद्यमों का नष्ट होना तथा देश की दौलत का विदेश जाना आदि ऐसी बातें हैं जिन पर उनका ध्यान गया। इनका मानना था कि देश की तत्कालीन दुर्दशा, भुखमरी, ग़रीबी, बेरोज़गारी अर्थात् आर्थिक विपन्नता का कारण अंग्रेज़ राज और उसका शोषण था। अंग्रेज़ों के आगमन से पूर्व भारत की दुर्दशा इतनी भयावह नहीं थी।

इस दौर की आर्थिक स्थिति का एक और महत्वपूर्ण पक्ष है—औद्योगिक पूंजीवाद का विकास। उन्नीसवीं सदी के मध्य में भारत में ब्रिटिश पूंजी का निवेश आरंभ हुआ। भारत में बड़े पूंजीवादी उद्यमों के आगम ने भारत के राष्ट्रीय पूंजीवादी विकास को प्रोत्साहित किया। इससे व्यापारियों और महाजनों के लिए व्यापक क्षेत्र खुल गया। इससे देश में द्रव्य पूंजी के संचय को बढ़ावा मिला। बिचौलिये अथवा दलाल का काम करने वाले भारतीय व्यापारियों ने काफी धन जमा कर लिया। इस अवधि में श्रम बाजार भी रूप लेने लगा था। बर्बाद दस्तकारों और कंगाल किसानों ने मज़दूर वर्ग के पहले जत्थे प्रदान किये। पुराने दस्तकारों ने छोटी-छोटी फैक्ट्रियां भी स्थापित कीं। पूंजीवादी विकास ने मज़दूर वर्ग के उभार का मार्ग प्रशस्त किया। साथ ही छोटे पैमाने पर ही सही राष्ट्रीय पूंजीपति वर्ग का भी उदय हुआ। आधुनिक उद्यमों तथा परिवहन, संचार एवं प्रशासन के लिए नये मध्यवर्ग का उदय हुआ। ये ही नये वर्ग राष्ट्रीय चेतना को प्रसारित करने के वाहक बने। इन सभी ने अपने-अपने वर्गीय हितों के अनुरूप ही सही आर्थिक स्वतंत्रता और ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शोषण से मुक्ति की आवाज़ उठाई।

राजनीतिक चेतना

भारतीयों ने अंग्रेज़ों के शासन को कभी भी सहजता से स्वीकार नहीं किया और लगातार उनके विरुद्ध संघर्षरत रहे। अंग्रेज़ों के शासन के ख़िलाफ़ चलने वाले इन अनवरत संघर्षों का ही परिणाम था कि लोगों में राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। प्रख्यात समाजशास्त्री ए.आर. देसाई की स्पष्ट मान्यता है कि भारतीय राष्ट्रवाद आधुनिक शिक्षा का परिणाम नहीं। उनके अनुसार भारतीय राष्ट्रवाद का जन्म वस्तुतः नयी सामाजिक भौतिक स्थितियों के कारण हुआ। उनके अनुसार अगर भारतीय बुर्जुआजी को संस्कृत में लिखे गये वेदों की ही शिक्षा मिली रहती, दूसरी सारी विचारधाराओं के अलग तो उन्हें वहीं अपने संघर्ष के सिद्धांत और नारे मिल जाते। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में राष्ट्रीयता की अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम स्वदेशीपन की भावना थी। देशी वस्तुओं का अधिकाधिक प्रयोग और विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार इस स्वदेशीयता की प्रमुख पहचान थी। स्वदेशी वस्तुओं के साथ स्वभाव का भी आग्रह बढ़ा।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना (1885) इस दौर की महत्वपूर्ण घटना है। आज़ादी के संघर्ष के पूरे दौर में कांग्रेस स्वतंत्रता सेनानियों के व्यापक मंच का काम करती रही। आरंभ में भारतीयों के लिए अधिक आर्थिक और राजनीतिक अधिकारों की माँग करते हुए कांग्रेस डोमिनियम स्टेट से होते हुए पूर्ण स्वतंत्रता की माँग तक की अपनी यात्रा में अपना प्रभाव व्यापकतर करती गई। इनके साथ समाजवादियों, साम्यवादियों और क्रांतिकारियों ने राष्ट्रीय भावना के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति इसी कारण इस दौर में स्वतंत्रता की कामना के रूप में हुई जिसके साथ बाद में लोकतंत्र धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद के विचार भी जुड़ गए।

सामाजिक और धार्मिक जागरण

18वीं-19वीं सदी में समाज में अनेक प्रकार की धार्मिक, रूढ़ियाँ, अंधविश्वास तथा सामाजिक कुरीतियां प्रचलितत थीं। जाति प्रथा, छुआछूत तथा स्त्रियों की दशा अत्यंत दयनीय थी। बहुत छोटी उम्र में लड़कियों का विवाह कर दिया जाता था। विधवा को पुनर्विवाह की अनुमति नहीं थी जबकि एक पुरुष कई-कई विवाह कर सकता था। स्त्रियों को पति के मरने पर सती प्रथा के नाम पर ज़िंदा जलने पर मजबूर किया जाता था। स्त्री शिक्षा का पूर्णतः निषेध था। विधवा स्त्री को हर प्रकार के सामाजिक और पारिवारिक उत्पीड़न झेलने पड़ते थे। स्त्रियों की दशा से कम दयनीय दशा निम्नवर्ग वालों की न थी। हर तरह के मानवीय अधिकारों से वे वंचित थे, उनकी अलग बस्तियां थीं। उनका छुआ पानी पीना भी बुरा माना जाता था। धर्म के नाम पर घोर अंधविश्वास और अमानुषिक रीतिरिवाज प्रचलित थे।

उन्नीसवीं सदी में मध्यवर्ग के नये शिक्षित लोगों का ध्यान इस ओर गया और उन्होंने इन सबके विरुद्ध आवाज़ उठाई। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, केवशवंचंद्र सेन, महादेव गोविंद रानाडे, ज्योतिबा फुले, स्वामी दयानंद सरस्वती, वीरेशलिंगम, नारायण गुरु आदि ने समाज सुधार के लिए अथक प्रयास किये और धार्मिक रूढ़ियों का जबर्दस्त विरोध किया।

समाज सुधार के इन कार्यों का असर समाज में संपूर्ण ढाँचे पर पड़ा। लोगों में नई चेतना जागृत हुई। शिक्षा का प्रसार बढ़ा। लड़कियों के लिए स्कूल और कालेज खोले गये। बहु-विवाह और बाल-विवाह को घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा। सती प्रथा भी धीरे-धीरे कम होने लगी। विधवाओं के विवाह का विरोध भी कम होने लगा। छुआछुत यद्यपि लंबे समय तक कायम रही, परंतु शिक्षित समुदायों से यह लुप्त होने लगी। धार्मिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों की बजाय विवेकपरक सोच पर लोगों का विश्वास बढ़ा। विदेश यात्राओं के प्रति दृष्टिकोण में भी बदलाव आने लगा। इस तरह सामाजिक परिस्थितियों में नये बदलाव ने लोगों के दृष्टिकोण को अधिक उदार और आधुनिक बनाया।

सांस्कृतिक और वैचारिक जागरण

उन्नीसवीं सदी में भारतीय नवजागरण की जिस चेतना का उदय हुआ उसने भारत के सांस्कृतिक और वैचारिक जीवन पर भी गहरा असर डाला। भारत ने परंपरागत संस्कृति के प्रतिगामी तत्वों को त्यागकर उसके उन मूल्यों को ही स्वीकार किया जो आधुनिक जीवन के अनुकूल थे। इसके साथ पश्चिम के उन मूल्यों को भी स्वीकार किया गया जो नये भारत के निर्माण में सहायक बन सकते थे तथा जो भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप भी थे। तत्कालीन भारतीय मनीषियों ने विश्व मानवता को आधारभूत तत्व के रूप में स्वीकार करते हुए ही राष्ट्रीयता की अपनी भावना को समृद्ध किया। जाति, धर्म, लिंग, भाषा क्षेत्र आदि के भेदों से ऊपर उठकर एक साझी संस्कृति को विकसित करने का प्रयास किया। इस मार्ग में बाधक जातिवाद, सांप्रदायिकता, धार्मिक असहिष्णुता, तत्ववाद और क्षेत्रवाद के विरुद्ध भी सतत संघर्ष किया गया। साहित्य, चित्रकला, मूर्तिकला, संगीत आदि विभिन्न कलाओं में नये मार्गों की खोज करते हुए अतीत की समृद्ध परंपरा को पूरी तरह भुला नहीं दिया गया। हां, यह अवश्य है कि अतीत के प्रति एक स्वस्थ आलोचनात्मक दृष्टि भी विकसित की जिसने यह समझ दी कि भक्ति काव्य अगर हमारी परंपरा का स्वस्थ पक्ष है तो रीतिकाव्य अस्वस्थ पक्ष। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्वंतत्रता संघर्ष के दौर में

नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना ने हमारे समाज में निहित सारे अंतर्विरोधों को समाप्त कर दिया बल्कि हमें इस दौर के अध्ययन से यह भी पता लगता है कि एक नये भारत का निर्माण कितना चुनौतियों भरा काम है और हमारा देश आज भी उससे जूझ रहा है।

बोध प्रश्न

1) आधुनिक युग से पूर्व किस तरह का साहित्य लिखा जा रहा था?
   क) भक्ति साहित्य
   ख) श्रृंगारपरक साहित्य
   ग) वीर काव्य
   घ) उपर्युक्त सभी
2) निम्नलिखित में से कौन-सा भाषा समूह द्रविड़ भाषा परिवार के अतंर्गत आता है
   क) मलयालम, मराठी, कन्नड़, तमिल
   ख) कन्नड़ तमिल, मलयालम, उड़िया
   ग) तेलुगु, तमिल, कन्नड़, मलयालम
   घ) तेलुगु, मलयालम, तमिल, बंगला
3) आधुनिक भारत के निर्माण में कौन-कौन बाधक थे?

.....

.....

अभ्यास

1) देश की आर्थिक दशा ने राष्ट्रीय चेतना को उभारने में किस तरह मदद की?

.....

.....

.....

.....

2) सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों से संघर्ष के बिना आधुनिक भारत का निर्माण असंभव क्यों था?

.....

.....

.....

.....

4.5 आधुनिक भारतीय साहित्य का उदय

आधुनिक भारतीय साहित्य का उदय 19वीं शताब्दी से माना जा सकता है जब प्रेस की स्थापना, अंग्रेजी शिक्षा के आरंभ होने तथा भारतीय भाषाओं में पत्र-पत्रिकाओं के शुरू होने से भारतीय सोच में तेजी से बदलाव आ रहा था। 1817 में कलकत्ता में हिंदू कालेज की स्थापना हुई जिसने अंग्रेजी भाषा और साहित्य के साथ आधुनिक विज्ञान की शिक्षा भी दी जाने लगी थी। इससे पूर्व 1800 में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हो चुकी थी जहाँ कई भारतीय भाषाओं के अध्ययन की व्यवस्था भी की गई थी। 1818 में बंगला में पत्र प्रकाशन आरंभ हुआ। 1828 में राजा राममोहन राय के प्रयास से बंगला, फारसी, हिंदी आदि में पत्र प्रकाशित हुए। हिंदी का पहला पत्र 1826 में "उदंत मार्तण्ड" भी कलकत्ता से ही आरंभ हुआ। भारतीय भाषाओं में गद्य लेखन की शुरुआत का श्रेय ईसाई मिशनरियों

को भी हैं जिन्होंने ईसाई धर्म के प्रचार हेतु लगभग सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं और बोलियों में पुस्तकें प्रकाशित कीं। प्रेस की स्थापना ने पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरंभ किया। धीरे-धीरे सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में समाचार पत्र और पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगीं। अंग्रेजी शिक्षा के बढ़ते अध्ययन ने शिक्षित वर्ग को प्रेरणा दी कि ज्ञान-विज्ञान के जिन क्षेत्रों में यूरोप ने तरक्की की है, उनसे भारतीय भी परिचित हों। इसलिए उस आरंभिक दौर में इतिहास, विज्ञान, समाजशास्त्र, साहित्य आदि विभिन्न क्षेत्रों की पुस्तकों के भारतीय भाषाओं में अनुवाद किये गये। इसी की अगली कड़ी में भारतीय लेखकों ने स्वयं अपने ज्ञान के बल पर नयी पुस्तकें लिखीं।

19वीं शताब्दी तक भारतीय साहित्य मुख्य रूप से कविता और नाटक विधाओं तक ही सीमित था। कहानी, उपन्यास, निबंध आदि आधुनिक विधाओं से भारतीयों का परिचय नहीं हुआ था। "पंचतंत्र" तथा "हितोपदेश" की कहानियाँ 18वी 19वीं शताब्दी की यूरोपीय कहानियों (short stories) से काफ़ी भिन्न थीं। तत्कालीन भारतीय साहित्यकार इन नयी विधाओं की ओर आकृष्ट हुए और उन्होंने कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध आदि विधाओं में भी लिखना शुरू किया। यद्यपि इस आरंभिक दौर में कविता की विषयवस्तु और शैली प्रधानतः मध्ययुगीन ही रही। परंतु धीरे-धीरे नये बदलाव का असर कविता पर भी दिखाई देने लगा।

साहित्य की जिन नयी विधाओं का आरंभ इस युग में हुआ, उसमें पुरानी मध्यकालीन विषयवस्तु नहीं पेश की जा सकती थी इसलिए उनमें वे विषय पेश किये जाने लगे तो इससे पूर्व तक साहित्य के अनुकूल नहीं माने जाते थे। साहित्यकारों ने अपने-अपने समय और समाज की उन समस्याओं को अपनी रचनाओं का विषय बनाया जो उस समय के जनमानस को आंदोलित कर रहे थे। उदाहरण के लिए, 1860 में दीनबंधु गुप्त ने बंगला में "नीलदर्पण" नामक नाटक लिखा जिसमें नील के व्यवसायी अंग्रेज़ों के अत्याचारों के विरुद्ध किसानों के संघर्ष की कथा कही गई है। इसी तरह बंगला लेखक टेकचंद ठाकुर ने 1858 में "आलादेर घरेर दुलाल" नामक उपन्यास लिखा जिसमें सामाजिक व्यंग्य प्रस्तुत किया गया है। 1865 में बंकिम चंद्र "दुर्गेशनंदिनी" जैसा प्रौढ़ उपन्यास लिख चुके थे। कहने का तात्पर्य यह है कि भारतीय साहित्य में एक नयी शुरुआत 19वीं शती के मध्य में हो चुकी थी। आगे हम अलग-अलग भाषाओं में लिखे गये साहित्य का संक्षिप्त लेखा-जोखा लेंगे।

4.6 पूर्वांचलीय साहित्य

यहाँ हम पूर्व की तीन प्रमुख भाषाओं-बंगला, असमिया और उड़िया के आधुनिक साहित्य में राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण की विशेषताओं की अभिव्यक्ति का संक्षिप्त उल्लेख करेंगे। जिस प्रकार भारत में नवजागरण की शुरुआत बंगाल से हुई उसी तरह साहित्य के क्षेत्र में भी इसी अभिव्यक्ति सबसे पहले बंगाल में ही हुई। असमिया भाषा के साहित्यिक विकास पर आरंभ में बंगला भाषा का दबाव रहा परंतु उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक असमिया ने अपनी स्वतंत्र दिशा पकड़ ली। उड़िया ने इस दौर में फ़कीरमोहन सेनापति जैसा महान् यथार्थवादी लेखक दिया।

4.6.1 बंगला साहित्य

आधुनिक बंगला साहित्य का आरंभ 19वीं शताब्दी में ही हो गया था। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक और निबंध इन सभी विधाओं में बंगाल ने महत्वपूर्ण रत्न पैदा किये। योगेन्द्रचंद्र गुप्त के 'कीर्तिविलास' को बंगला का प्रथम मौलिक नाटक माना जाता है। 1860 में दीनबन्धु गुप्त द्वारा लिखे गये "नील दर्पण" नाटक की चर्चा हम पहले कर चुके हैं। बंगाल में समाज सुधार संबंधी ऐसे नाटक लिखे गये जिनमें वृद्ध विवाह की बुराइयाँ बताई गई हैं। स्त्री शिक्षा और विवाह के समर्थन में भी कई नाटक तथा पुस्तिकाएँ लिखी गईं। कुलीन ब्राह्मणों की विवाह पद्धति, बाल-विवाह के विरोध, बहुविवाह प्रथा आदि पर भी कई मर्मस्पर्शी नाटक लिखे गये। अकाल की विनाश लीला को बताने वाले नाटक भी

लिखे गये। बंगला के प्रमुख नाटककारों में द्विजेंद्रलाल राय, माइकेल मधुसूदन दत्त (1824-73), गिरीशचंद्र घोष (1844-1911) प्रमुख हैं। बाद में रवींद्रनाथ ठाकुर ने भी कई महत्वपूर्ण नाटक लिखे।

उपन्यास के क्षेत्र में यद्यपि पहला उपन्यास "आलादेर घरेर दुलाल" (1858) को माना जाता है। परंतु बंगला भाषा में उपन्यास लेखन की सही शुरुआत का श्रेय बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय (1838-94) को है जिन्होंने राजसिंह, कपालकुंडला, चंद्रशेखर, विषवृक्ष, आनंदमठ, देवी चौधरानी जैसे महत्वपूर्ण उपन्यास लिखे। इंद्रनाथ चौधरी के अनुसार "बंकिम बाबू ने अपने ऐतिहासिक उपन्यासों में रोमांस और इतिहास का समन्वय कर जीवन के साधारण उच्छ्वास और गौरवमय मुहूर्त को प्रकट किया है। सामाजिक उपन्यासों में क्षुद्र विरोध के माध्यम से जीवन के सहज स्नेहपूर्ण चित्र को प्रकट किया है। उनका चरित्र-चित्रण यथार्थ है और उद्देश्य आदर्शमय है।" (भारतीय भाषाओं के साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ. 242) बंकिम के उपन्यासों में राष्ट्र भक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी थी। उनके ही समसामयिक रमेशचंद्र दत्त ने भी देश भक्ति मूलक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। बंगला उपन्यास के क्षेत्र में शरतचंद्र चट्टोपाध्याय (1876-1938) का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। शरतचंद्र ने अपने उपन्यासों के माध्यम से नारी जाति की दयनीय दशा का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। शरत् बाबू में यद्यपि भावुकता का अंश ज्यादा था—फिर भी उनकी व्यापक मानवीय दृष्टि ने उनके उपन्यासों को स्थायी महत्व प्रदान किया है। लेकिन उपन्यासों के क्षेत्र में रवींद्रनाथ ठाकुर का योगदान अविस्मरणीय है। "गोरा" संभवतः भारत के श्रेष्ठतम उपन्यासों में से है जिसमें नवजागरण युग की सामाजिक-राजनीतिक और वैचारिक उथल-पुथल का अत्यंत यथार्थवादी चित्रण है। रवींद्रनाथ की दृष्टि विश्व मानवतावादी थी। वे न तो बंकिम की तरह हिंदूवादी थे और न ही शरतचंद्र की तरह भावुक। रवींद्रनाथ के अतिरिक्त विभूति-भूषण उपाध्याय, ताराशंकर वंद्योपाध्याय, माणिक वंद्योपाध्याय आदि अन्य महत्वपूर्ण उपन्यासकार हैं।

कहानी लेखन के क्षेत्र में बंगला में रवींद्रनाथ ठाकुर, शरतचंद्र, विभूतिभूषण बनर्जी, प्रेमेंद्र मित्र आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। "संवाद प्रभाकर" के संपादक ईश्वर चंद्र गुप्त (1812-59) को बंगला का पहला आधुनिक कवि माना जाता है। इनकी कविताओं में हास्य-व्यंग्य का महत्वपूर्ण स्थान है। रंगलाल बनर्जी (1826-87) ने ऐसे काव्य की रचना की जिनसे प्रेम, वीरता और देशभक्ति की भावना उत्पन्न होती है। 19वीं सदी के प्रमुख बंगला कवियों में माइकेल मधुसूदन दत्त का नाम लिया जाता है। "तिलोत्तमा संभव", 'मेघनाथ वध' इनके प्रसिद्ध दो काव्य हैं, उन्होंने मनुष्यत्व को प्रधानता देते हुए बंगला काव्य को नया पथ दिखाया। परंतु काव्य के क्षेत्र में बंगला को विश्व ख्याति रवींद्रनाथ के काव्य से मिली। 1913 में "गीतांजलि" के लिए उन्हें नोबले पुरस्कार से सम्मानित किया गया। रवींद्रनाथ ठाकुर के यहाँ राष्ट्रीय भावना कभी विश्व मानवता की विरोधी बनकर नहीं आई। न ही धर्म का सांप्रदायिक और संकीर्ण रूप प्रकट हुआ। वे गहरे अर्थों में सच्चे मानवतावादी थे। उनकी कविताओं का अध्यात्मवाद इसी मानवतावाद से ओतप्रोत है।

रवींद्रनाथ के बाद के प्रमुख कवियों में नज़रूल इस्लाम अपनी ओजपूर्ण कविताओं के लिए विशेष रूप से पहचाने गये। अन्याय और अत्याचार चाहे किसी रूप में क्यों न हो, नज़रूल ने सदा उसका विरोध किया। वे वास्तव में एक जन कवि थे। अन्य कवियों में जीवनानंद दास का प्रकृति प्रेम, प्रेमेंद्र मित्र का ओजस्वी रोमांटिकवाद और बुद्धदेव वसु का आनंद बोध उल्लेखनीय है। सुकांत भट्टाचार्य यद्यपि अल्पायु में ही चल बसे परंतु अपनी प्रगतिशील और मानवतावादी दृष्टि के कारण बंगला कविता में उन्होंने अपना एक खास स्थान बना लिया।

निबंध लेखन में रवींद्रनाथ और प्रमथ चौधरी महत्वपूर्ण नाम हैं। इनके अतिरिक्त ईश्वरचंद्र विद्यासागर, राजनारायण वसु, भूदेव मुखोपाध्याय आदि भी उल्लेखनीय हैं।

4.6.2 असमिया साहित्य

असमिया में नवजागरण मुख्य रूप से "जोनाकी" मासिक पत्रिका (1889) के प्रकाशन से

माना जाता है। यद्यपि 1873 से पूर्व तक असम में बंगला भाषा का वर्चस्व रहा परंतु ईसाई मिशनरियों ने अपना प्रचार असमिया भाषा के माध्यम से ही किया। "जोनाकी" के प्रकाशन के समय के प्रमुख लेखक हैं–लक्ष्मीनाथ बैजबरूआ (1868-1938) चंद्रकुमार अग्रवाल (1868-1938), हेमचंद गोस्वामी (1872-1928) सत्यनाथ बरा (1860-1925)। इन लेखकों ने असमिया भाषा के साथ-साथ देश-भक्ति और समाज सुधार के लिए भी प्रयत्न किये जिसकी अभिव्यक्ति उनके साहित्य में दिखाई देती है। असमिया का पहला नाटक गुणाभिराम बरुआ कृत "रामनवमी नाटक" 1857 में लिखा गया। यह नाटक ईश्वरचंद्र विद्यासागर से प्रभावित होकर विधवा विवाह के समर्थन में लिखा गया। लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ मूलतः देशभक्ति के कवि थे तथा असम के राष्ट्रीय गीत "ओ मोर आपनार देश" की सृष्टि की। "मेरी जीवन स्मृतियां" शीर्षक से अपनी जीवनी लिखकर असमिया में जीवनी साहित्य की कमी पूरी की। कमलाकांत भट्टाचार्य इस युग के दूसरे महत्वपूर्ण कवि थे। इनकी कविताओं में अतीत का गौरवगान तथा देशप्रेम का ओजस्वी स्वर विद्यमान था। नवीनचंद्र बरदले ने सामाजिक नाटकों के साथ-साथ देशप्रेम की अनेक कविताएँ लिखीं। हेमचंद बरुआ ने पाखंड, ढोंग तथा अनाचार आदि का विरोध किया। असमिया भाषा के पहले उपन्यासकार पद्मनाथ गोहांइबरुआ हैं जिन्होंने भानुमति (1891) व "लाहरी (1892) की रचना की। लेकिन उपन्यास के क्षेत्र में रजनीकांत बरदले (1868-1938) को विशेष ख्याति मिली। उनका पहला उपन्यास "मिरि जीयरी" 1894 में प्रकाशित हुआ। अन्य उपन्यासकारों में दंडिनाथ कलिता, दैवचंद्र तालुकदार, विरंचिकुमार बरुआ प्रमुख हैं। कहानी लेखन में लक्ष्मीनाथ बेजबरुआ का विशेष योगदान है। शरतचंद्र गोस्वामी, नकुलचंद्र भूयां, लक्ष्मीनाथ फुकन आदि अन्य प्रमुख कहानीकार हैं। असमिया निबंध साहित्य को समृद्ध करने में हेमचंद्र बरुआ, गुणाभिराम बरुआ, कालिराम बरुआ का योगदान रहा है तो हास्य-व्यंग्य लेखन में नई जान डाल दी। अन्य निबंधकारों में सत्यनाथ बरा, सूर्यकुमार भूयां, वेणुधर शर्मा का नाम लिया जाता है।

4.6.3 उड़िया साहित्य

उन्नीसवीं सदी में जिन लेखकों ने उड़ियासाहित्य को नवीन दिशा दी उनमें प्रमुख हैं: फकीर मोहन सेनापति (1843-1918), राधानाथ राय (1848-1908) और मधुसूदन राव (1853-1912)। इन तीनों ने न केवल आधुनिक उड़िया साहित्य की रचना की वरन् उड़िया भाषा के उत्थान के लिए भी अनेक कार्य किये। फकीरमोहन सेनापति ने ही सबसे पहले उड़िया भाषा का छापाखाना स्थापित किया। उन्होंने स्त्री शिक्षा के प्रसार के लिए भी कार्य किया। उड़िया भाषा को पाठ्यक्रम में शामिल कराने तथा पाठ्य पुस्तकें तैयार करने में भी उन्होंने योग दिया। उन्होंने रामायण और महाभारत का उड़िया अनुवाद भी किया। इनकी पहली मौलिक रचना "उत्कल भ्रमण' में अशिक्षित पंडों और ब्राह्मणों की लोलुपता पर गहरा व्यंग्य है। इन्होंने घरेलू जीवन की समस्याओं से लेकर भारतीय किसानों के उत्पीड़न तक को अपने लेखन का विषय बनाया है। 1897 में लिखा गया उपन्यास 'छमाण आठ गुंठ" (छै बीघा ज़मीन) उनकी सर्वाधिक ख्याति प्राप्त कृति है इसमें साहूकार की क्रूरता और किसानों के कष्टमय जीवन का यथार्थ चित्रण है।

राधानाथ राय उन्नीसवीं सदी के अग्रगणी उड़िया कवि हैं। देश प्रेम की भावना तथा समाज में व्याप्त अनेक प्रकार की बुराइयों के लिए संघर्ष इनकी कविता के मुख्य विषय थे। मधुसूदन राव ने अपने काव्य में मानवीय आत्मा के आध्यात्मिक मिलन की गाथा गाई है। उड़िया में नाटकों की रचना मुख्यतः रामशंकर राय ने की। इन्होंने कांचिकावेरी, वनमानल, कलिकाल आदि अच्छे नाटक लिखे। यद्यपि उड़िया में कविता, नाटक, उपन्यास आदि सभी विधाओं में उल्लेखनीय लेखन हुआ परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व जो ख्याति फकीर मोहन सेनापति, राधाकांत राय और मधुसूदन राव को मिली वैसी किसी अन्य को नहीं।

4.7 पश्चिमांचलीय साहित्य

इसके अंतर्गत हम दो भाषाओं मराठी और गुजराती के आधुनिक साहित्य का परिचय प्राप्त करेंगे। बंगाल के बाद नवजागरण का सबसे अधिक प्रभाव महाराष्ट्र और गुजरात पर ही

दिखाई देता है। महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले (1827-1890), महादेव गोविंद रानाडे (1842-1901), बाबा साहब आंबेडकर आदि नाम प्रमुख हैं जिन्होंने समाज सुधार के लिए महान् कार्य किये। इसी प्रकार गुजरात में स्वामी दयानंद सरस्वती और बाद में महात्मा गांधी के योगदान को कौन भुला सकता है। इन प्रदेशों में समाज सुधार के साथ-साथ राष्ट्रीय स्वाधीनता का आंदोलन भी बंगाल की तरह काफ़ी मज़बूत था। यही कारण है कि इन प्रदेशों में लिखे गये साहित्य में नवजागरण और राष्ट्रीय भावना दोनों की अभिव्यक्ति मिलती है।

4.7.1 मराठी साहित्य

इस युग में मराठी में पत्रकारिता का ज़बर्दस्त विकास हुआ जिससे कविता के साथ-साथ गद्य की प्रमुख विधाओं उपन्यास, कहानी, नाटक, निबंध, जीवनी आदि का विकास भी हुआ। मराठी को शिक्षा और सरकारी कामकाज की भाषा बनाने का आंदोलन भी चला। कुछ प्रमुख पत्रों में "प्रभाकर" (1841), "इंद्रप्रकाश" (1867), निबंधमाला (1874), केसरी (1881), सुधाकर आदि उल्लेखनीय हैं। इस युग में जो सामाजिक, राजनीतिक तथा साहित्यिक आंदोलन चले उनका भी साहित्य पर प्रभाव पड़ा।

मराठी रंगमंच का आरंभ 1843 में हुआ। वी.पी. किर्लोस्कर (1843-1885) का 'सौभद्र' (1882) काफी लोकप्रिय हुआ। गोविंद वल्लभ देवल (1854-1916) ने सात नाटक लिखे उनमें से छह अनुवाद थे, सातवां नाटक "शारदा" उनका मौलिक नाटक था। श्रीपाद कोल्हटकर, कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर (1872-1948) आदि ने सामाजिक सुधार को नाटकों का विषय बनाया। स्त्री शिक्षा से संबंधित वासुदेव गोरेश्वर पोतदार ने "सुशिक्षित स्त्री" और कानिटकर ने "तरुणी शिक्षण" लिखी। दहेज प्रथा के विरुद्ध "हुंडा प्रहसन" प्रसिद्ध हुआ। ऐतिहासिक और पौराणिक नाटककारों में नरसिंह चिंतामणि केलकर (1872-1947) का नाम भी उल्लेखनीय है।

मराठी का पहला उपन्यास बाबा पद्मजी का "यमुना पर्यटन" (1857) था। यह उपन्यास नारी की शोचनीय स्थिति पर केंद्रित है और विधवा विवाह के पक्ष में आवाज़ उठाता है। लेकिन मराठी के पहले महत्वपूर्ण उपन्यासकार हरिनारायण आप्टे (1864-1919) हैं। "मधली स्थिति" (1885) उनका पहला उपन्यास है। "पण लक्षांत कोण घेतो?" उपन्यास में एक बाल विधवा की मार्मिक कहानी है। बाद में उन्होंने ऐतिहासिक रोमांसपरक उपन्यास अधिक लिखे। अन्य उपन्यासकारों में चिं.वि.वैद्य, शि.म. परांजपे आदि प्रमुख हैं। सामाजिक उपन्यासकारों में वामन मल्हार जोशी (1882-1943) का नाम भी उल्लेखनीय है। माया वरेरकर ने सौ से अधिक उपन्यास लिखे जिनमें कुछ अनुदित भी थे। बीसवीं सदी में उपन्यास के क्षेत्र में उल्लेखनीय नाम प्रो. नारायण सीताराम फड़के तथा विष्णु सखाराम खांडेकर का है।

प्रायः सभी मराठी उपन्यासकारों ने कहानियां भी लिखी हैं। दिवाकर कृष्ण की 1920 में प्रकाशित "अंगणांतील पोपट (आंगन का तोता) से कुछ लोग आधुनिक मराठी कहानी का आरंभ मानते हैं। कहानी को प्रौढ़ रूप देने में फड़के और वि.स. खांडेकर का विशेष योगदान है।

मराठी में ही नहीं भारतीय साहित्य में भी केशवसुत (1866-1905) पहले आधुनिक कवि हैं। इन्होंने समाज सुधार आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए बड़े उग्र स्वर में सामाजिक कुरीतियों, छुआछूत, स्त्री पराधीनता और मज़दूर वर्ग के शोषण की भर्त्सना की। केशवसुत ने अपने उत्कृष्ट काव्य द्वारा कई अन्य कवियों को लेखन की प्रेरणा दी। रेवरंड नारायण वामन तिलक (1868-1919), विनायक (1872-1909) रामगणेश गडकरी उर्फ़ गोविंदाग्रज (1885-1919) आदि का नाम लिया जा सकता है। 1920 के बाद के दौर में "रविकिरण मंडल" के कवियों ने काव्य-शिल्प का एक नया सांचा बनाया। इन कवियों में यशवंत, गिरीश, माधव जूलियन आदि प्रमुख थे। मराठी में प्रगतिशील द्वारा का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है जिनके प्रमुख कवियों में वा.वि. शिरवाडकर "कुसुमाग्रज", वा.रा.कांत, शरच्चंद्र मुक्ति-बोध (हिंदी कवि गजानन माधव मुक्तिबोध के भाई) मदन मोहन नातू और गोविंद विंदा करंदीकर हैं।

इसके अतिरिक्त निबंध, जीवनी आदि के माध्यम से नवीन विचारों का प्रसार उस समय हो रहा था। समाज सुधार के साथ-साथ उस समय लेखक लेखों में राजनीतिक लेखन भी कर रहे थे। 1857 की घटनाओं पर लिखा यात्रा-संस्मरण विष्णु भट्ट गोडसे कृत "मग्झा प्रवास" अत्यंत महत्वपूर्ण रचना है तो श्रीमती रमाबाई रानाडे द्वारा लिखित अपने प्रसिद्ध पति म.गो. रानाडे की जीवनी भी अत्यंत उल्लेखनीय रचना है। इस प्रकार मराठी साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में नव-जागरण और राष्ट्रीय भावना को अभिव्यक्ति मिली।

4.7.2 गुजराती साहित्य

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ही गुजरात में कुछ परिवर्तन दिखाई देने लगे थे। इन परिवर्तनों के पक्षधरों में दुर्गाराय मेहता (1809-1878) तथा दलपतराम ढायाभाई (1820-1898) मुख्य थे। इन्होंने सामाजिक परिवर्तनों को गति दी। 19वीं सदी के मध्यम में सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में नवीन विचारों का आगमन होने लगा था। दयानंद सरस्वती के अलावा दलपतराय, नर्मद, दुर्गाराय के प्रयत्नों से झाड़फूंक, बाल विवाह, विधवा विवाह, तथा विदेश गमन आदि क्षेत्रों में सामाजिक चेतना जागृत की जा रही थी।

गुजरात के जागरण में पत्रिकाओं का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा। 1855 में समाज सुधारक कृष्णदास मुलजी ने "सत्य प्रकाश" नामक पत्र निकाला। इसका समाज सुधार के काम में अपूर्व योगदान रहा। एक सितंबर 1884 के दिन नर्मदाशंकर ने "डांडियो" नामक पाक्षिक आरंभ किया जो शीघ्र ही साप्ताहिक हो गया। नर्मद ने इस पत्र द्वारा सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध आंदोलन चलाया। राष्ट्रीयता की भावना का सर्वप्रथम प्रचार करने वाला 'डांडियो' ही था। नर्मदाशंकर (1833-1886) गुजराती में नवजागरण के प्रणेता थे। उनका कार्य चहुँमुखी था। एक तरफ़ वे जहां गुजराती भाषा का प्रचार-प्रसार, नये साहित्य की सर्जना करके सांस्कृतिक नव-जागरण कर रहे थे, वहीं दूसरी तरफ़ उन्होंने अनेक प्रकार के लेख लिखकर सामाजिक जागृति में भी सहायता की। गुजराती भाषा में शब्दकोश तैयार करना इनका अन्य महत्वपूर्ण कार्य था। वे दादाभाई नौरोजी के शिष्य थे और "स्वदेशाभिमान" का शब्द वहीं से उन्होंने सीखा। विधवा से विवाह कर उन्होंने समाज सुधार को वास्तविकता में भी बदला। "महापुरुषों की जीवनियां और "आत्मकथा" लिखकर उन्होंने गुजराती गद्य को समृद्ध किया।

गोवर्धनराम त्रिपाठी इस युग के दूसरे प्रमुख लेखक थे। 1887 में इनके सुप्रसिद्ध उपन्यास "सरस्वतीचंद्र" का पहला खंड प्रकाशित हुआ। उपन्यास के नायक सरस्वतीचंद्र में देशभक्ति की गहरी भावना मिलती है। सामाजिक जागरूकता इनके जीवन दर्शन का अंग थी। इस उपन्यास के केंद्र में सामाजिक उत्थान है। गोवर्धनराम ने कानून, राजनीति, समाज, अर्थव्यवस्था, धर्म आदि विषयों पर लेख लिखे।

नर्मद के समकालीन महीपतराम नीलकंठ ने विदेश यात्रा की थी, उन्होंने गुजराती में पहला यात्रा वृत्तांत लिखा था। उन्होंने "सास बहू की लड़ाई" नामक सामाजिक उपन्यास भी लिखा। बृजलाल शास्त्री ने गुजराती भाषा का इतिहास लिखा और भाषा विज्ञान को नई दिशा दी।

गुजराती साहित्य में गांधी जी का भी व्यापक प्रभाव पड़ा। 1915 के बाद के साहित्य को गुजराती में गांधी युग की संज्ञा दी गई। गांधी जी के प्रभाव से प्रेरित होकर कवियों ने राष्ट्रोत्थान और नई जनजाग्रति को कविता में महत्वपूर्ण स्थान दिया। इस युग से पूर्व के कवि यद्यपि अधिक महत्वपूर्ण रचना नहीं कर पाए परंतु गांधी युग में उमाशंकर जोशी, सुंदरम, झवेचंद मेघाणी, वामनारायण पाठक महत्वपूर्ण कवि हैं। उपन्यासकारों में कन्हैयालाल माणिक लाल मुंशी ने पौराणिक और ऐतिहासिक विषयों पर उपन्यास लिखे जबकि रमणलाल देसाई ने मानवतावादी और गांधीवादी दृष्टिकोण को प्रतिबिंबित किया है। उन्होंने "प्रलय" में युद्ध की समस्या को उठाया है तो "पूर्णिमा" में वेश्या समस्या को। "हृदय-विभूति" में आदिवासी जातियों का चित्र खींचा है।

कहानी का आरंभ बीसवीं शती में हुआ और गुजराती की पहली कलात्मक कहानी सन् 1918 में "गोवालणी" मिलती है जो मलयानिल ने लिखी है। धूमकेत् ने कहानी साहित्य

को नया मोड़ दिया। उन्होंने ग्राम जीवन और दलित तथा शोषित निम्नवर्ग की समस्याओं को चित्रित किया। नाटक लेखन में कन्हैयालाल मुंश.. का नाम महत्वपूर्ण है। चंद्रवदन मेहता इस युग के यथार्थवादी नाटककार हैं। रमण लाल देसाई, कृष्णलाल श्रीधाराणी, यशवंत पंड्या, गुणवंत राय आचार्य आदि अन्य नाटककार हैं। निबंध के क्षेत्र में गांधी जी का महत्वपूर्ण योगदान है जिन्होंने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक आदि विषयों पर निबंध लिखे। डा. चंद्रकांत मेहता के अनुसार, "सरल और लाघवयुक्त जनभाषा में कहावतों, मुहावरों आदि द्वारा निबंध को किस प्रकार आकर्षित बनाया जा सकता है, इसका परिचय उन्होंने अपने निबंधों द्वारा दिया। गांधी जी इस युग के महान् निबंध लेखक थे।" अन्य निबंधकारों में काकासाहब कालेलकर, किशोरलाल, मशरूवाल नरहरि पारीख, पंडित सुखलाल, किसनसिंह चावड़ा ये गंभीर निबंध लेखक हैं।

बोध प्रश्न

4) आधुनिक भारतीय साहित्य का आरंभ कब से माना जाता है?

.....

5) आधुनिक साहित्य के दौरान किन-किन नयी विधाओं में लेखन आरंभ हुआ?

.....

6) निम्नलिखित रचनाओं के लेखकों और विधाओं के नाम बताइए।

		लेखक	विधा
1.	नील दर्पण	.....	.....
2.	गोरा	.....	.....
3.	अंगणांतील पोपट	.....	.....
4.	सरस्वतीचंद्र	.....	.....
5.	मेघनादवध	.....	.....

अभ्यास

3) बंगला उपन्यास के विकास पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

4.8 दक्षिणांचलीय साहित्य

राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन और नवजागरण में दक्षिण की भी बराबर की भागीदार रही है। आंध्रप्रदेश में वीरेशलिंगम, केरल में नारायण गुरु, तमिलनाडु के द्रविड़ आंदोलन ने दक्षिण में नवजागरण और समाज सुधार के आंदोलन को गति दी। अन्य राज्यों की तरह यद्यपि ये राज्य भी अपने वर्तमान रूप में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गठित हुए परंतु इन क्षेत्रों में स्वाधीनता आंदोलन काफी मजबूत रहा। इस दौर के साहित्य में हम नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति व्यापक रूप में पाते हैं।

4.8.1 तमिल साहित्य

आधुनिक काल के पहले तक तमिल में पद्य की प्रचुरता थी। लेकिन अंग्रेज़ी साहित्य के प्रभाव में पद्य के साथ-साथ गद्य का भी विकास हुआ। गद्य की विभिन्न विधाओं का विकास इसी दौर में हुआ। आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं सुब्रह्मन्य भारती। भारती

राष्ट्रीयता के पहले कवि थे। डा. के. ए. जमूना के अनुसार, "राजनीतिक दृष्टि से क्रांतिपूर्ण युग में जन्म लेने पर भी उनके भावुक कवि हृदय ने अनेक सुंदर काव्य-कृतियों की सृष्टि की। तमिलनाडु की जनता में वीरता एवं धीरता उत्पन्न करने के लिए इन्होंने देशभक्ति पूर्ण विविध कविताओं की रचना की। इनकी कविताओं के मूल भाव हैं—व्यक्तिगत मुक्ति, राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य, समाज सुधार की भावना और विश्वबंधुत्व की भावना आदि। पग-पग पर भारतीयता का देश-प्रेम, तमिल भाषा-प्रेम तथा स्वधर्म प्रेम झलकता है। उन्होंने देश के लिए अपना तन, मन, धन अर्पित कर दिया था। देश के नगण्य से नगण्य व्यक्ति का भी उनकी दृष्टि में महत्व था। इसी से उनकी काव्य कृतियों में पीड़ित एवं दलित वर्ग के पात्रों को स्थान मिला है।" (भारतीय भाषाओं के साहित्य का संक्षिप्त इतिहास पृ. 182)।

भारती के अलावा इस दौर के अन्य प्रसिद्ध कवि हैं—भारतीदासन, कविमणि देशिक विनायकम पिल्लै, नामक्कल रामलिंगम पिल्लै आदि।

तमिल नाटक के क्षेत्र में प्रथम उल्लेखनीय लेखक हैं शंकरदास स्वामिगल् हैं जिन्होंने लगभग चालीस नाटक लिखे। पम्मल सम्बंद मुदलियार तमिल नाटकों के जनक कहे जाते हैं। इन्होंने अस्सी नाटकों एवं प्रहसनों की चर्चा की।

तमिल में उपन्यास साहित्य का आरंभ श्री वेदनायकम पिल्लै कृत "प्रताप मुदलियार चरित्रम" से होता है। राजम अय्यर भी प्रतिभाशाली उपन्यासकार थे। श्री माधवय्या, पं. नरेश शास्त्री, श्रीमती कौदैनायकी अम्माल, आदि का नाम भी लिया जाता है। कृष्णमूर्ति "कल्कि" ने तमिल उपन्यासों को नयी दिशा दी। उन्होंने सामाजिक, ऐतिहासिक, हास्यप्रधान, नाना उपन्यासों की सर्जना की। तमिल उपन्यास लेखन में अखिलन, गोवी मणिशेखरन, डा. मु. वरदराजन आदि के नाम लिये जा सकते हैं। तमिल में कहानी लेखन का आरंभ सुब्रहमण्य अय्यर ने किया तमिल कहानी के क्षेत्र में तीन व्यक्तियों के नाम अधिक प्रसिद्ध हैं। वे हैं—पुदुमैप्पित्तन, कु.प. राजगोपालन और कल्कि। तमिल में निबंध, आत्मकथा, जीवनियां, संस्मरण आदि में भी उल्लेखनीय लेखन हुआ।

4.8.2 तेलुगु साहित्य

तेलुगु भाषी वीरेशलिंगम (1848-1929) न केवल अपने क्षेत्र में, वरन् संपूर्ण दक्षिण भारत में, विशेष रूप से मद्रास तक नवजागरण के पुरोधा थे। उन्होंने सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में नई चेतना का विस्तार किया। समाज सुधार और साहित्य दोनों ही क्षेत्रों में इनके कार्य बहुत महत्व के हैं। तेलुगु गद्य और उसकी अन्य विधाओं—नाटक, उपन्यास, प्रहसन, निबंध, आलोचना, जीवनी, आत्मकथा आदि का आरंभ और विकास इनके द्वारा ही हुआ। "ब्रहमविवाहम" (1876) एक हास्य प्रधान रूपक है। इस नाटक के आंध्रप्रदेश में बूढ़ों के बालकन्याओं के साथ विवाह करने पर रोक सी लग गई। 1880 में विधवा विवाह संबंधी नाटक "विवेक दीपिका" प्रकाशित हुआ। तेलुगु का पहला उपन्यास "राज शेखर चरित्रम्" (1878) भी वीरेशलिंगम् ने ही लिखा था। हिंदू समाज में व्याप्त अंधविश्वासों को दूर करने के लिए इसका लेखन हुआ। वीरेशलिंगम तेलुगु पत्रकारिता के सभी निर्माता थे। 1874 में "विवेकवर्धिनी" के प्रकाशन से अपने समाज सुधार के कार्य को आगे बढ़ाया। स्त्रियों के लिए इन्होंने "सतीहित बोधिनी" नामक मासिक पत्रिका निकाली। वीरेशलिंगम पर बंगाल के नवजागरण का सीधा प्रभाव था।

गुरजाड अप्पाराव (1862-1915) तेलुगु के एक और महत्वपूर्ण लेखक हैं। उन्होंने जनसामान्य की बोलचाल की भाषा में साहित्य रचना की। इन्होंने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज सुधार के काम को आगे बढ़ाया। बाल-विवाह विरोधी अपनी कविता "पूर्णम्मा" में अप्पाराव नन्हें-मुन्नों का आहवान कर एक अश्रुपूर्ण कहानी सुनाते हैं। "देशभक्ति" नामक खंडकाव्य में मानवतावाद के गीत गाये हैं। "कन्याशुल्कम्" नाटक में बाल-विधवाओं की दयनीय स्थिति का चित्रण है। गुरजाड के विचारों में वैज्ञानिकता, धर्मनिरपेक्षता, राष्ट्रीय एकता, अतीत से मुक्ति आदि भावों के साथ-साथ समाज के निर्माण में श्रमिकों को मान्यता मिलने संबंधी भाव विद्यमान थे। तेलुगु की इस युग की अन्य महान् प्रतिभाओं में वेदम वेंकटराय शास्त्री, बल्लारी के.डी. कृष्णामावार्लु, रामचंद्रालु आदि महत्वपूर्ण लेखक हैं।

रायप्रोलु सुब्बाराव ने राष्ट्रीय भावना का तेलगु कविता में सर्वप्रथम समावेश किया। विश्वनाथ सत्यनारायण में रोमांटिक भावना और नवजागरण दोनों का समावेश है।

1935 के बाद तेलुगु कविता में वामपंथी विचारों की ओर झुकाव हुआ। श्रीरंगम् श्री निवास राव (श्री श्री) इस धारा के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। उनकी कविता में गरीबों के प्रति असीम सहानुभूति और क्रांति की आकांक्षा अभिव्यक्त हुई है।

वीरेशलिंगम के बाद तेलुगु उपन्यास लेखन के क्षेत्र में लक्ष्मीनरसिंहम् पंतुलु, चिलकमूर्ति, अडिवि बापिराजु, केतवरपु वेंकटशास्त्री, विश्वनाथ सत्यनारायण आदि उल्लेखनीय हैं। कहानी, नाटक तथा अन्य गद्य विधाओं में भी इस भाषा में इस अवधि में महत्वपूर्ण कार्य हुआ।

4.8.3 कन्नड़ साहित्य

आधुनिक कन्नड़ की शुरुआत गद्य से होती है। लगभग 1831 में वल्लरि तथा मंगलौर में मिशनरियों द्वारा प्रिंटिंग प्रेस की स्थापना हुई। उसके बाद से ही कन्नड़ भाषियों में अपनी भाषा के प्रति सम्मान का भाव जाग्रत हुआ। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध से कन्नड़ के आधुनिक साहित्य की शुरुआत होती है। इस काल में अनुवाद अधिक हुए, स्वतंत्र रचनाएं बहुत कम लिखी गईं। इगप्पा हेगड़े का "विवाह प्रहसन" एक सामाजिक नाटक था। इसमें कन्या विक्रय को आधार बनाकर सामाजिक व्यंग्य किया गया था। उपन्यास के क्षेत्र में कन्नड़ के प्रथम सामाजिक उपन्यास होने का गौरव 1899 में गुलवाडी वेंकटराव लिखित "इंदिरा बाई" को प्राप्त है। एम.एस. पुट्टण्णा का लिखा हुआ "माद्रि हुण्णो महाराजा" एक मौलिक उपन्यास है।

कन्नड़ का श्रेष्ठ आधुनिक साहित्य बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के बाद से ही मिलता है। कविता के क्षेत्र में मास्ति वेंकटेश अयंगार, डी.वी. गुंडप्पा, पंजे मंगेशराव, दत्तात्रेय रामचंद्र बेंद्रे, सालि रामचंद्रराव मुख्य थे। अन्य कवियों में के.वी. पुट्टप्पा, वी. सीतारामय्या, पी.टी. नरसिंहाचार आदि भी महत्वपूर्ण थे। इन सभी कवियों के काव्य में धरती का प्रेम तथा राष्ट्रीयता का पूरा भावलोक व्यक्त हुआ। सन् 30 में जिस प्रगतिशील आंदोलन का सूत्रपात हुआ, उसने उस समय के साहित्य पर गहरा असर डाला। विनायक कृष्ण गोकाक, के.एस. नरसिंह स्वामी, गोपालकृष्ण अडिग, बी.एच. श्रीधर, चन्नवीर कणवी, जी.एस. शिवरुद्रप्पा आदि ने कविता में नई संवेदना का संचार किया।

आधुनिक कन्नड़ साहित्य में छोटी कहानी सबसे लोकप्रिय है। मास्ति वेंकटेश अयंगार आधुनिक कन्नड़ कहानी साहित्य के पिता माने जाते हैं। उनकी कहानियों में दार्शनिकता, देशभक्ति, ऐतिहासिकता, ग्रामीण जीवन के चित्र, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण आदि तत्वों का बड़ा सुंदर समावेश हुआ है। अन्य कहानी लेखकों में गोरूप राम-स्वामी अयंगार, कुवेंपु, आनंद, बेटगेरि, गोपाल कृष्णराव गौरम्मा उल्लेखनीय हैं।

कन्नड़ उपन्यास लेखकों में शिवरामकारंत, मास्ति वेंकटेश अयंगार, वी.के. गोकाक, ए.एन. कृष्णराव, के.वी. अय्यर आदि प्रमुख हैं। मास्ति का "चेन्नबसवनायक", के.वी. अय्यर का "शांतला", ए.एन. कृष्णराव का "नटसार्वभौम", के.वी. पुट्टप्पा का "कानुर सुब्बम्म हेग्गडति", कारंत के "बेट्टदाजीव" और "चोमनदुडि" और गोकाक का "समरसवे जीवन" अपने-अपने विशिष्ट गुणों के कन्नड़ भाषा के महत्वपूर्ण उपन्यास कहे जा सकते हैं।

नाटक, निबंध, बाल साहित्य तथा अन्य विधाओं में भी कन्नड़ भाषा में इस अवधि में महत्वपूर्ण लेखन हुआ।

4.8.4 मलयालम साहित्य

केरल में नवजागरण का शंख फूंकने वालों में सर्वप्रथम नारयणगुरू (1854-1928) का नाम आता है। नारायणगुरू ने दलितों और शोषितों की सांस्कृतिक-आर्थिक मुक्ति का आंदोलन चलाया। उनके कामों ने केरल में राष्ट्रीय आंदोलन के लिए आधार बनाया। नारायणगुरू के

विचारों को साहित्य में कुमारन् आशान् (1873-1924) ने अभिव्यक्ति दी। इस काम को उन्होंने "विवेकोदयम" नामक पत्रिका के संपादन से पूरा किया। जाति व्यवस्था के विरोध में "दुरवस्था" और "चंडाल भिक्षुकी" नामक लंबी कविताएँ बहु सुंदर बन पड़ी हैं।

कुमारन् आशान से पूर्व मलयालम में सांस्कृतिक जागरण के रूप में केरल वर्मा (1815-1914), ए.आर. राजराज वर्मा (1863-1918), चंद्रमेनन (1847-1900) आदि का योगदान मलयालम गद्य के विकास के लिए सदैव याद किया जाता रहेगा। उन्होंने पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण, शब्दकोश, संस्कृत, अंग्रेज़ी तथा दसरी भारतीय भाषाओं से मलयालम में अनुवाद से भाषा को समृद्ध किया।

उपन्यास के क्षेत्र में चंद्रमेनन का 'इंदुलेखा' (1889) मलयालम का पहला उपन्यास माना जाता है। यह एक सामाजिक उपन्यास है। इनका दूसरा उपन्यास "शारदा" है। सी.वी. रामन पिल्लै का "मार्तण्डवर्मा" (1891) एक नवीन शैली का उपन्यास है।

कविता के क्षेत्र में दूसरा महत्वपूर्ण नाम वल्लतोल नारायण मेनन (1878-1958) हैं। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के विविध प्रकरणों की वल्लत्तोल की कविता में मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। "एन्टे गुरुनाथन" (मेरे गुरुदेव) महात्मा गांधी के संबंध में लिखी गई श्रेष्ठ कविता है। उल्लूर एस. परमेश्वर अय्यर ने साहित्य की सभी विधाओं को परिपुष्ट किया है। श्री शंकर कुरुप ने मलयालम कविता को विश्व साहित्य के स्तर पर प्रतिष्ठित किया है।

मलयालम भाषा में कथा साहित्य भी काफ़ी समृद्ध है। बीसवीं सदी की बदलती स्थितियों का प्रभाव कथा साहित्य पर भी दिखाई देता है। तकषि शिवशंकर पिल्लै का उन्यास "चेम्मीन" मलयालम की ही नहीं भारतीय भाषाओं की श्रेष्ठतम कृतियों में से है। तकषि पददलित जनता के जीवन की करुणाजनक परिस्थितियों को हृदय-स्पर्शी रीति से चित्रित करने में सिद्धहस्त हैं। केशवदेव के उपन्यास भी यथार्थवाद से काफ़ी प्रभावित हैं। एस.के. पोट्टक्काट्ट ग्रामीण जीवन के चित्रकार हैं। पी.सी. कुट्टिकृष्णन ने मलाबार के मुस्लिम परिवारों को केंद्र बनाकर अनेक उच्चकोटि के उपन्यास लिखे हैं। नाटक, निबंध, कहानी आदि विधाओं में भी मलयालम में महत्वपूर्ण लेखन हुआ है।

4.9 उत्तरांचलीय साहित्य

इस भाग के अंतर्गत हम उर्दू, सिंधी, पंजाबी और कश्मीरी भाषा के साहित्य का परिचय प्राप्त करेंगे। यद्यपि हिंदी भी इसी क्षेत्र की भाषा है परंतु हिंदी साहित्य पर विचार हम भाग 4.10 के अंतर्गत करेंगे।

4.9.1 उर्दू साहित्य

उर्दू में नवजागरण का प्रारंभ दिल्ली कालेज की स्थापना (1824) से माना जाता है इसमें परंपरागत अरबी, फारसी के अलावा अंग्रेजी और विज्ञान का भी अध्ययन होता था। इस युग में गद्य का उदय हुआ। गद्य में सोच के स्तर पर तर्क और बौद्धिकता का समावेश हुआ। विज्ञान की पुस्तकों में उर्दू में अनुवाद 1857 के पहले से ही छपने लगे थे। इस दौर में सबसे महत्वपूर्ण नाम सर सैयद अहमद खां का है ज़िन्होंने मुसलमानों के बीच समाज सुधार का महत्वपूर्ण कार्य किया और उनमें शैक्षिक जागृति लाने के लिए शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय उनके ही प्रयत्नों का फल है।

सर सैय्यद ने धार्मिक, सामाजिक और शिक्षा संबंधी कार्यों के अतिरिक्त उर्दू गद्य को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। गालिब द्वारा लिखे पत्र भी उर्दू गद्य के उत्कृष्ट नमूने हैं। हाली, शिबली, नजीर, सैय्यद अली, बिलगिरामी, आदि ने साहित्य के नवजागरण में योग दिया। इस युग में अनुवाद, कविता, जीवनी, यात्रा साहित्य, हास्य-व्यंग्य, निबंध, उपन्यास सभी क्षेत्रों में उल्लेखनीय कार्य हुआ। हाली और शिबली ने नया काव्यशास्त्र दिया। 'मुकद्द शेरों-शायरी" में पहली बार हाली ने यह बताने की

कोशिश कि समाज का साहित्य से क्या रिश्ता है? हाली गद्य लेखक और आलोचक के अलावा कवि रूप में भी उतने ही महान् थे। "मुसद्दस" उनकी श्रेष्ठ काव्य रचना है। "शिकवाए-हिंद" नामक कविता भारत के गौरवमय अतीत के वर्णन के साथ ही वर्तमान दुर्दशा के विरुद्ध पुकार है। इस युग में उर्दू साहित्य को दरबारी मिजाज, प्रेम और विरह की तड़पन से मुक्त करके उसे राष्ट्रीयता, मानवतावाद, बौद्धिकता और वैज्ञानिकता से जोड़ने का श्रेय सर सैय्यद को ही है। मुहम्मद हुसैन आजाद (1832-1910) ने कविता में विषय और शैली दोनों दृष्टियों से नई शुरुआत की। अकबर इलाहाबादी (1846-1921) और चकबस्त पर राष्ट्रीय चेतना का गहरा प्रभाव था।

उर्दू शायरी को राष्ट्रीय भावना, मानवतावाद, रोमांटिक नवजागरण से युक्त करके उसे कलात्मक उत्कर्षता प्रदान करने वालों में इकबाल का नाम सबसे ऊपर है जिन्होंने "सारे जहाँ से अच्छा हिंदोस्तां हमारा" जैसा अमर तराना लिखा। बाद में इकबाल का शायराना मिजाज़ अध्यात्मक की ओर हो गया।

उर्दू शायरी को हसरत मोहानी, फिराक़ गोरखपुरी, जोश मलीहाबादी, मजाज़ लखनवी, मख़दूम मोहिउद्दी, फ़ैज़ अहमद फैज़ जैसे शायरों ने भी ऊँचाई प्रदान की जिनके काव्य में राष्ट्रीयता थी, उत्पीड़ित जनता के प्रति गहरी सहानुभूति थी तथा क्रांति का उद्घोष था।

उर्दू में उपन्यास का आरंभ हिंदी से पहले हुआ। उर्दू का पहला उपन्यास नजीर अहमद ने 1869 में खिराजुल उरूस" नाम से लिखा। इनमें एक सभ्रांत मुस्लिम परिवार का जीवन चित्र प्रस्तुत करते हुए दिखाया गया है कि कुलीन घर की मूर्ख लड़की भी शिक्षा से सुधर सकती है। रतननाथ सरशार (1846-1902) का "फसानाए-आजाद" उर्दू में ही नहीं हिंदी में भी पढ़ा गया। मिर्जा रूस्वा ने "उमराव जान अदा" में एक वेश्या की कहानी लिखी और उसके प्रति मानवीय सहानुभूति व्यक्त की।

उर्दू के क्षेत्र में क्रांतिकारी शुरुआत का श्रेय प्रेमचंद को है जिन्होंने बाद में हिंदी में भी लिखना शुरू कर दिया था। वे यथार्थवादी कलाकार थे और अपने उपन्यासों और कहानियों से उन्होंने दलित वर्ग को न केवल गहरी सहानुभूति दी वरन् उनके हृदय की ऊँचाइयों को भी दुनिया के सामने रखा।

प्रगतिशील आंदोलन ने उर्दू कथा साहित्य को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण योग दिया। कृश्नचंदर, सआदत हसन मंटो, ख्वाजा अहमद अब्बास, इस्मत चुगताई, राजेंद्रसिंह बेदी ने कहानियों और उपन्यासों द्वारा उर्दू को समृद्ध किया।

4.9.2 सिंधी साहित्य

कई कारणों से सिंधी भाषा का आधुनिक साहित्य का विस्तृत भंडार नहीं मिलता। 1843 में अंग्रेजों के अधीन आने के बाद सिंध में जो पुस्तकें लिखी गई वे या तो पाठ्यपुस्तकें थीं या अनुवाद। कविता के क्षेत्र में परंपरागत काव्य ही लिखा जाता रहा। 20वीं शताब्दी में अवश्य सिंधी भाषा में आधुनिक किस्म की कविता का लेखन शुरू हुआ। सिंधी कविता को घरेलू बोलचाल की स्वाभाविक सिंधी भाषा की ओर मोड़ने का श्रेय मास्टर किशनचंद बेबस को है जिन्होंने गरीबों के जीवन पर, प्रकृति सौंदर्य पर कविताएँ लिखीं। उन्होंने बच्चों के लिए सरल गीत भी लिखे। अन्य कवियों में हिरदिलगीर, हूंदरराज दुखायल, राम पंजवाणी, गोविंद भटवाणी प्रमुख हैं। हैदरबख़्श जतोई भी सिंधी भाषा के यशस्वी कवि हैं। नाटक में यद्यपि मौलिक नाटक कम लिखे गये परंतु अन्य भाषा से अनुवाद काफी हुए। सिंधी गद्य को समृद्ध करने में मिर्ज़ा कलीच बेग, कौड़ोमल चंदनमल, दयाराम गिदूमल और परमानंद मेवाराम आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने अनुवाद और मौलिक रचनाओं द्वारा सिंधी साहित्य को समृद्ध किया।

4.9.3 पंजाबी साहित्य

श्री खुशवंत सिंह के अनुसार पंजाब में पश्चिमी प्रभावों का असर सबसे अंत में आया अतः उस प्रभाव को दूर करने में भी वह सबसे पीछे रहा। इसी कारण पंजाबी साहित्य का

नवजागरण शेष देश की अपेक्षा बहुत देर से घटित हुआ। अंग्रेज़ों के आने के बाद पहले सिंह सभा के आंदोलन और बाद में अकाली आंदोलन और कम्युनिस्टों के प्रभाव से जो सामाजिक और राजनीतिक भावनाएँ घटित हुईं, उन्हीं को पंजाबी साहित्य प्रतिबिंबित करता रहा। (आज का भारतीय साहित्य, पृ. 180) सिंह सभा के आंदोलन की साहित्यिक अभिव्यक्ति भाई वीर सिंह के माध्यम से हुई। उन्होंने पंजाबी भाषा में लोगों की दिलचस्पी फिर से पैदा की। उन्होंने बहुत अधिक मात्रा में लिखा। भाई वीरसिंह के अपने उपन्यासों में सिख धर्म और सिख राज्य का गौरवगान मिलता है जिस पर अंग्रेज़ों द्वारा आघात किया जा रहा था। सिख धर्म की नैतिक श्रेष्ठता उनके उपन्यासों का मुख्य विषय है। वीरसिंह ने धर्मग्रंथों की टीकाएं भी लिखीं वीरसिंह ने पहली बार पंजाबी में मुक्त छंद का प्रयोग किया। "राणा सूरतसिंह" नामक लंबी कविता का विषय भी यद्यपि धार्मिक है परंतु भाषा और शैली की दृष्टि से वह उत्कृष्ट रचना है। उन्होंने गुरु नानक व गुरु गोविंद सिंह की जीवनियां भी लिखीं। भाई वीर सिंह के चार समकालीन कवि काहन सिंह, चरण सिंह, पूरणसिंह और धनीराम चात्रिक भी उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक पंजाबी कविता के दो महत्वपूर्ण नाम हैं मोहन सिंह और अमृता प्रीतम। मोहन सिंह के लेखन पर प्रगतिशीलता का प्रभाव रहा है जबकि अमृता प्रीतम में सहज मानवीय करुणा का समावेश प्रधान रहता है।

पंजाबी गद्य में सबसे महत्वपूर्ण नाम है—गुरुबख्श सिंह। "प्रीतलड़ी" नाम से एक पत्र भी उन्होंने प्रकाशित किया। "सांवी पथरी जिंदगी" नामक निबंध संग्रह ने उन्हें पंजाबी का सर्वश्रेष्ठ गद्य लेखक बना दिया। उपन्यास के क्षेत्र में उल्लेखनीय नाम हैं—नानक सिंह। इन्होंने चालीस के लगभग उपन्यास लिखे। इन्होंने अपने उपन्यासों द्वारा समाज सुधार का संदेश घर-घर पहुंचाया। "चिट्टालहू" और "आदमखोर" उनके सर्वश्रेष्ठ उपन्यास हैं। करतारसिंह दुग्गल, सुरिंदरसिंह नरूला, जसवंतसिंह कँवल अन्य उल्लेखनीय हैं।

पंजाबी कहानी लेखने में संतसिंह सेखों का नाम सबसे ऊपर है। करतारसिंह दुग्गल, कुलवंतसिंह विर्क अन्य महत्वपूर्ण नाम हैं।

4.9.4 कश्मीरी साहित्य

कश्मीरी भाषा में आधुनिक साहित्य की शुरुआत और भी देर से हुई। इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि अन्य भारतीय भाषाओं की तरह कश्मीरी को न तो शिक्षा का माध्यम बनाया गया और न ही इसके लिए वहाँ के शिक्षित वर्ग ने प्रयत्न किया। परिणामस्वरूप न तो कश्मीरी में पत्रकारिता का आरंभ हुआ और न ही गद्य लेखन की शुरुआत हुई। हां, कविता के क्षेत्र में अवश्य कुछ कवियों ने नये काव्य की नींव डाली। गुलाम अहमद "महजूर" (1885-1952) के काव्य में भी यद्यपि प्रेम की ही अभिव्यक्ति हुई परंतु उनकी अभिव्यक्ति शैली नये ढंग की थी। अब्दुल अहद आजाद में भी यही नयापन नज़र आता है। मजहूर के काव्य में ही पहली बार राष्ट्रीयता के भाव की अभिव्यक्ति हुई। देश की दलित, पीड़ित एवं शोषित जनता की ओर पहली बार ध्यान उन्हीं का गया। महजूर के शिष्य आज़ाद ने राष्ट्रीयता और मानव-प्रेम की इस धारा को आगे बढ़ाया। डोगरी राजा की दासता के विरुद्ध उन्होंने क्रांति की सिंह-गर्जना अपने काव्य द्वारा की। आजाद के काव्य में कश्मीरवासियों की भावनाओं की सच्ची अभिव्यक्ति हुई है। वे राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के सच्चे प्रतिनिधि कवि हैं। मिर्जा गुलाम हसन बेडा "आरिफ" एवं पं. दीनानाथ नादिम के काव्य में भी राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति मिलती है। जहाँ तक गद्य का प्रश्न है कश्मीरी भाषा में गद्य का विकास स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही हुआ।

बोध प्रश्न

1) क) तमिल भाषा के काव्य में राष्ट्रीयता का उद्घोष करने वाले प्रथम कवि का नाम बताइए।

.....

ख) तेलुगु भाषी जनता में नवजागरण का शंखनाद करने वाले प्रमुख साहित्यकार का नाम बताइए।

.....

ग) केरल के महान् समाज सुधारक का नाम बताइए।

8) निम्नलिखित रचनाओं के लेखक एवं विधा का नाम बताइए।

	लेखक का नाम	विधा का नाम
क) कन्याशुल्कम्	.....	.....
ख) चेमलादुडि	.....	.....
ग) एन्टे गुरुनाथन	.....	.....
घ) साँवी पथरी ज़िंदगी	.....	.....

9) "विवेकवर्धिनी" पत्रिका आरंभ किसने किया और क्यों किया?

.....

.....

अभ्यास

4) सुब्रह्मन्य भारती एवं कुमारन् आशान की कविता की विशेषताओं की तुलना कीजिए।

.....

.....

.....

.....

4.10 हिंदी का आधुनिक साहित्य

हिंदी के 19वीं शती के उत्तरार्द्ध के लेखकों पर बंगाल के नवजागरण का गहरा असर था। आधुनिक हिंदी साहित्य के जनक भारतेन्दु हरिश्चंद्र (1850-1885) का बंगाल के साथ बहुत निकट का संबंध था। उनकी ईश्वरचंद्र विद्यासागर जैसे समाज-सुधारकों से व्यक्तिगत संबंध था। भारतेन्दु ने कई बंगला कृतियों का हिंदी में अनुवाद भी किया। हिंदी पत्रकारिता का आरंभ भी कलकत्ता से हुआ। हिंदी का पहला पत्र "उदंतमार्तंड" 30 मई 1826 को कलकत्ता से पं. जुगलकिशोर के संपादन में निकला। 1857 के पूर्व तक "बंगदूत", "प्रजामित्र", "साम्यदंत मार्तंड" आदि पत्र प्रकाशित हो चुके थे। 1878 से प्रकाशित होने वाला "भारत मित्र" भी आरंभ में कलकत्ता से ही निकलता था। 1899 से 1907 तक नौ साल तक इसका संपादन बाबू बालमुकुंद गुप्त ने किया। कलकत्ता से प्रकाशित होने वाले हिंदी पत्रों से कई लोगों को हिंदी में लिखने की प्रेरणा मिली।

हिंदी क्षेत्र में नवजागरण का महत्वपूर्ण कार्य स्वामी दयानंद सरस्वती (1824-1883) ने किया जिन पर धार्मिक पुनरूत्थानवाद का असर था। बंगाल और महाराष्ट्र में नवजागरण का नेतृत्व समाज सुधारकों, राष्ट्र नायकों ने किया जबकि हिंदी क्षेत्र में यह काम लेखकों को करना पड़ा, जिनके प्रभाव की सीमा थी। स्वामी दयानंद ने अपने विचारों के प्रचार के लिए जिस महत्वपूर्ण ग्रंथ "सत्यार्थ प्रकाश" की रचना की, वह हिंदी में लिखा। स्वामी दयानंद ने समाज सुधार के साथ-साथ राष्ट्रीयता के विचारों का भी प्रचार किया।

हिंदी में नवजागरण का कार्य करने वालों में पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी (1837-1881) का नाम भी महत्वपूर्ण है। फिल्लौरी जी ने व्याख्यान और कथाओं के माध्यम से अपने विचारों को जनता के बीच फैलाया। सनातनधर्मी होते हुए भी उन्होंने धर्म के बाहयांडबरों, रूढियों के

विरुद्ध संघर्ष किया। वे बाल-विवाह के विरोधी थे तथा विधवा-विवाह के पक्षधर। विवाहादि में दहेज, आतिशबाजी आदि की फिजुलखर्ची को पसंद नहीं करते थे। इन्हीं समाज सुधार की बातों के लिए उन्होंने 1877 में "भाग्यवती" नामक सामाजिक उपन्यास लिखा। यह हिंदी का प्रथम प्रकाशित मौलिक उपन्यास है। इसमें बाल-विवाह के विरोध के साथ-साथ विधवा-विवाह की आवश्यकता तथा विवाह में सादगी पर विशेष बल दिया गया है। फिल्लौरीजी ने अन्य कई पुस्तकें लिखकर धर्म संबंधी अवैज्ञानिक और अतार्किक बातों का भी खंडन किया।

फिल्लौरोजी के अतिरिक्त नवीनचंद्र राय ने हिंदी के उत्थान और समाज सुधार संबंधी अनेक कार्य किये। पंजाब में स्त्री शिक्षा का प्रचार करने वालों में वह प्रमुख थे।

हिंदी साहित्य में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति भारतेन्दु युग के साहित्य में ही होने लगी थी। भारतेन्दु जिन्हें आधुनिक हिंदी साहित्य का जनक कहा जाता है, ने न केवल साहित्य रचना द्वारा वरन् लेखकों को प्रोत्साहन द्वारा नये साहित्य के लेखन की दिशा में सक्रिय कर सके। भारतेन्दु के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमधन, राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्ण दास आदि प्रमुख हैं। भारतेन्दु ने "कविवचन सुधा" "हरिश्चंद्र चंद्रिका" और "बालबोधिनी", बालकृष्ण भट्ट ने "हिंदी प्रदीप" तथा प्रतापनारायण मिश्र ने "ब्राह्मण" द्वारा नवजागरण की चेतना का प्रचार किया। भारतेन्दु युग के लेखकों ने मुख्य रूप से नाटकों और निबंधों की रचना की। पद्य के क्षेत्र में अभी भी मुख्य रूप से भक्तिपरक एवं श्रृंगारिक रचनाएँ ही ज्यादा हो रही थीं। भाषा के स्तर पर भी कविता में ब्रजभाषा और खड़ी बोली का विवाद चल रहा था। यद्यपि, ब्रज से खड़ी बोली में कविता का प्रस्थान निर्णायक ढंग से द्विवेदी युग में ही हुआ। परन्तु भारतेंदु युग की ब्रज भाषा कविता में नये राजनीतिक, सामाजिक विषय उठाये जाने लगे थे। भारतेंदु युग के साहित्य में आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक सभी पक्षों पर नये दृष्टिकोण से विचार हुआ है। आर्थिक जीवन में विदेशों में धन का जाना, महंगाई, अकाल, टैक्सों से देश की दुर्दशा का होना, धार्मिक क्षेत्र में मतमतांतर के झगड़े और धार्मिक अंधविश्वासों और रूढ़ियों, सामाजिक क्षेत्र में जाति-पाँति के टंटे, खान-पान के पंचड़े, बाल-विवाह का विरोध, विधवा-विवाह का समर्थन, स्त्री-शिक्षा का समर्थन, विदेश गमन का समर्थन, राजनीतिक क्षेत्र में स्वदेशीयता तथा देश भक्ति को अपने साहित्य का विषय बनाया। स्वदेशी के साथ स्वभाषा के लिए भी इस युग में संघर्ष हुआ।

राष्ट्रीयता की भावना को द्विवेदी युग (1900-1920) में ओर मजबूती मिली। काव्य के क्षेत्र में मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह हरिऔध, सियारामशरण गुप्त, रामनरेश पाठक, श्रीधर पाठक आदि ने राष्ट्रीयता की भावना के अभिव्यक्ति दी। मैथिलीशरण गुप्त का काव्य "भारत-भारती (1912) इस युग की प्रमुख रचना है जिसने राष्ट्रीय भावना को हिंदी भाषियों में फैलाया। महावीर प्रसाद द्विवेदी जिनके नाम से इस युग का नामकरण किया गया है, स्वयं कोई बड़े लेखक नहीं थे परंतु "सरस्वती" पत्रिका के संपादक के रूप में उन्होंने लगभग दो दशकों तक हिंदी साहित्य और हिंदी भाषा को दिशा दी और उसे सजाने-संवारने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। द्विवेदी युग में ही कथा साहित्य की रचना आरंभ हुई। चंद्रधर शर्मा गुलेरी की प्रसिद्ध कहानी "उसने कहा था" 1916 में प्रकाशित हुई थी। प्रेमचंद, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, सुदर्शन आदि लेखकों की कहानियों में सामाजिक समस्याओं को विषय बनाया गया। बालमुकुंद गुप्त इस दौर के एक अन्य महत्वपूर्ण लेखक थे जिन्होंने व्यंग्य निबंध में विशेष ख्याति अर्जित की। प्रेमचंद के उपन्यास 'वरदान', 'प्रेमा' और 'सेवासदन' में सामाजिक समस्याओं विशेषरूप से स्त्रियों की दीन-हीन दशा को चित्रित किया गया था।

1920 के बाद के दो दशक हिंदी साहित्य की उत्कर्षता का काल है। इसी युग में छायावाद मे माध्यम से राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना को वाणी मिली। प्रसाद, निराला, पंत और महादेवी वर्मा ने स्वच्छंदतावादी काव्य दृष्टि अपनाकर भी राष्ट्रीयता, मानवतावाद और उत्पीड़ित जनता के प्रति गहरी सहानुभूति को भी अपने काव्य में स्थान दिया। प्रकृति प्रेम उनकी स्वातंत्र्य भावना की ही अभिव्यक्ति था। जयशंकर प्रसाद की "कामायनी" इस युग का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है जबकि निराला की लंबी कविता "राम की शक्ति पूजा" और खंड काव्य "तुलसीदास" इस युग की अन्य महत्वपूर्ण काव्य रचनाएँ हैं।

प्रेमचंद का महान् कथा साहित्य भी इसी दौर में रचा गया। 'प्रेमाश्रय', 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'गबन', 'निर्मला' और 'गोदान' जैसे उपन्यासों द्वारा उन्होंने भारतीय किसानों की व्यथा-कथा नारी जाति के उत्पीड़न और शोषण तथा देश में व्यापक राष्ट्रीय आंदोलन की अनुगूंज सुन सकते हैं। "गोदान" तो किसान जीवन का महाकाव्य कहा जा सकता है। इस दौर में निबंध और आलोचना के क्षेत्र में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का भी महत्वपूर्ण योगदान है। मनोभावों पर लिखे निबंध बेकन के निबंधों की याद दिलाते हैं तो आलोचना की मौलिक दिशा देने के उनके कार्य की मील का पत्थर माना जाता है। उनका लिखा "हिंदी साहित्य का इतिहास" अब भी हिंदी का सर्वश्रेष्ठ "इतिहास" है।

1930 के बाद हिंदी में एक ओर राष्ट्रीय भावनाओं की अभिव्यक्ति देने वाले कवि बालकृष्ण शर्मा नवीन, माखनलाल चतुर्वेदी, गयाप्रसाद शुक्ल सनेही, रामधारी सिंह दिनकर जैसे कवि सामने आए तो दूसरी ओर भगवतीचरण वर्मा, हरिवंशराय बच्चन जैसे मस्ती और उल्लास का काव्य लिखने वाले कवि उभरे। परंतु इस दौर का सर्वाधिक महत्वपूर्ण साहित्य प्रगतिशील आंदोलन के प्रभाव में लिखा गया। 'प्रगतिशील लेखक संघ' जिसकी स्थापना 1936 में हुई थी और प्रेमचंद ने इसके पहले अधिवेशन की अध्यक्षता थी, ने राष्ट्रीय भावना के साथ-साथ किसानों और मजदूरों के शोषण और दमन, साम्राज्यवाद विरोध, युद्ध के खिलाफ और शांति के समर्थन में आवाज उठाने का आह्वान किया। नरेंद्र शर्मा, यशपाल, राहुल, उपेंद्रनाथ अश्क, शिवमंगल सिंह सुमन, शील, नागार्जुन, गजानन माधव मुक्तिबोध, केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा आदि प्रमुख प्रगतिशील साहित्यकारों में थे। हिंदी साहित्य में 1947 से पूर्व तक सामाजिक और राष्ट्रीय भावना को हमेशा प्रमुखता मिली। महावीर प्रसाद द्विवेदी और आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने साहित्यकारों के सामने यही आदर्श रखा कि साहित्य समाज का दर्पण है। समाज से कटकर साहित्य कभी फूल-फल नहीं सकता।

4.11 आधुनिक भारतीय साहित्य का ऐतिहासिक योगदान

महान् युग में ही महान् साहित्य का सृजन होता है। जिस समय देश में भक्ति आंदोलन चल रहा था, उस समय भक्ति साहित्य के रूप में जो साहित्य रचा गया वह भारतीय साहित्य के सर्वोत्तम का प्रतिनिधित्व करता है। इसी प्रकार 19वीं और 20वीं शताब्दी में जब समाज सुधार के आंदोलनों और स्वाधीनता संग्राम ने भारतीय जनता में नवजागरण की जिस नयी चेतना का संचार किया था उसने राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, केशवचंद्र सेन, विवेकानंद, स्वामी दयानंद, महादेव गोविंद रानाडे, ज्योतिबा फुले, बाबा साहब अंबेडकर, सर सैय्यद अहमद, नारायण गुरु, वीरेशलिंगम जैसे महान् समाज सुधारक पैदा किये, गोपाल कृष्ण गोखले, दादा भाई नौरोजी, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, मौलाना आजाद, भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद, सुभाष चंद्र बोस, सीमांत गांधी जैसे राष्ट्र नेता और रवींद्र ठाकुर, बंकिमचंद्र, भारतेन्दु, प्रेमचंद, शरतचंद्र, हाली, नर्मद, वीरेशलिंगम, केशवसुत, सुब्रहमन्य भारती, नजरूल इस्लाम, कुमारन् आशान, वल्लतोल, शिवराम कारंत, यशपाल, निराला, इकबाल, मंटो, फकीरमोहन सेनापति, तकषि शिवशंकर पिल्लै, बेंद्रे, श्री श्री जैसे महान् रचनाकार दिये।

यह एक राष्ट्रीय आंदोलन था। एक ओर इसने विदेशी दासता से मुक्ति के लिए आवाज उठाई। राजनीतिक दासता से लेकर धार्मिक, सामाजिक सांस्कृतिक सभी तरह की रूढ़ियों और बुराइयों से मुक्ति का अभियान भी चलाया। यह पहला आंदोलन था जिसने अपने केंद्र में मनुष्य को रखा, ईश्वर को नहीं। विवेक को रखा, धर्म को नहीं। अंधविश्वास की बजाए विज्ञानपरक सोच को महत्व दिया। अंग्रेजों के आर्थिक शोषण ने स्वदेशी की भावना का प्रसार किया। गरीबों की दयनीयता दशा तथा सोवियत क्रांति के प्रभाव ने समाजवाद के विचारों के लिए भी जमीन तैयार की। नवजागरण की चेतना ने मनुष्य मनुष्य के बीच समानता के विचार को प्रचारित किया। जाति, धर्म और लिंग के आधार पर मनुष्य-मनुष्य के बीच किसी भी तरह के भेदभाव को पूरी तरह से ठुकरा दिया। यही कारण है कि इस दौर में जातिप्रथा पर प्रहार किया गया, सांप्रदायिक सद्भाव और हिंदू-मुस्लिम एकता की

भावना का समर्थन किया गया और नारी के उत्पीड़न के हर रूप के विरुद्ध आवाज उठाई गई। सती प्रथा, बाल-विवाह, बहु-विवाह का विरोध किया गया, विधवा-विवाह का समर्थन किया गया। स्त्री शिक्षा के लिए स्कूल और कालेज खोले गये।

धार्मिक रूढ़ियों और अंधविश्वासों के विरुद्ध भी आवाज उठाई गई। साहित्य ने स्वतंत्रता, समानता और मानवता की भावना को अपना मूलमंत्र बनाया। सामाजिक समस्याओं को उपन्यासों, कहानियों, नाटकों का विषय बनाया गया। किसानों, दलितों, निम्नवर्ग के लोगों के कठोर जीवन के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किये गये। 1947 से पूर्व के साहित्यकारों ने यह समझ लिया था कि समानता पर आधारित समाज की स्थापना तभी हो सकती है जब समाज का पूरा ढाँचा नहीं बदलता। केवल राजनीतिक मुक्ति ही पर्याप्त नहीं है जब तक कि जीवन के हर क्षेत्र में अन्याय और असमानता को खत्म कर समानता और न्याय पर आधारित व्यवस्था कायम हो। इस दौर में भाषा के क्षेत्र में लोकतांत्रिक भावना का प्रवेश हुआ। लगभग सभी क्षेत्रों में भारतीय भाषाओं उत्थान की भावना जागृत हुई। नव शिक्षित वर्ग ने आरंभ में पत्रकारिता और शिक्षा के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं का प्रयोग किया। बाद में साहित्य सर्जन के लिए इन भाषाओं का उपयोग हुआ। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में अंग्रेजी पुस्तकों का अनुवाद किया गया, नयी पुस्तकें लिखी गईं। नये विषयों के अनुरूप नये शब्द गढ़े गये। शब्दकोश और व्याकरण तैयार किये गये। नयी आवश्यकता के अनुरूप भाषाओं को नया स्वरूप प्रदान किया गया।

इस दौर का साहित्य केवल विषयवस्तु की दृष्टि से ही उच्चकोटि का नहीं था केवल पचास-साठ वर्षों में ही भारतीय साहित्य ने भाषा और शैली की दृष्टि से भी नये-नये प्रयोग हुए और कलात्मक उत्कर्षता की दृष्टि से 1910-20 में ही भारतीय भाषाओं में विश्व स्तर का साहित्य रचा जाने लगा था। रवींद्रनाथ ठाकुर को "गीतांजली " पर नोबेल पुरस्कार 1913 में ही मिल गया था। रवींद्रनाथ का ही उपन्यास "गौरा", प्रेमचंद का "गोदान", ब.व. कारंत का "चोमन दुडि", तकषि शिवशंकर पिल्लै का "चेम्मीन", शरतचंद्र का "श्रीकांत" विश्व के श्रेष्ठतम उपन्यासों में गिने जा सकते हैं। कहानी के क्षेत्र में प्रेमचंद, रवींद्रनाथ ठाकुर, मंटो, वि.स. खांडेकर, मास्ति वेंकटेश आयंगार ने विश्व स्तर की कहानियाँ लिखीं। कविता के क्षेत्र में इकबाल, रवींद्रनाथ ठाकुर, निराला, फ़ैज, कुमारन् आशान, श्री श्री, सुब्रहमन्य भारती वल्लतोल, नजरूल इस्लाम ने कविता को सर्वोच्च शिखर तक पहुंचाया। उन्होंने कविता को प्राचीन रूढ़बद्ध भाषा से ही मुक्त नहीं किया, छंद के बंध से मुक्त कर उसे नये प्रयोगों के लिए तैयार किया।

इस प्रकार नवजागरण और राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन से प्रेरित और प्रभावित इस साहित्य ने हमारे समय की जनता की इच्छाओं और अकांक्षाओं को कलात्मक उत्कर्षता के साथ प्रस्तुत किया।

बोध प्रश्न

10) हिंदी का पहला पत्र कब प्रकाशित हुआ? कहाँ से प्रकाशित हुआ और इसके संपादक कौन थे? पत्र का नाम भी बताइए।

.....

.....

11) छायावाद की दो प्रमुख रचनाओं और उनके रचनाकारों के नाम लिखिए।

.....

.....

12) प्रगतिशील लेख संघ की स्थापना कब हुई और उसका पहला सम्मेलन कहाँ हुआ?

.....

.....

अभ्यास

5) भारतेन्दु युग के साहित्य के महत्व पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

6) भारतीय भाषाओं के विकास की दृष्टि से इस दौर के महत्व को रेखांकित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

4.12 सारांश

- भारतीय साहित्य में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति नामक इस इकाई में आधुनिक भारतीय साहित्य की पृष्ठभूमि का परिचय दिया गया। बताया गया है कि आधुनिक साहित्य के उदय से पूर्व भारतीय भाषाओं में किस तरह का साहित्य लिखा जा रहा था। आधुनिक साहित्य के उदय के कारण क्या थे।
- आधुनिक भारतीय भाषाओं के विकास पर भी इकाई में परिचय दिया गया है। भारतीय भाषाओं के विकास, उनके पारस्परिक संबंध, लिपियों के विकास आदि का परिचय दिया गया है।
- नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन के आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक सांस्कृतिक एवं धार्मिक पक्षों में हुई उथल-पुथल एवं नये विचारों और मूल्यों का परिचय दिया गया है जिसकी अभिव्यक्ति उस दौर के साहित्य में मिलती है।
- आधुनिक भारतीय साहित्य के उदय के मुख्य कारक कौन-कौन से हैं। पत्रकारिता, शिक्षा गद्य लेखन तथा साहित्य की नयी विधाओं के उदय के आरंभिक प्रयासों का परिचय इकाई में दिया गया है। कविता के क्षेत्र में विषय और शैलीगत परिवर्तनों का भी महत्व बताया गया है।
- इकाई में प्रायः सभी प्रमुख भारतीय भाषाओं में 19वीं-20वीं शती में लिखे गये आधुनिक साहित्य की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत की गई है। पूर्व की भाषाओं में बंगला, असमिया और उड़िया, पश्चिम की मराठी और गुजराती, दक्षिण की कन्नड़, तमिल, तेलुगु और मलयालम तथा उत्तर की सिंधी, पंजाबी, उर्दू, कश्मीरी और हिंदी साहित्य का परिचय और उनमें अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना और नवजागरण की चेतना का उल्लेख किया गया है। इन सभी भाषाओं के प्रमुख लेखकों, कृतियों, पत्रिकाओं का भी यथास्थान उल्लेख किया गया है।
- इकाई के अंत में इस दौर के साहित्य के ऐतिहासिक महत्व पर प्रकाश डाला गया है और बताया है कि इस दौर के साहित्य ने किस तरह जनता में राष्ट्रीय भावना, समाज सुधार और आधुनिकता की चेतना को प्रसारित करने में मदद की है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप आधुनिक भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण की भावना को शब्दबद्ध कर सकेंगे।

4.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- *आज का भारतीय साहित्य* (संपादित) : राजपाल एंड संस, दिल्ली, सप्तम संस्करण, सितंबर 1988.
- *भारतीय भाषाओं के साहित्य का संक्षिप्त इतिहास* (संपादित), केंद्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली।
- विश्वनाथ वरवणे : *आधुनिक भारतीय चिंतन*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- पी.के. परमेश्वरन् नायर : *मलयालम साहित्य का इतिहास*, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली।
- रं.श्री. मुगलि : *कन्नड साहित्य का इतिहास*, साहित्य अकादमी नयी दिल्ली।

4.14 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) घ)

2) ग)

3) i) सामंतवाद ii) साम्राज्यवाद

4) 19वीं सदी के मध्य से

5) गद्य की विधाओं, विशेष रूप से कहानी, उपन्यास, निबंध, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा एवं आलोचना का लेखा आरंभ हुआ।

6.

	लेखक	विधा
1.	दीनबंधु गुप्त	नाटक
2.	रवींद्रनाथ ठाकुर	उपन्यास
3.	दिवाकर कृष्ण	कहानी
4.	गोवर्धनराम त्रिपाठी	उपन्यास
5.	माइकेल मधुसूदन दत्त	काव्य

7. क) सुब्रहमन्य भारती
   ख) वीरेशलिंगम्
   ग) नारायण गुरु

8.

	लेखक	विधा
क)	गुरजाड अप्पराव	नाटक
ख)	शिवराम कारंत	उपन्यास
ग)	वल्लतोल	कविता
घ)	गुरूबख्श सिंह	निबंध

9) वीरेशलिंगम ने समाज सुधार की भावना का प्रचार करने और तेलुगु भाषा और साहित्य का संवर्धन करने के लिए किया।

10) 'उदंत मार्तण्ड' हिंदी का पहला पत्र था जिसका प्रकाशन कलकत्ता से 1826 में हुआ। इसके संपादक पं. जुगल किशोर थे।

11) i) कामायनी–जयशंकर प्रसाद
    ii) राम की शक्ति पूजा–निराला

12) 1836 में, लखनऊ में हुआ।

अभ्यास

1) अंग्रेजों के शासन काल में भारत का धन विदेश जाने लगा। यहाँ के परंपरागत उद्योग-धंधे नष्ट कर दिये गये। किसानों से जबर्दस्ती व फसलें उगाई गई जिनसे अंग्रेजों को लाभ था। उद्योगों के नष्ट होने से मजदूर बेकार हो गये। देश की आर्थिक दुरवस्था से किसनों की दशा बिगड़ने लगी। दूसरी ओर ब्रिटेन की उन्नति भी शिक्षित वर्ग के सामने थी। इन परिस्थितियों ने देशवासियों में इस भावना को बल पहुँचाया कि स्वदेशीयता और स्वावलंबन से ही हम विदेशी शोषण से मुक्त हो सकते हैं। राष्ट्रीय भावना का यह आधार बना।

2) सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों में जकड़े हुए लोगों में इस भावना का संचार नहीं किया जा सकता था कि स्वाधीनता क्यों आवश्यक है। जो लोग स्वयं अपने ही लोगों द्वारा उत्पीड़ित और प्रताड़ित हैं उन्हें विदेशी दासता से मुक्ति की आवश्यकता कैसे समझाई जा सकती है। भाग्यवाद और धार्मिक अंधविश्वासों में जकड़े हुए व्यक्ति में राष्ट्रीय भावना को नहीं भरा जा सकता। इसलिए यह आवश्यक था कि अधिक-से-अधिक लोगों को स्वाधीनता आंदोलन में शामिल करने के लिए उनमें अपने ही भाइयों-बहिनों के प्रति समानता का भाव जाग्रत करें और उन्हें विवकेशील बनाएँ ताकि वे स्वाधीनता में देश की ओर स्वयं अपनी उन्नति को समझ सकें।

3) देखिए उपभाग 4.6.1

4) स्वयं प्रयत्न कीजिए।

5) देखिए भाग 3.10 का भारतेंदु युग से संबंधित अंश।

6) देखिए भाग 3.11

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

DCEHI-103

आधुनिक भारतीय साहित्य
नवजागरण और
राष्ट्रीय आंदोलन

खण्ड

2

पूर्वांचलीय साहित्य

इकाई- 5

बांगला साहित्य - I 93

इकाई- 6

बांगला साहित्य - II 117

इकाई- 7

बांगला साहित्य - III 160

इकाई- 8

असमिया साहित्य 194

इकाई- 9

ओड़िया साहित्य 226

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. चन्द्रकांत बांदिवडेकर
हिंदी विभाग
मुंबई विश्वविद्यालय

प्रो. बी.एच. राजूरकर
मराठवाडा विश्वविद्यालय
औरंगाबाद

प्रो. मलिक मुहम्मद
हिंदी विभाग
कालीकट विश्वविद्यालय
कालीकट, केरल

प्रो. भीमसैन निर्मल
उस्मानिया विश्वविद्यालय
हैदराबाद

प्रो. रमेशकुंतल मेघ
हिंदी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रो. इन्द्रनाथ चौधरी
सचिव, साहित्य अकादमी
नई दिल्ली

प्रो. अंबाशंकर नागर
गुजरात विद्यापीठ
अहमदाबाद

प्रो. जी.पी. देशपांडे
सेन्टर फॉर ईस्ट एशियन स्टडीज
स्कूल ऑफ इन्टरनेशनल स्टडीज
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

संकाय सदस्य
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय
मुक्त विश्वविद्यालय

प्रो. वी.रा. जगन्नाथ
डॉ. शत्रुघ्न कुमार
वरिष्ठ अध्यापक
हिंदी विभाग

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक

प्रो. उदयनारायण सिंह (इकाई सं.-5,6)
अध्यक्ष, सेन्टर फार अप्लाईड
लिंग्विस्टिक एण्ड ट्रांसलेशन स्टडीज
सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी
हैदराबाद-500 135 (आं.प्र)

डॉ. सुव्रत लाहिडी (इकाई सं.-7)
रीडर, प्रेसीडेंसी कॉलेज
कॉलेज रोड, कलकत्ता

पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक
डॉ शत्रुघ्न कुमार
वरिष्ठ अध्यापक, हिंदी

खंड संयोजक

डॉ. शत्रुघ्न कुमार
वरिष्ठ अध्यापक, हिंदी

डॉ. भूपेन्द्र राय चौधरी (इकाई सं -8)
रीडर, हिंदी विभाग
72, गौहाटी विश्वविद्यालय
गुवाहाटी-781 014, असम

डॉ. शत्रुघ्न कुमार (इकाई सं.-9)
वरिष्ठ अध्यापक
हिंदी विभाग
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली-68

संकाय सदस्य
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
डॉ. जवरीमल पारख
रीडर, हिंदी

डॉ. रीतारानी पालीवाल
रीडर, हिंदी

डॉ. सत्यकाम
व्याख्याता, हिंदी

श्रीमती स्मिता चतुर्वेदी
व्याख्याता, हिंदी

श्रीमती विमल खांडेकर
व्याख्याता, हिंदी

मुद्रण प्रस्तुति

सुश्री पुष्पा गुप्ता
कॉपी एडिटर
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मई 1997

© इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

ISBN-81-7263-772-1

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

DCEHI-103(I)/90

खंड 2 का परिचय

आधुनिक भारतीय साहित्य : नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन-स्नातक उपाधि कार्यक्रम के अंतर्गत हिंदी का पाँचवा ऐच्छिक पाठ्यक्रम है। पहले खंड में आपने आधुनिक युग राष्ट्रीय आंदोलन नवजागरण तथा नवजागरण एवं चेतना से संबंधित साहित्य की जानकारियां प्राप्त की। उस खंड के द्वारा एक प्रकार से आपने आधुनिक युग के मूलभूत आधार को समझा है। भारतीय नवजागरण में जिन विचारकों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया तथा उस समय भारतीय साहित्य में जिन साहित्यकारों ने अपने-अपने क्षेत्र में कार्य किया उसका संक्षिप्त परिचय भी दिया जा चुका है। इस दूसरे खंड से हम भिन्न-भिन्न भारतीय साहित्य में व्यक्त नवजागरण एवं राष्ट्रीय आंदोलन का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

इकाई 5 : बांगला साहित्य 1
इकाई 6 : बांगला साहित्य 2
इकाई 7 : बांगला साहित्य 3
इकाई 8 : असमी साहित्य
इकाई 9 : ओड़िया साहित्य

पाँचवीं इकाई बांगला साहित्य से संबंधित है। इस इकाई में प्रथमतः हम बांगला भाषा, लिपि और साहित्य की जानकारी प्राप्त करेंगे। फिर आपको आधुनिक बांगला की पृष्ठभूमि के बारे में बताया जायेगा। फिर महत्वपूर्ण लेखकों माइकेल मधुसूदन दत्त, बंकिम चंद्र, गिरीशचंद्र घोष आदि के अलावा समाज सुधारकों का साहित्य पर प्रभाव को भी बताया जायेगा।

छठी इकाई भी बांगला साहित्य से संबंधित है। इसमें बांगला भाषा ही नहीं बल्कि संपूर्ण भारत तथा मानवता के गायक विश्व कवि रवीन्द्रनाथ का अध्ययन कराया जायेगा। गुरुदेव की जीवनी, तथा कार्य के अलावा महत्वपूर्ण रचना के अंश का भी आप अध्ययन करेंगे। इसी इकाई में कुछ कविताएं तथा निबंध अंश और "काबुली वाला" प्रसिद्ध कहानी का वाचन भी करेंगे।

सातवीं इकाई भी बांगला भाषा साहित्य से संबंधित है। इस इकाई में आप बांगला भाषा साहित्य के विस्तार को देखेंगे। इकाई में शरतचंद्र जैसे महत्वपूर्ण रचनाकार की जीवनी तथा साहित्य का अध्ययन करेंगे।

बांगला भाषा साहित्य के एक और मील का पत्थर तथा धर्म समन्वय के साक्षात मूर्ति काजी नजरुल इस्लाम की जीवनी तथा कार्य का भी अध्ययन कराया जायेगा। आप इकाई में उनके कविता का भी आस्वादन कर सकेंगे।

आठवीं इकाई पूर्वांचल के एक और महत्वपूर्ण भाषा असमिया से संबंधित है। इकाई में सर्वप्रथम युगीन पृष्ठभूमि के बारे में बताया जायेगा फिर उन तत्वों का विश्लेषण किया जायेगा जिन्होंने इस क्षेत्र में तथा साहित्य में नवजागरण की शुरुआत की। असमिया भाषा साहित्य के उद्भव एवं विकास को दर्शाते हुए विभिन्न साहित्य युगों को स्पष्ट किया जायेगा। अंत में आप प्रमुख रचनाकारों तथा उनकी रचनाओं का अध्ययन करेंगे।

नवीं और इस खण्ड की अंतिम इकाई उड़िया भाषा के साहित्य से संबंधित है। इकाई में आपको सर्वप्रथम उड़िया भाषा-लिपि और साहित्य के उद्गम एवं विकास का संक्षिप्त परिचय दिया जायेगा। तत्पश्चात विभिन्न साहित्यिक विधाओं का विकास एवं उनमें व्यक्त नवजागरण एवं राष्ट्रीय जागरण को स्पष्ट किया जायेगा। अंत में महत्वपूर्ण उड़िया साहित्यकारों की जीवनी एवं कार्य का विवरण दिया जायेगा तथा कुछ रचनाओं का विश्लेषण प्रस्तुत किया जायेगा।

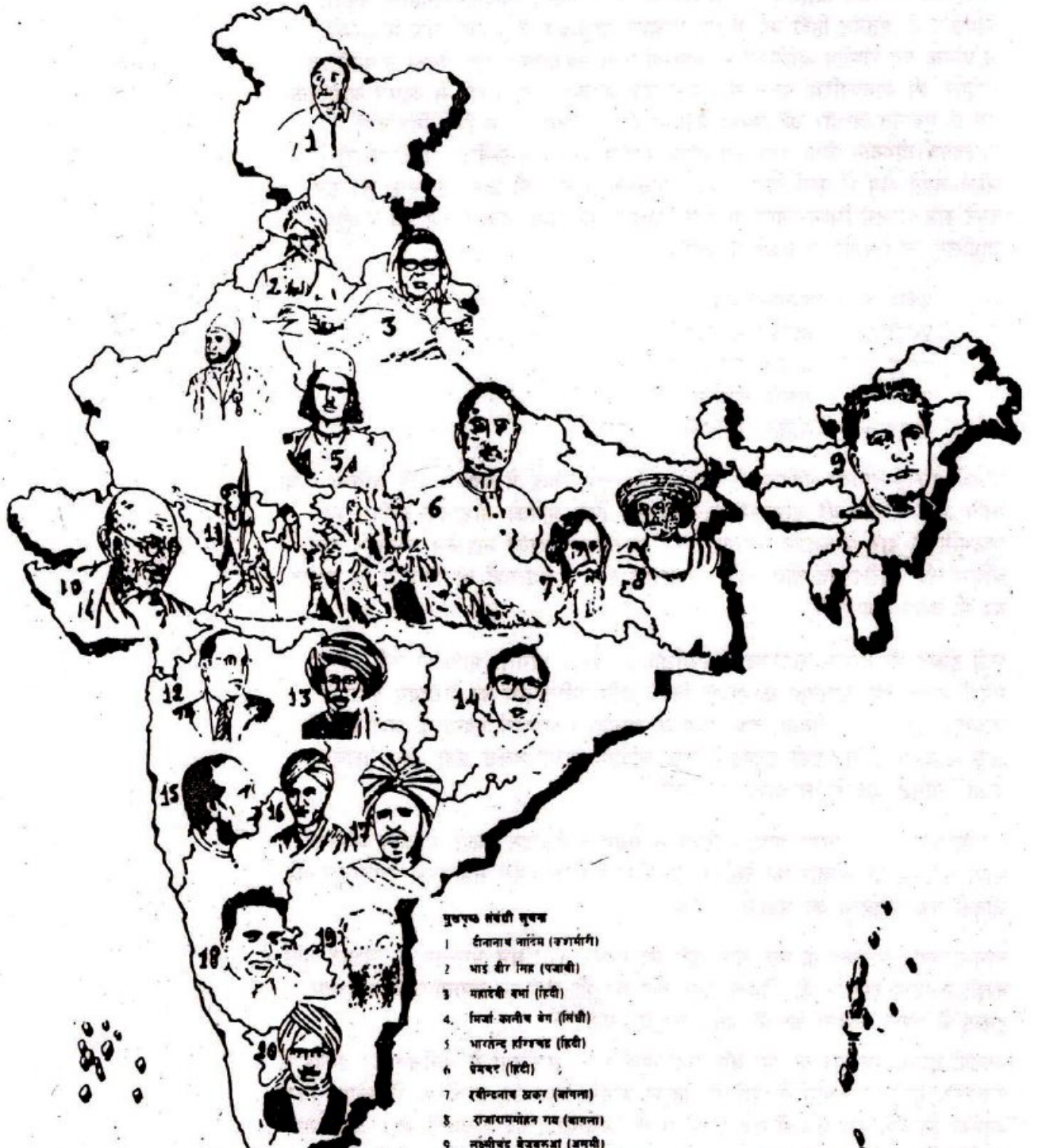

मुखपृष्ठ संबंधी सूचना

1. दीनानाथ नादिम (कश्मीरी)
2. भाई वीर सिंह (पंजाबी)
3. महादेवी वर्मा (हिंदी)
4. मिर्जा कलीच बेग (सिंधी)
5. भारतेन्दु हरिश्चंद्र (हिंदी)
6. शेखर (हिंदी)
7. रवीन्द्रनाथ ठाकुर (बांग्ला)
8. राजाराममोहन राय (बांग्ला)
9. लक्ष्मीचंद्र बेजबरुआ (असमी)
10. गांधी जी (गुजराती)
11. पटना में बिहार विधान सभा के सामने स्थित देवी प्रसाद राय चौधरी द्वारा निर्मित सात शहीद छात्रों की मूर्तियां जो, 1942 के आंदोलन में अंग्रेजों की गोली के शिकार हुए।
12. बाबा साहब डा. भीमराव अम्बेडकर (महाराष्ट्र)
13. ज्योतिबा फुले (महाराष्ट्र)
14. डा. गोपीनाथ मोहंती (ओड़िया)
15. केलप्पन (मलयाली)
16. डा के शिवराम कारन्त (कन्नड़)
17. आडकरी वीरेशलिंगम (तेलुगु)
18. कुमारन आशान (मलयालम)
19. पेरियार ई.वी. रामास्वामी (तमिल)
20. सुब्रह्मण्यम भारती (तमिल)

इकाई 5 बांगला साहित्य-I

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य
5.1 प्रस्तावना
5.2 बांगला भाषा : उद्भव और आधुनिक युग
  5.2.1 प्राचीन और मध्ययुगीन बांगला : भाषा और लिपि
  5.2.2 आधुनिक बांगला
5.3 बांगला साहित्य : आधुनिक युग
  5.3.1 सत्रहवीं और अट्ठारहवीं सदी की प्रवृत्तियाँ
  5.3.2 बांगला नाटक : नवजागरण
  5.3.3 पाक्-मधुसूदन पूर्व कवि एवं गद्यकार
5.4 माइकेल मधुसूदन दत्त और नवजागरण
5.5 बंकिमचन्द्र : राष्ट्रीय चेतना
  5.5.1 बंकिमचन्द्र के उपन्यास : राष्ट्रीयता
  5.5.2 बंकिमचन्द्र समसामयिक लेखक
  5.5.3 बंकिम : निबंधकार, संपादक और समाजसुधारक
5.6 ईश्वरचन्द्र विद्यासागर : नवजागरण
  5.6.1 साहित्यकार और वैयाकरण विद्यासागर
  5.6.2 समाज सुधार : विद्यासागर
5.7 गिरीशचन्द्र घोष और द्विजेन्द्रलाल राय: नवजागरण
5.8 सारांश
5.9 उपयोगी पुस्तकें
5.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

5.0 उद्देश्य

इस इकाई का उद्देश्य है भारतीय नवजागरण की पृष्ठभूमि में आधुनिक बांगला भाषा और साहित्य के प्रारंभिक युग में राष्ट्रीय चेतना की जो प्रवृत्तियां सामने उभर कर आयी थीं – जिसका प्रभाव समग्र भारतीय जन-जीवन पर पड़ा या उन तथ्यों से आपका परिचय कराना। इस इकाई में हम आपको बांगला साहित्य में समाजसुधार और राष्ट्रप्रेम की भावनाओं के प्रतिपालन के विषय में बताएंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- आधुनिक बांगला भाषा और साहित्य के निर्माण पूर्व के बारे में परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- माइकेल मधुसूदन दत्त, राजा राम मोहन राय और नवजागरण आंदोलन की शुरुआत के विषय में जान सकेंगे।
- सामाजिक नवचेतना में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की महत्वपूर्ण भूमिका के बारे में बता सकेंगे।
- राष्ट्रीय चेतना के उद्भव में बंकिम चन्द्र चटर्जी के उपन्यासों की भूमिका को समझा सकेंगे।

- बंगाल के नाट्य-आन्दोलन के इतिहास की पृष्ठभूमि में गिरीशचन्द्र घोष और द्विजेन्द्रलाल राय के योगदान का विश्लेषण कर सकेंगे।
- अंग्रेजी शासन और शोषण के विरुद्ध उन्नीसवीं सदी के बांगला-भाषी बुद्धिजीवियों ने समाज और धर्माचार में जो परिवर्तन लाया उनका विवरण दे सकेंगे, तथा
- द्विजेन्द्रनाथ टैगोर, केशवचन्द्र सेन और बाल समाज आन्दोलन के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

ऐच्छिक पाठ्यक्रम-05 आधुनिक भारतीय साहित्य : राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण के खंड-02 की यह पांचवीं इकाई है जिसमें आप उन्नीसवीं सदी में बांगला साहित्य के इतिहास में जो नवीनचेतना आयी थी। जिसका प्रभाव जाति के सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक जीवन में पड़ा थी – उसके बारे में अध्ययन करेंगे।

बांगला साहित्य के मध्ययुग में ही वैष्णव और शाक्त सम्प्रदाय की रचनाओं के प्रभाव से सामान्य जन प्रभावित हुए थे। जाति-प्रथा और भेदभाव को मिटा देने वाले चैतन्यदेव और उनके धार्मिक आन्दोलन का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा था। सत्रहवीं सदी के कवि काशीराम दास (महाभारत के रचयिता) भवानन्द (हरिवंश के लेखक) मनसा-मंगल-ख्यात केतकादास रूपराम चक्रवर्ती (धर्म-मंगल के कवि) कालिकामंगल और राममंगल के रचयिता कृष्णरामदास आदि हिन्दू कवि जहाँ एक और धर्म और पुराण तथा लोक में प्रचलित गाथाओं पर सुपाठ्य कविताओं की रचना कर रहे थे उसी समय आरकान राजसभा में राज्याश्रित कवि दौलत काजी आलाओल आदि लोककथाओं के विषय में काव्य-रचना कर रहे थे।

अट्ठारहवीं सदी के प्रमुख कवि थे घनाराम रामेश्वर और भारतचन्द्र रायगुणाकर। भारतचन्द्र की रचनाएं – विशेषकर अन्नदामंगल विद्यासुन्दर और मानसिंह – उनके महान कवि-प्रतिभा के सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हैं। इनके अलावा कविरंजन रामप्रसाद सेन के काव्य (विद्यासुन्दर कालीकीर्तन कृष्णकीर्तन) पर भारतचन्द्र का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। इस सदी में ही यात्रा पांचाली आदि तथा आगम कविताएं (सत्य-पीट या काली या सूर्य देव की प्रार्थना) बहुत जनप्रिय हो गयी थी। तब तक वैष्णव कविता की धारा सूख सी गयी थी लेकिन फिर भी राधा-कृष्ण की प्रेम कथा कीर्तनों के माध्यम से कहीं जाती रही। इसी शताब्दी में इधर निधु बाबू ने टप्पा की शुरुआत की तो उधर श्रीधर कथक जैसे सशक्त कवि पुराण के प्रसंग को आधार बनाकर गीतों की रचना की और बहुत सारे कवि वाले मिल कर आखड़ाई का प्रदर्शन भी करने लगे जहां आशु कवियों की लड़ाई होने लगी। दाशरथि राय राम बसु लालचन्द्र नन्दलाल आदि प्रमुख कवियालों को छोड़कर मधुखान का ढप (अभिनेय कीर्तन) भी इन गीतों को काफी जनप्रिय बना दिया था। कुछ पोर्तुगीज मिशनरी पादरियों ने इसी शताब्दी में सर्वप्रथम बांगला गद्य-ग्रंथों की भी रचना की तथा शब्द-कोश का भी निर्माण किया। पर इस शतक में साहित्य के माध्यम से न कोई नवचेतना की जागृति हुई न ही राष्ट्रीय भावना का उदय हुआ। अट्ठारहवीं शताब्दी में साहित्य या तो धर्म से जुड़ कर रह गया था या उपभोग का साधन बन कर रह गया। हालांकि रोमन लिपि में बांगला में लिखित पादरियों की धार्मिक पुस्तकें छपीं, उन्नीसवीं सदी में मुद्रण की सुविधा की वजह से साहित्य-आन्दोलन में जिस गतिशीलता को हम देख पाते हैं वह इस सदी में नहीं आयी थी। लेकिन सन् 1778 में बांगला व्याकरण-रचना की शुरुआत (नाथानियल ब्रासी हैलहेड द्वारा) के अलावा सन् 1784 में एशियाटिक सोसाइटी की वीलियम जोन्स द्वारा स्थापना के बाद यूरोप के विद्वानों का ध्यान भारतीय भाषा तथा साहित्य के प्रति बहुत बढ़ गया और अंततः 1800 में श्रीरामपुर में बाप्टिस्ट मिशन प्रेस की स्थापना की गयी। यही वह समय है जब पहले श्रीरामपुर प्रेस तथा बाद में फोर्ट वीलियम कॉलेज के अंग्रेज विद्वानों ने बंगाल की भाषा और उसके साहित्य पर अपना प्रभाव विस्तार करना शुरू किया। जो नवजागृति का आभास हमें बाद में जाकर मिलता है वह इसी पश्चिमी प्रभाव का परिणाम भी था प्रतिक्रिया भी।

5.2 बांगला भाषा : उद्‌भव और आधुनिक युग

अन्य नव्य भारतीय भाषाओं की तरह बांगला भाषा और साहित्य का काल-विभाजन एक ही साथ किया जाता है। विद्वानों ने बांगला भाषा और साहित्य का ऐतिहासिक विभाजन इस प्रकार किया है:

1) प्राचीन काल (950 ई० से 1350 ई० तक)
2) मध्य काल (1350 ई० से 1799 ई० तक)
3) आधुनिक काल (1800 ई० के बाद से)

कुछ विद्वान पहले गद्य-ग्रंथ (कृपाट शास्त्रेर अर्थभेद) तथा कुछ विद्वान पहले गद्य के रोमन लिपि में प्रकाशन-काल से ही अर्थात् 1743 ई० के बाद से ही आधुनिक युग का आरंभ हुआ ऐसा मानते हैं। कुछ अन्य लोग बंगाल में अंग्रेजी शासन की स्थापना काल (अर्थात 1765 ई० से आधुनिक काल का समय निर्देश करते हैं। कईयों के लिए हैलहेड द्वारा 1778 ई० में रचित पहला व्याकरण की तारीख का महत्व सर्वाधिक है। पर इस बात को सभी मानते हैं कि 1800 ई० में फोर्ट वीलियम कॉलेज और श्रीरामपुर मिशन प्रेस की स्थापना के बाद बांगला की साहित्यिक गतिविधियों में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया।

5.2.1 प्राचीन और मध्ययुगीन बांगला : भाषा और लिपि

ऐसा माना जाता है कि बांगला का उद्‌भव 950 ई० के बाद हुआ था। यद्यपि 250 ई.पू. में स्थापित सम्राट अशोक के एक शिलालेख से ही पता चलता है कि पूर्व देश में नव्य भारतीय उपभाषा की एक पृथक शैली का प्रचलन था। यह तो है ही कि प्राकृत और अपभ्रंशजन-भाषाओं या बोलियों के रूप में प्रचलित थीं जब ये अवहट्‌ठ के स्तर पर आयीं तब तक ये व्यापक रूप से साहित्यिक अभिव्यक्तियों का प्रकाश माध्यम बन चुकी थी। इसी परिवर्तन के बाद पूर्वांचलीय भाषा धीरे-धीरे कई उपभाषाओं में बंटने लगी। आगे चल कर ये उपभाषाएं स्व-निर्भर और स्वतंत्र भाषाएं बन गयीं। इनमें से साहित्य की भाषा के रूप में बांगला, असमी, ओड़िया और मैथिली को ख्याति मिली।

950 ई० के बाद लिखित अमरकोश की टीका, जिसका नाम था "टीका सर्वस्व"। उसमें करीब चार सौ बांगला शब्द पाये गये थे। इसी दौरान रचित चर्याश्चार्यविनिश्चय की पांडुलिपि में प्राचीन बांगला भाषा का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण मिलता है। पर इन गीतों में अवहट्‌ठ तथा बंगाल के विभिन्न प्रांतों की बोलियों का प्रभाव पाया जाता है। अन्य नव्य भारतीय आर्य-भाषाओं की तरह बांगला लिपि का भी उद्‌भव सम्राट अशोक के शिलालेखों से ही हुई थी। लेकिन पूर्ण-विकसित बांगला वर्णमाला का रूप बारहवीं सदी में ही देखने को मिलता है। इस पूर्वी ब्राहनी लिपि का उद्‌भव प्राचीन मौर्य युग की ब्राहनी लिपि के उत्तरी रूप से ही हुआ था। बारहवीं सदी में लक्ष्मणसेन के जमाने के अनुदान-पत्र तथा पांडुलिपियों में बांगला लिपि का प्रयोग देखने को मिलता है। अर्थात बांगला भाषा और साहित्य के मध्ययुग में आकर ही बांगला लिपि पूर्णरूप से विकसित हुई।

अगले पांच सौ वर्ष तक बांगला लिपि की दो शैलियां प्रचलित रहीं –साधारण और अलंकृत। पेशेवर लिपिकों द्वारा यह अलंकृत शैली परिमार्जित और संस्कृत होती रहीं। चंडीदास की अमर रचना श्रीकृष्णकीर्तन भी इसी शैली में लिखी गई। साधारण शैली में लिखित पांडुलिपि सत्रहवीं सदी के बाद ही पायी गई।

बांगला भाषा और साहित्य के आरंभिक युग से ही संस्कृत से शब्द ग्रहण करने की परंपरा तो थी ही, अरबी और फारसी से भी प्राचीन साहित्यिक बांगला समृद्ध हुई। तब से लेकर अंग्रेजों द्वारा बंगाल प्रांत का शासन-भार सम्भालने तक (अर्थात् 1965 ई० तक) फारसी ही अंतर-राज्यीय संपर्क से लेकर वाणिज्य विधि और शासन की भाषा बनी रही। सोलहवीं

सदी के बाद कई यूरोपीय भाषाओं से आगत शब्द बांगला में ऐसे घुल-मिल गये कि वे मानो मूल शब्दों की तरह ही व्यवहार में आते रहे।

अन्यान्य नव्य भारतीय आर्य-भाषाओं की तरह बांगला साहित्य का ही बोलबाला रहा है। इन काव्यकृतियों में भी दो रूप पाये जाते हैं, जो मुक्तक और आख्यान के नाम से जाने जाते हैं। मुक्तक एक लोक-प्रचलित छंद था। आख्यानों में मध्ययुग में मंगलकाव्य की धारा सबसे महत्वपूर्ण रही। मध्य-युग में रचित अधिकांश आख्यान-मूलक काव्यों में धार्मिक प्रसंग की ही अधिकता पायी गई। रोमांचक तथा ऐतिहासिक काव्यों की रचना आधुनिक युग में आकर ही हुई।

बोध प्रश्न

1) उचित शब्द रखकर वाक्य पूर्ति कीजिए।

   क) बांगला महाभारत के रचियता ..... थे।
   ख) भवानंद ने ..... की रचना की।
   ग) कृष्णरामदास ने तथा ..... की रचना की।
   घ) दौलत काजी ने ..... की रचना की।

2) क) अट्ठारहवीं सदी का बांगला साहित्य किस प्रकार का था?

   .....
   .....

   ख) उन्नीसवीं सदी में साहित्य आंदोलन को किस वैज्ञानिक आविष्कार ने गति प्रदान की?

   .....
   .....

   ग) अठारहवीं सदी में किस सोसाइटी की स्थापना से भारतीय भाषाओं के प्रति लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ?

   .....
   .....

   घ) ईसाई धर्म प्रचारकों ने किस प्रकार साहित्य के विकास में सहायता पहुंचाई?

   .....
   .....

3) क) बांगला लिपि के उद्भव की प्रेरणा कहां से मिली?

   .....
   .....

   ख) प्रारंभिक बांगला की कौन-सी लिपियां थीं?

   .....
   .....

   ग) बांगला साहित्य का प्रारंभिक दौर किस विधा का था?

   .....
   .....

   घ) प्रारंभिक बांगला साहित्य की विषयवस्तु क्या थी?

   .....
   .....

5.2.2 आधुनक बागला

राजाओं की प्रशस्ति-गीत तथा कीर्ति गाथा बांगला में बहुत कम ही पायी गई। इसलिए सत्रहवीं शताब्दी से पूर्व बांगला में मुख्यतः धार्मिक काव्य और समाख्यान ही पाये गए। इन भक्ति-काव्यों को पंचालिका तथा मंगल-काव्य कहा जाता है जिनमें प्राचीन बांगला की चर्यागीती की तरह रहस्यवाद नहीं पाया जाता है पर गुरु तथा देव-देवियों के प्रति भक्ति-पूर्ण गायन इन दोनों युगों की कविताओं में पाये जाते हैं। इन दो काव्य-धाराओं के बीच का समय अंधेरी सदियों के नाम से जाना जाता है। इसी बीच तुर्की आक्रामकों के डर से गुणीजन विद्वान तथा उनके संरक्षक संत्रस्त होकर बंगाल के सरहदी इलाकों में चले गए। बहुत सारे विद्वान नेपाल भी पहुंच गए। दो सदियों के लिए साहित्यिक और सांस्कृतिक गतिविधियां बिल्कुल बंद हो गई थीं, जिनका पुनरुज्जीवन तब हुआ जब बंगाल पुनः एक स्वतंत्र राज्य हो गया। गौड़ के मुस्लिम शासकों ने पाल तथा सेन दरबारों की पुरानी परंपरा को फिर से प्रोत्साहित किया। इसी समय नाथ संप्रदाय के आख्यान-काव्य, मनसा तथा चंडी देवियों के आख्यान तथा अन्यान्य मंगल-काव्यों की रचना की गई। इसके अलावा महाभारत की कथाओं को लेकर अनुवाद तथा अनुकथन भी पाये गए। सोलहवीं सदी के अंत होने से पहले ही बांगला साहित्य में भक्ति-काव्यों की ज्वार आई, जिनकी मूल प्रेरणा के रूप में थे चैतन्य महाप्रभु (1486 ई. से 1533 ई.) और उनके अनुयायी। भक्ति-काव्यों की यह परंपरा आधुनिक काल के प्रथम पर्व तक चलती रही।

यह वही समय था जब आधुनिक बांगला लिपि का भी जन्म हुआ। 1778 ई. में विल्किन्स ने बांगला की साधारण तथा अलंकृत शैली की लिपियों में प्रयोजनीय परिवर्तन लाकर छपाई की टाईप का निर्माण कर श्रीरामपुर मिशन प्रेस का काम और भी आसान बना दिया। मुद्रण की लिपि में संशोधन का काम उन्नीसवीं सदी के मध्य-भाग तक चलता रहा और बंकिमचंद्र चटर्जी के उपन्यासों के प्रकाशन से उस समय बांगला गद्य-रचना और बड़े पैमाने पर बांगला मुद्रण और प्रकाशन का दौर शुरू हुआ। उसी के फलस्वरूप आधुनिक बांगला वर्णमाला के नवीन रूप का जन्म हुआ। इस दृष्टि से देखा जाय तो कहना पड़ेगा कि आधुनिक बांगला भाषा के निर्माण के इतिहास में सबसे महत्वपूर्ण जो तीन तत्व रहे वह थे –मध्य-युग में भक्ति साहित्य की प्रमुखता, आदि युग में धर्म प्रचार की धारा एवं प्रकाशन और मुद्रण की सुविधा से बांगला लिपि और वर्णमाला में लाये गए परिवर्तन। ऐसा लगता है कि बांगला लिपि का इतिहास भी आधुनिक बांगला भाषा और साहित्य के इतिहास से जुड़ा हुआ है।

5.3 बांगला साहित्य : आधुनिक युग

बंगाल के सांस्कृतिक इतिहास में वीलियम केरी वीलियम वार्ड तथा जोशुआ मार्शमैन की सहायता से जो बाप्टिस्ट मिशन प्रेस की स्थापना 10 जनवरी 1800 को हुई जिसके चार महीने के अंदर ही लॉर्ड वेलेसली ने फोर्ट वीलियम कॉलेज की स्थापना की इनका महत्व बहुत अधिक था। बंगाल के सामान्य जन में वैष्णव भक्ति कविता के प्रभाव को देखते हुए इन लोगों ने केरी के निर्देश में धर्म-प्रचार का रास्ता अपनाया। बाईबल का अनुवाद (धर्म-पुस्तक) पूरा होते-होते 1908 हो गया। इसका एक छोटा अंश में ही जशोर के राजा प्रतापादित्य की जीवन-गाथा को लेकर केरी साहब के मुन्शी राम राम बसु ने जिस गद्य-शैली की रचना तथा प्रकाशन किया। उससे बांगला साहित्य की धारा कहीं बदल गई। मिशन प्रेस ने 1802-3 ई० में कृतिवास के रामायण तथा 1802-4 ई० में काशीराम दास के महाभारत के प्रकाशन से सामान्य जनों में अपना एक अनोखा स्थान बना लिया था। मुन्शी राम-राम बसु की मुन्शी शैली के गद्य के विपरीत ढंग में हमें कॉलेज के ही अन्य मूर्धन्य लेखक तथा केरी के सहायक – उपदेष्टा पंडित मृत्युंजय विद्यालंकार के ग्रथ मिलते हैं, जिनमें बतिश सिंहासन (1802 ई०) हितोपदेश (1908) राजावली (1908 ई०) अत्यंत उल्लेखनीय हैं। पर उनके गद्य-शैली का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण हमें प्रबोध चंद्रिका में मिलता है जिसका प्रकाशन उनके

मरणोपरांत 1833 ई० में हुआ। इन सभी ग्रंथों का तथा रामराम बसु की पुस्तक लिपिमाला का भी एक उद्देश्य रहा अंग्रेज अफसरों को बांगला की शिक्षा देना। केरी ने शुरू में ही तय कर लिया था कि भाषा-शिक्षण के लिए काव्य-ग्रंथों से गद्य-ग्रंथों की उपयोगिता अधिक होगी। इसलिए उन्होंने कॉलेज के बांगला के शिक्षकों को गद्य-रचना के लिए प्रोत्साहित किया और स्वयं भी शब्दकोश आदि का निर्माण किया। केरी की जीवन काल में ही राजा राधाकांत देव और उन्हीं के उद्यम से कलकत्ता स्कूल बुक सोसाइटी की स्थापना भी हुई (1817 ई. में) जिसके लेखकों में उनके कई साथी –जैसे पीयर्स लॉसन पीयर्सन तथा येट्स के अलावा उनका पुत्र फेलिक्स केरी भी शामिल थे। पाठ्य-पुस्तक के लेखकों के अतिरिक्त इस समय राजा राममोहन राय जैसे विद्वान गुणी तथा सशक्त लेखक भी थे जिनके सम्मिलित प्रयास से आधुनिक बांगला साहित्य का प्रारंभिक युग अत्यंत गौरवमय रहा।

5.3.1 सत्रहवीं और अट्ठारहवीं सदी की प्रवृत्तियाँ

सत्रहवीं सदी की शुरुआत हुई वैष्णव गीति-काव्य की रीति में से। पर दक्षिण और दक्षिण पूर्व बंगाल के मुसलमान कवियों ने इसी युग में हिन्दी तथा फारसी काव्य-कथाओं में धर्मांतर तथा नई किस्म की गेय कविता लिखना शुरू किया। कुछ वैष्णव दर्शन शास्त्रियों ने नव-दीखितों के लिए उपदेशावली गद्य में लिखा था। हालांकि इन गद्य-लेखकों की रचनाओं का साहित्यिक मूल्य बहुत कम था। इसी शतक में पादरियों ने भी धर्म-प्रचारार्थ बांगला में रचना की पर उसका प्रभाव भी साहित्य के ऊपर नहीं पड़ा। इस अवधि का सबसे लोकप्रिय ग्रंथ था काशीराम दास का महाभारत जिसकी रचना उनके अलावा उनके लड़के नंदराम और अनुयायी लेखक नित्यानंद घोष ने मिलकर की थी। इस ग्रंथ की लोकप्रियता के साथ केवल कृत्तिवासी रामायण की ही तुलना की जा सकती है। संस्कृत में रचित पुराणों का बंगानुवाद तथा वृन्दावन के वैष्णव आचार्यों की संस्कृत रचनाओं का बांगला में पुनर्लेखन की एक परंपरा भी थी, जिसके लिए श्रीनिवास आचार्य की कन्या हेमलता और उनके शिष्य यदुनंदन दास दायी थे। पर कृष्ण-कथाओं को लेकर जो कविताएं उस जमाने में लिखी गईं थी उनमें भवानंद का हितहरिवंश उल्लेखयोग्य है। कई वैष्णव-कविताओं के संकलन भी किए गए। पर केतकादास, क्षेमानंद तथा विष्णुपाल आदि द्वारा रचित देवी मनसा की प्रशस्ति-गीति– जिसे इन्होंने मनसा-मंगल नाम दिया था – सर्वाधिक लोकप्रिय रही। रूपराम चक्रवर्ती का धर्ममंगल भी इसी परंपरा की उपज है। भारत चंद्र कथित विद्या और सुन्दर की कथा पर आधारित कृष्णराम दास की रचना कालिका-मंगल भी इसी समय लिखी गयी थी। उन्होंने बाद में षष्ठी-मंगल तथा राय-मंगल काव्यों की भी रचना की। इन सभी काव्यों में स्थानीय देवदेवी तथा लोककथाओं को ही प्रधानता मिली थी। इसी आदर्श को सामने रखकर कृष्णराम ने शीतला मंगल तथा लक्ष्मी मंगल की रचना की।

बंगाल और वर्मा के दक्षिण प्रांत में स्थित आराकान का संबंध इसी समय बना था। यहां के विभाषी राजा वर्मा राज की ताड़ना से परेशान होकर बंगाल चले आये थे और बाद में बंगाल के सुल्तान की सहायता से पुनः अपने सिंहासन पर उन्होंने अपना अधिकार जमा लिया था। बाद में हुसैन शाह के जमाने में चट्टग्राम पर अधिकार को लेकर उनके साथ आराकान राज का विरोध हुआ। लेकिन बांगला भाषा को तब तक आराकान के राजाओं ने राजसभा की भाषा के रूप में अपना लिया था। इसके फलस्वरूप उन्होंने दौलत काजी तथा आलाओल जैसे सशक्त कवियों का संरक्षण दिया और बांगला भाषा की प्रगति के पथ से धर्म-भेद की भावना को हटा दिया। दौलत काजी का संस्कृत-ज्ञान का परिचय इस बात से चलता है कि उन्होंने जयदेव और कालिदास की कविताओं के छन्द तथा उपमा का प्रयोग अपनी रचना में किया है। मैथिली की लोरिक-कथा तथा राजस्थानी की चन्दायन पर निर्भर काजी का काव्य जो सती मैना तथा लोट चन्द्राणी के नाम से जाना जाता है तथा उनके द्वारा लिखित बारहमास्या आज भी जनप्रिय है। सूफी कवि आलाओल का संस्कृत साहित्य का ज्ञान भी प्रशंसनीय था। इसके अलावा उनको हिंदी भी अच्छी तरह आती थी। उनके अनिष्ठ

मित्र और राजकुमार मागन ठाकुर के अनुरोध से उन्होंने जायसी के पद्मावत का अनुसरण कर पद्मावती की रचना की जो पांचाली की शैली में लिखी गई थी। बाद में उन्होंने फारसी काव्य सैफल-मुल्क भोइयुप-जमाल की कथावस्तु को लेकर भी बांगला में लिखा। फारसी से इस्कन्दर-नामाह की अनुकृति भी उन्होंने सार्थक रूप से की, जिसका नाम रखा दारा-सिकन्दरनामाह। इन दोनों के अतिरिक्त और भी बहुत मुसलमान कवि आराकान-राज के संरक्षण में थे जिन्होंने हरिवंश के ढ़ांचे में नवीवश तथा काशीराम दास के पांडवविजय की तरह रसलविजय आदि की रचना कर बांगला साहित्य का समृद्धतर बनाया। महाभारत के समान्तराल रूप से इन कवियों द्वारा लिखित जंगनामा भी काफी लोकप्रिय रही। इनमें सैयद सुल्तान मुहम्मद खां, नसरुल्लाह खां, हायात महमूद तथा गरीबुल्लाह आदि प्रख्यात थे। भारतचन्द्र रायगुणाकर जो इस समय के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं बांगला भाषा और साहित्य रचना के इस संधिक्षण में उसी स्थान में आविर्भत हुए जो बांगला साहित्य चर्चा का एक अच्छा केन्द्रस्थल बन चुका था। दक्षिण गढ़ के इस अंचल को केन्द्र बना बहुत सारे हिन्दू और मुसलमान कवि/लेखक लिख रहे थे।

भारतचन्द्र का पहला प्रयास था उनका सत्य नारायण प्रसंग (1737 ई.)। उनकी अपनी जीवन-कथा भी कम रोमांचक नहीं थी, जिसके कारण उन्हें बंगाल और उड़ीसा के कई स्थानों में अलग-अलग हालात में रहना पड़ा। अंततः चंदन नगर के फ्रांसिसी वणिकों के अधीन काम करते-करते वे कृष्ण-नगर के राजा कृष्णचन्द्र राय की नजर में आये। उसके बाद उन्हीं के संरक्षण में उन्होंने 1750 ई० के आसपास रसमंजरी की रचना की, जिसके तीन वर्ष के पश्चात् अपनी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक अन्नदा-मंगल की भी रचना की। यह वस्तुतः तीन कथाओं का एक धारावाहिक था, जिनमें सर्वाधिक लोकप्रिय थी विद्या-सुन्दर कथा। इस कथा का बांगला यात्रा तथा नाट्यसाहित्य पर बहुत गहरा प्रभाव रहा।

5.3.2 बांगला नाटक : नवजागरण

कहा जाता है कि मध्य युग के मुसलमान शासकों के समय संस्कृत नाटक की परंपरा बंद सी हो गई और नाट्याभिनय की प्रथा उन सब प्रांतों में जा छुपी जहां मुसलमान शासकों का प्रभाव कम था या बिल्कुल नहीं था। पर इस बीच में नई नाट्य-परंपराएं भी उभर कर आ रही थीं, जिनमें मिथिला का कीर्तनिझा नाटक और असम का अंकिया नाटक प्रसिद्ध था। कीर्तनिझां नाटक की परंपरा में बांगला तथा नेवारी में भी कुछ रचनाएं की गईं। नेपाल के राजदरबार द्वारा इन्हें प्रोत्साहन मिला। पर बांगला में रचित भक्ति-काव्य तो जनसमक्ष में गीत होते ही थे अब इन भक्ति-काव्यों के साथ-साथ इनके गायन तथा मंचन में भी वृद्धि हुई। इन काव्यों को पांचाली और पंचालिका इसलिए भी कहा गया कि इनके गायन के साथ ही साथ कठपुतलियों का नाच भी होता था। कठपुतलियों के ऐसे नृत्य के चित्रांकित पट बाद में पाये गए जिनमें इन भक्ति-काव्यों की कहानियां अंकित होती थीं। अट्ठारहवीं सदी में आते-आते जो कविगान की प्रथा चल पड़ी, उनमें भी वैष्णव गीति-कविता के मंचन का उदाहरण पाया जाता है। इन्हीं कवियालों की आखड़ाई से ही यात्रा जैसी सशक्त नाट्य-परंपरा का जन्म हुआ था। इसलिए आधुनिक युग के प्रारंभिक पर्व में ही जब 1795 ई. में रूस के मेधावी नाट्यकार-अभिनेता जेराशिम लेबेडफ ने कलकत्ता में बंगाली थियेटर की स्थापना की और अंग्रेजी से अनुदित तथा परिमार्जित एक नाटक का संगीत-सहित भारतीय नारी-पुरुषों द्वारा मंचन करवाया तो उनके इस प्रयास को कलकत्ते के अधिवासियों ने दिल खोल कर स्वागत किया। बांगला नाट्य-साहित्य, प्रगति का यह पहला कदम पश्चिमी और पूर्वी सभ्यता के संयोग से ही लिया गया था। भारतचंद रायगुणाकर की विद्या-सुंदर-कथा जो आम जनता में बहुत जनप्रिय हुई थी, उसके गीतों का प्रयोग कर लेबेंडफ ने अपने मंचन को और भी जनप्रिय बनाया।

यह वही समय था जब आधुनिक बंगला लिपि का भी जन्म हुआ। 1778 ई० में विल्किंस नें बांगला की साधारण तथा अलंकृत शैली की लिपियों में प्रयोजनीय परिवर्तन लाकर छपाई की टाइप का निर्माण कर श्रीरामपुर मिशन प्रेस का काम और भी आसान कर दिया यद्यपि

लेबेडफ कलकत्ता में लंबी अवधि तक रुक नहीं सके – इतनी भी नहीं कि वह हास्यनाटक के बांगला नाट्य-रूप का भी मंचन कर सके। उनके प्रयास का प्रभाव देशीय नाट्य माध्यम के रूप में जीवित है। इसके बाद बांगला में विद्यासुन्दर का ही मंचन हुआ। नवीन चन्द्र बसु के श्याम बाजार थियेटर में (1835 ई. में) इस बीच नाटक विशेषतया अंग्रेजी नाटक की जनप्रियता कलकत्ता में चौरंगी थियेटर (1813-1839 ई.) की स्थापना से काफी बढ़ गई थी, हालांकि कलकत्ता में 1753 ई. से लेकर 1775 ई. तक पहले भी अंग्रेजी नाट्य-मंच की स्थापना के प्रयास हुए। पर बांगला में लिखित प्रथम नाटकों का अभिनय 1852 ई. में ही हो सका। इनमें से कीर्तिविलास के रचयिता गोविन्द चन्द्र गुप्त ने गद्य और पद्य का सम्मिलित प्रयोग किया – हालांकि इनके नाट्क पर पश्चिमी नाट्य परंपरा, खास कर शेक्सपीयर के हेमलेट का काफी प्रभाव रहा। दूसरी तरफ ताराचरण शिकदार के भर्दाजुन का कथानक महाभारत निर्भर रहा, लेकिन उन्होंने नान्दी और विदूषक का वर्णन कर एवं नाटक को पश्चिमी शैली में अंकों और दृश्यों में विभाजित कर संस्कृत और अंग्रेजी परंपरा के मध्य एक समन्वय लाने में अपनी सक्षमता का ही प्रमाण दिया। 1853 ई. के बाद से बांगला में अनुवाद नाटक तथा मौलिक लेखन-मंचन दोनों परंपराएं चल पड़ीं। अनुवाद तथा अनुसर्जन दोनों देखने को मिले और संस्कृत तथा अंग्रेजी से समान रूप से बांगला नाट्य-प्रस्तुतियां की जाती रहीं। आगे चलकर नवजागरण के होते नाट्यकार इस माध्यम का कुशल उपयोग करते दिखाई देते हैं। उन्नीसवीं सदी के मध्य भाग तक बांगला नाटक की प्रगति परमुखापेक्षी रहने के कारण अधिक नहीं हुई। हेमलेट के अनुसरण में हरलाल राय का रूद्रपाल ओथेलो का भावानुवाद भमसिं (तारिणी चरण पाल द्वारा) तथा चन्द्रकाली घोष की कृति कुसुमकुमारी (सम्बेलिन पर आधारित) जिनकी रचना तथा मंचन 1868 ई. से लेकर 1875 ई. के मध्य हुए काफी जनप्रिय रहे। लेकिन इनके द्वारा लोगों के मन में कोई नयी जागृति नहीं आयी। पर तब तक संस्कृत कॉलेज गोष्ठी के संस्कृतज्ञ पंडित – जिन्हें पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति का भी अच्छा ज्ञान था – विद्यासागर के नेतृत्व में नवचिंतन तथा नवीन आचरण द्वारा समाज सुधार को बढ़ावा देने का ठान चुके थे। हिन्दू कॉलेज के बुद्धिजीवी वर्ग की तरह अब वह मात्र अंग्रेजी तथा संस्कृत नाटकों के भावानुवाद से संतुष्ट नहीं रह सकते थे। इसी समय सामाजिक समस्याओं को लेकर लिखा गया नाटक पंडित रामनारायण तर्करत्न का कुली कुलसर्वस्व (1854 ई.) का प्रकाशन हुआ जिसके प्रकाशन से एक तहलका-सा मच गया। हालांकि तर्करत्न ने संस्कृत नाटकों का अनुवाद भी किया था (उदाहरणस्वरूप, वेणी-संहार रत्नावली, अभिज्ञानशाकुन्तल तथा मालतीमाधव को ले सकते हैं) और पुराण-कथाओं पर आधारित नाटकों की भी रचना की (जिसमें से रुक्मिणी-हरण कंसवध तथा धर्मविजय उल्लेखनीय हैं (नवजागरण के इतिहास में उनके कुलीन कुलसर्वस्व ने एक अनोखा स्थान ग्रहण किया था। इसकी प्रतिक्रिया में बहुविवाह प्रथा तथा शिशु-विवाह की परंपरा को लेकर कई नाटकों की रचना की गई, जिनमें तारकचन्द्र चूड़ामणि का सपत्नी नाटक (1858 ई.) और किसी अज्ञात रचनाकार संबंध समाधि (1867 ई.) उल्लेखनीय हैं।

5.3.3 प्राक्-मधुसूदन पूर्व कवि एवं गद्यकार

आधुनिक बांगला साहित्य के इतिहास में– विशेषकर बांगला गद्य के निर्माण में –राजा राममोहन राय की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण रही। पाठ्य-पुस्तक के बाहर वह प्रथम गद्यलेखक थे। उन्होंने छन्द-रचना में भी दक्षता अर्जित की थी जिसका प्रमाण भगवद्गीता के पद्यानुवाद से मिलता है। पर उनके आरंभिक गद्यग्रंथ थे वेदान्त और उपनिषद के दो अनुवाद जिनका प्रकाशन 1815 ई. में हुआ। 1818 ई. से अगले पांच वर्ष तक उन्होंने सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक सुधार-संस्कार पर कई लेख लिखे। 1821 के बाद उन्होंने श्रीरामपुर मिशन के पादरियों द्वारा किये जा रहे हिन्दू धर्म पर आघात के विरोध में बांगला, अंग्रेजी और फारसी में पत्रिका का प्रकाशन भी किया। मिशनरियों की पत्रिका दिग्दर्शन (अप्रैल 1818 ई. में प्रकाशित) के उत्तर में राममोहन राय ने प्रकाशित किया समाचार दर्पण (मई. 1818 ई. में)। बाद में भी उन्होंने ब्राह्मण सेवधि तथा संवाद कौमदी का प्रकाशन किया।

बांगला तथा अंग्रेजी में केनोपनिषद् का अनुवाद किया और मूर्तिपूजा तथा सती-प्रथा के विरुद्ध अपने निबंध लिखे। पहले 1815 ई. में आत्मीय सभा और बाद में 1828 ई. में ब्राह्म समाज की स्थापना कर उन्होंने धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में नई जागरूकता लाई। अंग्रेजी भाषा का महत्व वह बखूबी से समझने और समझाने लगे। वह प्रथम द्विभाषी भारतीय लेखक थे जिनकी अंग्रेजी रचना के पाठक भारत के दूसरी जगहों के बुद्धिजीवी से लेकर अंग्रेजी भाषी विद्वान भी थे। फारसी, संस्कृत और अंग्रेजी के ज्ञान ने उनके द्वारा लिखित बांगला गद्य को अधिकतर शक्तिशाली बनाया था। अंग्रेजी भाषा और साहित्य के अध्ययन के प्रभाव से तथा पश्चिमी संस्कृति के साथ संपर्क स्थापन के फलस्वरूप बंगाल के बुद्धिजीवी वर्ग की चिंतन-प्रक्रिया में काफी परिवर्तन आ गया था। इसके पीछे हिन्दू कॉलेज के छात्र-अध्यापकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही। तरुण अध्यापक डिराजिओ की अंग्रेजी रचनाओं के प्रकाशन के बाद कई लोग अंग्रेजी में लिखने लगे जिनमें काशीप्रसाद घोष की पुस्तक (1930 ई. में प्रकाशित) उल्लेखयोग्य है। पर इस दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण थी—रेवरेण्ड के.एम. बनर्जी की नाटिका। (1832 ई.) इस नाटिका में लेखक ने अंग्रेजी शिक्षा में शिक्षित बंगाली नवयुवकों की समस्या को दर्शाया है। हिन्दू कॉलेज के ये तरुण बंगाली गोष्ठी जो डिरोजिओ से बेहद प्रभावित थे। 1830 ई. से अंग्रेजी में एक पत्रिका भी निकालने लगे जिसमें नारी-शिक्षा कुसंस्कार, गरीबों के लिए सुलभ न्याय आदि समस्या को लेकर लिखकर बुद्धिजीवी वर्ग में नयी जागृति लाने की कोशिश कर रहे थे। इस जागरण के प्रयासी के रूप में रेवरेण्ड बनर्जी ने बाद में फेलिक्स केरी की असमाप्त पुस्तक को समाप्त कर बंगाल को लेकर पहले विश्वकोष की रचना की, जिसका द्विभाषिक संस्करण विद्याकल्पद्रुम के नाम से तेरह खडों में 1846 ई. से 1851 ई. के भीतर प्रकाशित हुआ। परंतु बंगाल के नवजागरण के इतिहास की एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना भी इन्हीं दौरान रिचर्डसन द्वारा सम्पादित में छपी और वह भी अंग्रेजी में छपी।

1945 इस शीर्षक की रचना में लेखक कैलाश चन्द्र दत्त ने एक सशस्त्र विद्रोह का चित्रण किया जो अंग्रेजों के विरुद्ध जातीयता की भावना से उद्बुद्ध पहली महत्वपूर्ण रचना थी। प्राक् मधुसूदन पूर्व के कवियों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे कवि-संपादक आलोचक ईश्वर चंद्र गुप्त (1812 ई.-1859 ई.) तथा उनके अनुयायी कवि रंगलाल बनर्जी (1826 ई.-1886 ई.) ईश्वरचन्द्र गुप्त की अधिकांश रचनाएं पहले उनकी पत्रिका संवादप्रभाकर में प्रकाशित होती थी। गुप्तजी का भारतचंद्र तथा कवियालों की कृतियों से प्रेम था जिसका परिचय उनके गद्य-लेखन से मिलता है। पर वे समाज-सुधारक तथा अंग्रेजी शिक्षा के शिकार नवयुवक — इन दोनों वर्गों के प्रति तिर्यक मंतव्य से अपना मत जाहिर करने में पीछे नहीं होते थे। उन्होंने अपनी काव्यकृतियों में ऐसे बहुत शब्दों का प्रयोग किया जिन्हें उन्होंने ही पहली बार साहित्यिक भाषा में प्रवेश की अनुमति दी। संस्कृत नाटक प्रबोध चन्द्रोदय के काव्यानुवाद में उन्होंने अपनी कविताओं के द्वारा बहुत परिमार्जन संशोधन किया था। उनका हितोपदेश का गद्यानुवाद भी उल्लेखनीय है। उनकी सक्रिय उपदेश तथा अनुप्रेरणा के कारण बहुत सारे तरुण लेखक-कवि सामने उभर कर आये जिनमें सबसे महत्वपूर्ण थे रंगलाल बनर्जी, दीनबंधु मित्र तथा बंकिमचन्द्र चटर्जी। इनमें से रंगलाल बनर्जी अपने काव्य-गुरू ईश्वर चन्द्र गुप्त की ही तरह स्वयं-शिक्षित थे। उन्होंने पहले 1852 ई. में एक निबंध का प्रकाशन किया जिसमें उन्होंने बांगला साहित्य विषयक एक अपमानजनक लेख के प्रति अपना विरोध व्यक्त किया। उन पर टॉड की पुस्तक का गहरा प्रभाव पड़ा। जिसके फलस्वरूप उन्होंने 1858 ई. में रचित पद्मिनी उपाख्यान से लेकर अगली कई काव्य-पुस्तकों में (कर्मदेवी 1862 ई. शूट सुन्दरी 1868 ई. आदि) देशात्मबोध तथा साहसी राजपूत योद्धाओं की कथाओं का वर्णन किया। जातीयता की भावना तथा जागृति के इतिहास में जो अनमोल रत्न जैसे हैं।

बोध प्रश्न

4) क) पंचालिका तथा मंगल काव्य विषयवस्तु क्या है?

.....

ख) किस कारण से प्रारंभिक बांगला साहित्य में गतिरोध आया?

.....

.....

ग) बांगला भक्ति साहित्य के मूल प्रेरक कौन थे?

.....

.....

घ) किस साल तथा किस व्यक्ति ने बांगला के टाईप का निर्माण किया?

.....

.....

अभ्यास

1) विलियम केरी द्वारा बांगला साहित्य के उत्थान क्या सहायता मिली?

.....

.....

.....

.....

बोध प्रश्न

5) किन परिस्थितियों में कीर्तनियां तथा अंकिपर नाट्य विद्या का उद्‌भव हुआ?

.....

.....

.....

.....

6) बंगाली थियेटर के निर्माता कौन थे, तथा उन्होंने किस प्रकार इसे बढ़ाया?

.....

.....

.....

.....

7) बांगला के किस नाटककार के नाटक द्वारा इस विद्या में नया मोड़ आया?

.....

.....

.....

.....

अभ्यास

2) राजा राममोहन राय ने जहा सामाजिक आंदोलन की शुरूआत की वहीं साहित्य को नया आयाम दिया।

.....

.....

.....

.....

8) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

क) राजा राम मोहन राय ने ....., ..., ... पत्रिकाओं का प्रकाशन किया।

ख) आत्मीय सभा तथा ब्रह्म समाज संस्थापक ..... थे।

ग) तैरूपा बंगाली गोष्ठों ..... से प्रभावित था।

घ) रिचर्डसन ने ..... का संपादन किया।

5.4 माइकेल मधुसूदन दत्त और नवजागरण

मधुसूदन दत्त (1824 ई.-1873 ई.) की प्राथमिक शिक्षा अपनी मातृभाषा और फारसी में हुई और बाद में उन्हें अपने धनी वकील पिता ने अंग्रेजी स्कूल में भर्ती करवा दिया। 1837 ई. में हिन्दू कॉलेज में दाखिला लेने के बाद से ही उन्होंने अंग्रेजी साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया और अंग्रेजी में कविताएं लिखने भी लगे। जो प्रशंसा उन्हें अपने अध्यापकों से तथा सहपाठियों से मिली, उससे उनकी यह निजीधारणा दृढ़ बनी रही थी कि एक दिन उन्हें अंग्रेजी भाषा के अन्यतम श्रेष्ठ कवि के रूप में मान लिया जाएगा। हिन्दू कॉलेज में दाखिला लेने के छह वर्ष के भीतर ही 19 वर्ष की आयु में उन्होंने पिता-माता तथा बंधुजनों की बातों को न मानकर अपना धर्म बदल डाला। तभी से वह माइकेल मधुसूदन दत्त के नाम से जाने गये। इसके बाद भी अगले पांच वर्ष तक उनके पिता उनकी पढ़ाई का खर्च देते रहे क्योंकि वह एकमात्र सन्तान थे। इस दौरान उन्होंने अंग्रेजी के अलावा फारसी, संस्कृत, ग्रीक, लेटिन तथा हिब का ज्ञान प्राप्त किया। विषय कॉलेज के छात्र के रूप में 1848 ई. की आरंभ में वह बाध्य होकर मद्रास में नौकरी करने चले गये, क्योंकि अब पिता का आर्थिक समर्थन बंद हो गया था। वहां उन्होंने पत्रिका कई अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में कविताएं भी लिखी। एक पत्रिका का अल्प अवधि तक संपादन भी किया। एक स्थानीय आंग्ल-इंडियन लड़की से उन्होंने शादी भी की इसी वर्ष जो 1855 ई. तक भी नहीं टिकी। इसी वर्ष अर्थात् 1848 ई. में ही उनकी दीर्घ अंग्रेजी कविताएं पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। पर जब इनकी प्रतिक्रिया आशानुरूप नहीं रही तो उन्हें समझ में आया कि उन्हें मातृभाषा में ही लिखना चाहिए। अगले पांच सालों में उन्होंने पश्चिमी शास्त्रीय भाषा और साहित्य के अलावा तेलुगु तथा तमिल का भी विस्तृत अध्ययन किया। यहां रहते हुए उन्होंने एक और नाट्यकविता की रचना शुरू की थी पर उन्हें पूरी नहीं की।

1855 ई. में अपने पिता के मरणोपरांत जब मधुसूदन कलकत्ता लौटे। तभी उन्होंने एक फ्रांसिसी लड़की हेनरियेटा से शादी की, जो अंतिम क्षण तक उनको काव्य रचना में प्रेरणा देती रही। अगले सात वर्ष ही माइकेल के जीवन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण समय थां। इसी दौरान उन्होंने अपने श्रेष्ठ काव्य, नाटक तथा कविताओं की रचना की। जिनमें शर्मिष्ठा (1860 ई.) काव्यनाटिका तथा इसका अंग्रेजी अनुवाद "तिलोत्तमासंभवम् काव्य (1860 ई.) मेघनादवध-काव्य (1861 ई.), वीरांगना (1862 ई.) तथा ब्रजांगना काव्य उल्लेखयोग्य हैं। 1862 ई. में वह इंग्लैंड चले गए और भीषण आर्थिक कष्ट का सामना करते हुए, विद्यासागर की सहायता से प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझ कर वह 1866 ई. में कानूनी शिक्षा हासिल कर स्वदेश लौट आये। उनकी सर्वश्रेष्ठ कविताएं चतुर्दशपदी कवितावली (1866 ई.) इसी साल में पुस्तकाकार प्रकाशित हुई। तब से लेकर 1873 ई. में उनके निधन होने तक उनका जीवन कष्टमय ही रहा। कुछ छिटपुट कविताओं को छोड़ कर इस अंतिम सात वर्ष में उन्होंने मात्र होमर का काव्य इलियड का भावानुवाद हेक्वरवंध (1871 ई.) की ही रचना कर पाए। माइकेल की "शर्मिष्ठा" नाटिका पर कालिदास का प्रभाव का पता चलता है, लेकिन कुमारसंभव के ढ़ांचे में रचित "तिलोत्तमासंभवम्" में वह अधिकतर स्पष्ट है, हालांकि उस पर ग्रीक महाकाव्यों का भी प्रभाव को देखा जा सकता है। उन पर वैष्णव कवियों का प्रभाव का

विशेष उदाहरण मिलता है उनके ब्रजांगना काव्य में उन पर राधा-कृष्ण कथा के इस परिणाम को आम जनता ने बहुत सराहा था। इसकी रचना उन्होंने शर्मिष्ठा से भी पूर्व 1859 ई. में की थी। पर इनका प्रकाशन मेघनादवध के एक खंड के प्रकाशन के बाद ही हो सका। ऐसा नहीं था कि वह वैष्णवमत द्वारा प्रभावित थे। लेकिन राधा-कृष्ण के प्रेम जैसे विषय की उपेक्षा वह कवि के रूप में कर नहीं सकते थे।

माइकेल मधुसूदन के काव्य से जो नवजागृति आई उसके मूल में उनके मेघनादवध और वीरांगना काव्य थे। इसमें प्रचलित धारणा के विरोध में जाकर उन्होंने रावण और मेघनाद इंद्रजित को ही प्रमुखता दी। शुरू से ही राम का चरित्र और युद्धजय के लिए उनके अपनाए गये तरीके—विशेषकर मातृभूमि के प्रति विश्वासघाती विभीषण का समर्थन लेना—उन्हें नापसंद था। राम में उन्होंने मीरजाफरों जैसे विश्वासघातियों के समर्थनपुष्ट आक्रामक विदेशी ताकत को ही देखा। इसी बात ने इस काव्य को प्रतिवाद की कविता बना दी। जो कुछ परपरा है, चाहे वह जैसी भी हो उसे अंधविश्वास के साथ मान लेना उनके स्वभाव के विरुद्ध में था। दक्षिण भारत में रहकर उनके साहित्य से परिचित होकर भी रावण के प्रति उनकी श्रद्धा बढ़ ही गई थी। वीरांगना काव्य में उन्होंने इक्कीस ऐसी वीरबालाओं की कथा उन्हीं की जुबान में सुनाई जिन्होंने प्राचीन भारत के पुरुष-शासित समाज में अपनी स्वाधीन चितता स्वतंत्रता तथा अपने प्रेम का इजहार कर पाया।

यहां लेटिन कवि ओविड का प्रभाव स्पष्ट नजर आता है। पर इन दोनों काव्यों ने उन्हें भारतीय भाषा के आधुनिक कविता के भगीरथ के रूप में प्रतिष्ठा दी थी। यद्यपि यह सही है कि अमित्राक्षर छेद के इस जनक की श्रेष्ठ कविताएं थी उनकी पुस्तक चतुर्दशपदी कवितावली के 102 सॉनेट जिनका जाड़ आज भी मिलना कठिन है। इन्हें उनकी सर्वश्रेष्ठ कलाकृति भी कहा जा सकता है। यह पहला मौका था जब किसी ने पूरब और पश्चिम का अक्षरक्षः समन्वय लाने के प्रयास के द्वारा एक नवीन जागृति लायी थी।

शर्मिष्ठा और पद्मावती जैसी नाटिका लिखने के बाद उनका ध्यान रंगलाल बनर्जी के पद्मिनी उपाख्यान (1851 ई.) के जरिये टॉड की राजस्थानी वीर-गाथाओं की तरफ गया। तब उन्होंने "कृष्णकुमारी" (1861 ई.) नाटक की रचना की, जिस पर ग्रीक त्रासदी तथा शेक्सपीयर का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। यह संपूर्ण गद्य-भाषा में लिखित नाटिका थी। जब कि उनके पहले के नाटक पद्य-नाटक ही थे। राष्ट्रीयता की भावना एकाधिक चरित्र की वार्ता से तथा नाटक में अंतर्भुक्त गीतों के माध्यम से उभर कर आती है। उनका अगला नाटक "मायाकानन" की रचना उन्होंने अंतिम जीवन में की और इसका मंचन तथा प्रकाशन उनके मरणोपरांत ही हुए। पर 1859 ई. में ही समसमाज की समस्याओं को लेकर उन्होंने दो लघुनाटिकाएं लिखीं। जो बहुत ही जनप्रिय रही। एक का नाम था "एकेइ की बॉले सभ्यता" क्या इसे ही सभ्यता कहते हैं? और दूसरा था—"बुड़ो शालिकेट घड़े"। इन दोनों का जन चेतना पर काफी प्रभाव पड़ा। माइकेल मधुसूदन दत्त की रचनाओं में देश प्रेम और राष्ट्रीय एकता की भावना की झलक बहुत सारी कविताओं में मिलती है। चतुर्दयपदी कवितावली में उन्होंने अपने देश का परिचय देते हुए लिखा है:

"ये देशे उदयि रवि उदय-अचले
धरणीर बिम्बाधर चुम्बेन आदरे
प्रभाते ये देशे गेये सुमधुर कले
धातार प्रशंसा-गीत वहन सागरे
जाहवी ये देशे भेदि वारिद-मण्डले
तुषारेवावितवास ऊर्ध्व कलेवरे,
रजतेर उपवीत स्रोतः रूपे गले,
शोभेन शैलेन्द्र-राज, मान-सरोवरे
(स्वच्छदरपण) हेरि भोषण मूरति :
ये देशे कूहरे पिक वासन्त काननें,

दिनेशे ये देशे सेवे नालिनी युवती,
चांदेर आमोद यथा कुमुद सदने,
से देशे जनम मम, जननी भारती,
तेइं प्रेम-दास आमि. ओलो वरांगने

भारती की इस अपूर्व वर्णन के साथ अगर उनकी अपनी भाषा के प्रति लगाव की घोषणा को देखें तो पता चलता है कि अंग्रेजी भाषा में कवि-यष प्रार्थी माइकेल किस तरह अपनी मातृभूमि की ओर लौटते हैं, किस तरह मातृभाषा की आराधना में जुट जाते हैं। उन्होंने गहन दुःख के साथ स्वीकार किया है कि

".....भंडारे व विविध रतन,
ता सवे, (अवोध आमि) अवहेला करि
पर-धन-लोभे मत. कारिनु भ्रमण
परदेशे, भिक्षावृति कुक्षणे आचरि" (वंगभाषा)

जब इंद्रजित के निधन का समाचार राक्षस राज रावण और रानी सरमा को राक्षस दूत देते हैं, समासदों के साथ वे तुरंत निकल पड़ते हैं। मेघनादवध काव्य के कवि निहत महावीर इंद्रजित की वर्णना देते हुए कहते हैं।

.....हाय रे, येमति
स्वर्ण-चूड शस्प क्षत कृषिदलवले.
पड़े क्षेत्र, पड़ियाछे राक्षसनिकट,
रविकुलरवि शुर राघवेर शरे।

और तब शोकाकुल रावण, जिन्हें वीरगति को प्राप्त अपने संतान के लिए फक्र भी है, कहते हैं:

"ये शच्याय आजि तुमि शुपेछ. कुमार
प्रियतम, वीरकुलसाध ऐ शयने
सदा। रिपुदलवले दलिया समरे.
जन्मभूमि रक्षा हेतु के डरे मरिते.
ये डरे, भीरू से मृढ़, शत धिक् तारे।"

पर ऐसा नहीं या कि माइकेल ने अपनी रचनाओं में युद्ध और योद्धा का सदा समर्थन किया है। वीरांगना काव्य के सप्तम सर्ग में दुर्योधन को युद्ध की विभीषिका निरर्थकता पर समझाते हुए उनकी पत्नी भानुमती के कलम से कवि ने लिखा था:

"ओइ देख युद्ध क्षेत्र। देखिनु तरासे
यत दूर चले दृष्टि भीम रणभूमि
बहिछे शोणित–स्रोत प्रवाहिणीरूपे.
पडियाछे गजराजि. शैलश्रृंग येन , हतगति
चूर्ण बज्रे. हतगति अश्व. रथावली
भग्न. शत शत शव। केमने वर्णिव
कत ये देखिनु नाथ से काल मशाने।"

इसके बाद भानुमती ने अपने शूरवीर पति से अनुरोध किया कि वह कुरूकुल की रक्षा करें और पांडवों से सुलह कर अपने पिता-माता की बात भी मान लें तथा शांति का पथ अपनाएं। माइकेल के प्रशंसक और अनुयायी बहुत थे, पर उनमें विरल कवित्व-शक्ति के अधिकारी थे हेमचन्द्र बनर्जी (1838 ई०–1903 ई०) तथा नवीन चन्द्र सेन (1846 ई० – 1909 ई०)। हेमचन्द्र के पहले काव्य (चिन्तातरंगिणी काव्य, 1861 ई०) पर ईश्वरचन्द्र गुप्त तथा रंगलाल बनर्जी का प्रभाव अधिक था। उनकी दूसरी पुस्तक "वीरबाहु काव्य" (1864 ई०) एक ऐसे काल्पनिक शूरवीर की कहानी पर आधारित थी जिसकी देशभक्ति की भावना स्तुत्य थी। उन्होंने शेक्सपीयर के दो नाटकों का भी अनवाद किया है और दों काव्य-संकलनों का भी प्रकाशन किया। पर

उनकी सर्वाधिक जनप्रिय पुस्तक वृत्रसंहार काव्य (1875-77 ई०) पर माइकेल का प्रभाव स्पष्ट था। बुद्धिजीवी वर्ग में जातीयता की भावना को जागरूक करना और ब्रिटिश राज के विरोध में लिखना हेमचंद्र के लिए नई बात नहीं थी—उनकी भारतसंगीत कविता ही इसका अच्छा उदाहरण है। नवीनचन्द्र सेन ने अपने साहित्यिक जीवन के आरंभ में पलाशीर युद्ध (1875 ई० में प्रकाशित) की रचना की। लेकिन इसके बाद में रचित कृष्ण कथा पर आधारित काव्य-त्रय (1886-96 ई०) में अथवा रंगमती (1880 ई०) में उस तरह की देशात्मबोधक भावना जागृत नहीं होती है। इनकी तुलना में हेमचन्द्र की प्रतिवाद-कविता अधिकतर मुखर थी, क्योंकि वीर-बाहु काव्य में नायक के द्वारा कवि ने अपनी बात ही कही:

"सब सेइ देशमान्या भारतवक्षेते म्लेच्छकुल यदे दले....
लक्षतरि भासाइबो. म्लेच्छदेश मजाइबो
वाणिज्य करिबो छारखार।
तोर सिंहासन पात म्लेच्छकुल भस्मसात्.
प्रेयसीरे करिबो उद्धार।"

बोध प्रश्न

9) माईकेल मधुसूदन दत्त की तीन रचनाओं के नाम लिखिए।

.....
.....
.....

10) मधुसूदन दत्त की कृतियों में मुख्य प्रवृत्ति क्या है?

.....
.....
.....

11) मधुसूदन दत्त के जीवन से संबंधित दो महत्वपूर्ण घटनाएं लिखिए।

.....
.....
.....

अभ्यास

3) माईकेल मधुसूदन दत्त मूलतः सुधारवादी थे। दास-बारह पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

बोध प्रश्न

12) नवजागरण फैलाने में मधुसूदन दत्त की कौन-सी वृत्ति सर्वाधिक विख्यात रही?

.....

.....

.....

13) दुर्गेशनन्दिनी तथा कपालकुण्डला द्वारा बंकिमचंद्र को क्यों लोकप्रियता मिली?

.....

.....

.....

14) बंकिमचंद्र के किस रचना से समाजिक चेतना की शुरुआत होती है?

.....

.....

.....

15) जनजागरण का उद्घोषक था "आनन्द मठ"। दो तीन पंक्तियों में कारण लिखिए।

.....

.....

.....

5.5 बंकिमचंद्र : राष्ट्रीय चेतना

जब बंकिमचंद्र ने अपने लेखक-जीवन की शुरुआत की तब साहित्य-चर्चा में और भारतीय समाज-चेतना में कुछ बड़े परिवर्तन आ रहे थे। कुछ परिवर्तन ऐसे थे जिससे बंकिम के मान के स्तरीय लेखकों को अपने पूर्वसूरियों की तुलना में अधिकतर सुविधा मिली। कुछ परिवर्तन ऐसे भी थे जो बंकिम जैसे लेखकों की रचना के वजह से आ रहे थे। संस्कृतज्ञ जनों की तरह नई अंग्रेजी शिक्षा में दीक्षित जन भी भारतीय भाषाओं के प्रति अवज्ञा की दृष्टि से देखते थे।

इसलिए इन भाषाओं को अपना सम्मान दिलाने में बंकिम जैसे सशक्त लेखकों की आवश्यकता थी। उधर साक्षरता भी तेजी से बढ़ रही थी विशेष कर नारी-शिक्षा के प्रारंभ होने से साक्षर महिलाओं की संख्या बहुत बढ़ चुकी थी। इन नव-शिक्षितों में अधिकांश लोग ऐसे थे जो भारतीय भाषा में ही लिख पढ़ सकते थे और जिनके लिए अंग्रेजी से भयभीत होना स्वाभाविक ही था। पाठ्यपुस्तक की रचना तथा छपाई का काम काफी जोरशोर से चल रहा था। पर साधारण पाठकों को इनके बाहर पाठ्योग्य पुस्तकों की चाह थी। इस जमाने के अधिकांश लेखक जो या तो शिक्षाविद थे (विद्यासागर की तरह) या पत्र-पत्रिका के संपादक-संचालक (ईश्वरगुप्त की तरह)। इन्होंने पहली बार यह समझ लिया, उनके द्वारा लिखी जा रही नई पुस्तकों के पाठकों में महिलाओं की संख्या अधिक थी। अधिकांश पत्रिका के पढ़ने वालों में नारी पाठिकाओं की संख्या ही ज्यादा थी। अतः नारी की समस्याएं कथा और कविता में अंतर्गत होने लगी—बहुत सारी पुस्तकें पाठिकाओं को नजर में रखते हुए ही लिखी गयीं। बंकिम के उपन्यासों के बारे में भी यहीं बातें कही जा सकती हैं। हालांकि बंकिम ने लिखित रूप में यह तर्क दिया था कि अंग्रेजी भाषा के माध्यम से ही आधुनिक हिन्दु बुद्धिजीवी ने स्वाधीनता की महिमा तथा जातीयता का महत्व के विषय में जाना था और यह भी सच है कि उन्होंने लेखक-जीवन के आरंभ में अपनी अंग्रेजी दीर्घ कथा का प्रकाशन किया था। (1864 ई०) बहुत शीघ्र ही बंकिम ने अपनी राय बदल ली और बांगला साहित्य की सेवा के माध्यम से नवीन चेतना के जागरण के [illegible]

5.5.1 बंकिमचंद्र के उपन्यास : राष्ट्रीयता

बंकिमचंद्र चटर्जी (1838 ई० 1894 ई०) ने कथाशिल्पी के रूप में बांगला गद्य साहित्य के इतिहास में वह क्रांति लायी थी जिसकी तुलना केवल बांगला काव्यसाहित्य को माइकेल की देन की साथ की जा सकती है। लेकिन उनसे पहले ही कलकत्ते की साहित्यिक पत्रिकाओं में कहानी तथा उपन्यास प्रकाशित हो रहे थे। शशी चन्दर दत्त ने अंग्रेजी में ऐतिहासिक विषयों को लेकर तब तक अपने उपन्यासों को छपा भी चुके थे। इसके अतिरिक्त भुदेव मुखर्जी की पुस्तक –ऐतिहासिक उपन्यास (1862 ई०) भी छप गई थी। इनकी दूसरी कहानी– अंगुरीय-विनिमय में भी राष्ट्रीय चेतना का आभास मिलता है क्यों कि यहां शिवाजी के द्वारा औरंगजेब की सेना को पराजित करने की वर्णना की गई थी। आगे चलकर बंकिम की दुर्गशनन्दिनी पर इसके प्रभाव को हम स्पष्ट रूप से देख सकेंगे। इन रचनाओं ने ऐतिहासिक घटनावली पर आधारित बंकिम के उपन्यासों के लिए पहले से ही पाठकों के समक्ष एक साहित्यिक भूमिका बना दी थी। अतः Rai Mohan's नामक अंग्रेजी पुस्तक लिखने के बाद ही बंकिम ने अपने पहले उपन्यास–दुर्गेशनन्दिनी को लेकर पाठकों के सामने आये तो पाठकों को इस उपन्यास में वह सारी बातें एक साथ मिल गई जो किसी कथा को जनप्रिय बना देती है इसमें ऐतिहासिकता, प्रेमगाथा, हास्यरस गंभीर परंतु बांधगम्य भाषिक शैली सभी बातें एकसाथ मिल जाती है। इसमें भूदेव मुखर्जी के प्रभाव के अतिरिक्त स्कॉट के Ivanhoe चरित्र का भी आभास नजर आता है। वैवाहिक संबंधों के बाहर जाकर जिस प्रेम को उपन्यासकार ने यहां दर्शाया है वह बंगाली पाठक-पाठिकाओं के लिए नई बात थी। बंकिम के अगले उपन्यास की नायिका कपालकुंडला 1866 ई० में भी वही रहस्यमयता थी। यहां भी कालिदास की शकुन्तला और शेक्सपीयर की मिरांडा चरित्र के गुण बंकिम की नायिका में पाये जाते हैं। अगली पुस्तक मृणालिनी (1869 ई० में प्रकाशित) शायद कपालकुंडला से पहले ही लिखी गई थी। इसका साहित्यिक मूल्य अधिक नहीं था। इन उपन्यासों ने बंकिमचंद्र को बहु दुर्लभ प्रतिष्ठा तो दिला दी जिनकी उनको कामना थी और बांग्ला उपन्यास तथा कहानी के पाठकों की संख्या में भारी वृद्धि भी ये पुस्तकें ला सकीं। पर सामाजिक जागरण की कोई बात इनमें नहीं थी। 'विषवृक्ष' (1873 ई०) में उन्होंने युवती विधवाओं की समस्या को बखूबी से उभारा था और विधवा-पुनर्विवाह को ही अपना विषय बनाया। लेकिन अंततः बंकिम ने लेखक की भूमिका को छोड़ कर यहां नैतिकता के वाचक बन जाते हैं। मध्यवित परिवार के घरेलू घात-प्रतिघात, उतार-चढ़ाव का वर्णन उन्होंने अत्यंत दक्षता के संग किया है जिसके कारण पाठक इस उपन्यास को पढ़ते-पढ़ते इनके पात्रों के साथ एक अजीब बंधन में बंध जाते हैं पर उन्होंने अंततोगत्वा विधवा-विवाह का समर्थन नहीं किया है। कुंदनंदिनी को अपने दुर्भाग्य के हाथों बलि चढ़ा कर उन्होंने इस पुस्तक को एक विवाद का विषय बना दिया। पर इतना अवश्य हुआ कि राममोहन राय और विद्यासागर जो बाते केवल बौद्धिक स्तर पर कर रहे थे, उन्होंने उस समस्या को आम चर्चा की बात बना कर एक बहुत बड़ा काम किया। अगर कुंदनंदिनी आत्महत्या नहीं करती और अगर उनके नगेन्द्र के साथ प्रेम संबंध को सार्थक और साकार दिखाया जा सकता तो अवश्य समाज सुधार के इतिहास में बंकिम को विषवृष के लिए अधिक अंक प्राप्त होते। पर यहां इस बात को भूलना उचित नहीं है कि यहां बंकिम की मुख्य भूमिका थी कहानीकार की और यह सुविदित है कि सचमुच के जीवन और सत्यकथा में कहानी के कई ऐसे मोड़ आ जाते हैं जिन्हें न तर्क-संगत कह सकते हैं न ही आदर्श घटना।

बंकिम ने इसके बाद कई ऐसे उपन्यासों की रचना की (उदाहरण के तौर पर चन्द्रशेखर 1877 ई० रजनी 1877 ई० आदि) जिनको उनकी श्रेष्ठ कृतियों में रखी नहीं जा सकती है। पर राजसिंह (1881 ई०) में जिसे हर दृष्टि से उनके श्रेष्ठ उपन्यासो में एक माना जा सकता है–उन्हें हम पुनः उस सामाजिक समस्या को ही उठाते देखते हैं जिन पर वह विषवृष में अपनी राय दे चुके थे। वैवाहिक संबंधों को बाहर जाकर अगर कोई पुरुष किसी नारी से रिश्ता जोड़े तो उससे किस तरह सारा परिवार ध्वस की तरफ बढ़ जाता है. उन्होंने इसी बात का चित्रण किया है। यहां बंकिम की देवी

चौधुराणी (1884 ई०) और सीताराम (1886 ई०) जनप्रिय पुस्तकें तो रहीं। पर एक दरिद्र ब्राहम्ण की अवहेलिता प्रथम पत्नी से गरीबों के मसीहे की भूमिका निभाने वाली देवी चौधुराणी कैसे बन गई यह बहुत विश्वासयोग्य नहीं लगता है। सीताराम में मुख्य चरित्र को छोड़कर बाकी पात्र-पात्रियों के चित्रण में विश्वास-योग्यता का अभाव रह ही जाता है। सीताराम का मुख्य विषय है एक नपुंसक मुसलमान शासक के विरुद्ध किस तरह से दक्षिण बंगाल के एक हिन्दू सामंतराज ने विद्रोह किया उसी का वर्णन। पर इन दोनों पुस्तकों से पहले ही उनका उपन्यास आनन्दमठ (1882 ई०) प्रकाशित चुका था।

आनन्दम को कुछ हद तक राजनैतिक उपन्यास कहा जा सकता है। इसका आधार था– 1773 ई० में उत्तरी बंगाल में घटित सन्यासी विद्रोह। बंकिम ने अपने विद्रोही सन्यासियों को अंग्रेज सरकार के विरुद्ध युद्धरत तो दिखाया ही है उनके धर्मविश्वास के अंग के रूप में निष्काम कर्म तथा दुष्टजनों के दमन का वर्णन भी किया है। कहा गया है कि अंग्रेज ही भयंकर सूखा और भुखमरी के लिए जिम्मेदार है। धीरे-धीरे अंग्रेजों के और उनके शासन के प्रति भारत की जनता में जो विरोध की भावना जाग रही थी–16 वर्ष पूर्व जो सिपाही विद्रोह के रूप में सामने आयी थी – बंकिम भी उसके बारे में अच्छी तरह वाकिफ थे। अतः उनके किसी न किसी उपन्यास में उस विरोध की भावना को स्थान मिलना ही था। इसी भाव-प्रकाश ने आनन्दमठ को दूसरी कहानियों से अलग बना दिया और जनता में यह एक अमिट छाप छोड़ गई।

5.5.2 बंकिमचंद्र : समसामयिक लेखक

बंकिमचंद्र के पूर्व के उपन्यासकारों में भूदेव मुखर्जी का स्थान कितना महत्वपूर्ण था, इसकी चर्चा तो पहले ही की गई है। पर सही अर्थ में बिल्कुल देशज कथा और समस्याओं के बारे में आम लोगों की भाषा में लिखते हुए प्यारी चांद मित्र (1814 ई०–1883 ई०) ने अपना एक अलग ही स्थान बना लिया। उन्होंने टेकचांद ठाकुर के नाम से छह पुस्तकों की रचना की। 1854 ई० में उन्होंने सर राधानाथ सिकदार के साथ मिलकर केवल महिलाओं के लिए एक पत्रिका का प्रकाशन भी शुरू किया। उनका सर्वाधिक जनप्रिय उपन्यास या आलालेट घटे दुलाल, जिस में उच्च मध्यवित परिवार के दुलारे बेटे की दुर्गति को दर्शाया गया। वाग्व्यवहार की चातुरी के द्वारा मित्र ने अपनी एक अलग ही शैली बना ली जो विद्यासागर के विपरीत मेरू की थी और जिसके आदर्श में बाद में जाकर चलित तथा कथ्य बांगला शैली आन्दोलन की शुरुआत हुई। यह कारण था कि बंकिम ने इन दोनों के बीच की एक शैली अपनायी थी। बाद में मित्र की शैली को बोलचाल की भाषा के और करीब ले जाकर और इसमें अश्लील शब्दों का व्यवहार कर (महाभारत के सफल अनुवादक) कालीप्रसन्न सिंह ने अपनी लघुकथा हुमोम पेंचार नक्शा ग्रंथ में कलकत्ते के उन्नीसवीं सदी का एक वास्तवानुग चित्रण किया था।

बंकिम के समय के अन्य साहित्यकारों में दो और नाम अत्यंत महत्वपूर्ण थे–उनके भाई संजीवचंद्र (1834 ई०–1889 ई०) और सहलेखक रमेशचन्द्र दत्त (1848 ई०–1909 ई०)। कहा जाता है कि संजीवचंद्र के उपन्यास कंठमाला (1877 ई०) के बीसवें अध्याय में जिसे सहकार समिति का वर्णन किया गया था, उसी से बंकिम को आनन्दमठ जैसे सन्यासी-संगठन की कल्पना का अवकाश मिला। दत्त के पहले दोनों उपन्यास बंगविजेता (1874 ई०) और माधवीकंकण (1877 ई०) दोनों ऐतिहासिक-राजनैतिक पुस्तक के रूप मे पाठकवर्ग के सामने आये और काफी आदृत हुये। पर उनकी अगली दो पुस्तकें और भी जनप्रिय हुई वे थीं – महाराष्ट्र जीवनप्रभात (1881 ई०) और राजपूत जीवनसंध्या (1879 ई०)। इससे इतना पता चल जाता है कि बांगला साहित्य के पाठक आनन्दमठ के लिए तब तक प्रस्तुत हो गए थे।

5.5.3 बंकिम : निबंधकार, संपादक और समाजसुधारक

बंकिमचंद्र मात्र प्रेमगाथाओं के कथक औपन्यासिक मात्र बने नहीं रहना चाहते थे। अतः 1872 ई० से ही उन्होंने *बांगला साहित्य* की सर्वप्रथम स्तरीय पत्रिका बंगदर्शन का प्रकाशन और संपादन करने लगे। उनकी प्रायः सभी रचनाएं इसके बाद से सर्वप्रथम इसी पत्रिका में प्रकाशित होने लगी। उपन्यासों में बंगदर्शन में सर्वप्रथम विषवृक्ष छपा। उनके असंख्य निबंध कथा अनुवाद तथा आलोचना इसी पत्रिका में छपी और बांगला पत्रकारिता के इतिहास में भी उन्होंने अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बना लिया।

पत्रिका के *माध्यम से पाठक-जनों* की उत्सुकता को बनाये रखकर उपन्यास अथवा दीर्घ कथानक को अनेकों कड़ियों में बांट कर प्रकाशित करने की अथवा serialise करने की जो परंपरा संपादक के रूप में बंकिमचन्द्र ने की, उससे सामयिक पत्र तथा संवादपत्र के प्रति शिक्षित लोगों का आग्रह भी बढ़ा। आम पढ़े–लिखे लोगों का वाचक समाज से पाठक समाज में उत्तरण नव्य भारतीय भाषा के इतिहास में एक जागृति की तरह ही थी। विषवृक्ष के क्रमिक प्रकाश ने पाठकों को इस तरह मोहित कर लिया था कि रवीन्द्रनाथ ने लिखा था – (उस जमाने में) बंगदर्शन जैसे धूमकेतु की तरह आकाश में छा गया। सूर्यमुखी और कुंदनंदिनी (विषवृक्ष के दो चरित्र) जैसे प्रत्येक घर में जा घुसी परिवार के सदस्यों की भांति और जैसे वह आम घरों से उभर आयी थी। सारे देश में उत्सुकता और आशंका इस कदर छायी हुई थी कि लोग जानना चाहते थे, अब क्या होगा और आगे क्या होनेवाला है। इस पाठकीय उत्सुकता को उन्होंने अपने अनगिनत निबंध के पाठकों में भी लाने में सफल रहे। अपने निबंधों के माध्यम से उन्होंने सामाजिक अनाचार तथा कदाचारों पर प्रहार भी किया और अपना तर्कपूर्ण विचार और पश्चिम के दर्शन और इतिहास से उदाहरण देकर अपनी बातें विश्वासयोग्य ढंग से कहीं। जहां उपन्यासकार बंकिमचंद्र को हम रहस्यमय सजावट-प्रेमी, कौतुकमय लेकिन कुछ हद तक प्राचीन पंथी के रूप में पाते हैं उनके निबंध उनके बारे में और उनकी सामाजिक चेतना तथा राष्ट्रीय भावना के बारे में इन धारणाओं को बदल देते हैं। शिशिर कुमार दास ने अपनी एक पुस्तक (*1800-1910*) में काफी सुलझे हुए शब्दों में उपन्यासकार के रूप में बंकिम की विशेषता तथा दुर्बलता के बारे में कहा है : "*The natural inclination of Bankim Chandra, however, was towards the spaciousness of history, towards the majestic and the grand and the mysterious. His imagination had a sweeping power but it was always tempered by his strong ethical views and conservation.*"

पर बंगाल और भारतीय नवजागरण के इतिहास में बंकिम की पुस्तक आनंदमठ और उनकी वाणी वंदे मातरम् ने जिस तरह अपना स्थान बना लिया और जिस तरह वह अप्रत्यक्ष रूप से हीं सही किंतु राष्ट्र के उत्थान के सहायक बने उसका मिसाल मिलना मुश्किल है। वंदे मातरम् में उनका देशप्रेम देशवासियों के प्रति श्रद्धा एवं धार्मिकता का बोध सहज रूप से पता चलता है। यहां इस गीत का उल्लेख करना इसलिए आवश्यक है। इसकी पंक्तियों के उद्धरण से पता चलता है यह किसलिए सर्व-भारतीय स्तर पर इतनी जनप्रिय रही :

वन्दे मातरम्
सुजलां सुफलां मलयजशीतलां शस्य श्यामलां मातरम्।
शुभ्र-ज्योत्स्ना-पुलकित-यमिनीम्–
फुल्लं-कुसुमित–द्रुमदल–शोभिनीम्
सुहासिनी सुमधुरभाषिणीम् – सुखदां वरदां मातरम्।
सप्तकोटि कंठ-कलकल–निनादकराले.
द्विसप्तकोटि–भुजैधृत–खरकरवाले.
अला केन मां एत वले।

बहुवल धारिणी. नमामि तारिणी. रिपुदलवारिणी. मातरम्।
तुमि विधा तुमि धर्म्म तति हृदि तुमि मर्म्म
त्वं हि प्राणा : शरीरे
बाहुते तुमि मा शक्ति हृदये तुमि मां भक्ति
तोमारि प्रतिमा गड़ि मंदिरे मंदिरे।
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरण धारिणी
कमला कमलदलविहारिणी
वाणी विद्यादायिनी नमामि त्वां
नमामि कमलां अमल अतुलां–सुफलां मातरम्।
वंदे मातरम्
श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषितां, धरणी भरणी, मातरम्।

5.6 ईश्वरचंद्र विद्यासागर : नवजागरण

सर्वप्रथम राममोहन राय ने सामाजिक नवजागरण के क्षेत्र में सतीप्रथा के विरोध में जनमत को बना कर जो सत्प्रयास की शुरुआत की थी, एक आत्म-निवेदित दृढ़चित् समाजसुधारक के रूप मे ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने उसे और आगे बढ़ाया। साहित्यिक प्रगति के क्षेत्र में भी राममोहन ही की तरह उन्होंने भी बांगला गद्य के इतिहास की एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। राममोहन राय और बाद में देवेन्द्रनाथ टैगोर ने बांगला गद्य को पाठ्य-पुस्तक रचयिताओं के चंगुल से निकाल कर जो प्रतिष्ठा दिलायी थी, उसे बढ़ावा देने का श्रेय जाता है तत्वबोधिनी पत्रिका को जिसको बहुत दिन तक अक्षय कुमार दत्त ने चलाया। पर उनके गद्य में जो साहित्यिकता तथा शैलीविचित्रता का अभाव था उसे विद्यासागर ने पूरा किया। अपने जीवन, अपने आदर्श और अपनी साहित्य-संस्कृति के लिए उन्होंने जो कुछ किया, उसका प्रभाव संपूर्ण उन्नीसवीं सदी के नवजागरण पर पड़ा। माइकेल मधुसूदन दत्त जैसे तरूण तुर्क को विद्वान और पंडितों की मंडली जिन्हें संस्कृति के विरोधी मानते थे। ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने ही विषाद और हताशा के क्षणों में आर्थिक सहायता और बौद्धि समर्थन देकर साहित्य-रचना में उद्बुद्ध किया था। उनके जैसे व्यक्तित्व की इस शतक के जागृति के इतिहास को आवश्यकता थी।

5.6.1 साहित्यकार और वैयाकरण विद्यासागर

विद्यासागर की पहली कुछ पुस्तकें फोर्ट वीलियम कॉलेज के पाठ्य-ग्रंथ के रूप में छपी थी। हिन्दी गद्य-ग्रंथ पर आधारित प्रेम सागर से प्रेरित होकर विद्यासागर ने कृष्णकथा पर जो पहला ग्रंथ लिखा उसका पठन-पाठन अध्यापन के लिए कॉलेज में प्रयोग हुआ था, लेकिन वह पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हुआ दूसरी थी बेताल-पंचविंशति (1847 ई०) जिसमें मूल संस्कृत के अलावा उन्होंने हिन्दी बेताल-पच्चिसी से भी काफी कुछ ग्रहण किया। इसी तरह उन्होंने संस्कृत तथा अंग्रेजी साहित्य की कुछ प्रख्यात कथाओं को बांगला में अपने ढंग से कहा और बांगला कथा-साहित्य की नींव डाली। उनका शकुंतला (1854 ई०) और सीत्तार बनवास (1860 ई०) उतनी ही जनप्रिय रही, जितनी इनकी शेक्सपीयर की कॉमेडी ऑव एरर्स पर आधारित भ्रांतिविलास (1869 ई०)। बंकिमचंद्र के प्रथम दो तीन उपन्यास भी इसी दौरान (1865 ई० से 1869 ई० तक) लिखी गई और जाहिर है कि उनपर विद्यासागर के गद्य-शैली का प्रभाव पड़ा था। किसी भाषा की संरचना के मानकीकरण के लिए उसके गद्य के निर्माताओं में व्याकरण बोध का होना अत्यंत आवश्यक हो जाता है। यही कारण है कि राजा राममोहन राय ने भी व्याकरण रचना की। पर विद्यासागर के पांडित्य की ख्याति दूर दूर तक फैल चकी थी और गद्यकार होने के पहले से ही वह व्याकरणकार तो थे ही। उनके इस व्याकरण पाण्डित्य के कारण ही बांगला गद्य को पंडिताउ शैली से मुक्त करने में जुट गए और इसमें उन्हें सफलता भी मिली। उनकी अपनी रचनाएं ही आदर्श बन गयीं। बांगला सिखाने के लिए उन्होंने जो वर्ण-परिचय पुस्तक की रचना

की थी, उसके सैंकड़ों संस्करण उनके जीद्दशा में ही छपी थी। उनके द्वारा लिखित व्याकरण "उपक्रमणिका" और "व्याकरण कौमुदी" संस्कृत के व्याकरण अवश्य थे लेकिन बांगला में इनकी रचना कर उन्होंने बांगला में लिखने वाले और बांगला को सीखने-सीखाने वालों के लिए एक अनमोल भंडार का प्रवेश-पथ बना दिया। संस्कृत साहित्य का एक संक्षिप्त इतिहास लिखकर, महाभारत का गद्यानुवाद स्वयंकर तथा कालीप्रसन्न सिंह के द्वारा अपने ही तत्वावधान में करा एवं मेघदूतम् जैसे शास्त्रीय कृतियों की टीका लिख कर उन्होंने बंगाल के विद्वज्जगत में अपना स्थान तो बना लिया ही, साथ ही शिक्षा-जगत का भी मार्गदर्शन किया।

5.6.2 समाज सुधार : विद्यासागर

शिक्षा के क्षेत्र में विशेष कर नारी-शिक्षा के क्षेत्र में विद्यासागर का अवदान सर्वविदित है। संस्कृत कॉलेज के अध्यक्ष पद पर रहकर और सरकार की कई महत्वपूर्ण सलाहकार समिति में सक्रिय रहकर उन्होंने कई ऐसे ठोस कदम उठाये, जिसके फलस्वरूप बंगाल में शिक्षा की नई लहर आयी।

विद्यासागर ने दो खंडों में विधवा पुनर्विवाह पर अपना असम-साहसिक प्रस्ताव 1855 ई० में जनता के दरबार में रखा, जिससे प्राचीन-पंथी पंडित वर्ग काफी नाराज हुए। उनके मत के विरुद्ध बोलने वालों की संख्या से विद्यासागर कभी नहीं घबराए क्यों कि उनके पास हर तर्क का जवाब था। इसी तरह बाद में जाकर बहुविवाह के विरोध में भी उन्होंने अपनी अकाट्य युक्तियों को सजाकर रखा दो प्रस्ताव-पुस्तकों में जिनका प्रकाशन 1871 और 1873 ई० में हुआ। उनके ए रूढ़ीवादी परंपरा को जिला के रखने से अधिक मूल्यवान था। आम मनुष्य का दुःखदर्द आम आदमी की समस्याएं। खास तौर से नारी-मुक्ति के लिए उनके प्राण व्याकुल थे। जिसका प्रमाण आजीवन वैयक्तिक तथा सामाजिक संघर्ष से भी मिलता है और उनके इन ग्रंथों से भी। जिससे भी जनमत पर काफी प्रभाव पड़ा। इस तरह राममोहन के सतीदाह प्रथा के विरोध से जो सामाजिक अन्याय के विरुद्ध प्रतिवाद की परंपरा शुरू हुई, उसका सार्थक उतरण हम पाते हैं विद्यासागर के विधवा-विवाह के समर्थन तथा बहुविवाह के विरोध में चलाये गये आन्दोलन से।

5.7 गिरीशचंद्र घोष और द्विजेन्द्रलाल राय : नवजागरण

विद्यासागर के सामाजिक आन्दोलनों का प्रभाव बांगला नाट्य-साहित्य पर उतना ही पड़ा जितना कथा-साहित्य पर पड़ा। 1873 ई० तक आते-आते हम बंकिम के उपन्यासों में विधवा पुनर्विवाह से जो समस्या आ सकती है उसकी भी झलक देखते हैं। इसलिए जाहिर है कि 1850 ई० की दशक में जब विद्यासागर इन प्रस्तावों को अपने भाषण और पुस्तक या लेख में रख रहे थे, उसका तात्कालिक प्रभाव साहित्यकारों पर पड़ा ही था। उमेश चन्द्र मित्र का विधवाविवाह नाटक (1856 ई०) इसी का प्रमाण है। इसी समय इन्हीं विषयों को लेकर स्वतंत्र रूप से चिन्ता भी जारी थी जिसका उदाहरण है रामनारायण तर्करत्न का नाटक कुलीन कुलसर्वस्व (1854 ई०) बहुविवाह प्रथा खास तौर पर कुलीन ब्राह्मणों के क्षेत्र में एक विभीषिका बन कर रह गया था। कन्या और कन्यादायगस्त पितामाता के लिए और यह एक मनोरंजन तथा जीवनशैली बन कर रह गये थे बहुविवाही ब्राह्मण पुरुष के लिए। इस सामाजिक आन्दोलन का प्रभाव कितना सुदूर-प्रसारी था उसका प्रमाण है सौ साल के बाद में लिखी आधुनिक बांगला के प्रमुख उपन्यासकार कमलकुमार मजुमदार की अंतर्जली यात्रा।

गिरीशचन्द्र घोष के 1877 ई० में नैशनल थियेटर में योगदान से पहले ही बंगाल के रंगमंच पर दीनबंधु मित्र का नाटक "नीलदर्पण" (1877 ई.) तथा ऐसे ही और सामाजिक समस्याओं को लेकर नाटक मंचित हो चुके थे। नाटक जनजागरण का एक शक्तिशाली माध्यम बन चुका था। बीच में माइकेल के नाटकों के बाद बांगला नाट्यजगत् में कुशल और सचेत नाट्यकार कुछ कम हो गए थे। विद्यासागर तथा

बंकिम की कथाओं का नाट्यरूपांतर कुछ दिन तक तो चला। गिरीशचन्द्र के प्राथमिक प्रयास (सीतार वनवास 1880 ई०) भी ऐसे ही थे हालांकि उन्हें काफी सफलता मिली थी—नाट्यकार के रूप में ही नहीं संचालक तथा अभिनेता के रूप में भी उन्हें बहुत प्रतिष्ठा मिली थी। शुरू-शुरू में गिरीश चंद्र ने कुछ गीतिनाट्य तथा प्रतीकात्मक नाटकों की रचना की जिनमें से कुछ तो जनप्रिय रहे लेकिन कई ऐसे थे जो लोगों को समझ में नहीं आये। इसके बाद गिरीशचंद्र ने बहुत सारे पौराणिक नाटकों की रचना की। जिसका सिलसिला "रावण वध" से शुरू हुआ और इसके बाद "अभिमन्यु वध" लक्ष्मण-वर्जन "व्रजविहार पांडवेर अज्ञातवास तथा चैतन्यलीला" जैसे नाट्क दर्शकों को मिले। गिरीशचंद्र ने 1905 ई० में आकर ही सामाजिक नाट्क (बलिदान) की रचना की। यह दहेज-प्रथा के विरुद्ध में लिखा गया था। इसके बाद लॉर्ड कार्जन द्वारा बंग-विभाग की प्रतिक्रिया में उन्होंने "सिराजद्धौला" तथा "मीरकाशिम" जैसे जनप्रिय नाटक लिखे। इन नाटकों में तथा "चंड" जैसे नाटक में देश के लिए प्राणों की आहुति देने की बात कही गयी। चित्तोर के राजकुमार को महात्मा रघुदेवजी कहते है—

"यवे अत्यारपूर्ण धरा.—धर्मरक्षा हेतु साधुजन
शोणित प्रदाने हरे धरणीर ताप।
सेइ रक्तस्रोते हय अत्याचरी नाश—
सुखेर आवास पुंनः हय ऐ मेदिनी।"

जब धर्मरक्षा के लिए अत्याचार से भरी पृथ्वी पर अपना खून बहा कर धरित्री का संकट हर लेते हैं तभी उस रक्तस्रोत से अत्याचारी का विनाश होता है और धरणी पुनः सुख का आवास बन जाती है (गिरीशचन्द्र के समसामयिक नाट्यकारों में रसराज अमृतलाल तथा क्षीरोदप्रसाद विद्याविनोद जैसे कुछ सशक्त नाट्याकार आये जिनमें क्षीरोदप्रसाद ने अस्पृश्यता के विरुद्ध आवाज उठायी थी। कुमारी नाटक में अपने अधिकारों के लिए लड़ने वालों के लिए कौन सा उपाय श्रेय है—"हिंसा का कि अहिंसा का"—यह सवाल क्षीरोदप्रसाद ने उठाया था "प्रतापादित्य" नाटक में। जहां उन्होंने हिंसा के पथ का अन्जाम दर्शाया। उनका "पलाशीर प्रायश्चित" जैसे नाट्क गिरीशचन्द्र के सिराजद्धौला की तरह अंग्रेज सरकार द्वारा निषिद्ध करार कर दी गयी।

द्विजेन्द्रलाल राय का पहला ऐतिहासिक नाट्क था "तारावाई" पर यह छंद में लिखा गया था। इसके बाद के सभी नाटक गद्य-नाटक थे। उन्हें यश मिला "राणा प्रताप" नाटक के लेखन तथा मंचन के बाद ही। उनका हास्य-रसात्मक नाट्क "विरह" भी काफी जनप्रिय हुआ। पर तीन पौराणिक नाटकों को छोड़ इसके बाद इतिहास पर आधारित नाटक ही लिखते रहे। उनमें "साजाहान", "नूरजाहान", "गेवाड पतन "चन्द्रगुप्त" बांगला रंगमंच के इतिहास में सर्वाधिक जनप्रिय नाटकों में से हैं।

नाट्ककार के रूप द्विजेन्द्रलाल को यश तो मिला लेकिन उनके ऐतिहासिक तथा पौराणिक – दोनों तरह के नाटक में तथ्य सत्य की कहीं कहीं विकृति देखी जाती है, जिसकी वजह से उन्हें बहुत आलोचना सहन करने पड़ी। लेकिन उन्हें उनकी देशात्मबोधक कविता और उनके गीतों द्वारा बहुत ख्याति मिली। बहुत-सी ऐसी पंक्तियां उनके लेखनी से हमें मिली जो देश के लिए विदेश ताकतों से संघर्ष कर रहे बंगाल तथा भारत के अन्य अंचल के नवजवानों को भी उद्बुद्ध करती रही। उदाहरणस्वरूपः

"धन-धान्ये पुष्पे भरा, आमादेर एइ वसुंधरा
ताहार माझे आछे देश एक सकल देशेर सेरा
से जे स्वप्न दिये तैरी, से जे स्मृति दिये घेरा।"

"धन-धान्य और पुष्प से हमारी यह पृथ्वी है पूर्ण, जिसमें एक देश है सभी देशों से श्रेष्ट—जिसे स्मृतियां घेर रखी हैं और जो सपनों से बना है।")

उनकी कविताएं संग्रह के रूप में प्रकाशित हुई थीं "आर्यगाथा"— दो खंडों में (1882-1893), "आषाढ़े" (1898), मन्द्र (1902), "आलेख्य" (1907), और "त्रिवेणी" (1912)

बोध प्रश्न

16) बंकिमयुग के चार बांगला साहित्यकारों के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

17) बंकिमचंद्र ने किस पत्रिका का प्रकाशन किया था?

.....

.....

18) विद्यासागर ने बांगला साहित्य किस तरह सरल बनाने में सहायता की?

.....

.....

.....

19) विद्यासागर के दो व्याकरण रचनाओं के नाम लिखिए।

.....

.....

अभ्यास

4) लगभग दस-बारह पंक्तियों में विद्यासागर के सामाजिक कार्यों के बारे में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

बोध प्रश्न

20) रिक्त स्थानों में उचित शब्द रख कर वाक्य पूर्ति कीजिए।

क) उमेशचंद्र मित्र ने विद्यासागर से प्रभावित होकर ..... नामक नाट्क की रचना की।

ख) गिरीशचंद्र ने ..... नामक पौराणिक नाटकों की रचना की।

ग) गिरीशचन्द्र ने दहेज प्रथा से संबंधित ..... नामक नाटक की रचना की।

घ) क्षीरोदप्रसाद ने ..... के विरुद्ध एक नाटक की रचना की।

ङ) द्विजेन्द्रलाल राय की दो काव्य संग्रह है ..... तथा .....।

5.8 सारांश

- बांगला भाषा भारत की प्रमुख भाषाओं में से एक है। इस भाषा का साहित्य अत्यधिक पुराना तथा उच्चकोटि का है। आप प्राचीन, मध्य तथा आधुनिक बांगला साहित्य के बारे में बता सकते हैं।
- राजाराम मोहन राय भारत के नवजागरण के क्षेत्र में पितामह माने जाते हैं। उन्होंने न केवल समाज सुधार का कार्य किया बल्कि बांगला साहित्य को एक नई दिशा दी। इसी प्रकार माईकेल मधुसूदन दत्त ने आडम्बरपूर्ण समाज विषयों को बदलने के लिए विद्रोह किया। साहित्य में नवीन विषयों का समावेश कर उसे नयी गति दी। आप इनके कार्यों का विश्लेषण कर सकते हैं।
- विद्यासागर का नाम भारतीय इतिहास में एक प्रमुख समाज सुधारक के रूप में विख्यात है उन्होंने विधवा विवाह आदि की शुरुआत की विभिन्न विषयों पर रचनाएं की तथा बांगला भाषा के व्याकरण की रचना की। आप उनके महत्वपूर्ण कार्यों का आकलन कर सकते हैं।
- बंकिमचंद्र, द्विजेन्द्रलाल राय, द्विजेन्द्रनाथ ठाकुर, आदि ने बंगाल के नवनिर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आप तत्कालीन बांगला साहित्य के महत्व को बता सकते हैं।

5.9 उपयोगी पुस्तकें

- चौधरी, नारायण 1983. महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर (अनु० गिरधर राठी) साहित्य अकादमी, दिल्ली। द्वितीय संस्करण।
- चौधरी, नारायण 1988. ईश्वरचन्द्र गुप्त (अनु० राजेश राहुल), साहित्य अकादमी दिल्ली।
- टैगोर, सौमेन्द्रनाथ 1989. राजा राममोहन राय (अनु० शुभा वर्मा), साहित्य अकादमी, दिल्ली। द्वितीय संस्करण।
- बनर्जी, हिरण्मय 1992. ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (अनु० शुभा वर्मा), साहित्य अकादमी, दिल्ली। चतुर्थ संस्करण।
- सेन, सुकुमार 1978. बंगला साहित्य का इतिहास (अनु० निर्मला जैन), साहित्य अकादमी, दिल्ली।
- सेनगुप्त, एस० सी० 1991. बंकिम चन्द्र चटर्जी (अनु० श्रवण कुमार) द्वितीय संस्करण। साहित्य अकादमी दिल्ली।

5.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) 2) देखें भाग 5.1 3) देखें उपभाग 5.2.1

बोध प्रश्न

4) देखें उपभाग 5.2.2.

अभ्यास

1) देखें उपभाग 5.2.2

बोध प्रश्न

5) 6) 7) देखें उपभाग 5.2.2

अभ्यास

2) देखें उपभाग 5.3.3

बोध प्रश्न

9) 10) 11) देखें भाग 5.4

अभ्यास

3) देखें भाग 5.4

बोध प्रश्न

12) 13) 14) 15) देखें भाग 5.4

बोध प्रश्न

16) 17) 18) 19) देखें भाग 5.5

अभ्यास

4) देखें उपभाग 5.4.2

बोध प्रश्न

20) देखें भाग 5.7

इकाई 6 बांगला साहित्य-II

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 पृष्ठभूमि

6.3 रवीन्द्रनाथ ठाकुर
- 6.3.1 कवि परिचय
- 6.3.2 रचनाएँ

6.4 रवीन्द्र साहित्य
- 6.4.1 राष्ट्रीय चेतना
- 6.4.2 सामाजिक चेतना

6.5 साहित्यिक विशेषताएँ
- 6.5.1 विषयवस्तु
- 6.5.2 भाषा का प्रयोग

6.6 काव्य वाचन
- 6.6.1 भारत तीर्थ
- 6.6.2 प्रश्न "संचयिता" के "परिशेष" से
- 6.6.3 आत्मत्राण "संचयिता" की "गीतांजलि" हो
- 6.6.4 निर्झरेर स्वप्न भंग

6.7 गद्य वाचन
- 6.7.1 हिमालय यात्रा (निबंध)
- 6.7.2 काबुलिवाला (कहानी)

6.8 सारांश

6.9 उपयोगी पुस्तकें

6.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

6.0 उद्देश्य

बांगला साहित्य से संबंधित यह दूसरी इकाई है। इकाई में बांगला ही नहीं बल्कि संपूर्ण भारतीय साहित्य के गौरव विश्वकवि रवीन्द्रनाथ का अध्ययन कराया जाएगा। इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- उन्नीसवीं सदी में उभरी नवजागरण की पृष्ठभूमि को बता सकते हैं,
- उन परिस्थितियों का आकलन कर सकते हैं, जिनमें रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे कवि का जन्म हुआ,
- विश्वकवि की जीवनी तथा रचनाओं के बारे में बता सकते हैं,
- अपनी रचनाओं से कवि ने किस प्रकार बंगाल एवं भारत के राष्ट्रीय एवं सामाजिक उत्थान में सहायता की उसे बता सकते हैं, तथा
- विश्वकवि की कविता एवं गद्य का वाचन करेंगे।

6.1 प्रस्तावना

ऐच्छिक पाठ्यक्रम–05 "आधुनिक भारतीय साहित्य" राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण" के दूसरे खंड की यह दूसरी इकाई अर्थात इस पाठ्यक्रम की सातवीं इकाई है। यह इकाई बांगला साहित्य के प्रमुख कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर पर आधारित है। इसमें मुख्य रूप से इस कवि की जीवनी तथा उनके साहित्यिक कार्यों का अध्ययन कराया जाएगा। रवीन्द्रनाथ के आगमन के समय भारत की राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन हो रहा था। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने सामाजिक सुधार के लिए कार्य करना शुरू कर दिया था। जिन कार्यों से भारतीय समाज की अवनति हो रही थी, उन्हें दूर करने के प्रयास किए जा रहे थे। प्राचीन गौरव गाथा के गायन के साथ नए सामाजिक मूल्यों की स्थापना हो रही थी। दूसरी ओर देश की राजनीतिक स्थिति में भी बदलाव शुरू हो गया था। अंग्रेजों की शोषण नीति से भारतीय समाज उबलने लगा था। ऐसे ही समय में कवि रवीन्द्रनाथ ने अपनी साहित्यिक रचनाएं शुरू कीं। उनके घर का वातावरण सुसंस्कृत एवं साहित्यिक चर्चाओं से पूर्ण था। बांगला भाषा साहित्य को उन्होंने एक नया मोड़ दिया। परंपरा से चली आ रही प्रवृत्तियों से हटकर नवीनता की शुरूआत की। पश्चिम एवं पूरब की साहित्यिक गतिविधियों को उन्होंने अच्छी प्रकार परखा। किंतु उनकी प्रतिभा केवल परखने तक सीमित नहीं रही। साहित्य के द्वारा उन्होने मानवता का संदेश दिया। प्रकृति से प्रभावित होकर उन्होंने अनुपम काव्य रचनाएं की। नए सामाजिक मूल्यों की प्रतिष्ठा के लिए गद्य-पद्य रचे। बांगला साहित्य को उन्होंने इतना समृद्ध एवं ऊंचा उठाया कि उन्होने नोबल पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इस सम्मान को पाने वाले वे प्रथम भारतीय थे। इस प्रकार भारतीय साहित्य के गौरव को उन्होंने बहुत ऊंचा उठाया। पाठ में हम इन्हीं महान कवि का अध्ययन करेंगे। आइए सर्वप्रथम उस समय की पृष्ठभूमि को संक्षेप में जाने।

6.2 पृष्ठभूमि

भारतीय नवजागरण के इतिहास में राजा राममोहन राय से लेकर विद्यासागर की जो परंपरा उन्नीसवीं सदी ने हमें दी थी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर "टैगोर" के नाम से प्रख्यात। उसी की एक अनमोल उपज है। उनकी कविता तथा उनके असंख्य गद्य लेखन में इस जागरण की छवि पाई जाती है। विद्यापति, चैतन्य और कबीर-मीरा की भक्ति-परंपरा जैसे उनकी रचनाओं मे समा गई थी, वैसे ही आधुनिक विश्व-साहित्य के सभी मुख्य प्रवृतियों की प्रतिक्रिया उनमें पाई जा सकती। एक अचेतन जाति को कठिन निद्रा से जगाने का गुरु दायित्व उन्होंने अपने कंधों पर तब से ले लिया जब उनकी उम्र इस गुरभार की तुलना में काफी नाजुक थी। तब ही उन्होंने लिखा था:

"लोहा कठिन, कठिन निद्रा में सुप्त था वह अवचेतन
मैंने उसे जगाया रे (उसकी नींद भगायी रे)
अर्बुद–युग की अंधनिशा मे बंद था वह संगोपन
उसका जोर जताय रे (उसकी शक्ति जगायी रे)"

यह वही कवि है, जिनकी वाणी से स्वाधीनता के सभी सेनानी प्रेरणा पाते रहे हैं, चाहे वह ऋषि अरविंद जैसे ज्ञानयोगी हो। या स्वामी विवेकानंद की तरह कर्मयोगी। अधोर की वह पुकार–"यदि तोर डाक शुने केउ ना आसे' तबे एकला चलो रे" उपनिषद की वाणी "चरैवेति चरैवेत" की ही पुनरावृत्ति थी, उसी का पुनर्कथन था–पर यहां उसकी पृष्ठभूमि कुछ और थी। उनका ध्यान इस बात पर लगा रहा कि जो प्रगति पश्चिमी देशों को मिली और जिस कठिन श्रम और दुर्लभ गुणों के कारण वह मिली, भारतीय जनता उससे न चूके। प्रगति की उस परीक्षित पथ पर ओर कोई चले न चले, मन मोहस और दृढ़ एकाग्रता के लिए भारत को उस जागृति की ओर आगे चलते जाना ही

पड़ेगा। निर्भय-चित, उन्नत-मस्तक और मुक्त ज्ञान की तलाश में चल पड़े एक भारत का सपना देखा था उन्होंने। इसलिए बीसवीं सदी के आरंभ में ही ऐसे भारत के निर्माण का आह्वान किया था।

उन्होंने भारत के अधिवासियों को विश्व की ओर देखने को कहा अवश्य था, जब उन्होंने लिखा–

"चारो ओर विशाल विश्व यह–
कण-कण मुझको खींचता।
सारा जगत द्वारा खुलवाला,
मुझे प्यार से सींचता

पर उन्होंने यह भी कहा है कि इस देश के कण-कण में सौंदर्य है, आनंद है सभी जगह और लघुतम कण के रूप में जिसे हम जानते हैं। उसे भी तुच्छ नहीं करना चाहिए क्योंकि वह छोटा अवश्य है' पर उसकी लघुता मिथ्या है। अपने देश और अपने युग के प्रति वह आभार व्यक्त करते हैं–

"जो भी हुआ, सुधन्य हुआ हूं," इसलिए :–

"धत्य धन्य रे अनंत युग,
धन्य धन्य मेरी धरणी ।
धन्य-धन्य मिट्टी, सुदूर
हतारकाधन्य कांचन-वरणी।
सभी कहीं उसकाही पारावार,
जिसमें विपल भुवन-धरणी।
जो भी हुआ, सुधन्य हुआ हूं,
धन्य धन्य मेरी धरणी ।"

कविता ही विश्वकवि रवीन्द्रनाथ की पृथ्वी नहीं थी। हालांकि राजनीति में उन्होंने कभी प्रवेश नहीं किया। देश-निर्माण के प्रयास में उनका योगदान आज भी स्मरणीय है। विशेषकर दो ऐसे विषयों से वह अपने आपको जुड़े हुए महसूस करते थे और अपनी ओर से उनके लिए उन्होंने यथासंभव किया भी। वे थी : पल्ली-सेवा और शिक्षा। सभ्यता और प्रगति के लिए उन्होंने सदा पूर्व और पश्चिम के सार्थक समन्वय की बात ही कही।

6.3 रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की जीवनी और उनकी कविता के बारे में लिखते हुए आचार्य शिशिर कुमार घोष ने संचेत किया था कि उनमें आश्चर्य गुण तथा प्रायः स्वविरोधी तत्व इतने थे कि उनकी कृतियों और घटनाओं के ढेर में उलझकर कोई भी जीवनीकार उस रवीन्द्रनाथ को ढूंढ़ता ही रह जाएगा जिन्होंने उस नव जागृति का भित्ति-प्रस्तर स्थापन किया जिस पर आज आधुनिक भारत खड़ा है। वह इसलिए कि उनका तथा उनकी असंख्य रचनाओं का जड़ जहां एक तरफ वेद-उपनिषद–पुराण तक जाते हैं, दूसरी ओर पश्चिमी ज्ञान और साहित्य के अनमोल रत्न को भी उन्होंने जाना और पाया है उनसे रस सींचने के लिए। उनकी रचनाओं ने साहित्य के सामान्य मान को असामान्य दर्जा अवश्य दिलाई है लेकिन कभी वे उनकी विद्वता की प्रकाशिका नहीं बनी। जो उनके अनमोल शब्दों का गाने के लिए ही बनें हैं, उनका भाषण के लिए प्रयोग करना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था। और यही कारण था कि उनकी गीतों में आम आदमी अपनी हर व्यवस्था, प्रत्येक वेदना तथा सफलता की प्रतिच्छवि पाता है–तब भी और आज भी।

6.3.1 कवि परिचय

रवीन्द्रनाथ का जन्म 7 मई, 1861 ई. में जोड़ासाँको के ठाकुर परिवार में कलकत्ते के "[illegible]" के पास "[illegible]" देवेन्द्रनाथ ठाकुर के चौदहवीं संतान के रूप में

हुआ था। देवेन्द्रनाथ के पिता "प्रिंस" द्वारकानाथ ठाकुर मात्र धनशाली व्यक्ति ही नहीं थे, उनकी प्रतिष्ठा और ख्याति भी ईर्ष्याजनक थी। जैसे राजा राममोहन राय उनके खास मित्र थे, वैसे ही रान विक्टोरिया भी उन्हें भलीभांति जानती थी। हालांकि ठाकुर परिवार की गिनती सबसे धनी परिवारों में होती थी। रवीन्द्रनाथ और उनके सभी भाई-बहन उनके पिता देवेन्द्रनाथ के आदर्शानुसार सामान्य मध्यवित्त परिवार के बच्चों की तरह ही पल रहे थे। रवीन्द्रनाथ चूंकि सबसे छोटे थे अपने भाई-बहनों में उन्हें अपनी मां का संग अधिक नहीं प्राप्त हो पाया—कारण उस विशाल परिवार की देखरेख में वह सदा व्यस्त रहती थी। पर उनको अपने बड़े भाई-बहनों का प्यार और दुलार काफी मात्रा में प्राप्त था। कविता लेखन तथा गीत-रचना इन सभी कार्यों में उन्हें उनका प्रोत्साहन तथा सहारा मिला। पर उन्होंने अपनी "जीवन-स्मृति" में लिखा था उस नौकरशाह के बारे में जिसकी कगकड़ी निगरानी में वह बड़े हुए। शैशव में गृहशिक्षकों के अलावे कुश्ती के लिए भी उन्हें शिक्षक प्राप्त हुए। पर साहित्य का सच्चा पाठ उन्हें अपने पिस्वर के बढ़े-बूढ़ों के "कृत्तिवासी रामायण" तथा काशीराम दास के "महाभारत" और दशरथी राय तथा मधु खान जैसे कवियों की कविताओं के पाठ-आवृत्ति से ही मिला था। उनके अग्रज द्विजेन्द्रनाथ ने उन्हें तब कालिदास के "मेघदूतम्" का पाठ कर सुनाया था, जब वह उस अमर काव्य की स्वच्छन्द गति तथा उसके छंदालंकार के अनुसरण का ही आस्वाद ले सकते थे। विद्यालय में दाखिला तो उनका हुआ, पर बहुत शीघ्र ही उनकी पढ़ाई छूट गई। इसके बाद उनका विद्याध्ययन का कार्य घर में ही चलता रहा।

रवीन्द्रनाथ ने बारह वर्ष के उम्र में ही जयदेव की रचनाएं तथा चंडीदास-विद्यापति की पदावली पढ़ ली थी। उन्होंने तब तक बंकिम चंद्र के उपन्यासों को भी पढ़ डाला। माइकेल मधुसूदन के काव्य से वह प्रभावित नहीं हुए। आधुनिक युग के बंगाल कवियों में उनको बिहारीलाल चक्रवर्ती की कविताएं, विशेषकर "वंगसुन्दरी" और "शारदामंगबल", बहुत ही अच्छी लगीं। उनके ज्येष्ठ द्विजेन्द्रनाथ तथा पितृदेव देवेन्द्रनाथ का भी उन पर काफी प्रभाव पड़ा। खासकर उनके जातीयता-बोध का टैगोर पर काफी असर पड़ा। बारह वर्ष की उम्र में उन्हें देवेन्द्रनाथ ने हिमालय-भ्रमण में अपने साथ लेकर उत्तर भारत की बहुत सी जगहों का सेर कराया। विभिन्न भाषा और संस्कृति के साथ यह उनका पहला प्रत्यक्ष परिचय था। इसलिए 1873-75 ई. के दौरान उनकी पहली प्रकाशित कविताओं में हिमालय की छवि बारबार आते दिखाई देती है।

वैष्णव पदावली का तरूण टैगोर पर प्रभाव इतना अधिक पड़ाया कि इसी समय उन्होंने "भानु-सिंह" ("भानु = रवि) के नाम से विद्यापति के अनुकरण में भानुसिंहेर पदावली की रचना की थी। जिसका मुद्रण "भारती" में पहली बार 1877 ई. में हुआ था। इसके अगले वर्ष उनके द्वितीय ज्येष्ठ भ्राता सत्येन्द्रनाथ उन्हें अहमदाबाद ले गये। वे स्वयं प्रथम युग के उच्चपदस्थ सरकारी अफसरों में एक थे। उन्होंने रवीन्द्रनाथ को अपने परिवार के साथ इंग्लैण्ड भेज दिया। ताकि वे कानून की शिक्षा प्राप्त कर बेरिस्टर के रूप में लौट सकें। पर वे 1880 ई. में शिक्षा पूरी किए बिना भारत लौट आए। पर उन्होंने वहीं जो कुछ देखा, जिन प्रख्यात अध्यापकों को सुना उससे वे विलक्षण प्रभावित थे। पर शिक्षण कक्ष की चारदीवारी में वह बंधे रह जाने वालों में से नहीं थे।

विदेश में प्रवास के दौरान ही टैगोर की कविताओं में—भाव, भंगिमा और भाषा—तीनों में काफी परिवर्तन आ गया था। इसलिए उनकी पहली पुस्तक "संध्या संगीत" (1882 ई.) जब छपी, इसलिए युवा कवि होते हुए भी वह एक स्वतंत्रता के अधिकार के रूप में उभरे। पर इन कविताओं में केवल विषाद को ही स्वर था। पर विषण्णता की यह छाया उनके अगली काव्य-संकलन "प्रभात-संगीत" (1883 ई.) के मुद्रण के साथ ही दुःस्वप्न की रात की तरह कवि की रचनाओं के ऊपर से हट गयी।इसके बाद उन्हें फिर अपने जीवन की व्यर्थता या असफलता की और लौटकर देखने की आवश्यकता नहीं पड़ी। इसी समय 9 दिसंबर, 1883 ई. में रवीन्द्रनाथ की शादी कर दी गई। टैगोर परिवार की ही जमीन्दारी में कर्मरत एक अधिकारी की कन्या मृणालिनी के साथ। इसके ठीक छह महीने के अंदर उनकी भावी और उनके तरूण कवि-जीवन की

प्रेरणा-स्वरूपिनी कादंबरी देवी ने आत्महत्या कर चल बसीं। इससे रवीन्द्रनाथ को जो धक्का पहुंचा वह उनके व्यक्ति-जीवन के लिए तो तीव्र वेदनाकी बात अवश्य थी, पर उनकी कविता की व्याप्ति तथा गंभीरता के लिए शायद इस आघात की आवश्यकता थी।

कुछ दिन तक टैगोर ने ब्राह्म समाज के सचिव के रूप में काम किया। इस भूमिका को निभाते हुए उन्होंने हिन्दू धर्म के कट्टर प्रवक्ताओं के विरोध में अपनी लेखनी का धारण किया। पर इसी समय कलकत्ते की प्रबुद्ध महिलायें का एक संगठन "सखी-समाज" ने उन्हें अभिनय के लिए पुरुष-विवर्जित एक नाटक लिखने के लिए अनुरोध किया। इसी समय उन्होंने अपने नृत्यनाट्य "मायार खेला" की रचना की। आगे चलकर टैगोर की रचनाओं में इस धारा ने अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया।

इसी समय जमींदारी का कार्यभार संभालने के लिए उनको शहर से दूर गांव में काफी दिन बितना पड़ा। इस दौरान उन्हें नावों पर भी काफी भ्रमण करना पड़ा। उनकी कई श्रेष्ठ कविताएं इसी समय सामने आई। विशेषकर उनकी पुस्तक "सोनार तरी" (1893 ई.) की रचना इसी समय हुई थी।

मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा के पक्ष में इस समय उन्होंने अचूक तर्क देते हुए "शिक्षार हेरफेर" जैसे महत्वपूर्ण निबंध की रचना की। यूरोपीय प्रशासकों की त्रुटि तथा उनकी आदर्शहीनता को भी उन्होंने नहीं बख्शा। इस दौरान उन्होंने व्यवसाय वाणिज्य की ओर भी अपने दो अनभिज्ञ भतीजों के साथ मिलकर रुचि दिखाई। लेकिन वह धंधा चला नहीं। जैसे नहीं चली उनकी पत्रिका "साधना"।

इसके बाद के कई वर्ष में उन्होंने लघु कविता, काव्य तथा कहानियों के विषय में कई परीक्षण किए जिसके फलस्वरूप हमें जिस तरह ऐतिहासिक और पौराणिक विषयों पर रचनाएं मिली, उसी तरह "चैताली" (1988 ई.) और कणिका (1988 ई.) जैसी सशक्त कविता-पुस्तकें भी प्राप्त हुई। जातीयतावाद की भावना की प्रतिच्छवि इस दौरान की और कई पुस्तकों में भी मिलती है। पर "नैवेद्य" (1901 ई.) में आकर उन्होंने आपने देशवासियों के अंध-विश्वास और कुसंस्कार पर प्रहार ही नहीं किया, नवचेतना और नवीन जागरण की आवश्यकता की ओर भी इशारा किया था। इसी समय, दिसंबर 1901 ई. में टैगोर ने शांतिनिकेतन में अपनी शिक्षापीठ की स्थापना की। उसके अगले वर्ष, 1902 ई. में, उनकी पत्नी का देहांत हुआ। उनकी स्मृति में उन्होंने "स्मरण" (1903 ई.) की रचना की तथा मातृहीन शिशुओं को नजर में रखकर "शिशु" (1903 ई.) की भी रचना की थी।

यह समय टैगोर के व्यक्तिगत जीवन के लिए बड़ा ही दुःखद था। उनकी पत्नी के निधन के एक वर्ष की भीतर ही उनकी पुत्री चल बसी। उसके चार वर्ष के भीतर ही 1907 ई. में उनके कनिष्ठ पुत्र का भी निधन हुआ। शांतिनिकेतन के संचालन में भी उन्हें अत्यधिक आर्थिक कठिनाइयों हो रही थीं। कई प्रतिभाशाली अध्यापक विद्यालय को छोड़कर चलेंगे और उनमें से प्रायः सर्वश्रेष्ठ (श्री सतीशचंद्र राय) का तो निधन ही हो गया। विद्यालय को कही और ले जाना पड़ा। इसके बाद का जीवन इतिहास बंगभंग आंदोलन तथा स्वदेशी आंदोलन के साथ ओतप्रोत रूप से जुड़ा हुआ था। उनके गीत इतने जनप्रिय हुए कि सभी की जुबां पर वही गीत थे।

टैगोर ने इसी समय "गीतांजली" (1901 ई.) की रचना की थी जो कि आगे चलकर (1913 ई. में) उनको तथा उनके देश को साहित्य के लिए नोबल पुरस्कार के सम्मान से विभूषित किया। इसके अगले वर्ष उनकी पचासवीं सालगिरह पर उनकी आत्मजीवनी "जीवन-स्मृति" का प्रकाश हुआ। अब उनकी धर्म-चिंता में भी काफी परिवर्तन नजर आया। वह अब केवल ब्राह्म धर्म तथा हिन्दु-दर्शन की आलोचना तक ही सीमित नहीं रहे। अपने विद्यालय में उन्होंने ईसामसीह पर भी भाषण दिया। अब जो जागृति उनमें आ रही थी, वह सर्वधर्म के समन्वय से ही आ सकती है। तब ही, 1911 ई. में कलकत्ते में हुए कांग्रेस के अधिवेशन के लिए उन्होंने "जन गण मन" की रचना की, जिसमें उनके मन में उभरती हुई समग्र भारत की छवि का परिचय मिलता है।

इसी समय स्वास्थ्य ठीक न रहने के कारण उनका इंग्लैण्ड का सफर स्थगित रखना पड़ा। रोगमुक्ति के लिए व विश्राम करने के हेतु शिलाईदह गये और वहीं उन्होंने "गीतांजली" का अंग्रेजी में अनुवाद किया। अंत में जब वह मई 1912 में इंग्लैण्ड पहुंचे तो उन्होंने वीलियम रॉदेनस्टाइन को यह पांडुलिपि सौंप दी। वहां से भारतीय संस्कृति, धर्म तथा अंतर्जातीय संबंध के बारे में भाषण देने के लिए वह अमरीका गये। जब तक वह भारत में लौटे (नवम्बर 1912 ई. में) तब तक उनके नोबल पुरस्कार के चयन का संवाद पहुंच चुका था।

गांधी जी से टैगोर की पहली प्रत्यक्ष मुलाकात शांतिनिकेतन में 6 मार्च 1915 को हुई। इससे पहले वे गांधी जी के दक्षिण अफ्रीका में किए सत्याग्रह के बारे में सुन चुके थे। इस साक्षात्कार से दोनों मंत्री के बंधन में बंध गये। इसके अगले साल वह अमरीका तथा जापान के सफर में गये। इस समय उनका स्वर अंतर्राष्ट्रीयता के पक्ष में तथा मात्र जातीयतावाद की आलोचना में गूंज उठा। वे जातीयता के विरोधी नहीं थे, पर देशात्मबोध के साथ-साथ मानवताबोध का महत्व उनके लिए अस्वीकार्य नहीं था। 13 अप्रैल 1919 में जब जलियांवाला बाग का कांड हुआ तब उन्होंने अपनी नाईट की उपाधि को त्याग दिया। इसके फलस्वरूप जब उन्होंने 1920 ई. में फिर इंग्लैंड गये, उनके प्रति अंग्रेज बुद्धिजीवी तथा आम जनता दोनों ने अपनी नाराजगी व्यक्त की। इस समय वे शांतिनिकेतन को मात्र एक विद्यालय के रूप में न रख कर उसे विश्वविद्यालय बनाने के लिए सोच रहे थे। इस योजना के लिए वे अर्थसंग्रह भी करना चाहते थे। लेकिन अमरीका में भी उनका सफर उतना प्रभावशाली नहीं रहा, हालांकि जर्मनी, स्वीटजरलैंड और फ्रांस में उनकी काफी अभ्यर्थना हुई। इन देशों में उनकी साठवीं वर्षगांठ भी धूमधाम के साथ मनाई गई। जब वह जुलाई 1921 ई. में भारत लौटे, गांधीजी का असहयोग आंदोलन शुरू हो चुका था। दिसंबर तक विश्वभारती की प्रतिष्ठा हो गई और ग्रामीण पुनर्गठन तथा पुनर्जागरण का काम भी जोर-शोर से शुरू हो गया। विदेशों से कई अध्यापक विश्वभारती में पढ़ने के लिए आये। इन सभी बातों के लिए टैगोर को धनराशि तथा अनुदान संग्रह करना पड़ रहा था जो काफी परिश्रम का काम था। इसी दौरान उन्होंने चीन-भ्रमण किया और दोनों महान संस्कृतियों के बीच संयोग-संबंध का संस्थापन किया। वह पेरू जाने के लिए यूरोप होकर रवाना भी होने को थे वहां की स्वाधीनता समारोह में शरीक होने के लिए, लेकिन बीच में ही अस्वस्थ हो गये। बाध्य होकर प्रख्यात स्पेनीय कवित्री और टैगोर की कविताओं के प्रति समर्पिता विक्टोरिया ओकाम्पो के साथ उन्हें काफी समय बिताना पड़ा, जिसकी प्रतिक्रियास्वरूप "पूरबी" की अमर प्रेम कविताएं लिखी गई थी।

मई 1925 में शांतिनिकेतन में टैगोर और गांधी जी के बीच "चरखा" और "स्वराज" के बारे में काफी बातें हुई। टैगोर ने इनके बारे में अपनी राय दो पृथक निबंधों के द्वारा व्यक्त की। पूर्ववग का भ्रमण उनके लिए काफी आनंददायक रहा। लेकिन लौटते ही उन्हें दंगा का सामना करना पड़ा, जिसे देखकर वे अत्यंत दुःखी हुए। वे इटली, नॉरवे, जर्मनी, और मध्य यूरोप के भ्रमण के बाद जब दिसंबर 1926 ई. में घर लौटे तब तक अशांति की आग बुझी नहीं थी। उस मारदंगे में स्वामी श्रद्धानंद जैसे महात्मा भी मारे गये।

इसके बाद सुनीति कुमार चटर्जी और पाँच विद्वानों को साथ लेकर सुदूर प्राच्य के साथ भारत के संबंधों को दृढ़ बनाने के लिए सिंगापुर, मालय, जावा, बोर्णिओ, सुमात्रा तथा इंडोनेशिया में गये। बाद में "नेशनल काउंसिल ऑफ एजुकेशन" के आमंत्रण को स्वीकार कर वे कैनाडा भी गये 1930 ई. में उन्होंने ऑक्सफोर्ड में हिबर्ट भाषणमाला का आमंत्रण ग्रहण कर मानव-धर्म पर बोला जिसमें उनकी मनोभावना तथा उनके दर्शन की झांकी मिल सकती है।

तब तक टैगोर ने चित्रशिल्पी के रूप में भी अपने आप को प्रकाशित प्रतिष्ठित किया था। इस दौरान फ्रांस तथा जर्मनी में उनके अंकन की प्रदर्शनी का आयोजन किया गया तथा तभी बर्लिन में उनका वार्तालाप आइनस्टाइन के साथ हुआ। उनकी रूस देश के भ्रमण की डायरी पढ़कर पता

था। जब वह इसके बाद अमरीका में अपने चित्र प्रदर्शन के बाद भारत लौटे थे तब वह सत्तर वर्ष के थे और सारे देश में उनकी वर्षगांठ मनाने की जो सिलसिला आज भी चला आ रहा है। उसकी शुरुआत हुई। ईरान के रेजा शाह पहलवी के आमंत्रण में उनकी सत्तरवीं साल गिरह वहां भी मनाई गई। वहां से ईराक होकर जब वह भारत वापस आये तो उन्हें पता चला कि उनका एकमात्र पिता का जर्मनी में देहांत हो गया। यह उनके लिए अत्यंत दुःखद था।

इस बीच में भारत का राजनैतिक मानचित्र काफी बदल चुका था। लंदन का दूसरा राउंड टेबुल अधिवेशन व्यर्थ हो चुका था और गांधी-वीलिंगडन समझौते का उल्लंघन तो हो ही रहा था, अब पूणे में गांधी जी ने आमरंण अनशन शुरू कर दिया था। सारे देश का वातावरण काफी अस्त-व्यस्त था। इसी दौरान टैगोर ने शांतिनिकेतन के लिए देश के अनेक जगहों का भ्रमण किया और उनके व्याख्यान भी दिये। इसी समय पंडित जवाहर लाल की भी टैगोर के साथ काफी नजदीकी का संबंध बना। तब उनकी कन्या इंदिरा भी शांतिनिकेतन में गुरुदेव की छात्रा थी। 1936 ई. में वे जब पुनः वृद्धावस्था में भी विश्वभारती के लिए आर्थिक सहायता मांगने पटना, इलाहाबाद तथा दिल्ली होकर लाहौर की यात्रा पर निकले तो गांधी जी की सहायता से उन्हें काफी राशि मिली और वह वापिस आ गये। उसके अगले वर्ष उन्होंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के समावर्तन समारोह में सर्वप्रथम अंग्रेजी में न बोल कर बांगला में भाषण देकर एक नयी परंपरा की शुरूआत की। उसी वर्ष जवाहरलाल के द्वारा उन्होंने विश्वभारती में "चीना भवन" का उद्‌बोधन कराया जिसके लिए चीन से उनके आमंत्रण को स्वीकार कर तान यान शान उसके निदेशक बन कर आये।

टैगोर का स्वास्थ्य भी इसके बाद से ही काफी दुश्चिंताजनक रहता था। बातें करते-करते वे अचानक बेहोश हो गये और जब उन्होंने होश संभाला, उन्हें ऐसा लगा कि मानों वह मौत की घाटी से वापिस आये हैं। तभी उन्होंने "प्रांतिक" (1938 ई.) की रचना की जिसमें उनकी इस अनुभूति के बारे में पता चलता है। लेकिन इसके ठीक पहले ही अपने श्रम और क्लांति के दौर से निकलकर उन्होंने बच्चों के लिए दो कविता-पुस्तकें लिखी थी जो "खाप-छाड़ा" (1937 ई.) और "छड़ाड़ छवि" (1937 ई.) के नाम से छपी। चीन और जापान के बीच जों युद्ध छिड़ गया, उससे वह काफी दुःखी थे, जिसका प्रभाव "प्रांतिक" में मिलता है। जब पहली सितंबर 1939 ई. में द्वितीय विश्वयुद्ध का आरंभ हुआ, टैगोर ने शांतिनिकेतन के इस मानवीय संघात तथा मानव की खुद-बुलाई विपत्ति पर अपनी नाराजगी व्यक्त की थी।

अप्रैल 1940 ई. में टैगोर से मिलने गांधीजी शांतिनिकेतन आये थे। टैगोर ने उन्हें "विश्वभारती" के संरक्षण के बारे में अनुरोध करते हुए एक पत्र दिया। सात अगस्त को ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.लिट. की उपाधि देकर सम्मानित किया। उन्हें इस समय स्वास्थ्योद्धार के लिए पहले कालिम्पोंग तथा बाद में मंपू में ले जाया गया। अस्वस्थ होते हुए भी उन्होंने कई पुस्तकें लिखीं। 1940 ई. में "रोगशय्यायाय" तथा 1941 में छपी "आरोग्य" में यह कविताएं छपी थी। उनकी अंतिम कविताओं का संकलन "जन्मदिन" (1941 ई.) के बाद भी उन्होंने अपने निधन के कुछ दिन पूर्व तक कविताएं रची थी जिन्हें किसी और ने श्रुतलेखन के रूप में लिख डाला था। 7 अगस्त 1941 ई. के दिन वे चल बसे, लेकिन उसके दस दिन पहले 27 जुलाई को उन्होंने एक छोटी-सी कविता के माध्यम से जैसे अपने ही बारे में प्रश्न करते हुए पृथ्वी से पूछा कि वह कौन थे, और क्या था उनका सच्चा परिचय। उनकी ये अंतिम पंक्तियां इसी पहेली को छंद में बाँता रही थी :

प्रथम दिनेर सूर्य
प्रश्न करेछिलो
सत्तार नूंतन आविर्भाव
के तुमि।
मेलेनि उत्तर।
वत्सर वत्सर चले गेलो,

दिवसेर शेष सूर्य
शेष प्रश्न उच्चरिलो पश्चिमसागरतीरे
निस्तब्ध संध्याय
के तुमि।
पेलो ना उत्तर।

"प्रथम दिन के सूर्य ने सत्ता के आविर्भाव को देखकर उसे सवाल किया था– कौन हो तुम, लेकिन उसे कोई उत्तर नहीं मिला था। बहुत युगों के बाद दिवस के अंतिम सूर्य ने भी अपना अंतिम सवाल पूछा पश्चिम सागर के किनारे स्तब्ध संध्या के समय– कौन हो तुम तब भी उत्तर नहीं आया उभर।"

एक मनुष्य के जीवन में इतनी अनेक प्राप्तियों तथा उपलब्धियों कैसे संभव हो सकती हैं, इस पहेली का सही उत्तर आज भी मिलना मुश्किल ही है।

बोध प्रश्न

1) क) रवीन्द्रनाथ का जन्म ..... ई. में हुआ था।

ख) देवेन्द्रनाथ ठाकुर रवीन्द्रनाथ के ..... थे।

ग) द्वारकानाथ ठाकुर रवीन्द्रनाथ के ..... तथा उन्हें ब्रिटेन की ..... जानती थी।

घ) रवीन्द्रनाथ देवेन्द्रनाथ की ..... संतान थे।

ङ) रवीन्द्रनाथ चण्डीदास तथा विद्यापति की रचनाओं को ..... वर्ष की उम्र में ही पढ़ चुके थे।

च) हिमालय भ्रमण उन्होंने अपने ..... के साथ ..... वर्ष की अवस्था में किया था।

छ) विद्यापति तथा जयदेव के प्रभाव से उन्होंने ..... की रचना की।

ज) इंग्लैण्ड उन्हें ..... की शिक्षा के लिए भेजा गया था किंतु उसे ..... लौट आए।

झ) रवीन्द्रनाथ की पहली कविता संग्रह ..... थी।

एक-दो पंक्तियों में उत्तर लिखिए :

2) क) महिलाओं के संगठन के अनुरोध पर उन्होंने नाटक की रचना की। संगठन तथा नाट्य रचना का नाम था।

.....

.....

ख) जमींदारी के कार्यभार से भ्रमण के बाद जो अनुभव मिला उससे उन्होंने किस कविता संग्रह की रचना की।

.....

.....

ग) अपनी किस रचना में रवीन्द्रनाथ ने अंधविश्वास एवं संस्कार पर कठोर प्रहार किया।

.....

.....

घ) 1901 में रवीन्द्रनाथ ने किस स्थान तथा किस शिक्षा संस्था की स्थापना की?

.....

.....

ङ) किस वर्ष किस रचना में रवी[illegible]

च) 1911 ई. में रवीन्द्रनाथ ने एक महत्त्वपूर्ण गीत की रचना की। उस गीत का महत्त्व बताइए।

.....

.....

3) क) गांधी जी से रवीन्द्रनाथ की मुलाकात किस वर्ष और किस स्थान पर हुई थी।

.....

.....

ख) नाईट की उपाधि का त्याग रवीन्द्रनाथ ने क्यों किया?

.....

.....

ग) शांतिनिकेतन विद्यालय को विश्वविद्यालय का रूप देने के लिए रवीन्द्रनाथ ने क्या किया?

.....

.....

घ) अपने शिक्षा संस्था के लिए 1936 में उन्होंने किन-किन स्थानों का भ्रमण किया?

.....

.....

ङ) बच्चों से संबंधित रवीन्द्रनाथ ने किन दो कविता संग्रह की रचना की?

.....

.....

च) रवीन्द्रनाथ का देहावसान किस वर्ष हुआ?

.....

.....

अभ्यास

1) छह पंक्तियों में रवीन्द्रनाथ द्वारा शिक्षा संस्था से संबंधित कार्यों को बताइए।

.....

.....

.....

6.3.2 रचनाएं

रवीन्द्रनाथ की रचनाओ की संख्या इतनी अधिक थी और उनकी ख्याति, गंभीरता तथा विषय-विचित्रता इतनी अधिक थी कि उनका कोई वर्गीकरण करना सहज संभव नहीं है। प्रख्यात इतिहासकार आचार्य निहाररंजन राय ने उनकी कविताओं को इस तरह से विभाजित किया है:

1) अंकुरण तथा पवम पस्फुटन (1872-88 ई.)
2) परिपक्वता का परिणाम (1885-1990 ई.)
3) नैवेद्य के फल (1901-1913 ई.)
4) नीड़ और आकाश की कविताएं (1914-25 ई.)
5) नवीन पत्र-पुष्प-फल (1926-27 ई.)
6) दिवावसान का आलोक (1937-41 ई.)

ऐसा नहीं है कि इनकी रचनाओं के कालानुक्रमी वर्गीकरण से टैगोर की सृजनशीलता का सही परिचय मिल पाता है। परंतु जो लोग उनकी रचनाओ का विषय-निर्भर (या themetic) वर्गीकरण करने की कोशिश करते हैं– वह देखते हैं कि उन्होंने अपने घटना-बहुल वेदनाहमय जीवन की उपलब्धियों से सिंचित होकर कुछ विशेष प्रकार की रचनाएं तो लिखी हैं, पर उनके जीवन, काल और आसपास की घटनाओं से बिल्कुल असम्पृक्त लेखन भी उनके अनेक हैं जिन्हें इस तरह के वर्गीकरण से कुछ कर दिखाना कठिन है।

यह भी सही है कि टैगोर हालांकि "विश्वकवि" के नाम से जाने जाते हैं, वह मात्र कवि नहीं थे। कहानीकार और उपन्यास लेखक के रूप में भी वह उतनी ही ख्याति के अधिकारी थे, जितना यश उन्हें धर्म, संस्कृति तथा राजनीति विषयक अनेक निबंधों के रचयिता के रूप में मिली थी। एक नाटयकार ही नहीं, वह नाटक की एक विशेष शैली, नृत्यनाट्य के जनक थे। उनके गीत चाहे वह उन नाटकों के लिए लिखे गये हों, चाहे वैसे ही आज भी बांगला-भाषियों की जुवां पर हैं। केवल कविता रचना को ही लें तो उनमें भी वे कई तरह से शिखर पर पहुंचे– छंदालंकार के प्रयोग की निपुणता की दृष्टि से कहें, चाहे विषय-विविधता को देखें अथवा पूर्णांग काव्य तथा काव्य-नाटिकाओं को ही अगर लें– तुकांत शिशु-कविता, हाइकू तथा स्वच्छंद आधुनिक कविताओं में उनकी पारदर्शिता को अगर छोड़ भी दें तो हमें इतने प्रकार के रवीन्द्रनाथ मिलते हैं कि उनकी कृतियां वर्गीकरण के परे लगने लगती हैं। इसके ऊपर से संगीत, अभिनय तथा चित्रांकन में भी वह चोटी के कलाकार प्रमाणित हुए, जैसे शिक्षाव्रती के रूप में भी वे बेजोड़ निकले। शांतिनिकेतन तथा विश्वभारती की प्रतिष्ठा और उनके संचालन से जिसका प्रमाण मिलता है। भारत की राष्ट्रनीति : था जीवन दर्शन में भी उनका तथा उनकी रचनाओं के माध्यम से नवजागरण के ज्वार को ले आने में आधुनिक भारतीय साहित्य के भगीरथ तो वह थे ही।

रवीन्द्रनाथ की रचनाओं की प्रेरणा उनकी कथाओ और काव्य में जो उनके ध्येय हैं, उनके नाटकों के अनेक पात्र जिन्हें अपने गीत का नैवेद्य चढ़ाते हैं, जिनसे मन ही मन वार्तालाप करते हैं– अपने शब्दों में कवि ने उनके बारे में कहा है उनकी कविता "एबार फिराओ मोरे" में "वह कौन हैं, मैं नहीं जानता हूं। मैं उन्हें नहीं पहचानता हूं पर इतना अवश्य जानता हूं कि रात काली छाँह में भी मानवीयता की तीर्थयात्रा अनंतकाल से चली आ रही है और अनंतकाल तक चलेगी, आंधी तूफान और वज्रपात की उपेक्षा कर अपनी आत्मा के दीपक की लौ को झंझावात से बचाते हुए। मैं केवल इतना जानता हूं कि जागरण की उस आवाज को जो भी कोई सुनता है वह निर्भय होकर विपत्ति के सामने कूद पड़ता है, अपना सब कुछ त्याग कर वह अपने आपको भीषण अत्याचार के सामने उत्सर्ग कर देता है। मृत्यु का गर्जन उसे मधुर-संगीत सा प्रतीत होता है।" अपने जीवन भर, अपनी रचनाओं के माध्यम से कवि उस सर्वमानवीय शाश्वत शक्ति को ही खोजते और पूजते रहे। प्रकृति, विशेषकर हिमालय पर उनकी कुछ छिटपुट कविताएं तथा "भानुसिंह" उपनाम से लिखी गई वैष्णव पदावली के सार्थक अनुकरण के बाद वस्तुतः "संध्या-संगीत" (1882 ई.) ही उनकी पहली पूर्णांक पुस्तक थी। इसके तुरत बाद ही पहली पुस्तक की कविताओं के विषाद तथा उनकी अपक्वता को दूर करती हुई उनकी "प्रभात-संगीत" (1883 ई.) छपी और सामने आयी। इन कविताओं में जो आशावाद की झलक है, उसकी प्रतिच्छवि उनके "छवि ओ गान" (1984 ई.) में भी मिलती है। इसके मुद्रण के बाद और "कड़ि ओ कोमल" (1986 ई.') के छपने से पहले ही कादम्बरी देवी के अकस्मात् आत्मघाती निधन के कारण कवि को जो चोट पहुंची थी, उसके फलस्वरूप उनकी कल्पना तथा उनके अवबोधन के मानों सभी द्वारा एकसाथ खुल गये और मृत्यु एक प्रतीक के रूप में उनकी कविताओं में आयी। "कड़ि ओ कोमल" में ही टैगोर के प्रथम जीवन की कुछ श्रेष्ठ प्रेम-कविताएं हैं। "मानसी" (1890 ई.) तक आते-आते उनकी कविता के स्वर में काफी बदलाव आया। पहले की अपरिपक्वता अब नहीं रही। कवि श्रेय और प्रेय तथा वास्तव और कल्पना के द्वंद्व में उलझे हुए दिखते हैं। "सोनार तरी" (1893 ई.) से कवि की रचनाओं में ग्रामीण बंगाल में रहने और प्रकृति के साथ पहला पूर्णांम

परिचय का प्रभाव स्पष्ट है। साहित्य के आलोचक इन कविताओं को प्रथम युग के टैगोर के लिए परिवर्तन की एक महत्वपूर्ण बिन्द् के रूप में मानते हैं। इसकी अंतिम कविता "निरुद्देशेर यात्रा" में उनकी आराध्या, उनकी प्रेयसी उनके स्वर्णिम नाव की शेर संचालिका बन पश्चिम की ओर चली जाती दिखाई देती है। वही शक्ति "चित्रा" (1896 ई.) में उनके चिंतन-मनन की प्रक्रियाओ को चालित करती भाग्य विधात्री के रूप में आ जाती हैं। इनकी कई कविताएं खासकर– "एवार फिराओ मारे", "उर्वशी", "स्वर्ग होते विदाय" तथा "सिंधु पारे" कवि के जीवन दर्शन को स्पष्ट कर देती है। इन सभी कविताओं में मनुष्य और प्रकृति की सृजनशीलता के पीछे जो रहस्यमयी शक्ति नित्य कर्मरत है, उन्हीं का वर्णन है—कभी उर्वशी को प्रतीक बनाकर तो कभी सिंधु पार की प्रिया के रूप में। इस ग्रंथ के चार महीने के बाद ही "चैताली" (1896 ई.) छपी, जिनकी कविताएं बिल्कुल दूसरे किस्म की थी। इनमें प्राचीन भारतीय साहित्य की धाराओं का प्रभाव स्पष्ट हैं। इसके अंतिम अंश में कुछ सुभाषित युक्तिपूर्ण कविताएं थी जो कि आगे चलकर एक धारा ही बन गई जब "कणिका" (1899 ई.) में बहुत से ऐसे अर्थमय उपदेशात्मक छोटी कविताएं संकलित हुई। हाइकू शैली में लिखित ऐसी बहुत सी कविताएं, जिनकी रचना 1916 ई. के जापान-भ्रमण से शुरू हुई, बाद में "लेखन" (1926 ई.) के नाम से छपी थी।

रवीन्द्रनाथ की "कथा" (1900 ई.) और 'काहिनी" (1900 ई.) में भारतीय इतिहास के बहुत से वीरों के विषय में कहानियां पाठकों को मिली और से उन्हें कवि के साथ-साथ अच्छे कथाकार के रूप में भी प्रतिष्ठित कर सकी। इनकी शैली भले ही काव्य की हों, इनमें "गांधारीर आवेदन", "कर्ण-कुंती संवाद" से लेकर "पूजारिणी" तथा "अभिसार" जैसी बहुत ही रोचक और जनप्रिय काव्य-कथाएं थीं। इसके बाद के संकलन– "कल्पना" तथा "क्षणिका" (दोनों 1900 ई. में ही छपी थी) की कविताओं के बारे में आचार्य सुकुमार सेन कहते हैं।

वे कहते हो कि यह टैगोर की कविताओं के द्वारा सृजनशीलता कि शिखर में पहुंचने का अन्यता सफल प्रयास है। उनकी अगली पुस्तक है "नैवेद्य" (1901 ई.) जिसके स्वर से बिल्कुल भिन्न है उनका "स्मरण" (1903 ई.) जो उनकी स्वर्गता पत्नी की स्मृति में लिखी कविताओं का संकलन था। "शिशु" (1903 ई.) में शिशुमन की चिन्ताधारा, उसकी असंभव की कल्पना तथा उसका अनियोजित व्यवहार– इन सभी का दक्ष चित्रण है। अब तक की लिखी कविताओ का एक संपादित (अध्यापक मोहितचंद्र सेन द्वारा) संकलन भी तब छपी, जिसके प्रत्येक अनुभाग के लिए टैगोर ने दो-चार पंक्तियों में कविता के माध्यम से प्राक्कथन प्रस्तुत किया था, ये लघु कविताएं बाद में "उत्सर्ग" (1914 ई.) नाम के एक संकलन में पृथक रूप से छपी। लेकिन वस्तुतः "खेया" (1906 ई,) की कविताओ में आकर वैष्णव कविताओं के रहस्यवाद की ओर उनके झुकाव के बारे में पता चलता है।

इसका अगला पर्व गीति-निवेदन के पर्व के रूप में जाना जाता है और इसी दौरान इनकी तीन महत्त्वपूर्ण काव्य-ग्रंथ पाये जाते हैं: "गीतांजली", "बलाका" (1916 ई.) में छन्दप्रयोग की दृष्टि से नयी तकनीक देखने को मिलती है। इस असामान्य छन्द का प्रयोग उन्होंने "पलातक" (1918 ई.) में भी किया। पर "शिशु भोलानाथ" (1922 ई.) के रचयिता में छूपे शिशु की पहचान की कविताएं हैं। इसके बाद में छपी "पूरवी" (1925 ई.) में उनकी वे कविताएं हैं जो दक्षिण अमरीका में विक्टोरिया ओकाम्पो के सान्निध्य के काल में तथा समुद्रयात्रा के दौरान लिखी गई थी। "महमा" (1929 ई.) में नारी के प्रति एवं "वनवाणी" (1931 ई.) में प्रकृति के प्रति उनका नमनल विधृत है। "परिशेष" (1932 ई.) में भाषा और छंद की दृष्टि से कई प्रयोग देखने को मिलते हैं।

इसके बाद के पर्व में अंग्रेजी के या मुक्तक छंद के प्रभाव में आकर बिल्कुल अत्याधुनिक शैली में लिखी कविताओं के कई संकलन हमें देखने को मिलते हैं: "पुनश्च" (1932 ई.), "शेष सप्तक" (1935 ई.), "पटपुत्र" (1936 ई.) तथा श्यामली (1936 ई.) पर इसी बीच मते छपी "विचित्रा" (1933 ई.) में कवि की अपनी और दूसरे साथी

कलाकारों के चित्रों पर कविताएं संगृहीत हैं। "वीथिका" (1935 ई.) में बीते कल के बारे में तथा "प्रांतिक" (1938 ई.) में अंतिम क्षण की उपलब्धियां हैं। इसके पूर्व प्रकाशित दो ग्रंथों में बच्चों के लिए रोचक तुकांत कविता है जिस बांगला में "छड़ा" कहते हैं. ये संकलन हैं– "खाप-छाडा" (1937 ई.) तथा "छड़ार छवि" (1937 ई.)। उनके आतम चार वर्ष में भी सृजनशीलता तथा विविधता में कोई कमी नहीं आयी। "सेंजुति" (1938 ई.) की कविताएं जहां गंभीर मुद्रा में कथित जीवन-संध्या पर पहुंचते हुए कवि की उपलब्धि के रूप में आती है, वही "प्रहासिनी" (1939 ई.) हल्की-फुल्की चाल में लिखी कविताएं हैं तथा "आकाश-प्रदीप" (1939 ई.) में उन नवीन कवियों की कड़ी आलोचना का काव्य में उत्तर है जो टैगोर की कविता को प्राचीन तथा पुराने फैशन की बताते हैं। "नवजातक" (1940 ई.) और "सानाह" (1940 ई.)– दोनों पुस्तकें द्वितीय विश्वयुद्ध के सर्दी में युद्ध की विभीषिका के विषय में हैं। चूंकि इस समय कवि अत्यंत-अस्वथ्य थे उनकी अगली पुस्तकों का नामकरण उन्होंने किया था "रोग-शय्याय" (1940 ई.) तथा "आरोग्य" (1941 ई.) अंतिम काव्य-ग्रंथ में उन्होंने अपने जीवन और रचना के बारे में कविता के माध्यम से अपना विचार व्यक्त किया था, इसका शीर्षक था– "जन्मदिन (1941 ई.)।

टैगोर का नाट्यकार के रूप में प्रथम प्रयास था– दस्यु रत्नाकर का महाकवि बाल्मीकि के रूप में परिवर्तन की कथा पर आधारित "बाल्मीकि प्रतिभा" (1881 ई.) अगले नाटक, "काल-मृगया" (1882 ई.) का कथानक भी दशरथ का सिंधुकुमार-वध को लेकर था। उनका तीसरा नाटक था– "प्रकृति परिशोध" (1884 ई.) जिसमें नाटकीयता से अधिक थी काव्यात्मकता। इसलिए इसका मंचन उनकी जीवनदशा में नहीं हुआ। ऐसा ही एक और नाटक था "नलिनी (1884 ई.) अगला नाटक राजा ओ रानी" (1889 ई.) थी पांच अंक की त्रासदी। इन दोनों नाटकों की मूलकथा टैगोर ने अपनी कविता से ली थी। अनेक कमियां रहने पर भी आज "राजा ओ रानी" बांगला के श्रेष्ठ नाटकों में से एक है। उनका अगला नाटक, राजा वसंत राय", जो कि उनके अपने उपन्यास "बौठाकुराणीर हाट" (1883 ई.) पर बना मंच पर काफी सफल रहा। लेकिन इसका नाट्य रूपांतर बनाया था श्री केदारनाथ चौधुरी ने, टैगोर की सहायता से। उन्होंने स्वय भी 1909 में पांच अंकों में इसका नाट्य रूपांतर किया था, जिसका नामकरण किया था "प्रायश्चित"। इसी का एक संक्षिप्त संस्करण बाद में "परित्राण" (1929 ई.) के नाम से छपा। चालीस वर्षों के बाद "राजा ओ रानी" को बिल्कुल नये सिरे से लिखा था टैगोर ने, जो "सपती" नाम से छपी थी। उनका अगला नाटक "विसर्जन" (1890 ई.) भी एक गीतिधर्मी त्रासदी है जिसकी कथा उनके प्राथमिक उपन्यास "राजर्षि" (1889 ई.) से ली गई। "चित्रांगदा" (1892 ई.), "विदाय अभिशाप" (1894 ई.) और "मालिनी" (1895 ई.) तीनों तीन पृथक आकार की गीति-नाटिकाएं हैं। 1885 ई. से 1887 ई. तक टैगोर ने कई हास्यारसात्मक नाटिकाओं की रचना की: "गोड़ाय गलद" (1892 ई.) और "बैंकुठेर खाता" (1897 ई.) उनमें से दो थी। उनके मंच-सफल नाटक "चिरकुमार सभा", जिसका प्रथम मुद्रण हुआ था "भारती" के 1900-1901 ई. के अंकों में, कई संस्करणों में परिवर्तित होकर पहले "प्रजापतिर निर्बधन" (1901 ई.) और फिर "कर्मफल" (1903 ई.) एवं अंत में शोधबोध" के नाम से 1926 ई. में छपी।

कुछ गीतमय नाटकों की रचना टैगोर ने इसी समय की थी, जिनमें "शारदोत्सव" (1908 ई.), "फाल्गुनी" (1915 ई.), "बंसत" (1923 ई.) आदि उल्लेखनीय हैं। उनके सर्वश्रेष्ठ प्रतीकात्मक नाटकों में "राजा" (1910) और उसका संक्षिप्त संस्करण "अरुपरतन" (1920) तथा "अचलायतन" (1911) बहुत ही रोचक प्रमाणित हुए। बच्चों के लिए "अंचलायतन" का उन्होंने एक संक्षिप्त शिशु-संस्करण "गुरु" (1918) की भी रचना की थी। वस्तुतः बच्चों के लिए अभिनय-योग्य नाटकों में "डाकघर" (1912 ई.) सबसे उल्लेखनीय है।

इसके अगले पर्व में हम टैगोर को दो और प्रख्यात प्रतीक नाटक के रचयिता के रूप में पाते हैं– "मुक्तधारा" (1922 ई.) और "रक्तकरबी" (1924 ई.) इसके बहुत सालों के बाद ही हम उन्हें एक और सशक्त नाटक के लेखक के रूप में पाते हैं, जिसका

नाम था "तासेर देश" (1933 ई.) इनके अलावा, इस अंतिम पर्व में उन्होंने कई नृत्यनाटिकाओं की रचना की, जिनमें "नटीर पूजा" (1926 ई.), "चंडालिका" (1933 ई.), "चित्रांगदा" (1936 ई.) एवं "श्यामा" (1938 ई.) ने बहुत ही नाम कमाया।

टैगोर ने अपने संपूर्ण साहित्य-जीवन में सामाजिक, राजनैतिक तथा बौद्धिक समस्याओं पर बहुत सारे उपन्यासों की रचना की थी, जिनमें अगर "बौठाकुराणीर हाट" (1883 ई.) तथा "राजर्षि" (1885 ई.) को प्राथमिक प्रयास के रूप में छोड़ भी दिया जाय, तो भी "चोखेर बालि" (1902 ई.), "नस्टनीड़" (1903 ई.), "नौकाडुबी" (1905 ई.), "गोरा" (1910 ई.), "चतुरंग" (1916 ई.), "घरे बाइरे" (1916 ई.) एवं "योगायोग" (1930 ई.) आदि ने बांगला कथा-साहित्य के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण योगदान के रूप में माना जाता है। अंतिम वर्षों में उन्होंने कहानियां लिखी थी, उपन्यास नहीं। पर उससे पहले लिखे गये उपन्यास, खासकर "शेषेर कविता" (1929 ई.) ने उपन्यास-शैली में कई नये परीक्षण और प्रयोगों का उपयोग किया, जो कि "दुइ बोन" (1933 ई.), "मालंच" (1934 ई.) आदि लघु उपन्यास तथा "चार अध्याय" (1934 इ.) आदि में नहीं पाया जाता। उनकी कहानियों की संख्या भी बहुत अधिक थी। इसलिए बाद में कई खंडों में "गल्पगुच्छ" के नाम में वे छपीं। उनके निबंधों में विश्लेषण से अधिक है उनका दर्शन, उनकी सृजनशीलता का ही परिचय मिलता है, उनमें।

6.4 रवीन्द्र साहित्य

रवीन्द्र साहित्य की विविधता और प्रचुरता से ही उनकी भावनाओं की गंभीरता का अंदाजा लगाया जा सकता है। उनकी कृतियों की एक और विशेषता यह है कि उनमें कई रवीन्द्रनाथ पाये जाते हैं। एक रवीन्द्रनाथ प्रकृति-प्रेम में तल्लीन ऋतु और सौंदर्य के कवि हैं तो दूसरी राष्ट्रीय चेतना और राजनैतिक चिंतन को अपने उपन्यास या कविताओं में प्रमुखता देने वाले हैं। एक तीसरे रवीन्द्रनाथ लेखन, भ्रमण और संयोजन के माध्यम से शिक्षा की उन्नति के लिए अपना जीवन निछावर कर देते हैं, तो वह और ही हैं जिनकी लेखनी और तूलिका से नयी विद्या (नृत्यनाट्य) तथा नयी अंकन-शैली जन्म लेती है। रवीन्द्रनाथ ने अपने जीवन-दर्शन तथा सामाजिक चेतना को अपने कई प्रतीकात्मक नाटकों में बहुत रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। इस अनुखंड में इन्हीं भावनाओं को सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है।

6.4.1 राष्ट्रीय चेतना

रवीन्द्रनाथ दो और तरह के भी है– अंग्रेजी में जब उन्होंने लिखा है या अपनी ही कृतियों का अनुवाद किया है, तब उनके चयन, कथ्य और शैली से मात्र अंग्रेजी के माध्यम से उनको जानने वाले पाठक को वे केवल वेद-उपनिषद की धारा में चलने वाले आर्षकवि के रूप में ही प्रतीत होंगे जिनके लेखन में दार्शनिकता का स्वर ही सबसे तीक्ष्ण है। पर जो उनकी मूल रचनाओ को पढ़ पाते हैं, उन्हें उनकी कृतियों में वे सभी गुण दिखाई देंगे, जिनके कारण वे अपनी जीवनदशा में ही भारत के जातीय कवि बन चुके थे। जनजागरण का जो अथक प्रयास उन्होंने अपनी कविता और कथाओं के माध्यम से किया था, उसका मिसाल किसी एक लेखक के जीवन से मिलना मुश्किल है।

प्रकृति के कवि के रूप में जब वह हिमालय की विशाल पर्वतमाला का वर्णन देते हैं, तब भी उन्होंने भारतीयता की ही बात कही है और अपनी राष्ट्रीय चेतना का परिचय दिया है। उन्होंने लिखा–

"सेइमतो भारतेर हृदयसमुद्र एतकाल
करियाछे उच्चरण ऊर्ध्व-पाने जे वाणी विशाल,
अनंतेर ज्योतिस्पर्शे अनंतेरे जा दियेछे फिरे,

रेखेछो संचय करि है हिमाद्रि, तुमि स्तब्ध-शिरे।
तव मौन श्रंगृ-माझे ताई आमि फिरि अन्वेषणे
भारतेर पिरचय शांत-शिव-अद्वैतेर सने।"

("उत्सर्ग" से

यहाँ टैगोर भारतीयता की व्याख्या करते हुए उसकी तीन विशेषताओं के बारे में उल्लेख किया है: "शांत", "शिव", और "अद्वैतता" के सहारे हम भारत को जान सकते हैं। धार्मिक विविधताएं तो हैं, लेकिन उनकी मूलभूत भावना में शांति, मंगलमयता और एकेश्वरवादिता की ध्वनि निहित है। यही वाणी भारत के हृदय-समुंद्र में से बहुत दिनों से उच्चारित होती आ रही है। उन्होंने अपने लिए भी और देशवासियों के लिए भी साहस, शक्ति, निरंतर मुक्ति और द्विधाशून्य सरलता की प्रार्थना की है उस चिरसुंदर से जो उन्हें हर रोज की कलंक-कालिमा से तथा पतन-पीड़ा से मुक्ति दिला सकते हैं:

"आमारे साहस दाओ, दाओ शक्ति, हे चिरसुंदर,
दाओ स्वच्छ तृप्तिर आकाश, दाओ मुक्ति निरंतर
प्रत्यहेर धूलिलिप्त चरणपतनपीड़ा हते,
दियों ना दुलिते मोरे तरंगित मुहूर्तेर स्रोते,
क्षोभेर विक्षेपवेगे।"

भारतीय के लिए और भारत के लिए जिस ज्ञान-मुक्ति निर्भयता तथा एकता का गीत उन्होंने रचा था वह आज भी राष्ट्रीय संकट के समय दोहराने लायक हैं:

"जहां चित्त भय-शून्य, जहां सिर उन्नत
ज्ञान मुक्त, प्राचीन गृहों के, अक्षत
वसुधा का जहां न करके खंड-विभाजन
दिन-रात बनाते छोटे-छोटे आंगन,
प्रति हृदय-उत्स से वाक्य उच्छवसित होते
हों जहां, जहां कि अजस्र कर्म के सोते
अव्याहत दिशि-दिशि, देश-देश बहते हों,
चरितार्थ सहस्रों-विध होते रहते हो,
धारापथ को न विचारों के, ग्रस लेती
हो जहां तुच्छ आचारों की मरु रेती,
रातधा न जहां पुरुषार्थ, जहां पर सतत
सब कर्म-भाव आनंद, तुम्हारे अनुगत,
हे पिता, उसी स्वलोक में, कटो जाग्रत,
निज-कर निर्दय ठोकर देकर, यह भारत।"

(अनु. युगजीत नवलपुरी)

रवीन्द्रनाथ के भीतर की यह राष्ट्रीय चेतना के मूल में उनके परिवार के माहौल की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

शैशव में उन पर कवि हेमचंद्र बंदयोपाध्याय की पुस्तक "भारतसंगीत" का काफी प्रभाव पड़ा था। उनकी अपनी पुस्तक "शैशवसंगीत" में भी उन्होंने "भारती-वंदना" जैसी कविता को लिया था जिसमें अपने देश के प्रति उनकी मनोभावना का परिचय है। देश में ज़ो विदेशी ताकत शासन के नाम पर दु:शासन चला रही थी उसके विरोध में प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से अनेक बातें कवि की विभिन्न रचनाओं में हमें देखने को मिलती हैं। "स्फुलिंग" की छोटी कविताओं में भी ऐसी पंक्तियां मिलती हैं, उदाहरणस्वरूप :

अत्याचारीर विजय-तोरण
भेङछे धुलार पर,
शिशुरा ताहारइ पाथरे आपन

अत्याचारी शाशक का जय-तोरण धूल में मिला गया है टूट कर और उन्हीं पत्थरों पर बैठ आज के बच्चे अपने खिलौने का घर बना रहे हैं। बाद में "बलाका" की कविताओं में उन्होंने प्रथम विश्वयुद्ध के लिए भारत तथा अन्य देशी के ऊपर पश्चिमी शक्तियों ने जो अपशासन चलाया है, उसी का दोषी ठहराया है। "मानसी" की कुछ कविताओं में उस समय के कुछ जन नेताओ के विरोध में तथा नव्य-हिंदु जागरण के विरोध में भी उन्होंने कुछ कविताएं छापी थी। जब ऐसे नेतृत्व तथा जागृति से भारतीयता तथा धर्मनिरपेक्षता एवं सर्वधर्म-समन्वय के सिद्धांतों को क्षति हो रही है वह ऐसा देखते हैं।

महाभारत तथा भारतीय इतिहास की वीरगाथाओ से उन्होंने जो कविताओ की सामग्री जुटाई थी। जिसका अच्छा उदाहरण "कर्ण-कुंती संवाद" तथा "गांधारीर आवेदन" आदि में (द्रष्टव्य उनकी पुस्तकें "कथा" और "काहिनी") उन सभी रचनाओं का उद्देश्य था राष्ट्रीय भावनाओं को जगाना। कुछ और ऐसी कविताएं, जैसे "श्रेष्ठ भिक्षा", "पुजारिणी" तथा "अभिसार" बुद्धकथाओं से ली गई महानता की कहानियों का पुनकर्थन है। "नैवेद्य" (1901 ई.) में आकर हम उन्हें देखते हैं अपने देश के पिछड़ेपन और इसके निवासियों के मन में जो कुसंस्कार के बादल छाये हुए हैं, वह उनके मूल में कुठाराघात करते हैं।

1906 ई. के बाद की कविताओं में एक तरफ बंगाल के बाउल तथा जनकवियों का प्रभाव पाया जाता है, जिनमें लालन फकीर को भी शामिल किया जा सकता है– तो दूसरी ओर मीरा, कबीर, ज्ञानवास तथा दादु का भी प्रभाव मिलता है। "गीतांजली" आदि गीतिधर्मी भक्ति-कविताओं तक ही यह प्रभाव सीमित नहीं था। अपने अंतिम पर्व की कविताओं में, खासकर नवजातक (1940 ई.) में उन्होंने पश्चिम के यांत्रिक सभ्यता के विरुद्ध आवाज़ उठायी थी और भारतीय तथा प्राच्य के अन्य महान देशों की परंपरा तथा संस्कृति को उनका सही दर्जा दिलाने की बात कही थी। इसी की प्रतिच्छवि हमें उनके प्रख्यात नाटक "रक्तकरबी" (1924 ई.) में भी मिलती है, जहां प्रतीकों के माध्यम से उन क्षमता तथा अर्थलोभी शक्तियों के खोखलेपन को दर्शाया गया है, जो सदा मानव को पशुता, हृदयहीनता, असुंदरता तथा असन्मान की ओर धकेल देने की कोशिश करती है। यहां केवल ऐसी शक्तियों के साथ अच्छाई के संघर्ष का ही चित्रण नहीं किया गया। "यक्षपुरी" जैसे किसी तानाशाही राष्ट्र में मानसिकता के संग यांत्रिकता की लड़ाई मंच पर दिखाया गया है। राजा जो कि स्वयं मंच पर नहीं हैं– इन दोनों शक्तियों के संघर्ष में अपने को दोषी ठहराते हैं, उनकी आत्मा जैसे विभाजित है, एवं अंततः वह स्वयं अपनी अत्याचारिणी राष्ट्रशक्ति के विरोध में विद्रोही शक्ति का साथ देते हैं। प्रेम, सहानुभूति और भाईचारा ही राष्ट्र निर्माण तथा व्यक्ति के चरित्रनिर्माण के सर्वश्रेष्ठ साधन हैं– यही वाणी उनके प्रतीकात्मक नाटक "तीसरे देश" (1933 ई.) से उभर कर आती है। ऐसा देश, जहां मनुष्य इन सभी सूक्ष्म अनुभूतियों से वंचित ताश के पत्ते मात्र देश, बिल्कुल बदल जाता है। वहां की कानून और व्यवस्था ढह जाती है जब प्रेम और सामान्य मानवीय प्रवृत्ति का वहां प्रत्यावर्तन होता है।

धर्म की कट्टरपंथा के विरोध में टैगोर ने अपने साहित्यिक जीवन के प्रथम पर्व से ही आवाज उठायी थी। छब्बीस साल की अवस्था में जब उनका पहला उपन्यास "राजर्षि" छपकर सामने आया, तभी से इसका पता चलता है। राष्ट्र में "राजधर्म" और "धर्म" में अगर संघर्ष हो, तो रक्तपात को रोकने के लिए राजा का कर्तव्य क्या होता है, उसी को लेकर इसकी कहानी है।

इसी तरह अपने नाटक, उपन्यास, निबंध तथा अपनी कथा-कविताओं के माध्यम से टैगोर ने हरेक पर्व में राष्ट्रीय चेतना के उंन्मेष के लिए भरसक प्रयत्न किया है।

बोध प्रश्न

4) रवीन्द्रनाथ के दो नृत्य नाटिका का नाम लिखिए।

.....

5) अपनी किस रचना से रवीन्द्रनाथ ग्रामीण जीवन को लेते हैं?

.....

6) रवीन्द्रनाथ द्वारा रचित प्रथम नाटक कौन-सा है?

.....

7) रवीन्द्रनाथ रचित चार नाटकों के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

8) रवीन्द्रनाथ के दो हास्यप्रद नाटक के नाम लिखिए।

.....

.....

9) रवीन्द्रनाथ द्वारा लिखित छः उपन्यासों के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10) रवीन्द्रनाथ के निबंध किस नाम से संग्रहित हैं?

.....

अभ्यास

2) दस बारह पंक्तियों में रवीन्द्रनाथ के राष्ट्रीयता से युक्त कविताओं का महत्व बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

बोध प्रश्न

11) रवीन्द्रनाथ के महाभारत तथा रामायण के प्रसंगों को किस प्रकार राष्ट्रीयता जगाने के लिए किया?

.....

.....

.....

.....

12) भक्तिकाल के कवियों का रवीन्द्रनाथ की कविताओं पर प्रभाव दिखता है। दो तीन पंक्तियों में बताइए।

.....

.....

.....

13) आधुनिक निषकारी यांत्रिकी का विरोध प्रतीक के रूप में रवीन्द्रनाथ की किस रचना में देखने को मिलता है?

.....

.....

.....

6.4.2 सामाजिक चेतना

रवीन्द्रनाथ की गद्य रचनाओं में उनकी सामाजिक तथा राजनैतिक चेतना स्पष्ट रूप से प्रतीत होती है। उनकी "आंख की किरकिरी" या "चोखेर बालि" (1903 ई.) में हमें तत्कालीन मध्य वित्त समाज की पूर्ण प्रतिच्छवि मिलती है। इसमें सीमा से अधिक लाड़-प्यार देती मां, बिगड़ा हुआ बेटा, कष्ट झेलती हुई पत्नी, प्राचीन पंथी वृद्धा सभी मौजूद हैं तथा अल्पवयस्का विधवा विनोदिनी भी। नारी-पुरुष के व्यक्तिगत संबंध को इतनी गहराई में जाकर समझने का प्रयास भरसक उस जमाने के कहानीकारों में किसी ने नहीं किया था। "गौरा" (1909 ई.), जो कि उनके श्रेष्ठ उपन्यासों में एक माना जाता है, व्यक्ति, समष्टि (यानी, समाज) तथा राष्ट्र के अंतसंबंध की समस्या को लेकर लिखा गया था। इसमें जितने मुख्य चरित्र हैं– जैसे कि गोरा, परेश, विनय, ललिता, आनंदमयी तथा सुचरिता सभी के अपने-अपने जीवन-दर्शन और सामाजिक मूल्यबोध हैं। इनमें भी नव्य हिन्दुधर्म के कट्टर समर्थक गोरा का स्वर ही सबसे तीक्ष्ण है। उसके वक्तव्य में जो कड़वाहट है उसे परेशबाबू के तर्क ने दूर नहीं कर पाया लेकिन सुचरिता के प्रेम ने उसे बदल दिया। भारत के आने वाली सामाजिक तथा राजनैतिक झंझा के बारे में तथा विदेशी ताकतों से असहयोग के बारे में इसमें स्पष्ट रूप से इशारा किया गया था। गांधीजी का असहयोग आंदोलन इसके छपने के दस वर्ष बाद ही शुरू हुआ, लेकिन उसकी बीज इसी में निहित थी।

"गोरा" में विनय-ललिता के मिलन के द्वारा विधर्मियों में विवाह की प्रथा का समर्थन मिलता है। गोरा अंत में आनंदमयी से कहता है कि वही मां है जिनकी खोज में वह अनर्थक दूर-दराज में भटकता रहा क्योंकि आनंदमयी अपनी संतान के प्रति समान रूप से प्रेम-भाव की वर्षा करती है– हिन्दु, मुसलमान और ईसाई धर्मियों में भेदभाव नहीं करती है। इसलिए गोरा कहता है कि अब आनंदमयी में ही वह सच्ची भारतमातृका को पा गया है तो उपन्यासकार की अनेकता में एकता की भावना को पाठक आसानी से समझा पाता है।

"घरे बाइरे" (1916 ई.) का प्रकाशन भी उनकी पुस्तक "चतुरंग" (1916 ई.) की ही तरह "सबुजपत्र" में ही धारावाहिक रूप से हुआ था। इसका काल था स्वदेशी आंदोलन का समय जिसका गहरा प्रभाव इस उपन्यास पर पड़ा। उस समय के बुद्धिजीवी और दूसरे लोग सामाजिक जीवन के अनेक पहलू में चल रही प्रगतिवादी प्रयासों को लेकर जातीय वितर्क में लीन थे और भारत की आर्थिक स्वतंत्रता, नारी-शिक्षा, रूढतावाद का विरोध तथा सामाजिक अत्याचार-अनाचार से मुक्ति की खोज में जुटे हुए थे। निखिलेश को अपने देश और उसके लोगों से असीम प्यार है और वह अपनी पत्नी को इसलिए स्वाधीनता दे रखी है कि वह स्वयं निखिलेश के प्रेम की गहराई को समझ सके। पर विमला निखिलेश के देशप्रेम को भीरु का प्रेम समझती है क्योंकि उसके सामने संदीप जैसे जातीयतावादी तरुण जननेता है जो विमला को घर से बाहर की दुनिया में ले जाता है। निखिलेश विदेशी ताकत की विरोधिता के लिए

स्वदेशी आंदोलन का समर्थक अवश्य है, पर उसे हिंसा का पथ अपनाना पसंद नहीं है। सभी विदेशी वस्तुओं के परित्याग से लाभ नहीं है– निखिलेश ऐसा ही सोचता है। पर संदीप की सोच उससे बिल्कुल अलग है और इसीलिए विमला को संदीप की चारित्रक दृढ़ता इतनी पसंद है। लेकिन बहुत जल्द ही संदीप की नीचता, उसका खोखलापन और ईर्ष्या इस तरह से विमला के सामने उभर कर आयी कि उसे फिर से घर की ओर लौटना ही पड़ा। इस उपन्यास में जिस तरह की राजनैतिक चेतना का परिचय टैगोर ने दिया है उसकी तुलना शायद 1934 ई. में छपी उन्हीं की एक और कृति "चार अध्याय" के साथ ही की जा सकती है। यहां भी अतीन और एला के प्रेम की प्रमुख भूमिका है पर इस कहानी के परिवेश के रूप में टैगोर ने बंगाल के तत्कालीन विद्रोही किसी दल की गतिविधि को दर्शाया है। अहिसक आंदोलन के प्रारंभ होने के बाद भी बंगाल के युवा-वर्ग ने सहिंस विद्रोह के पथ को क्यों अपनाया था उसकी सामाजिक तथा राजनैतिक पृष्ठभूमि का परिचय टैगोर ने यहां दिया है। "स्वदेशी समाज" (1904 ई.) जैसे निबंध में भी उनकी समाज-चेतना का झलक पाया जाता है।

6.5 साहित्यिक बिशेषताएं

टैगोर के साहित्यिक परिधि इतनी बड़ी है और इतनी सारी विधा में उन्होंने एक ही साथ अपनी कुशलता का परिचय दिया है कि उनकी सारी विशेषताओं के बारे में संक्षेप में कहना कठिन है। पर जैसा कि इसके पहले के अंश से पता चलता है, अपने साहित्यिक जीवन में उन्होंने अपनी शैली, विषय-वस्तु तथा विन्यास में इतनी बार परिवर्तन किया है कि कहा जाता है कि वह स्वयं एक में अनेक रवीन्द्रनाथ थे। यहां उनकी कुछ प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डाला जा सकता है।

6.5.1 विषयवस्तु

रवीन्द्रनाथ की कविताओं में प्रारंभिक पर्व में प्रकृति की भूमिका महत्वपूर्ण रही। उनके आरंभिक पर्व के काव्य-संकलनों में एक विषाद की छाया पाई जाती है– हताशा का एक स्वर है जो शीघ्र ही विलीन हो जाता है। यह विषाद उनके बाद की कविताओं में भी घूम-फिर कर आता है पर वह मुख्य स्वर के रूप में नहीं रह जाता। श्रेय और प्रेय का संघर्ष भी उनके इस समय की कविता का विषय है। उनकी कविताओं में जीवन की असीमता तथा गतिशीलता का भी परिचय है। सृष्टि के उत्स में, जो आदिम शक्ति निरंतर कर्मरत है उसके विषय में तथा मानव अन्तरात्मा के साथ विश्वात्मा के संबंध के बारे में इसी दौरान उन्होंने कई काव्य-ग्रंथों की रचना की। पृथ्वी के प्रत्येक वस्तु के उनकी ममता उनकी बहुत सारी कविताओं में विधुत है। विभिन्न ऋतुओं के बारे में उन्होंने कविता ही नहीं, कई नृत्य-नाटिकाओं की भी रचना की थी। उन्होंने "सोनार तरी" तथा "चित्रा"– दोनों ग्रंथों में एक प्रेरणा तथा ईप्सिता के बारे में लिखा है जो कवि के भाग्य-विधात्री के रूप में उनकी कविताओं में आती है। कवि की चारों ओर दुःख, शोक, दरिद्रता, दमन तथा रोग की जो लहर बहती रही है वह भी उनके काव्य में बार-बार आती है। "उर्वशी", से लेकर अन्याय कविताओं में भी उन्होंने वेद, ब्राह्मण साहित्य, उपनिषद तथा प्राचीन महाकाव्यों में वर्णित कथानक पर रचना का सिलसिला शुरू किया। चैताली की कविताओं में फिर से प्रकृति, गांव तथा गांव के सहज सरल मनुष्य आ जाते हैं– कुछ कविताएं उपदेशात्मक भी हैं। चार पंक्तियों की छोटी-छोटी कविताएं– जिनमें "कणिका" तथा "स्फुलिंग" की रचनाएं शामिल हैं;– उनके द्वारा व्यवहृत विवात्मकता का परिचायक हैं। गीतिधर्मी कविताएं, जिनमें कविकल्पना की मधुरता भी है और अस्तित्व के आनंद का परिचय भी, "कल्पना" और "क्षणिका" में संकलित होकर कवि के काव्यगुणों का ही परिचय होता है। इनमें प्रेम का स्थान ही अधिक महत्वपूर्ण रहा है। "नैवेद्य" में आकर उन्होंने अपनी आराध्या शक्ति की पूजा अवश्य की है, पर उसके साथ ही अपने देश के पिछड़ेपन को लेकर उनका आक्षेप भी है। "शिशु" में बच्चों के लिए उनके प्रेमभाव का उदाहरण ही नहीं मिलता उन्होंने जो शिशु को मनुष्य की शाश्वत काल से चली आ रही जीवन

शक्ति के उत्स के रूप में दिखाया है, उसका भी प्रमाण मिलता है। "खेया" से ही कविता में रहस्यमयता तथा भक्ति की भावना मुखर हो उठी थी जो "गीतांजली", "गीतिमाल्य" तथा "गीताती" में आकर और अधिक प्रस्फुट हो उठी। "महुआ" में नारी के प्रति कवि के मन में जो आदर था उसका परिचय मिलता है। अंतिम पर्व के काव्य-ग्रंथों में कुछ ऐसी पुस्तकें हैं जिनमें विषाद का स्वर है। पर इसी समय उन्होंने कुछ बहुत ही रोचक शिशुपाठ्य लिखी। उनके गीतों की ओर भी अगर देखें तो हमें ऋतुवर्णन से लेकर प्रेम, हर्ष, विषाद, पूजा आदि कई भावनाएं विषय-वस्तु के रूप में दिखाई देंगी।

नाटकों में प्रारंभिक प्रयासों के विषय पौराणिक कथाओं से लिये गये थे। उसके बाद नाटकों के माध्यम से उनके जीवन-दर्शन के अलावा दुःखांत प्रेम भी कई बार उभर कर आया है। "राजा ओ रानी", "प्रायश्चित्त", प्रभृति इसके उदाहरण है। इसी के साथ उन्होंने कई हास्यरसात्मक नाटक भी लिखे जिनमें खास कर "गोड़ाय गलद" और "चिरकुमार सभा" काफी जनप्रिय हुए। बौद्ध जातक कथाओं से कथानकों को लेकर भी उन्होंने कई नाटक लिखे। अत्याचार तथा अनाचार के विरोध में आवाज़ उठाने की बात को उन्होंने "अचलायतन" और "रक्तकरबी" के माध्यम से किया।

अपने कहानियों के संग्रह में साधारण लोगों के जीवन तथा उनकी समस्याओं को लेकर उन्होंने अपनी दृष्टि से समाज-संसार का विश्लेषण प्रस्तुत किया है। विषाद की रक्षा भी कई कथाओं के प्रसंग या परिवेश के माध्यम से दिखाई देती है। हिन्दी-भाषी पाठक उनकी दो कहानियों से परिचित हैं: "काबुलीवाला" और "क्षुधित पाषाण"। उनकी प्रेम-विषयक कहानियों में भी "माल्यदान", "एक रात्रि", "शास्ति", "माहात्म्य" आदि का नाम भी बंगाल के बाहर के लोग भी जानते हैं। सामाजिक समस्याओं को लेकर उन्होंने "दीदी", "देना-पावना", "स्त्रीर पत्र" तथा "नष्ट नीड़" (जो कि "चारुलता" के नाम से परिचित) आदि उनकी प्रमुख कहानियां है। प्रकृति के संग मनुष्य के संबंध को लेकर उन्होंने "अतिथि" तथा "शुभा" लिखी थी। भौतिक तथा आतिमानविक विषयों को भी उन्होंने बहुत कुशलतापूर्वक "गुप्तधन", "सम्पत्तिदान", "निशिथे" तथा "कादम्बिनी" आदि कहानी के माध्यम से रखा। उनकी कहानियों में जो विविधता पायी जाती है वह अंतिम पर्व की तीन कहानियों में भी बरकरार थी, जिनमें "लैबोरटरी" और "शेष कथा" आदि महत्वपूर्ण हैं।

उपन्यास के विषय की खोज में पहले उन्होंने बंगाल के मध्ययुगीन इतिहास की ओर झांका, जिसका उदाहरण "बौठाकुरणीर हाट" में पाया जाता है। "चोखेर बालि" में मध्यम वर्ग के लोगों की जीवन-कथा की ही प्रधानता रही है। इसमें युवा विधवा की अन्तर्दाह और समस्याएं तथा धार्मिक प्रमेद का वैयक्तिक संबंधों पर प्रभाव के बारे में भी प्रसंग सामने आये। "नौकाडुबि" में एक दुर्घटना के फलस्वरूप रमेश और कमला एक-दूसरे के नजदीक आ जाते हैं, हालांकि वह पति-पत्नी नहीं हैं। अंत में किस तरह से कमला और नलिनाक्ष का मिलन होता है। यही इस कहानी का विषय था। "गोरा" में तत्कालीन राजनीति तथा धर्मविश्वास में आ रहे परिवर्तन के बारे में एक बहुत ही रोचक कथा कहा गया है। "चतुरंग" में चार परस्पर संबंधित कहानियों को एक सूत्र में गंथा गया है। इसमें शारीरिक प्रेम और भावनाओं के स्तर पर प्रेम के संघर्ष को ही दर्शाया गया है। "घरे बाइरे" में राजनीति तथा उसके कारण टूटते पारिवारिक संबंध की भूमिका ही मुख्य रही है। "योगायोग में बिल्कुल घरेलू कहानी कही गयी थी। "शेषेर कविता" के कहानी से अधिक काव्यिक शैली का प्रभाव ही परिलक्षित होता है। "चार अध्याय" का संबंध था भारत के जातीयतावादी सहिंस आंदोलन में उत्सर्गप्राण कुछ युवा पुरुष नारी के साथ।

इस तरह से देखा जाए तो रवीन्द्र-साहित्य में जिस तरह से बहुत बार बदलाव आया और जिस कुशलता के संग टैगोर ने अनेकों विधा में अपना सशक्त हस्ताक्षर रखा, उसी तरह अपनी रचनाओं के लिए विषयों के चयन में भी उन्होंने काफी समझ-बूझ का परिचय दिया। इसलिए विषय-वैचित्य की दृष्टि से भी वे बेजोड़ थे।

6.5.2 भाषा का प्रयोग

1940 ई. में जब टैगोर की पुस्तक "नवजातक" के बारे में बताया था– "मेरे काव्य में बारबार ऋतु-परिवर्तन हुआ है।" यह परिवर्तन विषयों का ही नहीं, भाषा का भी हुआ था। काव्य-भाषा और शैली की दृष्टि से उनकी कृतियों में "मानसी" (1890 ई.) "बलाका" (1916 ई.), "पुनश्च" (1932 ई.) और "रोगशय्याय" (1940 ई.) आदि पुस्तकों में ये बदलाव पाये जाते हैं। सर्वप्रथम उनकी काव्य-भाषा संस्कृत निष्ठ रही, जैसे-जैसे रीति में परिवर्तन होता गया उनकी अपनी एक शैली बनती गयी, जो मौखिक बांगला (यानि, "चलित बांगला") के नज़दीक थी। लेकिन उनके गीतों की शैली में यह परिवर्तन इस तीव्रता के संग नहीं आया। एक पर्व के गीत से दूसरे पर्व की आता है। अतः इससे लगता है कि गीत-रचना के क्षेत्र में उनका दृढ़विश्वास था कि गीति-शैली आम बोलचाल की भाषा से पृथक ही होनी चाहिए। यही नहीं एक ही नृत्यनाट्य के दो पृथक् गीतों में काफी अंतर नज़र आता है। यह भी सही है कि एक युग के बाद भी वह गीतरचना की किसी पुरानी शैली में वापस चले गये हैं। गीतों के लिए जहां उनकी भाषा में विवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं थी, चाहे उनकी गीत-शैली की विविधता कितनी भी हो, वहीं 1884 ई. से 1948 ई. तक की लंबी अवधि में उन्होंने जो 119 कहानियां लिखी उनमें भी भाषाई परिवर्तन कई बार नज़र में आता है। विशेष कर, 1914 ई. में चलित भाषा यानी मौखिक शैली के समर्थन में जब से प्रमथ चौधरी की पत्रिका "सबुजपत्र" ने आवाज़ उठायी, जिसका समर्थन उन्हें रवीन्द्रनाथ से प्राप्त हुआ था, तभी से उनकी कहानियों की शैली में एक बड़ा परिवर्तन आया। इसी समय रचित "घरे बाइरे" (1916 ई.) उपन्यास में भी उन्होंने चलित महाभाषा का प्रयोग किया। उन्होंने अपनी जानी-मानी कहानी "स्त्रीर पत्र" में ही सर्वप्रथम मौखिक भाषा की शैली का प्रयोग किया है पर इसके बाद की ही दो अन्य कहानियों में उन्होंने संवाद या वार्तालाप चलित शैली में और वर्णन संस्कृतनिष्ठ साधु शैली में किये। 1917 ई. में प्रकाशित "पहला नंबर" कहानी के बाद से ही उन्होंने अपनी भाषा-प्रयोग की अनिश्चितता को दूर किया तथा 1941 ई. तक की बाद की सभी कहानियों में चलित बांगला का ही प्रयोग किया गया। केवल "तोता-काहिनी" में आकर उन्होंने व्यंग्य को तीव्रतर बनाने के लिए संस्कृतनिष्ठ साधु शैली का चयन किया था। पर वह व्यतिक्रम मात्र ही था।

रवीन्द्रनाथ की "कथाओं पर बंकिमचन्द्र का आरंभिक पर्व में काफी प्रभाव पड़ा। खास कर "मुकुट", "घाटेर" कथा तथा "राजपथेर कथा" में। पाठक के संग वार्ता की भंगिमा को कहानी में ले आना, संसार के कुछ सामान्य सत्य को किसी आख्यान के विवरण के भीतर रखना, नाटकीय ढंग से दीर्घ संलाप का प्रयोग जिसमें आत्मकथन मात्र है; तथा किसी प्राणहीन वस्तु के आत्मकथन के ज़रिये कहानी आगे से जाना आदि बंकिमी शैली के बहुत सारे गुण टैगोर के शुरू के लेखन में पाये जाते हैं। बाद में सचेत रहकर उन्होंने ऐसे सभी लक्षणों का परिहार कर अपनी एक अनूठी शैली-गठन के प्रयास किए। पर यहां भी 1914 ई. से पहले की कृतियों में जिस तरह के दीर्घ वाक्य तथा अति-आलंकारिकता है उसकी तुलना में आगे चलकर वाक्यों के गठन में सरलता तथा अपने सभी पाठकों को खटकेगा। जहां कहीं साधु शैली का भी प्रयोग किया है, वही देशीय शब्द तथा लौकिक वर्णन-शैली के व्यवहार के द्वारा उन्होंने एक विशेष भाषा का निर्माण किया है। इसकी एक खूबी है तत्सम तथा अन्ततत्सम शब्दों के प्रयोग में तालमेल लाना। वाक्य संरचना के क्षेत्र में भी कर्ता-कर्म-क्रियापद की अन्विति को उन्होंने 1945 ई. के बाद की कहानी तथा गद्यलेखन में बदलने का सिलसिला शुरू किया और बाद में यह उनकी पहचान बन गयी। इस तरह से बांगला भाषा में जो लचीलापन हमें आज देखने को मिलता है, उसके लिए टैगोर की अवलांत परीक्षा-निरीक्षा ही दायी थी।

बोध प्रश्न

14) रवीन्द्रनाथ ने "गोरा" नामक उपन्यास में सामाजिक चेतना को प्रभुसत्ता ही है। स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

5) "धरे वाहिरे" रचना के द्वारा रवीन्द्रनाथ क्या संदेश देना चाहते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

16) रवीन्द्रनाथ की रचनाओं में विषयवस्तु की विविधता है। स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास

13) रवीन्द्रनाथ ने अपनी कहानियों में समाज के विभिन्न समस्याओं को दर्शाया है। चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) रवीन्द्रनाथ की साहित्यिक भाषा जहां एक ओर संस्कृतनिष्ठ है, वही बोलचाल का रूप भी लिए हुए है। दस-बारह पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6.6 काव्य वाचन

6.6.1 भारत तीर्थ

हे मोर चित्त, पुण्य तीर्थे जागो रे धीरे
एइ भारतेर महामानवेर सागरतीरे।
हेथाय दांड़ाये दु बाहु बाड़ाये नमि नरदेवतारे
उदार छंदे परमानंदे बंदना करि तारे।
ध्यान-गंभीर एइ-जे भूधर नदीजपमाला-धृत प्रांतर,
हेथाय नित्य हेरो पवित्र धरित्रीरे
एइ भारतेर महामानवेर सागरतीरे।।

(ओ मेरे हृदय, महामानवों से भरे इस पुण्य तीर्थ में धीरे से जागो इस भारत देश में खड़ा होकर में दोनों हाथ जोड़ कर उदार छंद में उनका वेदन करता हूं। नदी-पहाडी से घिरी इस ध्यान-गंभीर भूमि में हर रोज पूत धरणी की ओर देखता हूं, नमन करता हूं।)

केह नाहि जाने, कार आह्वाने कतो मानुषेर धारा
दुर्वार स्रोते एलो कोथा होते, समुद्रे हीलो हारा।
हेथाय आर्य, हेथा अनार्थ, हेथाय द्राविड़ चीन-
शकहुनदल पाठान मोगल एक देहे होलो लीन।
पश्चिम आजि खुलियाछे द्वार, सेथा होते सबे आने उपहार
दिबे आर निबे, मिलाबे मिलिबे, जाबे ना फिरे-
एइ भारतेर महामानवेर सागरतीरे।।

(कोई नहीं जानता है, किस के बुलावे से एक दुर्वार लहर की तरह की से असंख्य मनुष्यों की धारा आकर महासमुंद्र में विलीन हो जाती है– आर्य, अनार्य, द्राविड़, चीनी, शक, हुन, पाठान और मुगल सभी एक देह में मिला जाते हैं। आज पश्चिम के दरवाजे खुल गयी हैं, जहां से सभी ज्ञात का उपहार लाता है– देने और लेने को, मिलने-मिलाने को, पर एक बार इस महासागर के किनारे आकर लौट नहीं जाता है)

रणधारा बाहि जयगान गाहि उन्मादकलरवे
भेदि मरुपथ गिरिपर्वत जारा एसेछिलो सबे
तारा मोर माझे सबाइ विराजे, केह नहे नहे दूर-
आमार शोणिते रयेछे ध्वनिते तार विचित्र सुर।
हे रुद्रवीणा, बाजो, बाजो, बाजो, घृणा करि दूरे आछे जारा आजो
बंध नाशिबे- ताराओ आसिब, दाड़ाबे घिरे
एइ भारतेर महामानवेर सागरतीरे।।

(युद्ध की धारा में बह कर जयगान गाते हुए उन्मत्त चीत्कार करते हुए जो मरुप्रदेश दुर्गम गिरि-पर्वत को भेद कर इस देश को जीतने के लिए आये थे, वे सभी मेरे ही भीतर विराजते हैं, कोई दूर नहीं रह पाये, क्यों मेरे खून में, मेरी ध्वनि में उनका विचित्र सुर बज रहा है। हे रुद्रवीणा तुम बजती जाओ, अब भी जो लोग हम से घृणा कर दूर खड़े हैं या अपने द्वार को बंद रखा है– वे भी आयेंगे, मुझे घेर कर खड़े होंगे इस महान भारत के मानव-सागर के तट पर)।

हेथा एक दिन विराम-विहीन महा- ओंकारध्वनि
हृदयतंत्रे एकेर मंत्रे उठेछिलों रनरनि।
तपस्याबले एकेर अनले बहुरे आहुति दिया
विभेद भुलिलो, जागाये तुलिलो एकटि विराट हिया।
सेइ साधनार सेइ आराधनार यज्ञशालार खोला आजि द्वार-
हेथाय सबारे हबे मिलिबारे आनतशिरे
एइ भारतेर महामानवेर सागरतीरे।।

(यहां किसी ज़माने में अविराम ओंकार-ध्वनि से हृदय के तीर "एक" के मंत्र से बज

आराधना यज्ञशाला के द्वार खुले हैं, यहां सभी को इस महान भारत के मानव-सागर के तट नर मिलना ही पड़ेगा)।

सेइ हेमानले हेरो आजि ज्वले दुखेर रक्तशिखा–
हबे ता सहिते, मर्मे दहिते आछे ये भाग्ये लिखा।
ए दूखबेहन करो मोर मन, शोना रे एकेर डाक-
जतो लाज भय करो करो जय, अपमान दूरे जाक।
दु:सह व्यथा हये अवसान जन्म लभिवे की विशाल प्राण
पोहाय रजनी, जागिछे जननी विपुल नीड़।
एइ भारतेर महामानवेर सागरतीरे।।

(उस होमाग्नि में देखो आज दु:ख का दहन हो रहा है और उसी की अग्निशिखा धधक रही है। भाग्य में इस दहन को सहने की बात लिखी हुई है। ओ मेरे मन, तुम इस दु:ख को ढोने के लिए तैयार रहो। एक ही आवाज सुनो– जितना कुछ लाज, शर्म, डर, अपमान हो सकता है। सभी दूर करो। दु:सहनीय दर्द का अवसान होकर एक विशाल प्राण का जन्म होगा– यह रात अब बीतने वाली ही है, इस विराट नीड़ में अपनी जननी अब जाग रही है– इस भारत के महामानव के सागर-पार में)।

एसो हे आर्य, एसो अनार्य, हिन्दु मुसलमान–
एसो एसो आज तुमि इंराज, एसो एसो खृस्टान।
एसो ब्राह्मण, शुचि करि मन धरो हात सबाकार-
एसो हे पतित, करो अपनीत सब अपमानभार।
मार अभिषेके एसो एसो त्वरा, मंगलघट हयनि जे भरा
सब्बार-परशे-पवित्र-करा तीर्थनीरे-
आजि भारतेर महामानवेर सागरतीरे।।

(आर्य-अनार्य, हिन्दु-मुसलिम, अंग्रेज तथा खृस्टान- ब्राह्मण- तुम सभी आओ और मन को शुद्ध कर एक दूसरे का हाथ पकड़ो। पतित, तुम आकर सब अपमान का भार लाघव करो। मां के अभिषेक में तुम शीघ्र आ जाओ, अब भी मंगलघट को सब के स्पर्श से पवित्र किये हुए तीर्थजल से भरा नहीं गया है– अत: इस भारत के महामानव सागर की तटभूमि पर तुम आओ)।

6.6.2 प्रश्न "संचयिता" के "परिशेष" से

"भगवान, तुमि युगे युगे दूत पाठायेछौ बारे बारे
दयाहीन संसारे-
तारा बोले गेलो "क्षमा करो सबे, बोले गेलो "भालोबासो-
अंतर होते विद्वेषविष नाशो"।
वरणीय तारा, स्मरणीय तारा, तबुओ बाहिर-द्वारे
आजि दुर्दिने फिरानु तादेर व्यर्थ नमस्कारे।।

आमि जे देखेछि, गोपन-हिंसा कपट राजि-छाये
हेनेछे नि:सहये।
आमि जे देखेछि, प्रतिकारहीन शक्तिर अपराधे
विचारेर वाणी नीरबे निभृते कांदे।
आमि जें देखिनु, तरुण बालक उन्माद हये छुटे
की यंत्रणाय मरेछे पाथरे निष्फल माथा कुटे।।

कंठ आमार रुद्ध आजिके, बांशि संगीतहारा,
अमावस्यार कारा
लिप्त करेछे आमार भुवन दु:स्वपनेर तले,
ताइ तो तोमाय शुधाइ अश्रुजले-
जाहारा तोमार विषाइछे वायु, निभाइछे तब आजो,
तमि कि तादेर क्षमा करियाछो, तुमि कि बेसेछो भालो?"

कवि यहां गहन दु:ख के साथ उन वरणीय और प्रात:स्वरणीय धर्मगुरू दार्शनिकों की कही हुई बातें, उनकी क्षमा-शीलता और प्रेम की वाणी को व्यर्थ बताते हुए उनसे क्षमा मांग कर इन भगवान के दूतों को लौटाना चाहते हैं चूंकि उन्होंने इस निर्दय संसार में सुविधार की वाणी को बिना किसी प्रतिकार का चुपचाप रोते हुए देखा है, जहां छुपी हुई हिंसा असहाय का गला घोंट देती है, जहां शक्ति के अपराध से तरुण बालक पागल हो जाता है– "मर जाता संगीत नहीं है, कंठ रुद्ध है, क्योंकि एक बुरी ख्वाब अमावस का कारागार में बंद उनकी चारों ओर की आसपास का वातावरण। कवि का "प्रश्न" इतना ही है कि वश भगवान ने इन मनुष्य-रूपी पशुओं को क्षमा कर दी है? क्या इन्हें भी प्रेम करने को कहेंगे?

6.6.3 आत्मत्राण "संचयिता" की "गीतांजलि" से

विपदे मोरे रक्षा करो, ए नहे मोर प्रार्थना-
विपदे आमि ना जेन करि भय।
दु:खतापे-व्यथित चिते नाइ-बा दिले सान्त्वना,
दु:खे जेन करिते पारि जय।
सहाय मोर ना जदि जुटे निजेर बल ना जेन टूटे-
संसारेले घटिले क्षति, लभिले शुधु वंचना,
निजेर मने न जेन मानि क्षय।।
आमारे तुमि करिबे त्राण, एं नहे मोर प्रार्थना-
तरिते पारि शक्ति जेन रय।
आमार भार लाघव करि नाइ-बा दिले सान्त्वना,
बहिते पारि एमनि जेन हय।
नम्रशिरे सुखेर दिने तोमारि मुख लइबो चिने-
दुखेर राते निखिल धरा जेदिन करे वंचना
तोमारे जेन ना करि संशय।।

"मेरी प्रार्थना यह नहीं है कि संकट की घड़ी में ही मेरी रक्षा करो- (मैं यह चाहता हूं कि) विपत्ति के समय मैं भयभीत न हो जाऊं (मेरे) इस दु:खी, संतप्त, व्यथित चित्त, को अगर तुम सांत्वना नहीं दो तो कोई शिकवा नहीं, मैं केवल चाहता हूं कि दु:ख पर मेरी ही जीत हो। अगर मेरी कोई सहायता नहीं करता है तो न करे, मेरी अपनी शक्ति नहीं टूट जाये। अगर संसार-परिवार में केवल क्षति ही होती है, वंचना ही मिलती है, उससे अपने मन की कोई क्षति नहीं हो।

"तुम मेरा उद्धार करो, यह मेरी प्रार्थना नहीं है– मेरी स्वयं पार होने की शक्ति बरकारार रहे। मेरा भार-लाघव कर अगर मुझे सात्वना न दे सको तो न ही सही, कम से कम ऐसा हो कि उस बार को वह सकूं। नतमस्तक होकर सुख के दिनों में ही तुम्हें में जान लूंगा, पहचान लूंगा, जिससे करे तब भी में तुम्हें संशय संदेह न करूं।"

6.6.4 निर्झरेर स्वप्न-भंग

"आजि ए प्रभाते प्रभातविहग
की गान गाइलो रे।
अतिदूर दूर
भासिया आइलो रे।
ना जानि केमने
पथहारा तार एकटि तात,
आंधार गुहाय भ्रमिया भ्रमिया
गभीर गुहाय नामिया नामिया
आकुल हइसा कांदिया कांदिया
छुंयेछे आमार प्राण।
आजि ए प्रभाते
पथहारा रविकर

आलय ना पेय पड़ेछे आसिये
आमार प्राणेर पर।
बहुदिन परे आंधार सलिले
एकटि कनकरेखा।
प्राणेर आवेग राखिते नारि
थर थर करि कांपिछे वारि,
टलमल जल करे थल थल,
कल कल करि धरेछे ताने।
आजि ए प्रभाते की जानि केन रे
जागिया देखिनु चारिदिके मोर
पाषाणे रचित कारागार घोर,
बुकेर उपरे आंधार बगिया
करिछे निजेर ध्यान।
ना जानि केन रे एतदिन परे
जागिया उठेछे प्राण!"

और फिर कविगुरू आगे लिखते हैं–
"की जानि की होलो आजि जागिया उठिलों प्राण,
दूर हते शुनि जेन महसागरेर गान-
पाषाण-बांधन टूटि, भिजाये कठिन धरा,
बनेरे श्यामल करिलि, फुलेरे फुटाये त्वरा,
साराप्राण ढालि दिया,
जुड़ाये जगत-हिया-
आभार प्राणेर माझे के आसिबि आय तोरा।
आमि जाबो, आमि जाबो, कोथाय से, कोन देश-
जगते ढालिबो प्राण,
गाहिबो करुणागान,
उद्वेग-अधीर हिया
सुदूर समुद्रे गिया
से प्राण मिशाबो आर से गान करिबो शेष।
ओरे चारिदिके मोर
ए की कारागार घोर।
भाङ भाङ भाङ कारा, आघात आघाते कर।
ओरे आज की गार गेयेछे पारिव,
एसेछे रविर कर।"

रवीन्द्रनाथ यहां एक झरने की आत्मकथा लिखते हुए कह रहे हैं कि आज इस विशेष सुबह के समय प्रातः की पंछी यह कौन सा गीत गा रही हैं जो कि दूर के गगन से बह कर आ रहा है और जिसका एक भूला-भटका तान अधेरे गहन गुफा में घूम-घूम कर उतर कर आकुल आर्ति के साथ मेरे प्राण को छू जाता है? आज इसी प्रभात में राह-भूला रवि की किरणों में से एक किरण्ध की कनक-रेखा आलय न पा कर इसी गुहा में कैसे घुस आयी है– जिससे मैं आवेग को रोक नहीं पा रहा हूं, वारिर कांप रही है, आबद्ध जल थिरक उठा है और गीत गा उठा है? आज की प्रातः जब कि प्राण जाग उठा है, देखता हूं कि घोर कारागार में मेरा प्राण बंदी है, पाषाणों के बीच और हमारी ही छाती पर बैठ कौन ध्यान पर जुटा हुआ है, जिससे पता नहीं कैसे जाग उठा है मेरा प्राण? दूर से महासागर के संगीत को सुन कर मेरा प्राण आज जाग उठा है। गीत के बोल हैं– "पत्थरों के बंधन को तोड़ धरणी को पानी से सींच कर, अरण्य को श्यामल बना, पुष्पों को प्रस्फुटित कर अपने प्राण की आहुति दे कर जगत् को आनन्दित कर मेरे प्राण के भीतर आ जाओ, जो भी आना चाहो।"

यह सुन कर कवि का कहना है – आबद्ध निर्झर कह उठता है: "मैं जाऊंगा, जाऊंगा ही कहां है वह, कौन-सा है वह देश– वहीं दंगा अपना प्राण करुणा-गीत गाते हुए अधीर

उद्विग्न हृदय को लेकर दूर समुद्र में जा कर प्राण की आहुति देकर इस गीत को करुंगा शेष। मेरी चारों ओर के ये पाषण इस कारागार को आघात पर आघात कर ताड़ डालो, क्योंकि आज पंछियों ने जो प्रभात-संगीत गाये है, उससे रवि की किरणें आ उतरी है मेरे गुफा में।"

6.7 गद्य वाचन

6.7.1 हिमालय यात्र

उपनयन के समय सर मुंड़वाकर अत्यंत दुश्चिन्ता हुई, अब स्कूल में कैसे जाएं? फिरंगियों के लड़के गोजाति के मति आंतरिक रूप से कितना भी आकृष्ट हों, ब्राह्मण के प्रति तो उनके मन में भक्ति नहीं होती है। अतः गंजे सर पर वे और कुछ वर्षण करें न करे, हास्य-वर्षण तो करेंगे ही।

ऐसी दुश्चिन्ता की घड़ी में एक दिन तीसरी मंजिल के कमरे में जाने के लिए बुलावा आया। पिताजी ने पूछा, मैं उनके साथ हिमालय जाना चाहता हूं या नहीं। "चाहता हूं" यह बात अगर चिल्लाकर आकाश फाड़कर कह सकता तो वह हमारी मनःस्थिति की सही प्रतिक्रिया होती। कहां बंगल अकादमी और कहां हिमालय।

घर से यात्रा करते समय पुरानी रीति करे मान कर पिताजी ने घर के सभी सदस्यों के साथ बरांदे में एकत्र होकर उपासना की; गुरुजनों को प्रणाम कर मैं पिताजी के संग गाड़ी पर चढ़ा। मेरी उम्र में यह पहला अवसर था जब खास तौर से मेरे लिए पोशाक बनवाया गया था। किस तरह के और किस रंग के कपड़े होंगे उसका आदेश स्वयं पिताजी ने दिया था। सर पर पहनने के लिए जरि का काम किया हुआ एक मखमल का टोपा बना था। उसे मैंने हाथ में रखा था, क्योंकि गंजे सर पर टोपी पहनने के लिए मेरे मन में एतराज़ था। गाड़ी पर चढ़ते ही पिताजी ने कहा, "सर पर रखो।" पिताजी के पास हों तो सफाई में कोई त्रुटि होने की गुंजाइश नहीं था। लज्जित मस्तक पर उस टोपे को पहनना ही पड़ा। रेलगाड़ी में अगर थोड़ा सा मौका मिलता तो मैं उस टोपे को उतार लेता। लेकिन, पिताजी की नज़र से मुक्ति पाना असंभव था। इसलिए उसे तत्क्षणात् स्वस्थान पर रख देना पड़ता था।

बाल्यकाल से वयस्क अवस्था होने से पिताजी का हर काम एवं उसकी संकल्पना को मैंने यथावथ पाया। वे मन में किसी बात को अस्पष्ट रख नहीं सकते थे, एवं उनके कर्म में भी इसलिए जैसे-तैसे कुछ करना संभव न था। उनके प्रति दूसरों का ओर दूसरों के प्रति उनका सभी कर्तव्य अत्यंत सुनिर्दिष्ट था। हम लोग जातिगत रूप से ही ढीले-ढीले हैं। थोड़ा बहुत उन्नीस-बीस हो जाने को हम लोग अमल ही नहीं करते हैं। इसलिए उनके साथ बात-व्यवहार के समय हम सभी को बहुत भीत और सावधान रहना पड़ता था। उन्नीस-बीस होने पर भले ही कोई क्षतिवृद्धि न हो, लेकिन उससे व्यवस्था में जो परिवर्तन करना पड़ता है उसीसे वह आहत बोध करते थे। उन्होंने जिस बात की भी संकल्पना की उसके प्रत्येक अंगप्रत्यंग की वह मनश्चक्षु के द्वारा प्रत्यक्ष कर लेते थे। इसलिए कौन से क्रियाकर्म में कौन-सी चीज़ कहां रहेगी, कौन कहां बैठेगा, किस के ऊपर कौन से काम का दायित्व रहेगा– ये सभी बातें वह शुरू से अंत तक मन ही मन निश्चित कर लेते थे और कदापि किसी अंश में उसका अन्यथा होने नहीं देते थे। उसके बाद वह काम पूरा हो जाने पर विभिन्न व्यक्ति से उसका विवरणं सुनते थे। हर आदमी की वर्णना को एक-दूसरे के साथ मिला कर उन घटनाओं को वह मिला कर स्पष्टतर रूप से देखने की कोशिश करते थे। इस संबंध में हमारे देश का जातिगत धर्म उनमें बिल्कुल न था। उनकी संकल्पना और चिंता में तथा उनके आचरण और अनुष्ठान में ज़रा सी भी शिथिलता बरतने का कोई चारा न था। इसलिए हिमालय यात्रा में उनके पास जितने दिन तक रहा– एक तरफ तो मेरे लिए प्रचुर मात्रा में स्वाधीनता थी, दूसरी तरफ मेरा समस्त आचरण अंध्यरूप से निर्दिष्ट था। जहां वह छूट देते थे, वहां वह किसी भी कारण से कोई बाधा ही नहीं डालते थे। जहां वह नियम बनाते थे वहां तनिक भी छेद नहीं छोड़ते थे।

यात्रा के प्रारंभ में थोड़े दिन तक पहले बोलपुर में रहने की बात थी। कुछ दिन पहले माता-पिता के साथ सत्य वहां गया था। उसके पास भ्रमण-विवरण जो कुछ सुना था उन्नीसवीं सदी के भद्र परिवार का कोई भी शिशु उसका विश्वास नहीं कर सकता था। लेकिन, हमारे उस ज़माने में संभव-असंभव के बीच की सीमा-रेखा कहां है जिनका सही पहचान तक हमें न था। कृत्तिवास तथा काशीराम दास ने इस विषय में कोई सहायता नहीं की थी। रंगीन शिशुपाठ्य पुस्तक तथा चित्रमय बच्चों की पत्रिकाओं ने सत्य-मिथ्या के बारे में हमें पहले से सावधान नहीं किया था। दुनिया एक कठिन नियमों के उपसर्ग से बंधी है, यह हमें अपने-आप धक्का खाकर सीखना पड़ा।

सत्य ने कहा था, विशेष कुशली न हो तो रेलगाड़ी पर चढ़ना एक भयंकर संकट के समान था, पैर फिसल जाए तो बचना मुश्किल था । उसके बाद, जब गाड़ी चलने लगती है तो अपने शरीर की समस्त शक्ति को समेट कर खूब जोर लगा कर बैठना पड़ता था, नहीं तो ऐसा धक्का लगता है कि यात्री कहां जा गिरता है उसका कोई ठिकाना नहीं है। स्टेशन पहुंचते ही मन बहुत डर रहा था। लेकिन गाड़ी पर इतनी आसानी से चढ़ा कि मन में संदेह हुआ कि शायद अभी भी गाड़ी पर चढ़ने का असली पर्याय बाकी ही है। उसके बाद जब गाड़ी अत्यंत सहज रूप से चलने लगी तब विपत्ति का कोई आभास न पाकर मेरा मन विभर्ष हो गया।

गाड़ी चलती चली; तरुराजि का हरित-नीलाभ आंचल के घेरा टोप में विस्तीर्ण खेत-पथार और छायाच्छन्न गांव रेलगाड़ी की दोनों ओर चित्रित झरने की तरह बहुत तीव्र गति में भागते जा रहे थे, जैसे मरीचिका का बाढ़ आया हुआ है। शाम के समय बोलपुर पहुंचा। पालकी पर चढ़कर आंखें मूंद ली। एक ही बार कल सुबह ही बोलपुर का समस्त विस्मय मेरे जागृत नयन के सामने खुल जाता है, यही मेरी इच्छा थी। संध्या की अस्पष्टता के बीच अगर कुछ आभास मिल जाता है तो कल के अखंड आनंद में रस भंग होगा।

सुबह उठकर हृदय में कम्पन लिए मैं बाहर आकर खड़ा हो गया। मेरे पूर्ववर्ती भ्रमणकारी ने मुझे बताया था, 'पृथ्वी के अन्यान्य स्थान के साथ बोलपुर का प्रभेद यह था कि कोठीबाड़ी से रसोईघर तक जाने के पथ पर किसी तरह का आवरण नहीं था फिर भी मेरे शरीर पर धूप या बारिश की छींटे कुछ भी नहीं लगती थी। इस अद्‌भुत रास्ते को ढूंढ़ने के लिए निकल पड़ा। पाठक को यह सुनकर आश्चर्य-चकित होना नहीं चाहिये कि आज तक मैंने उसे ढूंढ़ नहीं पाया।

हम शहरी लड़के हैं, कभी धान का खेत नहीं देखा और गोचारकों की बातें हमने केवल किताबों में ही पढ़कर उनकी छवि कल्पना के पट पर आंक ली थी। सत्य से सुना था, बोलपुर के खलिहान में चारों ओर पकें धान ही धान है और वहां गोपालकों के साथ खेल-कूद उसका प्रतिदैतिक हर-वख्त की बात थी। धान के खेत से चावल चुनकर उसे पका कर गोपालकों के साथ एकसाथ बैठकर खाना– इस खेल का प्रधान अंग।

व्याकुल होकर मैंने चारों ओर देखा। हाय, इस मरुप्रांतर में कहां था वह धान का खेत। कुछ गोचारक शायद उस मैदान में कही थे, लेकिन उन्हें खास तौर पर "गोपी" के रूप में पहचानना असंभव था।

जो कुछ नहीं देखा उसका दुःख दूर होने में देर नहीं हुई। जो देखा वही हमारे लिए काफी था। यहां नौकर लोगों का शासन नहीं था। प्रांतरलक्ष्मी ने दिक्‌चक्रवाल पर केवल एक नील रेखा की सीमा आंक रखी थीं, इसलिए मेरे आवाध-संचरण में कोई बाधा न था।

यद्यपि मैं छोटा था, मेरे पिता कभी मुझे यथेच्छ-बिहार पर रोक नहीं लगाते थे। मानो किसी अभूतपूर्व किसी वस्तु के संधान में मैं तब उस खोवाइ की उपत्यका-अधित्यका पर घूमता रहता था। इस छोटे-से अनजान राज्य में था लिविंस्टोन। लगता था जैसे यह दूरबीन के उल्टी तरफ का देश हो। नदी-पहाड़ सब छोट-छोटे थे, वैसे ही नाटे और छोटे थे बीच-बीच में इधर-उधर बिखरे हुए जंगली जामुन और खजूर के पेड़।

मेरे द्वारा आविष्कृत उस नदी की मछलियां भी वैसी ही थी, और आविष्कारकर्त्ता के बारे में तो कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं है।

पिताजी शायद मेरी सावधानी को परखने तथा उसकी उन्नति साधन के लिए मेरे पास दो-चार आने रख कर कहते थे— हिसाब रखना पड़ेगा— और मेरे ऊपर उन्होंने अपनी सोने की घड़ी को दम देने का भार सौंप रखा था। इससे कोई क्षति हो सकती है, इसकी चिंता उन्हें नहीं हुई। मुझे दायित्व देकर दीक्षित करना ही उनका अभिप्राय था। सुबह जब घूमने निकलते थे मुझे साथ में लेते थे। सड़क पर भिखारी देखते थे तो मुझे भिक्षा देने का आदेश देते थे। अंत में जब उनके पास जमा खर्च मिलाने के लिए जाते थे तो कभी हिसाब बराबर नहीं होता था। एक दिन तो जमा-राशि और अधिक हो गयी। उन्होंने कहा, "मुझे लगता है, तुम्हीं को अपना खजांची रखना पड़ेगा क्योंकि तुम्हारे हाथ में मेरा पैसा और ज्यादा हो जाता है।" उनकी घड़ी में मैं बहुत यतन से दम लगाता था। यत्न में शायद कुछ प्रबलता थी उसे शीघ्र ही मरम्मत के लिए कलकत्ता भेजना पड़ा।

मैंने पहले ही बताया है, मन-ही-मन सभी बातें सुस्पष्ट रूप से देख लेना ही उनका स्वभाव था— चाहे वह हिसाब की राशि ही क्यों न हो, प्राकृतिक दृश्य हो या किसी अनष्ठान की व्यवस्था ही क्यों न हो। शान्तिनिकेतन का नया मंदिर उन्होंने स्वयं नहीं देखा है। लेकिन जो भी शान्तिनिकेतन को देखकर उनके पास गया, उनमें से प्रत्येक आदमी से उसका ब्यौरा सुनकर उन्होंने प्रत्यक्ष उन वस्तुओं को मन में ही जोड़कर उनका चित्र बना लिया था। उनकी स्मरण-शक्ति तथा धारण-शक्ति असाधारण थी। इसलिए जो बात एक मन में समा जाती थी, उसे वह किसी तरह से अपने मन से भ्रष्ट नहीं होने देते थे।

भगवद्गीता में पिताजी के मन-पसंद श्लोको पर निशान लगायें हुए थे। उन्हें बांगला अनुवाद के साथ मुझे उन्होंने कॉपी करने को दिया था। घर में मैं एक छोटा-सा लड़का था, पर यहां मेरे ऊपर इन सभी गंभीर कार्यों का भार पड़ते ही उनका गौरव खूब अच्छी तरह से अनुभव करने लगा।

इस बीच में उस फटी-पुरानी नीली कॉपी को विदा कर मैंने एक लेट्स डायरी संग्रह कर लिया। अब कॉपियां और अन्याय बाहरी उपकरणों बाहरी उपकरणों के द्वारा कवित्व की इज़्ज़ात रखने की ओर ध्यान गया है। केवल कविता की रक्षा ही नहीं, अपनी कल्पना के सामने स्वयं को कवि के रूप में प्रतिष्ठा दिलाने की एक कोशिश जन्मी है। इसलिए बोलपुर में मैं जब कविता लिखता था, तब बगीचे के एक कोने में एक छोटे से नारियल के पेड़ के नीचे जमीन पर पैर फैला कर बैठ कर कॉपी को कविताओं से भराने में लगा रहा था। ऐसा करना काफी कविजनोचित लगता था। तृणहीन कंकरशय्या में बैठ कर रौद्र के उत्ताप का आनंद लेते हुए "पृथ्वीराज का पराजय" नाम का एक वीररसात्मक काव्य मैंने लिखा था। उसके प्रभुत वीर रस ने भी उसे विनाश होने से बचा न सका। उसका योग्य वाहन वह लेट्स डायरी भी अपनी ज्येष्ठ सहोदरा नीली कॉपी का ही अनुसरण कर कहां चली गई, उसका पता किसी के पास नहीं रख गयी।

बोलपुर से बाहर निकल साहबगंज, दानापुर, इलाहाबाद, कानपुर आदि स्थान पर बीच-बीच में विश्राम करते हुए अंत में हम अमृतसर जा पहुंचे।

अमृतसर का गुरुद्वार मुझे सपनों की तरह याद है। ऐसा बहुत दिन हुआ है कि पितृदेव के साथ पैदल उत्य सरोवर के बीच में सिक्खों के मंदिर में गया था। वहां सर्वदा भजन गीत चलते ही रहते हैं। मेरे पिता उन सिक्ख उपासकों के बीच बैठ कर अचानक सुर में उन्हीं के साथ भजन गाने में लग जाते थे। एक भिन्न देश के रहने वाले के स्वर में उनकी इस वंदनगीति को सुनकर वे अत्यंत उत्साहित होकर उनका समादर करते थे। लौटते वक्त मिछरी के टुकड़े और हलवा ले जाते थे।

एक बार पिताजी ने गुरुद्वार के एक गायक को घर में बुलाकर उनसे भजन सुना था। शायद उसे जो परस्कार दिया गया था। उससे कम भी दिया जाय तो वह खुश होते।

पर इसका परिणाम यह हुआ कि हमारे घर में गाना सुनाने के उम्मीदवारों की संख्या में इतनी वृद्धि होने लगी कि उनके पथरोध के लिए सख्त बंदोबस्त की आवश्यकता हो गई।

जब शाम ढल आती थी तब पिताजी बागिचे के सामने के बरांदे पर आकर बैठते थे। तब उन्हें ब्रहमसंगीत सुनाने के लिए मेरा बुलावा आता था। चंद्रमा का उदय हुआ, पेड़ की छांह के भीतर से ज्योत्सना का आलोक बरांदे के ऊपर आ पड़ा है, और मैं बेहाग रागिणी में गा रहा हूं।

तुम बिनु कौन प्रभु संकट निवारे
कौन सहारा इस भव-अंधकार में।।

वे निस्तब्ध होकर सर झुका कर अपनी गोद में दोनों हाथ जोडकर सुन रहे हैं– उस शाम की छवि आज भी याद आती है।

पहले ही कहा है, एक दिन मेरी लिखी हुई दो एक पारमार्थिक कविता श्री कठबाबू से सुनकर पितृदेव ने हंसा था। उसका प्रतिशोध में बड़ा होने के बाद किसी और ही दिन ले सका। यहां उस बात के बारे में बताना चाहता हूं।

एक बार माधोत्सव के अवसर पर मैंने सुबह और शाम को अनेक गाने लिखे थे। उनमें से एक गाना था–

"नयन न तुमको देख सका है, हो तुम नयन नयन में।"

पिता तब चुंचुड़ा में थे। वहां मेरा और ज्योतिदादा का बुलावा आया। हारमोनियम पर ज्योतिदादा को बिठाकर मुझे उन्होंने सब नये गीत एक के बाद एक गाने को कहा। कोई कोई गाना दोबार भी गाना पड़ा।

जब गायन का पर्व पूरा हुआ तब उन्होंने कहा, "देश का राजा अगर इस देश की भाषा जानता तो साहित्य का कद्र कर पाता और तभी कवि को समुचित ढंग से पुरस्कार भी देते। राजा की ओर से जब उसकी कोई संभावना ही नहीं है तब मुझे ही वह काम करना पड़ेगा।" यह कहकर उन्होंने एक पांच सौ रुपये का चैक मेरे हाथ में रखा।

पिताजी मुझे अंग्रेजी सिखाने के लिए "पिटर पार्लेज़ टेल्स" इस श्रृंखला की बहुत सारी किताबें ले गये थे। उनमें से बेंजमिन फ्रैंकलिन की जीवनी को उन्होंने मेरे पाठ्य के रूप में चुन लिया। उन्होंने सोचा था, जीवन-कथा कहानी की तरह लगेगी। और इससे पढ़ने से वैसे भी मेरा उपकार भी होगा। लेकिन जब वह पढ़ाने लगे तो उनकी भूल का उन्हें अहसास हुआ। बैंजमिन फ्रैंकलिन अत्यंत बुद्धिमान मनुष्य थे। उनकी हिसार्ब काम की धर्मनीति और उसकी संकीर्णता से मेरे पिताजी बहुत पीड़ित रहते है। वे कहीं-कहीं पढ़ाते-पढ़ाते फ्रैंकलिन की धोरतर सांसारिक विज्ञता का दृष्टांत और उपदेश वाक्य से तंग आकर बिना प्रतिवाद किये रह नहीं सकते थे।

इससे पहले मुग्धबोध को रटने के अलावा संस्कृत शिक्षा की कोई चर्चा नहीं हुई थी। पिताजी ने मुझे एक ही बार में "ऋजुपाठ" के दूसरी भाग से पढ़ाना शुरू किया और उसी के साथ उपक्रमणिका का शब्द रूप भी रटने को कहा। हमें बांगला इस तरह से पढ़नी पड़ी थी कि उसी से संस्कृत पठन-पाठन का काम अनेक आगे बढ़ गया था। बिल्कुल शुरू से ही वे हमें संस्कृत में रचना करने के लिए उत्साहित करते थे। मैं जो भी पढ़ता था, उसी के शब्दों को उलट-पुलट कर लंबा-लंबा समाज का ग्रंथन कर जहां-तहां उनमें अनुस्वार जोड़ कर देवभाषा को अपदेवता के योग्य बना देते थे। लेकिन पितृदेव ने मेरे इस अद्भुत दुःसाहस का एक दिन भी उपहास नहीं किया था।

इनके अलावा वे प्रोक्टर की लिखी सरलपाठ्य अंग्रेजी ज्योतिष पुस्तक से भी अनेक विषयों के बारे में मौखिक रूप से ही मुझे समझा देते थे। मैं उन्हीं को बांगला में लिख लेता था।

उनके अपने पठन के लिए उन्होंने जो किताबें साथ में ली थी उनमें से एक पुस्तक मेरी नज़र में खूब खटकती थी। दस-बारह खंड सजिल्द वृहदाकार यह पुस्तक थी गिबन का "रोम"। देखकर लगता नहीं था कि इसमें कोई रस है। मैं मन ही मन सोचता था मुझे बाध्य होकर बहुत सारी पुस्तकें पढ़नी पड़ती हैं। कारण मैं बच्चा हूं, इसके सिवा मेरा और कोई चारा नहीं है। लेकिन ये अगर चाहते तो नहीं भी पढ़ सकते थे– फिर यह दुःख किस बात की?

अमृतसर में मैं एक महीने तक था। वहां से चैत के अंत में हम डलहौजी पहाड़ की ओर चल पड़े। अमृतसर में वह एक महीना जैसे बीतता नहीं था। हिमालय का आह्वान मुझे अस्थिर कर दिया था।

जब खटोले पर चढ़कर पहाड़ पर ऊपर जा रहा था तब पर्वत की उपत्यका– अधित्यकाओं में अनेक प्रकार के चैताली फसलों में अनेक स्तर और पंक्तियों में सौन्दर्य की आग लग गयी थी। हम लोग सुबह दूध-रोटी खाकर निकलते थे और शाम को डाक बंगलों में लौटते थे। सारा दिन मेरी आंखों को विश्राम नहीं मिलता था– डर होता था, कुछ छूट न जाए। डोली को ढोने वाली डोलियां कंधे पर से उतार कर वहीं आराम करते थे जहां पहाड़ के कोनें-कोने में, रास्ते के मोड़ पर पल्लवों के भार से नमित वनस्पति के झुंड निविड़ छाया की रचना कर खड़े हैं और ध्यानी वृद्ध पवस्वियों की गोद के पास लीलामयी मुनिकल्याओं की तरह दो-एक झरनाओं की धारा उस छाया के बीच से शैवालों से आच्छन्न काले पत्थरों के ऊपर से बहती हुई घनशीलता अंधेरे के निभृत नेपथ्य से कलकल करती हुई झर रही होती है। मैं एक लोभी की तरह सोचता था, ये सभी जगहें हमें क्यों छोड़कर जाना पड़ रहा है? यहीं रह जायें तो क्या हर्ज़ है?

नये परिचय की एक बहुत बड़ी सुविधा है। मन को तब पता ही नहीं चलता है कि ऐसा अभी और भी है बाकी। वह जान जाये तो हिसाबी मन दिल लगाने के खर्चे में कुछ बचत की गुंजाइश भी रखता है। जब हर एक वस्तु दुर्लभ लगने लगता है, तो मन भी अपनी कृपणता को दूर कर उसकी पूरी कीमत चुकाने में जुट जाता है। इसलिए मैं कभी-कभी कलकत्ते की सड़क से जाते हुए भी अपने को एक विदेशी के रूप में सोचने लगता हूं। तभी समझ में आता है, देखने वाली बातें बहुत-सी हैं, केवल दिल लगाने का, मनोनिवेश का मूल्य नहीं देते हैं हम इसलिए देख नहीं पाते हैं। इसीलिए देखने की भूख मिटाने के लिए लोग विदेश जाते हैं।

पिताजी ने मेरे पास अपने छोटे कैश-बक्से को रखने का भार दिया था। इस कार्य के लिए मैं ही योग्य व्यक्ति था, ऐसा सोचने का कोई कारण नहीं था। किशोरी चाटुर्या को देते तो निश्चित रह सकते थे, लेकिन उनका उद्देश्य ही था मेरे ऊपर भार देना। डॉक बंगलों में पहुंच कर एक दिन उस बक्से को उनके हाथ में न देकर टेबुल पर रखा था, इस पर उनसे मुझे बहुत डॉट सुननी पड़ी थी।

डाक बंगलों में पहुंच कर पितृदेव बंगलों के बाहर चौकी लेकर बैठते थे। शाम हो आती तो पर्वत के स्वच्छ आकाश में तारे आश्चर्य रूप से स्पष्ट हो उठते थे और पिता मुझे ग्रहतारका का पहचान दिला कर ज्योतिष्क के बारे में विचार-विवेचन करते थे।

बक्रेटा में हमारा आवास एक पहाड़ के सर्वोच्च शिखर पर था। यद्यपि तब वैशाख का महीना था, शीत का प्रकोप अति प्रबल था। वह इतना अधिक था कि रास्ते पर जहां धूप नहीं पहुंचती थी वहां बर्फ गलता नहीं था।

यहां भी किसी विपत्ति की शंका में पहाड़ पर मेरे स्वेच्छा-भ्रमण पर उन्होंने कभी रोक नहीं लगाया।

हमारे आवास के नीचे की एक खाड़ी में एक फैला हुआ केलुवन था। उस वन में मैं अकेला अपना लौहफलक-विशिष्ट छड़ी लेकर प्रायः घूमने जाता था। वनस्पतियां प्रकांड दैत्य की तरह विशाल-विशाल छाया सहित खड़ी हैं, न जाने कितने सौ साल के उनका

शरार का छूता हुआ घूम रहा है। वन की छाया में घूसते ही न जाने कैसा एक स्पर्श का आभास मिला। मानो साँप की जिस्म सी एक सघन शीतलता थी और वनतल की सूखी पत्रराशि पर धूप-छांव का पर्याय लगता था जैसे एक प्रकांड आदिम सरीसृप के शरीर की विचित्र रेखावली।

मेरा सोने का कमरा था एक कोने का घर। रात को बिस्तरे पर सोकर शीशे की खिड़की के भीतर से नक्षत्रों के आलोक की अस्पष्टता में पर्वत-शिखर की पांडुर तुषार-दीप्ति देख सकता था। कभी-कभी न जाने कितने रात को देखता, पितृदेव एक लाल चादर ओढ़े हाथ में मोमबत्ती का सेज लेकर निःशब्द-चरण चल रहे हैं। शीशे से घिरा बाहर के बरांदे पर उपासना के लिए जाते थे।

उसके बाद एक और निद्रा के उपरांत देखता हूं पिताजी मुझे धक्का देकर जगा रहे हैं। तब भी रात का अंधेरा पूरी तरह से बीता नहीं है। "उपक्रमणिका" से "नर नरौं नराः" रहने का वही समय मेरे लिए निर्दिष्ट था। ठंड में ठिठुरता कंबलों के तप्त वेष्टन से अतीत दुःख का था वह उद्‌बोधन।

सूर्योदय के समय पितृदेव जब प्रभात की उपासना के बाद एक कटोरा दूध का पान समाप्त करते थे, तब मुझे बगल में खड़ा कर वह उपनिषद का मंत्र पढ़कर एक बार फिर उपासना करते थे।

उसके बाद मुझे लेकर घूमने निकलते थे। उनके साथ चलना मेरे बस का कैसे हो सकता है? अनेक वयस्क आदमी के लिए भी वह संभव नहीं था। मैं पथ ही में किसी एक स्थान पर रुक कर पगदंडी पर से चढ़कर अपने आवास पर लौट आता था।

पिताजी जब लौट आते थे, तो करीब घंटा-भर अंग्रेजी का पाठ चलता था। उसके बाद दस बजे बर्फ को पिघलाया हुआ हिमशीतल जल से नहाना पड़ता था। उनके आदेश को न मान कर घड़े में गर्म पानी मिलाने का साहस किसी भी नौकर में न था। अपने यौवन में उन्होंने किस तरह दुःसह-शीतल जल में नहाया करते थे उन कहानियों को दोहरा कर वह मुझे उत्साह देते थे।

दूध पीना मेरे लिए एक और तपस्या का शामिल था। मेरे पिताजी प्रचुर मात्रा में दूध पीते थे। मैं दुग्धपान की इस पैतृक शक्ति का उत्तराधिकारी हो सकता कि नहीं यह कहना कठिन ही था। लेकिन पहले ही बताया है, न जाने क्यों मेरी पानाहार की आदत उनके विपरीत दिशा में गयी थी। उनके साथ मुझे भी दूध पीना ही पड़ता था। इसलिए नौकरों का शरण लेना पड़ता था। वे मेरे प्रति दया दिखाने के लिए हो या अपने प्रति ममत्वबोध के लिए हो मेरी कटोरी में दूध की तुलना में झाग ज्यादा देते थे।

दोपहर के समय आहार के बाद पिताजी फिर एक बार मुझे पढ़ाने के लिए बैठते थे। लेकिन वह मेरे लिए असाध्य ही था। सवेरे की नष्ट-निद्रा अपनी अकाल-बोधन का प्रतिशोध लेती थी। में बारबार नींद के मारे ढुलने लगता था। मेरी हालत को समझ कर पिताजी के छुट्टी दे देते ही मेरी नींद न जाने कहां गायब हो जाती थी। उसके बाद फिर से देवात्मा मनगाधिराज पर घूमने का मौका मिलता था।

एक दिन दोपहर को लाठी हाथ में लिए मैं अकेला एक पहाड़ से दूसरे पहाड़ पर चला जाता था। पिताजी उस बात पर कभी उद्‌वेग-प्रकाश नहीं करते थे। उनके जीवन के अंत तक मैंने यह देखा है कि किसी भी कारण से हमारी स्वाधीनता में वह बाधा डालना नहीं चाहते थे। उनकी रुचि और मत के विरुद्ध में मैंने बहुत काम किया है, वह चाहते तो शासन कर उनके लिए मना कर सकते थे, लेकिन कभी ऐसा नहीं किया है। जो कुछ कर्तव्य है वह सभी हम आंतरिक रूप से करेंगे– वह इसी बात की प्रतीक्षा करते थे। सत्य और शोभन को हम बाहर की ओर से लेंगे इस बात पर उनका मन तृप्त नहीं होता था। वह जानते थे, सत्य को तब तक ग्रहण करना असंभव होता है, जब तक सत्य से प्यार नहीं हो जाता। पर वह यह भी जानते थे कि सत्य के कोई परे चला भी जाए तो भी एक दिन सत्य की ओर लौट सकता है। लेकिन कृत्रिम

शासन के द्वारा सत्य को तत्काल अथवा अंधभाव से अगर मान लिया जाता है तो सत्य की ओर लौटने का द्वार रुद्ध हो जाता है। ऐसे ही कई महीना बीत जाने के बाद पितृदेव ने उनके अनुचर किशोरी चाटुर्या के साथ मुझे कलकत्ता भेज दिया।

6.7.2 काबुलिवाला

आमार पांच बछरेर छोटो मेये मिनि एक दंड कथा ना कहिया थाकिते पारे ना। पृथिवीते जन्मग्रहण करिया भाषा शिक्षा करिते से केवल एकटि वत्सर काल व्यय करियाछिलो, ताहार पर हइते जतक्षण से जागिया थाके एक मुहूर्त मौनभावे नष्ट करे ना। ताहार मा अनेक समय धमक दिया ताहार मुख बंध करिया देय, किन्तु आमि ताहा पारि ना। मिनि चुप करिया थाकले एमनि अस्वाभाविक देखिते हय जे, से आमार बेशिक्षण सहय हय ना। एइजन्य आमारे संगे ताहार कथोपकथनटा किछु उत्साहेर सहित चले।

सकालवेलाय आमार नभेलेर सप्तदश परिच्छेदे हात दियाछि एमन समय मिनि आसियाइ आरंभ करिया दिलो, "बाबा, रामदयाल दारोयान काकके कौआ बल-छिलो, से किच्छु जाने ना। ना?"

आमि पृथिवीते भाषार विभिन्नता संबंधे ताहाके ज्ञानदान करते प्रवृत्त हइबार पूर्वेइ से द्वितीय प्रसंगे उपनीत हइलो। "देखो बाबा, भोला बलछिलो आकाशे हाति शुंड दिये जल फेले, ताइ वृष्टि हय। मा गो, भोला एत मिछिमिछि बकते पारे। केवलइ बके, दिनरात बके।"

ए संबंधे आमार मतामतेर जन्य किछुमात्र अपेक्षा ना करिया हठात् जिज्ञासा करिया बसिलो, "बाबा, मा तोमार के हय।"

मने मने कहिलाम श्यालिका, मुखे कहिलाम, "मिनि, तुइ भोलार संगे खेला कर् गे जा। आमार एखन काज माछे"।

से तखन आमार लिखिबार टेबिलेट पार्श्वे आमार पायेर काछे बसिया निजेर दुई हाटु एवं हात लइया अतिद्रुत उच्चारणे "आगुड्डुम बागुडुम" खेलिते आरंभ करियां दिलो। आमार सप्तदश परिच्छेदे प्रतापसिंह तखन कांचनमालाके लइया अंधकार रात्रे कारागारेर उच्च तावायन हइते निम्नवर्ती नदीर जले झाँप दिया पड़ितेछेन।

आमार घर पथेर धारे। हठात् मिनि आगडुम-बागडुम खेला राखिया जानालार धाते घुटिया गेलो एवं चीत्कार करिया डाकिते लागिलो, "काबुलिवाला, ओर काबुलिवाला।"

मयला ढिला कापड़ परा, पागड़ि माथाय, झुलि घाड़े, हाते गोटादुइ-चार आङुरेर बाक्स, एक लंबा काबुलिवाला मृदुमंद गमने पथ दिया जाइतेछिलो— ताहाके देखिया आमार कन्यारत्नेर किरूप भावोदय हइलो बला शक्त, ताहाके उद्ध्वंश्वासे डाकाडाकि आरंभ करिया दिलो। आमि भाविलाम, एखनइ झुलि घाड़े एकटा आपद आसिया उपस्थित हइबे, आमार सप्तदय परिच्छेद आर शेष हइबे ना।

किन्तु, मिनिर चीत्कारे जेमनि काबुलिवाला हासिया मुख फिराइलो एवं आमादेर बाड़ीर दिके आसिते लागिलो, अमनि से उद्ध्वंश्वासे अंतःपुरे दिलो, ताहार आर चिहन देखिते पावा गेलो ना। ताहार मनेर मध्ये एकटा अंध विश्वासेर मत छिलो जे, ओइ झुलिटार भितर संधान करिले ताहार मतो दुटो-चारटे जीवित मानव-संतान पावा जाइते पारे।

एदिके काबुलिवाला आसिया सहास्ये आमाके सेलाम करिया दांड़ाइलो— आमि भाविलाम, यदिच प्रतापसिंह एवं कांचनमालाइ अवस्था अत्यंत संकटापन्न तथापि लोकटाके घरे डाकिया आनिया ताहार काछ हइते किछु ना केनाटा भालो हय ना।

किछु केना गेलो। ताहार पर पांचवा कथा आसिया पड़िलो। आबदर रहमान, रुस इंटेज प्रभृतिके लइया सीमांतरक्षानीति संबंधे गल्प चलिते लागिलो।

अवशेषे उठिया जाइबार समय से जिज्ञासा करिलो, "बाबु, तोमार लड़की कोथाय गेलो?"

आमि मिनिर अमूलक भय भाङगइया दिबार अभिप्राये ताहाके अंतःपुर हइते डाकाइया आनिलाम से आमार गा घेषिया काबुलिर मुख एवं झुलिर दिके संदिग्ध नेत्रक्षेपे करिया दाड़ाइया रहिलो। काबुलि झुलिर मध्य हइते किस्मिस् खोवानि बाहिर करिया ताहाके दिते गेलो, से किछुतेइ लाइलो ना, द्विगुण संदेहेर सहित आमार हांटुर काछे संलग्न हइया रहिलो। प्रथम परिचयटा एमनि भावे गेलो।

किछुदिन परे एकदिन सकालवेलाय आवश्यकवशत बाड़ि हइते बाहिर हइबार समय देखि, आमार दुहितात्रि द्वारेर समीपस्य बेंचर उपर बसिया अनर्गल कथा कहिया जाइतेछे एवं काबुलिवाला ताहार पदतेले बसिया सहास्यमुखे शुनितेछे एवं मध्ये मध्ये प्रसंगक्रमे निजेर मतामतओ दो-आँसला बांलाय व्यक्त करितेछे। मिनिर पंचवर्षीय जीवनेर अभिज्ञताय बाबा छाड़ा एमन धैर्यवान श्रोता से कखनो पाय नाइ। आबार देखि, ताहार क्षुद्र आंचल बादाम-किसुमिसे परिपूर्ण। आमि काबुलिवाला के कहिलाम, "उहाके एसब केन दियाछ। अमन आर दियो ना।" बलिया पकेट हइते एकटा आधुलि लइया ताहाके दिलाम। से असंकोचे आधुलि ग्रहण करिया झुलिते पुरिलो।

बाड़िते फिरिया आसिय। देखि, सेइ आधुलिटि लइया षोलोआना गोलयोग बाधिया गेछे।

मिनि बलितेछे, "काबुलिवाला दियेछे।"
ताहार मा बलितेछेन, "काबुलिवालार काछ हइते आधुलि तुइ केन निते गेलि।"
मिनि क्रंदनेर उपक्रेम करिया कहिलो, "आमि चाइ नि, से आपनि दिले।"
आमि आसिया मिनिके ताहार आसन्न विपद हइते उद्धार करिया बाहिरे लइया गेलाम।

संवाद पाइलाम, काबुलिवालार सहित मिनिर एइ जे द्वितीय साक्षात् ताहा नहे, इतिमध्ये से प्राय प्रत्यह आसिया पेस्ताबादाम घुष दिया मिनिट क्षुद्र लुब्ध हृदयटुकु अनेकटा अधिकार करिया लइयाछे।

देखिलाम, एइ दुटि बंधुर मध्ये गुटिकतक बांधा कथा एवं ठाटटा प्रचलित आछे– यथा, रहमतके देखिबामात्र आमार कन्या हासिते हासिते जिज्ञासा करित, "काबुलिवाला, ओ काबुलिवाला, तोमार ओ झुलिर भितर की।"

रहमत एकटा अनावश्यक चन्द्रबिन्दु योग करिया हासिते हासिते उत्तर करित, "हाति"।

अर्थात् ताहार झुलिर भितरे जे एकटा हाती आछे, एइटेइ ताहार परिहासेर सूक्ष्म मर्म। खुब जे नेशि सूक्ष्म ताहा बला जाय ना, तथापि एइ परिहासे उभये बेश एकटु कौतुक अनुभव करितो– एवं शरत्कालेर प्रभाते एकटि वयस्क एवं एकटि अप्राप्तवयस्क शिरकर सरल हास्य देखिया आमारओ बेश लागितो।

उहादेर मध्ये आटो-एकटा कथा प्रचलित छिलो। रहमत मिनिके बलितो, "खोखी, तुमि ससुरबाड़ि कखुनु जाबे ना।"

बाङालिर घरेर मेये आजन्मकाल "स्वशुरबाड़ि" शब्दटार सहित परिचित; किन्तु आमरा किछु ऐकेले धरणेर लोक हवाते शिशु मेयेके रवशुरबाड़ि संबंधे सज्ञान करिया तोला हय नाइ। एइजन्य रहमतेइ अनुरोधटा से परिष्कार बुझिते पारितो ना, अथच कथार एकटा कोनो जवाब ना दिया चुप करिया थाका नितांत ताहार स्वभावविरुद्ध से उलटिया जिज्ञासा करितो, "तुमि खशुरबाड़ि ज़ाबे?"

रहमत काल्पनिक खशुरेर प्रति प्रकांड मोरा मुष्टि आस्फालन करिया बलितो, "हामि ससुरके मारबे।"

शुनिया मिनि रवशुर नामक कोनो- एक अपरिचित जीवेर दुरवस्था कल्पना करिया अत्यन्त हासिलो।

एरवन शुभ्र शरत्काल। प्राचीनकाले एइ समये राजारा दिगुविजये बाहिर हइतेन। आमि कलकाता छाड़िया करवनो कोथाओ जाइ नाइ, किन्तु सेइजन्य आमार मनटा पृथिवीमय घुरिया बेड़ाय। आमि जेन आमार घरेर कोणे चिरप्रवासी, बाहिरेर पृथिवीर जन्य आमार

सर्वदा मन केमन करे। एकटा विदेशेर नाम शुनिलेइ अमनि आमार चित्त घुरिया जाय, तेमनि विदेशी लोक देखिलेइ अमनि" नदी-पर्वत-अरण्येर मध्ये एकटा कुटिरेर हदृश्य मने उदय हय एवं एकटा उल्लासपूर्ण स्वाधीन जीवनयात्रार कथा कल्पनाय जागिया उठे।

एदिके आबार आमि एमनि उद्भाज प्रकृति जे, आमार कोणटुकु छाड़िया एकबार बाहिर हइते गेले माथाय वज्राघात हय। एइजन्य सकालवेलाय आमार छोटो घरे टेबिलेर सामने बसिया एइ काबुलिर संगे गल्प करिया आमार अनेकटा भ्रमणेर काज हइतो। दुइ धारे बंधुर दुर्गम दग्ध रक्तवर्ण उच्च गिरिश्रेणी, मध्ये संकीर्ण मरुपथ, बोझाइ करा उष्टेर श्रेणी चलियाछे। पागडिपरा वणिक ओ पथिकेरा केह बा उटेर परे, केह वा पदव्रजे, काहारो हाथे वर्शा, काहारो हाते सेकेले चममकि– ठोका बंदूक– काबुलि मेघमंद्रस्वरे भाङगबलाय स्वदेशेर गल्प करितो आर एइ छवि आमार चोखेर सम्मुख दिया चलिया जाइतो।

मिनिट मा अत्यंत शकित स्वभावेर लोक। रास्ताय एकटा शब्द शुनिलेइ ताहार मने हय, पृथिवीर समस्त माताल आमादेर बाड़िटाइ विशेष लक्ष्य करिया घुटिया आसितेछे। एइ पृथिवीटा जे सर्वत्र चोर, डाकात, माताल, साप, बाघ, मैलेरिया, शुंआपोवा, आरसोला एवं गोबर द्वारा पारिपूर्ण, एतदिन (खुब बेशि दिन नहे) पृथिवीते वास करियाओ से विभीषिका ताहार मन हइते दूर हइया जाय नाइ।

रहमत काबुलिवाला संबंधे मिनि संपूर्ण निःशंसय छिलेन ना। ताहार प्रति विशेष दृष्टि राखिबार जन्य तिनि आमाके बारबार अनुरोध करियाछिलेन। आमि ताहार संदेह हासिया उड़ाइया दिबार चेष्टा करिले तिनि पर्यायक्रमे आमाके गुटिकतक प्रश्न करिलेन, "करवनो कि काहारो छेले चुरि जाय ना। काबुल देशे कि दासव्यवसाय प्रचलित नाइ। एकजन प्रकांड काबुलिपक्षे एकटि छोटो छेले चुरि करिया लइया जावे एकेबारेइ कि असंभव?

आमाके मानिते हइलो, व्यापारटा जे असंभव ताहा नहे, किंतु अविश्वास्य। विश्वास करिबार शक्ति सकलेर समान नहे, एइजन्य आमार स्त्रीर मने भय रहिया गेलो। किन्तु, ताइ बलिया बिना दोषे रहमतके आमादेर बाड़िते आसिते निषेध करिते पारिलाम ना।

प्रति वत्सर माघ मासेर माझामाझि रहमत देशे चलिया जाय। एइ समयटा समस्त पावनार टाका आदाय करिबार जन्य से बड़ो व्यस्त थाके। बाड़ि बाड़ि फिरिते हय किंतु तबू एक बार मिनिके दर्शन दिया जाय। सकाले जेदिन आसिते पारे ना, सेदिन देखि, संध्यार समय आसियाछे, अंधकारे घरेर कोणे सेइ ढिलेढाला-जामा-पायजामा-परा, सेइ झोलाझुलिवाला लंबा लोकटाके देखिले वास्तविक हठात् मनेर भितरे एकटा आशंका आसिया उपस्थित हय। किंतु, जखन देखि मिनि "काबुलिवाला, ओ काबुलिवाला" करिया हासिते हासिते छुटिया आसे एवं दुई असमवयसी बंधुर मध्ये पुरातन सरल परिहास चलिते थाके, तखन समस्त हृदय प्रसन्न हइया उठे।

एकदिन सकाले आमार छोटो घरे बसिया प्रुफ्शीट संशोधन करितेछि। विदाय लइबार पूर्वे आज दिन-दुइतिन हइते शीतटा खूब कनकने हइया उठियाछे, चारिदिके एकेंबारे हाहाकार पड़िया गेछे। जानाला भेद करिया सकालेर रौद्रटि टेबिलेर निचे आमार पायेर उपर आसिया पड़ियाछे, सेइ उत्तापटुकु बेश मधुर बोध हइतेछे। वेला बोध करि आटटा हइबे– माथाय– गलाबंध– जड़ानो ऊषाचरगण प्रातभ्रमण समाधा करिया प्राय सकले घरे फिरिया आसियाछे। एंमन समय रास्ताय भारि एकटा गोल शुना गेलो।

चाहिया देखि, आमादेर रहमतके दुई पाहारावाला बांधिया लइया आसितेछे– ताहार पश्चाते कौतूहली छेलेर दल चलियाछे। रहमतेर गात्रवस्त्रे रक्तचिह्न एवं एकजन पाहारावालार हाते रक्ताक्त छोरा। आमि द्वारेर बाहिरे गिया पाहारावालाके दौंड़ कराइलामु, जिज्ञासा करिलाम, व्यापारटा की।

कियदंश ताहार काछे कियदंश रहमतेर काछे शुनिया जानिलाम जे, आमादेर प्रतिवेशी एकजन लोक रामपुरी चादरेर जन्य रहमतेर काछे किंचित् धारितो– मिथ्यापर्वक सेइ

देना से अस्वीकार करे एवं ताहा लइया बचसा करिते करिते रहमत ताहाके एक छुरि बसाइया दियाछे।

रहमत सेइ मिरयावादीर उद्येश्ये नानारूप अश्राव्य गालि दितेछे, एमन समये "काबुलिवाला", "ओ काबुलिवाला" करिया डाकिते डाकिते मिनि घर हइते बाहिर हइया आसिलो।

रहमतेर मुख मुहूर्तेर मध्ये कौतूकहास्ये प्रफुल्ल हइया उठिलो। ताहार स्कंधे आज झुलि छिलो ना, सुतरां झुलि संबंध ताहादेर अभ्यस्त आलोचना हइते पारिलो ना। मिनि एकेबारेइ ताहाके जिज्ञासा करिलो, "तमि स्वशुरबाड़ि जाबे?"

रहमत हासिया कहिलो, "सिखानेइ जाच्छे।"
देखिलो उत्तरटा मिनिर हास्यजनक हलो ना, तखन

हात देखाइया बलिलो, "ससुरटाके मारिताम किन्तु, की करिबो, हात बाँधा।"

सांघातिक आघात करार अपराधे कयेंक वत्सर रहमतेर कारादंड हइलो।

ताहार कथा एकप्रकार भुलिया गेलाम। आमरा जखन घरे बसिया चिराभ्यस्तमतो नित्य काजेर मध्ये दिनेर पर दिन काटाइताम तखन एकजन स्वाधीन पर्वताचारी पुरुष कारागाचीरेर मध्ये जे केमन करिया वर्षयापन करितेछे, ताहा आमादेर मनेओ उदय हइतो ना।

आर, चंचलहृदया मिनिर आचरण जे अत्यंत लज्जाजनक, ताहा ताहार बापकेओ स्वीकार करिते हय। से स्वच्छेन्द्र ताहार पुरातन बंधुके विस्मृत हइया प्रथमे नवी सहिसेर सहित सख्य स्थापन करिल। परे क्रमे जतो ताहार वयस बाड़िया उठिते लागिलो ततइ सखार परिवर्ते एकटि एकटि करिया सखी जुटिते लागिलो। एमन कि एखन ताहार बाबार लिखिबार घरेओ ताहाके आर देखिते पावा जाय ना। आमि तो ताहार सहित एकप्रकार आड़ि करियाछि।

कतो वत्सर काटिया गेलो। आर-एकटि शरत्काल आसियाछे। आमार मिनिर विवाहेर संबंध स्थिर हइयाछे। पूजार छुटिर मध्यम ताहार विवाह हइबे। कैलासवासिनीर संगे संगे आमार घरेर आनन्दमयी पितृभवन अंधकार करिया पतिगृह यात्रा करिबे।

प्रभातटि अति सुन्दर हइया उदय हइयाछे। वर्षार पेरे एइ शरतेर नूतनधौत रौद्र जेन सोहागाय-गलानो निर्मल सोनार मतो रङ धरियाछे। एमन कि, कलिकातार गलिर भितरकार इष्टकजर्जर अपरिच्छन्न घेंषोघेंषि बाड़िगुलिर उपरेओ एइ रौद्रेर आभा एकटि अपरूप लावण्य विस्तार करियाछे।

आमार घरे आज रात्रि शेष हइते ना हइते सानाइ बाजितेछे। से बाँशि जेन आमार बुकेर पंजरेर हाडेर मध्य हइते काँदिया काँदिया बाजिया उठितेछे। करुण भैरवी रागिणीते आमार आच्छन्न विच्छेदव्यथाके शरतेर रौद्रेर सहित समस्त विश्वजगतमय व्याप्त करिया दितेछे। आज आमार मिनिर विवाह।

सकाल हइले भारि गोलमाल, लोकजनेर आनागोना। उठाने बाँश बाँधिया पाल खाटानो हइतेछे, बाड़िर घरे घरे एवं वारान्दाय झाड़ टाडाइबार ठुं ठां शब्द उठितेछे, हाँकडाकेर सीमा नाइ।

आमि आमार लिखिबार घरे बसिया हिसाब देखितेछि, एमन समय रहमत आसिया सेलाम करिया दाँड़ाइलो।

आमि प्रथमे ताहाके चिनिते पारिलाम ना। ताहार से झुलि नाइ, ताहार से लम्बा चुल नाइ, ताहार शरीरे पूर्वेर मतो से तेज नाइ। अवशेषे ताहार हासि देखिया ताहाके चिनिलाम।

कहिलाम, "की रे रहमत, कबे आसिलि।"
से कहिलो, "काल संध्यावेलाजेल हइते खालास पाइयाछि।"

कथाटा शुनिया केमन काने खट् करिया उठिलो। कोनो खूनीके कखनो प्रत्यक्ष देखि नाइ, इहाके देखिया समस्त अन्तःकरण जेन संकुचित हइया गेलो। आमार इच्छा करिते लागिलो, आजिकार एइ शुभदिने ऐ लोकटा एखान हइते गेलेइ भालो हय।

आमि ताहाके कहिलाम, "आज आमादेर बाड़िते एकटा काज आछे, आमि किछु व्यस्त आछि, तुमि आज जाओ।"

कथाटा शुनियाइ से तत्क्षणात् चलिया जाइते उद्यत हइलो, अवशेष दरजार काछे गिया एकटु इतस्तत करिया कहिलो, "खोंखीके एकबार देखिते पाइबो ना?"

ताहार मने बुझि विश्वास छिलो, मिनि सेइ भावेइ आछे। से जेन मने करियाछिलो, मिनि आबार सेइ पूवैर मतो "काबुलिवाला, ओ काबुलिवाला" करिया छुटिया आसिबे, ताहादेर सेई अत्यंत कौतुकावह पुरातन हास्यालापेट कोनोरूप व्यर्थ हइबे ना। एमन कि पूर्वबंधुत्व स्मरण करिया से एक वाक्स आडुर एवं कागजेर मोड़के किंचित किसमिस बादाम बोध करि कोनो स्वदेशीय बंधुर निकट हइते चाहिया-चिंतिया संग्रह करिया आनियाछिलो ताहार से निजेर झुलिटि आर छिलो ना।

आमि कहिलाम, "आज बाड़िते काज आछे, आज आर काहारो सहित देखा हइते पारिबे ना।"

से जेन किछु क्षुण्ण हइलो। स्तब्ध भावे दांड़ाइया एक बार स्थिर दृष्टिते आमार मुखेर दिके चाहिलो, तार परे "बाबू सेलाम" बलिया द्वारेर बाहिर हइया गेलो।

आमार मने केमन एकटु व्यथा बोध हइलो। मने करितेछि, ताहाके फिरिया डाकिबो, एमन समये देखि, से आपनि फिरिया आसितेछे।

काछे आसिया कहिलो, "एइ आडुर एवं किंचित किसमिस बादाम खोंखीर जन्य आनियाछिलाम, ताहाके दिबेन।"

आमि सेगुलि लइया दाम दिते उद्यत हइले से हठात् आमार हाथ चापिया धरिलो, कहिलो, "आपनार बहुत् दया, आमार चिरकाल स्मरण थाकिबे— आमाके पयसा दिबेन ना।

"बाबू, तोमार जेमन एकटि लड़की आछे, तेमनि देशे आमारो एकटि लड़की आछे। आमि ताहारइ मुख खानि स्मरण करिया तोमार खोंखीर जन्य किछु किछु मेवा हाते लइया आसि, आमि तो सौदा करिते आसि ना।"

एइ बलिया से आपनार मस्त ढिला जामाटार भितर हात चालाइया दिया बुकेर काछे कोथा हइते एकटुकड़ा मयला कागज बाहिर करिलो। बहु सयले भाँज खुलिया दुइ हस्ते आमार टेबिलेर ऊपर मेलिया धरिलो।

देखिलाम, कागजेर ऊपर एकरि छोटो हातेर छाप। फोटोग्राफ नहे, तेलेर छवि नहे, हाते खानिकटा भुषा माखाइया कागजेर उपरे ताहार चिह्न धरिया लइयाछे। कन्यार एइ स्मरणचिहनटुकु बुकेर काछे लइया रहमत प्रतिवत्सर कलिकातार रास्ताय मेवा बेचिते आते— जेन सेई सुकोमल क्षुद्र शिशुहस्तटुकुर स्पर्शखानि ताहार विरटी वक्षेर मध्ये सुधासंचार करिया राखे।

देखिया आमार चोख छलछल करिया आसिलो। तखन से जे एकजन काबुलि मेवावाला आर आमि जे एकजन बाडाली संभ्रांतवंशीय, ताहा भुलिया गेलाम— तखन बुझिते पारिलाम, सेओ जे, आमिओ से, सेओ पिता आमिओ पिता। ताहार पर्वतगृहवासिनी क्षुद्र पार्वतीर सेइ हस्तचिहन आमारइ मिनिके स्मरण कराइया दिलो। आमि तत्क्षणात् ताहाके अन्तःपुर हइते डाकाइया पाठाइलाम। अन्तःपुरे इहाते अनेक आपत्ति उठियाछिलो। किन्तु, आमि किछुतेइ कर्णपात करिलाम ना। राङाचोली परा कपाले चंदन-आंका वधूवेशिनी मिनि सलज्ज भावे आमार काछे आसिया दाँड़ाइलो।

ताहाके देखिया काबुलीवाला प्रथमटा यतोमतो खाइया गेलो, ताहादेर पुरातन आलाप जमाइते पारिलो ना। अवशेष हासिया बलिलों, "खोंखी, तुमि सस्रबाड़ि जाबिस?"

मिनि एखन श्वशुरबाड़ির अर्थ बोझे, एरवन आर से पूर्वेर मतो उत्तर दिखते पारिलो ना रहमतेर प्रश्न सुनिया लज्जाय आरक्त हइया मुख फिराइया दाड़ाइलो। काबुलिवालार सहित मिनिर जेदिन प्रथम साक्षात् हइयाछिलो, आमार सेइ दिनेर कथा मने पड़िलो। मनटा केमन व्यथित हइया उठिलो।

मिनि चलिया गेले एकटा गंभीर दीर्घनिश्वास फेलिया रहमत माटिते बसिया पड़िलो। से हठात् स्पष्ट बुझिते पारिलो, ताहार मेयेटिओ इतिमध्ये एइरूप बड़ो हइयाछे, ताहार संगेओ आब्रार नूतन आलाप करिते हइबे – ताहाके ठिक पूर्वेर मतो तेमनटि आर पाइवे ना। ए आट वत्सरे ताहार रौद्रक्रिशोर मध्ये सानाइ बाजिते लागिलो, रहमत कलिकातार एक गलिर भितरे बसिया आफगानिस्तानेर एक मरुपवंतेर दृश्य देखिते लागिलो।

आमि एकखानि नोट लइया ताहाके दिलाम। बलिलाम, "रहमत, तुमि देशे तोमार मेयेर काछे फिरिया जाओ, तोमादेर मिलनसुखे आमार मिनिर कल्याण हउक।"

एइ टाकाटा दान करिया हिसाब हइते उत्सव-समारोहेर दुटो एकता अंग छाँटिया दिते हइलो। जेमन मने करियाछिलाम तेमनटि करिया इलेक्ट्रिक आलो ज्वालाइते पारिलाम ना, घड़ेर वाद्यओ आसिलो ना, अंतःपुरे मेयेरा अत्यंत असंतोष प्रकाश करिते लागिलेन, किंतु मंगलआलोके आमार शभ उत्सव उज्जवल हइया उठिलो।

काबुलिवाला

मेरा पांच साल की छोटी लड़की मिनि एक पल भी बिना बोले नहीं रह सकती। इस पृथ्वी पर जन्म-ग्रहण के बाद भाषा-शिक्षक के लिए उसने केवल एक ही वर्ष की अवधि का व्यय किया था, तब से वह दिन में जितनी देर तक जागती रहती है, एक पल भी वह मौन रहकर नष्ट नहीं करती है। उसकी मां कभी-कभी डांट-डपटकर उसके मुंह को बंद कर भी देती है, लेकिन मेरे लिए वह संभव नहीं होता है। मिनि अगर चुप रह जाती है तो वह एक ऐसा अस्वाभाविक दृश्य बन जाता है कि मैं ज्यादा देर तक उसे सह नहीं पाता हूं। इसलिए मैं उसके साथ बातचीत कुछ हद तक उत्साह के साथ चलती है।

सुबह-सुबह मैंने अपने उपन्यास के सत्रहवें अध्याय की शुरूआत ही की थी कि मिनि ने आकर अपनी बातें शुरू कर दी: "बापू, रामदयाल दरवान काका को कौआ बोल रहा था, उसे कुछ नहीं पता है, है न?"

पृथ्वी पर भाषाओं की विभिन्नता के विषय में उसे मैं कुछ कहता इससे पहले ही उसने दूसरे प्रसंग की शुरूआत की। "देखो बापू, भोला कह रहा था हाथी आकाश की ओर अपनी सूंड के द्वारा पानी को फेंकता है, इसीलिए बारिश होती है। हाय दैया, भोला इतना बेकार बकता है। वह केवल बकता है, बकता ही रहता है।"

इस बारे में मेरी राय के लिए जरा-सी भी प्रतिक्षा बिना किए उसने अकस्मात् पूछा, "बापू।" मां तुम्हारी क्या लगती।

मैंने मन ही मन कहा "साली, पर उसे बोला, "मिनि, तू जा, भोला के संग जाकर खेल। अभी मुझे बहुत काम करना है।"

तब वह मेरे लिखने के मेज के पास मेरे पैरों के नजदीक बैठकर अपने दोनों हाथ और ठेंहने को लेकर अति-द्रुत उच्चारण के साथ "आगडुम-बागुडुम" का खेल खेलने लगी। मेरे सत्रहवें अध्याय में तभी प्रतापसिंह कांचनमाला को लेकर अंधेरी रात में कारागर की ऊंची खिड़की से नीच नदी के प्रवाह में छलांग लगा रहा था।

मेरा कमरा सड़के के किनारे ही था। हठात् मिनि "आगडुम-बागडुम" का खेल बंद कर खिड़की के पास दौड़ कर गयी और पुकारने लगी, "काबुलिवाला, ओ काबुलिवाला।"

मैला ढुलंगा कपड़ा पहने– सर पर पगड़ी, कंधे पर झोला और हाथों में दो-चार अंगूर की पेटी लिए एक लंबे कद का काबुलिवाला उस-पथ पर मृदुमंद गति से जा रहा था–

उस देख कर मेरे कनयारत्न के मन में कैसा भावोदय हुआ, उसके बारे में कुछ कहना कठिन ही होगा– लेकिन उसने उस काबुलिवाला की जोर-जोर से पुकारना शुरू कर दिया। मैंने सोचा, अभी थैली कंधे पर लिए एक झमेला यहां उपस्थित होगा और मेरा सत्रहवां अध्याय अधूरा रहा जाएगा।

लेकिन मिनि की चीख पर जैसे ही काबुलिवाला हंस कर अपना मुंह घुमाया और हम लोगों के मकान की ओर आने लगा, मिनि अंदर की ओर भागी और अब उसकी सूरत कहीं नजर नहीं आ रही थी। उसके मन में एक अंध विश्वास था कि उस झोली के अंदर झांकर कर देखा जाए तो उसी की तरह जीवित मान संतान मिल सकता है।

इधर काबुलिवाला आकर हंसकर मुझे सलाम बजाकर खड़ा हो गया– मैंने सोचा, यद्यपि प्रतापसिंह और कांचनमाला की स्थिति अत्यंत संकटापन्न थी, इस आदमी को घर में बुलाकर उससे कुछ भी न खरीदना अच्छा नहीं होगा।

कुछ चीजें खरीदी गयी। उसके बाद दो-चार बातें आ ही गयी। आबदर रहमान, रूस, अंग्रेजों से लेकर सीमा रक्षानीति के विषय में बातें चलती रहीं।

अंत में उठकर चले जाने से पहले उसने पूछा, "बाबूजी। आपकी लड़की कहां गयी?"

मैंने मिनि का बेकार का डर दूर करने के लिए उसे अंत:पुर से बुला भेजा– वह आकर काबुलि की झोली और उसके मुख की ओर संदेह की दृष्टि से देखती हुई बिल्कुल मेरे नजदीक आकर खड़ी हो गयी। काबुलि झोली में से बादाम– किशमिश निकाल कर उसे देने लगा, उसने ली ही नहीं, दुगने संदेह के संग मेरे पैरों को जकड़कर खड़ी रही। पहला परिचय इसी तरह से हुआ।

कुछ दिनों बाद में सुबह के समय किसी जरूरी काम से बाहर जा ही रहा था कि देखा मेरी दुहिता दरवाजे के पास एक बेंच पर बैठकर अनर्गल बातें कहीं जा रही थी और काबुलि मुस्कराता हुआ सब कुछ सुन रहा था और बीच-बीच में किसी प्रसंग में अपनी टूटी-फूटी बांगला में अपनी राय बता रहा था। मिनि को अपनी पंचवर्षीय जिन्दगी में अपने पिता को छोड़कर ऐसा धैर्यवान श्रोता कभी नहीं मिला। फिर देखा, उसकी छोटी सी आंचल बादाम-किशमिश से भरा हुआ था। मैंने काबुलि को अठन्नी देते हुए कहा, "इसे यह सब क्यों दिया है? ऐसा और मत देना।" वह निःसंकोच उस अठन्नी को अपनी झोली में रख लिया।

जब मैं घर लौटा तो देखा उस अठन्नी को लेकर सोलह-आना गोलमाल शुरू हो गया है।

मिनि की मां एक सफेद चमकीला गोलाकार पदार्थ को हाथ में लिए भर्सना के स्वर में पूछ रही थी, "तुझे यह अठन्नी कहां से मिला?"

मिनि कह रही थी, "काबुलिवाला ने दिया।"

उसकी मां उसे कह रही थी, "तू काबुलिवाला से अठन्नी लेने क्यों गयी थी?"

मिनि ने रोनी सूरत बनाकर कहा, "मैं कहां मांगने गयी? उसने खुद ही दिया।"

मैंने मिनि को इस आन पड़ी विपत्ति से बचाया और उसे बाहर ले गया।

खबर मिली, काबुलिवाला के साथ मिनि की यह दूसरी मुलाकात नहीं थी– इस बीच में वह करीब हर रोज आकर पिस्ताबादाम घूस देकर मिनि के शुद्र और लोभनीय हृदय का अधिकार कर लिया है।

मैंने देखा, इन दोनों मित्रों के बीच कुछ गिनी-चुनी बातें और मजाक बार-बार आता है। जैसे, रहमत को देखते ही मेरी कन्या हंस-हंसकर पूछती थी, "काबुलिवाला, ओ काबुलिवाला, तुम्हारी उस झोली में क्या है?"

रहमत एक अनावश्यक चन्द्रबिन्दु को जोड़कर हँसता हुआ कहता था, "हाति"।

अर्थात् उसकी झोली में एक हाथी है, यही इनके परिहास का सूक्ष्म मर्म था। इसे बहुत सूक्ष्म कहा नहीं जा सकता था, तथापि इस हास्य-परिहास से दोनों अत्यंत हर्ष का अनुभव करते थे– और शरत्काल की सुबह की वेला में एक वयस्क और एक अप्राप्तवयस्क शिशु के सरल हास्य को देखकर मुझे भी प्रसन्नता होती थी।

उन दोनों के बीच में एक और बात होती थी। रहमत मिनि को कहता था, "खोंखी, तोमि ससुरबाड़ि करवून जाबे मां।"

बंगाली परिवार में जन्म हुआ है ऐसी कन्या "श्वशुर-बाड़ी" शब्द से परिचित हैं आजन्मकाल से ही, लेकिन हम लोग कुछ हद तक आधुनिक काल के हैं, इसलिए शिशु-कन्या को ससुराल के बारे में ज्ञान नहीं किया है। इसलिए रहमत के अनुरोध को वह सही तरह से समझ नहीं पाता था। परंतु इस बात का उत्तर न देकर चुप रह जाना भी उसके स्वभाव के विरुद्ध था– इसलिए वह पलट कर पूछती थी, "तुम ससुराल जाओगे?"

रहमत काल्पनिक ससुर के प्रति प्रकांड आकार की मुट्ठी का आस्फालन कर कहता था, "हामि ससुर के मारबे।"

सुनकर मिनि ससुर नाम के किसी अपरिचित जीव की दुखस्था के बारे में कल्पना का शूब हंसती थी।

अभी शुभ्र शरत् की ऋतु है। पुराने जमाने में इसी काल में राजाएं दिग्विजय के लिए रवाना होते थे। मैंने कभी कलकत्ते से बाहर कदम नहीं रखा लेकिन इसी कारण मेरा मन दुनिया भर में घूमती रहती है। मानों मैं अपने ही घर के कोणे में चिरप्रवासी हूं, बाहर की दुनिया के प्रति मेरा मन सर्वदा चंचल रहता है। विदेश का नाम सुनते ही मेरा मन नाच उठता है, किसी विदेशी को देखते ही नदी-पर्वत-अरण्य के बीच एक कुटिया का दृश्य आँखों के सामने उभर आता है और एक उल्लासपूर्ण स्वाधीन जीवन यात्रा की छवि कल्पलोक में जाग उठती है।

उधर मैं ऐसी उद्भिज्ज-प्रकृति का मनुष्य हूं कि मेरे घर के कोने से निकलने का नाम सुनते ही सर पर वज्राघात-सा होता है। इसलिए सुबह के समय मेरी छोटी मेज के सामने बैठकर इस काबुलि के संग बातें कर मेरा भ्रमण का आस मिटता। दोनों तरफ ऊंचा-नीचा दुर्गम दग्ध रक्तवर्ण पर्वतश्रेणी, उसके बीच से जाता हुआ संकीर्ण मरुपथ, लदे हुए ऊंट चल रहे हैं। पगड़ी पहने हुए वणिक या पथिक में से कोई ऊंट पर चल रहे हैं तो कोई पैदल। किसी के हाथ में भाला है तो कोई देसी बंदूक लिए हुए है– काबुलि मेघमंद्रित स्वर में अपने मुल्क के बारे में टूटी-फूटी बांगला में कहानी सुनाता था और मेरी आँखों के सामने से यह छवि चली जाती थी।

मिनि की मां को शंकाएं बहुत रहती हैं। सड़क पर से किसी तरह की आवाज सुनाई देती है तो उन्हें लगता है कि दुनिया के सभी शराबी हमारे ही मकान की ओर दौड़े आ रहे हैं। इस पृथ्वी की सभी जगहें चोर, डकैत, शराबी, साँप, शेर, छिपकली और गोरे फिरंगियों से परिपूर्ण हैं– इस बात की विभीषिका पृथ्वी में इतने दिन रहकर भी (और ऐसा नहीं है कि वह बहुत दिन बिता चुकी है) उनके मन से गई नहीं है।

रहमत काबुलिवाला के बारे में भी वह संपूर्ण निःसंदेह नहीं थी। मुझे उन्होंने उसकी ओर खास नजर रखने को बार-बार कहा था। मैंने जब उनके राक को हंस कर उड़ा देने की कोशिश की तो उन्होंने एक के बाद एक मुझ से कई सवाल पूछा, "क्या कभी किसी का बच्चा चोरी नहीं हो जाता है? क्या काबुल में दास-व्यवसाय का प्रचलन नहीं है? एक प्रकांड आकार के काबुलि के लिए क्या एक छोटा-सा बच्चा चुराकर ले जाना असंभव है?"

मुझे मानना ही पड़ा, ये बातें असंभव ही नहीं, अपितु अविश्वासयोग्य भी हैं। विश्वास करने की शक्ति सबको समान रूप से प्राप्त नहीं है, इसलिए मेरी पत्नी के मन में भय रह ही गया। लेकिन, मात्र इसलिए बिना किसी कसूर के रहमत को मैंने घर में आने से मना नहीं कर पाया।

हर साल माघ के महीने के बीचों-बीच कभी रहमत अपने मुल्क को चला जाता था। इस समय वह अपनी पांवती की वसूली में बहुत व्यस्त रहता था। घर-घर में घूमना पड़ता था, पर फिर भी एक बार आकर मिनि को दर्शन दे जाता था। जिस दिन सुबह के समय नहीं आ पाता था, उस दिन मैं देखता था वह सायंकाल में आया है। अंधेरे में घर के कोने में उस ढिलाढाला कुर्ता-पायजामा पहने झोला-झोली लिए विशाल देही आदमी को देख कर वास्तविक मन में एक आशंका सी हो जाती थी। पर, जब देखता था कि मिनि "काबुलिवाला, ओ काबुलिवाला" कहकर हँसती हुई दौड़कर आती थी और इन दो असमवयस्क मित्रों के बीच पुरानी हंसी-मजाक चलती रहती थी, तब मेरा संपूर्ण हृदय प्रसन्न हो उठता था।

एक दिन सुबह के समय मैं अपने छोटे कमरे में बैठ प्रूफ का संशोधन कर रहा था विदा लेकर चले जाने से पहले दो-तीन दिन हुए ठंडक काफी चढ़ी हुई थी और चारों ओर हा-हा-कार मच गया था। खिड़की को भेदकर सवेरे की धूप टेबुल के नीचे तक जा पहुंची है और यह उत्ताप बहुत सुखकर लग रहा था। समय शायद सुबह का आठ बज रहा होगा। सर और गले में मफलर बाधे ऊषाचरगण प्रायः सभी प्रातः भ्रमण समाप्त कर घर लौट आये हैं। ऐसे में सड़क पर से काफी शोर सुनाई दी।

बाहर देखा तो नजर आया हमारे रहमत को दो-तीन पहरेदार बाँधकर ले आ रहे थे और उन सबके पीछे-पीछे उत्सुक बच्चों की झुंड चली आ रही है। रहमत के कपड़ों में खून के छींटे थे और एक पहरे वाले के हाथ में खून से टंगा एक छूरा था। मैंने दरवाजे से निकलकर ही उस पहरेदार को रोका और पूछा कि बात क्या है?

कुछ उससे और कुछ रहमत से सुनकर पता चला, हमारे पड़ोस में किसी ने रामपुरी चद्दर खरीदने के लिए रहमत से कुछ पैसे लिए थे– लेकिन उसने अब झूठ कहकर उस उधार को अस्वीकार किया और इसी बात पर बहस होते-होते रहमत ने उसे छुरी मार दी।

रहमत उस झूठ बोलने वाले व्यक्ति के लिए अनेक अश्राव्य गालियां निकाल रहा था, ऐसे वख्त पर– "काबुलिवाला, ओ काबुलिवाला" पुकारती मिनि घर के अंदर से बाहर निकल आयी।

रहमत का मुंह एक ही पल में हास्य-कौतुक से प्रफुल्ल हो उठा उसके कंधे पर आज झोली न था, इसलिए झोली के बारे में उन दोनों की हर रोज की बातें नहीं हो पायी। मिनि ने उसे एकं ही बार में प्रश्न पूछा, "तुम ससुराल जाओगे"

रहमत ने हँसकर कहा; "वहीं जा रहा हूं।"

जब उसने देखा यह जवाब मिनि के लिए हास्यजनक नहीं हुआ, तब हाथ की ओर दिखाकर कहा, "ससुरे को मारता, लेकिन क्या करूं? हाथ बंधे हुये हैं।"

खतरनाक ढंग से आघात करने के जुर्म में रहमत को कई वर्षों के लिए कैद की सजा मिली।

उसकी बात में लगभग भूल ही गया था। जब हम लोग घर बैठकर हर रोज की तरह समय बीताते थे, उसी समय एकपर्वताचारी पुरुष काराप्राचीर के भीतर किस तरह से अपना दिनयापन कर रहा है, उसके बारे में हमारे में कभी कोई चिंता तक नहीं होती थी।

और चंचलहृदया मिनि का आचरण अत्यंत लज्जाजनक था– यह उसके पिता को मानना ही पड़ेगा। शीघ्र ही अपने पुराने मित्र को भूलाकर पहले उसने नवी सईस के साथ सख्यता की। बाद में वह जैसे-जैसे बड़ी होती गयी, वैसे-वैसे सखा के स्थान एक-एक करके सखियां आने लगीं। अब यह हाल था कि पिताजी के लिखने-पढ़ने के कमरे में भी वह नजर नहीं आती थी। मेरे साथ तो उसकी एक प्रकार की कट्टी ही हो गयी थी।

अनेक वर्ष बीत गये। एक और शरत ऋतु आयी है। मेरी मिनि के लिए वैवाहिक संबंध का निश्चय हो गया है। पूजा की छुट्टी के भीतर ही शादी की तारीख निकली है। कैलासवासिनी के साथ ही मेरे घर की आनंदमयी भी पितृभवन को त्याग कर पतिगृह की ओर यात्रा करेगी।

प्रभात की वेला अतीव सुन्दर हो गयी है। वर्षा के बाद शरत् की यह नयी धूप जैसे सोहागा में पिघलाया हुआ निर्मल सोने की तरह रंगीन है। कलकत्ते की गोलियों के भीतर जराजीर्ण गंदे मकानों के ढेर के ऊपर भी इस रौद्र की आभाने एक अपरूप लावण्य का विस्तार किया है।

हमारे मकान में आज रात्रि-शेष से पहले ही शहनाई की गूंज सुनाई दे रही है। उसका धुन मानो मेरे पंजरे की हड्डियों के भीतर से रो-रोकर निकल रहा है। उसकी कसम भैरवी रागिणी मेरी समागत विच्छेद-व्यथा को शरत की धूप के साथ समस्त जगत में व्याप्त कर रही थी। आज मेरी मिनि की शादी है।

सुबह से हो-हल्ला लगा ही हुआ है, बहुत लोगों का आवागमन हो रहा है। आंगन में बाँस और खूंटा गाड़कर शामियाना खड़ी की जा रही है। मकान के हर कमरे में और बरामदे पर से झाड़ की बत्ती टांगने की ठुं-ठुं शब्द सुनाई दे रहा है, चिल्लाहट पर कोई रोक-टोक नहीं है।

मैं अपने लिखने-पढ़ने के कमरे में बैठकर हिसाब जोड़ रहा था, ऐसे में रहमत आकर सलाम बजाकर खड़ा हो गया।

मैंने पहले उसे नहीं पहचाना। उसकी वह झोली भी नहीं थी, न ही लंबे बाल थे— उसके शरीर में भी पहले की तरह वह तेज न था। पर उसकी हंसी से उसे पहचाना।

मैंने कहा, "क्यों रे रहमत? कब आया?"

उसने कहा, "कल ही शाम को जेल से निकला।"

यह बात कान में न जाने क्यों खटकी। मैंने किसी खूनी को कभी प्रत्यक्ष नहीं किया, लेकिन उसे देखकर मेरा समस्त अन्तःकरण मानो सिकुड़ गया। मुझे लग रहा था, आज इस शुभ दिवस में यह आदमी अगर यहां से चला जाता है, तो ही अच्छा होगा।

मैंने उसे कहा, "आज हमारे घर में एक विशेष अनुष्ठान है, मैं ज़रा व्यस्त भी हूं, आज तुम जाओ।"

इस बात पर वह तत्क्षणात् चले जाने के लिए उठा, लेकिन दरवाजे के पास जाकर थोड़ा हिचकिचाकर कहा, "क्या खोंखी को एक बार भी देख नहीं पाऊंगा?"

उसके मन में शायद विश्वास था, मिनि वैसी ही है। उसने सोचा, होगा, मिनि फिर पहले की ही जैसी "काबुलिवाला, ओ काबुलिवाला" कहकर दौड़ती हुई आएगी— उन दोनों की उस पुरानी हँसी-मजाक व वार्तालाप में कोई फर्क नहीं होगा। यहाँ तक कि पुरानी मित्रता को स्मरण कर वह एक बक्शा अंगूर और कागज की पुड़िया में कुछ बादाम-किशमिश कोनो स्वदेशी भाइ से मांग कर साथ में ले आया था— उसकी अपनी वह झोली अब थी नहीं।

मैंने कहा, "आज घर में काम है, आज किसी से मुलाकात हो पाना संभव नहीं है।"

मुझे लगा वह कुछ दुःखी हो गया। स्तब्ध होकर उसने कुछ देर तक मेरे मुंह की ओर देखा और उसके बाद "बाबू, सलाम" कहकर दरबाजे से बाहर निकल गया।

मेरे मन में एक अजीब सी व्यथा हुई। मैं सोच ही रहा था, उसे बुलाकर लौटा लाऊं, ऐसे में देखा— वह स्वयं वापस आ रहा था।

पास आकर उसने कहा, "यह अंगूर और किशमिश खोखी के लिए लाया था, उसे दे देना।"

उन सब वस्तुओं को लेते हुए मैं उसे उनकी कीमत चुकाने लगा तो उसने अकस्मात् मेरा हाथ पकड़ लिया और कहा, "आप बहुत दयालु हैं, मुझे जीवन भर आपकी बातें याद आएंगी– मुझे आप पैसे न दें।"

"बाबू, जैसे तुम्हारी एक लड़की है, वैसे ही हमारी भी एक लड़की है हमारी मुल्क में। मैं उसी की याद कर तुम्हारी लड़की के लिए कुछ न कुछ मेवा लेकर आता रहा हूं। मैं तो सौदा करने के लिए कभी नहीं आता।"

यह कहकर उसने अपनी विशाल ढीला कुर्ते के भीतर हाथ घुसा कर अपनी छाती के पास से एक टुकड़ा मैला कागज निकाला। अत्यंत यतन से उसने उस कागज का तह खोलकर मेरे टेबुल के ऊपर बिछाया।

मैंने देखा, कागज पर एक छोटे से हाथ का निशान था। कोई तस्वीर नहीं थी, न ही तेल-रंग का चित्र था, हाथ में भूसा लाकर कागज पर उसका निशान लिया गया है। अपनी कन्या के इस स्मृति-चिह्न को हृदय के पास रखकर रहमान हर साल कलकत्ते में मेवा बेचने को आता था। मानो उस सुकोमल क्षुद्र शिशुहस्त का स्पर्ष उसका विराट विरही वक्ष में सुधा संचार कर रखता था।

देखकर मेरी आंखों में आंसू भर आयी। तब मैं यह भूल गया कि वह एक काबुलि मेवा वाला था और मैं एक संभ्रांत-वंशीय बंगाली सज्जन हूं। तब यह समझ में आया कि जैसा वह, वैसा ही मैं था, वह भी पिता था, मैं भी पिता था। उसकी पर्वतगृहवासिनी क्षुद्र पार्वती का हस्तचिह्न ने मेरी मिनि की ही याद दिलायी। मैंने तत्काल मिनि को अंतःपुर से बुला भेजा। अंतःपुर में इस बात पर अनेक विरोध था, आपत्ति थी। पर मैंने एक न सुनी। रंगीन चोली पहनी माथे पर चंदन-चर्चित वधू-वेशिनी मिनि शरमा कर मेरे पास आकर खड़ी हो गयी।

उसे देखकर काबुलिवाला तो पहले अकचका-सा गया, उन दोनों की पुरानी वार्ता जमी नहीं। अंत में उसने हंसकर कहा, "खोंखी, तुम ससुराल जाओगी?"

मिनि अब ससुराल का अर्थ समझती है, अब वह पहले की तरह जवाब नहीं दे पायी– रहमत के सवाल पर शर्म से लाल होकर मुंह घुमाकर खड़ी हो गयी। काबुलिवाला के साथ मिनि की पहली मुलाकात का वह दिन मुझे याद आया। मेरा मन एक अनजान दर्द का शिकार हो गया।

मिनि चली गई। रहमत एक लंबी सांस लेकर वहीं जमीन पर बैठ गया। वह अचानक स्पष्ट रूप से समझ गया– उसकी अपनी लड़की भी इसी तरह बड़ी हो गई है, उसके साथ भी नया परिचय करना पड़ेगा। वह भी पहले की तरह नहीं मिलेगी। इन आठ सालों में उसका क्या हुआ, वह भी कौन बताएगा? सुबह के स्निग्ध रौद्रकिरण में शहनाई बजने लगी और रहमत कलकत्ते की एक गली के भीतर बैठ कर अफगानिस्तान के एक मरुपर्वत का दृश्य देखने लगा।

मैंने एक नोट लेकर उसके हाथ में दिया और कहा, "रहमत, तुम अपने देश में अपनी लड़की के पास लौट जाओ, तुम्हारे मिलन के सुख में ही मिनि का कल्याण हो।"

इस पैसे के दान के कारण अपने हिसाब से उत्सव-समारोह के किसी एक अंग को छांटना पड़ा। जैसा सोचा था, उस तरह से बिजली-बत्ती की सजावट नहीं कर सका, बैंड-बाजा भी नहीं आया, अंतःपुर में महिलाएं अत्यंत असंतोष व्यक्त करने लगी, लेकिन मंगल-आलोक में मेरा शुभ उत्सव उज्ज्वलतर हो उठा।

6.8 सारांश

उन्नीसवीं सदी मानव इतिहास का महत्वपूर्ण काल रहा है। जहाँ इस काल में संसार के कई भागों में परिवर्तन का दौर शुरू हुआ वहीं भारत में भी नवजागरण आया। बंगाल

इस नवजागरण के दौर में अग्रणी रहा। आप तत्कालीन बांगला नवजागरण के बारे में बता सकते हैं।

रवीन्द्रनाथ का आगमन बांगला ही नहीं संपूर्ण भारतीय एवं मानव साहित्य के लिए महत्वपूर्ण था। उस समय की परिस्थितियों ने उनके व्यक्तित्व पर अमिट छाप छोड़ी। आप कवि का जीवन परिचय एवं व्यक्तित्व निर्माण के घटकों को स्पष्ट कर सकते हैं।

मानवता के विकास के लिए रवीन्द्रनाथ ने साहित्यिक रचनाएं की। सामाजिक उत्थान एवं व्यक्तित्व निर्माण के लिए गद्य एवं पद्य रचे। साहित्य को इस ऊंचाई पर पहुंचाया कि नोबुल पुरस्कार पाने वाले वे पहले भारतीय बने। आप कवि के साहित्यिक कोपी का आकलन कर सकते हैं।

भारत तीर्थ, प्रश्न, आत्मगाण, निर्झरे स्वप्न भंग जैसी कवि की कविताओं तथा निबंध हिमालय यात्रा तथा कहानी काबुलिवाला के वाचन से उसकी साहित्यिक विशेषताओं को बता सकते हैं।

6.9 उपयोगी पुस्तकें

- सेन, सुकुमार, बंगला साहित्य का इतिहास, अनुवादिका, निर्मला जैन साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।
- सत्यकाम विद्यालंकार, इंदु जैन, (अनुवादक, गीतांजलि हिन्द पाकेट बुक्स (प्रा.) लिमिटेड, जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली।

6.10 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1), 2), 3) के लिए उपभाग 7.3.1 देखें

अभ्यास

1) देखें 7.3.1

बोध प्रश्न

4), 5), 6), 7), 8), 9), 10) देखें उपभाग 7.3.2

अभ्यास

2) देखें 7.3.2

बोध प्रश्न

11), 12), 13) देखें उपभाग 7.3.2

बोध प्रश्न

14), 15), 16) देखें उपभाग 7.5.1

अभ्यास

3), 4) देखें उपभाग 7.5.2

बोध प्रश्न

11), 12), 13) देखें के लिए उपभाग 7.3.2

इकाई 7 बांगला साहित्य-III

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 शरतचंद्र सामान्य परिचय
  7.2.1 राजनीतिक परिवेश
  7.2.2 सामाजिक परिवेश
7.3 शरत् साहित्य की भूमिका
  7.3.1 सामाजिक चेतना
  7.3.2 ग्रामीण चेतना
  7.3.3 धार्मिक चेतना
  7.3.4 राजनीतिक चेतना
7.4 शरतचंद्र के उपन्यास/कहानियाँ
  7.4.1 उपन्यास
  7.4.2 कहानियाँ
  7.4.3 महेश और अभागीर स्वर्ग
  7.4.4 अभागीर स्वर्ग
  7.4.5 अभागीर स्वर्ग : विषय वस्तु
  7.4.6 चरित्र चित्रण
  7.4.7 उद्देश्य
7.5 अभागीर स्वर्ग
  7.5.1 भावार्थ
7.6 काजी नजरुल इस्लाम
  7.6.1 सामान्य परिचय
  7.6.2 समय और परिवेश
  7.6.3 काव्य यात्रा
7.7 राष्ट्रीय चेतना
  7.7.1 समन्वय
7.8 विद्रोही कविता : वाचन
  7.8.1 विद्रोही
  7.8.2 भावार्थ
7.9 सारांश
7.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
7.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

7.0 उद्देश्य

बांगला साहित्य-III नामक इस इकाई में आधुनिक बांगला साहित्य के विकास का अध्ययन करेंगे। मुख्य रूप से तीन लेखकों पर आधारित इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

– आधुनिक बांगला साहित्य के विकास को स्पष्ट कर सकेंगे,

- तत्कालीन उन परिस्थितियों का विश्लेषण कर सकेंगे जिनसे साहित्य प्रभावित हुआ,
- सामाजिक राजनीतिक दृष्टि से शरतचंद्र के साहित्य का मूल्यांकन कर सकेंगे, तथा
- बांगला साहित्य के क्रांतिकारी कवि नजरुल की कविताओं द्वारा जन-आंदोलन में क्या योगदान मिला उसे स्पष्ट कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

आधुनिक भारतीय साहित्य : राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण नामक पाठ्यक्रम की यह सातवीं इकाई है अर्थात् पूर्वांचलीय साहित्य पर आधारित खंड दो की यह तीसरी इकाई है, इस खंड की पहली और दूसरी इकाई के अध्ययन के माध्यम से आपने बांगला साहित्य के उद्भव एवं विकास का संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया है, आधुनिक बांगला साहित्य का आरंभ 19वीं शती में ही हो गया था। पद्य एवं गद्य की विविध विधाओं में महत्वपूर्ण साहित्यिक रचनाएं हुई। आधुनिक भारत के जनक राजा राममोहन राय बांगला की देन थे। ईश्वरचंद्र विद्यासागर, विवेकानंद, तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे रत्नों ने साहित्य एवं समाज को एक नया रास्ता दिखाया। माइकेलमधुसूदन दत्त, बंकिमचंद्र चटर्जी, गिरीशचंद्र घोष आदि ने भारत के नवनिर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। एक ओर समाज सुधारकों ने समाज को रुढ़िवाद के घेरों से बाहर निकाला तो दूसरी ओर साहित्यकारों ने साहित्य रचना करके न केवल एक नए समाज के निर्माण में योगदान दिया बल्कि राजनीतिक दृष्टि से पराधीन भारत को मुक्त करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पहले की दोनों इकाइयों के अध्ययन से बांगला साहित्य के विकास और उसके ऐतिहासिक महत्व से भी आपका परिचय हुआ। राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के परिप्रेक्ष्य में उस युग के बांगला साहित्य में गुणात्मक परिवर्तन तो आया ही है, साथ ही भाषा-विषयवस्तु तथा समाज के संदर्भ में भी नया मोड़ मिलता है। बांगला साहित्य के इतिहास में द्विजेन्द्रलाल राय के ऐतिहासिक नाटक ने नाट्य साहित्य तथा रंगमंच को नया आयाम प्रदान किया था।

इस इकाई में हम मुख्य रूप से बांगला साहित्य के तीन महत्वपूर्ण रचनाकारों के माध्यम से साहित्य में हुए परिवर्तन को जानेंगे। शरतचंद्र, द्विजेन्द्रलाल राय तथा काज़ी नजरूल द्वारा किए गए साहित्यिक कार्यों से हम परिचित होंगे तथा यह देखेंगे कि किस प्रकार इन साहित्यकारों ने नए समाज के साथ-साथ एक नए भारत के निर्माण में योगदान दिया। प्रस्तुत इकाई के माध्यम से हम जानेंगे कि अपने चरित्रों के माध्यम से लेखक ने मानवीयता का नया आयाम प्रस्तुत किया है। शरतचंद्र तथा प्रेमचंद की पृष्ठभूमि एक ही रही है। इन दोनों महान साहित्यकारों के तथ्यों से हम यह भी स्पष्ट कर सकेंगे कि उन्नीसवीं शती में जो बदलाव का दौर शुरू हुआ वह क्षेत्र विशेष तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें सारा भारत समा गया था। सामंतीय व्यवस्था का विरोध, पीड़ित एवं शोषितों के प्रति सहानुभूति साहित्य के लिए विषय वस्तु बन गए थे। जो एक नए समाज के निर्माण का परिचायक था। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि क्या यह परिवर्तन आकस्मिक था, क्या बांगला साहित्य में नया मोड़ लाने में तत्कालीन परिस्थितियाँ कारण नहीं बनी थीं आइए इन प्रश्नों का हल जानने के लिए सर्वप्रथम युग की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करें।

7.2 शरतचंद्र सामान्य परिचय

परिस्थितियाँ साहित्य को प्रभावित करती हैं। कोई भी रचनाकर अपने समय की राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों से कटकर नहीं रह सकता। वह अपने आसपास की घटनाओं से प्रभावित होता है। राजनीतिक क्षेत्र में या सामाजिक जो घटनाएं घटती हैं उसके प्रभाव से लेखक का मन मस्तिष्क अवश्य आंदोलित होता है।

वह जो कुछ लिखता है उसमें भले ही कल्पना का रंग हो लेकिन उसके सामने का यथार्थ भी आ जाता है। आइये पहले शरतचंद्र का सामान्य परिचय प्राप्त करें। यह इसलिए आवश्यक है क्योंकि उनके संपूर्ण साहित्य में उनके व्यक्तिगत जीवन का प्रभाव है।

शरतचंद्र के समय का विस्तार उन्नीसवीं सदी के उतरार्द्ध से बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक है। दोनों सदियों का प्रतिफलन उनके साहित्य में हुआ है।

शरतचंद्र का जन्म 15 सितम्बर 1876 में हुगली जिले के देवानन्दपुर में हुआ। स्वभाव से वे घुमक्कड़ थे। उनके जीवन का अधिकांश समय बंगाल के बाहर व्यतीत हुआ। बचपन बंगाल के देवानन्दपुर में गुजरा। सन् 1886-1889 तक वे भागलपुर में रहे। वहां, विद्यालय में पढ़ते रहे। तीन साल बाद फिर देवानंदपुर लौट आये। दुबारा भागलपुर आये। सन् 1901 के अन्त में अचानक घर छोड़कर चले गये। सन्यासी के रूप में भटकते हुए मुजफ्फरपुर आ गए। दो साल बाद 1903 में पिता के देहावसान के बाद शरतचंद्र बर्मा चले गए, रंगून चले गए। वहां से फिर पेगु चले आये। 1906 में फिर रंगून लौट आये और नौकरी करने लगे एवं एक अनुशासनहीन जीवन बिताने लगे। 1916 में बर्मा छोड़कर बंगाल चले आये। वे व्यक्तिगत जीवन में संगीत प्रेमी और गायक थे। अच्छे चित्रकार भी थे। लंबी अवधि तक लगातार लिखते रहे। उनकी अधिकांश रचनाएँ सामयिक पत्र-पत्रिकाओं में छपती रहीं।

सन् 1907 में "भारती" पत्रिका में "बड़दिदि" उपन्यास प्रकाशित हुआ। सन् 1900-1901 के भीतर देवदास, शुखदा, बड़दिदि आदि की रचना हो चुकी थी। इसके उपरांत काशीनाथ (1912), रामेर सुमति (1914), श्रीकांत (1914), पंडित-मशाई (1915), पल्ली समाज (1915), दत्ता (1914), अरक्षणीया (1916) तथा गृहदाह (1920) आदि प्रमुख रचनायें प्रकाशित हुईं।

7.2.1 राजनीतिक परिवेश

सन् 1907 में भारती पत्रिका में बड़दिदि कहानी का प्रकाशन हुआ। ठीक इसके पहले 1905 में बंगभंग आंदोलन और इसके प्रभाव के कारण अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन ने जोर पकड़ा। पहले महायुद्ध का आतंक फैला हुआ था। मध्यम वर्ग और बौद्धिक समाज को इन घटनाओं ने झकझोर दिया था। धीरे-धीरे समाज को बदलने के लिए आम लोगों की आकांक्षा मजबूत हो रही थी। पहले महायुद्ध के समाप्त होने के साथ-साथ जलियावाला बाग हत्याकांड हुआ। महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था। देशवासियों को आशा थी कि युद्ध के पश्चात् उन्हें आजादी मिलेगी। पर उनका मोह भंग हुआ। नतीजन जनजागरण हुआ। सन् 1920 में लाला लाजपत राय की अध्यक्षता में कलकत्ता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ। अधिवेशन में ही असहयोग आंदोलन का प्रस्ताव गृहीत हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सन् 1917 में रूसी क्रांति भी हो चुकी थी।

"पथेर दावी" शरतचंद्र का राजनीतिक उपन्यास है। वैसे बंकिमचंद्र का "आनंदमठ", रवीन्द्रनाथ का "चार अध्याय" और गोपाल हालदार द्वारा रचित "एकदा" भी राजनीतिक उपन्यास हैं। पथेर दावी में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को ही अहम् माना गया है। सव्यसाची क्रांतिकारी हैं, वह कहते हैं, "भारतेर स्वाधीनता छाड़ा आभार निजेर द्वितीय लक्ष्य नेइ, किन्तु मानवजीवने एर चेये वृहतर काम्य आर नेइ, एमोन मुलओ आभार कोनो दिन हयनि। स्वाधीनताइ स्वाधीनतार शेष नाय धर्म, शान्ति, काव्य, आनन्द-एरा आरओ बड़।" "भारत की स्वाधीनता के सिवा हमारा कोई दूसरा लक्ष्य नहीं लेकिन मानव जीवन में इससे बढ़कर काम और नहीं, यह भूल किसी दिन हमसे नहीं हुई। स्वाधीनता ही स्वाधीनता का अंत नहीं, धर्म, शान्ति, काव्य, आनन्द इससे भी बड़े हैं।"

7.2.2 सामाजिक परिवेश

शरतचंद्र के पहले बंगाल में सामाजिक और धार्मिक रुढ़ियों के खिलाफ कई आंदोलन हुए थे। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, यंग बंगाल आदि इसके नेतृत्व में थे। तत्कालीन समाज में नारी की स्थिति गंभीर थी। सन् 1856 में विधवा-विवाह वैध घोषित हुआ था। सन् 1872 में बाल विवाह पर प्रतिबंध लगाया गया था। अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार प्रसार होने लगा था। देश में औद्योगीकरण होने लगा था। हर कोष से धार्मिक रुढ़ि, जातिवाद, अवतारवाद का विरोध और नारी शिक्षा का प्रचार प्रसार होने लगा था। पर शरत् के समय तक गांवों के सामाजिक परिवेश में बहुत परिवर्तन नहीं हो पाया था। शरत् के समय नारी की स्थिति में बदलाव आशानुरूप नहीं हो पाया था। इसी कारण प्रेम और धर्म के संस्कारगत द्वन्द्व का चित्रण शरत् की रचनाओं में मिलता है। लंबे संघर्ष के बाद आज नारी को पुरुष के साथ समानाधिकार मिला है। पर शरत् के समय में ऐसा नहीं था। "पल्ली समाज में रमा और रमेश का विवाह होना था नहीं हो पाया। रमेश अध्ययन के लिए बाहर चला गया, रमा का विवाह हो गया और छः महीने के भीतर वह विधवा हो गई। देश लौटकर रमेश अपने को देशसेवा में समर्पित करता है। रमा और रमेश में द्वन्द्व होता है। अंत में रमा अपने में टूट जाती है।" इसके बाद व्यक्ति और समाज में संघर्ष का चित्रण है। इसी तरह "पथ निर्देश", "बड़दिदि", पंडितमशाइ में भी सामाजिक संस्कार पर प्रहार किया गया है। धार्मिक रुढ़िवाद, संकीर्णता, क्रूरता पर चोट की गई है। उन्होंने नारी को स्वतंत्र व्यक्तिगत प्रदान करने का प्रयास किया है।

7.3 शरत् साहित्य की भूमिका

शरतचंद्र मूलतः कथाकार हैं। उन्होंने अनेक उपन्यास और कहानियों की रचना की है। शरत् साहित्य पर चर्चा करने के पहले बंगला कथा साहित्य पर चर्चा करना जरूरी हैं। उनके पहले बंगला के दो महान लेखक बंकिमचंद्र और रवीन्द्रनाथ को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। वैसे "आलालेर घरेर दुलाल" बंगला का पहला उपन्यास है। प्रारंभिक रचना होने के नाते इसमें उपदेश और व्यंग्य के जरिए टुकड़े-टुकड़े चित्र एक सूत्र में गूंथे गये हैं। बंकिमचंद्र ही पहले व्यक्तित्व हैं जिन्होंने बंगला उपन्यास में कथा और चरित्र का संतुलित समन्वय किया हैं।

बंकिमचंद्र ने ऐतिहासिक (राजसिंह), सामाजिक (कृष्णकांतेर, विषवृक्ष) एवं कल्पना मिश्रित ऐतिहासिक पारिवारिक (दुर्गेशनंदिनी, कपालकुंडला, मृणालिनी) उपन्यासों की रचना की है। बंकिमचंद्र के उपन्यासों में कल्पना की प्रधानता है पर इसके साथ कभी इतिहास और कभी सामाजिक जीवन का समावेश मिलता है।

बंकिम के उपन्यासों में कथा वस्तु, चरित्र चित्रण या अभिव्यंजना-प्रणाली की अपनी विशेषता है। अति प्राकृतिक अथवा अलौकिक घटनाओं का समावेश भी उन्होंने यदा कदा किया है। कहीं-कहीं साधु-सन्यासी या ज्योतिषों की भी अहम् भूमिका है। आनंदमठ या देवी चौधरानी में अलौकिक शक्ति का चित्रण है प्रफुल्ल और जयन्ती के चरित्र ऐसे ही हैं। कपालकुंडला या मनोरमा ये सभी साधारण नारी पात्र हैं। फिर भी चरित्र-विश्लेषण से ऐसा लगता है कि ये आम आदमी को अपने आदर्श की ओर प्रेरित करना चाहते हैं पर स्वयं कभी भी अपने आप में खो नहीं जाते हैं। बंकिम के पात्र प्रायः किसी न किसी आदर्श के लिए समर्पित हैं। कहीं-कहीं आम आदमी का भी चित्रण है, जैसे नगेन्द्र नाथ या गोविन्द लाल।

बंकिमचंद्र के बाद रवीन्द्रनाथ ने बंगला कथा साहित्य को नई दिशा दी है। उनके उपन्यासों में बंगाल के सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। "चोखेर बालि" में रवीन्द्रनाथ ने विधवा नारी को स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया है। प्रचलित नैतिकता के स्थान पर उन्होंने मौलिकता को तथा नारी के अधिकार को महत्व प्रदान किया है। प्रस्तुतः "दुर्गेशनंदिनी" के बाद "चोखेर बालि" युगांतकारी रचना है। समाज को

परंपरागत रुढ़ियों से मुक्त करने का जो प्रयास रवीन्द्रनाथ ने किया है, उसी का विकास हम शरतचंद्र में देखते हैं।

शरत् साहित्य की रचना प्रक्रिया में सामाजिक, आर्थिक, राजनीति एवं उनकी धर्म-संबंधी अवधारणायें अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। उनका समय भारतीयों के लिए पराधीनता एवं राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का काल है। सामाजिक दृष्टि से भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिए सांस्कृतिक संघर्ष चल रहा था। उन्हें अपनी परंपरा में राजा राममोहन राय और विद्यासागर के विभिन्न सामाजिक एवं धार्मिक आंदोलन मिले थे। साथ ही साथ पुनर्जागरण की फसल भी मिली थी। एक तरफ शरतचंद्र रुढ़िवादी समाज में नारी की दयनीय सामाजिक स्थिति से परिचित थे तो दूसरी तरफ जमींदार एवं शासक वर्ग के अत्याचार से भी उनका परिचय था। उनके संपूर्ण कथा साहित्य के विकास में ये अत्यंत महत्त्वपूर्ण बिंदू हैं। इसे हम सामाजिक चेतना, अर्थनीतिक चेतना, राजनीतिक चेतना, धर्म चेतना इस रूप में विभाजित करके विश्लेषित करने का प्रयास करेंगे।

7.3.1 सामाजिक चेतना

शरतचंद्र यथार्थवादी और जीवन धर्मी कथाकार हैं। वे अपने साहित्य में चित्र को आंकने के लिए समाज की विभिन्न समस्याओं पर प्रकाश डालते रहे हैं। मूल रूप में वे मानवतावादी हैं। उन्होंने अपने मन के विभिन्न पहलुओं का द्वन्द्वात्मक चित्रण किया है। उनके साहित्य में समाज को व्यक्ति से अधिक महत्व प्रदान किया गया है। उनका मानना है कि व्यक्ति की मुक्ति समाज में ही संभव है। संघर्षशीलता व्यक्ति को खरा बनाती है।

वस्तुतः शरत् की जीवन दृष्टि के निर्माण में उनका परिवेश बहुत सहायक रहा है। उनका जीवन बचपन से युवा होने तक निम्न मध्यम वर्गीय परिवेश में गुजरा। उनका संबंध समाज के निंम्न वर्ग के लोगों से ही अधिक रहा है। नतीजन मनुष्य की दयनीय स्थिति से वे परिचित थे। इसलिए समाज में ऊंच-नीच, भेद-भाव के खिलाफ उनकी लेखनी संघर्ष करती रही है। उनका विश्वास था कि मनुष्य अपने परिवेश के कारण ही बनता-बदलता है। "देवदास" तथा "देनापाओना" उपन्यास इस बात के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।

पुराण शासित समाज में नारी की यंत्रणा का चित्रण उन्होंने अपने उपन्यासों में किया है। "श्रीकांत" की राजलक्ष्मी, "पल्ली समाज" की रमा, "चरित्रहीन" की सावित्री और किरणमयी, "गृहदाह" की अचला, "पंडितमशाइ" की कुसुम आदि ऐसी ही अत्याचार पीड़ित नायिकाएं हैं। वे समाज के सकारात्मक चित्रण द्वारा समाज की प्रगति देखना चाहते थे। वस्तुतः जो सामाजिक नियम, रीति-रिवाज समाज के लिए अप्रयोजनीय हो शरतचंद्र उनके संशोधन के पक्ष में नहीं थे अपितु वे उन्हें त्यागने की बात कहते हैं। उनकी रचनाएं समाज के विघटनकारी तत्वों के खिलाफ संघर्ष की दिशा देती हैं। मानव-कल्याण ही उनकी सामाजिक चेतना का आधार है। उनका संपूर्ण कथा साहित्य इसका प्रमाण है।

टूटते संयुक्त परिवार प्रथा उन्हें व्यथित किए हुए थी। हालांकि बदलती आर्थिक स्थिति के कारण ही ऐसा हो रहा था। औद्योगीकरण के कारण संयुक्त परिवार प्रथा के टूटने का चित्रण "पल्ली समाज", "मेज दिदि", "विराज बहु" आदि उपन्यास में मिलता है।

7.3.2 ग्रामीण चेतना

गांवों में जमींदारों का अत्याचार ग्रामीण समाज के विकास में बाधक था। उनके द्वारा परिचालित समाज मानव कल्याण में सहयोगी नहीं हो पाता है। उनके कथा साहित्य में ग्रामीण जनता और समाज के बदलाव की दिशा के लिए विभिन्न समस्याओं का चित्रण किया गया है। इन समस्याओं को लेकर चलने वाले उपन्यासों में देना पाओना, पल्ली समाज, अंरक्षणीया, बामुनेर मेये, महेश, अभागीर स्वर्ग आदि महत्वपूर्ण हैं।

निरक्षरता आज भी हमारे लिए अभिशाप है। यह राष्ट्र को अंधेरे की ओर ले जाती है। खासकर गांव के शोषण तंत्र के लिए यह एक बड़ा सहायक तत्व है। प्रेमचंद की तरह शरतचंद्र ने भी इसके खिलाफ आवाज उठाई है। निरक्षरता दूर किए बिना गांवों की उन्नति नहीं हो सकती। "पल्ली समाज" में जातिवाद, गुटबाजी, ग्रामीण इर्ष्या आदि के साथ-साथ शिक्षा-प्रसार पर उन्होंने जोर दिया है। शिक्षा से मानव चेतना का विकास होता है, अपनी अस्मिता की पहचान होती है। उन्होंने अपने उपन्यास "बिन्दुर छेले", "रामेर सुमति", "मेज दिदि", "पंडितमशाई" आदि में शिक्षा प्रसार पर महत्व दिया है। "पल्ली समाज" में रमेश अभियंता होते हुए भी शिक्षा-विस्तार के लिए गांव में रह जाता है। "पंडितमशाई" में गांव के निम्न वर्ग के लोगों में शिक्षा के प्रसार पर जोर डाला है। साथ ही "श्रीकांत" उपन्यास में जमींदारों में शिक्षा-विस्तार के प्रति उदासीनता की कड़ी आलोचना भी की है।

मानवतावादी शरतचंद्र ने समाज की समस्याओं का विश्लेषण यथार्थ दृष्टि से किया है। उन्होंने समस्याओं का विश्लेषण अवश्य किया है पर समाधान का रास्ता नहीं दिखाया। फिर भी समाज के ठेकेदारों का वीभत्स रूप उनके कथा साहित्य में मिलता है।

दहेज प्रथा के खिलाफ भी शरत् ने लिखा है। नारी स्वतंत्रता एवं नारी अधिकार और उनके सम्मान के लिए दहेज विध्वंसकारी है। मानवतावादी शरतचंद्र ने इसके खिलाफ भी लड़ाई की है। "श्रीकांत" में श्रीकांत शशधर और पुटु के विवाह में दहेज प्रथा के खिलाफ आवाज उठाता है। गरीबी के कारण मनुष्य कहीं-कहीं स्वार्थी हो जाता है। इसका भी चित्रण उनके साहित्य में है। "पल्ली समाज" में भैरव आचार्य ऐसा ही चरित्र है। रमेश ने उसका उपकार किया था पर भैरव सब भूलाकर घनी वेणी घोषाल के षडयंत्र में साथ देता है और रमेश को जेल भिजवाता है। इसके विपरीत उनके साहित्य में गरीब होते हुए भी स्वाभिमानी और आत्म-सम्मान के लिए लड़ने वाले पात्र भी हैं। गांव के किसान ऐसे ही हैं। "पंडितमशाई" में कुसुम भी ऐसा ही उदाहरण है। उन्होंने सामंतीय परिवेश में धनी और जमींदारों के दबदबे से होने वाले अन्याय और अत्याचार का चित्र अपने कथा-साहित्य में किया है। समाज के आर्थिक ढाँचे के प्रति उनका कभी समर्थन नहीं रहा है। "महेश" उपन्यास में गरीब गफर जमींदार के अत्याचार के कारण गांव छोड़ देता है। गरीबी से मानवीयता भी सूख जाती है। "अरक्षणीया" में यह जानते हुए भी कि बेटी विधवा हो सकती है, गरीब मां समाज के संस्कार और डर से मातृत्व का बलिदान कर बेटी का विवाह एक वृद्ध से कर देती है। अनब्याही लड़की परिवार के लिए बोझ होती है। मां के निकट बेटी के सुख के बदले सामाजिक नियम तथा संस्कार ही महत्वपूर्ण हो गया। आर्थिक वैषम्य के कारण ही ऐसा होता है। इस वैषम्य की समाप्ति से ही समाज में परिवर्तन हो सकता है।

निम्न वर्ग के साथ मध्यम वर्ग की विभिन्न सामाजिकार्थिक समस्याओं का भी उन्होंने चित्रण किया है। मध्य वर्ग में व्याप्त अंतर्विरोध का जीवंत चित्रण उनके उपन्यासों में मिलता है। "दत्ता" और "परिणीता" में हिन्दू-ब्राहय सांप्रदायिकता समस्या, "देनापाओना", "पल्ली समाज", "महेश", "अभागीर स्वर्ग" में जमींदारों का अत्याचार "चरित्रहीन", "देवदास", "बड़दिदि" में प्रेम की सामाजिक समस्या, "चंद्रनाथ" में असामाजिक विवाह की समस्या इसी सामाजिक अंतर्विरोध की परिचायक हैं।

अंग्रेजी-साम्राज्य में शोषण के बढ़ने के कारण देश में बढ़ती आर्थिक-दुर्दशा की बात उन्होंने बार-बार कही है। बेकारी की समस्या, गांव में खेती बाड़ी और कुटीर-उद्योग की दुर्दशा के कारण किसानों की बिगड़ती हालत को आर्थिक-दुर्दशा का कारण बताया है। सामंतीय समाज व्यवस्था के पीड़न से समाज के निम्न वर्ग में विद्रोह की चेतना और जागरूकता का चित्रण शरतचंद्र के कथा-साहित्य में मिलता है। प्रवंचित अत्याचार-पीड़ित एवं शोषित वर्ग का चित्रण उन्होंने सहानुभूति के साथ किया है। "दत्ता" और "पल्ली समाज" इसके उदाहरण हैं।

7.3.3 धार्मिक चेतना

रुढ़िवादी, अनुष्ठान धर्मी धार्मिक कर्मकांड का शरतचंद्र ने विरोध किया है। धर्म के नाम पर पाखंड करने वालों के प्रति उनके मन में घृणा थी। "बामुनेर मेये" उपन्यास के गोलक भट्टाचार्य इसके प्रमाण हैं। धार्मिक कुसंस्कार मनुष्य को अंधा बना देता है। इसीलिए आदर्श और चेतना के साथ संस्कार के द्वन्द्व का चित्रण उन्होंने अपने कथा-साहित्य में किया है। "गृह-दाह" में राय बाबू इसके उदाहरण हैं। धर्म को वे मानव कल्याण के लिए स्वीकारते हैं। उन्होंने धार्मिक उग्रवाद का भी विरोध किया है। शरत् साहित्य में मुसलमान पात्र बहुत कम हैं। फिर भी वे धर्म-निरपेक्ष थे। "श्रीकांत" में गहर, "देनापाओना" में फकीर, "दत्ता" में लठैत अकबर जैसे चरित्रों का निर्माण उन्होंने किया हैं। साथ ही उग्र धार्मिक विचार वाले पंडित मुल्लाओं का विरोध भी किया है। उन्होंने नैतिकता, मानव कल्याण और सत्य पर जोर दिया है।

7.3.4 राजनीतिक चेतना

शरतचंद्र ने राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का चित्रण अपने "पथेर दावी" उपन्यास में किया है। उनकी राजनीतिक चेतना के केन्द्र में शोषित आदमी हैं। "पल्ली समाज" व "देनापाओना" उपन्यास में वर्ग संघर्ष का चित्रण है। "पल्ली समाज" में आम आदमी शोषण के खिलाफ संघर्ष करता है। "देनापाओना" में जमींदार और प्रजा का संघर्ष चित्रित किया गया है।

शरतचंद्र स्वयं कांग्रेस के साथ जुड़े हुए थे। वे हावड़ा जिला कांग्रेस के अध्यक्ष तथा कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य थे। इसीलिए त कालीन जन-आंदोलन के साथ उनका गहरा संबंध था। "पथेर दावी" में ब्रिटिश राज के खिलाफ क्रांति की बात हैं। आर्थिक और सामाजिक वैषम्य राज के खिलाफ क्रांति की बात है। आर्थिक और सामाजिक वैषम्य का चित्रण उनके उपन्यास में बार-बार हुआ है। मानव की मुक्ति एवं कल्याण उनके जीवन बोध के निर्माण का आधार हैं।

बोध प्रश्न

1)- निम्नलिखित में उचित शब्द एवं कर वाक्य पूर्ति कीजिए।

क) शरतचंद्र का जन्म ..... में ..... जिले में ..... ग्राम में हुआ था।

ख) सन् ..... में ..... के रूप में मुजफ्फरपुर पहुंचे।

ग) 1903 में शरतचंद्र ..... गए।

घ) शरतचंद्र .... तथा ..... भी थे।

2)- शरतचंद्र लिखित पांच रचनाओं के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

3) निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दो पंक्तियों में लिखिए।

क) पथेर दावी का मुख्य विषय वस्तु क्या है।

.....

.....

ख) विधवा विवाह की वैधता की घोषणा किस वर्ष हुई।

.....

.....

ग) बांगला भाषा का पहला उपन्यास किसे माना जाता है।

.....

.....

घ) अपनी किन-किन रचनाओं में शरतचंद्र ने ग्रामीण समस्याओं को लिया है।

.....

.....

अभ्यास

1) दस पंक्तियों में शरतचंद्र से पूर्व बांगला साहित्य में आई चेतना को स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

7.4 शरतचंद्र के उपन्यास/कहानियाँ

7.4.1 उपन्यास

शरत् के उपन्यासों को तीन भागों में बाँटा जा सकता है:

1) नारी समस्या और नारी की परिस्थितियों पर आधारित उपन्यास
2) ग्रामीण जीवन पर आधारित उपन्यास
3) राजनीतिक उपन्यास।

शरत् के उपन्यास और कहानियों में नारी का बहुआयामी चरित्र उभरकर आया है। विधवा तथा उसके अंतर्मन के द्वन्द्व को इनके कथा-साहित्य में अभिव्यक्ति मिली है। "बड़दिदी" उनका पहला उपन्यास है। माधवी के चरित्र के जरिए उन्होंने विधवा नारी के रिक्तमन का चित्रण किया है। "देवदास" भी प्रेम की समस्या को प्रक्षेपित करने वाला उपन्यास है। इसमें जाति प्रथा पर प्रकाश डाला गया हैं। इसमें ग्रामीण समस्या एवं जाति भेद के कुफल पर मानवतावादी दृष्टि से विचार किया गया है। "देनापाओना" उपन्यास में ह्रासोन्मुखी सामंतीय परिवेश और शोषण का चित्र है। "बोड़सी" में शक्तिशाली नारी व्यक्तित्व का विकास होता है। साथ ही भैरवी रूप के साथ कोमल नारी के प्रेमिका रूप का अद्‌भुत मिश्रण मिलता है।

"गृहदाह" उपन्यास में ब्राहय हिन्दू धर्म के द्वन्द्व का चित्र है। इसमें त्रिकोण प्रेम की समस्या को उठाया गया है। "चरित्रहीन" उपन्यास में किरणमयी और सावित्री जैसे दो विधवा नारी पात्रों को स्वाभिमानी व्यक्तित्व प्रदान किया गया है।

आइए अब उनकी कहानियों पर विचार कर। पाठ में हम उनकी महत्वपूर्ण रचना "अभागीर स्वर्ग" का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

7.4.2 कहानियाँ

शरतचंद्र की कहानियों में विषयगत वैविध्य है। उन्होंने कहानियों में मानव मन की जटिलता तथा द्वन्द्व को उठाया है। साथ-साथ विभिन्न सामाजिक समस्यायें भी अछूती नहीं रही हैं।

उनकी कहानियाँ आकार में कहीं-कहीं कहानी होती हुई भी अपने में औपन्यासिक विशेषताओं को समेटे हुई हैं। शरत् की कहानियाँ शास्त्रीय परिभाषा में ठीक कहानी नहीं हैं। उनमें बहुत सारे चरित्रों की योजना, घटना-बहुलता प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। उनकी अधिकांश छोटी कहानियां गतिशील नहीं हैं।

"मंदिर" उनकी पहली कहानी है। यह नायिका अपर्णा के प्रेम की कहानी है। घरेलू या पारिवारिक जीवन की कहानियों में रामेर सुमति, बिन्दुर छेले, मेज दिदि, मामलार फल, काशीनाथ स्वामी, दर्प पूर्ण, हरिलक्ष्मी आदि में स्नेह करुणा, प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। अनुपमार प्रेम, आँधारे आलो, विलासी आदि कहानियों में मानव मन का रहस्य और प्रेम का यथार्थ चित्रण है। समाज द्वारा स्वीकृत न होने पर भी शरत् ने सहानुभूति के साथ उसका चित्रण किया है। ऐसे चित्रण में उन्होंने नारी पात्रों को अधिक महत्व प्रदान किया है। निष्कृति, बैकुण्ठेर विल, बिन्दुर छेले, रामेर सुमति आदि में पारिवारिक विरोध संयुक्त परिवार की समस्याओं को केन्द्र में रखकर कहानियां लिखी हैं। उन्होंने वात्सल्य और मातृत्व जैसे कोमल भावों को इन कहानियों के माध्यम से प्रतिष्ठित किया है।

सामंतीय परिवेश में दम घुटते आम आदमी भी उनकी कहानियों के केन्द्र में है। महेश, अभागीर स्वर्ग, हरिचरण, विलासी आदि कहानियों में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक समस्याओं एवं अंतर्विरोध का विश्लेषण है। सूद-खोर महाजनी परिवेश भी इनकी कहानियों में पाया जाता है। "बाल्य स्मृति" में रसोइया गदाधर, "हरिचरण" कहानी में नौकर हरिचरण, "अभागीर स्वर्ग" में अभागी और उसका बेटा कंगाली चरण, हरिलक्ष्मी में कमला, "मेज दिदि" में केष्टों के जरिए सामाजिकार्थिक विषमता को गरीबी के कारण के रूप में जिम्मेदार विश्लेषित किया गया है।

अपनी कहानियों के द्वारा शरतचंद्र ने ग्रामीण समाज का सजीव चित्र उपस्थित किया है।

7.4.3 महेश और अभागीर स्वर्ग

शरतचंद्र की कहानियों में महेश और अभागीर स्वर्ग, दोनों का विषय संपूर्ण रूप से पृथक है। दोनों कहानियों के केन्द्र में गरीबी है। छोटी कहानियों में ग्रामीण जीवन-धारा को गहरेपन के साथ उभारा गया है। इन कहानियों में "पूस की रात" और "कफन" कहानी की तरह गागर में सागर भरा हुआ है।

"महेश" कहानी में भारतीय किसान की करुण गाथा है। दिन भर मेहनत करके गंफूर अपने तथा अपनी बेटी के लिए रोटी जुगाड़ नहीं कर पाता है। चावल और माड़ दोनों कीमती चीज हैं। कुटिया की हालत बहुत खराब है। गांव का पानी भी उन्हें नसीब नहीं क्योंकि वे अछूत हैं।

किसान गफूर का एकमात्र साथी उसका बैल महेश है। ब्राह्मण के लिए गाय देवता है। उसकी पूजा हो सकती है पर गफूर के लिए महेश उसका अन्नदाता, दोस्त, गरीबी का सहारा है। गफूर भूखा रहकर भी उस जानवर का पेट पालता है। जमींदार महेश को बंधवाता है। गफूर अपना सब कुछ गिरवी रखकर उसे छुड़ाता है। लाचार होकर उसे कसाई के पास बेचना चाहता है पर बेच नहीं पाता है। गफूर मुसलमान है। ब्राह्मण जमींदार यह सुनकर गफूर को सजा देता हैं। भूखा गफूर सामाजिक अत्याचार

से पीड़ित हो होश खो बैठता है और बैल महेश को मार देता है। नतीजन तर्करत्न प्रायश्चित की व्यवस्था करता है। गफूर घर द्वार छोड़कर फुलबाड़े में चटकल मजदूर बन जाता है। प्रेमचंद की कहानी "पूस की रात" में हल्कू भी यही करता है। किसान मजदूर में बदल जाता है।

एक जानवर को केन्द्र में रखकर शरतचंद्र ने ग्रामीण समाज के संस्कार और रूढ़ियों पर प्रहार किया है। इसके लिए उन्होंने ब्राह्मण जमींदार, धर्म के ठेकेदार पंडित, गृहस्थ मणिक घोष, कसाई और बैल को पालने वाले गफूर जैसे पात्रों का सृजन किया है। इस कहानी में उन्होंने मनुष्य और पशु की संवेदना का एकीकरण किया है। बैल महेश भी जैसे अत्याचार के खिलाफ विद्रोह करने को तैयार है।

7.4.4 अभागीर स्वर्ग

यह कहानी भी "महेश" की तरह गरीबी को लेकर रचित है। यह पति परित्यक्ता अभागी की करुण कहानी है। यह टुले (डोम) समाज की करुण कहानी है। अभागी की स्वर्ग प्राप्ति की इच्छा को केन्द्र में रखकर इस कहानी की रचना हुई है।

ठाकुरदास मुखोपाध्याय की पत्नी की तामझामपूर्ण शवयात्रा देखकर अभागी का संस्कार ग्रस्त मन यह सोचता है कि मांग भरा सिंदूर और महावर लगे पाँव लेकर ठाकुरदास की पत्नी शमशान की ओर जा रही है। उसका बेटा उसे आग देगा। देवराज इन्द्र का रथ उसे लेने के लिए स्वर्ग से आयेगा। कल्पना में अभागी इन्द्र का सुन्दर रथ देखती है। अभागी का पति उसे छोड़कर चला गया था। उसका बेटा कंगालीचरण अब बड़ा हो गया है। इसलिए इस दुनिया में जीने की इच्छा उसे अब नहीं है। स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा अहम् हो उठती है। अभागी सोचती है: ठाकुरदास की पत्नी की तरह वह भी पुत्रवती है। जब ठाकुरदास की पत्नी स्वर्ग जा सकती है तो उसे भी स्वर्ग में ही जाना चाहिए और वह ठाकुरदास की पत्नी के साथ अपना सरोकार कर लेती है। लेकिन स्वर्ग जाने के पहले मरना जरूरी है।

कहानी के दूसरे अंश में अभागी के मरने का चित्रण है। शमशान से लौटने के बाद अभागी में बदलाव आता है। वह शारीरिक रूप से इस धरती पर रहती है पर मन ही मन स्वर्ग की कल्पना में खोई रहती है। वह सोचती है किस तरह सिंदूर और महावर से रंगकर पति की चरण धूल सर पर लगाकर वह शमशान की ओर जाएगी। किस तरह अपने प्यारे बेटे के हाथों उसे आग मिलेगी। इसी कल्पना में वह डूब जाती है।

वह बीमार हो जाती है। इसमें उसे खुशी है क्योंकि मृत्यु से स्वर्ग की ओर जाने का यह एकमात्र आकांक्षित उपाय है।

कहानी के तीसरे भाग में अभागी के स्वर्ग प्राप्ति की कथा है। यह स्वर्ग न पाने का भी चित्रण हो सकता है क्योंकि जिस तरह से वह स्वर्ग जाना चाहती थी वह नहीं हो पाया बेटे के हाथों उसे आग भी नहीं मिली।

कहानी के चौथे भाग में उसके पति का आगमन होता है। वह पति जिसने जीवन भर उसकी देखभाल नहीं की उसे चरणधूल देते हुए रो पड़ता है। अभागी मर जाती है।

अभागी का पति रसिक आंगन के बेल गांछ को काटने ही जा रहा था कि जमींदार का दरबान आकर उसे थप्पड़ मारता है। दरबान कहता है "साले। यह तेरे बाप का पेड़ है जो काट रहा है।"

अभागी का बेटा कंगाली जमींदार से कचहरी में आकर शिकायत करता है। मां की मौत की खबर सुनाता है। दीवान अधर राय उसकी जात पूछता है। वह छोटी जाति का है पता चलने पर अधर राय कहता है– छोटी जाति की लाश के लिए काठ की क्या जरूरत है। अगर मां को जलाना है तो पेड़ का दाम ले आ, नहीं तो नदी किनारे उसे गाड़ दे।

वहाँ से निराश होकर कंगाली ठाकुरदास के घर जाकर कहता है पर पंडित ठाकुरदास उसकी जाति पर व्यंग्य करता है। ठाकुरदास का बड़ा बेटा भी ताना मारते हुए कहता है कि हर आदमी ब्राह्मण और कायस्थ होना चाहता है।

कंगाली नदी किनारे अपनी मां को गाड़ देता है और अभागी की इच्छा-इच्छा ही रह जाती है।

शरतचंद्र और प्रेमचंद्र की कहानियों की रचनाशीलता में बहुत साम्य है। "पूस की रात" में हल्कू मजदूर बन जाने की इच्छा प्रकट करता है, वहां उसके साथ सूद खोर महाजन का अत्याचार है। "महेश" में भी गफूर पर जमींदार तंत्र का अत्याचार होता है। हल्कू का अपने कुत्ते से बहुत लगाव है गफूर का अपने बैल महेश से। दोनों कहानीकारों ने पशु के प्रति संवेदना व्यक्त की है। जहां जानवर और मनुष्य में संवेदनात्मक संपर्क है, वहीं मनुष्य का शोषण रूपी चरित्र उभर कर आता है।

"महेश" में किसानों की समस्या का यथार्थ चित्रण है। "देना पाओना" उपन्यास में भी ऐसा ही चित्रण है। "पूस की रात" में भी गरीबी और अत्याचार से पीड़ित किसान वर्ग का यथार्थ और करुण चित्र है। गफूर और हल्कू किसानों के प्रतिनिधि हैं। गफूर के घर छाने को बिचाली नहीं है, खाने को दाने नहीं हैं। पहनने को कपड़े नहीं हैं। हल्कू के पास ओढ़ने को कंबल नहीं हैं। सूदखोर महाजन, जमींदार की प्रवंचना दोनों के लिए मौजूद है। महेश और हल्कू को केन्द्र में रखकर ग्रामीण समाज के अत्याचार का चित्रण है।

अभागीर स्वर्ग और कफन कहानियों में भी भाव साम्य है। दोनों कहानियों के केन्द्र में मृत्यु और लाश है। एक में "कफन" तो दूसरी में जलाने के लिए "काठ" की समस्या है। पर दोनों कहानियों में गरीबी भूख और जमींदार का अत्याचार पीड़न और अमानवीयता है। "अभागी" के स्वर्ग जाने की इच्छा और घीसू माधव का "कफन" के पैसे से पेट भरने की इच्छा में क्रूर सत्य है। बुधिया बैकुण्ठ नहीं जायेगी तो कौन जाएगी और अभागी भी ठाकुरदास की पत्नी के स्वर्ग जाने की कल्पना से अपने लिए स्वर्ग की कामना करती है।

महेश-पूस की रात, अभागीर स्वर्ग-कफन इन चारों कहानियों में दो वर्ग चरित्र हैं। एक वर्ग में असहाय शोषित वर्ग, दूसरे में परजीवी, धनी सुविधाभोगी शोषक वर्ग हैं। इन कहानियों में सामाजिकार्थिक समस्या चित्रित है।

7.4.5 अभागीर स्वर्ग : विषय वस्तु

"अभागीर स्वर्ग" कहानी के केन्द्र में छोटी जाति की एक स्त्री के स्वर्ग जाने की इच्छा है। इसी केन्द्र से कहानी का वृत बनता है। इस वृत में अभागी की इच्छा है, निष्ठुर समाज के कारण इच्छा पूरी न होने की कथा है। अपने ही आंगन में लगाए गए पेड़ पर भी अभागी के परिवार का कोई हक नहीं है। शरत् ने इस कहानी की रचना प्रक्रिया में दो विपरीत धर्मी वर्ग को रखा है—निम्न वर्ग और उच्च वर्ग। उच्च वर्ग की हृदयहीनता से निम्न वर्ग को प्रवंचना मिलती है। एक तरफ उच्च वर्ग का कोई मर जाए तो किस तरह उस मौत को लेकर आडम्बर और तामझाम होता है जबकि गरीब के मर जाने पर जलाने को काठ भी मयस्सर नहीं होता है। मनुष्य की मृत्यु भी जातिवाद से प्रभावित है। उच्चवर्ग और धनी किस प्रकार संवेदना शून्य हो जाते हैं। दूसरी ओर निम्न वर्ग के लोगों में इंसानियत और संवेदना किस प्रकार जीवित है। इस कहानी में संस्कार ग्रस्त समाज पर प्रहार है। जब अभागी स्वर्ग की बात कहती है तो कंगाली कहता है—ओ तो धुंआ (इतना धुंआ) इसमें वर्ग चेतना अभिव्यक्त हुई है। अभागी का पति बदलता है। जमींदार और उनके कर्मचारी पर व्यंग्य है, जब कंगाली चरण अधर राय के पास भी फटकारा जाता है तो शरतचंद्र कहते हैं– हाय रे अनभिज्ञ। बांगला देशेर जमींदार ओ तोहोंदेर कर्मचारी देर चेनोना। (हाय अनभिज्ञ। बांगला देश के जमींदार और उनके कर्मचारी को नहीं जानते हो।)

7.4,6 चरित्र चित्रण

अभागीर स्वर्ग में कई पात्र हैं। अभागी कंगालीचरण, जमींदार का दीवान अधर राय, कविराज, पंडित भट्टाचार्य आदि। इन सारे चरित्रों ने अभागी के जीवन को विस्तार दिया है।

कहानी में अभागी ही प्रमुख पात्र है। वह पतिव्रता नारी है। पति द्वारा त्याग दिए जाने के बाद भी वह मरने के पहले पति की चरण धूल की आकांक्षा करती है। सती नारी की तरह मांग भरे सिंदूर लेकर मरना चाहती है। उसका मन पारंपरिक ढंग से संस्कार ग्रस्त है। वह मरने के बाद स्वर्ग की कल्पना करती है। भूखा बेटा उससे चावल पकाने के बारे में पूछता है, 'मां भात राधबिने'। (चावल नहीं पकाओगी मां)। अभागी ऊपर उंगली उठाकर उत्तर देती है, "बामुनमा ओइ रथे चड़े सग्गे जाच्छे (ब्राह्मणी स्वर्ग जा रही है)। अभागी स्वग की कल्पना में बीमार हो जाती है। अन्त में मर जाती है।

अभागी निम्न वर्ग का चरित्र है। वह संस्कार ग्रस्त है।

कंगालीचरण अपनी मां के प्रति समर्पित पात्र है। पिता के स्नेह से वह वंचित है। अभागी उसके लिए मां-बाप दोनों है। किसी भी हालत में वह उसे खोना नहीं चाहता है। वह बच्चा है। शरत् उसके बचपन से समाज और धर्म पर व्यंग्य करते हैं। कंगालीचरण सरल है। जब उंगली उठाकर अभागी उसे रथ पर चढ़कर स्वर्ग जाने का काल्पनिक दृश्य दिखाती है तो वह धुआं देखकर कहता हैं। वह तो धुआं है।

पंद्रह साल का कंगालीचरण संस्कार से मुक्त है। जीवन के यथार्थ ने उसे संस्कार मुक्त बनाया है। उसे यह विश्वास नहीं है कि कोई रथ पर चढ़कर स्वर्ग भी जाता है। पर मां के जिद करने पर वह मान लेता है। एक तरफ मां के प्रति लगाव और विश्वास दूसरी ओर संस्कार मुक्त मन। कंगालीचरण इस द्वन्द्व को झेलता है।

अपनी मां की अंतिम इच्छा पूरी करने के लिए वह हर तरह का प्रयास करता है। वह अधर राय के महल के भीतर भी पहुंच जाता है। नकार दिए जाने पर ठाकुरदास के पास जाता है, उसे वहां भी निराश होना पड़ता है।

अंत में वह क्रूर यथार्थ से परिचित होकर, दृढ़ता के साथ वास्तविकता और सच्चाई को स्वीकार लेता है। उसका चरित्र अनुभव से और मजबूत होता है।

अन्य पात्रों की योजना कहानी के मूल कथ्य को प्रभावशाली बनाने के लिए की गई।

7.4.7 उद्देश्य

"अभागीर स्वर्ग" में ग्रामीण जीवन का चित्र है। इसमें वर्ग विभाजित समाज की संवेदनहीनता का वर्णन है। समाज के निम्न वर्ग के लोगों के साथ किस तरह क्रूरता पूर्ण व्यवहार किया जाता है इसकी अभिव्यक्ति इस कहानी में मिलती है। समाज के दो रूप हैं: संवेदन शून्य उच्च वर्ग दूसरी ओर अभागी के आसपास के पड़ोसी जो सहानुभूति के साथ उसके दुर्दिन में उसका साथ देते हैं।

मानवतावादी शरतचंद्र मनुष्य के कृत्रिम वर्ग-विभाजन वैषम्य, सामाजिक कुसंस्कार पाखंड को स्पष्ट करना चाहते हैं। शरत् ग्राम-केन्द्रित इस कहानी में सामाजिक एवं आर्थिक वैषम्य को केन्द्र में रखते हैं।

सामाजिक एवं आर्थिक वैषम्य का चित्रण करना ही उनका उद्देश्य रहा है। किस तरह कुसंस्कार के अंधकार में समाज धंसा हुआ है। उसका चित्रण इस कहानी में है। मृत्यु को लेकर पाखंड और आडम्बर पूर्ण उत्सव के प्रति व्यंग्य है।

7.5 अभागीर स्वर्ग

ठाकुरदास मुखुज्येर वर्षीयसी स्त्री सानदिनेर ज्वरे मारा गेलेन, वृद्ध मुखोपाध्याय महाशय धानेर कारबारे अतिशय संगतिपन्न, ताँर चार छेले, तीन मेये, छेले-मेयेदेर छेले-पुले हइयाछे, जामाइरा, प्रतिबेशीर दल, चाकर-बाकर से जेन एकटा उनसब बाधिया गेल, समस्त ग्रामरे लोक धुमधामरे शवयात्रा भिड़ करिया देखिते आसिल, मेयेरा काँदिते काँदिते मायरे दुइ पाये गाढ़ करिया आलूता एवं माथाय धन करिया सिंदूर लेपिया दिल, बधूरा ललाट चंदने चर्चित करिया बहुमूल्य बस्त्रे शाशुड़ीर देह आच्छादिन करिया दिया आँचल दिया नाँहार शेष पदधूलि मुछाइया लइल पुष्पे, पत्रे, गंधे, माल्ये, कलरबे मने हइल ना ए कोन शोकरे व्यापार– ए जेन बड़बाड़ির गृहिनी पंचाश बर्ष परे आर एकबार नूतन करिया ताँहार स्वामिगृहे यात्रा करितेछेन, वृद्ध मुखोपाध्याय शान्तमुखे ताँहार चिरदिनेर संगिनी के बिदाय दिया अलक्ष्ये दु फोटा चोखेर जल मुछिया शोकार्त कन्या ओ बधूगण के सान्तना दिते लागिलेन, प्रबल हरिध्वनिते प्रभात-आकाश आलोडित किया समस्त ग्राम संगे-संगे चलिल, आर एकटि प्राणी एकटु दूरे याकिया एइ– दलेर संगी हइल, से कांगालीर मा, से नाहार कुटिर– प्रांगनेर गोटा-कयेक बेगुन तुलिया एइ पये हाटे चलियाछिल, एइ दृश्य देखिया आर नडिंते पारिल ना, रहिल ताहार हाटे जाओया, रहिल ताहारे आंचले बेगुन बांधा– से चोखेट जल मुछिते मुछिते सकलेर पिछने श्मशाने आसिया उपस्थित हइल, ग्रामेर एकान्ते गरुड़– नदीर तीरे श्मशान, सेखाने पूर्वाहिइ काठेर भार, चंदनेर टुकड़ा, धृत, मधु, धूप, धुना, प्रभृति उपकरण संचित हइयाछिल, कांगालीर मा छोटोजात, दुलरे मेये बलिया काछे जाइते साहस पाइल ना, तफाते एकटा डँचू ढिपिर मध्ये दाँड़ाइया समस्त अंतेष्टिक्रिया प्रथम हइने शेष पर्यन्त उतसुक आग्रहे चोख मेलिया देखिति लागिल, प्रसस्त ओ पर्याप्त चितार परेजखन शब स्थापित करा हइल तखन ताहार रांगा पा-दुखानि देखिया ताहार दु-चक्षु जुड़ाइया गेल, इच्छा हइल छुटिया गिया एक बिंदू आलता मुछाइया लइया माथाय देय, बहुकंठेर हरिध्वनिर सहित पुत्रहस्तेर मंत्रपून अग्नि जखन संजोजित हइल, तखन ताहार चोख दिया झरझर करिया जल पड़िते लागिल, मने मने बारंबार बलिते लागिल, भागियमानी मा, तुमि सग्ये जाच्चो– आमाकेओ आशीर्वाद करे जाओ, आमियो जेन एमनि कांगालीर हातरे आगुनटुकु पाइ, छेलरे हातरे आगुन। से तो सोजा कथा नय। स्वामी, पुत्र, कन्या, नाति, नातनी, दास, दासी, परिजन– समस्त संसार उज्जल राखिया एइ जे स्वर्गारोहण– देखिया ताहार बुक फुलिया फुलिया उठिते लागिल,– सौभाग्येर से जेन आर इयन्ता करिते पारिल ना, सक्ष-प्रज्जलित चितार अजसु धुंआ नील रंगेर छाया फेलिया धुरिआ धुरिआ आकारों उठितेछिल, कांगालीर मा इहारइ मध्ये छोट एकखानि रथेर चेहारा जने स्पष्ट देखिते पाइल, गाये नाहार कत ना छबि आंका, चूड़ाय ताहार कत ना लतापाता जड़ानो, थितरे के जेन बसिया आछे-मुख नाहार चेना जाय ना, किन्तु सिंथाय तांहार सिंदुरेर रेखा, पदतल-दुटि आलनाय रांगानो, ऊर्ध्वदृष्टे चाहिया कांगालीर मायरे दुई चोखे अश्रुर धारा बहितेछिल, एमन समये एकटि बछर चोद-पनरेर छेले ताहार आंचले टान दिया कहिल, हेयाय तुइ दाँड़िये आछिस मा, भात रांधबि ने।

मा चमकिया फिरिया चाहिया कहिल, रांधबोखन रे। हठात उपरे अंगुलि निर्देश करिया ब्यग्रस्वरे कहिल, व्याख दयाख, बामुन-मा ओइ रथे चड़े सम्मे जाच्चे।

छेले बिस्मये मुख तुलिया कहिल, कइ। क्षणकाल निरीक्षण करिया शेषे बलिल, तुइ क्षेपेछिस। ओ तो धुंआ। राग करिया कहिल, बेला दुपुर बाजे, आभार क्षिदे पाय ना बुझि। एबं संगे-संगे मायेर चोखे जल लक्ष्य करिया बलिल, बामुनदेर गिन्नी मरेछे तुइ केन कंदे मरिस मा।

कांगालीर मार एतक्षणे हुंशे हइल, परेर जन्य श्मशाने दांड़ाइया एइभावे अश्रुपात कराय से मने मने लज्जा पाइल, एमन कि, छेलेर अकल्याणेर आशंकाय मुहूर्त चोख मुछियां फेलिया एकटुखानि हासिबार चेष्टा करिया बलिल, कादब किसरे जन्ये रे।– चोखे धो लेगेछे बइ तो नय।

हा : — धो लेगेछे बइ तो ना। तुइ कांदतेछिलि।

मा आर प्रतिबाद करिल ना, छेलेर हात धरिया घाटे नामिया निलेओ स्नान करिल, कांगालीकेओ स्नान कराइया घरे किरिल, — शमशान-सतकारेर शेषटुकु देखा आर तार भाग्ये घटिल ना।

दुइ

सन्तानेर नामकरणकाले पितामातार मूढ़ताय बिधातापुरुष अन्तरीक्षे ताकिया अधिकांश समयेइ शुधु हास्य करियाइ शान्त हन ना, तीव्र प्रतिबाद करेन, ताइ ताहादेरे समस्त जीबनटा ताहादेर निजेर नामगुलोकेइ जेन आमरण भ्यांचाइया चलिते थाके, कांगालीर मार जीबनेर इतिहास छोट, किंतु सेइ छोट कांगालजीबनटुकु बिधातार एइ परिहासरे दाय हइते अब्याहति लाभ कियाछिल, ताहाके जन्म दिया मा मारियाछिल, बाप राग करिया नाम दिल अभागी, मा नाइ, बाप नदीते माछ धरिया बेड़ाय, ताहार ना आछे दिन, ना आछे रात, तबु जे कि करिया क्षुद्र अभागी एकदिन कांगालीर मा हइते बांचिया रहिल से एक बिस्मयेर बस्तु, जाहार सहित बिबाह हइल ताहार नाम रसिक बाघ, बाघेर अन्य बाघिनी छिल, इहाके लइया से ग्रामान्तरे उठिया गेल, अभागी ताहार अभाग्य ओ शिशुपुत्र कांगालीके लइया ग्रामेइ पड़िया रहिल।

ताहार सेइ कांगाली बड़ु इहया आज पोनोरय पा दियाछे, सबेमात्र बेनेर काज शिखिते आरम्भ करियाछे, अभागीर आशा हइयाछे आरओ बछरखोनेक ताहार अभाग्येर सहित झुझिते पारिले दुख घुचिबे, एइ दुख जे कि, जिनि दियाछेन तिनि छाड़ा आर केहइ जाने ना।

कांगाली पुकुर हइने आंचाइया आसिया देखिल ताहार पातेर भुक्ताबशेष मा एकटा माटिर पात्रे ढाकिया शखितेछे, आश्चर्य हइया जिज्ञासा करिल, तुइ खेलिने मा।

बेला गड़िये गेछे बाबा, एखन आर क्षिदे नेइ
छेले बिश्वास करिल ना, बलिल, ना क्षिदे नेइ वेइ कि। कइ, देखि तोर हांडि।

एइ छलनाय बहुदिन कांगालीर मा कांगालीके फाँकि दिया आसियाछे, से हांड़ि देखिया तबे छाड़िल ताहाने आर एकजनेर मत भात छिल, तखन से प्रसन्ने-मुखे मायेर कोले गिया बसिल, एइ बयसेर छेले सचराचर एरुप करे ना, किंतु शिशुकाल हइने बहुकाल जाबत से एन छिल बलिया मायेर क्रोड छाड़िया बाहिरेर संगी-साथीदेर सहित मिशीबार सुयोंग पांय नाइ, एइखाने बसियाइ ताहाके खेलाधुलार साध मिटाइते हइयाछे, एकहाते गला जड़ाइया, भुखेंर उपर मुख राखियाइ कांगाली चकित हइया कहिल, मा तोर गा जे गरम, केन तुइ अमन रोदे दांड़ियो मड़ा-पोड़ानो देखते गेलि। केन आबार नेये एलि। मड़ा-पोड़ानो कि तुई—

मा शशव्यस्ते छेलेर मुखे छात चापा दिया कहिल, छि बाबा, मडा-पोड़ानो बलते नेइ, पाप हय, सती-लक्ष्मी मा-ठाकरुन रथे करे सम्मे गेलेन।

छेले संदेह करिया कहिल, तोर एक कथा मा। रथे चड़े केडनाकि आबार सग्ये जाय।

मा बलिल, आमि जे चोखे देखनु कांगाली, बामुन-मा रथेर उपरे बसे, नेनार रांगा पा-दुखानि जे सेबाइ चोख मेले देखले रे

सबाइ देखले।

सब्बाइ देखले

कांगाली मायेर बुके ठेस दिया बसिया भाबिते लागिल, भाके बिश्वास कराइ ताहार अभ्यास, बिश्वास करितेइ से शिशुकाल हइते शिक्षा करियाछे, सेइ मा जखन बलितेछे सबाइ चोख मेलिया एतबड़ ब्यापार देखियाछे, तखन अबिश्वास करिबार आर किछु नाइ, खानिक परे आस्ते आस्ते कहिल, ता हले तुइओ तो मा सग्ये जाबि। बिंदिर मा सेदिन राखालेर पिसीके बलनेछिल, क्यांलार मार मन सती-लक्ष्मी आर दुले-पाड़ाय नेइ।

कांगालीर मा चुप कारया रहिल, कांगाली तेमनि धीरे-धीरे कहिते लागिल, बाबा जखन तोरे छेड़े दिले, तखन तोरे कत लोके तो निके करते साधासाथि करले, किंतु तुइ बललि, ना बललि, क्यांगाली बाँचले आभार दुखु धुचबे, आबार निके करते जाबो किसरे जन्ये। हां मा, तुइ निके करले आमि कोथाय भाकतुम। आमि हयतो ना खेते पेये एतदिने कबे मरे जेनुम।

मा छेलके दुइ हाते बुके चापिया धरिल, बस्तुतः, सेदिन ताहाके ए परामर्श कम लोके देय नाइ, एबं यखन से किछुतेइ राजी हइल ना, तखन उतपात-उपद्रब ओ ताहार प्रति सामान्य हय नाइ, सेइ कथा स्मरण करिया अभागीर चोख दिया जल पड़िते लागिल, छेले हात दिया मुछाइया दिआ बलिल, क्याताटा पेते देब मा, शुबि।

मा चुप करिया रहिल, कांगाली मादुर पातिल कांथा पातिल, माचार उपर हइतु छोट बालिशाटि पाड़िया दिया हात धरिया ताहाकें बिछानाय हानिया लइया जाइते, मा कहिल, कांगाली, आज तोर आर काजे गिये काज नेइ।

काज कामाइ करिबार प्रस्ताब कांगालीर खुब भाल लागिल, किंतु कहिल, जलपानिर पयसा दुटो नो ता हले देबे ना, मा।

ना दिक गे,– आय तोके रुपकया बलि, आर प्रलुब्ध करिते हइल ना, कांगाली ततक्षनात मायेर बुकधांसिया शुइया पड़िया कहिल, बल ता हले, राजपुत्तुर, कोटालपुत्तुर आर सेइ पक्षीराज घोड़ा–

अभागी राजपुत्र, कोटालपुत्र आर पक्षीराज घोड़ार कथा दिया गल्प आरंभ करिल, ए-सकल ताहार परेर काछे कतदिनेर शोना एबं कतदिनेर बला उपकथा, किंतु मुहूर्त-कयेक परे कोथाय गेल ताहार राजपुत्र, आर कोथाय गेल ताहार कोटालपुत्र– से एमन उपकथा शुरू करिल जाहा परेर काछे ताहार शेखा नय- निजेर सृष्टि, ज्बर ताहार जत बाड़िते लागिल, उष्म रकतस्त्रोत जत द्रुतबेगे मस्तिष्के बहिते लागिल, ततइ से जेन नब नब उपकथार इन्द्रजाल रचना करिया चलिते लागिल, ताहार बिराम नाई, बिच्छेद नाइ– कांगालीर स्वल्प देह बार-बार रोमांचित हइते लागिल, भये, बिस्मये, पुलके से सजोरे माथेर गला जड़ाइया ताहार बुकरे मध्ये जेन मिशिया जाइते चाहिल।

बाहिरे बेला शेष हइल, सूर्य अस्त गेल, सन्थार म्लान छाया गाउतर हइया चराचर ब्याप्त करिल, किंतु धरेर मध्ये आजं आर दीप ज्बलिल ना, गृहस्थेर शेष कर्तब्य समाधा करिते केह उठिल ना, निबिड़ अंधकारे केबल रुग्न मालार अबाधा गुंजन निस्तध्ब पुत्रेर कर्णे सुधाबबर्षण करिया चलिते लागिल, से सेइ श्मशान ओं श्मशानजात्रार काहिनी, सेइ रथ, सेइ रांगा पा-दुटि, सेइ ताँर स्वर्गे जाओया, केमन करिया शोकार्त स्वामी शेष पदधूलि दिया काँदिया बिदाय दिलेन, कि करिया हरिध्बनि दिया छेलेरा माताके बहन करिया लइया गेल, तार परे सन्तानेर हातरे आगुन, से आगुन तो आगुन नय कांगाली, से तो हरि, तार आकाश, जोड़ा धुंयो तो धुंयो नय बाबा, सेइ तो सग्येर रथ। कांगालीचरण, बाबा आभार।

कौन मा।

तोर हातेर आगुन यदि पाइ बाबा, बामुन-मार मत आमिओ सग्थे जेने पाबो

कांगाली अस्फुटे शुधु कहिल, जाः-बलते नेइ,

मा से कथाः बोध शुनितेओ पाइल ना, सप्सनिः श्वास फेलियाः बलिते लागिल, छोटोजात बले नखन किंतु केउ धेन्ना करते पारबे ना-दुखी बले केउ ठेकिये राखते पारबेना, इस। छेलेर हातेर आगुन,– रथके जे आसतेइ हबे।

छेले सुखरे उपर मुख शाखिया भग्नकंठे कहिल, बलिस ने मा, बलिस ने, आभार बडड भय करे।

मा कहिले, आर देख कांगाली, तोर बाबाके एकबार धरे आनबि, अमनि जेन पायेर धूलो माथाय दिये आमाके बिदाय देय, अमनि पाये आलता, माथाय सिंदूर दिये– किंत

के बा देबे। तुइ दिबि, ना रे कांगाली। तुइ आभार छेले, तुइ आभार मेये, तुइ आभार सब,। बलिते बलिते से छेलेके एकेबारे बुके चापिया धरिल।

तीन

अभागीर जीबन-नाक्षेर शेष अंक परिसमाप्त हइने चलिल, विस्तृति बेशी नयं, साभान्यइ, बोध करि त्रिशटा बतसर आजाओ पार हइयाछे कि हय नाइ, शेषओ हइल तेमनि सामान्यभाबे, ग्रामे कबिराज छिल ना, भिन्न ग्रामे ताहाँर बास, कांगाली गिया काँदाकाटि करिल, हाते-पाये पड़िल, शेषे घटि बाँधा दिया ताँहाके एकटाका प्रणामी दिल, तिनि आसिलेन ना, गोटा-चारके बड़ि दिलेन, ताँहार कत कि आयोजन, खल, मधु, आदार सन्त, तुलसीपातार रस, कांगालीर मा छेलेर प्रति राग करिया बलिल, केन तुइ आभाके ना बले घटि बांधा दिते गेलि बाबा। हात पातिया बड़ि कयटि ग्रहन करिया माथाय ठेकाइया उनाने फेलिया दिया कहिल, भालो हइ तो एतेइ हबो, बागदी-दुलेर घरे केउ कखनो ओषुध खेये बाँचे ना।

दिन दुइ-तीन एमनि गेल, प्रतिबेशीरा खबर पाइया देखिते आसिल, जे जाहा मुष्टियोग जानितो, हरिणेर शिंग-घषा-जल, गेटे-कड़ि पुड़ाइया मधुते माड़िया चाटाइया देओआ इत्यादि अब्यर्थ औषधेर संधान दिया जे जाहार काजे गेल, छेलेमानुष कांगाली ब्यतिब्यस्त हइया उठिते, माताहाके काछे टानिया लइया कहिल, कोबरेजेर बड़िते किछु हल ना बाबा, आर ओदेर ओषुध काज हबे। आमि एमनि भालो हबो।

कांगाली काँदिया कहिल, तुइ बड़ि तो खेलि ने मा, उनुने फेले दिलि, एमनि कि केउ सारे।

आमि एमनि सेरे जावो, तार चेथे तुइ टुटो भाते-भात फुटिये निये खा दिकि, आमि चेये देखि।

कांगाली एइ प्रथम अपटु हस्ते भात राँधिते प्रबृन्त हइल, ना पारिल मन झाड़ित, ना पारिल भाल करिया भात बाड़िते, उनान ताहार ज्वले ना- भितरे जल पड़िया धुंआ हय, भान ढालिने चारिदिके छड़ाइया पड़े, माथरे चोख छलछल करिया आसिल, निजे एकबार उठिबार चेष्टा करिल, किंतु माथा सोजा करिते पारिल ना, सज्याय लुटाइया पाड़िल, खाओया हइया गेले छेलेक काछे लइया कि करिया कि करिते हय बिधिमने उपदेश दिते गिया नाहार क्षीणकंठ थामिया गेल, चोख दिया केबल अबिरलधारे जल पड़िते लागिल।

ग्रामे ईश्वर नापिन नाड़ी देखिते जानित, परदिन सकाले से हात देखिया, ताहारइ सुमुखे मुख गंभीर करिल, दीर्घनिश्वास फेलिल एबं शेषे माथा नाड़िया उठिया गेल, कांगालीर मा इहार अर्थ बुझिल, किंतु ताहार भयइ हइल ना, सकले चलिया गेले से छेलेके कहिल, एइबार एकबार ताके डेके आनने पारिस बाबा।

काके मा।
ओइ जे रे— ओ-गाँवे जे उठे गेछे—
कांगाली बुझिया कहिल, बाबाके।
अभागी चुप करिया रहिल,
कांगाली बलिल, से आसबे केन मा।

अभागीर निजरेड़ जथैष्ठ संदेह छिल, तथापि आस्ते आस्ते कहिल, गिये बलबि, मा शुधु एकटु तोमार पायेर धूलो चाय।

से तखनि जाइते उक्षत हइले से ताहार हानटा धरिया फेलिया बलिल, एकटु काँदाकाटा करिस बाबा, बलिस, मा जाच्चे।

एकटु थामिया कहिल, फेरबार पथे अमनि नापते-बौदिर काछ थेके एकटु आलता चेये आनिस क्यंगाली, आभार नाम करलेइ से देबे, आमाके बड़ भालबासे।

भाल ताहाके अनेकेइ बासित, ज्वर हओया अबधि माथेर मुखे से एइ कयटा जिनिषेर कथा एतबार एतरकम करिया शुनियाछे जे, से सेइखान काँदिते काँदिते यात्रा करिल।

चार

परदिन रसिक दुले समयमन यखन आसिया उपस्थित हइल तखन अभागीर आर बड़ ज्ञान नाइ, मुखेर परे मरणेर छाया पड़ियाछे, चोखेर दृष्टि ए संसारेर काज सारिया कोथाय कोन अजाना देशे चलिया गियाछे, कांगाली काँदिया कहिल, भागों। बाबा एसेछे– पायेर धूलो नेबे जे।

मा हयतो बुझिल, हयतो बुझिल ना, हयतो बा ताहार गभीर संचित बासना संस्कारेर मन ताहार आच्छन्न चेननाय धा दिल, एइ मृत्युपथ-यात्री ताहार अबश बाहुखानि सज्यार बाहिरे बाड़ाइया हात पातिल।

रसिक हतबुंक्षिर मत दाँड़ाइया रहिल; पृथिबीते ताहार ओ पाथरे धूलार प्रयोजन आछे, इहाओ केह नाकि चाहिते पारे नाहा ताहार कल्पनार अतीत, बिंदिर पिसी दाँड़ाइया छिल, से कहिल, दाओ बाबा, दाओ एकटु पायेर धूलो।

रसिक अग्रसर हइया आसिल, जीबने जे स्त्रीके से भालोबासा देय नाइ, अशन-बसन देय नाइ, कोन खोज-खबर करे नाइ, मरणकाले ताहाके से शुधु एकटु पाथेर धूला दिते गिया काँदिया फेलिल।

राखालेर मा बलिल, एमन सतीलक्ष्मी बामुन-कायेतेर धरे ना जन्मे, ओ आमादेर दुलेर घरे जन्मालो केन। एइबार ओर एकटु गति करे दाओ बाबा– क्यंगलार हातरे आगुनेर लोभे ओ जेन प्राणटा दिले।

अभागीर अभाग्येर देब्ता अगोचरे बसिया कि भाबिलेन जानि ना, किंतु छेलेमानुष कांगालीर बुके गिया ए कथा जेन नीरेर मत बिंधिल।

सेदिन दिनेर बेलाटा काटिल, प्रथम रात्रिटाओ काटिल, किंतु प्रभातरे जन्य कांगालीर मा आर अपेक्षा करिते पारिल ना, कि जानि, एत छोट जातरे जन्यओ स्वर्गे रथेर ब्यवस्था आछे कि ना, किंबा अंधकारे पाये हाटियाइ ताहादेर रओना हइते हय,– किंतु एटा बुझा गेल, रात्रि शेष ना हइतेइ ए दुनिया से त्याग करिया गेछे।

कुटिर-प्रांगणे एकटा बेलगाछ, एकटा कुड़ुल चाहिया आनिया रसिक नाहाते धा दियाछे कि देय नाइ, जमिदारेर दारोयान कोथा हइते छुटिया आसिया ताहार गाले सशब्दे एकटा चड़ कषाइया दिल, कुड़ुल काड़िया लइया कहिल, शाला, एकि तोर बापेर गाछ आछे जे काटते लेगेछिस।

रसिक गाले हात बुलाइते लागलि, कांगाली काँद-काँद हइया बलिल, बा: ए जे आभार मायेर हाते-पोना गाछ, दरोयानजी, बाबाके खामोंका तुमि मारले केन।

हिंदुस्थानी दरोयान नाहाकेओ एकटा अशाब्य गालि दिया मारिते गेल, किंतु से नाकि ताहार जननीर मृतदेह स्पर्श करिया बसियाछिल, ताइ अशोचेर भये ताहार गाये हात दिल ना, हाँकाहाँकिते एकटा भीड़ जमिया उठिल, केहइ अस्वीकार करिल ना जे बिना अनुमतिते रसिकेर गाछ काटिते जाओयाटा भाल हय नाइ, ताहाराइ आबार दरोयानजीर हाते-पाये पड़िते लागिल, तिनि अनुग्रह करिया जेन एकटा हुकुम देन, कारण, असुखेर समाज जे-केह देखिते आसियाछे कांगालीर मा ताहारइ हाते धरिया ताहार शेष अभिलाष व्यक्त करिया गेछे।

दरोयान भुलिबार पात्र नहे, से हात-मुख नाड़ाइया जानाइल, ए-सकल चालाकि ताहार काछे खाटिबे ना।

जमिंदार स्थानीय लोक नहेन, ग्रामे ताहार एकटा काछारि आछे, गोमस्ता अधर राय ताहार कर्ता, लोकगुला जखन हिंदुस्थानीटार काछे व्यर्थ अनुनय-विनय करिते लागिल, कांगाली ऊर्ध्वश्वासे दौड़िया एकेबारे बाछारि-बाड़िते आसिया उपस्थित हइल, से लोकेर मुखे मुखे शुनियाछिल, पियादारा घुष लय, ताहार निश्चय बिश्वास हइल अतबड़ असंगत अत्याचारेर कथा यदि कर्तार गोचर करिते पारे तो इहार प्रतिबिधान ना हइयाइ पारे ना। हाय रे अनभिज्ञ। बांलादेशेर जमिदार ओ ताहार कर्मचारीके से चिनित ना। सक्षमातृहीन बालक शोके ओ उत्तेजनाय उदभ्रान्त हइया एकेबारे उपरे उठिया आसियाछिल, अधर राय सेइमात्र संध्याहिक ओ यत सामान्य जलयोगान्ते बाहिरे आसियाछिलेन, बिस्मित ओ कुद्धहइया कहिलेन, के रे।

आमि कांगाली, दरोयानजी आभार बाबाके मेरेछे।
बेश करेचे, हारामजादा खाजना देयनि बुझि।

कांगाली कहिल, ना बाबुमशाय, बाबा गाछ काटतेछिल, – आभार मा मरेचे– बलिते बलिते से कान्ता आर चापिते पारिल ना।

सकालबेला एइ कान्नाकाटिते अधर अत्यंत बिरक्त हइलेन, छोड़ाटा मड़ा छुँइया आसियाछे, कि जानि एखानकार किछु छुँइया फेलिल नाकि। धमक दिया बलिलेन, मा मरेचे तो जा नीचे नेबे दाँड़ा। ओरे के आछिस रे, एखाने एकटु गोबर जल छाड़िये दे। कि जातरे छेले तुई।

कांगाली सभये प्रांगणे नामिया दाँड़ाइया कहिल, आमरा दुले।
अधर कहिलेन, दुले। दुलेर मड़ाय काठ कि हबे शुनि।

कांगाली बलिल, मा जे आभाके आगुन दिते बले गेछे। तुमि जिज्ञस कर ना बाबुमशाय, मा जे साबाइके बले गेछे, सक्कले शुनेछे जे। मायेर कथा बलिते गिया ताहार अनुक्षणेर समस्त अनुरोध उपरोध मुहूर्ते स्मरण हइया कंठ जेन नाहार कान्नाथ फाटिया पड़िते चाहिल।

अधर कहिलेन, माके पोड़ाबि तो गाछेर दाम पाँचटा टाका आन गे पारबि।

कांगाली जानित ताहा असम्भव, ताहार उत्तरीय किनिबार मूल्यस्वरूप ताहार भात खाइबार चितलेर कांसिहि बिन्दिर पिसी एकटि टाकाथा बाँधा दिते गियाछे से चोखे देखिया आसियाछे, से घाड़ नाड़िल, बलिल, ना।

अधर मुखखाना अत्यंत बिकृत करिया कहिलने ना तो, मोके निये नदीर चड़ाय पुँते फेल गे जा, कार बाबार गाछे तोर बाप कुड़ुल ठेकाते जाय– पाजी, हतभागा, नच्छार।

कांगाली बलिल, से जे आमादेर उठानेर गांछ बाबुमशाय। से जे आभार मायेर हाते चोता गाछ।

हाते पोता गाछ, पाँडे, ब्यटाके गलाधाक्का दिये बार करे दे तो।
पांडे असिया गलाधाक्का दिल, एबं एमन कथा उच्चारण करिल जाहा केबल जमिदारेर कर्मचारीराइ पारे,

कांगाली धुला झाड़िया उठिया दाँड़ाइल, तार परे धीरे-धीरे बाहिर हइया गेल, केन जे से मार खाइल, कि ताहार अपराध छेलेटा भाबियाइ पाइल ना, गोमस्तार निर्बिकार चिन्ते दाग पर्यन्त पड़िल ना, पड़िले ए चाकरी ताहार जुटिन ना। कहिलेन, परेश देख तो हे ए ब्यटार खज्ञजना बाकि पड़ेछे कि ना। थाके तो जाल-टाल किछु एकटा केडे एने जेन रे खे देय-हारामजादा पालाते पारे।

मुखुज्ये-बाड़िते श्राद्धेर दिन– माझे केबल एकटा दिन मात्र बाकी, समारोहेर आयोजन गृहिनीर उपयुक्त करियाइ हइतेछे, कुछ ठाकुरदास निजे तत्बाबधान करिया फिरितेछिलेन, कांगाली आसिया तांहार सम्मुखे दाँड़ाइल, कहिल, ठाकुरमशाइ, आभार मा मरे गेछे।

तुइ के। कि घास तुइ।
आमि कांगाली। मा बले गेछे तेनाके आगुन दिते।
ता दि गे ना।

काछारिर ब्यापरटा इतिमध्येइ मुखे मुखे प्रचारित हइया पड़ियाछिल, एकजन कहिल, ओ बोध हय एकटा गाछ चाय– एइ बलिया से घटनाटा प्रकाश करिया कहिल।

मुखुज्ये बिस्मित ओ बिरक्त हइया कहिलेन, शोनो आबदार, आमारइ कत काठेर दरकार, – काल बादे परशु काज, जा जा, एखाने किछु हबे ना – एखाने किछु हबे ना, एइ बलिया अन्यत्र प्रस्थान करिलेन।

भटटाचार्य महाशय अदूरे बसिया फर्द करितेछिलेन, तिनि बलिलेन, नोदेर जेने के कबे आबार पोड़ाय रे। जा, मुखे एकटु नुड़ो ज्वेले दिये नदीर चड़ाय माटि दे गे।

मुखापाध्याय महाशयेर बड़छेले ब्यस्तसमस्तभावे एइ पथे कोथाय जाइनेछिलेन, तिनि कान खाड़ा करिया एकटु शुनिया कहिलेन, देखचेन भट्चाजमशाय, सब ब्यटाराइ एखन बामुन-कायेत हते चाय, बलिया काजेर झोके आर कोथाय चलिया गेलेन।

कांगाली आर प्रार्थना करिल ना, एइ घन्टा-दयेकरे अभिज्ञताय संसारे से जेन एकेबारे बुड़ाहइ था गियाछिल। निःशब्दे धीरे-धीरे ताहार मरा मायेर काछे गिया उपस्थित हइल।

नवीर चरे गर्त खुँडिया अभागीके शोयानो हइल, रखालेर मा कांगालीर हाते एकटा खड़ेर आँटि ज्वालिया दिया ताहारइ हात धरिया मायेर मुखे स्पर्श कराइया फेलिया दिल, तार परे सकले मिलिया माटि चापा दिया कांगालीर मायरे शेष चिन्ह बिलुप्त करिया दिल।

सबाइ सकल काजे ब्यस्त, – शुधु सेइ पोड़ा खड़ेर आँटि हइते जे स्वल्प धुँयाटुकु धुरिया धुरिया आकाशें उठितेछिल, ताहारइ प्रति पलकहीन चक्षु पातिया कांगाली ऊर्ध्वदृष्टे स्तब्ध हइया चाहिया रहिल।

7.5.1 भावार्थ

कथाकार शरतचंद्र ने अपने साहित्य में मानव-जीवन के सुख-दुख का चित्र आंका है। उनके सृजन में तत्कालीन समाज प्रतिफलित हुआ है। उन्होंने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण भी किया है।

"अभागीर स्वर्ग" कहानी में लेखक नें तत्कालीन ब्राह्मण द्वारा शासित ग्रामीण समाज और ब्राह्मणों की निष्ठुरता का चित्रण किया है। कहानी चार भागों में विभाजित है।

पहले भाग में ठाकुरदास की पत्नी की शवयात्रा और उसके अंतिम संस्कार का वर्णन है। दूसरे भाग में निम्नवर्ग की अभागी का जीवन-चित्र है। अभागी का इकलौता बेटा कंगाली और अभागी का स्नेहभरा संबंध का चित्रण अत्यंत जीवंत हो उठा है। तीसरे भाग में किस तरह अभागी का जीवन समाप्त होता है उसका विस्तृत वर्णन है। चौथे भाग में किस प्रकार अभागी की अंतिम इच्छा पूरी नहीं हो पाती और कंगाली अपनी माँ की अंतिम इच्छा पूरी करने को दर-दर ठोकर खाता है उसी का निष्ठुर चित्रण है। उच्च वर्ग द्वारा कंगाली जैसा गरीब लांछित और अपमानित होता है।

इस कहानी का प्रमुख पात्र अभागी का नामकरण सार्थक है। क्योंकि जन्म के बाद ही उसकी मां चल बसी। गुस्से में उसके पिता ने उसका नाम अभागी रखा था। उसका पिता अनुशासनहीन जीवन बिताता है। अभागी बड़ी होती है। उसकी शादी हो जाती है। पर उसका पति कंगाली के जन्म के बाद उसे छोड़कर चला जाता है। कंगाली उसके लिए अंधे की लाठी है। अभागी आशा करती है कि बड़े होने पर कंगाली उसके सारे दुखों का अन्त करेगा। तब सुख के दिन आएंगे। 12 साल का बच्चा कंगाली अपनी मां की गोद में सोकर कहानियां सुनता है। ऐसी ही कहानियों में अभागी अपनी मनोवासना कहानी के रूप में सुनाती है। मखर्जी मशाय की पत्नी की शवयात्रा और

अंतिम संस्कार का वर्णन करती है। अभागी कल्पना करती है कि चिता को जलाती आग के धुएँ को भेदकर स्वर्ग से रथ उतर आता है। उसी रथ पर सवार होकर "बामुन माँ" (ब्राह्मणी माँ) स्वर्ग को गई। अभागी को विश्वास है कि अपने बेटे के हाथों अंतिम आग ही स्वर्ग से रथ आएगा। उसी रथ पर सवार होकर अभागी भी स्वर्ग को जा सकेगी। यही उसकी अंतिम इच्छा है। पहले तो कंगाली इन बातों का विश्वास नहीं करता है पर माँ के प्रति प्रेम के कारण वह इसे मान लेता है। उसका यह मानना विश्वास में बदल जाता है। इसीलिए अभागी की मृत्यु के बाद कंगाली अपनी माँ की अंतिम इच्छा पूरी करने का भरसक प्रयास करता है। लेकिन ब्राह्मण द्वारा शासित ग्रामीण समाज में कंगाली की अंतिम इच्छा पूरी नहीं होती है।
संवेदना-शून्य उच्च वर्ग के पास उसकी संवेदना, उसका मातृप्रेम मज़ाक बन जाता है। लेखक कहता है

"एइ घंटा टुऐकर अभिराताय संसारे से जेन एके बार बुड़ो हइया जियेछिलो"
(इस दो घंटे के अनुभव से जैसे वह एकदम बूढ़ा हो गया था)

कंगाली के अनुभव ने उसे बिल्कुल जड़ बना दिया था।

कहानी के अंत में माँ की चिता सजाने को काठ नहीं मिलता है तब कंगाली पुआल जलाकर मुखाग्नि करता है। उसके बाद जब सब शव पर मिट्टी डालने में व्यस्त थे तब कंगाली स्थिर दृष्टि से पुआल से उठता धुँआ देख रहा था। अगर उस धुँए को भेदकर स्वर्ग से रथ आये तो उसकी माँ स्वर्ग को जाएगी।

इस कहानी में लेखक ने निम्नवर्ग के एक बालक के मन की इच्छा की पूर्ति न हो पाने का क्रूर चित्र खींचा है। उनके समकालीन समाज के उच्च वर्ग के लोगों की संवेदनहीनता, मानवता-विरोधी मानसिकता, निम्न वर्ग पर हो रहे अत्याचार, पीड़न और शोषण का चित्रण अत्यंत सजीवता के साथ किया है।

बोध प्रश्न

4) शरतचंद्र की पहली कहानी कौन सी है।

.....

5) शरतचंद्र ने अपनी कहानियों में किन बातों की प्रधानता दी है।

.....

.....

.....

6) "महेश" तथा "अभागीर स्वर्ग" की तुलना हिंदी में किस कलाकार की कहानी से कर सकते हैं।

.....

.....

7) निम्नलिखित कथन में से सही के आगे √ तथा गलत के आग X का चिन्ह लगाएं।

क) महेश कहानी में गाय की पूजा को लेखक ने उचित ठहराया है।

.....

ग) गफूर अपनी मर्जी से मजदूर बनना चाहता था।

.....

8) अभागी के अंदर स्वर्ग जाने की इच्छा

क) ठाकुरदास की शवयात्रा देखकर उत्पन्न हुई।
ख) पति के नहीं रहने के कारण हुई।
ग) स्वर्ग की कल्पना करने के कारण हुई।
घ) पुत्र होने के कारण हुई।

9) "अभागीर स्वर्ग" कहानी के माध्यम से लेखक ने किस मूल समस्या को हमारे सामने रखा है।

.....
.....
.....
.....
.....

10) "अभागीर" के चरित्र की चार विशेषताएं लिखिए।

.....
.....
.....
.....
.....

अभ्यास

2) अभागीर स्वर्ग में शरतचंद्र ने सामाजिक एवं आर्थिक वैषम्य का यथार्थ चित्रण किया है। दस बारह पंक्तियों में उत्तर लिखें।

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

7.6 काजी नजरुल इस्लाम

7.6.1 सामान्य परिचय

बांगला साहित्य में क्रान्ति के कवि रूप में काजी नजरुल इस्लाम विख्यात हैं। उनके काव्य में यथार्थ जीवन का क्रूर चित्रण हुआ है।

24 मई 1899 को वर्दवान के चुरुलिया गाँव में उनका जन्म हुआ। उनका बचपन गरीबी में गुजरा। वे गरीबी के कारण 10वीं कक्षा तक अध्ययन कर पाये थे। आजीवन उन्होंने संघर्ष किया था।

बचपन से ही नजरुल की कवि-प्रतिभा विकसित होने लगी थी। 11-12 साल की उम्र में ही ग्रामीण लोक-नाटक "लटोनाच" की गोष्ठी में काव्य करने लगे थे। इसी समय गीत-नाटक-प्रहसन लिखकर आसपास के इलाके में प्रसिद्ध हो गए थे।

वे 1917 में "बंगाली रेजीमेंट" में सेना की नौकरी लेकर कराची चले गए थे। 1919 तक वे कराची में रहे। वहीं पर "रुबायत-3 हफीड़ा" का उन्होंने अनुवाद किया था। 1919 में बंगाली रेजीमेंट भंग कर दिया गया। नजरुल इस्लाम सरकारी नौकरी करना चाहते थे। पर उनके मित्र मुज्जफर अहमद के अनुरोध पर वे राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में शरीक हो गए। उन्होंने "नवयुग" पत्रिका का संपादन भी किया। 1922 में "धूमकेतु" पत्रिका भी उनके संपादन में निकलने लगी।

नजरुल 1911 से 1942 तक निरंतर लिखते रहे। 1942 में "आकाशवाणी" कलकत्ते में अनुष्ठान करते हुए वे अस्वस्थ हो गए। धीरे-धीरे उनकी चेतना जाती रही और कवि नजरुल इस्लाम "निर्वाक" हो गए।

व्यक्तिगत जीवन में नजरुल इस्लाम अच्छे गायक भी थे।

7.6.2 समय और परिवेश

नजरुल और शरतचंद्र सामाजिकार्थिक, सांस्कृतिक परिवेश में फर्क नहीं है।

1920 में काँग्रेस के विशेष सम्मेलन में गांधी के असहयोग आंदोलन के प्रस्ताव गृहीत हुए। तत्पश्चात् देश भर में आंदोलन ने जोर पकड़ा। राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन और तत्कालीन राजनीतिक परिवेश से अनुप्राणित होकर नजरुल राष्ट्रवादी कविताएं रचने लगे थे। "अग्निवीणा" की अधिकांश कविताएं इसी समय लिखी गई हैं। उन्होंने असहयोग आंदोलन और खिलाफत आंदोलन का समर्थन किया।

नजरुल की राजनीतिक चेतना के विकास का अपना परिप्रेक्ष्य है। उनके समय में बंगभंग आंदोलन हुआ। वे स्वयं माइकेल कॉचिन्स, डी. वैलेटो के नाम से परिचित हुए। जापान, ब्रिटिश और अमरीकी शक्ति चुनौती देने वाली सानसात सेन की चीनी लोकतांत्रिक वाहिनी के संघर्ष से नजरुल बहुत प्रभावित हुए थे। रूसी क्रान्ति ने भी उनकी राजनीतिक और क्रान्ति चेतना को दृढ़ बनाया। किसी भी राष्ट्र के राष्ट्रवादी आंदोलन को उनका समर्थन मिला था। इजियान समुद्र के दो क्रांतिकारी मोस्ताफा कमण्ल और खलिदा ऐदिन की दृढ़ता और वीरता ने भी नजरुल को प्रेरित किया था।

विभिन्न राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक घटनाओं ने नजरुल को प्रभावित किया था। यूरोप में सामन्तवाद के स्थान पर बुर्जुआ लोकतांत्रिक क्रांति हुई। पूँजीवाद के विकास से उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद विकसित हुआ। नतीजन दुनिया के कई स्वतंत्र राष्ट्र पराधीन हुए। इस विकास क्रम ने नजरुल को व्यथित किया था। क्योंकि मानवतावादी कवि होने के नाते उन्होंने मानव-मर्यादा एवं मानव-मूल्य को अधिक महत्व दिया था।

अपने अनुभव से उन्हें यह लगा था कि आम लोगों की मुक्ति के लिए उनके साथ सरोकार बहुत आवश्यक है। रूसी क्रांति से प्रभावित होने के नाते वे धीरे धीरे "साम्यवादी" विचारधारा के नजदीक आए।

धार्मिक निरपेक्षता के कारण ही मुसलमान होते हुए भी उन्होंने हिंदू महिला से विवाह किया था।

7.6.3 काव्य यात्रा

नजरुल इस्लाम की काव्य यात्रा में कई मोड़ हैं। समरा रचनाएं तीन कालखंडों में विभाजित होता हैं।

क) प्रारंभिक रचनाएं (1911-20) – इस कालखंड में उनकी प्रहसनधर्मी रचनाएं आती हैं। मेधनाथ वध, राजपुत्र, अकबर बादशाह आदि इसी कालखंड की रचना हैं। "मुक्ति" उनकी पहली प्रकाशित कविता है।

उनके राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीय चेतना के विकास-बिन्दु "राजपुत्र" में ही प्राप्त होते हैं।

ख) 1920-30 – इस कालखंड में जागरणधर्मी रचनाएं शामिल हैं। इस अवधि में अग्निवीणा (1922), दोलन चाचा (1923), साम्यवादी (1923), विषेर वाशी (1924), छायानत (1925), सिंधु-हिंदोल (1926), सर्वहारा (1926), फविमनसा (1927), बुलबुल (1928), चक्रवाक (1929), अजरमल नीतिका (1930) आदि रचनाएं हैं। मूलतः सामाजिक-राजनीतिक परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में ही इस काल खंड की रचनाओं का सृजन हुआ है। "नवयुग" पत्रिका के संपादन कर्म से जुड़ने के बाद देश की राजनीतिक परिस्थितियों से उनका गहरा परिचय हुआ। 1929 के क्रान्तिकारी आंदोलन ने उन्हें प्रभावित किया था। जलियाँवाला बाग हत्याकांड, पहले महायुद्ध के बाद देशवासियों के साथ अंग्रेजों का विश्वासघात, मुक्तिकामी जनता और आम लोगों पर सरकार के अत्याचार ने कवि नजरुल इस्लाम के मन की आग को शब्दों में ढ़ालने में सहायता की है। उसकी राष्ट्रचेतना और सांप्रदायिकता विरोधी चेतना के विकास में राजनीति-सामाजिक परिप्रेक्ष्य बहुत ही महत्वपूर्ण रहा है। "विद्रोही" (1921) कविता की रचना इसी परिप्रेक्ष्य में हुई थी। उनकी क्रान्तिकारी चेतना से युक्त रचनाओं के समानान्तर "दोलनचौपा" जैसे रोमांटिक काव्य का सृजन भी उन्होंने किया है। इस कालखंड की रचनाओं में वैविध्य और वैचित्र्य प्राप्त होता है।

ग) गीति काव्य (1931-34) – इस कालखंड में संगीत और गीतधर्मी रचनाएं हैं। सुरासाक्षी (1931), वनगीति (1932), जुल्फिकार (1932), बुलबगीचा (1933), गानेरमाला (1934) आदि रचनाएं हैं।

घ) अतिम चरण (1935-42)—इस कालखंड में नजरुल इस्लाम ने कुछ कविताओं की रचना की है। जिनमें मुउलेर महफिले (1940), टुर्वार यौवन (1941), रविहारा (1941) आदि हैं।

7.7 राष्ट्रीय चेतना

"ओज" नजरुल के काव्य की विशेषता है। वे "जनकवि" थे। जनकवि होने के नाते सामाजिक वैषम्य का विरोध, राष्ट्र को स्वतंत्र देखने की इच्छा और तमाम मेहनतकश और गरीब जनता को शोषण मुक्त करने की संघर्ष चेतना का समन्वय, उनके काव्य में हुआ है। जन और राष्ट्र के प्रति प्रतिबद्धता के कारण वे अपने युग से विक्षण नहीं थे। उपनिवेशवाद और साम्राज्यवादी शक्ति के खिलाफ उन्होंने अपनी लेखनी का प्रयोग किया।

साम्राज्यवाद का विरोध और सांप्रदायिक मैत्री उनके काव्य की चेतना हैं। उनकी कविता में राष्ट्रीयता-बोध, आम आदमी की दुर्दशा और विक्षोम का बहुआयामी चित्र मिलता है। अंग्रेज सरकार के खिलाफ राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन को तीव्र करने के अपराध में उन्हें एक वर्ष का कारावास भोगना पड़ा था।

गांधी के असहयोग आंदोलन से जनचेतना जागृत हुई थी। मेदिनीपुर में किसान आंदोलन, चौरा-चौरी में किसान-आंदोलन की तीव्रता को देखते हुए गांधीजी ने उसे वापस ले लिया। गांधीजी के आंदोलन की क्रांतिकारी दृष्टि से नजरुल इस्लाम प्रभावित थे। परंतु समझौतापरश्त नेतृत्व से उन्हें घृणा थी। उन्होंने इसकी कड़ी आलोचना की है।

सुता दिये मोरा स्वाधीनता चाइ, बसे बसे कण्ल गुनि।
जागरे जवान। बात धरे गेल मिथ्यार तात बुनि।

(सव्यसाची फणिमनसा)

(धागे से हम स्वतंत्रता चाहते हैं, बैठे-बैठे पल गिनता है।
जागो जवानों। झूठमूठ का तांत बुनते गठिया हो गया है।)

सत्याग्रह, असहयोग आंदोलन की असफलता से चारों तरफ असंतोष बढ़ा। देशबन्धु चितरंजन दास ने "स्वराज्यदल" का गठन किया। नजरुल को भी शामिल किया गया। पराधीन राष्ट्र की मुक्ति-कामना उनके काव्य में अन्तरोतर दृढ़ होती गई है। साम्राज्यवादी शासन के विरोध में जनता की राष्ट्रीय चेतना के विकास में उनकी अहम भूमिका है। नियतिवाद को अस्वीकार करते हुए उन्होंने देशवासियों में आत्मविश्वास भरा। वे "अग्निवीणा" की झंकार सुनाने लगे:

आमि युगे युगे आसि, आसियाधि पुनः महाविप्लव हेतु
आमि जानि जानि ओइ स्रष्टार फांकि, सृष्टिर ओइ चातुरी
ताइ विधि ओ नियमे लाथि मेरे बुकि विधातार बुके हातुड़ि
आमि जानि जानि ओइ मुओ ईश्वर दिये जा हयनि हंबे ताओ
ताइ विप्लब आनि विद्रोह करि, नेचे नेचे दिइ गोफे ताओ।

मैं हर युग मे महाविप्लव के लिए आता हूँ, आया हूँ, भ्रष्टा चातुरी फांकी मुझे पता हैं इसीलिए विधि और नियमों को लात मारकर विधाता के सीने में हथौड़ा गौतता हूं। मुझे पता हैं उस नकली ईश्वर से जो नहीं हुआ हैं वह भी होगा। इसीलिए क्रांति लाता हूं, विद्रोह करता हूं और अपनी मूछो पे हाथ फेरता हूं।

मुक्ति के लिए नजरुल इस्लाम नई पीढ़ी का आहवान करते हुए कहते हैं–

जबजीबने गाहिया गान
सजीब करिब महाश्मशान
आमरा दानिब नुतन प्राण
बाहुते नवीन बला

(नवजीवन का गीत गाते हुए महाश्मशान को सजीव करूंगा। हम प्राण और बाजुओं में नई शक्ति भरेगें)

अत्याचार पीड़ितों की मुक्ति उनकी काव्य चेतना में महत्वपूर्ण है। दासता सामाजिक रुढ़ि और जड़ता से मुक्ति के लिए उनका मन छटपटाता है। चारों तरफ सक्रियता उनकी एकमात्र इच्छा है।

रूसी क्रान्ति से प्रभावित होकर सामाजिक बदलाव के लिए जनक्रान्ति पर उन्हें गहरी आस्था थी। स्वराज और स्वतंत्रता के लिए उनकी निजी अवधारणा थी। उनके अनुसार स्वतंत्र राष्ट्र में कोई भी भूखा और नंगा नहीं रहेगा। उन्होंने राष्ट्रीयतावादी आंदोलन को समाज के निम्न वर्ग से जोड़ा। उनकी इस दृष्टि से राष्ट्रीय चेतना को एक नया रूप प्राप्त हुआ था।

राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में सबके सक्रिय हिस्सेदारी से आंदोलन पूर्णता प्राप्त हो सकता है। इसी विश्वास पर नजरुल ने जन चेतना के विकास के लिए (सक्रिय आंदोलन) और जनता के सरोकार को महत्व दिया था। गांधीजी के असहयोग आंदोलन से जनता सक्रिय तो हुई पर शासन और शोषण के खिलाफ जनता में सक्रियता नहीं थी। इसीलिए (निष्क्रियता) को नजरुल ने बार-बार नकारा है।

धर्मकथा पेमेर वाणी-महान उच्च खुब
किन्तु सापेर दाँत ना भेंगे मंत्र झाड़े जे बेकुब
धर्मगुरु धर्म शोनान, पुरुष छेले युद्धे चल।
सेओ भी आच्छा, मरब दिये मृत्यु-शोणित एलकोहल।
(विद्रोहेर वाणी : विषेर वांशी)

(धर्मकथा, प्रेम की वाणी महान और बहुत अहम है, लेकिन साँप का विष-दाँत न तोड़कर जो झाड़-फूंक करता है वह बेवकूफ हैं। धर्मगुरु धर्म बांचता है, मर्द जंग में चल, वह ठीक है, खून देकर युद्ध में मरेगा।)

"विद्रोही", "धूमकेतू", "आत्मशक्ति", "दुःशासनेर रक्तपान", आदि कविताओं में उन्होंने जाति को नये आदर्श से प्रेरित किया है।

उन्होंने साम्राज्यवादी शक्ति के लिए देशवासियों को जागरूक ही नहीं किया है बल्कि उसके साथ-साथ राष्ट्र की महाजनी व्यवस्था के खिलाफ भी सचेत किया है।

विपदेर अल ठसिया फोले महाजन भुँड़
निरन्तेद भिते नाश करे जमिदार चोर जुड़ि।

(चोर डाकण्तः सर्वहारण)

(गरीबों के अन्न से महाजन की तोंद बढ़ती है, जमींदार रूपी अपशक्ति भूखो का घर बरबाद करता है)

नजरुल इस्लाम को विश्वास था कि जन-संघर्ष से समाज का अंधकार दूर हो सकता है। इसलिए समाज के कमजोर वर्ग को संगठित होकर लड़ने के लिए प्रेरित करते हैः

आज जागरे रुणाणा सब तो गेछे किसे आबारभय
एइ खुदार जोटेइ करब एबार सुधार जागत जग।
ए विश्वजयी दस्यु राजार हयके करबो नय,
ओरे देखबे एबार सभा जगत धाणार कतबल

(जागो किसानों सब कुछ लुट गया है अब किस बात का डर है। इसी भूख के बल पर सुधा के जगत को जीतेंगे। विश्वजयी-डाकू राजा को दोनों की अनहोनी करेंगे, अब यह सभ्य जगत, किसान की शक्ति को देखेगा।)

7.7.1 समन्वय

नजरुल ने सांप्रदायिकता, जातिवाद, छुआछूत, हिन्दू-मुस्लिम की धर्म के आधार पर बनी आपसी घृणा का भी विरोध किया है:

जातिर नामे बज्जाति सब जात जालियात खेलछे जुआ।
छुलेइ तोर जाते जाबेर जात छेलेर होतर नयतो मोआ।।
हुँकोर जल आर भीतरहाँड़ि, भाबलि एतेइ जातेर जान
ताइतो बेकुब करलि तोरा, एक जातिके एकसो खाना

(जाति के नाम पर बदमाशी, सभी जाति के नाम पर जुआ खेल रहे हैं छूने से जात चली जाएगी, जाति बच्चों के हाथ का लड्डू नहीं हैं सोचा है हुक्का-पानी और चावल के डंडे में जात का जान है इसलिए तूने लोगों को मूर्ख बनाया है और एक जाति को सौ टुकड़ा कर दिया।)

प्रेमचंद्र या निराला की तरह नजरुल इस्लाम भी धर्म के राजनीतिकरण के घोर विरोधी थे। इससे सांप्रदायिकता फैलती है। भाई-चारे का वातावरण प्रदूषित हो जाता है। भाई-भाई के बीच दंगे-फसाद होते रहते हैं। साम्राज्यवादी, सामंततंत्र और सत्ताधारी वर्ग की इस साजिश से नजरुल अच्छी तरह परिचित थे। पर नजरुल देशवासियों को सांप्रदायिकता विरोधी लड़ाई को साम्राज्यवाद विरोधी लड़ाई में रूपांतरित करना चाहते थे इसलिए नजरुल आशावादी हैं:

जेलाठिते आज टुटे गम्बुज जड़े मन्दिर टूटा
सेइ लाठि कालि प्रभाते करिबे शत्रु दुर्ग गुँडा
प्रभाते हते ना भावे गाथे रप्प
चिनिबे शत्रु चिनिबे स्वजन।

(जिस लाठी से आज गुम्बल और मन्दिर टूट जाते हैं, उसी लाठी से कल सुबह दुश्मनों का किला टूटेगा। सुबह होने पर भाई-भाई में युद्ध नहीं होगा। सभी शत्रु को पहचान जायेंगे और अपने जन भी पहचान जायेंगे)

उनकी दृष्टि में हिन्दु-मुस्लिम-ईसाई सभी बराबर हैं। उनका सबसे बड़ा परिचय यही है कि धार्मिक विविधता होते हुए भी वे "मानव" हैं। नजरुल को "मानवधर्म" में विश्वास और आस्था है। "साम्यवादी" कविता में नजरुल लिखते हैं:

गाहि साम्येर शान–
जे खाने आसिया एक हये गेछे सब बाधा व्यवधान
जेखाने मिशेछे हिन्दू-बोद्ध-मुस्लिम-क्रीश्चान

(साम्य का गीत गाता हूं। जहाँ आकर भी बाधाएं और दूरियाँ समाप्त हो गई हैं। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई एक हो गए हैं।)

नजरुल ने मध्ययुगीन धार्मिक कट्टरता, यठ मुल्लापन का विरोध किया है। धर्म के संदेश को राष्ट्र की एकता के लिए रूपांतरित करना चाहते थे।

नजरुल के काव्य में मानवतावाद के विकास का स्वतंत्र परिप्रेक्ष्य है। उनकी असांप्रदायिक दृष्टि, सामाजिक शोषण के खिलाफ निरंतर संघर्ष की चेतना, पीड़ित और शोषित जनता की पक्षधाता के समीकृत रूप से उनकी "मानवतावाद" की पृष्ठभूमि है।

धर्म को नजरुल "**आफिम**" कहते हैं। "प्रलयशिखा" कविता की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं:

कताये उठेछि धर्म-आफिम नेशा
ध्वंस करेछि धर्मयाजकी पेशा
भांगि मंदिर, भांगि मस्जिद
भांगिया गिजी गाहि संगीत
एकइ मानबेर एकइ रक्तनेशा।

नजरुल ने उन धार्मिक व्यक्तित्वों का चित्रण अपने काव्य में क्रिया है जो मानव-समाज के लिए आदर्श हैं। उन्होंने उनका नवीन विश्लेषण करते हुए धार्मिक व्यक्तित्वों को नया आयाम प्रदान किया है। हजरत मोहम्मद, श्रीकृष्ण, खालेद, खलिफा ओमर आदि को साम्य, मैत्री और मानवता के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है। इससे उनकी धर्मनिरपेक्ष दृष्टि स्पष्ट हो जाती है।

7.8 विद्रोही कविता वाचन

यह नजरुल की युगान्तकारी कविता है। इस कविता में अत्याचारी के खिलाफ विद्रोह है। विद्रोह कविता में उनकी राजनीतिक चेतना अभिव्यक्त हुई है। कवि नजरुल इस कविता के जरिए देशवासियों में आत्मविश्वास, आत्मसम्मान का बोध जगाते हैं। यह राष्ट्रीय अस्मिता की कविता है। हो रहे अत्याचार के प्रति सबको जागरूक करना और अत्याचार के खिलाफ एकजुट होकर लड़ाई के लिए प्रेरित करना ही इस कविता का उद्देश्य है। अत्याचारी के खिलाफ अत्याचार-पीड़ित आम लोगों के विद्रोह को नजरुल ने आगमयी शब्दों में ढाला था। "विद्रोही" कविता "मैं" सभी पीड़ितों का प्रतीक है। इसी कविता में श्रमजीवी वर्ग के प्रति संवेदनात्मकता व्यक्त करते हुए कवि ने उनके संगठित होने की बात कही है। जिस दिन शोषितों के रोने की आवाज इस धरती पर नहीं गूंजेगी उस दिन विद्रोही कवि शांत होंगे। अन्यथा उनका संघर्ष जारी रहेगा।

कवि पराधीन राष्ट्र के सामने, आत्मसम्मान से जीने के लिए विद्रोह का आहवान करते हैं। हर वीर तूफान की तरह होता है। सामने आने वाली बाधाएं चूर-चूर करते हुए अपने उद्देश्य में आगे बढ़ने वाले तूफान की तरह मुक्तिकामी हर व्यक्ति भी आगे बढ़ता है। विद्रोही के एक हाथ में बांसुरी और दूसरे हाथ में रण-तूर्य है। यानि सृष्टि और ध्वंस दोनों विद्रोही में होता है।

इस कविता में विद्रोह और सृजन दोनों व्यक्त हुए हैं। अर्थात् अत्याचार के नाश के लिए संहमक व्यक्तित्व और सृजन के लिए सर्जक की भूमिका में अत्यंत विरोधाभास है। कोमलता और ओज दोनों भाव एक साथ इस कविता में व्यक्त हुआ हैं। वीर और श्रृंगार रस का समन्वय भी इस कविता में है।

"विद्रोही" राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन एवं संसार के सभी शोषित जन की मुक्ति के लिए प्रेरित करने वाली प्रेरक कविता है। यह कविता सभी मुक्तिकामी व्यक्ति के लिए दिशा निर्देश करती है। जब राजनीतिक, आर्थिक दासता के कारण समाज और राष्ट्र उदित हो रहा था तब नजरुल ने बंधन तोड़ने का आहवान किया। उन्होंने मानव जीवन को नया नियुक्त करने के लिए मानव को "वीर" की मर्यादा प्रदान की–

"बल वीर स्वर उन्नत मम शिर"

जैसे जैसे समाज और शासकों का अत्याचारी रूप स्पष्ट होता गया कवि नजरुल भी साम्यवादी समाज निर्माण का संकल्प लेते हैं। इसी संकल्प के लिए "विद्रोही" कविता के जरिए "क्रांति" की बात कहते हैं। देशवासियों के मन में ही नहीं पूरी मानव जाति के लिए आशा का संदेश सुनाते हैं:

महाविद्रोही रणकलान्त
आमि सेइ दिन हब शान्त,
सबे उत्पीड़ितेर क्रन्दन रोल आकाशे बातासे हवनिबे ना
अत्याचारीर खआ कृपाण भीम रण-भूमि रणिबे ना–

7.8.1 विद्रोही

बल बीर–
बल उन्नत मम शिर,
शिर नेहारि, आमरि नत-शिर ओइ शिखर हिमादिर।
बल बीर–
बल महाविश्वेर महाकाश फाड़ि
चन्द्र सूर्य ग्रह नारा छाड़ि
भूलोक भूलोक गोलक भेदिया,
खोदार आसन "आरश" छेदिया
उठियाछि चिर-विश्मय, आमि विश्व-बिद्यातिर।
मम तलाटे रुद्र भगबान ज्वले राज-राजटीका दीपत जयश्रीर।
बल बीर–
आमि चिर-उन्मत शिर।

आमि चिरदुर्दम, दुविनीत, नृशंस,
महा-प्रलयेर आमि नटराज, आमि साइक्लोन, आमि ध्वंस,
भामि महाभय, आमि अभिशाप पृथ्वीर,
भामि दुबीर,
आमि भेंगें करि सब चुरमार।
आमि अनियम उच्छृंखल,
आमि दंले जाइ जल बन्धन, जस नियम कानुन शृंखल।
आमि मानि ना को कोनो आइन,
आमि भरा-तरी करि भरा-डूबि, आमि टर्पेडो, आमि भीम
भासमान माइन।
आमि घूर्जटि, आमि एलोकेश झड़ अकाल वैशाखीर
आमि बिद्रोही, आमि बिद्रोही- सून विश्व-विधातीर।
बल बीर–
चिर-उन्नत मम शिर।

भामि झंझा, आमि धूर्णि,
आमि पथ-सम्मुखे जाहा पाइ जाइ चूर्णि।
आमि नृत्य-पागल छन्द
आमि आपनार ताले नेचे जाइ, आमि मुक्त जीवनानन्द,
आमि हाम्बीर, आमि छायानट, आमि हिन्दोल,

आमि चलचंचल, हर्माक छर्माक
पथे जेते जेते चकिते चमकि
फिंग दिया दिइ तीन दोल
आमि चपला-चपल हिन्दोल।
आमि ताइ करि भाइ जखन चाहे ए मन जा,
करि शत्रुर साथे गलागलि धरि मृत्युर साथे पंजा,
आमि उन्माद, आमि झंझा,
आमि महामारी, आमि भीति ए धरित्रीर
आमि शासन-त्रासन, संहार आमि उष्म चिर-अधीर,
बल बीर—
आमि चिर-उन्नत शिर।

आमि चिर-दुरन्त दुर्भद,
आमि दुर्दभ, मम प्राणेर पेयाला छर्दम् है हर्दम
भरपूर-मद
आमि होम-शिखा, आमि खाग्निक जमदग्नि,
आमि जज्ञ, आमि पुरोहित, आमि अग्नि।
आमि सृष्टि, आमि ध्वस, आमि लोकालय, आमि श्मशान,
आमि अबसान, निशावसान,
आमि इन्द्रानी-सूत हाथे चाँद भाले सूर्य,
मम एक हाते बाँका बाँशरी आर हाते रण-तूर्य।
आमि कृष्प-कंठ, मन्थन-बिप पिया ब्यथा बारिधिर।
आमि ब्योमकेश, धरि बन्धन-हारा धारा गंगोत्रीर,
बल बीर—
चिर उन्नत मम शिर।

आमि सन्यासी, सुर-सैनिक,
आमि युवराज, मम राजबेश म्लान गैरिक,
आमि बेदुइन, आमि चेंगिस,
आमि आपनारे छाड़ा करि ना काहारे कुर्णिश।
आमि वज्र आमि ईशान-बिषाणे ओकार,
आमि इसाफिलेर शिंगार महा-हुंकार,
आमि पिनाक-पाणिर डमरु त्रिशुल, धर्मराजरे दंड,
आमि चक्र महाशंख, आमि प्रणब नाद-प्रचंड।
आमि खेपा दुर्बासा, बिश्वमित्र शिका,
आमि दाबानल दाह, दहन करिब बिश्व
आमि प्राण-खोला हासि उल्लास-आमि सृष्टि बैरी महात्रास,
आमि महा-प्रलयेर द्वादश रबिर राहु-ग्रास
आमि कभु प्रशान्त,-कभु अशान्त, दारुण स्वेच्छाचारी,
आमि अरुण सुनेर तरुण, आमि बिधिर दर्प-हारी,
आमि प्रभंजनेर उच्छास, आमि बारिधिर महाकल्लोल,
आमि उज्जल, आमि प्रोजजल,
आमि उच्छल जल-छल-छल, चल-उर्मिर हिन्दोल-दोल।
आमि बन्धन-द्वारा कुमारीर बेणी, नन्दी-नथने बह्नि
आमि षोड़शीर हदि-सरसिल प्रेम उददाम, आमि धीन्य।
आमि उन्मन मन उदासीर,
आमि बिधबार बुके क्रन्दन-श्वास, हा-हताश
आमि हुनाशीर।
आमि बंचित ब्यथा पथबासी चिर गृहहारा जन पथिकरे,
आमि अबमानितेर मरम-बेदना, बिष-ज्वाला, प्रियलाछित बुके
गति फेर।

आमि अभिमानी चिर-खुब्ध हियार कातरता, व्यथा सुनिबिड़
चित– चुम्बन-चोर कम्पन आमि थर-थर-थर प्रथम परश
कुमारीर।
आमि गोपन प्रियार चकित चाहनि, छल-करे देखां अनुखन,
आमि चपल मेयेर भालोबासा, तार काँकन चुड़िर कन-कन।
आमि चिर शिशु, चिर किशोर,
आमि यौबन-भीतु पल्लीबालार आँचर काँचलि निचोर।
आमि उत्तर-बायु, मलय अनिल, उदास परीबी हाओया
आमि पथिक-कबिर गभीर-रागिनी, बेणु-बीणे गान गाओया।
आमि आकुल निदाध-तियाषा, आमि रौद्र-रुद्र रबि,
आमि मरु-निर्झर झर-झर, आमि श्यमलिमा छाया-छबि,
आमि तुरीयानन्दे छुटे चलि एकि उन्माद, आमि उन्माद।
आमि सहसा आभारे चिनेछि, आभार खुलिया गियाछे।
सब बाँध।

आमि उत्थान, आमि पतन, आमि अचेतन-चिते चेतन
आमि बिश्व-तोरणे बैजयन्ती मानब-बिजय-केतन।
छुटि भड़ेर मतन करतालि दिया
स्वर्ग-मर्त्य करनले,
ताजी बोरराक आर उच्चैः शुबआ बाहन आमार
हिम्मत-हेषा हँके चले।
आमि बसुधा-बक्षे आग्नेयाद्रि, बाड़ब-बहि, कालानल,
आमि पाताले माताल अग्नि-पाथार कलरोल-कल-कोलाहल।
आमि तड़िसे चड़िया उड़े चलि जोर तुड़ि दिया, दिया लम्फ,
आमि त्रास संचारि भुबने सहसा संचारि भूमि-कम्प,
धरि बासुकिर फणा जापटि,
धरि स्वर्गीय दून जिब्राइलेर आगुनेर पाखा सापटि।
आमि देब-शिशु, आमि चंचल,
आमि धृष्ट, आमि दाँत दिया छिड़ि बिश्व माथेर अंचल।

आमि अर्फियासेर बाँशरी
महा-सिन्धु उतला घुम घुम
घुम चुमु दिये करि निखिल बिश्बे निझझूम
मम बाँशरीर नाने पाशरि।
आमि श्यमेर हातेर बाँशरी।
आमि रुषे उठि यबे छुटि महाकाश छापिया,
भये सप्त नरक हाबिया दोजख निभे निभे जाए काँपिया
आमि बिद्रोह-बाही-निखिल अखिल ब्यापिया

आमि शाबण-पलाखन-बन्या,
कभु धरणीरे करि बरणीया, कभु बिपुल ध्वंस धन्या-
आमि छिनिया अनिब बिणुन-बक्ष हड़ते युगल कन्या।
आमि अन्याय, आमि उल्का, आमि शनि,
आमि धूमकेतु-ज्वाला, बिषधर काल फणी।
आमि छिन्नमस्ता चन्डी, आमि रणदा सर्बनाशी,
आमि जाहान्नामेर आगुने बसिया हासि पुष्पेर हासि।

ताजी-घोड़ा
बोरराक-स्वर्णेर पंखीराज
हाबिया दोजख-सप्तम नरक, एइ नरकइ भीषणतम।
आमि मृन्मथ, आमि चिन्मय,
आमि अजर अमर अक्षय, आहिम अब्यय।

आमि मानव दानव देवतार भय,
बिश्वेर आमि चिरन-दुर्जय,
जगदीश्वर ईश्वर आमि पुरुषोत्तम सत्य,
आमि ताथिया ताथिया माथिया फिरि स्वर्ग-पाताल-मर्त्य।
आमि उन्माद, आमि उन्माद।

आमि चिनेहि-आमारे, आजिके आमार खुलिया गियाछे-
सब बाँध।

आमि परशुरामेर कठोर कुठार,
निःक्षत्रिय करिब बिश्व, आनिब शान्ति उदार

आमि हल बलराम-स्कन्धे,
आमि उपाड़ि फेलिब अधीन बिश्व अबहेले नब सृष्टिर
महानन्दे।

महा– बिद्रोहील रण-क्लान्त,
आमि सेइ दिन हब शान्त,
यबे उतपीड़ितेर क्रन्दन-रोल आकाशे बाताशे ध्वनिबे ना
अत्याचारीर खड़ग कृपान भीम रण-भूमे रणिबे ना-
बिद्रोही रण-क्लान्त
आमि सेइ दिन हब शान्त।

आमि बिद्रोही भृगु, भगवान-बुके एंके दिइ एद चिन्ह।
आमि स्रष्टा-सूदन, शोक-ताप-हाना खोयाली बिधिर बक्ष
करिब भिन्न
आमि बिद्रोही भृगु, भगवान-बुके एँके देबो एद चिन्ह।
आमि खेयाली बिधिर बक्ष करिब भिन्न।
आमि चिर-बिद्रोही बीर–
आमि बिश्व छाड़ाये उठियाछि एका चिर उन्नत शिर।

7.8.2 भावार्थ

पहले महायुद्ध के तत्काल पश्चात् "मोस्लिम भारत" और "बिजली"– पत्रिकाओं में एक साथ "विद्रोही" कविता प्रकाशित हुई थी। इस कविता में कवि ने पूरी शक्ति के साथ अंग्रेज तज के खिलाफ विद्रोह की घोषणा की थी:

आमि विद्रोही आमि विद्रोही सूत विश्व विद्यागीर
बल वीर
चिर उन्नत मम शिर

(मैं विद्रोही, धरती माता का विद्रोही पुत्र हूं, कहो वीर चिर उन्नत है मेरा सिर)

अनेक समकालीन युवा पीढ़ी उस क्रांतिकारी कविता से उपजीवित हो उठी। जैसे उनके विद्रोह की समवेत इच्छा ही कवि की लेखनी से अभिव्यक्त हुई है। प्रकाशित कविता के साथ नजरुल इस्लाम का नाम नहीं छपा था। इसलिए लोग उनके नाम जानने को उत्सुक हो उठे। जब लोगों को पता चला कि 21 साल के एक युवक ने ऐसी कविता रची है तो सब आश्चर्यचकित हो गए।

विदेशी शासक के अत्याचार से पीड़ित राष्ट्र को इस कविता से नया उत्साह, नई प्रेरणा और नया जीवन मिला। जब अंग्रेजी दासता से भारतमाता को मुक्त करने के लिए युवा समाज प्राणों की आहुति दे रहा था, तभी नजरुल की यह कविता जैसे दीक्षा-मंत्र का काम करती है।

बल वीर
बल उन्नत मम सिर

थिर ने हारि आमार नत शिर
ओइ शिखर हिमादिर।

इस संकल्प से अत्याचारी शासक वर्ग तिलमिला उठा। पूरा शासन-तंत्र कवि के खिलाफ सजग हो उठा। नजरुल भी प्रचलित शासनतंत्र, न्याय व्यवस्था, पुरानी सड़ी गली समाज व्यवस्था, अंधविश्वास, कुसंस्कार के खिलाफ जिहाद घोषणा करते हैं। राष्ट्र की मुक्ति के लिए अ-कल्याणकारी शक्ति का नाश करके, नई व्यवस्था के लिए संघर्ष का आहवान करते हैं। नाश के भीतर ही सृतन का बलि निहित रहता है। इसीलिए कवि स्वयं को नाशकर्ता के विभिन्न रूपों में चित्रित करते हैं।

कभी कवि महाप्रलयकारी-नटराज बनकर पूरी धरती का नाश करना चाहता है तो कभी "टर्पेडो" जैसा गोपन शस्त्र बनना चाहता है। कभी वह सड़े गले सामाजिक नियमों को ध्वंस करने के लिए बहता "माइन" बनना चाहता है। तो कभी "साइक्लोन" के रूप में सब कुछ ढहाना चाहता है। धरती को शमशान करना चाहता है, फिर वह इसाफिल के टुंटुनी का गर्जन में स्वयं को रूपांतरित करना चाहता हैं। शिव के त्रिशूल और डमरु बनकर धरती को नाश करने की इच्छा व्यक्त करते हैं और परशुराम की कुल्हाड़ी बनकर इस धरती को क्षत्रिय शून्य बनाना चाहता है। यानि बारंबार क्रान्तिकारी और प्रलयकारी पात्रों के मियक से कवि धरती को अत्याचार मुक्त करने की आकांक्षा व्यक्त करते हैं।

पर केवल नाश करना ही उनका उद्देश्य नहीं हैं। नाश के बाद नये सिरे से धरती के सृजन की आकांक्षा भी पालते हैं। नटराज प्रलय के बाद सृजन करते हैं। कुरुक्षेत्र-युद्ध के पश्चात् धर्मराज्य की प्रतिष्ठा हुई थी। वैशाखी तूफान के बाद बारिश की बूंदे टपकती हैं। युवा पीढ़ी नये सृजन का प्रतीक है। इसीलिए कवि नाश के साथ सृजन का संदेश भी देते हैं:

आमि मानिनाको कौन आइन
आमि भरातहि करा भराडुबि
आमि तपेंडो, आमि भीम मारुमान माइन

(मैं कोई कानून नहीं मानता हूं, मैं भरी नाव डुबोता हूं, मैं टर्पेडो, विशाल बहता माइन हूं

"विद्रोही" कविता राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में आत्मसम्मान और स्वाभिमान का पर्याय बन गई थी।

आमि आमि आपनरे छाड़ा करिना कमहारे कुनिश

(मैं स्वयं को छोड़कर किसी दूसरे को कुर्निश नहीं करता हूं)

देशवासियों के मन में आत्मसम्मान जगा। अंग्रेज शासकों ने उन्हें "देशद्रोही" घोषित किया। पर कवि का यही संकल्प था कि–

सबे उत्पीड़ितेर क्रंदन रोल "आकशे बातासे ध्वनिशेना
अत्याचारीर खड़ग कुपाण भीम रण भूमि रणिबे ना–
विद्रोही रण क्लान्त
आमि हेइ दिन हब शान्त।

(जब उत्पीड़ित के रोने की आवाज आसपास में नहीं गूंजेगी, अत्याचारी का खड़ग इस रण-भूमि में नहीं बजेगा, मैं विद्रोही उसी दिन शांत हो जाऊंगा)

उनका संकल्प था– अत्याचारी, शोषक से तब तक संघर्ष करता रहूंगा जब तक यह धरती अत्याचार और शोषण से मुक्त नहीं हो ज़ाती है। नहीं तो मेरा संघर्ष अनवरत चलता रहेगा।

"विद्रोही" कविता में "विद्रोह" और "ओज" के साथ कवि की कोमल भावनायें भी व्यक्त हैं। इसीलिए कभी वे बंधनहारा मुकाटीर वेण, तन्वी नयने वहिन, (कुमारी की

बंधनमुक्त वेणी हूं, तरुणी की आंखों की आग हूं) फिर कभी: प्रेम उहल षोड़णीर हदि सरसिज (षोड़न का हृदय कमल), तो कभी विधवार बुकेद क्रंकन श्वास (विधवा के हृदय की रुलावट भरी साँस) के रूप में स्वयं की कल्पना करते हैं। कभी अपमानित की चरम वेदना के साथ अपना सरोकार करते हैं और

"आमि श्यामलिया छाया छवि"
(मैं हरियाली भरा चित्र हूं)

इस कविता में क्रांति के जरिए अत्याचार मुक्त राष्ट्र-निर्माण की आंतरिक इच्छा व्यक्त हुई है तो नाश के बाद सृजन की दिशा भी है। कवि ने एक साथ ओज, रौद्र और कोमल भावों का संचार किया है।

बोध प्रश्न

11) नजरुल इस्लाम का जन्म किस वर्ष और किस स्थान पर हुआ था?

.....

.....

12) नजरुल की कवि-प्रतिभा का विकास किस समय हुआ?

.....

.....

13) नजरुल ने किन दो पत्रिकाओं का संपादन किया?

.....

.....

14) किस राजनीतिक घटना ने नजरुल में क्रांति का बीज बो दिया?

.....

.....

15) नजरुल की प्रारंभिक रचनाएं किस विषयवस्तु से संबंधित हैं?

.....

.....

16) नजरुल की पहली प्रकाशित कविता का नाम लिखिए।

.....

.....

17) राजनीतिक चेतना से संबंधित नजरुल की पाँच रचनाओं के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

18) नजरुल की रोमांटिक काव्य रचना का नाम लिखिए।

.....

.....

19) नजरुल की निम्नलिखित कविताओं को आप किस श्रेणी में रखेंगे?
सुरासाकी, वनगीति, जुल्फिकार, गुलवगचा

.....
.....

20) नजरुल को जनकवि क्यों कहा जाता है?

.....
.....
.....
.....

21) तत्कालीन समय में गांधी द्वारा चलाए गए आंदोलन से सहमत होते हुए भी नजरुल एक बिंदू पर उनसे बिल्कुल अलग विचार रखते थे। वह विचार क्या थे?

.....
.....
.....
.....

22) "अग्निवीणा" रचना में नजरुल ने किस विचार पर सहमति तथा असहमति व्यक्त की?

.....
.....
.....

23) जातीय व्यवस्था पर गहरा आघात करते हुए नजरुल ने कई कविताएं लिखीं। उनका नाम लिखिए।

.....
.....
.....

24) धार्मिक समन्वय से संबंधित नजरुल की एक रचना का नाम बताइए।

.....

25)

अभ्यास

3) "विद्रोही" कविता की रचना नजरुल ने किस उद्देश्य से की?

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

7.9 सारांश

बांगला साहित्य का निरंतर विकास होता रहा। माईकल मधूसुदन दत्त, बंकिमचंद्र तथा रवीन्द्रनाथ जैसे साहित्यकारों ने इस भाषा साहित्य को ऊंचाई के शिखर तक पहुंचाया। शरतचंद्र के समय राष्ट्रीय आंदोलन का निर्णायक दौर चल रहा था। नजरुल के समय भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का अंतिम दौर आया। पाठ में आपने देखा कि शरतचंद्र के समय देश की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति कैसी थी। आप बांगला भाषा साहित्य की पृष्ठभूमि का विश्लेषण प्रस्तुत कर सकते हैं।

- शरतचंद्र ने अपनी साहित्यिक रचनाओं द्वारा जहां एक ओर सामाजिक विषमता को प्रकट किया वहीं लोगों में इस बुराई को दूर करने के लिए प्रेरणा भी दी। आप शरत् साहित्य के महत्व को बता सकते हैं।
- बांगला साहित्य को विकसित और समृद्ध करने में नजरुल का विशेष योगदान है। समाज की विषमताओं का यथार्थ रूप तथा मानवीय पीड़ा को दर्शा कर लोगों में चेतना लाने का महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने किया। दलित-पीड़ित वर्ग के प्रति उनकी विशेष सहानुभूति थी। वे शरीर से कमजोर व्यक्ति में भी अपनी रचनाओं द्वारा विद्रोह की भावना का निर्माण करते हैं। इसी ओर राजसत्ता को चुनौती तथा धार्मिक पाखंड का भांडा-फोड़ कर करारे शब्दों में समाज को बदल देने के लिए आहवान भी करते हैं। आप इस क्रांतिकारी कवि की विशेषता एवं महता को स्पष्ट कर सकते हैं।

7.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

बांगला साहित्य का इतिहास, डॉ. सुकुमार सेन (अनु-निर्मला जैन) साहित्य अकादमी, नई दिल्ली।

7.11 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) 2 देखें भाग 7.2

3) देखे भाग 7.3

अभ्यास

1) देखे भाग 7.2

बोध प्रश्न

4), 5), 6), 7), 8), 9), 10) देखें भाग 7.4

अभ्यास

देखें भाग 7.4

बोध प्रश्न

11), 12), 13), 14), 15), 16), 17), 18), 19), 20), 21), 22), 23), 24), 25) देखें भाग 7.5

अभ्यास

देखें भाग 7.8

इकाई 8 असमिया साहित्य

इकाई की रूपरेखा

8.0 उद्देश्य
8.1 प्रस्तावना
8.2 आधुनिक असमिया साहित्य : युगीन पृष्ठभूमि
8.3 आधुनिक चेतना के संवाहक : ईसाई मिशनरी
8.4 प्रेस की स्थापना : अरुणोदय पत्रिका
  8.4.1 "अरुणोदय" का योगदान
  8.4.2 अरुणोदयकालीन प्रमुख लेखक
  8.4.3 मिशनरियों की देन
8.5 नवजागरण और असमिया साहित्य
  8.5.1 नवजागरणकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि
  8.5.2 नवजागरणकालीन साहित्य के कुछ विचार बिन्दु
8.6 छायावादी साहित्य : बेजबरुवा युग
  8.6.1 अ.भा.उ.सा. सभा
  8.6.2 राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना और नवजागरण
  8.6.3 असमिया छायावादी काव्यों की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ
    क) स्वच्छंदतावादी काव्य का प्रारंभ
    ख) काव्य विषयों की व्यापकता
    ग) उपेक्षितों और सामान्य व्यक्तियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण
    घ) राष्ट्रीयता : जागरण, सुधार और देशभक्ति
    ङ) प्रकृति का रमणीय चित्रण
    च) प्रेम का उदात्त रूप
    छ) अतिन्द्रिय अनुभूति
    ज) भोग और मृत्यु चेतना
    झ.) गीति काव्य का स्वच्छंद प्रवाह
    त्र) वैचित्रयमय काव्य-सौरभ
8.7 काव्य वाचन
  8.7.1 रघुनाथ चौधरी : (1879-1968 ई०)
  8.7.2 नलिनीबाला देवी : (1898-1977 ई०)
8.8 सारांश : असमिया छायावादी काव्य का मूल्यांकन
8.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें
8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

8.0. उद्देश्य

इस इकाई के पढ़ने के बाद आप :

- आधुनिक असमिया साहित्य के बारे में जान सकेंगे,
- आधुनिक असमिया साहित्य की पृष्ठभूमि से परिचित होंगे,
- असम के नवजागरण के उद्भव और विकास के कारणों को बता सकेंगे,
- आधुनिक असमिया साहित्य में "अरुणोदय" पत्रिका की भूमिका के बारे में समझ सकेंगे.

- नवजागरणकालीन प्रमुख चेतना एवं प्रमुख लेखकों से अवगत हो सकेंगे,
- असमिया छायावादी साहित्य के उद्‌भव और विकास के संबंध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना और नवजागरण से संबंधित विचारों की व्याख्या कर सकेंगे,
- दो असमिया छायावादकालीन कविताओं का स्वाद ले सकेंगे,
- राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण के संदर्भ में असमिया साहित्य का मूल्यांकन कर सकेंगे।

8.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आधुनिक भारतीय भाषाओं के अन्यतम संविधान स्वीकृत प्रादेशिक भाषा असमिया साहित्य की आधुनिक पृष्ठभूमि को रेखांकित किया गया है। असमिया भाषा का उद्‌भव मागधी प्राकृत के प्राच्य अपभ्रंश से हुआ है। असमिया भाषा का प्रयोग भारत के उत्तर-पूर्वांचल में है। राजनैतिक कारणों से असम अन्य छोटे-छोटे प्रदेशों में यथा, मेघालय, मिजोरम, अरुणाचल, नागालैंड में विभाजित होने के पूर्व इस समग्र अंचल की राज्यभाषा असमिया ही थी। अब यह केवल असम की राज्यभाषा के रूप में ही स्वीकृत है।

अन्य भारतीय भाषा की तरह असमिया भाषा का भी समृद्ध इतिहास है। 950 ई० से ही असमिया साहित्य का प्रादुर्भाव माना जाता है। असम यद्यपि भारतवर्ष के उत्तर-पूर्वांचल में स्थित है, पहाड़-जंगलों से भरा हुआ यह प्रदेश महानदी ब्रहम पुत्र से सिंचित-पल्लवित रहा है, फिर भी यह कहा जाएगा कि भारतीय मूल चेतना से यह प्रदेश हमेशा जुड़ा रहा है। आदिकालीन चर्चापदीय साहित्य को ले या मध्यकालीन भक्ति-साहित्य को ही लें, निरंतर भारतीय मूल-चेतना के साथ इस प्रदेश का चिंतन, आंदोलन, साहित्य, संस्कृति किसी न किसी रूप में जुड़ा हुआ ही मिलता है। राष्ट्रीय आंदोलन के प्रभाव से ही यह प्रदेश अछूता नहीं है। 1857 ई का गदर हो, नवजागरण की लहर हो, राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम हो– असम अछूता न रह सका, इसका साहित्य आज भी इनका संजीदगा प्रमाण है।

इस इकाई में प्रधानता: आधुनिक असमिया साहित्य की पृष्ठभूमि, प्रेस की स्थापना तथा ईसाई मिशनरी द्वारा "अरुणोदय" का प्रकाशन तथा असमिया भाषा को प्रतिष्ठित करने के लिए किये गये प्रशंसनीय सेवा, अरुणोदयकालीन प्रमुख लेखकों का सामान्य परिचय देने का प्रयत्न किया गया है। साथ ही असमिया साहित्य में नवजागरणकालीन चेतना को दिखाने का प्रयास किया गया है और तद्‌युगीन लेखकों का परिचय प्रस्तुत किया गया है। अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से तद्‌युगीन भारतीय लेखकों में जो स्वच्छंदतावाद का प्रभाव पड़ा था उसके फलस्वरूप रोमांटिक (छायावादी) साहित्य पल्लवित हुआ। साहित्य की इस धारा में विशेषत: अपनी भाषा को समृद्ध करने की दिशा में चहुंमुखी प्रयास, राष्ट्रीय चेतना को उज्जीवित करना, मानवतावाद विचारधारा को नया आयाम प्रदान करना इत्यादि प्रवृत्तियां दिखायी पड़ती हैं। अन्य भारतीय भाषाओं की तरह असमिया साहित्य में भी इसका प्रभाव परिलक्षित होता है। अपने राष्ट्र का अन्य एक सुरभित पुष्प असमिया साहित्य में आधुनिकता के साथ राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण का सामान्य लेखा-जोखा प्रस्तुत करना ही इस इकाई का उद्‌देश्य है। अत: इस इकाई के अध्ययन से आधुनिक असमिया साहित्य की पृष्ठभूमि और विकास की धारा से अवगत होने के साथ दो असमिया छायावादी कविताओं का स्वाद भी प्राप्त होगा।

8.2 आधुनिक असमिया साहित्य : युगीन पृष्ठभूमि

आधुनिक असमिया साहित्य का श्रीगणेश एक ऐसे संधि काल में हुआ है जब असमिया भाषा को ही समाप्त करने की साजिश रची गयी थी। इस समय का राजनैतिक

सन् 1826 ई०। असम में छह सौ वर्षों तक राज शासन चलाने वाला आहोम राज्य क. सूर्यास्त का समय था। आत्मकलह से ग्रसित आहोम शासन की कमजोरी का फायदा उठाकर बर्मी सेना ने केवल असम पर ही हमला नहीं किया था, बल्कि जन-जीवन को भी तहस-नहस करने में उतारू हो गया था। असम को इस आपदाओं से मुक्त करने के लिए आहोम शासन की ओर से ईस्ट इंडिया कंपनी को बुलावा मिला। बर्मी सेना के साथ अंग्रेजों का 25 फरवरी, 1826 ई० को "यादांबु समझौता" हुआ। कालांतर में असम ब्रिटिश शासन के अंतर्गत शामिल हुआ।

भारत वर्ष की आधुनिक भाषाओं में अंग्रेजी शासन के प्रारंभ के साथ-साथ अपने विकास में नया मोड़ आया था, परंतु कम्पनी शासन के साथ असम में शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए बंगाल से आये हुए नौकरशाही की साजिश से असम में राजकीय भाषा के रूप में बांग्ला भाषा का प्रचलन होने लगा था। असम के विद्यालय, कचहरी में 1836 ई. में बांग्ला भाषा को लागू किया गया था। यद्यपि 1837 ई. में स्थानीय भाषा को कचहरी, विद्यालयों में प्रचलन करने का कानून बना था, फिर भी असम में इसकी स्थानीय भाषा असमिया को निष्कासित करके बांग्ला भाषा को इसलिए चलाया गया था कि दोनों की लिपियों में समानता थी। इसके लिए आनंद राम ढेकियाल फुकन जैसे विद्वानों को असमिया भाषा की पुनः प्रतिष्ठा के लिए संघर्ष करना पड़ा था। इसी बीच असम में इसाई धर्म के प्रचार के लिए आये अमेरिकन इसाई मिशनरियों ने भी असमिया भाषा की पुनः प्रतिष्ठा के लिए काफी प्रयास किया था। फलतः 1837 ई. में असम में असमिया भाषा की पुनः प्रतिष्ठा हुई। इसके साथ ही आधुनिक असमिया साहित्य के विकास की एक पृष्ठभूमि निर्मित होने लगी।

8.3 आधुनिक चेतना के संवाहक : ईसाई मिशनरी

सन् 1836 ई. में ईसाई धर्म के प्रचार के लिए अमेरिकन ईसाई मिशनरी असम पधारे। रेवटेंड नाथान ब्राउन तथा रि. कट्टार सपरिवार असम आकर ईसाई धर्म के प्रचार में जुट गये। इसके आने के कुछ महीनों के पश्चात् डॉक्टर माइलस ब्रन्सन और जेकब थमास असम पधारे परंतु यमास एक नौका-दुर्घटना में ग्रसित हो गए। असम के पहाड़ी इलाकों में ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार करते समय इन मिशनरियों ने अनुभव किया कि स्थानीय भाषा में धर्म प्रचार का कार्य न करके बांग्ला या अंग्रेजी में करने से सफलता हासिल नहीं हो सकती है। इसलिए उन्होंने भी असम में ईसाई धर्म प्रचार के लिए असमिया भाषा का प्रयोग किया। उल्लेखनीय है कि नगांव के आत्माराम शर्मा द्वारा असमिया में अनुदित एवं 1813 ई. में श्रीरामपुर प्रेस में मुद्रित "बाइबल" ही प्रथम छपी असमिया पुस्तक है। इसका श्रेय जाता है श्रीरामपुर (वर्तमान बांग्लादेश में) के मिशनरी रेवरेंड विलियम केरि जिनकी प्रेरणा से "बाइबल" का असमिया अनुवाद एवं प्रकाशन संभव हुआ था।

8.4 प्रेस की स्थापना : अरुणोदय पत्रिका

सन् 1840 ई.। आधुनिक असमिया साहित्य की नींव शायद इसी समय पड़ी थी। क्योंकि असम के शिवसागर नगर में सर्वप्रथम प्रेस की स्थापना हुई थी। अमेरिकन ईसाई मिशनरियों ने भले ही धर्म पुस्तक प्रकाशित करवाने के उद्देश्य से प्रेस की स्थापना की हो, पर 1846 ई. से इसी प्रेस से ही प्रकाशित हुई थी– "अरुणोदय" पत्रिका। यह असम में प्रकाशित होने वाली प्रथम मासिक असमिया पत्रिका थी। केवल धार्मिक विचार प्रचार करना ही इस पत्रिका का उद्देश्य नहीं था। बल्कि असमिया भाषा को पुनः प्रतिष्ठित कराने का बीड़ा भी उठाया था। शिवसागर में प्रचलित असमिया भाषा को मानक रूप मानकर आधुनिक असमिया साहित्य के निर्माण की प्रस्तुति भी इसी के माध्यम से चली थी। इस पत्रिका को क्रमशः रेवटेंड ओ. टि. कट्टार, नाथान

ब्राउन, ए. एइस डेनफोर्थ, एस.एस. हुइटि, माइलस ब्रन्सन, एस. बार्ड, रे. क्लार्क आदि ने बारी-बारी से संपादित करके जैसे-तैसे 1880 ई. तक चलाया।

8.4.1 "अरुणोदय" का योगदान

"अरुणोदय" पत्रिका का प्रकाशन असमिया भाषा-साहित्य के लिए सचमुच अरुणोदय था। इस पत्रिका ने सर्वप्रथम असम के पाठक समाज को विश्व-संवाद प्रवाह से जोड़ा, ज्ञान-विज्ञान की नयी दुनिया से परिचय करवाया, सामयिक घटना-प्रवाह, भूगोल, इतिहास, वैज्ञानिक आविष्कारों की सूचना आदि से ज्ञान का दायरा बढ़ाया। "अरुणोदय" पत्रिका में नियमित रूप में प्रकाशित विभिन्न देशों के प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाएं, प्रकृति अध्ययन, नैतिक-शिक्षा, हिन्दुस्तान का विवरण, प्राचीन असम का इतिहास, कहानी, जीवनी इत्यादि से भी असम के पाठक समाज आधुनिक चेतना से प्रेरित-प्रभावित हुआ। इस पत्रिका के कारण एक नया साहित्यिक वर्ग सामने आया। नवजागरण की विचारधारा विभिन्न साहित्यिक लेखों में प्रकट होने लगी थी। उदाहरण के रूप में गुणाभिराम बरुवा का "रामनवमी" नाटक का उल्लेख किया जा सकता है। "अरुणोदय" की प्रेरणा से अन्य पत्रिकाएं भी यथा– "आसाम विलासिनी" (1871-83 ई.) "आसा मिहिर" (1872-73), "आसाम दर्पण" (1874-75) इत्यादि प्रकाशित हुई जिनसे असमिया भाषा-साहित्य की समृद्धि और विस्तार में काफी उपलब्धि बढ़ने लगी थी।

संक्षेपत : "अरुणोदय" पत्रिका के प्रयोगदान को इस प्रकार स्वीकारा जा सकता है–

1) इस पत्रिका ने समाज को देश-विदेश के समाचारों से परिचय कराकर ज्ञान का एक व्यापक धरातल प्रदान किया।

2) असम में जबर्दस्ती लागू की गयी बांग्ला भाषा के प्रचलन का विरोध करके असमिया भाषा की पुनः प्रतिष्ठा में जनमत प्रस्तुत किया।

3) पश्चिमी विचारधारा का बीज बो कर आधुनिकता की प्रतिष्ठा का प्रयास किया।

4) इस पत्रिका ने आनंदराम ढेकियाल फुकन, निधि लेवि फारवेल, गुणाभिराम बरुवा, हेमचन्द्र बरुवा आदि स्थानीय लेखकों को असमिया साहित्य की सेवा में दीक्षित करवाया।

5) असमिया पत्रिका एवं संवाद-पत्र की प्रतिष्ठा में पथ-प्रदर्शक का काम किया।

8.4.2 अरुणोदयकालीन प्रमुख लेखक

अरुणोदय कालीन प्रमुख लेखकों में ईसाई लेखकों के अतिरिक्त असमिया लेखक भी शामिल है। ईसाई लेखकों में डॉक्टर नाथान ब्राउन और एलिया ब्राउन, डॉक्टर माइलस ब्रन्सन, ए.के. गार्नि तथा निधि लेवि फारवेल प्रमुख हैं। असमिया लेखकों में आनंदराम ढेकियाल फुकन का नाम सर्वप्रधान है। इनके अतिरिक्त बलराम फुकन, यज्ञराम देओधाइ बरुवा पूर्णानन्द डेका बरुवा, किनाराय सत्रिया, गुणाभिराम बरुवा, हेमचन्द्र बरुवा आदि के विभिन्न लेख "अरुणोदय" में प्रकाशित होते थे।

क) डाक्टर नाथान ब्राउन और एलिजा ब्राउन : संयुक्त अमेरिका में जन्में नाथान ब्राउन ने (1807-86 ई.) मिशनरी दायित्व संभालते हुए 1836 ई. में पत्नी एलिजा ब्राउन के साथ असम के सदिया नगर में आए। वे अपने साथ एक छपाई मशीन भी ले आए थे। असम में पहुंच कर असमिया भाषा सीखकर छोटी-छोटी पुस्तकें छापकर ईसाई-धर्म का प्रचार-प्रसार किया था। इन्होंने रेवटेंड कट्टार के साथ मिल कर शिवसागर में "अरुणोदय" पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया था।

नाथान ब्राउन ने "न्य् टेस्टामेण्ट" का अनुवाद् "आमार् त्राणकर्ता यिचुरवृण्टर नतुन नियम" (1848 ई.) तथा मेयिउ, लिउक, मार्क और योहान के आधार पर "रवृण्टेर विवरण आरु शुभ यात्रा" (1854 ई.) नामक पुस्तक की रचना की थी। असमिया भाषा को पुन; प्रतिष्ठित करने के लिए उन्होंने असामया भाषा का व्याकरण (1848 ई.)

नाम से लिखा था। वे प्राचीन असमिया पोथियों का संग्रह करके प्रकाशित भी करवाया था, यथा– काशीनाथ तामुली फुकन का "असम बुरंजी", "चुतीया बुरंजी", बकुल कायस्थ की गणित इत्यादि। इनकी पत्नी एलिजा ब्राउन ने बच्चों के लिए लोक-कथा एवं हिसाब की पुस्तकें क्रमशः "साधुकयार पुथि", "गणना पुथि" की रचनाएं की थीं

ख) डॉक्टर माइलस ब्रन्सन : संयुक्त अमेरिका में जन्में माइलस ब्रन्सन (1812-83 ई. अपने दोस्त जेकब थमास के साथ ईसाई-धर्म के प्रचार हेतु 1836 ई. में असम पहुंचे। एक नौका दुर्घटना में अपना दोस्त जेकब थमास को गंवाने के पश्चात् भी इन्हें पत्नी समेत अन्य रिश्तेदारों का वियोग सहना पड़ा था। फिर भी दृढ़ता के साथ उन्होंने विभिन्न पहाड़-अंचलों में ईसाई धर्म का प्रचार किया था। नगांव नगर में उन्होंने बेसहारा बच्चों के लिए एक पाठशाला खोलकर असमिया भाषा की पुनः प्रतिष्ठा में पुरजोर प्रयत्न किया था। "अरुणोदय" के लिए विविध लेख, अनुवाद आदि प्रस्तुत करने के उपरांत असमिया भाषा को उनकी युगांतकारी देन है– "असमिया शब्दकोश" (1867 ई.) प्रायः चौदह देशज शब्दों के आधार पर प्रस्तुत इस कोश ने असमिया भाषा की नींव को सुदृढ़ किया था।

ग) ए. के. गार्नि : अमेरिका से 1874 ई: में असम आकर ए. के. गार्नि (1854-1910 ई.) ने असम के शिवसागर नगर में ईसाई धर्मयाजक का पद भार संभाला था। उन्होंने कई वर्षों तक "अरुणोदय" का संपादन किया था। असमिया में उनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं– यथा, "प्राचीन नियम" "रुथ आरु योचेफर काहिनी", "कानि बेहे रूवार कथा", "एलोकेशी वेश्यार कथा", "कामिनी कांतर चरित्र" इत्यादि। श्रीमती गार्नि ने भी बांग्ला से "फुलमणि आरु करुणार काहिनी" का अनुवाद किया था।

घ) निधि लेवि फारवेल : निधि लेवि फारवेल (1823-1873 ई.) मूलतः तेजपुर निवासी असमिया थे। माइलस-ब्रन्सन ने इन्हें ईसाई धर्म की दीक्षा दी थी। मिशनरियों के साथ निधि लेवि ने असमिया भाषा के पुर्नरुद्धार में अपार सहयोग दिया था। "अरुणोदय" के नियमित लेखक निधि लेवि ने "बिनइ बचन", "सरगर विवरण", "तीर्थर विवरण", "नरकर विवरण", "हिन्दुस्तानर बुरंजी" इत्यादि लेखों के अतिरिक्त ईसाई धर्म से संबंधित पुस्तक "पदार्थसार" की रचना की थी। उन्होंने न.ल.फ. नाम से भी अनेक निबंध, कविताओं से "अरुणोदय" को सहयोग दिया था।

ङ) आनन्दराम ढेकियाल फुकन : असमिया भाषा-साहित्य की प्रतिष्ठा में लगनशील मिशनरियों के साथ देने वाले आनन्दराम ढेकियाल फुकन (1829-59 ई.) अति प्रतिभाशाली लेखक थे। "असम बुरंजी" "कामारका यात्रा पद्धति" के लेखक हलिराम ढेकियाल फुकन के सुपुत्र आनन्दराम को अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त हुई थी। वे कतिपय उच्च सरकारी पदवियों में नौकरी करके अल्पायु में ही चल बसे।

आनन्दराम के "इंगलण्डर विवरण (इंग्लैंड का विवरण) 1847 ई. के "अरुणोदय" में प्रकाशित हुआ था। "असमिया लटार मित्र" (असमिया बालकों का मित्र) नाम से प्रायः चार सौ पृष्ठों का एक ग्रंथ 1849 ई. में दो खंडों में प्रकाशित हुए थे। 1853 ई. में असम के प्रशासन संबंधी जानकारी लेने के लिए आये हुए मफात् मिलस के सामने चौबीस वर्ष के नौजवान आनन्दराम ने असम की राजनैतिक, प्रशासनिक व्यवस्था के अतिरिक्त असम की भाषा, शिक्षा-समस्या का विश्लेषण, असम की आर्थिक दुर्गति एवं उसके निराकरण का उपाय, असम का राजस्व और इसकी उन्नति के लिए कार्रवाई आदि से संबंधित रिपोर्ट प्रस्तत किया था। असमिया भाषा की विशेषताओं के आधार पर इन्होंने।"(1855 ई.) एक पुस्तिका का प्रकाशन करके बांग्ला की जगह पर असमिया भाषा की पुनः प्रतिष्ठा के लिए गंभीरता से वकालत की थी।

8.4.3 मिशनरियों की देन

असमिया भाषा की पुनः प्रतिष्ठा और साहित्य की श्रीवृद्धि के लिए मिशनरियों की देन उल्लेखनीय है। आधुनिक असमिया साहित्य की विकास-यात्रा के लिए मिशनरियों ने पीठिका तैयार की थी। संक्षेपतः असमिया भाषा साहित्य के लिए मिशनरियों की देन इस प्रकार निरूपित की जा सकती है:

1) मिशनरियों ने अंग्रेज सरकार के साथ लड़कर असम में असमिया भाषा की पुनः प्रतिष्ठा में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

2) कोश, व्याकरण, पाठ्य-पुस्तकों के प्रणयन करके आधुनिक असमिया भाषा की नींव सुदृढ़ की।

3) अनेक अप्रचलित स्थानीय असमिया शब्दों को प्रयोग करके भाषा की समृद्धि की।

4) असम में प्रथम पत्रिका का प्रकाशन करके असम के लोगों को देश-विदेश के ज्ञान प्राप्त कराने में नया आयाम प्रदान किया। इसके फलस्वरूप अंधविश्वास, कुसंस्कार की जड़ें हिलने लगीं।

5) प्राचीन ज्ञान-विज्ञान, इतिहास की पोथियों को प्रकाशित कराने का कदम उठाया। प्राचीन ग्रंथों के संरक्षण के लिए जागरूकता उत्पन्न की।

6) पश्चिमी विचारधारा का प्रवेश करवाया।

7) मिशनरियों ने प्रोत्साहित करके एक नया साहित्यिक वर्ग तैयार किया।

8) शिक्षा के प्रचार में हाथ बंटाया और स्त्री-शिक्षा का प्रचलन कराया।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर "हां" या "नहीं" पर (✓) लगाकर दीजिए:

   क) 950 ई. से असमिया साहित्य का प्रादुर्भाव माना जाता है। (हां/नहीं)

   ख) यांदाबु समझौता आहोम और बर्मी सेना में हुआ था। (हां/नहीं)

   ग) 1840 ई. में असमिया भाषा के स्थान पर बांग्ला भाषा लागू हुई। (हां/नहीं)

   घ) "अरुणोदय" पत्रिका ने आधुनिक असमिया भाषा की पीठिका तैयार की। (हां/नहीं)

   ङ) आनन्दराम ढेकियाल फुकन ईसाई मिशनरी थे। (हां/नहीं)

2) सही उत्तर पर (✓) लगाइए :

   क) अंग्रेजों ने निष्काशित असमिया भाषा को पुनः प्रतिष्ठित किया। (1837 ई./1873 ई.)

   ख) "अरुणोदय" का प्रकाशन कब शुरू हुआ। (1840 ई./1846 ई.)

   ग) किसने असमिया भाषा की व्याकरण रचना की? (नाथान ब्राउन/माइलस ब्रन्सन)

   घ) किसने "असमिया लटार मित्र" की रचना की। (निधि लेवि फारवेल/आनंदराम ढेकियाल फुकन)

   ङ) माइलस ब्रन्सन की क्या युगांतकारी देन है? (पाठशाला खोलना/असमिया शब्दकोश)

3) निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर एक-एक वाक्य में दीजिए:

   क) आहोम शासन में आत्मकलह का परिणाम क्या निकला?

   ख) अमेरिकन ईसाई मिशनरियों का असम आगमन क्यों वरदान साबित हुआ?

   ग) प्रथम छपी असमिया पुस्तक कौन-सी है?

   घ) ईसाई मिशनरियों ने मानस असमिया भाषा का रूप किस आधार पर निर्णय किया?

   ङ) आनन्दराम ढेकियाल फुकन ने किस पुस्तक में असमिया भाषा की विशेषताओं को रेखांकित किया था?

अभ्यास :

1) "आधुनिक असमिया भाषा-साहित्य के संदर्भ में "अरुणोदय" पत्रिका के योगदान को संक्षेप में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

2) अरुणोदयकालीन लेखकों का सामान्य परिचय प्रस्तुत कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

8.5 नवजागरण और असमिया साहित्य

भारतवर्ष में अंग्रेजों का शासन स्थिर होने के बाद अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार-प्रसार विभिन्न शैक्षिक संस्थाओं के माध्यम से होने लगा था। अंग्रेजी साहित्य के माध्यम से पश्चिम की विचारधारा भारतीय बौद्धिक मानस में पड़ने लगी। इसके फलस्वरूप जीवन-मूल्यों में परिवर्तन हुआ। भारतीय परम्परागत रीति-नीति, अंधविश्वास, कुसंस्कार, मान्यताओं की जड़ें मिलने लगीं। आधुनिक संचार माध्यम के कारण भी सामाजिक जीवन में अनेक परिवर्तन आने लगे। पश्चिमी शिक्षा से शिक्षित लोगों की रुढ़िवादी ध्यान-धारणा में परिवर्तन की लहरें हिलोरने लगीं जिसके परिणाम स्वरूप नवजागरण का बिगुल बजने लगा था। नये यथार्थ और पुराने संस्कारों के बीच तालमेल की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। पूंजीवादी जिस व्यवस्था के कारण व्यक्ति का शोषण हो रहा था, उनकी भावना दबायी जा रही थी, वहां व्यक्ति-स्वातत्र्य का नया स्वर गूंज उठा। बंगाल के राजा राममोहन राय द्वारा 1828 ई. में स्थापित ब्राह्मण समाज के आदर्शों ने भारतीय समाज को एक नवजागृति की सूचना दी। जाति प्रथा पर कड़ा आघात, सती-प्रथा का विरोध, बाल-विवाह का विरोध, विधवा-विवाह का प्रचलन, बहु-पत्नीत्व का विलोप, स्त्री-पुरुष का समान अधिकार आदि सामाजिक मुद्दों को व्यापक आयाम प्रदान करके राममोहन राय ने पश्चिमी शिक्षा, विशेषतः भारतीयों के लिए विज्ञान विषय के अध्ययनों पर अधिक महत्व दिया था। ब्राहम समाज के साथ प्रार्थना समाज, आर्य समाज इत्यादि संस्थाओं ने भी सुधारवादी दृष्टिकोण को अपनाते हुए नवजागरण का सूत्रपात किया था।

अंग्रेजों का शासन असम में जमने के बाद गुवाहाटी (1835 ई.) और शिवसागर (1841 ई.) में स्कूल खोलकर अंग्रेजी शिक्षा का प्रारंभ किया गया। धीरे-धीरे असम में स्कूलों का विस्तार तो होने लगा था, पर उच्च शिक्षा की कोई व्यवस्था असम में न थी। स्कूली शिक्षा के बाद यहां के विद्यार्थी उच्च शिक्षा हेतु बंगाल, विशेषतः कलकत्ता ही जाते थे। इसलिए वे वहां के वैचारिक प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकते थे। सच कहा जाए, असमिया साहित्य में जो नवजागरण और आधुनिक विचारधारा आयी है, वे कलकत्ता प्रवासी असमिया विद्यार्थियों के कारण ही संभव हो सका है। इन विद्यार्थियों के कारण ही आधुनिक असमिया साहित्य की गतिधारा निरुपित हुई है।

8.5.1 नवजागरणकालीन साहित्य की पृष्ठभूमि

"अरुणोदय" पत्रिका और ईसाई मिशनरियों के प्रयास से असम में आधुनिक साहित्य की नींव तो तैयार हुई थी, पर आवश्यकता थी आबाद करने की। इसे आबाद करने का श्रेय जाता है हेमचन्द्र बरुवा, गुणाभिराम बरुवा प्रभृति असमिया साहित्यकारों की।

"अरुणोदय" ने तो ज्ञान-विज्ञान के चिंतन का दायरा फैला कर असमिया भाषा-साहित्य का विस्तार उपकार साधन किया था, परंतु असमिया समाज के हृदया-स्पन्दन असमिया समाज की समस्याएं या उनकी जीवन-यात्रा की अभिव्यक्तियाँ हमें प्राप्त नहीं होती थथी। अंग्रेज शासन के फलस्वरूप असम के जनजीवन में अनेक समस्याएं दिखने लगीं। पश्चिमी रीति-नीति के साथ पारम्परीण रीति-रिवाजों का संघर्ष, परम्परावादियों को पश्चिमी विचारधाराओं से परहेज, प्रशासनिक विसंगतियां, चाय उद्योग का प्रारंभ और असम के जनसमाज में इसका प्रभाव, महाजनी सभ्यता और जमींदारी व्यवस्थाओं के प्रभाव एवं दुष्परिणाम, अंग्रेजों द्वारा चलाये गए अफीम का प्रचलन, असम के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में रुढ़िवादिता, कुसंस्कार से उत्पन्न समस्याओं के चित्रण "अरुणोदय" के साहित्य में अभाव थे। इसके लिए प्रयोजन था एक दूसरा मंच जहां इनके बारे में समुचित समीक्षा हो और निदान का मार्ग ढूंढने की व्यवस्था हो। साथ ही सृजनशील साहित्य का प्रयोजन भी बना हुआ था।

अंग्रेजी शिक्षा से शिक्षित असम के मध्यवर्ग से असम की तत्कालीन समस्याएं अनदेखी होकर नहीं रह सकी। हेमचंद्र गुणाभिराम के अभ्युदय काल में स्वदेश-प्रीति और जातीयताबोध की भावना प्रबल दिखती है। यों, आनन्दराम ढेकियाल फुकन की रचनाओं में भी इसका अनुगुंज सुनाई पड़ता है। वे चाहते थे कि असम का चहुंमुखी विकास हो। अंग्रेजी शिक्षा से शिक्षित मध्यम वर्ग ने अंग्रेज शासन के साथ मिलकर अज्ञान-अंधकार से जकड़े हुए असम के निवासियों को शिक्षित करना प्राथमिक कर्तव्य समझा था, क्योंकि इसके अभाव में आजादी का कोई महत्व नही रह जाता है। असम की समस्याओं को ध्यान में रखकर सुधारवादी साहित्य रचना में प्रवृत्त होने वालों में हेमचन्द्र बरुवा और गुणाभिराम बरुवा प्रथम पंक्ति में हैं। भारतीय नवजागरण के प्रभाव से भी तत्कालीन साहित्यकार प्रभावित थे। समाज की विसंगतियों को दूर करके एक स्वस्थ वातावरण निर्माण करने का प्रयोजन तत्कालीन लेखकों ने अनुभव किया था। इसके लिए हास्य-व्यंग्य जैसे साहित्य के सशक्त माध्यम को भी स्वीकारा गया था।

8.5.2 नवजागरणकालीन साहित्य के कुछ विचार बिन्दु

आधुनिक असमिया साहित्य के प्रकृत निर्माता के रूप में हेमचन्द्र बरुवा और गुणाभिराम बरुवा के नाम स्वीकार किये जाते हैं। यह युग हेमचन्द्र-गुणाभिराम का युग (1870-1890 ई.) कहा जाता है। दोनों लेखक "अरुणोदय" पत्रिका की उपज थे, परंतु, 1867 ई. के बाद "अरुणोदय" का प्रकाशन अनियमित होने के कारण दोनों ने स्वतंत्र लेखन किया और आधुनिक असमिया साहित्य की नींव सुदृढ़ की। आधुनिक असमिया भाषा को एक स्थायी रूप देने में इनकी देन उल्लेखनीय है।

हेमचन्द्र बरुवा (1835-96 ई.) का जन्म शिवसागर के समीपस्थ रजाबाहर गांव में हुआ था। बारह वर्ष की आयु में पिता मुक्ताराम बरुवा को खो दर चाचा लक्ष्मीराम के संरक्षण में अध्ययन जीवन प्रारंभ किया। प्रारंभिक अवस्था में संस्कृत का अध्ययन किया और कुछ दिनों के बाद मासिक चार रुपये के वेतन पर नकलची का काम शुरू किया। इसी समय इनका संपर्क शिवसागर के जिलाधिपति केप्टैन ब्रोडी से होता है और उनकी प्रेरणा से चोरी-छिपे अंग्रेजी का अध्ययन करने लगे। अंग्रेजी में व्युत्पत्ति प्राप्त करने के कारण सरकारी नौकरी में वे तरक्की करते गये और अंत तक उनसे अतिरिक्त कमिश्नरी जैसे पद सुशोभित करने का आग्रह किया गया था। रुढ़िवादी ब्राह्मण परिवार के होते हुए भी हेमचन्द्र बरुवा ने एकंक प्रयास से "हेमकोष" नामक

असमिया शब्द-कोश की रचना करके अपना कीर्तिमान स्थापित किया।

गुणाभिराम बरुवा (1837-94 ई.) का जन्म गुवाहाटी में हुआ था। बचपन में पितृ वियोग होने पर आनन्दराम ढेकियाल फुकन के संरक्षण में अध्ययन किया। इसके बाद वे वकालत पढ़ते हैं। 1859 ई.) में सरकारी नौकरी का जीवन प्रारंभ करके अतिरिक्त कमिश्नर होकर 1890 ई. में अवकाश लेते हैं। इसके बाद स्थायी रूप से कलकत्ता में रहने लगे थे। गुणाभिराम अतिरिक्त कमिश्नर होकर नगाँव में निवास करते समय हेमचन्द्र गोस्वामी, रत्नेश्वर महंत, पद्महास गोस्वामी प्रभृति तरुण लेखकों को प्रोत्साहित किया करते थे। ऐतिहासिक शोध, जीवनी, भ्रमण-वृतांत, नाटक का लेखन, संपादन आदि विषयों में मार्ग-प्रदर्शक थे।

हेमचन्द्र और गुणाभिराम "अरुणोदय" पत्रिका के लेखक के रूप में उभरे थे। मिशनरियों की समर्पित सेवा ने दोनों को प्रेरणा प्रदान की थी। अपने भाषा-साहित्य के उत्कर्ष के लिए आत्मनियोग हेतु इसी से ही प्रोत्साहन मिला था। हेमचन्द्र ने "सोणारचाँद" नाम से भी "अरुणोदय" में निबंध लिखा था। मिशनरियों द्वारा प्रवर्तित असमिया वर्तनी को संशोधन करके संस्कृत मूलक वर्तनी के प्रयोग करने के लिए उन्होंने कई निबंध लिखे थे। जातीय चेतना से प्रेरित होकर हेमचन्द्र बरुवा ने "आदि पाठ", "असमिया लटार व्याकरण", "संक्षिप्त हेम-कोष" इत्यादि की रचना की थी। गुणाभिराम बरुवा ने "आनंदराम ढेकियाल फुकनर जीवन चरित", "असम बुरंजी", "कठिन शब्दर रहस्य" इत्यादि ग्रंथों के अतिरिक्त तद्युगीन विभिन्न पत्रिकाओं में निबंध, भ्रमण-वृतांत इत्यादि लिख कर असमिया साहित्य को समृद्ध किया था।

हेमचन्द्र और गुणाभिराम की अन्यतम महत्वपूर्ण उपलब्धि है कि नवजागरण के आलोक में साहित्य की रचना करना। जातीय चेतना और सुधारवादी दृष्टिकोण से इन्होंने कतिपय साहित्य की रचनाएं की थीं जिनमें हेमचन्द्र के "कानीया कीर्तन" नाटक, "बाहिरे रङ-चङ भितर कोवाभातुरी", गुणाभिराम के "राम-नवमी" नाटक उल्लेखनीय हैं।

असमिया आधुनिक साहित्य में "राम-नवमी" (1857 ई.) प्रथम नाटक है जिसका प्रकाशन "अरुणोदय" पत्रिका में क्रमशः हुआ था। उस समय बंगाल में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने "विधवा-विवाह" का आंदोलन प्रारंभ किया था। इससे प्रभावित होकर गुणाभिराम ने "राम-नवमी" नाटक की रचना की थी। यह प्रथम आधुनिक सामाजिक नाटक हैं। बाल-विधवा नवमी और उदारपंथी रामचन्द्र के समाज विरोधी प्रणय का शोकावह अंत इस नाटक में होता है। इस सुधारवादी दृष्टिकोण के हिमायती गुणाभिराम ने, जो महज संयोग ही कहा जाएगा, पहली पत्नी की मृत्यु के बाद ब्राह्मण-विधवा से दूसरी बार विवाह करके आदर्श स्थापित किया था।

असमिया के दूसरे नाटक के स्थान में हेमचन्द्र बरुवा का "कानीया-कीर्तन" आता है। यह एक व्यंग्य नाटक है। इस नाटक में अंग्रेज के आगमन के साथ-साथ असम में व्याप्त अफीम और अफीमचियों के बारे में तीव्र व्यंग्य है। अफीम के कारण कैसे जीवन, परिवार के साथ समाज का नुकसान होता है उसे कीर्तिकांत नामक एक पात्र के माध्यम से दिखाया गया है। "बाहिरे रङ-चङ भितरे कोवाभातुरी (दीखने पर तो सजधज पर भीतर से खोखला) नामक पुस्तक में असमिया समाज की बाहम नैष्ठिकता और रीति-नीति के अंतराल में रहने वाले व्यभिचार, पाखण्डी, भ्रष्टाचार के विकट रूप को झकझोड़ा है। धर्म के नाम पर गुंसाई-ब्राह्मण महंतों का व्यभिचार, भूत-प्रेत आदि में विश्वास, चिकित्सा के नाम पर कुसंस्कार, न्याय के नाम पर भ्रष्टाचार, अनुभवहीन अंग्रेज अफसरों का हास्यास्पद व्यवहार, आभिजात्य और शिक्षा के नाम पर अनीति-अशिक्षा इत्यादि पर करारी चोट की है। इसमें लेखक की सुधारमूलक प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है।

हेमचन्द्र-गुणाभिराम के कारण जिस तरह असमिया गद्य ने एक स्थिर रूप प्राप्त किया वैसे ही रमाकांत चौधरी (1846-89 ई.), भोलानाथ दास (1858-1929 ई.), बलदेव महंत (1850-95 ई.), कमलाकांत भट्टाचार्य (1854-1936 ई.) के कारण असमिया काव्य-साहित्य को एक नया आयाम प्राप्त हुआ। सच कहा जाए तो असमिया काव्य का नव अभ्युदय हुआ। बंगाल के माइकल मधुसूदन दत्त के काव्य के नमूने के आधार पर रमाकांत चौधरी ने अमित्राक्षर छन्द में "अभिमन्यु वध" काव्य की रचना की थी। इसके अतिरिक्त "सीताहरण" और "रावण-वध" नाटकों की भी रचना की। उसी तरह भोलानाथ दास ने भी माइकल मधुसूदन दत्त के काव्य के नमूने के आधार पर "सीताहरण काव्य" की रचना की थी। सप्तम सर्ग के इस काव्य का ऐतिहासिक महत्व है। "कवितामाला", "चिंता तरंगिनी" आदि उनके अन्य काव्य-ग्रंथ हैं।

उन्नीसवीं सदी के अंतिम चरण में राष्ट्रीय-प्रेम परक कविताएं लिखी गयी थीं। स्वदेशानुराग और जातीय-चेतना का यह उन्मोचन काल रहा है। भोलानाथ दास, कमलाकांत भट्टाचार्य, लम्बोदर बरा आदि की विविध रचनाओं में राष्ट्रीय-चेतना की चिनगारियां देखने को मिलती हैं। यह नवजागरण काल की एक अन्यतम विशेषता है। कमलाकांत के "चिंतानल" और "चिंता तरंग" स्वदेशानुराग के उज्ज्वल निदर्शन हैं। इसके अंतराल में पराधीनता का क्षोभ प्रथा स्वतंत्रता का संवाद निहित है।

आजादी का स्वप्न भोलानाथ दास ने देखा था, पराधीन भारत की दुर्दशा से कवि पीड़ित दिखाई पड़ता है–

असभ्य जातिओ कत जगते स्वाधीन।
सुसभ्य भारत-लाज-परर अधीन।।
सबेओ जाग्रत माने सबेओ स्वाधीन।
केवल, तो सब, लाज, परर अधीन।।

(संसार के अनेक असभ्य जात भी आज स्वतंत्र हैं, पर सुसभ्य भारत हाय आज भी पराधीन है। सभी आज जाग्रत हैं, स्वतंत्र हैं, पर हाय भारतवासी, जो आज भी पराधीन है।).

भोलानाथ दास की तरह कमलाकांत भट्टाचार्य ने भी पराधीन भारतवासी को अतीत-गौरव विस्मित होकर ब्रिटिश-शासन को सराहने के कारण धिक्कार दिया है इस तरह–

कुशिक्षित आजि भारत-संतानें
पढ़िबलै एइ बरंजी– आग्वर,
निचिनि आपोन परक शलागे
इ हेन दुर्भाग्य हाय भारतर।

(कुशिक्षित आज भारत की संतान अपना गौरवपूर्ण इतिहास भूल कर दूसरों की प्रशंसा करता है। यह भारत का ही दुर्भाग्य है।)

राष्ट्रीय-चेतना से संबंधित कविताओं में भारत के गौरवपूर्ण इतिहास का स्मरण, पराधीन भारत के लिए विषाद तथा स्वतंत्रता के लिए सुगम्भीर सस्वर हुई हैं।

निष्कर्षत : नवजागरणकालीन असमिया साहित्य के कुछ मुख्य बिंदुओं को इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है:

क) पश्चिमी शिक्षा के कारण अंधविश्वास, कुसंस्कार पर कड़ा प्रहार।

ख) असमिया भाषा को व्याकरण और कोश के सहारे स्थिरता प्रदान करने का प्रयास।

ग) व्यक्ति-स्वातंत्र्य की स्थापना।

ङ) सामाजिक व्याधियों का दूरीकरण तथा विधवा-विवाह आदि के प्रचलन के लिए भूमिका प्रस्तुत करना।

च) काव्यों में नवीन छंद एवं विचारों का समावेश तथा गद्य की एक अन्य विधाओं को समृद्ध करने की दृष्टि से पहल।

छ) स्वदेश-प्रेम तथा राष्ट्रीय-चेतना का जागरण।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित कथनों में जो सही है, उनके सामने सही (✓) का निशान और जो गलत है, उनके सामने गलत (X) का निशान लगाइए:

क) भारत में अंग्रेजों का शासन स्थिर होने के बाद–

i) पश्चिमी विचारधारा का प्रभाव भारतीय बौद्धिक मानस में पड़ने लगा:

ii) अंध-विश्वास, कुसंस्कार की जड़ें सुदृढ़ हो गयी।

iii) आधुनिक संचार-माध्यम सुलभ हुआ।

iv) पूंजीवादी व्यवस्था समाप्त होने लगी।

ख) अंग्रेजी शिक्षा में असम के शिक्षित मध्य वर्ग का ध्यान–

i) अंग्रेजी शासन के उन्मूलन के प्रति आकृष्ट हुआ।

ii) असम के निवासियों को शिक्षित कराने के प्रति आकृष्ट हुआ।

iii) अफीम की लत बढ़ाने के प्रति आकृष्ट हुआ।

iv) सुधारवादी साहित्य की रचना के प्रति आकृष्ट हुआ।

2) एक-एक वाक्य में निम्नांकित प्रश्नों का उत्तर लिखिए :

i) राम मोहन राय ने किस समाज की स्थापना की थी?

.....

.....

.....

.....

.....

ii) "हेम-कोष" की रचना किसने की थी?

.....

.....

.....

.....

.....

iii) "रामनवमी" नाटक सर्वप्रथम कहां प्रकाशित हुआ था?

.....

.....

.....

.....

.....

iv) "कानीया-कीर्तन" कैसा नाटक है?

.....

.....

.....

.....

.....

v) माइकल मधुसूदन दत्त के काव्य के नमूने पर कौन-से असमिया काव्य लिखे थे?

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास

1) नवजागरण के आलोक में असमिया साहित्य का विश्लेषण कीजिए। (लगभग 300 शब्दों में)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) नवजागरणकालीन असमिया साहित्य के मुख्य विचार-बिंदुओं को रेखांकित कीजिए। (लगभग 200 शब्दों में)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

8.6 छायावादी साहित्य : बेजबरुवा युग

हेमचन्द्र बरुवा, गुणाभिराम बरुवा और उनके सहयोगियों ने जो आधुनिक असमिया साहित्य का आधार निर्माण किया था, उस पर भाषा-साहित्य का मंदिर निर्माण हेतु

पश्चिमी शिक्षा से शिक्षित एक नया युवावर्ग सामने आया। यह वर्ग कलकत्ता प्रवासी असमिया विद्यार्थी थे, जो उस समय कालेजों में अध्ययन कर रहे थे। 1872 ई. में कलकत्ता प्रवासी असमिया विद्यार्थियों ने "असमिया साहित्य चरा' की स्थापना करके असमिया भाषा-साहित्य की चर्चा की थी। यह वह समय था कि स्वच्छन्दतावाद के प्रभाव से भारतीय साहित्य में एक नवीन शंखनाद गूंजा। असमिया साहित्य भी इससे मुक्त न रह सका और साहित्यरथी लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा जैसे भारतेंदु हरिश्चन्द्र के नेतृत्व में एक नया युग प्रारंभ हुआ। इसे "बेजबरुवा युग" कहा जा सकता है। इस युग में राष्ट्रीय-चेतना और नवजागरण के आलोक में नयी स्फुर्ति से साहित्य निर्माण का कार्य चला।

8.6.1 अ.भा. उ.सा. सभा

कलकत्ता में स्थापित "असमिया साहित्य चरा" का प्रभाव और कार्य क्षमता क्षीण हो जाने के कारण कलकत्ता प्रवासी विद्यार्थियों ने 25 अगस्त, 1888 ई. में "असमिया भाषा उन्नति साधिनी सभा" (अ.भा.उ.सा. सभा) की स्थापना की जिसका मुख्य उद्देश्य असमिया भाषा-साहित्य का उन्नयनमूलक कार्य करना हुआ। इस संस्था के उद्देश्यों को इस प्रकार गिनाये जा सकते हैं।

1) विभिन्न विधाओं में पुस्तक लिखकर असमिया साहित्य को समृद्ध करना।
2) प्राचीन पोथियों का संग्रह एवं प्रकाशन।
3) असम के सभी शिक्षा-संस्थानों में असमिया भाषा का प्रचलन।
4) अशुद्ध व्याकरण और वर्तनी के स्थान पर शुद्ध व्याकरण और वर्तनी का प्रचलन।
5) संस्कृत या अन्य भाषाओं के उत्कृष्ट ग्रंथों का अनुवाद।
6) असम के सामाजिक तथा धार्मिक रीति-रिवाजों का इतिहास संग्रह तथा इतिहास लेखन।
7) पाठ्य-पुस्तकों का अभाव दूरीकरण।
8) एक पत्रिका का प्रकाशन।

असमिया भाषा-साहित्य के विकास के लिए इस संस्था द्वारा आंदोलन चलाने वालों में तीन युवक प्रमुख थे– लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा (1864-1938 ई.), चन्द्र कुमार आगरवाला (1867-1938 ई.) तथा हेमचन्द्र गोस्वामी (1872-1928 ई.) ये तीनों असमिया साहित्य के "त्रिमूर्ति" के रूप में ख्यात हैं। सभा द्वारा एक मासिक पत्रिका "जोनाकी" (जुगनू) का प्रकाशन जनवरी, 1889 ई. से प्रारंभ किया गया जिसका प्रथम संपादक चन्द्र कुमार आगरवाला थे। इस पत्रिका ने केवल सभा की विचारधाराओं का ही प्रचार-प्रसार नहीं किया, बल्कि असमिया साहित्य के छायावाद का भी प्रवर्तन किया। "जोनाकी" के प्रथम वर्ष प्रथम संख्या में प्रकाशित चन्द्र कुमार आगरवाला की "वनकुंवरी" कविता से छायावादी कविता का शुभारंभ होता है। इस पत्रिका ने आधुनिक असमिया साहित्य के विविध विधाओं में साहित्य का श्रीगणेश ही नहीं किया है, बल्कि असम के बौद्धिक मानस जगत में एक क्रांति भी ला दी। इसी पत्रिका के आदर्श पर बाद में "बाँही", "ऊषा", "बिजुली", "आवाहन", "चेतना", "जयन्ती", "सुरभि", "रामधुन" इत्यादि विभिन्न साहित्यिक पत्रिकाएं प्रकाशित होकर आधुनिक असमिया साहित्य की धारा को नव-नव गति प्रदान की।

8.6.2 राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना और नवजागरण

कलकत्ता से प्रकाशित "जोनाकी" पत्रिका के साथ ही "जोनाकी गोष्ठी" के नव-उदीयमान साहित्यिक विद्यार्थियों में राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना तथा नवजागरण की विचारधाराएं हिलोरने लगीं। अंग्रेजी तथा बांग्ला साहित्य के प्रभाव से असम के प्रवासी साहित्यिक विद्यार्थी भी अछूते नहीं रह सके। उस समय बंगाल में नवजागरण के कारण सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक परिवर्तन की सूचनाएं हुई थीं। राजा

राममोहन राय, महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि के सामाजिक एवं धार्मिक संस्कार, "यंग बेंगल सोसाइटी" की वैप्लविक भूमिका, गदर, साहित्य के क्षेत्र में माइकेल मधुसूदन दत्त, बिहारी लाल, नवीन चन्द्र सेन, द्विजेन्द्र लाल राय, हेम बंदोपाध्याय, गिरिशचन्द्र, बंकितचन्द्र इत्यादि ने नवजागरण का ऐसा वातावरण प्रस्तुत किया था कि इससे तत्कालीन कलकत्ता प्रवासी असमिया साहित्यकारों का प्रभावित होना स्वाभाविक था। इसके फलस्वरूप उनके साहित्य में इनकी सफल अभिव्यक्ति देखी जा सकती है।

वस्तुतः छायावाद की चेतना काव्य-साहित्य में प्रारंभ होकर अन्य विधाओं तक फैलती है। बेजबरुवा, चन्द्र कुमार, हितेश्वर बरबरुवा, रघुनाथ चौधरी, अम्बिकागिरि रायचौधरी, यतीन्द्र नाथ दुबरा, डिम्बेश्वर नेओग जैसे कवियों की कविताओं में यह चेतना लहलहा उठी, वैसे ही पद्मनाथ गोहाञिबरुवा, रजनीकांत बरदलै के उपन्यासों में, बेजबरुवा, चन्द्रधर बरुवा के नाटकों में, बेजबरुवा के हास्य-व्यंग्य में, शरत चन्द्र गोस्वामी आदि की कहानियों में भी झंकृत हो उठी।

तद्युगीन भारतीय राजनीति में धीरे-धीरे परिवर्तन की सूचना आने लगती है। भारतीय जातीय कांग्रेस में पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव गृहीत, बंग-भंग आंदोलन, महात्मा गांधी का अभ्युदय और उनके द्वारा चलाये गये गण-आंदोलन से असमवासी भी स्वतंत्रताकांक्षी हो गये थे। इसका प्रभाव असमिया काव्य, उपन्यास, नाटक आदि में दिखायी पड़ता है। साम्प्रदायिक सद्भाव, अस्पृश्यता वर्जन, स्वावलम्बिता, विदेशी वस्त्र-वर्जन, मादक-द्रव्य निवारण, स्त्री-शिक्षा, स्वतंत्रता संबंधी अनेक विषयों पर अनेक साहित्य लिखे गये। बंगाल में बंकितचन्द्र के "आनन्दमठ" उपन्यास के अंतर्गत "वंदे मातरम्" गीत और हेमचन्द्र की कविताओं से राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना की लहर दौड़ गयी थी। असमिया साहित्य में अनुरूप अनुगंज आनन्दराम आगरवाला की "हे आइ असम कोवाचोन नोक कियनो सदाय देखो तय शोक" (हे मातृ असम, कहो मुझे, तुम्हें क्यों देखता हूं शोकतुरा) कविता में सुनाई पड़ती है। इसी तरह बेजबरुवा, विनय चन्द्र बरुवा, अम्बिकागिरि रायचौधरी, प्रमन्नलाल चौधरी, डिम्बेश्वर नेओग आदि की कविताओं में स्वदेश प्रेम, स्वतंत्रता की आकांक्षा, अतीत-प्रीति के स्वर सुनाई पड़ते हैं। माइकेल मधुसूदन के काव्यों के अनुरूप रमाकांत चौधरी, भोलानाथ दास के काव्य से आधुनिक असमिया साहित्य में नवजागरण की ध्यान-धारणा स्पष्ट होती है। दंडिनाथ कलिता, दैवचन्द्र तालुकदार आदि के उपन्यासों में समाज-सुधार और पुनर्निर्माण के आदिर्श दिखते हैं। वाल्टर स्काट के उपन्यासों की तरह रजीकांत बरदलै के उपन्यासों में अतीत प्रीति, असम के ऐतिहासिक गौरव की झांकी मिलती है जो महसा जयशंकर प्रसाद के नाटकों को स्मरण दिला देते हैं। तत्कालीन असमिया अनेक कहानियों, निबंधों, लेखों में स्वतंत्रता की वाणी, आर्थिक सुधार के संकेत आदि प्राप्त होते है।

अतः 1889 ई. से 1940 ई. तक के अर्द्धशताब्दी के छायावादी असमिया साहित्य में राष्ट्रीय स्वाधीन चेतना और नवजागरण की अनेक विशेषताएं विद्यमान हैं। इन्हें संक्षेपतः इस प्रकार रेखांकित किया जा सकते है—

1) प्रकृति, प्रेम, देश-प्रेम, जातीय जागरण, अतीत की जयगाथा, अतीन्द्रिय वाद, सहज-सरल ग्रामीण जीवन के चित्रण-कवि के मानस जगत में प्रतिफलित होकर भिन्न-भिन्न रूप में अभिव्यक्त।

2) अतीत के गौरवमय इतिहास की कथा पर काव्य, नाटक, उपन्यास की रचनाएं।

3) सुधारमूलक, आदर्शात्मक उपन्यास-कहानियों का सृजन।

4) कहानियों में ग्रामीण-जीवन के सफल चित्रण।

5) व्यंगात्मक कविता तथा लेखों का प्रसार तथा वैयक्तिक निबंधों का विकास।

6) राष्ट्रीय स्वतंत्रता के साथ असमिया साहित्य-संस्कृति संबंधी सजगता लाने का प्रयास।

7) प्राचीन साहित्य का उद्धार, संरक्षण एवं प्रकाशन।

8) लोक-साहित्य एवं लोक-संस्कृति का संरक्षण, परिवर्द्धन इत्यादि।

७.6.3 असमिया छायावादी काव्यों की साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

क) स्वच्छन्दतावादी काव्य का प्रारंभ : "जोनाकी" पत्रिका में चन्द्रकमार आगरवाला ने "वनकुंवरी" कविता से ही स्वच्छन्दतावादी काव्य धारा का श्रीगणेश किया था। चिरपरिचित जगत को नयी दृष्टि से देखने-परखने की अवधारणा से काव्य की एक नयी धारा प्रवाहित हुई। यूरोपीय, विशेषतः अंग्रेजी साहित्य के आदर्श पर सनेट, शोक-कविता, इतिवृत्तात्मक कविता, व्यंग्य कविता, साहित्यिक लोकगाथा इत्यादि विभिन्न काव्य-रूपों से असमिया साहित्य का काव्य-वाटिका भरने लगा। अंग्रेजी और बांग्ला साहित्य से प्रेरित-प्रभावित होने पर भी असमिया कविताएं मौलिकता लेकर भिन्न-भिन्न रूप-रंग से उभरने लगीं। चन्द्र कुमार की नैसर्गिक कविताओं में, बेजबरुवा की साहित्यिक लोकगाथाओं में, हेमचन्द्र गोस्वामी के सनेट में, हितेश्वर बरबरुवा के "तिरोतार आत्मदान" तथा "चकुलो" काव्यों में, रघुनाथ चौधरी के प्रकृति विषयक काव्यों में, यतीन्द्र नाथ दुबरा के "आपोनसुर" इत्यादि में छायावादी काव्यधारा के इन्द्रधनुषी रंग समाने लगे।

ख) काव्य-विषयों की व्यापकता : इस युग के काव्यों की एक विशेषता है कि नगर या शहर की सभ्यता में कृतिमता या जीवन के अंधकार पक्ष को महत्व दिये बिना ग्रामीण जीवन के प्रति उन्मुख हुए। ग्रामीण जीवन की सरलता एवं स्वाभाविकता ने कवि का ध्यान आकृष्ट किया था। प्राचीन साहित्य के उपेक्षित पात्र भी इस युग के काव्यों में छा गये। व्यक्ति स्वातंत्र्य के जयगीत गाने वाले कवि साधारण से साधारण घास को भी स्वर्ग का संदेश देने वाला महत्वपूर्ण मानने लगा:

बाटर दुबरि वन गधकत परा,
तारो एटि पाते दिये स्वर्गर बतरा।

– लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा

(रास्ते के रौंदे जाने वाले घास का एक पत्ता भी स्वर्ग का संदेश देता है।)

ग) उपेक्षितों और सामान्य व्यक्तियों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण : असमिया छायावादी काव्य की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति रही है मानव की प्रतिष्ठा। प्राचीन काल के ईश्वरीय अवतार, देवी-देवता या राजा-महाराजा की अनुभूति को साहित्य में स्नान देना इस युग की विशेषताएं रही हैं। चन्द्र कुमार आगरवाला ने तो मानव को देवत्व के स्थान पर आसीन कर मानव का जयगान गाया है इस तरह:

मानुहेइ देव मानुहेइ सेव,
मानुह बिने नाइ केव।
करा करा पूजा– पाद्य अहर्म लइ–
जय जय मानव देव।।

(मानव ही देव है, मानव ही सेव्य है, मानव के बिना कोई नहीं है। अतः मानव को ही पाद्य-अहर्य लेकर पूजो और मानव-देव का जयघोष करो।)

इसलिए असंभव नहीं कि भिक्षुक, तेली, केवट, तेजीमला, धनबर-रतनी, मालती जैसे सामान्य-उपेक्षित व्यक्ति भी महत्व के अधिकारी बने हैं। कवि ने इन असहाय, शोषित. निपीड़त व्यक्ति को ही प्रगति के "अग्रदूत" के रूप आख्यायित किया है– "हे मानव। प्रगतिर अग्रदूत तुमि।" (मानव देवता: रघुनाथ चौधरी)

घ) राष्ट्रीयता : जागरण, सुधार और देशभक्ति : "अरुणोदय" काल से ही असमिया साहित्य में देशभक्ति का चित्रण उपलब्ध होता है। "चिंतानल" काव्य-संग्रह की भूमिका में कवि कमलाकांत भट्टाचार्य ने लिखा था– "चिंतानल" मेरे अकृत्रिम देश-प्रेम का उद्‌गार है, असम के भविष्य के प्रति ध्यान रखते हुए मेरे हृदय में तथा चिंतन-आग में तपनेवाली यह भावराशि है।" कवि ने एक ऐतिहासिक शिलाखण्ड देखकर मेट्‌चिनि, गरिबल्डि जैसे महान नेता की कल्पना की है जो पराधीन भारतवर्ष को उद्धार कर मान बढ़ा सके–

जन्मिब सिदिना रातेक मेटुर्चान,
तुच्छ परि यका शिलर परा,
रात गरिबल्डि जनम लभिब
करिब पोहर भारत धरा।

– कमलाकांत भट्टाचार्य

लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा ने "वीण-बरागी", "असम संगीत" आदि कविताओं में अतीत की कीर्ति-गाथा सुनाकर स्वदेश-प्रेम का जयगान गाया है। इससे जनता की सुप्त चेतना में देश-प्रेम की आग भड़काने की कोशिश की गयी थी।

"स्वतंत्रता का आंदोलन चलने के कारण समूचे देश में राष्ट्रीय जागरण हुआ था। असम में भी कांग्रेस की सभा-समितियों के अतिरिक्त असम साहित्य सभा, विद्यार्थी सम्मेलन आदि में भी समन्वय, सद्भाव, सुधार, जागरण के गीत गाये जाने लगे थे:

जाग जाग जाग भारत संतान हिन्दु-मुसलमान जाग,
मुक्ति शंख बाजे गाजे भेदि
लक्ष्य भ्रातार हियार तेजेदि
रंजित होवा जालियानावाग।
जाग तिनि शताब्दी पिटि-खचि थोवा जातीय आल-अभिमानु
जाग सन्य-त्रोता-द्वापर-मुखरित मृत्यु संजीवनी सामगान।

– अम्बिकागिरि रायचौधरी

(शब्दार्थ : तेज– रक्त, पिटि-खचि-रौंदता हुआ)

पद्मधर चलिहा, विनन्य चन्द्र बरुवा, डिम्बेश्वर नेओग, प्रसन्नलाल चौधरी इत्यादि कवि की कविताओं में राष्ट्रीय-चेतना की प्रबल अभिव्यक्ति मिलती है। ज्योतिप्रसाद आगरवाला की देश-प्रेम मूलक कविताओं ने स्वतंत्रता की वैप्लविक भावना को उद्वेलित किया था–

मये असमर
मये भारतर
मये डेका लरा अग्निमय।
मये भारतर नवीन सूर्य
पूर्वाचलत बजाओं तूर्य।

– ज्योतिप्रसाद आगरवाला

(शब्दार्थ : मये– मैं ही, डेका लरा– युवक, बजाओं– फूंकता हूं)

राष्ट्रीयता की एक प्रबल अभिव्यक्ति नारी-जागरण है। बेजबरुवा से लेकर इस युग के अंतिम कवि देवकांत बरुवा तक नारी के प्रति केवल सहानुभूति ही नहीं, बल्कि उनकी गरिमा, महत्व को भी पहचानने का प्रयास हुआ है। इसलिए असम की वीरांगनाएं, यथा– सती जयमती, मूला गाभरु, कनकलता आदि नारी-पात्र प्रेरणा के प्रतीक के रूप में सामने आये। कवि-कंठ में नारी-वंदना मुखर होने लगी–

आजिर कंविर गीत, छन्दे छन्दे तार
तोमार वन्दना-वाणी बाजे सिदिनार।

– नारी वंदना : देवकांत बरुवा

(शब्दार्थ : आजिर-आज का, तार-उसका, तोमार-तुम्हारा, सिदिनार-उस दिन का)

वस्तुतः देशभक्ति और देश के गौरव की रक्षा राष्ट्रीयता का ही अंग है। इस राष्ट्र का मान बढ़ाकर इसके प्रति समर्पित होकर विश्व-मानवता की ओर उन्मुख होने का आह्वान इस युग के कवि ने मुक्त-कंठ से किया है–

एइ देश रारिबब लागिब
एइ खन आपोनार देश,
एइ खन मरमर देश,
एइ खन मानहर देश।

– देवकांत बरुवा

(इस देश का मान बचाकर रखना होगा। क्योंकि यह आपका देश है, यह प्यारा देश है, यह मानव का देश है।)

ङ) **प्रकृति का रमणीय चित्रण** : प्रकृति के प्रति अनन्य आकर्षण, इसके भिन्न-भिन्न मनमोहक रूप इस युग के प्रायः सभी कवि की कविताओं में दिखते हैं। प्रकृति की राणी स्वरूपा असम की प्राकृतिक सुषमा को मानो असम के कवि ने कवि-हृदय को उड़ेल कर वर्णन किया है। कवि चन्द्रकुमार से लेकर देवकांत बरुवा तक सभी कवियों में प्रकृति के रमणीय चित्रण मिलते हैं। इनमें से रघुनाथ चौधरी का स्थान सबसे ऊंचा है, जिन्होंने अपने काव्य में मानो प्रकृति का ही जयगान गया है:

मन्द मन्द मकरन्द मदगंधे
मोदित माधवीकुंज,
मृदु मधु रसे मथित मर्दित
मुंजुल मंजुल पुंज।

– रघुनाथ चौधरी

अपने मन की माधुरिमा से सवारकर प्रकृति के बाह्य-सौंदर्य का वर्णन, प्रकृति के शांत-स्निग्ध रूप के प्रति आकर्षण और तापक्लिष्ट मानव-जगत के साथ उसका वैपरित्य दर्शन, प्रकृति का मानवीकरण, प्रकृति में अपनी प्रिये के रूप-सौंदर्य का अवलोकन, प्रकृति में आत्म सुख-दुःख का आरोपण, प्रकृति को शिक्षा के स्रोत के रूप में स्वीकार, सौंदर्य में अखण्ड-सौंदर्य की तलाश, ऋतुओं के मनमोहक वर्णन इत्यादि विभिन्न कविताओं में स्वकीय रूप-रंग के साथ अंकित हुए हैं।

असमिया कवि ने अगहन महीने के पके हुए धान के साथ प्रकृति का कैसा सजीव वर्णन किया है, उसका एक छोटा-सा नमूना इस प्रकार देखा जा सकता है–

ओपरत सूर्य देव सोणाली रहण,
पथार धानेरे ढका सोणाली वरण,
माजत रूपही देवी सोणाली वरण,
मनोमोहा दरशन अति वितोपन।

– दुर्गेश्वर शर्मा

(शब्दार्थ : ओपरत– ऊपर में, पथार– खेत-मैदान, ढका– आवृत, माजत– बीच में, मनोमोहा– रमणीय)

कभी कवि प्रकृति का रूप-रंग देखकर वैयक्तिक वेदना का भी अनुभव करता है–

जोनाक जोनाक शीतल जोनाक
चाइ मोर चकुलो सरे,
अंतर मोर उगुल-चुगुल
उदास आकुल करे।

– पार्वति प्रसाद बरुवा

(चाँदनी चाँदनी शीतल चांदनी देखकर मेरे आंसू टपकते हैं, न जाने किस लिए मेरा हृदय द्विधाग्रस्त हो जाता है, जिसके लिए मैं उदास हो जाता हूं।)

इस युग के काव्यों में प्रकृति-चित्रण के रूप देखने पर स्पष्ट होता है कि मध्ययुगीन काव्यों में जो प्रकृति केवल उद्दीपन भर रही है, उसमें काफी बदलाव आया है। यह बदलाव अधिक अर्थवह होकर मानवीय संवेदनाओं से जुड़ा है।

च) प्रेम का उदात्त रूप : छायावादी असमिया काव्यों में प्रेम का चित्रण विशेष उल्लेखनीय है। "जोनाकी" पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही प्रेम-परक कविताओं की बाढ़-सी आने लगती है। चन्द्रकुमार की "माधुरी", हेमचन्द्र गोस्वामी की "प्रिय-तमार चिठि", बेजबरुवा के "प्रियतमार सौंदर्य", "भ्रम" से लेकर गणेश

जोड़ने का प्रयास दिखता है। बेजबरुवा के शब्दों में "प्रेमत छूरिछे भूमंडल, प्रेमत फुलिछे शतदल" (प्रेम में ही घूम रहा है भूमंडल, प्रेम में ही फूला है, शतदल) के कारण कपोल कल्पित प्रिया के रूप-सौंदर्य के वर्णन, विश्व-प्रकृति में प्रिया का सौंदर्य-दर्शन, विरह जनित गौरव इत्यादि से इस युग का प्रणय-काव्य अभिसिंचित है। इन कवियों की दृष्टि में प्रेम की सार्थकता मिलन या संयोग नहीं है, दुष्प्राप्य प्रिया को प्राप्त करना भर है। यही प्रेम अम्बिकागिरि रायचौधरी और नलिनीबाला देवी के काव्यों में आध्यात्मिक प्रेम में परिवर्तित हो गया है:

येतिया यिफाले चाओं
प्रेमकहे देखा पाओं
असीमर विराट अंचल
रंजित प्रेमत।

– अम्बिकागिरि (तुमि)

(जब जिस ओर देखता हूं, प्रेम ही दिखाता है। असीम का विराट अंचल प्रेम से रंजित है।)

छ) अतिन्द्रिय अनुभूति : चन्द्रकुमार, नलिनीबाला देवी, दुर्गेश्वर शर्मा, रत्नकांत बरकाकती प्रभृति की कविताओं में भारतीय दार्शनिक चिंतन का सर्वान्यवाद, आत्मा की अनश्वरता, जन्मांतरवाद, कर्मफलवाद आदि की ध्वनि गुंजित अनुगुंजित हुई है। उनके काव्यों में प्राच्य एवं पाश्चात्य विचारों का अपूर्व समन्वय हुआ है, प्रत्येक भारतीय के प्राण का स्वर है। इसी से असमिया कवि आकर्षित होना भी स्वाभाविक है–

मइ पूजों कारबाक कबके नोवारों
सइ देखों एइ नाइ भूलोक– धुलोके
निते नव रूप तार
निते अगोचर,
बिचारि ताकेइ बय चकुलो पलके
लक्ष धारे लक्ष सुति
अलक्ष्य सागर।

– रत्नकांत बरकाकति

(मैं किसको पूजात– नहीं जानता हूं। वह अभी है, अभी नहीं है, भूलोक- धुलोक में जिसका नित्य नव रूप दिखाई पड़ता है और जो नित्य अमोचर है। उसे खोजते हुए पल-पल में आंसू की धारा लक्ष-धाराओं में अलक्ष सागर की तरफ बहती रहती है।)

ज) भोग और मृत्यु-चेतना : भोग की चेतना चाबकि दर्शन से प्रभावित है। खैयाम और हाफिज के प्रभाव भी इस युग के काव्यो में दिखते हैं। इस प्रकार के काव्य का श्रीगणेश करने वाले कवियों में यतीन्द्र नाथ दुबरा का नाम प्रथम पांक्तेय में है। इन्होंने उमर खैयाम की रुबाइयों का प्रांजल अनुवाद "ओमर तीर्थ" असमिया में प्रस्तुत किया था। अनुवाद इतना प्राणाकर्षक हुआ है कि उस समय के हर जवान की जबानी में इनकी पंक्तियां होती थीं। यथा–

धराँ प्रियतम प्राणर पियला
जीवन-मदिरा भराइ दिया,
अतीत भविष्य शोक-दुख-भय
आजिर भावना उटाइ निया।
आजियेइ दिया कालिलइ किय ?
कोने जाने मोर कालि कि हब ?
हाजार हाजार बछर बियपा
हयतो अतीते सामरि यब।

– दुबरा

तुलनीय–

पिलाकर प्यारी मदिरा आज
नशे में इतना कर दो चूर,
भविष्य के भय जाएं भाग,
भूत के दारुण दुख हों दूर।
प्रिये, लेना मत कल का नाम,
नहीं कल पर मुझको विश्वास,
अरे, कल दूर, एक क्षण बाद
काल का मैं हो सकता ग्रास।

– बच्चन

इस युग के काव्यों में मृत्यु-चेतना भी दिखायी पड़ती है। हो सकता है, छायावादी व्यर्थ प्रेमिक या जीवन के यथार्थ से पलायन करके जीवन की नश्वरता को प्रत्यक्ष करने के लिए कारण या प्रिय वियोग से उत्पन्न व्यथा से मृत्यु-चेतना संबंधी कविताएं उपलब्ध होती हैं। यतीन्द्र नाथ दुबरा, दुर्गेश्वर शर्मा, शैलधर राजरवोवा, पार्वती प्रसाद बरुवा, नलिनीबाला देवी इत्यादि की कविताओं में मृत्यु की शीतल छाया के स्पर्श अनुभव किये जा सकते हैं। यथा–

आतरिलों नीरवे निमाते
एकदरे याकिल संसार
प्रति पुवा सूरूज-किरणे
उजलाले जेउति घरर।

– दुबरा

(चुपचाप हट गया पर संसार वैसे ही रहा। हर सुबह सूर्य की किरण से घर की शोभा बढ़ती ही रही।)

झ) **गीति-काव्य का स्वच्छंद प्रवाह** : मध्यकालीन भक्ति काव्य या लोक-गीत से भिन्न एक नयी गीति-काव्य की धारा इस युग में प्रवाहित होती है। बेजबरुवा, अम्बिकागिरि, नलिनीबाला, डिम्बेश्वर नेओग, पद्मधर चलिहा, पार्वती प्रसाद बरुवा आदि कवि ने गीत लिख कर इस धारा को समृद्ध किया था। आगे चलकर इसकी एक नयी परंपरा चल पड़ी।

ञ) **वैचित्र्यमय काव्य-सौरभ** : असमिया साहित्य के इस छायावादी युग में इतिवृत्तात्यक, प्रकृतिपरक, ऐतिहासिक इत्यादि विभिन्न विषयों पर काव्य लिखे गये थे यथा– लीला काव्य (पद्मनाथ गोहागि बरुवा), कमतापुर ध्वंस, विरहिणी विलाप, तिरोतार आत्मदान, चकुलो (हितेश्वर बरबरुवा), केतेकी, दहिकतरा (रघुनाथ चौधरी) तुमि (अम्बिकागिरि रायचौधरी) इत्यादि। उत्कृष्टता की दृष्टि से भी असमिया काव्य-साहित्य में इनका विशेष स्थान है।

बोध प्रश्न 3

I) निम्नांकित प्रश्नों के सही उत्तर में निशान (✓) लगाइए:

क) असम के भारतेन्दु कौन हैं? (चन्द्रकुमार/लक्ष्मीनाथ/हेमचन्द्र)

ख) अ.भा.उ.सा. सभा कहां स्थापित हुई थी? (गुवाहाटी/दिल्ली/कलकत्ता)

ग) प्रथम असमिया छायावादी कविता कहां प्रकाशित हुई थी? (जोनाकी/अरुणोदय/बाँही,

घ) असम के स्कार कौन हैं? (बेजबरुवा/रजनीकांत/दंडीनाथ)

ड) माइकेल मधुसूदन दत्त के काव्य का प्रभाव किस असमिया कवि पर पड़ा? (यतीन्द्र नाथ/रघुनाथ/रमाकांत)

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :

क) छायावादी असमिया कविता ..... जीवन के प्रति उन्मुख थी।

ख) ..... ने मानव को देवत्व के स्थान पर आसीन किया था।

ग) राष्ट्रीयता की एक प्रबल अभिव्यक्ति ..... जागरण है।

घ) रघुनाथ चौधरी ने अपने काव्यों में ..... जयगान गाया है।

ङ) यतीन्द्र नाथ दुबरा अनुदित उमर खैयाम की रुबाइयों का नाम है।

अभ्यास

लगभग तीन-चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए :

क) कलकत्ता प्रवासी असमिया विद्यार्थियों ने साहित्यिक आंदोलन कैसे प्रारंभ किया था?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ख) छायावादी असमिया कविताओं की विशेषताएं क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

ग) मानव के संबंध में चन्द्रकुमार आगरवाला की क्या अवधारणा है?

.....

.....

.....

.....

घ) "प्रेमत छूरिछे भूमंडल, प्रेमत फुलिछे शतदल" का आशय स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

8.7 काव्य-वाचन

आधुनिक असमिया काव्य के रसास्वादन के लिए दो छायावादी कवियों– रघुनाथ चौधरी और नलिनीबाला देवी की एक-एक कविता को काव्य-वाचन के लिए प्रस्तुत किया गया है। इन दोनों असमिया कवियों की तुलना हम हिंदी के क्रमशः सुमित्रानंदन पंत और महादेवी वर्मा से कर सकते हैं।

8:7.1 रघुनाथ चौधरी (1879-1968 ई.)

संक्षिप्त परिचय:असम के "विहगी (विहंग) कवि" के रूप में ख्यात रघुनाथ चौधरी का जन्म 20 जनवरी सन् 1879 ई. को कामरूप जिलान्तर्गत लाओपारा नामक गांव के एक किसान परिवार में हुआ था। ज्योतिषी ने इन्हें वंश का "रघुनाथ" होकर वंश को रोशन करने की भविष्यवाणी की थी। यह सच भी निकली। पर बचपन में ही दुर्घटनाग्रस्त होकर उनका एक पैर नाकाम हो गया। फलतः आठ वर्ष तक चलने योग्य नहीं हुए थे। इसलिए प्रारंभिक शिक्षा घर में शुरू हुई। घर की आर्थिक तंगी के कारण रघुनाथ जी का पालन-पोषण गुवाहाटी के गर्गराम चौधरी के यहां हुआ। अष्टम श्रेणी में पढ़ाई के समय गणित के प्रश्नोत्तर अध्यापक द्वेष के कारण अच्छे अंक न प्राप्त करने पर उन्हें ठेस पहुंची और उसी दिन से स्कूली जीवन भी समाप्त हो गया। घर पर ही इनका अध्ययन चलता रहा। इसके साथ ही प्रकृति को उन्होंने शिक्षा केन्द्र बनाया।

जीविका के लिए इन्होंने शिक्षकता की। पर इसमें रास न आने के कारण किसानी में ध्यान दिया। इसी बीच 1921 ई. से गांधी जी के नेतृत्व में प्रारंभ होने वाले सत्याग्रह में भाग लेकर जेल-यात्रा करनी पड़ी। जेल से निकल कर पुनः किसानी में ही मनोनिवेश किया। साथ ही उनकी साहित्य साधना भी चलती रही। गृहस्थी के मोहजाल से मुक्त रहकर साहित्य को ही उन्होंने जीवन का ध्येय बनाया। गुवाहाटी से प्रकाशित "जोनाकी" पत्रिका का सह-संपादन के अतिरिक्त "सुरभि" और "जयंती" नामक अन्य दो पत्रिकाओं का संपादन भी किया था। आधुनिक साहित्य विशेषतः आधुनिक कविता की विकास यात्रा में "जयंती" की अनन्य भूमिका रही है।
कवि रघुनाथ चौधरी की प्रथम कविता "मरमर पखी" (प्यारे पंछी) 1901 ई. में "जोनाकी" पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित उनकी कविताएं बाद में कई संकलनों में संकलित हुई है। उनकी कृतियां हैं– सादरी (काव्य-संग्रह, 1910 ई.), केतेकी (खण्ड-काव्य, 1923), कारबाला अथवा मरहम काव्य (1923 ई.), दहिकतरा (काव्य संग्रह, 1931), नवमल्लिका (कथा-कविता, 1958)। इनके अतिरिक्त कुछ संगृहीत कविताएं, जेल-जीवन के आधार पर "बंदी जीवन", "पचतीया" (कहानी संकलन) इत्यादि अनेक रचनाएं हैं। कवि की साहित्य सेवा की स्वीकृति के रूप में उन्हें "असम साहित्य सभा" का अध्यक्ष चुना गया था।

कवि चौधरी की कविताएं मूलतः प्रकृति विषयक हैं। इनमें फूल और पक्षी के विविध रूप झलकते हैं। एक ओर उनकी कविताओं में बहिर्विश्व के रूप-रंग चित्रित हुए हैं, जहां प्रेमानंद के लिए कवि के चित्र को आधुल दिखायी पड़ता है तथा दूसरी ओर अध्यात्मिक विचारधारा से प्रभावित कवि भाग-लिप्सा से दूर रहकर वैराग्य-जीवन के हिमायती हैं। प्रथम धारा की कविताओं में फूल, पक्षी संबंधी कविताएं आती हैं। जिस प्रेमानंद के लिए कवि का चित्त आकुल है उसे वे सुनते हैं बिहंगों के गीतों में। कवि अपने निसंग तथा नैराश्यपूर्ण जीवन को फूल और पक्षी के विविध रंग, वर्ण, छंदों से सजाने की कोशिश करते हैं। उनके अनुसार फूल-फल, तरु-तृण, वृक्ष-लता, विहंग-विहंगिनी आदि सभी में ईशज्योति समायी हुई होती है और इसलिए इनमें प्रेम का मूर्त रूप प्रकट हो उठता है। यथा–

मर्त्यबासी मानवक दिबलै जुरणि,
तोमा हेन प्रियनिधि
पठियाइ दिले विधि,
स्वर्गीय दूतर वेशे कंठे सुधा सानि,
गोवा हे एबार मोर प्रिय बिहंगिनि।

(मर्त्यवासी मानव को शांति प्रदान करने के लिए विधाता ने तुम्हारे कंठ में अमृत भरकर स्वर्गीय दूत के वेश से तुम्हें अपनी प्रियनिधि बना भेजा है। इसलिए हे मेरी प्रिय विहंगिनी– एक बार पुनः गाओ।)

कवि चौधरी के इस भाव की तुलना कवि पंत के साथ आसानी से की जा सकती है–

गा, कोकिल, सन्देश पुरातन।
मानव दिव्य स्फुलिंग चिरंतन,
वह न देह का नश्वर रज कण।
देश काल हैं उसे न बंधन,
मानव का परिचय मानवपन।
कोकिल गा, मुकुलित हों दिशे क्षण।

– पंत

चौधरी की वैराग्यमूलक कविताओं में संसार-स्वरूप हलाहल पान कर नीलकंठ न बन पाने का दर्द मुखर हो उठा है। उनकी "भिक्षा", "फुलशय्या", वैराग्यर कथा", "वणिजर कथा", "अंतिम ज्योति", "अकलशरीया" आदि कविताएं अनुपम उदाहरण हैं। यथा–

आरुनो किमान दिया बेदनार बांजा
हे मोर हृदय देवता।
करुण रोदन तुलि भाडि दिला किय
प्राणर निबिड़ नीरवता?

– (फुलशय्या)

(हे मेरे हृदय-देवता, और कितनी वेदनाओं का बोझ डालोगे? मेरे प्राणों की निविड़ नीरवता को तुमने करुण रोदन से क्यों भंग कर दिया?)

भाषा-शैली : रघुनाथ चौधरी की काव्य-भाषा में तत्समता, लाक्षणिकता, चित्रमयता, संगीतात्मकता आदि हैं। अनुप्रास अलंकार के प्रति कवि का विशेष आग्रह परिलक्षित होता है। उनके काव्य-पाठ से ऐसा अनुभव होता है मानो कोई वेगवती सरिता धीर, स्थिर, गंभीर गति से निनाद करती हुई बह रही हो।

(असमिया लिपि में)

वाचन गोलाप

कार परशत फुलिलि बांधै
ओ मोर सादरी फुलाम पाहि,
श्यामली पातर ओरणी, गुचाइ
कार फाले चाइ मारिलि हाँहि। 1.

कोन् नन्दनत लगालि चमक
नाच्छि यत परी बुलबुल,
अभिशप्ता हइ बिलास कुंजत
प्रेम मदिरात येन मछगल। 2.

हाचुनाहानार तीव्र गंधत
सपोन बिभोर माधवी निशा,
तोर परशत बिरही जोनर
पलाल ने प्रिये प्राणर तृषा। 3.

आरब पियारी बचुरा राणीर
गुलबदन पेलालि जुर,
भाहि फुरे तोर रूप तरंगत
पापियार स्निग्ध करुण सुर। 4.

फुलिलि यिदिना मरु उद्यानत
उरिल सौरभ जगत जुरि,
गगन चुम्बी "कलोचचे" तोर
पान करिले रूप माधुरी। 5.

आछिलि ने प्रिये बेबिलनर
गुलबागानत फुलर राणी,
स्वर्गर नन्दन साजिलि शून्यत
क ंवर मुखत अमर बाणी। 6.

रूप रस गंध परश प्रेमत
जिनिलि पियारा हिन्दुस्थान,
बादछा हेरेम करि गुलजार
दिल दयित तुलिलि बान। 7.

तोर इ रूपत जगत बिभोल
ढालिलि प्रेमर बिमल धारा,
दिल्लीर बेगम नुरजाहानर
आछिलि ने तये दिलबाहारा? 8.

कोन सुंदरीर निमज गालत
फुटाइ तुलिलि चिकण काज,
उठिल प्रेमिक छाहजाह नर
भुवन विजयी मर्मर ताज। 9.
कत काव्यगाथा अतीतर स्मृति
उदास प्रेमर मूर्त बिकाश,
बिजड़ित तोर कोमल बुकुत
कत बिरहीर हा-हुताश। 10

फुलिबि ने मोर मानस कुंजत
ओ मोर दरदी फुलाम पाहि,
उठिबिं ने बाणि प्रिया पापियार
पुलक भरा मिलन बाँही। 11.

(शब्दार्थ : कार-किसका, परशत-स्पर्श में, बांधै-दांस्त, पातर आराण गुचाइ-पत्ते की घूंघट हटाकर, कोन-किस, तोर-तेरा, जोन-चाँद, पलाल-मिटना, पेलालि जुट-शीतलता प्रदान करना, गगनचुम्बी कलोचचे-बचरा राज्य के समीपस्थ काँसे की ऊँची (प्रायः 105 फीट) मूर्ति, जिनिलि-जय करना, बान-बाढ़, जगत विभोल-जगत मुग्ध करना, ढालिलि-बहाया, चिकण-महीन, फुलाम पाहि-फलू का पखड़ा, बाँही-बाँसुरी।

टिप्पणी

एक बार कलकत्ता जाने पर रघुनाथ चौधरी को वहां के बगीचे में तरह-तरह के गुलाब दिखाई पड़े थे। वहां के सबसे बड़े किस्म के गुलाब जो "सर वाल्टर स्काट" के नाम से जाने जाते थे, स्काट ने फारस से ले जाकर इंग्लैंड में उगाया था। कवि चौधरी ने भी गुलाब का एक पौधा कलकत्ता से लाकर अपने बगीचे में लगाया था। उस पौधे से सात फूल खिले थे, जिसे देखकर कवि का हृदय मचल उठा था। इसी का परिणाम है "गुलाब" कविता।

"गोलाप" (गुलाब) रघुनाथ चौधरी की एक अनुपम कविता है। कवि ने गुलाब का सुंदरी के रूप में कल्पना की है। पूरी कविता में गुलाब को संबोधित करके कवि ने उसके रूप-सौंदर्य का वर्णन किया है। यह गुलाब कवि के सुनहरे स्वप्न का प्रतीक है। किसी अनजान प्रेमिक के स्पर्श से किसी मरुस्थल में फूल कर गगनचुम्बी कलोचच को रूप-माधुरी से मुग्ध करने वाली इस गुलाब सुंदरी ने हिन्दुस्तान विजय करके भी शताधिक प्रेमिक के हृदय में हाहाकार मचाया है। कवि के अनुसार यह गुलाब सौंदर्य का मूर्त रूप है। वस्तुतः गुलाब अरबीस्तान के बसरा राज्य से आकर धीरे-धीरे भारतवर्ष में प्रसिद्धि प्राप्त करने वाला फूल है। इसलिए प्रस्तुत कविता में फारसी शब्दों के प्रयोग भी देखें जा सकते हैं। अंतिम स्तबक में सौंदर्य के प्रति कवि की स्वर्गीय आकांक्षा प्रकट हुई है।

भावानुवाद : गोलाप (गुलाब)

1) हे मेरी गुलाब राणी, तू किसके स्पर्श से श्यामल पत्ते की घूंघट हटा कर किसकी ओर देखकर हंस पड़ी।

2) वह कौन-सा नन्दन वन है, जहां अप्सरा, बुलबुल नाचते हैं और जहां से किसी शापवश वह धरती पर उतर कर मर्त्य की विलास-वाटिका में प्रेम-मदिरा में मशगूल हो रही है।

3) जब हासनाहाना (तीव्र गंधयुक्त फूल) खिलकर उसकी तीव्र गंध फैला देती है, तब किसी एक दिन वसंत काल की चांदनी रात को आकाश का विरही चांद उसे (गुलाब) देखकर क्या अपनी तृष्णा मिटा सकी है।

4) अरब की प्यारी बसरा राणी के गुलबदन को तू तृप्त करती है, तेरे रूप तरंग में मानो पपीहा का स्निग्ध करुण स्वर तैरता रहता है।

5) जिस दिन तू मरुधान में खिल उठी, तेरी खुशबू चारों ओर फैल गयी, उस दिन गगनचुम्बी कलोचच ने भी तेरी रूप-माधुरी पान की।

6) क्या तू बेविलन के गुलबगीचे में फूल की राणी थी? तू स्वर्ग का नन्दनवन शून्य में सजा कर कवि (जैसे- उमर खैयाम, हाफिज इत्यादि) की वाणी में भी आ गयी।

7) रूप, रस, गंध, स्पर्श, प्रेम के स्पर्श से तूने प्यारे हिन्दुस्तान पर भी विजय हासिल की अर्थात् भारतवर्ष के सभी को मुग्ध किया, बादशाह (मुगल), हरम को गुलजार करके उनकी दिल-दरिया में भी बाढ़ (प्रेम की) लायी।

8) तेरे इस रूप में जगत मुग्ध है, क्योंकि तूने प्रेम की विमलधारा बहायी है, क्या तू ही दिल्ली की बेगम नूरजहां की दिलबहारा थी? (कथित है कि नूरजहां ने ही सर्वप्रथम गुलाब से गुलाबजल बनवाया था।)

9) किस सुंदरी के चिकने गाल में तेरे रंग (गुलाबी) चढ़ाकर सौंदर्य प्रदान किया था। दिल्ली की मुमताज बेगम ने भी ऐसा सौंदर्य प्राप्त किया था, जिसे स्मरण कर शाहजहां ने भुवन विजयी ताजमहल का निर्माण किया।

10) तेरे कोमल हृदय में न जाने किसी काव्य-गाथा, अतीत की स्मृति, उदास प्रेम का मूर्त विकास तथा कितने विरही के हाहाकार समाये हुए हैं।

11) हे मेरी दर्दी पखंडी, क्या तू मेरे मानस-कुंज में भी खिल उठेगी, हे मेरी प्रिये, क्य तू पपीहा (तृष्णातुर कवि) के लिए पुलक भरे मिलन बाँसुरी की तरह बज उठेगी

8.7.2 नलिनीबाला देवी (1898-1977 ई.)

संक्षिप्त परिचय : असम की महादेवी के रूप में ख्यात नलिनीबाला देवी का जन्म बरपेटा नगर में 1898 ई. के मार्च महीने में शुक्ल दशमी के दिन हुआ था। असम के स्वतंत्रता संग्राम के अन्यतम प्रधान नेता कर्मवीर नवीनचन्द्र बरदलै की दुहिता नलिनीबाला को बचपन से ही एक सांस्कृतिक वातावरण प्राप्त हुआ था। तत्कालीन स्त्री-शिक्षा की समुचित व्यवस्था न होने के कारण घरेलू शिक्षक के अधीन इनका विद्यारंभ हुआ था। संस्कृत के अतिरिक्त असमिया, इतिहास, गणित, भूगोल आदि की शिक्षाएं प्राप्त हुई थीं।

तत्कालीन बाल-विवाह की प्रथा के अनुसार बारह वर्ष की उम्र में नलिनीबाला का विवाह जीवेश्वर चांकाकाकति के साथ हुआ। विवाह के साल भर बाद इनका गौना हुआ। पांच संतान की मां होने के उपरांत नलिनीबाला विधवा हो गयी और पिता के घर वापस आयीं। पिता से उन्हें केवल सांत्वना ही नहीं मिली थी बल्कि अध्ययन और काव्य-चर्चा के लिए प्रेरणा भी। दुर्भाग्यवश इन्हें दो पुत्र संतान को खोना पड़ा। फलतः नलिनीबाला देवी की वेदना अंतर्मुखी हो गयी। उनकी कविता में रहस्यवादी भावना घनीभूत हो गयी।

नलिनीबाला की काव्य-कृतियाँ हैं– "संधियार सुर (1928 ई.), सपोनर सुर (1943 ई), परशमणि (1954), युगदेवता (1958), जागृति (1962), अलकानन्द (1964), अंतिमर सुर (1977), अन्य कृतियों में स्मृतितीर्थ (जीवनी), विश्वदीपा (नारी जीवनी), सदरि पेटेल, बालोपयोगी नाटक– शेष पूजा, पारिजात, अभिषेक, प्रहलाद, मीराबाई, एरि अहा दिनबोर (आत्म-जीवनी), शांति-पथ (निबंध संकलन) इत्यादि। "अलकानन्द" काव्य ग्रंथ के लिए इन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला था। कवयित्री को अपनी साहित्यिक सेवा के लिए "असम साहित्य सभा" की सभानेत्री के रूप में निर्वाचित की गयी थी। इन्हें विविध अवसरों पर अनेक सम्मान प्राप्त हुए।

बचपन से ही काव्य का अनुशीलन करते रहने पर भी "संधियार सुर" (संध्या के स्वर) काव्य-संकलन के प्रकाशन के बाद ही वे असमिया कवयित्री के रूप में प्रतिष्ठित हुई। नलिनीबाला के काल-प्रवाह में दो धाराएं हैं– अतीन्द्रियवादी या रहस्यवादी तथा स्वदेश प्रेम मूलक। दोनों में ही उन्हें सफलता मिली है।

नलिनीबाला असमिया काव्य की रहस्यवादी कवियों में अन्यतम हैं। नैसर्गिक प्रकृति के विराट प्रांगण में प्रतिबिम्बित सनातन सौंदर्य की झलक की उपलब्धि कवियत्री ने पेड़-पौधों, वृक्ष-लताओं, धरती-आकाश आदि के माध्यम से की है। इनके अंतराल में छिपे हुए सत्यम्, शिवम्, सुंदरम् के साथ मिलन की आकांक्षी हैं। जीवन की विराट भूमि पर प्रियतम के साथ मिलने के लिए नलिनीबाला महादेवी की तरह तड़पती दिखती है। आध्यात्मिक वेदना की करुणा ने इनकी कक्तिाओं को हिमसिकत पुष्पों की भांति रमणीय बना दिया है। भारतीय दर्शन, वेदांत, जन्मांतरवाद, भक्तिवाद आदि ने कवयित्री को जिस तरह मुग्ध किया है, वैसे बुद्ध और महात्मा जी के साम्य, मैत्री और करुणा ने, रवीन्द्र नाथ के काव्यिक-सौंदर्य और रहस्यवाद ने भी इनके काव्य को भावव्यंजक, रहस्यधन तथा कोमल-मधुर किया है। यथा–

मइतो नेगाओं जान

पराणर गोपन औंरत,
मइतो नेजानो निजे
कोने मोर प्राण-वीण
बाइ जाय नजना सुरत।

(माइतो नेगाओं जान)

(मैं तो गाती नहीं, न जाने वह कौन है जो मेरे प्राण के निमृत स्थान में जाता है। मैं तो स्वयं नहीं जानती, वह कौन है जो मेरी जीवन-बीण अनजान-स्वरों से बजाता है।)

तुलनीय–

किसी की व्यथासिक्त चितवन,
जगाती कण-कण में स्पन्दन,
गूँथ उनकी सांसों के गीत
कौन रचता विराट संगीत?

– महादेवी वर्मा

असम के स्वतंत्रता संग्राम के अग्रणी नेता नवीनचन्द्र बरदलै के व्यक्तित्व से पुत्री नलिनीबाला देवी विशेष प्रभावित हुई थी। राष्ट्रीय आंदोलन ने कवयित्री के मन-मस्तिष्क को झकझोड़ा था। इसके फलस्वरूप स्वदेश-प्रेम तथा राष्ट्र-प्रेम से संबंधित कविताएं उनकी कलम से फूट पड़ी थीं– जिनमें "जनमभूमि", "मुक्ति दूत", "तुमि यदि असमिया", "भारती", "भारतवर्ष", "जागृति", "जय-यात्रा", "नापुर सपोन" इत्यादि उल्लेखनीय हैं। पराधीन भारतवर्ष की मुक्ति की आकांक्षा कवयित्री इस प्रकार करती थी–

उत्ति ष्ठित! जाग्रत रवे
प्रतिध्वनित उठे बारे बारे
अन्तः स्थल भेदि
भाहि जाय शत द्विधा रात बन्धनर
आजुरि छिड़ि ब खोजे सबल बाहुरे
दृढ़ लोहार शिकलि,
जागि उठे सुप्त शक्ति
तरंगे आधारित
उल्लसित अजेय पौरुष

– मुक्ति

(अन्तः स्थल भेद कर बारम्बार "उत्तिष्ठित जाग्रत" की प्रतिध्वनियां उठ रही हैं। शत-शत द्विधाएं, शत-शत बंधन ढह जाते हैं। सशक्त भुजाओं से दृढ़ लौह-श्रृंखला भी तोड़ देना चाहते हैं। उल्लसित अजेय पौरुष युक्त, सुप्त शक्ति तरंगों को भेद कर जाग उठती है। उसे चाहिए मुक्ति, मुक्ति।)

भाषा-शैली

नलिनीबाला देवी की भाषा अनुभूतिपरक है। संस्कृत तत्सम शब्दों के प्रति उनका आकर्षण दिखायी पड़ता है। भाषा अत्यंत परिष्कृत, मधुर और कोमल है। इनकी काव्य-भाषा हृदय की वेदना से स्पन्दित है। छंद-प्रयोग, शब्द चयन, भाव-व्यंजना और चित्र-रचना की मनोहरता से कवयित्री का काव्य समृद्ध है। कवयित्री ने छंद के संबंध में स्वीकार किया है– "भावना और छंदों के संदर्भ में कविगुरू रवीन्द्रनाथ ठाकुर के भावों और छंदों ने मेरे मन को विशेष प्रभावित किया है।" अनुप्रास के प्रति कवयित्री का विशेष मोह परिलक्षित होता है। लाक्षणिकता और चित्रमयता उनकी कविताओं की प्रधान विशेषताएं हैं।

वाचन : ज़नमभूमि

मेलिलों प्रथम चकु
तोमार कीलाते आइ
जनमर आदिम पुवात,
मुदिम आकौ चकु
तोमार कोलाते शुइ
जीवनर शेष संधियात। 1
मरार पिचतो येन
पाओंहि आकौ ठाइ
चेनेहर शीतली कोलात,
भागरूवा आतमाइ
शेषर जिरणि लै
जिराबहि तोमार छाँयात। 2
परवी हइ आकाशर
बुकुत फुरिम उरि
बाँह लम ओख बिरिखत,
पुवँतिर लगे लगे

जगाम तोमाक निते
बनरीया सुवदि गीतत। 3
आकाशर तरा हइ
र लागि चाइ रम
सेउजीया शुवनि जेउति,
जोनाकत मिल हइ
बिमान पयत रइ
ओरे राति करिम आरति। 4
हिमालय पर्वतर
शुकुला टिड़ त गई
फुलि रम मानसी बिलत,
मलयार चोंवरत
पारिजात रेणु सानि
ढुलाम तोमार चरणत। 5
नदी हइ पखालिम
दुखनि चरण निते
माटि हइ मिलिम बुकुत,
सोगोवाली मेघ हइ
रडा हाँहि बिरिंगाम
सेता परा दुखनि ओंठत। 6
तोमार इ धूलि बालि
तोमार आकाश बायु
आइ मोर स्वरगर बास,
तुमि मोर मरतर
पुण्य मुकुतिर भूमि
तुमि मोर तीर्थर प्रभास। 7
ओ मोर चेनेही देश
तोमार दुखीया पजा
रचा तात शांतिर स्वरग,
कत पाम एने प्रीति

सेवार महिमामय त्याग। 8
दुखीयार भड़ पंजा
एकोरवनि तीर्थ तात
एकोखनि पुण्यर आगम,
मुरिले पुनर आहि
दुखीया देशते मोर
लओं येन पुनर जनम। 9

(शब्दार्थ : नेलिलो-खोली, कोलात-गोद में, चकु-आँख, मुदिम-बंद, करूंगी, भागरुवा-परिश्रांत, बाँह लम-घोंसला बनाऊंगी, पुवति-पौ फटना, ढुलाम-डुलाऊंगी, पखालिम-धोऊंगी, सेता-मलिन, पजा-कुटिया, आहि- आकर।)

टिप्पणी

"जनमभूमि" नलिनीबाला देवी की एक स्वदेश प्रेमानुराग की कविता है। यह कविता उनके "संधियार सर" नामक काव्य-संकलन में संकलित है।

कवयित्री जन्मतंरवाद पर विश्वास करती है। अपनी जन्मभूमि से कवयित्री का प्रेम है कि वे मरने के बाद बार-बार इस पवित्र भूमि पर जन्म लेना चाहती है, चाहे उन्हें पक्षी, तारे, फूल, नदी, धूल– कुछ भी होना क्यों न पड़े। जन्मभूमि की प्रत्येक धूल कवयित्री के लिए पवित्र है। इसलिए जन्मभूमि के दुखी-दरिद्र की कुटियों में भी वे पुण्याश्रम देखती है और इसी में शांति के स्वर्ग की कल्पना भी करती है।

भावानुवाद

जनमभूमि (जन्मभूमि)

1) हे माता! जन्म के प्रथम प्रभात में ही मैंने तुम्हारी गोद में आँखे खोलीं हैं और जीवन की अंतिम साँस में, तुम्हारी गोद में सोकर ही आँखें बंद करूंगी।

2) मृत्यु के बाद भी तुम्हारी शीतल प्यार भरी गोद में मुझे जो जगह मिले, तुम्हारी छाया में वहीं परिश्रांत आत्मा अंतिम विश्राम लेगी।

3) पक्षी होकर आकाश के वक्ष में उड़ती फिरूंगी, ऊँचे वृक्षों पर घोंसला बनाऊंगी और पौ-फटते ही सुरीले वन-गीतों से, तुम्हें रोज जगाया करूंगी।

4) आकाश का सितारा बनकर तुम्हारी हरी-भरी ज्योति को एकटक निहारती रहूंगी और ज्योत्स्ना से मिलकर, आकाशी पथ पर पूरी रात तुम्हारी आरती उतारुंगी।

5) हिमालय पर्वत की सफेद चोटी पर चढ़कर मान सरोवर में खिलती रहूंगी। मलय रूपी चंवर में, पारिजात रेणु भिगोकर तुम्हारे चरणों पर डुलाती रहूंगी।

6) नदी बनकर मैं सर्वदा तुम्हारे दोनों चरण धोऊंगी और मिट्टी बनकर तुम्हारे वक्ष में मिल जाऊंगी। स्वर्णिम मेघ बनकर तुम्हारे दोनों मलिन होठों में रंगीन हंसी भर दूंगी।

7) हे माता! तुम्हारा यह रज-कण, आकाश और वायु-सभी मेरे लिए स्वर्ग-निवास हैं। तुम मेरे लिए मर्त्य की, पुण्य मुक्ति भूमि तथा तीर्थस्वरूप हो।

8) हे मोर स्नेही देश! तुम्हारी गरीब कुटिया में स्वर्ग की शांति है। ऐसी प्रीति, प्राणस्पर्शी भाषा और सेवा का महिमामय त्याग– मैं कहां पाऊंगी।

9) गरीबों की जीर्ण-शीर्ण कुटी ही एक-एक तीर्थ है, एक-एक पुण्याश्रम है। मरने पर जैसे भी हो, मैं अपने इस गरीब देश में पुनः जन्म लूं।

8.8 सारांश : असमिया छायावादी काव्य का मूल्यांकन

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आधुनिक भारतीय भाषाओं के अन्यतम असमिया भाषा के संदर्भ में सामान्य जानकारी प्राप्त हुई। भारतीय नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना से असमिया साहित्य भी कैसे आंदोलित हुआ इसका आभास भी इस इकाई में देने का प्रयास किया गया है।

असम यद्यपि उत्तर-पूर्वांचल में स्थित है, फिर भी हर राष्ट्रीय आंदोलन में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका सराहनीय है। नवजागरण के फलस्वरूप सामाजिक स्तर में आने वाले परिवर्तनों को बौद्धिक तथा साहित्यिक जागरुकता ने काफी हद तक प्रभावित की थी। भाषा की प्रतिष्ठा, शुद्धता, सरलता और सरसता के साथ आधुनिक मानक रूप प्रस्तुत करने की भूमिका इस युग में देखी जा सकती है। कविता में भावों, विचारों अर्थात् कथावस्तु को समकालीन सांस्कृतिक तथा राजनैतिक जीवन से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य संपादित हुआ। प्रकृति ने कवि-हृदय को गहराई दी, सूक्ष्म चेतना प्रदान की, सौंदर्यानुभूति के साथ इस युग के कवि ने प्रकृति का मानवीकरण भी किया। राष्ट्रीयता इस युग की अन्यतम प्रमुख विशेषता रही है। इसके कारण स्वदेश-प्रेम, स्वदेशी-भाषा को समृद्ध करना, स्वसंस्कृति की अस्मिता बनाये रखने में सार्थक प्रयास दिख पड़े। कवि मानवतावादी मूल्यों से प्रतिबद्ध होने के कारण सामान्य जनजीवन के प्रति सहानुभूतिशील हो पड़े, जिसके कारण "मानव" को देवत्व के स्थान में आसीन कराने में समर्थ हो सके। स्त्री-पुरुषों की समानता इस युग की एक अन्यतम विशेषता है। मिशनरियों से लेकर असम के अंतिम छायावादी कवि तक यह विशेष प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है। भाषा की प्रतिष्ठा, सामाजिक सुधार से लेकर मानवतावादी तथा राष्ट्रीयता की भावना को वरीयता प्रदान करके इस युग के कवियों ने असमिया पाठकों के मानसिक क्षितिज को विस्तार प्रदान किया तथा स्वस्थ समष्टिवाद के प्रति उनकी आस्था उत्पन्न की। भाषा में अधिक संप्रेषणीयता लाकर, छंदों को अधिक गेयता और लय से संयुक्त रखकर इस युग के कवियों ने काव्य-सौंदर्य को और अधिक निखारा। विभिन्न भारतीय और अंग्रेजी साहित्य में से भी अनुवाद, रूपांतरण, अनुकरण इस युग में हुआ, जिससे असमिया साहित्य का विशेष परिवर्द्धन हुआ। फलतः असमिया साहित्य का क्षितिज विस्तारित हुआ।

बोध प्रश्न 4

1) निम्नांकित प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

क) रघुनाथ चौधरी के तीन काव्यों के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

ख) रघुनाथ चौधरी की प्रथम कविता कौन-सी है और कहां प्रकाशित हुई थी?

.....

.....

.....

.....

ग) रघुनाथ चौधरी के काव्य के कौन-से दो रूप?

.....

.....

.....

.....

घ) रघुनाथ चौधरी को हिंदी के किस कवि के साथ तुलना की जा सकती है?

.....

.....

.....

.....

बोध प्रश्न 5

1) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए :

क) नलिनीबाला देवी किनकी पुत्री है?

.....

.....

.....

.....

ख) नलिनीबाला के तीन काव्यों के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

.....

ग) नलिनीबाला के काव्य-प्रवाह की कितनी धाराएं हैं और क्या-क्या?

.....

.....

.....

.....

घ) नलिनीबाला के काव्य में किनका प्रभाव है?

.....

.....

.....

.....

अभ्यास 1

क) "गोलाप" (गुलाब) कविता का सारांश लिखिए। (10 पंक्तियों में)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ख) व्याख्या कीजिए–

i) रूप रस गंध परश प्रेमत ..... दिल दरियात तुलिकि बान।

ii) फुलिबि ने मोर मानस कुंजत ..... पुलक भरा मिलन बाँही।

अभ्यास 2

क) "जनमभूमि" (जन्मभूमि) कविता के वर्णन-विषय को दस पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ख) व्याख्या कीजिएं–

i) मरार पिचतो येन ..... जिराबहि तोमार छायात।

ii) दुखीयार भगा पंजा ..... लओं येन पुनर जनम।

8.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) नेओ, डिम्बेश्वर– नतुन पोहरत असमिया साहित्यर बुरंजी, शुवरी प्रकाश, गुवाहाटी -781005

2) शर्मा, डॉ० सत्येंद्र नाथ– असमिया साहित्यर समीक्षात्मक इतिवृत्त, सौमार प्रिटिंग एण्ड पब्लिशिंग कम्पनी, रिहाबारी, गुवाहाटी -781008

3) शर्मा तथा भराली (सं०)– कवित्री माला (असमिया)– प्रथम और द्वितीय खण्ड राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा

4) महंत, चित्र– असमिया साहित्य और साहित्यकार, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

8.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) क) हां, ख) नहीं, ग) नहीं, घ) हां, ङ) नहीं।

2) क) 1873 ई., ख) 1846 ई., ग) नाथान ब्राउन, घ) आनंदराम ढेकियाल फुकन ङ) असमिया शब्दकोश

3) क) बर्मी सेना का आक्रमण, ख) असमिया भाषा की प्रतिष्ठा में सहायक होना, ग) आत्माराम शर्मा द्वारा अनुदित "बाइबल", घ) शिवसागर नगर की भाषा के आधार पर,

बोध प्रश्न 2

i) क i) ✓ ii) X iii) ✓ iv)
ख i) ✓ ii) X iii) ✓ iv)

2) i) ब्राह्म समाज, ii) हेमचन्द्र बरुवा, iii) अरुणोदय पत्रिका में, iv) व्यंग्य-प्रधान, v) अभिमन्यु वध (रमाकांत चौधरी), "सीताहरण" (भोलानाथ दास)

बोध प्रश्न 3

1) क) लक्ष्मीनाथ, ख) कलकत्ता, ग) जोनाकी, घ) रजनीकांत, ङ) रमाकांत

2) क) ग्रामीण, ख) चन्द्रकुमार, ग) नारी, घ) प्रकृति ङ) ओमर तीर्थ

बोध प्रश्न 4

1) क) सादरी, केतेकी, दहिकतरा, ख) "मरमर परवी"– जोनाकी में, ग) प्रकृति विषयक तथा वैराग्यमूलक, घ) सुमित्रानंदन पंत।

बोध प्रश्न 5

1) क) कर्मवीर नवीनचन्द्र बरदलै, ख) संधियार सुर, सपोनर सुर, अलकानन्दा, ग) दो-रहस्यवादी और स्वदेश प्रेम मूलक, घ) बुद्ध, महात्मा गांधी और रवीन्द्र नाथ।

इकाई 9 ओड़िया साहित्य

इकाई की रूपरेखा

9.0 उद्देश्य
9.1 प्रस्तावना
9.2 ओड़िया साहित्य की पृष्ठभूमि
  9.2.1 भाषा
  9.2.2 लिपि
  9.2.3 साहित्य
9.3 आधुनिक उड़िया साहित्य : पृष्ठभूमि
  9.3.1 राधानाथ राय युग
  9.3.2 सत्यबादी युग
  9.3.3 सबुज युग
  9.3.4 प्रगति युग
9.4 उड़िया, पद्य गद्य : नवजागरण
  9.4.1 कविता
  9.4.2 कहानी
  9.4.3 उपन्यास
  9.4.4 नाटक
  9.4.5 निबन्ध
9.5 प्रमुख रचनाकार
  9.5.1 फकीरमोहन सेनापति
  9.5.2 राधानाथ राय
  9.5.3 मधुसूदन राव
  9.5.4 गोपबन्धु दास
9.6 सारांश
9.7 उपयोगी पुस्तकें
9.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

9.0 उद्देश्य

नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन से संबंधित पाठ्यक्रम के दूसरे खंड की यह अंतिम इकाई है। यह इकाई 7 उड़िया भाषा साहित्य से संबंधित है। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- उड़िया भाषा साहित्य के पृष्ठभूमि के बारे में बता सकेंगे,
- इस भाषा की लिपि एवं साहित्य का परिचय दे सकेंगे,
- उड़िया भाषा के साहित्य में नवजागरण के आगमन एवं विस्तार का विश्लेषण कर सकेंगे,
- इस भाषा साहित्य के प्रमुख साहित्यकारों के बारे में बता सकेंगे, तथा
- कुछ महत्वपूर्ण रचनाकारों की रचनाओं का अध्ययन एवं विश्लेषण कर सकेंगे।

9.1 प्रस्तावना

हिंदी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम-05 के अंतर्गत आप भारतीय साहित्य के उस महत्वपूर्ण भाग का अध्ययन का रहे हैं, जिनमें आधुनिकता एवं राष्ट्रीयता का विकास विस्तार हुआ। इस इकाई सात में हम ओड़िया भाषा साहित्य का अध्ययन करेंगे। इससे पहले आपने पूर्वांचल के एक महत्वपूर्ण भाषा बांगला के साहित्य का अध्ययन किया। आपने देखा किस प्रकार नवजागरण का प्रवेश द्वार खोलने के लिए सर्वप्रथम विद्यासागर जैसे समाज सुधारक आगे बढ़े। राजा राममोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर आदि ने जहां सामाजिक चेतना जगाई वहीं साहित्य को नई दिशा देने में भी योगदान दिया। शरतचंद्र, रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा नजरुल ने अपनी रचनाओं से बांगला भाषा साहित्य को ही नहीं समृद्ध किया, बल्कि एक नये समाज के निर्माण तथा समन्वय की भावना को भी नया आयाम दिया। विश्व बन्धुत्व के संदेश द्वारा इन्होंने संकीर्णता को दूर करने का सफल प्रयास किया। उड़िया भाषा का क्षेत्र बंगाल से लगा हुआ है। इकाई में हम सर्वप्रथम इस बात पर विचार करेंगे कि इस भाषा साहित्य की पृष्ठभूमि कैसी रही। किस प्रकार तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों ने नवजागरण के साहित्य को प्रभावित किया। ओड़िया भाषा किस प्रकार पनपी, किस प्रकार उसमें साहित्य रचा जाने लगा? प्रारंभिक साहित्य किस प्रकार का था? इसके अलावा इसकी लिपि किस प्रकार विकसित हुई इसकी भी हम संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करेंगे। आधुनिक ओड़िया साहित्य की शुरुआत कहां से होती है। किन-किन रचनाकारों ने इस भाषा-साहित्य को समृद्ध किया इन्हीं सब बिन्दुओं पर इकाई में विचार किया जाएगा। इसके साथ हम कुछ महत्वपूर्ण रचनाकारों के कुछ रचनाओं का अंश भी पढ़ेंगे। तो आइये, सर्वप्रथम ओड़िया भाषा, लिपि एवं साहित्य को जानें।

9.2 ओड़िया साहित्य की पृष्ठभूमि

उड़िया हमारे देश के प्रमुख भाषाओं में से है। यह उड़ीसा या उत्कल प्रांत की भाषा है। मौर्य काल में यह कलिंग राज्य के नाम से प्रसिद्ध था। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग ढाई करोड़ है। उड़ीसा राज्य के अलावा यह बंगाल के मेदिनीपुर, बिहार के सिंहभूमि सराईकेला, खरसुआ, मध्य प्रदेश में पुरलझर, विन्द्रानुआगड़, रायगढ़ सारगढ़, वस्तर, कॉकेर तथा आंध्र प्रदेश के इच्छापुर, उद्यानखण्ड, तरुला टेझालि, चिकिविशाखापाटण आदि क्षेत्रों में भी बोली जाती है।

9.2.1 भाषा

उड़िया भारतीय आर्य भाषाओं में से ही है। भाषा वैज्ञानिकों के अनुसार उड़िया भाषा की उत्पत्ति आर्य, द्रविड़ और मुण्डारी भाषाओं के मेल से हुआ। इस भाषा की भौगोलिक सीमाएं मगधी (मैथिली, बांगला), मराठी, तेलुगु क्षेत्रों को छूती है। अतः इसमें इन भाषाओं के यथेष्ट शब्द मिलते हैं।

9.2.2 लिपि

उड़िया लिपि की उत्पत्ति अन्य उत्तरी भारतीय भाषाओं की लिपियों के समान ही ब्राह्मणी से हुई है। ध्यान से देखने पर नागरी तथा उड़िया लिपि में समानता नजर आयेगी। उड़िया लिपि गोलाकार है। इसका मुख्य कारण लिखने की सामग्री है। पहले ताल पत्र पर लिखा जाता था। लोहे के बने कलम से सीधी रेखा खींचने से पत्ता कट जाया करता था, अतः उसे गोल घुमाकर लिखना शुरू किया गया जिससे आसानी से लिखा जा सके। इस प्रकार धीरे-धीरे इसका वर्तमान रूप स्थिर हो गया।

9.2.3 साहित्य

अन्य भारतीय भाषाओं की तरह उड़िया भाषा के साहित्य में भी काल और प्रवृत्ति के अनुसार बदलाव आता रहा। मुख्य रूप से हम उड़िया साहित्य को तीन भागों में रख सकते हैं।

1) आदि युग या सारलादास युग– 11वीं शताब्दी से 16वीं तक

2) क) मध्य युग– 16वीं शताब्दी से 18वीं शती तक
ख) रीतिकाल या उपेन्द्र-भंजयुग– 18वीं शती से 19वीं शती के पूर्वार्द्ध तक

3) आधुनिक युग– 19वीं शती पूर्वार्द्ध से अब तक

ओड़िया साहित्य की शुरुआत बौद्ध साहित्य से होती है। "बौद्ध गान ओ दोहा" को उड़िया का पूर्व रूप माना जाता है। काहनुपा, शवरीपा तथा लुईपा उड़िया ही थे। बौद्ध साहित्य के बाद वत्सादास, शारलादास तथा बलरामदास का नाम आता है। इन वत्सादास को उड़िया साहित्य का आदि कवि माना जाता है। उनकी मुख्य कृति है "पार्वती विवाह" किन्तु शारलादास तथा बलराम दास काफी लोकप्रिय एवं महाकवि माने गये।

सारलादास वास्तव में उड़िया के पहले जातीय (राष्ट्रीय) कवि हैं। उन्होंने अपने को "शूद्रमुनि" और जन्म से अज्ञान कहा। उनका पहला नाम सिद्धेश्वर पारिडा था। किंवदंती के अनुसार देवी सारला की कृपा से वे कवि बने अतः उन्हें सारलादास कहा जाने लगा। इन्होंने उड़िया "महाभारत" की रचना की। अपने महाभारत में सारलादास ने मूल संस्कृत महाभारत की पूरी कथा उतार दी हो ऐसी बात नहीं बल्कि उन्होंने अपनी कल्पना से नई-नई कथाएं इसमें जोड़ी हैं।

बलरामदास ने भगवतगीता, अमरकोष, उदातगीता, बारमासी आदि रचनाएं की।

(इन आदि कवियों के बारे-में विस्तार से आप ऐच्छिक पाठ्यक्रम-04 में पढ़ सकते हैं

रीतिकाल में हिंदी काव्य रचनाओं की तरह उड़िया में भी पौराणिक एवं काल्पनिक रचनाएं की गई। दरबारी वर्णन एवं व्यापक नायिकाओं के वर्णन को ही काव्य का आधार बनाया गया।

मुगल साम्राज्य के पतन तथा अंग्रेजी काल के शुरुआत से जहाँ उड़ीसा राज्य में राजनीतिक बदलाव आया वहाँ साहित्य में भी परिवर्तन हुआ। आगे हम आधुनिक उड़िया साहित्य का ही अध्ययन करेंगे। इससे पूर्व कुछ बोध प्रश्नों का उत्तर दें।

बोध प्रश्न

1) उचित शब्द रखकर वाक्य पूर्ति कीजिए :

क) उड़ीसा राज्य को ..... भी कहते हैं।

ख) मौर्य काल में उड़ीसा को ..... राज्य कहा जाता था।

ग) उड़िया भाषा राज्य से बाहर ..... ; .....
..... आदि जगहों में भी बोली जाती है।

घ) उड़िया भाषा ..... तथा ..... आदि भाषाओं के मेल से बनी है।

दो तीन पंक्तियों में उत्तर लिखें।

2) उड़िया की लिपि गोलाकार क्यों बनी?

.....

.....

.....

3) उड़िया साहित्य को मुख्य रूप से कितने भागों में विभक्त कर सकते हैं।

.....

.....

.....

4) प्रारंभिक उड़िया साहित्य किस प्रकार का है?

.....

.....

.....

5) उड़िया साहित्य के तीन प्रारंभिक कवियों का नाम लिखिए।

.....

.....

.....

6) निम्नलिखित रचनाओं के रचनाकारों का नाम लिखिए:

महाभारत .....

पार्वती मंगल .....

अमरकोष .....

9.3 आधुनिक उड़िया साहित्य : पृष्ठभूमि

मध्यकाल में धीरे-धीरे मुगल साम्राज्य का विघटन होने लगा था। उड़ीसा राज्य पर मुख्य रूप से मुगलों एवं मराठों का शासन था। अंग्रेजों के आगमन के बाद एक ओर जहाँ राजनीतिक क्षेत्र में परिवर्तन हुआ वहाँ जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में भी बदलाव आया। भारत के कई भागों में विशेषकर बंगाल में अंग्रेजी साहित्य के प्रति लोगों का विशेष लगाव बढ़ा। एक प्रकार से सभी जगह लोगों को अंग्रेजियत के प्रभाव से बदलाव एवं उत्थान की आशा हुई। किंतु यह मोह अधिक दिनों तक न रहा। भारतीय समाज का बुद्धिजीवी वर्ग सचेत हो गया। उसने अंग्रेजी द्वारा नई सूचनाएं प्राप्त की और उसके साथ अपने प्राचीन संस्कृति के गौरव को जोड़ कर एक नए जागरण के लिए कार्य करना आरंभ किया। उड़ीसा में भी प्रथमतः अंग्रेजी की ओर रुझान हुआ किंतु यह अधिक दिनों तक नहीं रहा। समय की नब्ज को पकड़ने में एक युग पुरुष सफल रहे उनका नाम था राधानाथ राय। उन्होंने उड़िया साहित्य को एक नई दिशा दी जिससे इस युग को आधुनिक युग के साथ राधानाथ राय युग से भी जाना गया।

समय और परिस्थिति साहित्य को प्रभावित करते हैं। उन्नीसवीं सदी में हुए नवजागरण के पीछे भी परिस्थितियां सहायक बनी। किसी रचनाकर को तथा उसके साहित्य को समझने के लिए उसके समय की विभिन्न परिस्थितियों का आकलन भी आवश्यक है। उड़ीसा में हुए नवजागरण के समय जिन साहित्यकारों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई उनको परिस्थितियों ने भी प्रभावित किया था। आइए, उस समय की भिन्न परिस्थितियों की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करें।

राजनीतिक स्थिति : अंग्रेजों के आगमन से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व उड़ीसा पर मराठों का शासन रहा। यह काल यहाँ के लोगों के लिए बड़ा दुखदायी था। लूटमार कर संपत्ति इकट्ठा करना ही मराठों का कार्य था। सारा क्षेत्र शोषण एवं आतंक का बन गया था। ऐसे में किसी प्रकार की उन्नति संभव नहीं थी – साहित्य तो दूर की चीज थी। फिर धीरे-धीरे जिस प्रकार भारत के अन्य भागों में अंग्रेज पांव जमा रहे थे, उसी प्रकार उड़ीसा की ओर भी वे बढ़ रहे थे। अक्तूबर 1803 ई० तक बालेश्वर, पुरी और कटक पर अपना प्रभुत्व जमा उन्होंने अंग्रेज़ी शासन स्थापित कर लिया। यहाँ से इस क्षेत्र पर एक-दूसरे प्रकार का शोषण प्रारंभ हुआ। साथ ही बंगाल, तेलंगाना तथा बिहार एवं मध्य प्रदेश से घिरे इस क्षेत्र

में भाषा साहित्य की उन्नति रुकी रही। तत्कालीन सजग लेखकों राधानाथ राय तथा फकीर मोहन सेनापति की रचनाओं में उस समय के दयनीय स्थिति का वास्तविक चित्रण मिलता है। अंग्रेजों की शोषण नीति के कारण लगभग संपूर्ण भारत में उस समय विद्रोह का निर्माण हो रहा था। सामन्त से लेकर जनता तक अवसर की ताक में थी। और 1857 में यह विद्रोह भड़क उठा। अंग्रेज शासक डलहौजी की हस्तक्षेप नीति के तहत अन्य राज्यों के साथ संबलपुर को भी अंग्रेजी शासन में ले लिया गया था तथा राजा को गोद लेने के अधिकार से वंचित कर दिया गया था। दूसरी ओर नई शिक्षा व्यवस्था, रेल, डाक, तार द्वारा कुछ सामाजिक सुधार भी हुए जिससे जनता में चेतना आई। वे अपने अधिकार के लिए सचेत हो गए। सन् सत्तावन के विद्रोह के बाद कंपनी का शासन विक्टोरिया के हाथ में चला गया। महारानी के आश्वासन से भारतीयों की आशा बंधी थी, लेकिन यह केवल कागज तक सीमित थी। सन् 1858 ई० में लॉर्ड कैनिंग प्रथम वाइसराय तथा गवर्नर जर्नल बनकर भारत आया। उसने चालाकी से काम लिया तथा कृषि आदि पर ध्यान दिया। विश्वविद्यालयों की स्थापना कर शिक्षा का प्रचार किया। इस समय भारत का प्रबुद्ध वर्ग अपनी अलग योजना बना रहा था इसी के तहत सन् 1885 ई० में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। संगठित रूप से आंदोलन शुरू हुआ। एक ओर अंग्रेजों द्वारा दमनचक्र बढ़त गया तो दूसरी ओर आंदोलन का रूप भी बदलता रहा। 1914 में पहला विश्व युद्ध आरंभ होने से आंदोलन की गति रुक गई। इस प्रकार इस काल में उड़ीसा में राजनीतिक गतिविधियां चलती रहीं।

आर्थिक स्थिति : तत्कालीन समय में उड़ीसा की आर्थिक दशा भी डांवाडोल बनी रही। देशी राज्यों का प्रभुत्व समाप्त होने से राज कर्मचारी बेकार हो गए थे। जमींदारों से भू संपत्ति ले ली गई थी। अतः उनमें असंतोष था। लेकिन मुख्य रूप से किसानों के लिए सरकार कुछ नहीं कर रही थी। आर्थिक नीति के तहत कच्चे माल का निर्यात एवं तैयार माल के आयात से यहां के कुटीर उद्योग ठप्प होने लग गए थे। बेकारी बढ़ती जा रही थी।

रेवेन्यू कमीशनर का ऑफिस कलकत्ता में होने से उड़ीसा की आर्थिक स्थिति पर सबसे बड़ा प्रभाव पड़ा। इससे उड़ीसा की दो तिहाई जमींदारियाँ कलकत्ता के कर्मचारियों के हाथ में चली गयी। वे उड़ीसा के निवासी नहीं थे। इस कारण उन्हें उड़ीसा के किसी भी प्रकार की उन्नति से कोई दिलचस्पी नहीं रही। और साहित्य से तो बिल्कुल ही नहीं।

सन् 1814 ई० में नमक कानून से भी यहां की आर्थिक स्थिति पर प्रभाव पड़ा। सन् 1865 ई० से 66 के बीच यहाँ बहुत बड़ा अकाल पड़ा। लोग कीड़े-मकोड़े की तरह मरने लगे। साथ में वर्षा और बाढ़ से भी तबाही मची। किंतु अंग्रेजी सरकार ने लोगों में राहत के लिए कुछ नहीं किया। उन्हें केवल यहां का शोषण करना ही मुख्य कार्य बना रहा।

सामाजिक स्थिति : कमजोर राजनीतिक एवं आर्थिक स्थिति के कारण उड़ीसा की सामाजिक स्थिति भी अव्यवस्थित हो गई थी। गरीबी के हालत में समाज में ठगों एवं लुटेरों का बोलबाला था। वर्ग व्यवस्था के कारण समाज और भी कमजोर बन गया था। ब्राह्मण समाज के ठेकेदार बने बैठे थे। किंतु उनका आचरण पतितों के समान था। तत्वज्ञान के बदले वे लोगों में वैमनस्य बढ़ा कर अपना उल्लू सीधा करते थे। धर्मशास्त्र तथा संस्कृत भाषा के वे ही अधिकारी बन बैठे थे। धर्म का भय दिखा कर लोगों में अज्ञान का प्रचार ही उनका मुख्य कार्य हो गया था। ब्राह्मणों द्वारा ज्ञान प्राप्ति के एकाधिकार को आरक्षित कर लेना शेष समाज के लिए अभिशाप बन गया था। बाल-विवाह, छुआछूत, कन्या बिक्री, पर्दा प्रथा के कारण सारा समाज विगठित हो गया था। स्त्रियों के सारे अधिकार छीन लिए गए थे। इस प्रकार इस समय का उड़ीसा का समाज अवनति की ओर ही बढ़ रहा था।

तत्कालीन जागरूक लेखकों ने इन सामाजिक बुराइयों को अपने रचनाओं में स्थान दिया तथा उसे दूर करने का प्रयत्न किया। राधानाथ राय तथा फकीर मोहन सेनापति इनमें अग्रणी रहे।

इस प्रकार हमने देखा कि राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से उड़ीसा में अवनति की ही स्थिति थी ऐसे समय में लेखकों ने परिस्थिति को बदलने तथा नए युग के निर्माण के लिए कदम बढ़ाया। इनमें राधानाथ राय प्रथम थे। आइए, उन्हीं के द्वारा उड़िया साहित्य में हुए नव युग की शुरुआत पर विचार करें।

9.3.1 राधानाथ राय युग

साहित्यिक दृष्टि से राधानाथ राय युग आधुनिक उड़िया साहित्य का आरंभिक युग है। राधानाथ राय ने अंग्रेजी साहित्य का गहराई से अध्ययन किया था। उनके साहित्य पर अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। "महापात्र" काव्य पर अंग्रेजी कवि मिलन का प्रभाव दिखाई देता है। संस्कृत के मेघदूत तुलसी पदावली का उड़िया में अनुवाद किया। "शिवाजी की उत्साहवाणी" उनकी फुटकर रचनाएं हैं। "इतालवी युवा" तथा "विवेकी" रचनाओं द्वारा उन्होंने पद्य की भाषा एवं शैली में क्रांति ला दी। इसी समय जबकि उड़िया भाषा साहित्य के विरुद्ध एक आंदोलन चल रहा था, और जिसे बंगाल के राजेन्द्रलाल मित्र चला रहे थे, के विरुद्ध एक शसक्त लेखक खड़ा हुआ। नाम था फकीर मोहन सेनापति। उन्होंने गद्य एवं पद्य द्वारा उड़िया साहित्य को समृद्ध किया। इकाई में आगे हम उनके बारे में विस्तार से पढ़ेंगे।

9.3.2 सत्यवादी युग

राधानाथ युग के बाद उड़िया साहित्य में जिस युग का आगमन होता है उसे सत्यवादी युग के नाम से जाना जाता है। राष्ट्रीय आंदोलन में गांधी के आने के बाद तेजी आई। ग्रामीण जनता को आंदोलन से जोड़कर उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ बहुत बड़ा जनमत संग्रह कर लिया था। उड़िया में भी इसका प्रभाव हुआ। उड़िया के लेखक राष्ट्रीय आंदोलन से प्रभावित होकर रचनाएँ करने लगे। इस युग के मुख्य कवि गोपबंधु दास हैं। उन्होंने धम्मपद, वन्दीर आत्मकथा, अवकाश चिन्ता आदि द्वारा राष्ट्रीयता को बढ़ावा दिया। नीलकण्ठ दास गोदावरीश मिश्र आदि इस युग के अन्य कवि हैं।

इसके बाद रोमांटिक युग आता है। प्रधान कवि मायावर सिंह मान सिंह हैं।

9.3.3 सबुज युग

सत्यवादी युग के बाद पांच कवियों द्वारा एक काव्य आंदोलन चलाया गया जिसे सबुज युग के नाम से जाना जाता है। ये है – अन्दाशंकर रा, हरिहर महापात्र, शरच्चन्द्र मुखर्जी, कालिन्दिचरण पाणिग्रही तथा वैकुन्ठनाथ पट्टनायक। इन पाँच लेखकों ने मिलकर काव्य तथा गद्य रचनाएं की। "वासन्ती" उपन्यास इन सभी का मिला-जुला लेखन है।

9.3.4 प्रगति युग

इसके बाद उड़िया साहित्य का प्रगतियुग आता है। मुख्य रचनाकारों में सच्चिदानन्द राउत राय, गोपीनाथ महान्ति, नित्यानंद गोदावरीश महापात्र हैं।

बोध प्रश्न

7) उचित शब्द रखकर वाक्य पूर्ति कीजिए :

क) राजनीतिक दृष्टि से ..... और ..... के कारण उड़िया साहित्य की प्रगति नहीं हो पाई।

ख) डलहौजी की ..... की नीति के तहत ..... राज्य को अंग्रेजी राज्य में मिला लिया गया था।

ग) सन् ..... में लॉर्ड ..... ने भारतीयों के लिए कुछ लाभकारी कार्य किए।

8) एक-दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

क) किस कारण उड़ीसा की जमींदारी पर बाहर के लोगों का कब्जा हुआ?

.....

.....

ख) 1865 से 1866 तक किस कारण अनगिनत लोगों की जानें गई?

.....

.....

ग) तत्कालीन उड़ीसा का पूरा समाज शिक्षित क्यों नहीं हो पाया?

.....

.....

घ) राधानाथ राय की रचनाओं पर किस भाषा साहित्य का स्पष्ट प्रभाव है।

.....

.....

ङ) उड़िया भाषा के विरुद्ध किस व्यक्ति ने आंदोलन चलाया?

.....

.....

च) उड़िया भाषा साहित्य को भाषा एवं साहित्य के रूप में प्रतिष्ठा दिलाने के लिए किस व्यक्ति ने प्रथम प्रयास किया?

.....

.....

छ) उड़िया भाषा साहित्य में सत्यवादी युग का तात्पर्य क्या है?

.....

.....

ज) सबुज युग के दो लेखकों के नाम लिखिए।

.....

.....

9.4 उड़िया, पद्य, गद्य : नवजागरण

उड़िया भाषा का साहित्य प्राचीन है, पदय एवं गद्य के क्षेत्र में आधुनिकता का समावेश होने से साहित्य समृद्ध होने लगा। राष्ट्रीय नवजागरण में साहित्यकारों ने कविता एवं विविध गद्य विधाओं का लेखन कर महत्वपूर्ण योगदान दिया। हम सर्वप्रथम उड़िया कविता पर विचार करेंगे।

9.4.1 कविता

उड़िया कविता की लंबी परंपरा है। चर्या गीती, बौद्ध रचनाओं से यह परंपरा आरंभ होती है। मध्ययुग में सारलादास, बलरामदास, जगन्नाथदास, यशोवन्तदास, तथा अनन्तदास जैसे महाकवि हुए। इनकी रचनाओं में भक्ति के साथ समाज को एक करने की बात कही गई। आधुनिक काल में राधानाथ राय, फकीरमोहन सेनापति तथा मधुसूदन राव ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। इन आधुनिक कवियों का मुख्य विषयवस्तु समाजिक समस्याएं एवं राष्ट्रीय आंदोलन था। सत्यवादी युग में गोपबन्धु तथा नीलकंठ आदि कवियों ने शुद्ध राष्ट्रीय कविता की रचना की।

रवीन्द्रनाथ को "गीतांजलि" रचना पर सन् 1913 में नोबल पुरस्कार दिया गया। इस घटना का उड़िया कवियों पर विशेष प्रभाव पड़ा। इसी की प्रतिक्रिया में पाँच युवा कवियों ने मिल कर काव्य रचनाएं की जो "सुबुज युग" के नाम से प्रसिद्ध हैं। सन् 1919 में रूस की क्रांति के फलस्वरूप साम्यवाद की स्थापना होती है। इसका सारी दुनिया में प्रभाव हुआ। पार्टी का विस्तार हिन्दुस्तान में भी हुआ। उड़ीसा में साम्यबादी विचारधारा को स्थापित करने के लिए सन् 1935 में "नवयुग साहित्य संसद" की स्थापना होती है। साम्यवाद के प्रचार के लिए इस संसद के तहत गुरुचरण पट्टनायक, अनन्त पट्टनायक, भगवती चरण पाणिग्रही ने कविता रचना की।

उड़िया कविता में सच्चिदानन्द राउतराय ने सर्वप्रथम यथार्थ को अभिव्यक्ति दी। भानुमतिर देशे प्रतीमा नायक, अलका सान्याल सुचरितासु राजजेमा उनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं में सामाजिक अव्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठाई। आधुनिक मूल्यबोध तथा नए प्रतीकात्मकता के साथ कई कवि उड़िया भाषा में आए। रमाकान्तरथ, विनोदचन्द्र नायक, बेणुधर राउत, सीमाकान्त महापात्र, तथा प्रहराज सत्यनायण नन्द ऐसे ही कवि हैं।

आज की समस्याओं को लेकर उभरे नए कवियों में जगन्नाथ प्रसाद, हरप्रसाद, चिन्तामणि बहरा, कैलाश लेंका, चिंतामणि बेहरा आदि के नाम लिए जा सकते हैं।

9.4.2 कहानी

उड़िया कहानी की शुरुआत धार्मिक व्रत उपवास से संबंधित कहानियों से होती है। इनमें चकुलिया पण्डा कथा, सोमनाथ व्रत कथा, अबोलकरा कथा, ललित विद्यापति कथा, देउल तोला टुआँटुई कथा को हम उदाहरण स्वरूप रख सकते हैं। तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी में "रुद्रसुधानिधि" कथा ग्रंथ मिलता है। इसमें योग भ्रष्ट ऋषि की कथा है। अठारहवीं शती में "चतुर विनोद" जिसके रचयिता ब्रजनाथ बड़जेना है में कथा साहित्य का विकास मिलता है।

आधुनिक उड़िया कहानी की शुरुआत फकीरमोहन सेनापति द्वारा होती है। उन्होंने सन् 1868-70 ई० के बीच "लक्षमानिया" नाम की कहानी लिखी थी। यह कहानी उड़िया साहित्य की प्रथम आधुनिक कहानी मानी जाती है। किंतु यह उपलब्ध नहीं है। "बोधदायिनी" पत्रिका में स्वयं फकीरमोहन ने इस कहानी का उल्लेख किया है। सन् 1898 में उन्होंने फिर एक कहानी लिखी नाम था 'रेवती'। यही कहानी उड़िया की प्रथम आधुनिक कहानी है। फकीरमोहन ने लगभग पच्चीस कहानियां लिखी। अपने कार्य के सिलसिले में फकीर मोहन को कटक तथा वालेश्वर क्षेत्रों का दौरा करना पड़ता था। इसी दौरान ग्रामीण जीवन एवं वहां के समस्याओं को नजदीक से देखने का मौका उन्हें मिला। यही कारण है कि तत्कालीन जीवन से संबंधित वास्तविकताओं को वे उजागर कर पाए। सामाजिक समस्याओं के चित्रण तथा उसके समाधान के लिए उन्होंने कथा रचना की। अंग्रेजी शिक्षा के कारण किस प्रकार अवनति हो रही थी उसका चित्रण उनकी कहानी "डाक मुंशी" में देखने को मिलता है। इसमें एक अद्धशिक्षित पुत्र द्वारा पिता का अनादर करना दिखाया गया है। "राण्डीपुअ अनन्ता" कहानी में पितृहीन बालक का चित्रण है तो "धुलियाबाबा" में धार्मिक पाखंड का भांडा फोड़ किया गया है। ब्राह्मणों द्वारा किस प्रकार समाज को अंधविश्वास के घेरे में जकड़ा जा रहा था उसका यथार्थ चित्रण उनकी कहानी "अधर्म वित्त" में है। सेनापति ने उड़िया कहानी को एक नयी दिशा प्रदान की। समाज में फिर आई बुराइयों का चित्रण एवं उससे उद्धार के लिए उन्होंने रास्ता दिखाया। उनसे प्रभावित होकर ही उड़िया कहानीकारों की परंपरा आगे बढ़ती है। जिन्होंने फकीरमोहन से प्रेरित होकर यथार्थयुक्त कहानियां रची; उनमें चन्द्रशेखर नन्द, दयानिधि मिश्र, लक्ष्मीकांत महापात्र, दिव्यसिंह पाणिग्रही, चिन्तामणि महान्ति, आते हैं। चन्द्रशेखर नन्दर ने बौद्ध युग के आधार पर कहानियों की रचना की। लक्ष्मीकांत ने अपनी कहानी "अधिकार" में मजदूरों एवं श्रमिकों को संगठित कर जुल्म के खिलाफ आवाज बुलंद की है। जमींदारवर्ग के प्रभुत्व को समाप्त कर एक नया समाज के निर्माण के लिए उन्होंने कहानियां रची।

सत्यवादी युग में राष्ट्रीय चेतना तथा सामाजिक चेतना से संबंधित कहानियां रची गई। इस युग में दो बड़े कहानीकार हुए एक हैं पंडित गोदावरीश मिश्रा तथा दूसरे हैं गोदावरीश महापात्र। मिश्र जी ने "तोलकन्या", "पुअणिघर" तथा "परदानसीन" में नारी समस्या को मुख्य आधार बनाया है। उनकी पोल उन्मोचन "अन्दी", तथा "अन्नछत्र" में व्यापारी, राजनेता तथा सरकारी कर्मचारियों के कुकर्म का भाण्डा फोड़ किया गया है। महापात्र जी ने कई तरह की समस्याओं को लिया है। "नील माष्टराणी" में स्त्री समस्या को उठाया है। इसमें एक बाल विधवा ब्रह्मणी द्वारा एक धोबी से विवाह किए जाने पर समाज में उसकी जो दुर्गति होती है उसी का चित्रण है। "एंवे मध्य वंचिछि" में अकाल पीड़ित समाज का करुण चित्रण किया गया है। "मोर स्वर्गयात्रा मुं दिने मन्त्रो थिलि, मरिवाकु बेल नाहि" उनकी चर्चित कहानियां है। इनमें राजनीतिक दाँव पेच तथा भ्रष्टाचार का चित्रण है।

इसके बाद उड़िया कहानी में सबुज युग आता है। इस समय के कथाकारों ने मानवीय संवेदना तथा ऐतिहासिकता को आधार बनाकर कहानियां लिखी। कालिन्दीचरण पाणिग्रही इस युग के मुख्य कथाकार है। उन्होंने, "मो कथाटि सरि नाहि," "सागरिका" मांसर बिलाप, पुनश्च, पंगु. नामक कहानियाँ लिखी।

इसके बाद उड़िया कहानी में साम्यवादी चिंतन धारा का समावेश होता है। सच्चिदानन्द राउतराय, भगवती प्रसाद पाणिग्रही, रामप्रसाद सिंह, तथा रघुनाथ दास इस युग के मुख्य कथाकार हैं।

भगवती प्रसाद पाणिग्रही ने "शिकार" कहानी में अत्याचारी अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध सरल आदिवासियों द्वारा विद्रोह को दर्शाया है। यह कहानी उस समय राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान के लिए ही लिखी गई।

सच्चिदानन्द राउतराय ने सामाजिक समस्याओं के आधार पर कहानियां लिखीं। ग्रामीण जीवन की विषमता को उजागर कर वे साम्यवाद की स्थापना चाहते थे। "विसर्जन", "अन्धारुआ", "मशाणिरफूल", तथा "माटिर ताज" ऐसी ही कहानियां हैं।

रघुनाथदास ने मारिच तथा रामप्रसाद सिंह ने "शेवराति" नामक कहानियां लिखी जिनमें सामाजिक समस्याएं ही प्रमुख हैं।

सन् 1940-45 तक आते-आते उड़िया कहानी जगत में दो तीन महत्वपूर्ण नाम जुड़ते हैं। ये हैं, नित्यानन्द महापात्र, गोपीनाथ महान्ति तथा सुरेन्द्र महान्ति। इन्होंने अलग-अलग आधार को लेकर सशक्त कहानियों की रचना की। नित्यानन्द ने जहाँ गाँधीवादी विचारधारा को आधार बनाकर कहानियां लिखी वहीं गोपीनाथ ने ग्रामीण जीवन को आधार बनाया तथा सुरेन्द्र महान्ति ने उड़िया संस्कृति को आधार बनाकर कथा रचना की।

नित्यानन्द महापात्र ने "मांकड़", "अन्वेषण", "दिमासी", "सौदागर", "प्रेम ओ प्रिया", "माडर्ण सवित्री", नामक कहानियां लिखी।

गोपीनाथ महान्ति की कहानियां है "माटिआबुरुज", असरन्ति, पाल भूत "भिणोई", "पिम्पुड़ि, "ऊं", "गुप्तगंगा", उड़ताखई तथा "दोलगोविन्द"। सुरेन्द्रनाथ ने उड़िया संस्कृति जिनमें नागरिक जीवन की व्यर्थता तथा मानव मूल्यों की स्थापना को केन्द्र में रख कर "यदुवंश नयनपुर एकसप्रेस", "ओ कालकाता", तथा श्री कृष्णक शेष हंस नामक कहानियां लिखी। इस प्रकार उन्नीसवीं सदी के दौरान फकीरमोहन से प्रेरणा ग्रहण कर सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना से संबंधित उड़िया कहानियां लिखी गई।

9.4.3 उपन्यास

अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की तरह उड़िया भाषा के साहित्य में भी उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से ही विभिन्न गद्य विधाओं की शुरुआत होती है। वैसे गद्य विधाओं के स्रोत हम प्राचीन साहित्य में पा सकते हैं। किंतु आधुनिक तत्वों के दृष्टि से इस काल में ही गद्य विधाओं का विकास हुआ। प्रथम उड़िया उपन्यास कौन सा है

इसको लेकर विद्वानों में मतभेद है। लेकिन प्रमाण के आधार पर सन् 1888 में उमेशचन्द्र सरकार द्वारा लिखित "पद्यमाली" उपन्यास को ही उड़िया भाषा साहित्य का प्रथम उपन्यास माना जाता है। इस उपन्यास में उड़िया के राजघराने तथा युद्ध का वर्णन है।

सन् 1891 में प्रकाशित तथा रामशंकर राय द्वारा लिखित उपन्यास "त्रिबासिनी" को उड़िया का दूसरा उपन्यास माना जाता है। सन् 1908 ई० में प्रकाशित तथा गोपालबल्लभदास द्वारा लिखित उपन्यास "भीमा भूयाँ" का स्थान तीसरा है। किंतु इस उपन्यास का महत्व यह है कि आने वाले सशक्त उपन्यासों "दादिबूढ़ा", "परजा" तथा "अमृतर सन्तान" के लिए यह उपन्यास प्रेरणा स्रोत बना। इस "भीमा भूयाँ" उपन्यास में आदिवासी चरित्रों को लिया गया है। सर्दार की लड़की चिनामाली के साथ दो भाइयों की प्रेम कहानी ही इस उपन्यास का मुख्य कथावस्तु हैं।

फकीरमोहन सेनापति के आने के बाद उड़िया उपन्यास क्षेत्र में एक क्रांतिकारी परिवर्तन आता है। यहां हम हिंदी के प्रेमचंद का स्मरण कर सकते हैं। जिनके आगमन से हिंदी उपन्यास क्षेत्र में एक नए युग का आगमन होता है। फकीर मोहन ने सर्वप्रथम अपने उपन्यासों के माध्यम से उड़िसा के सर्वहारा वर्ग की समस्याओं को उभारा। इनके उपन्यासों "छ माण आठ गुण्ठ" (1898), "लक्ष्मा" (1903), "मामु" (1913) और "प्रायश्चित" (1915) में सभी आधुनिक तत्वों का समावेश मिलता है। उनके उपन्यासों में सशक्त कथावस्तु, यथार्थ चरित्र चित्रण, पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है। लेखक अपने उद्देश्य में पूरे सफल हुआ है। इकाई में इस महान लेखक एवं उनकी साहित्य सेवा को हम विस्तार से जानेंगे। यहाँ उनके समय के कुछ उपन्यासकारों का उल्लेख करना आवश्यक है। कारण उन्होंने फकीर मोहन से प्रेरणा ग्रहण कर उड़िया उपन्यासों की रचना की। ब्रजबन्धु मिश्र (बसन्ती मालती), दीनबन्धु पाल (कुन्तलिनी), अपन्ना पण्डा (कलावती), अश्विनी कुमार घोष (बुढ़ाचच्चा) तथा मृत्युंजय रथ (अद्भुत परिणाम) इस समय के अन्य उड़िया उपन्यासकार हैं। उड़िया उपन्यास के क्षेत्र में "कुन्तला कुमारी" का आगमन अति महत्वपूर्ण रहा। उड़िया उपन्यास लेखिका के रूप में उन्होंने काफी ख्याति अर्जित की। सामाजिक कुसंस्कार एवं नारी जीवन की व्यथा का चित्रण उनके उपन्यास का मुख्य उद्देश्य रहा। उन्होंने सन् 1923 में "भ्रान्ति," 1925 में नअतुण्डी तथा "कालीबोहु", "रघु अरक्षित", तथा "परशमर्णि" उपन्यासों की रचना की।

इस समय के अन्य उपन्यासकार तथा उनकी रचना इस प्रकार से है। चिन्तामणि आचार्य (सफल स्वप्न), दयानिधि मिश्र (मान-भंजन), गोविन्द त्रिपाठी (प्रमाद), नन्दकुमार (कनकलता) इसी समय उपन्यासकार रामचन्द्र आचार्य ने ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की। हिंदू-मुस्लिम एकता तथा-अंग्रेजी सरकार का पतन दिखाना ही इनके उपन्यासों का मुख्य उद्देश्य था। इनके उपन्यास इस प्रकार से हैं। "पद्मिमनी", "पीयूष", "पीयूष प्रवाह", "वरांगना", "प्रणय प्रवाह", "कादम्बरी"।

कान्हुचरण के आगमन से उड़िया उपन्यास में फिर एक परिवर्तन आया। उनके उपन्यास का आधार था उड़िया व्यापारियों का साहस। ऐतिहासिक तथ्य को कल्पना से जोड़कर रोचक उपन्यासों की रचना उन्होंने की। इन्होंने कई उपन्यास लिखें। "बालिराज", "पलातक", "निष्पत्ति", "दुनिआर दाउ", "ओलट-पलट", "स्वप्न ना सत्य", "हो अन्न", "अदेखर हात", "परकीयर"। शास्ति "तथा हा अन्न" में लेखक ने सन् 1865-66 के दुर्भिक्ष का करुण वर्णन किया है। इनके समय कुछ और लेखकों ने उड़िया उपन्यासों की रचना की। इनमें मुकुन्ददास, तारिणीचरनरथ, चिन्तामणि मिश्र, सच्चिदानन्द राउतराय, अनन्त प्रसाद पण्डा, प्राया कृष्ण सामल आदि हैं। यद्यपि इनके उपन्यास शुद्ध मनोरंजन के लिए लिखे गए फिर भी लोकप्रिय हुए। सन् 1930 ई० में उड़िया उपन्यास के क्षेत्र में एक और महत्वपूर्ण नाम जुड़ता है वह है कालिन्दीचरण पाणिग्रही का उनका पहला उपन्यास "माहिर मणिष" है। फिर "लुहार मणिष", "मुक्तागड़र क्षुधा", "अमर चिन्ता", "आजिर मणिष" की रचना की। इनके उपन्यासों में गांधीवादी विचारधारा को ही मुख्य आधार बनाया गया है सभी उपन्यास

गोदावरीश मिश्रा तथा गोदावरीश महापात्र ने भी उपन्यासों की रचना की। "अभागिनी", "निर्वासित", "अठरश सतर", पहले लेखक की रचना है तथा "राजद्रोही", "प्रेमपथ", "रक्तपात", युवक, वन्दीर माया तथज्ञ विद्रोह दूसरे लेखक की। इन दोनों उपन्यासकारों ने अपनी कृतियों में मानव मूल्यों को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया है। रामप्रसाद सिंह ने साम्यवादी विचारधारा से संबंधित "रक्तरेखा", "समाप्ति", "पूजार बलि", "भरुर साथी", "प्रतिहिंसा" उपन्यासों की रचना की।

राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भाग लेने वाले एक उड़िया उपन्यासकार थे डॉ. हरेकृष्ण कहताब। इन्होंने "प्रतिभा", "नूतन धर्म", "अत्याचार" उपन्यासों के माध्यम से जहाँ समाजिक कुसंस्कार पर कुठाराघात किया वहीं गांधीवादी आदर्श की प्रतिष्ठा भी की।

उड़िया उपन्यास के क्षेत्र में लगातार प्रगति होती रही लेकिन ज्यों युगान्तकारी परिवर्तन फकीर मोहन सेनापति ने किया उसे बाद के लेखक नहीं कर पाएं। हाँ विभिन्न उद्देश्यों में वे सफल अवश्य रहे डॉ. गोपीनाथ महान्ति के आगमन से फिर से उड़िया उपन्यास क्षेत्र में एक हलचल हुई। उन्होंनें अपने उपन्यासों में जनसाधारण के समस्याओं को लिया। फिर से उड़िया उपन्यास का धरती से संबंध जुड़ा।

"मन गहीरर चाष", "दादिबूढ़ा", "परजा" तथा "अमृतर संतान" की रचना कर महान्ति जी ने उड़िया उपन्यास साहित्य को समृद्ध ही नहीं किया बल्कि अमूल्य निधि भी दी। "मन गहरीर चाष" मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित है। "परजा", "दाढ़ीबूढ़ा" तथा "अमृतरसंतान" में महान्ति जी ने आदिवासी जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है। आदिवासियों की सांस्कृतिक जीवन को यथार्थ रूप में गोपी बाबू ने दलित समस्या को वखूबी पेश किया है। इस वर्ग के अंदर आत्मसम्मान जगाने तथा जीवन की दौड़ में आगे बढ़ने की प्रेरणा देने के लिए उन्होंने ये उपन्यास लिखे।

"राहुर छाया" में उन्होंने सात्विक जीवन पर जोर दिया है। "लयविलन" एक अन्यत्म उपन्यास है। "माटिमटाल" उपन्यास का विषय है व्यक्ति स्वातंत्रय शारीरिक संबंध से मानसिक संबंध को आदर्श के रूप में स्थापित करना ही इसमें लेखक का मुख्य उद्देश्य है। इस उपन्यास को ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

कान्हुचरण ने भी उड़िया उपन्यास के भंडार को समृद्ध किया। "झंजूजा", "बज्रबाहु", "तमसातीरे", उपन्यास में इन्होंने दलित समस्या को लिया है। सामाजिक समस्याओं के समाधान से संबंधित उनके उपन्यास वास्तव में 19वीं सदी में उभरे नवजागरण की प्रगति को ही दर्शाता है।

शान्ता कुमार आचार्य ने भी दलित समस्या को उठाया है। "नर किन्नर", "शताब्दीर नचिकेता" तथा "शकुन्तला" उनकी बहुचर्चित कृत्तियां हैं– अनुवाद के कार्य द्वारा भी उड़िया भाषा में श्रेष्ठ रचनाएं पहुंची। उदयनाथ षंडगी से लेकर गोपीनाथ महान्ति तथा आगे के कई रचनाकारों ने अनुवाद द्वारा श्रेष्ठ विदेशी एवं भारतीय साहित्य के उपन्यासों को उड़िया भाषा क्षेत्र तक पहुंचाया। लक्ष्मीनारायण महान्ति ने एक ओर बांगला के श्रेष्ठ उपन्यास "बिराजबहू" का उड़िया भाषा में अनुवाद किया तो गोलक बिहारी धल ने प्रेमचंद के "गोदान", "गबन" और प्रेमाश्रम को उड़िया पाठकों तक पहुँचाया।

इस प्रकार उड़िया भाषा में उपन्यास विद्या निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर हो रही है।

9.4.4 नाटक

उड़िया समाज में जगन्नाथ पुरी धाम का विशेष स्थान है। यह स्थान एक ओर जहां धर्म उत्सव मानने के लिए विख्यात है वहीं सामाजिक उत्थान के लिए भी प्रेरणादायक रहा। समानता की बात अप्रत्यक्ष रूप से उभरी। धार्मिक एकता के साथ लोक उत्सव से जुड़ जाने के कारण लोक परंपरा का भी विकास हुआ। धार्मिक कार्य से इकट्ठे लोगों के लिए मनोरंजन का उपाय ढूंढ़ने के सिलसिले में ही लोक नाटक का विकास हुआ। लीला, स्वांग, रास के अलावा सखी नृत्य, घोढा नृत्य, छउ नृत्य, झामू नृत्य,

भोगल तमासा पाला आदि ने लोक नाटकों की नींव डाली। मनोरंजन की दृष्टि से विकसित इस लोक परंपरा का आधार पुराण था। रंगमंत्र के न रहने पर भी इस प्रकार के लोक नाटक बहुत प्रसिद्ध हुए। इसी लोक परंपरा की श्रृंखला में ही "गीताभिलय" का प्रारंभ और विकास हुआ।

साहित्य के क्षेत्र में इस प्रकार की गतिविधि का प्रारंभ उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध से होता है। पश्चिम के संपर्क तथा बंगला नाटकों से प्रेरित होकर उड़िया में प्रगतिशील नाटक की शुरुआत यहीं से होती है। इस नाटक में एक ओर धर्म की आड़ लेकर पाखंड एवं व्यभिचार करने वाले पाखंडी साधु सन्यासियों का भांडा फोड़ किया गया है वहीं उस समय में अर्द्ध अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त गुमराह युवकों को भी राह पर लाने का प्रयास किया गया है। नाटककार ने सभी सामाजिक कुरीतियों पर गहरी चोट की है। वास्तव में नवजागरण की शुरुआत करने वाला यह नाटक "बाबा जी" युगानुकूल एवं महत्वपूर्ण था। सन् 1886 में नारी चेतना से संबंधित नाटक "सती" का प्रकाशन हुआ। इसमें सरल एवं सहज भाषा का प्रयोग किया गया है। "बुद्ध विवाह" प्रहसन लिख कर "जगमोहन" ने अनमेल विवाह की समस्या को बड़े ही मनोरंजक रूप में प्रस्तुत किया। इसके बाद रमाशंकर राय ने उड़िया नाटक को आगे बढ़ाया। उड़िया संस्कृति पर लिखा नाटक "काँची क्रावेरी" बहुत ही लोकप्रिय हुआ फिर "विषमोदक", "युगधर्म", "कॉवनाली", "लीलावती", नाटकों की रचना कर रमाशंकर ने उड़िया समाज में व्याप्त बुराइयों को उजागर किया। इन नाटकों में जमींदार के अत्याचार, पाखण्डी पण्डितों का तमाशा तथा जातिगत दोषों का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया गया है।

रमाशंकर रंगमंच की बारीकियों से परिचित ही नहीं थे बल्कि एक कुशल अभिनेता भी थे। जिस प्रकार हिंदी में भारतेन्दु हरिशचंद्र ने न सिर्फ नाटकों की रचना की बल्कि उसका मंचन किया भी था तब स्वयं भी अभिनय किया, उसी प्रकार रमाशंकर ने उड़िया नाटक को सभी प्रकार से आगे बढ़ाया उन्होंने "आदिकाल" तथा "बूढ़ावर" प्रहसनों की रचना कर सामाजिक कुरीतियों पर करारा चोट किया।

इस युग के अन्य नाटककारों में कामपाल, जोदावरीश मिश्र तथा भिकारीचरण पटनायक प्रसिद्ध है। अश्विनी कुमार घोष का आगमन उड़िया नाट्य विधा में परिवर्तन का द्योतक था। सन् 1920 से उन्होंने उड़िया नाटकों को समृद्ध करना शुरू किया। पौराणिक तथा ऐतिहासिक चरित्रों जैसे सालवेग, भीष्म, कपिलन्ददेव दासिया, आदि को केन्द्र में रख कर आदर्श चरित्र निर्माण के उद्देश्य से उन्होंने नाटकों की रचना की। उन्होंने लगभग चालीस नाटकों की रचना की किंतु लोकप्रियता उन्हीं नाटकों को मिली जिनमें ऐतिहासिकता के साथ तत्कालीन समस्याओं को स्थान दिया गया है। यह वास्तव में इसी बात का परिचायक है कि तत्कालीन जनता परिवर्तन चाहती थी, चाहे वह किसी भी माध्यम से आए।

नाट्याचार्य कालीचरण ने फिर से सन् 1940 में उड़िया नाटक के क्षेत्र में परंपरा को स्थान दिया। लीला, रास स्वांग, यात्रा जैसे लोक नाट्य शैली की बारीकियों से परिचित होकर उन्होंने उसमें सुधार किया तथा अच्छे गीति नाट्यों की रचना की। "मृगया", "शकुन्तला", "हरिश्चन्द्र", "सिन्धुबध", में उन्होंने परंपरना का समावेश किया। "भताभुई", "रक्तमाटि", "भात", "चुम्बन", नाटकों में उन्होंने सामाजिक समस्या को स्थान दिया। "जयदेव" तथा "सारलादास" नामक नाटकों के जरिये उन्होंने साहित्यिक परंपरा की याद दिलाई। "अभियान" नाटक द्वारा स्वतंत्रता की भावना को बढ़ावा दिया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद उड़िया नाटकों में विषय विविधता आई। नए-नए विचारों को लेकर उड़िया नाटक की परंपरा आगे बढ़ रही है।

9.4.5 निबंध

उड़िया निबंध का प्रारंभ उड़िया की पत्रिकाओं के प्रकाशन के साथ होता है। ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा विकृत गद्य रूपों के प्रकार से उड़िया साहित्यकारों के अंदर चिंता

हुई। फलस्वरूप उन्होंने परिष्कृत गद्य निर्माण की योजना बनाई। और यह कार्य विना पत्रिकाओं के प्रकाशन के संभव नहीं था। फिर पत्रिकाओं का प्रारंभ हुआ। इनमें 'उत्कल दर्पण', 'उत्कल दीपिका', 'उत्कल साहित्य', 'उत्कल प्रभा' आदि पत्र पत्रिकाओं द्वारा साहित्य साधना प्रारंभ हो गई। राधानाथ राय द्वारा रचित "निबंध", "विवेक" उड़िया भाषा का पहला निबंध माना जाता है। उसका प्रकाशन सन् 1873 में उत्कल दपर्ण नामक पत्रिका में ही हुआ था। इस निबंध में लेखक ने व्यक्ति के विवेकपूर्ण चरित्र पर जोर दिया है। जनसाधारण शिक्षित होकर आगे बढ़ सकता है यह भी निबंध का मुख्य उद्देश्य है। एक सच्चरित व्यक्तित्व का निर्माण किन-किन गुणों द्वारा होगा उसीका इसमें वर्णन है। इस निबंध की भाषा परिष्कृत नहीं है किंतु इसका जो उद्देश्य है वह किसी भी उत्कृष्ट निबंध से कम नहीं। अतः इस निबंध का ऐतिहासिक महत्व है। यहां हम यह भी देख सकते है कि तत्कालीन समय भारतीय उत्थान का प्रयास सभी स्तर पर हो रहा था। लेखक जिस किसी विद्या में लिख रहा हो, वह व्यक्ति के चरित्र निर्माण, सामाजिक उत्थान तथा राष्ट्रीय उत्थान से ही संबंधित होता था।

सन् 1922 ई० में मधुसूदन राव ने "प्रबन्ध माला" का प्रकाशन किया। यह उड़िया निबंध के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण प्रयास था। इस संग्रह में जहाँ अंग्रेजी के निबंध का अनुकरण किया गया है, वहीं नए विषयों को भारतीय परिप्रेक्ष्य से जोड़ कर प्रस्तुत किया गया है। मानव जाति उन्नति, पुरुष भाव और नारी ऐसे ही निबंध है।

उड़िया निबंध को तत्कालीन मयूरभंज के राजा ने एक नयी दिशा दी। उन्होंने उड़िया निबंधकारों को प्रोत्साहित किया। इस प्रोत्साहन से कई निबंधकारों ने सुन्दर निबंधों द्वारा उड़िया निबंध साहित्य को समृद्ध किया। विश्वनाथकर, जगमोहन, शिवनारायण नायक, लाला रामनारायण, कपिलेश्वर विद्या भूषण, गोपालचन्द्र प्रभाकर आदि उस समय के प्रसिद्ध निबंधकार थे।

गोपबन्धु दाश ने "सत्यवादी" पत्रिका के माध्यम से उड़िया निबंध साहित्य को आगे बढ़ाया। इस समय शशिभूषण राय, गोपीनाथ नन्द, तारिनीचरण रथ, कृपासिंधु मिश्र, मृत्यंञ्जय रथ आदि ने, इतिहास, जीवनी तथा साहित्यालोचना संबंधी निबंधों की रचना की।

गजबन्धु सिंह ने "प्रबंध सार", विपिन बिहारी ने "प्रबंध सोपान", मोहिनी मोहन सेनापति ने "विविध प्रसंग", तथा रत्नाकर पतति ने "प्रबंध प्रकाश" नामक उच्चकोटि के दार्शनिक निबंधों की रचना की। इस प्रकार उड़िया निबंध आधुनिक विषयों पर केन्द्रित होकर आगे बढ रहा है।

बोध प्रश्न

9) उचित शब्द रखकर वाक्य पूर्ति करें :

क) प्रारंभिक उड़िया कविता की परंपरा ..... से शुरू होती है।

ख) सन् 1923 में कवि गुरू ..... को ..... पर पुरस्कृत होने से उड़िया कवियों पर विशेष प्रभाव पड़ा।

ग) सन् 1935 में ..... के स्थापना होती है।

घ) उड़िया कविता में यथार्थ की अभिव्यति का प्रथम प्रयास ..... द्वारा किया गया।

ङ) आधुनिक मूल्यबोध पर आधारित कवि है ....।

च) उड़िया कहानी की शुरुआत ..... विषयों से होती है।

छ) आधुनिक उड़िया कहानी की शुरुआत ..... के ..... नामक कहानी द्वारा होती है।

ज) ....., ... तथा ..... कहानियों में फकीर मोहन ने धार्मिक एवं सामाजिक विषयों को उजागर किया है।

0) दो तीन पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

क) फकीर मोहन के समय के तीन कहानीकारों के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

ख) सत्यवादी युग के किस रचनाकार ने अपनी कहानियों में नारी समस्या को उठाया है?

.....

.....

ग) गोदावरीश महापात्र की कहानी "नीम" माष्टराणी का विषय-वस्तु क्या है?

.....

.....

घ) सच्चिदानन्द राउतराय की कहानियों में किस बात पर जोर दिया गया।

.....

.....

.....

इ) गोपीनाथ महान्ति तथा नित्यानंद महापात्र की कहानियों में मुख्य अंतर क्या है?

.....

.....

.....

1) सर्वहारा वर्ग की समस्याओं को लेकर किस लेखक ने उड़िया उपन्यास की शुरुआत की।

.....

.....

.....

12) सन् 1923 के आसपास किस लेखिका ने उड़िया कहानी में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया तथा उनका मुख्य उद्देश्य क्या था?

.....

.....

.....

13) रामचंद्र आचार्य तथा कान्हुचरण ने किस प्रकार की उड़िया कहानियां लिखी?

.....

.....

.....

14) कालिन्दीचरण पाणिग्रही ने किस विचारधारा को अपनी कहानी में शामिल किया?

.....

.....

15) गोपीनाथ महान्ति का उड़िया उपन्यास जगत् में क्या स्थान है, तथा उनके उपन्यास का आधार क्या है?

.....

.....

.....

16) दलित समस्या से संबंधित गोपीनाथ महान्ति के दो उपन्यासों के नाम लिखिए?

.....

.....

17) किस अनुवादक ने उड़िया में प्रेमचंद के उपन्यासों का अनुवाद किया?

.....

18) धार्मिक लोक उत्सव किस प्रकार उड़िया नाटकों का प्रेरणास्रोत बना?

.....

.....

.....

19) "बाबा जी" नाटक की रचना किसने की तथा इसका ऐतिहासिक तथा सामाजिक महत्व क्या है?

.....

.....

.....

20) रमाशंकर नाटककार की तुलना हम किस हिंदी नाटककार से तथा किस कारण करते हैं?

.....

.....

.....

21) पांच महत्वपूर्ण उड़िया नाटककारों के नाम लिखिए।

.....

.....

.....

22) उड़िया निबंध का आरंभ किस कारण हुआ?

.....

.....

.....

23) मधुसूदन राव का उड़िया निबंध क्षेत्र में क्या योगदान रहा?

.....

.....

.....

24) चार दार्शनिक निबंधकारों के नाम लिखिए।

.....

.....

9.5 प्रमुख रचनाकार

हमने देखा कि किस प्रकार उड़िया भाषा में विभिन्न गद्य विधाओं का प्रारंभ और विकास हुआ। पश्चिम का प्रभाव ऊपरी था। केवल ऊपरी चेतना से काम नहीं चलने को था। भारतीय मिट्टी से जुड़कर यहां की वास्तविक सामाजिक स्थिति को समझकर जो साहित्य उभरा वही सही चेतना अथवा नवजागरण ला पाया। अन्य भारतीय भाषाओं के लेखकों की तरह उड़िया भाषा के रचनाकारों ने तत्कालीन वस्तुस्थिति को समझा और परखा और उसी के अनुकूल साहित्य रचना करके नवजागरण का सफल प्रयास किया। विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों को पद्य और गद्य के माध्यम से जनता के सामने रखी समस्याओं का यथार्थ रूप प्रस्तुत करके लोगों में चेतना जगाई। तत्कालीन राजनीति शोषण पर आधारित थी। विदेशी सत्ता यहां की जनता का भरपूर शोषण कर रहे थे। ऐसी विकट-परिस्थिति से जन-जन को उबारने तथा संपूर्ण राष्ट्र को विदेशी शासन के चंगुल से मुक्त करने के लिए जनमत तैयार करने में लेखकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अपने समाज में व्याप्त विभिन्न प्रकार की बुराइयों पर गहरा कुठाराघात करके उसे नष्ट कर नए समाज के निर्माण में इन्हीं महत्वपूर्ण लेखकों का हाथ था। आइए अब उड़िया भाषा के प्रमुख रचनाकारों की जीवनी एवं उनके कार्य का अध्ययन करें।

9.5.1 फकीरमोहन सेनापति

आधुनिक उड़िया साहित्य के जन्मदाता फकीरमोहन सेनापति का जन्म जनवरी सन् 1843 ई० में उड़िया के बालेश्वर जिले के मल्लिकाशपुर गांव में हुआ था। मातापिता ने नाम रखा ब्रजमोहन। इनके पिता का नाम लक्ष्मण सेनापति तथा माता का नाम तुलसी देई था। डेढ़ साल की उम्र में ही इन्हें माता-पिता का बिछोह सहना पड़ा। इनका लालन-पालन दादी कुचिला देवी ने किया। ये बचपन में काफी बीमार रहते थे अतः दादी ने पीरों से इनके स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना की तथा यह भी वचन दिया कि अच्छा होने पर इसका नाम फकीर रख दूंगी। फकीरों की दुआ लग गई, वे स्वस्थ्य हो गए और दादी ने ब्रजमोहन से बदलकर इनका नाम फकीरमोहन रख दिया। भविष्य में इनके इसी नाम की सार्थकता देखी गयी। इनकी शिक्षा सही ढंग से नहीं हो पाई। आर्थिक तथा अन्य कारणों से कभी स्कूल छूट गया तो कभी दूसरे स्थान पर जाने से पढ़ाई में व्यवधान उपस्थित हो गया। किंतु जहां भी पूरा अवसर मिला वहां वे कक्षा में प्रथम ही आए। जिस बारबटी स्कूल में उनका नाम कट गया था उसी स्कूल के सेक्रेटरी ने उनकी प्रतिभा देखकर तृतीय शिक्षक के रूप में नियुक्त किया। 1864 में वे बालेश्वर मिशन स्कूल में प्रधानाध्यापक नियुक्त हुए। जॉन बीम्स जो बालेश्वर के कलेक्टर थे, उन्होंने सेनापति के गुणों से प्रभावित होकर हमेशा उनकी सहायता की।

फकीरमोहन को अंग्रेजी सीखने तथा अंग्रेजी साहित्य पढ़ने की बहुत इच्छा थी। फास्ट बुक की सहायता से उन्होंने अंग्रेजी सीखी तथा अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया। इसके अलावा वे बांगला तथा तेलगु भाषा भी जानते थे।

साहित्य रचना के प्रति उनकी दिलचस्पी बचपन से थी। स्कूल में अध्ययन करते समय ही उन्होंने राजपुत्रेर इतिहास नामक गद्य रचना की तथा ईश्वर चन्द्र विद्यासागर की एक पुस्तक का "जीवन चरीत" नाम से उड़िया में अनुवाद भी किया की उसी समय उन्होंने ओड़िया व्याकरण भी लिखा जो बाद में पाठशालाओं में पाठ्य पुस्तक के रूप में स्वीकृत हुआ। भारत वर्ष इतिहास पर तो उन्हें उस समय के कमिश्नर रेवेन्शा से तीन सौ रुपये का पुरस्कार भी मिला था। अच्छी अंग्रेजी जानने के कारण सेनापति के कई अंग्रेज मित्र बनें जिन्होंने उनकी सहायता की। अपने गुण के कारण वे निरंतर प्रगति की ओर अग्रसर होते रहे। यही कारण था कि वे उड़ीसा के कई छोटी बड़ी रियासतों में दिवान के पद पर नियुक्त हुए।

उड़ीसा में नवजागरण की ज्योति जलाने वाले फकीरमोहन ही थे। बंगाल में राजा राममोहन राय ने अपने बहुसमाज द्वारा सामाजिक कुरीतियों को दूर करने का

आंदोलन चलाया था इसी प्रकार उड़ीसा में सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए सर्वप्रथम सेनापति ने ही साहित्यिक रचनाएं की। उड़ीसा में साहित्यिक गतिविधि को तेज करने के लिए इन्होंने उड़िया प्रेस की स्थापना की। कलकत्ता से बालासौर में प्रेस लाने की घटना तो उड़ीसा के इतिहास में एक अविस्मरणीय घटना बन गई थी। जिस दिन छापाखाना बालासौर पहुंचा उस दिन सारा बाजार बंद हो गया था। लोग इस अद्‌भुत दृश्य को देखने के लिए गांव-गांव से आए। घनिक वर्ग तो पालकियों पर चढ़कर पहुंचे और सरकारी कार्यालय के लोगों ने भी छुटी लेकर यह दृश्य देखा था।

अंग्रेजी शासन काल में उत्कल क्षेत्र कई भागों में छितरा हुआ था। इससे संपूर्ण उड़िया भाषियों के लिए संगठन बना कर उन्नति का अवसर नहीं मिल पा रहा था। कई षडयंत्रकारी उड़िया भाषा के अस्तित्व को ही समाप्त करने में लगे हुए थे। ऐसे समय में फकीरमोहन ने ही उड़िया भाषियों का संगठन बनाया। एक समिति जिसमें राधा नाथ राय तथा मधुसूदन राव थे के द्वारा उन्होंने उड़िया को एक प्रतिष्ठित भाषा का दर्जा दिलाने के लिए आंदोलन चलाया। उस समय बालासौर के जिला मजिस्ट्रेट श्री जॉन बीम्स ने इस कार्य में बहुत सहायता की और अन्ततः उड़िया एक स्वतंत्र भाषा घोषित की गई। ओड़िया भाषा को स्वतंत्र भाषा का दर्जा दिलाने के बाद फकीरमोहन ने इसे सजाने संवारने का भरसक प्रयत्न किया। उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाओं द्वारा उन्होंने इस कार्य में भी सफलता हासिल की। 'लक्षमा', 'मामु', 'प्रापश्चित' तथा छमाण आठगुंठ' जैसे उपन्यासों की रचना कर उड़िया साहित्य को समृद्ध किया। उन्होंने उच्चकोटि की कहानियां तथा बुद्ध चरित्र से संबंधित काव्य रचना भी की।

रचनाएँ : फकीरमोहन ने लक्ष्मनिया मौना-मौनी, धूलिया बाबा, पुनर्मूषि कोमव अधर्मवित, 'बगुला-बगुली' खेती, पेटेंट मेडिसिन डाकमुंशी, राण्डिपुअ अनन्ता आदि कहानियों की रचना की। इनकी कहानियों में आदर्शवाद की प्रमुखता है। लेखक एक आदर्श समाज की स्थापना करना चाहता है। हम उनकी कहानियों की तुलना प्रेमचंद की कहानियों से कर सकते हैं। किंतु एक अंतर यह है कि प्रेमचंद अपनी कहानियों में यथार्थ एवं आदर्श दोनों को रखते हैं। अर्थात् समाज में क्या हो रहा है और क्या होना चाहिए इसका संतुलन उनमें मिलता है किंतु आदर्शवादी होने के नाते फकीरमोहन केवल आदर्श की स्थापना चाहते हैं। यथार्थता की कमी के कारण कहीं कहीं कहानी में शिथिलता आ जाती है। फकीरमोहन ने बाल साहित्य के अन्तर्गत "भारत पर्बर इतिहास" तथा "अंकमाला" की रचना की। अनुवाद कार्य में उन्होंने बाल्मीकि रामायण तथा महाभारत और भगवत् गीत का अनुवाद किया। उनके निबंध उतने उत्कृष्ट नहीं हैं। फकीरमोहन को साहित्य की जिस विद्या में सबसे अधिक ख्याति मिली वह है उपन्यास। अपने पहले उपनयास "छमाण आठगुंठ" के कारण वह सदा के लिए अमर हो गए। इस उपन्यास में शोषित और शोषक की कहानी कही गई है। भरिआ और सरिआ-मुख्य पात्र है। रामचन्द्र गांव का जमींदार है, चम्पा तथा गोविन्दा अन्य पात्र हैं:

कहानी का आरंभ सरल चरित्र के पति-पत्नी भरिआ और सरिया के दैनिक जीवन से होती है। उनके पास "नेत" नाम की गाय हैं जिसे दोनों बहुत प्यार करते हैं। भरिया के पास छह बीघा आठ गुंठ उपजाऊ जमीन है। इसी जमीन और गाय पर जमींदार की नजर पड़ती है। वह किसी भी तरह उसे हड़पना चाहता है। इस कार्य में उसकी दासी (रखैल) सहायता करती है। वह धूर्त और चालाक है। षडयंत्र करके जमीन हड़प ली जाती है। साथ में जोर जबर्दस्ती करके गाय भी ले ली जाती है। अपना सब कुछ लुट जाने पर भरिआ पागल हो जाता है तथा सरिया जमींदार के दरवाजे के सामने सिर-पटक कर मर जाती है। जमींदार बंदी बनता है किंतु उसे नर हत्या से बरी किया जाता है तथा गाय हड़पने के लिए उसे जेल की सजा होती है। जेल में पागल भरिया भी है। गुस्से में भरिया अपने दांतों से जमींदार मंगराज के नाक-कान काट लेता है। मंगराज को दूसरे जेल में रखा जाता है जहां उसका एक पुराना साथी गेबरा जेना होता है। वह भी मंगराज को खूब पीटता है। अंत में मंगराज मर जाता है। उसकी रखैल अपने यार गोविन्दा के साथ सारा धन लेकर भागती है। रास्ते में धन को लेकर दोनों में झगड़ा होता है। गोविन्दा चम्पा का कत्ल करके भागता है। रास्ते में जान बचाने के

लिए दरिया में कूदता है और उसकी मौत हो जाती है। उपन्यास में सेनापति ने समाज का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया है, और यह दिखाने की कोशिश की है कि व्यक्ति को अपने किये कर्म का पूरा फल भोगना पड़ता है। लक्षमा (1901), आमु (1913) तथा प्रापश्चित (1915) सेनापति द्वारा रचित तीन महत्वपूर्ण उपन्यास हैं।

लक्ष्मा उपन्यास में बंगाल, बिहार, उड़ीसा संयुक्त प्रांत का नबाव अलीवर्दी खां के अशांत शासन काल की कहानी है, मराठों के साथ युद्ध, सामन्ती सभ्यता का वर्णन, सत्ता लोलुपता, धर्म के नाम पर अत्याचार आदि विषयों का इसमें विस्तार पूर्वक वर्णन है। कल्पना की भरमार के कारण उपन्यास साधारण ही रहा है। मामु (1913) उपन्यास में तत्कालीन उड़िया समाज का यथार्थ रूप प्रस्तुत किया गया है। जमींदार परिवार में किस प्रकार संपति हड़पने के लिए संबंध को भुला दिया जाता है उसे लेखक ने बड़ी बारीकी से जांचा परखा था। संपत्ति की लालच में मामा द्वारा भांजों को धोखा दिया जाता है। किंतु उसकी मंशा पूरी नहीं होती। उपन्यास के चरित्रों को बड़ा स्वभाविक रूप में प्रस्तुत किया गया है। चरित्र प्रधान इस उपन्यास में शहरी तथा देहाती जीवन का संमिश्रण मिलता है। संरचना शैली की दृष्टि से यह उन्नत उपन्यास है।

प्रायश्चित (1915) उपन्यास में दो जाति के जमींदारों में अपने जातीय घमंड के कारण संघर्ष को दिखाया गया है। इस जाति संघर्ष से दोनों परिवार को कष्ट उठाना पड़ता है अंत में सबको अपनी भूल का ऐहसास होता है और सभी इसके लिए प्रायश्चित करते हैं। वास्तव में इस रचना द्वारा लेखक ने संपूर्ण भारत में व्याप्त इस बुराई की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है। समाज जब एक नहीं रहेगा तो राष्ट्र के टुकड़े होना निश्चित है। जाति व्यवस्था पर आधारित भारतीय समाज की उन्नति नहीं हो सकती। नवजागरण में इस उपन्यास ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बोध प्रश्न

25) उचित शब्द रखकर वाक्य पूर्ति कीजिए

क) फकीरमोहन सेनापति का जन्म ..... जिले में सन् ..... को हुआ था।

ख) इनका पहला नाम ..... था तथा इनका पालन पोषण ..... ने किया था।

ग) फकीरमोहन उड़िया के अलावा ..... तथा ..... भाषा के विद्वान थे।

घ) जिस स्कूल में सेनापति ने शिक्षा प्राप्त की उसी स्कूल में वे ..... नियुक्त हुए।

ड) फकीरमोहन द्वारा ..... में ..... लाने की घटना अविस्मरणीय बना गई थी।

च) उड़िया भाषा को स्वतंत्र भाषा के रूप में प्रतिष्ठा दिलाने के लिए फकीरमोहन को ..... ने सबसे अधिक सहायता की।

छ) फकीरमोहन के तीन उपन्यास ..... ' ..... ' ..... ने सामाजिक समस्या को पहली बार प्रस्तुत किया।

9.5.2 राधानाथ राय

19वीं शती भारतीय नवजागरण का काल था। इस समय भारत की एकता का जो प्रयास हुआ वह अविस्मरणीय है। धर्म, जाति, भाषा के भेद-भाव को भूल कर जो जहां था जिस स्थिति में था एक समान एक राष्ट्र की कामना करता था। उड़िया साहित्य के इतिहास में कभी न भलाने वाले साहित्यकार राधानाथ राय मूलतः बांगला भाषी थे।

किंतु भाषा की सीमा में रहकर उन्होंने कार्य नहीं किया बल्कि उससे निकल कर एक मिशाल स्थापित किया। बांगला से काव्य रचना करके उन्होंने उड़िया साहित्य में प्रवेश किया और आधुनिक उड़िया के प्रतिष्ठाताओं में प्रमुख बन गए।

राधानाथ का जन्म 28 सितम्बर सन् 1848 को उड़िया के बालाशोर जिले के तटवर्ती ग्राम केदारपुर में हुआ था। उनकी माता का नाम तारिणी देवी तथा पिता का सुंदर नारायण राय था। 1854 में माता के निधन के कारण बालक राधानाथ को जहां लाड़ प्यार से वंचित होना पड़ा वहीं उपेक्षा एवं कुपोषण का शिकार भी होना पड़ा। 1857 में राधानाथ राय देशी बोंली विद्यालय में दाखिल हुए जो उनके पिता के प्रयास से ही खोला गया था। इस विद्यालय में वे सदा प्रथम रहे। 1864 में इसी स्कूल में वे कार्यरत हुए। राधानाथ के जीवन में एक व्यक्ति सदा सहायक रहे वह थे "बैकुंठनाथ डे"। ये बालेश्वर के धनी जमींदार थे। इन्होंने समय-समय पर हर प्रकार से राधानाथ को सहायता पहुचाई। राधानाथ की पुस्तकों को अपने ही छापाखाने में छपवा कर डे साहब ने राधानाथ के साहित्यिक कार्य को आगे बढ़ाया। एक शिक्षक के रूप में सर्वप्रथम उन्होंने बालेश्वर के उच्च विद्यालय में कार्य शुरू किया। सन् 1864 में मात्र 20 रुपये के वेतन पर उनका जीवन शुरू हुआ। 1868 में उड़ीसा में भयानक अकाल पड़ा था। 1868 में ही राधानाथ राय ने इतनी कठिन परिस्थिति में कलकत्ता से एफ.ए. की परीक्षा पास की।

सन् 1868 में फकीरमोहन द्वारा निर्मित छह व्यक्तियों की समिति में राधामोहन भी थे। उड़िया साहित्य के उत्थान के लिए इस समिति ने महत्वपूर्ण कार्य किया। जबकि राधानाथ के पिता इसके विरोधी थे तथा राधानाथ को इससे दूर रखना चाहते थे। सन् 1868 के दिसम्बर 23 को उन्हें पुरी जाना पड़ा। यहां ये सन् 1872 तक रहे। यहीं उन्होंने संस्कृत की शिक्षा अर्जित की। 1870 में ही चंद्रमोहन आदित्य की पुत्री पारशमणि से उनका विवाह हुआ। सन् 1872 में उनका तबादला बांकुडा उच्च विद्यालय में हो गया, यहीं "कवितावली" नामक उनके काव्य संग्रह का प्रकाशन हुआ। उन्होंने महत्वपूर्ण कृतियों से उड़िया साहित्य के भण्डार को समृद्ध किया। 16 अप्रैल सन् 1908 को उनका निधन हो गया।

राधानाथ राय एक साधारण शिक्षक के पद से उच्च शिक्षक पद पर पहुंचे। उनका व्यक्तित्व आकर्षक तथा अहम् से मुक्त था। सादा रहन-सहन तथा खान-पान में भी सादगी ने उनके व्यक्तित्व को सदा ऊंचा ही बनाए रखा। वे साधारण उड़िया जन के समान थे।

रचनाएं : राधानाथ ने उड़िया काव्य को एक नयी दिशा दी। उड़ीसा के सुन्दर प्रकृति को अपनी कल्पना से युक्त कर लोगों के सामने रखा। अंग्रेजी के कवियों से वे बहुत प्रभावित थे। रोमांसवादी कवियों की कविताओं से प्रेरित होकर उड़िया के जनश्रुतियों पर आधारित काव्य रचना उनकी मुख्य विशेषता थी। उनके काव्य का एक और महत्वपूर्ण पक्ष है यर्थाथ का चित्रण। वे प्रथम कवि थे जिन्होंने काव्य के माध्यम से सामाजिक तथा राष्ट्रीय समस्या को उभारा। सन् 1886 से उनकी काव्य यात्रा शुरू होती है। आईए सिलसिलेवार ढंग से उनकी काव्य रचनाओं को जाने।

केदार गौरी (सन् 1886): सन् 1886 में लिखा गया काव्य केदार गौरी राधानाथ की प्रथम काव्य रचना है। बीस-बीस अक्षरों की कुल एक सौ छह पंक्तियों में यह काव्य रचना समाप्त होती है। इस रचना में पारिवारिक आख्यान को नए ढंग से प्रस्तुत किया गया है। केदार और गौरी देव और देवी की कथा को दो किशोर और किशोरी के रूप में प्रस्तुत किया गया है। दोनों एक दूसरे से प्रेम करते हैं। उनके गुरुजनों द्वारा उसका विरोध किया जाता है। दोनों अपने-अपने घर से भाग कर आत्महत्या कर लेते हैं। और उनकी स्मृति में मंदिर बना दिया जाता है। लोग उनकी पूजा करने लगते हैं। एक ओर इस काव्य से जहां प्रेम का गुणगान किया गया वहीं वहां के पाखंडी पुजारियों को अर्थ संचय करने का रास्ता मिल गया।

चंद्रभाग (1886) : यह काव्य रचना भी पुराण आख्यान से संबंधित है। किंतु कवि ने प्रसिद्ध सूर्य मंदिर कोणार्क के ध्वंस की कथा की कल्पना से इसे और आकर्षक बना दिया

है पूर्णिमा के दिन पुरी में जगन्नाथ उत्सव पर सभी देवी-देवता आते हैं। स्वागत में कामदेव खड़े हैं। सभी देवता उन्हें नमस्कार करके ही मंदिर के अन्दर जाते हैं। किंतु सूर्य ने ऐसा नहीं किया। सूर्य को इसका फल भोगना पड़ा। काम ने अपने प्रभाव से उसे नवयुवक बना कर सुमय् ऋषि के दुर्गा चंद्रभागा के प्रेम में पागल बना दिया। चद्रभागा ने पुरुष के रूप में केवल अपने पिता को देखा था। नवयुवक सूर्य जब चंद्रभागा का पीछा करने लगा तो चंद्रभागा भागने लगी। और अंततः समुंद्र में कूद कर विलीन हो गई। सूर्य शोक में व्याकुल अपने मंदिर को लौटा तो उसे टूटा हुआ पाया। सुमन्यु ऋषि ने क्रोध में आकर सूर्य के मंदिर को नष्ट कर दिया था इस रचना में चन्द्रभागा के पीछे भागते सूर्य का वर्णन दिलचस्प एवं मौलिक बन पड़ा है।

नंदिकेश्वरी (1887): दो संगो को विभक्त यह 1074 पंक्तियों की कवि की तीसरी रचना है। इसमें कवि ने उड़ीसा के प्राकृतिक सौन्दर्य का विस्तार से वर्णन किया है। सूर्योदय, बाढ़, महानदी, मंदिर का अनुष्ठान, राजकुमारी का प्रेम में दिवाना होना आदि विषयों को बहुत ही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

ऊषा (1888) : यह रचना मुख्य रूप से मयुर भंज के राजा से संबंधित है दो भागों में कथा को सुंदर ढंग से विभक्त किया गया है। नायक जयंत नायिका ऊषा के जन्म, उनका प्रेम वर्णन तथा प्राकृतिक सौन्दर्य इस काव्य रचना की मुख्य आकर्षण हैं। यह काव्य दुखांत है। नायक नायिका की मृत्यु का तथा अंत्येष्टि का वर्णन कारुणिक है।

पावर्ती (1880) : यह राधानाथ की प्रौढ रचना है। काव्य में दो सर्ग, बीस-बीस अक्षरों की कुल तीन सौ दो पंतिया हैं।

पार्वती की कथा को दिलचस्प बनाया गया है। बालेश्वर से पुरी तक के सागर तट का प्राकृतिक सौन्दर्य अत्यंत ही आकर्षक बन पड़ा है। आदिवासियों के नृत्य तथा युद्ध की तैयारी का चित्रण, सत्ता पक्ष की लोलुपता तथा उसके द्वारा जनता का शोषण आदि का चित्रण कर कवि ने नयी चेतना लाने का प्रयास किया। यह रचना अपूर्ण है।

चिलिका (1891) : यह राधानाथ की प्रसिद्ध रचना है। इस रचना में कोई कथा योजना नहीं है। बल्कि इसमें उड़ीसा की झील चिलिका, जंगल, नदियां, मंदिर, तथा पहाड़ियों का चित्रण है। प्राकृतिक सौंदर्य को कवि ने बड़े ही मनमोहक ढंग से प्रस्तुत किया है। चिलिका झील में और उसके आसपास के कार्य व्यापार की बहुत बारीकियों के साथ पेश किया गया है। प्रकृति में जितने बदलाव आते हैं और उससे चिलिका झील तथा उसके आसपास के वातावरण में जो सौंदर्य उभरता है उसे कवि ने बड़े मनोयोग के साथ रखा है।

नौकाओं में राजा रानियों का विहार करना तथा दूसरी ओर लुटेरों द्वारा माल लूटकर नाव में भागना आदि विषयों का समावेश कर कवि ने उसे यथाथ से जोड़ दिया है।

महायात्रा (1895) : सात सर्गों में विभक्त यह भी कवि की अपूर्ण रचना है। पांच-पांच शब्दों तथा चौदह-चौदह अक्षरों की कुल 2331 पंक्तियों वाला यह काव्य अत्यंत ही महत्वपूर्ण है। इस रचना में महाभारत के पात्रों पाण्डवो की हिमालय यात्रा का वर्णन है फिर अग्नि देवता द्वारा इन्हें भारत के पश्चिमी घाट पर ले जाया जाता है। यहां भारत में भविष्य में होने वाली घटनाओं को विस्तार से बताया गया है। इस काव्य रचना की एक खास बात यह है कि उड़िया काव्य में पहली बार राजनीतिक एवं सामाजिक समस्याओं को लिया गया है।

पर्वतिकेशरी (1884) : यह काव्य रचना हल्की-फुल्की है इसमें उलझन भरे कल्पना का सहारा लिया गया है जिससे कलपणा की दृष्टि से इसमें अभाव उत्पन्न हो गया है।

दरबार (1897) : दरबार राधानाथ की अंतिम काव्य रचना है। इसमें एक दरबार में संभवतः उसके बहनोई को कमिश्नर कुक ने राय बहादुर की उपाधि दी थी। सबसे मजेदार बात यह हैं कि दरबार में उपस्थित सभी बड़े लोग अपनी बड़ाई आप कर रहे हैं। अपने को ऊंचा दिखाने की चेष्टा में वे किस तरह तिल का ताड बना रहे हैं वह

इस काव्य की विशेषता है। अजीवों गरीब पहनावे से लोग लोगों को आकर्षित करने में लगे हुए हैं। वास्तव में यह रचना सामंतशाही व्यवस्था पर व्यंग्य ही है।

बोध प्रश्न

26) उचित शब्द रखकर वाक्य पूर्ति कीजिए

क) राधानाथ राय मूलतः ..... भाषी थे।

ख) 28 ..... सन् ..... को राधानाथ राय का जन्म हुआ।

ग) ..... के निधन से राधानाथ राय को ..... का शिकार होना पड़ा।

घ) राधानाथ राय ने सर्वप्रथम एक ..... के रूप में कार्य शुरू किया।

ड) ..... द्वारा निर्मित समिति में राधानाथ राय भी थे।

च) अपनी पुस्तक ..... में सूर्य मंदिर के ध्वंस की घटना को नये ढंग से लिखा है।

छ) ..... रचना में राधानाथ राय ने सर्वप्रथम सामाजिक समस्या को उभारा है

9.5.3 मधुसूदन राव

मधुसूदन राव का जन्म पुरी में सन् 1853 में हुआ था। अध्ययन के बाद अध्यापन ही उनका मुख्य पेशा रहा। राधानाथ राय इनके गुरू थे। गुरू शिष्य ने मिल कर उड़िया साहित्य के द्वारा उड़ीसा में नवजागरण का संदेश फैलाया था। फकीर मोहन, राधानाथ राय तथा, मधुसूदन राव ऐसे विभूति थे जिन्होंने मिलकर उड़ीया भाषा को स्वतंत्र भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया तथा अपने लेखन द्वारा उसे समृद्ध किया। अपने गुरू के साथ मिल कर मधुसूदन ने "छंदमाला" संग्रह नामक आधुनिक गीतों को छापा। इनका यह संग्रह नवयुवकों के लिए नवयुग का संगीत बन गया था।

मधुसूदन मुख्य रूप से कवि थे। अपने विचारों को उन्होंने काव्य तथा निबंधों द्वारा प्रकट किया। कटक में सेकेन्ड्री टीचर्स ट्रेनिंग स्कूल के प्रिंसिपल के रूप में उन्होंने एक अच्छे अध्यापक तथा उपदेशक की भूमिका निभाई। वे आने वाली पीढ़ी के लिए प्रेरणा-स्रोत बन गए थे। उनकी कुछ कविताओं का हिंदी अनुवाद यहां दिया जा रहा है। इसे पढ़कर आप अंदाजा लगा सकते हैं कि एक ओर मधुसूदन राय बालकों को चरित्र निभायी के लिए बचपन से ही प्रेरित करते हैं तो दूसरी ओर किसी अलौकिक सत्ता के प्रति असीम आस्था व्यक्त करते हैं। नवजागरण के लिए उन्होंने अनेकों रचनाएं की। निम्नलिखित अनुचित पंक्तियों "भारतीय साहित्य" लेखक डा० नगेन्द्र की पुस्तक से उदृत हैं।

उषा हुई, चिड़ियों ने मनहर गाना गाया
लगी नाचने उसी ताना में यह हृदयों की माला
आओ बच्चों इनमें मिल हम भी गाएं गाना
उस ईश्वर का जिसने हमको जन्म दिया,
यह संसार बनाया,

हमें सच्चाई, पवित्रता के मार्ग पर ले चलो तुम्हारे प्रेम की मुझ पर वर्षा हो,
बैठ नहाता हूं मुझे छोड़ दो
अपने चरणों में मेरे आत्मार्पण को स्वीकार करो।
सुनी नई सचना मानवता, दैवी परिवर्तन क्रम में माता नवयुग धरती की आवाजों सनो,

हर्षत हो श्रष्टा महान् है उसका परिवार यूरोप, अफ्रीका, एशिया और अमेरिका एक हो रहे ईश्वर के स्नेह निपक मानवता का सृजन कर रहे अमिय बरस रहा प्रेम और मैत्री। मधुसूदन राव एक अध्यापक, कवि सामाजिक नेता तथा शिक्षा शास्त्री थे। अपनी रचनाओं द्वारा उन्होंने मानवता का नव संदेश दिया। सन् 1972 में इनका निधन हो गया।

9.5.4 गोपबंधु दास

गोपबंधु दास सत्यवादी युग के प्रमुख रचनाकार थे। ये एक समाज सेवा उदार राजनीतिक, प्रभावशाली वक्ता, तथा दूरदर्शी विचारशील शिक्षा शास्त्री थे। उन्होंने लोक भाषा में रचना का जनता तक अपना संदेश पहुंचाया। उनका राष्ट्र निर्माण के लिए किये नए कार्यों में प्रमुख था सालों गुरूकुल की स्थापना। यह विद्यापीठ दो दशक तक उड़ीसा का मुख्य शिक्षा केन्द्र रहा उन्होंने 'सत्यवादी' नामक मासिक तथा 'समाज' नामक साप्ताहिक पत्र भी निकाली। इनमें विभिन्न विषयों पर रचनाएं छपी थी जिससे लोगों में जागृति आयी थी। महात्मा गांधी द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन चलाए जाने पर इन्होंने संपूर्ण रूप से उसमें अपने को समर्पित किया सन् 1924 से 1926 तक दो वर्षों के लिए ये जेल भी गए। जेल में ही उन्होंने दो महत्वपूर्ण पुस्तकों की रचना की। एक है बंदिर "आत्मकथा" तथा दूसरा "धर्मपद"। जेल जाने तथा अंग्रेजों के जुल्म की यर्थाथ पीड़ा को व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं।

मेरी रेलगाड़ी जौनपुर आ पहुंची है।
यहां के वासी मुझसे
अपरिचित नहीं हैं।

तीन वर्ष हुए इसके जलप्लावन को मैंने देखा था पशुओं, घरों और खेती की अपरिमेय क्षति मैंने देखी थी लाखों नेत्रों की अविरल जलधारा।

मेरे संपूर्ण हृदय में यह चित्र वेदना भर-भर आते हैं:—
इन पंक्तियों को पढ़कर युवाओं में उत्साह भर जाता था और वे राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय हो जाते थे।

कालिन्दीचरण पाणिग्रही तथा सच्चिदानंद राउतराय के अलावा जिन साहित्यकारों ने उड़िया साहित्य को सबसे अधिक समृद्ध किया उनमें कान्हुचरण मोहांती तथा गोपीनाथ मोहांती हैं। हम यहां गोपीनाथ मोहांती के बारे में जानेंगे। फकीरमोहन सेनापति द्वारा सामाजिक यर्थाथ से जुड़कर रचनाएं करने की जो परंपरा शुरू की गई थी उसमें एक रुकावट सी आ गई थी। इस रुकावट को थोड़े अन्तराल के बाद दूर किया मोहांती बंधुओं ने। कान्हुचरण ने सन् 1935 में हो 'अन्न' तथा सन् 1945 में 'शांष्ति' जैसे उपन्यास दिये। उड़िया उपन्यास में नवीनता का सूत्रपात किया गोपीनाथ मोहांति ने। सन् 1945 में अपने पहले उपन्यास "परजा" लिख कर ही वे ख्याति पा चुके थे। फिर उन्होंने ग्रथार्थ एवं वास्तविक सामाजिक समस्याओं से जुड़े उपन्यासों की रचना की। इनके उपन्यास इस प्रकार से हैं। सन् 1347 अमृत संतान, 1548 में "हरिजन" 1952 में राहुर छापा, सन् 1955 में दाणा पाणी सन् 1961 में लय-विलय तथा सन् 1969 में माटिमटाल की रचना की। उनके उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता है सरल-सहज ग्रामीणों का चित्रण। परजा में वह दिखाते है कि किस प्रकार एक आदिवासी लड़का क्रोध में व्यभिचारी साहूकार की हत्या कर देता है और अपने को थाने में पेश करता है। वास्तव में समाज में शोषण के खिलाफ उठने वाली आवाज को ही उन्होंने प्रधानता दी है। भाषा, शैली, एवं आदर्श से परिपूर्ण गोपीनाथ महांती के उपन्यास उड़िया साहित्य की अमूल्य निधि है। इन्हें साहित्य अकादमी तथा ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया है।

बोध प्रश्न

उचित शब्द रख कर वाक्य पूर्ति कीजिए।

27) क) मधुसूदन राव ने ..... नाम से कविता संग्रह प्रकाशित किया।

ख) उनके लिखे गीत उड़िया ..... के लिए प्रेरणा स्रोत बन गए थे।

ग) मधुसूदन राव मुख्य रूप से ..... थे।

घ) गोपवंशु दास द्वारा स्थापित ..... विद्या केन्द्र उड़ीसा का मुख्य ..... था।

ङ) राष्ट्रीय आंदोलन में गोपवंछुदास ..... के लिए जेल भी गए।

च) ..... तथा ..... नामक पुस्तकों की रचना करके गोपबन्धु ने अंग्रेजी जन्मों का परदाफाश किया।

छ) गोपीनाथ मोहान्ती ने मुख्य रूप से ..... समस्या को अपने ..... में प्रस्तुत किया है।

ज) गोपीनाथ मोहान्ती के चार प्रमुख उपन्यास हैं। ....., ..., ... ,

9.6 सारांश

- उड़िया भाषा भारतीय भाषाओं की प्रमुख भाषाओं में से एक है। इस भाषा का दुर्भाग्य यह रहा कि विदेशी शासन के अन्तर्गत क्षेत्रों में विभाजित होने के कारण एवं संगठित शक्ति नहीं बन पा रही थी। कुछ षडयंत्रकारी भी इस भाषा को स्वतंत्र भाषा के रूप में विकसित नहीं होने देना चाहते थे। किंतु फकीरमोहन सेनापति, राधानाथ राय, मधुसूदन राव जैसे विद्वानों के प्रयास से यह भाषा स्वतंत्र भाषा ही नहीं बनी बल्कि इसमें समृद्ध साहित्यिक रचनाएं भी हुई। आप उड़िया भाषा साहित्य की पृष्ठभूमि को बता सकते हैं।
- भाषा, लिपि तथा साहित्य की शुरुआत किस प्रकार हुई। किन रचनाकारों ने अपने रचनाओं तथा अनुवादों से इस भाषा को आगे बढ़ाया इन सबका परिचय दे सकते हैं।
- विभिन्न गद्य विद्याओं की शुरुआत के साथ नवजागरण तथा राष्ट्रीय आंदोलन से युक्त रचनाएं की गई। आप उन सबका विश्लेषण प्रस्तुत कर सकते हैं।
- फकीरमोहन से लेकर गोपी नाथ मोहन्ती तक की उड़िया भाषा को अमूल्य नीधियां प्रदान की। आप महत्वपूर्ण रचनाकारों एवं उनके कार्यों का आकलन कर सकते हैं।

9.7 उपयोगी पुस्तकें

गोपीनाथ महांती, अनु युगजीत नवलपुरी, राधानाथ राय साहित्य अकादमी, नई दिल्ली,

डा. वनमाली दास, फकीरमोहन और प्रेमचंद, अनु प्रकाशन, मेरठ

मायाधर मानसिंह, अनु सौमित्र मोहन, फकीरमोहन सेनापति, साहित्य अकादमी नई दिल्ली।

9.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1), 2), 3), 4), 5), 6), देखें भाग 9.2

बोध प्रश्न

7), 8) देखें भाग 9.3

बोध प्रश्न

9), 10), 11), 12), 13), 14), 15), 16), 17), 18), 19), 20), 21), 22), 23), 24), देखें भाग 9.4

बोध प्रश्न

25) देखें भाग 9.5.1

बोध प्रश्न

26) देखें भाग 9.5.2

बोध प्रश्न

27) देखें उपभाग 9.5.3

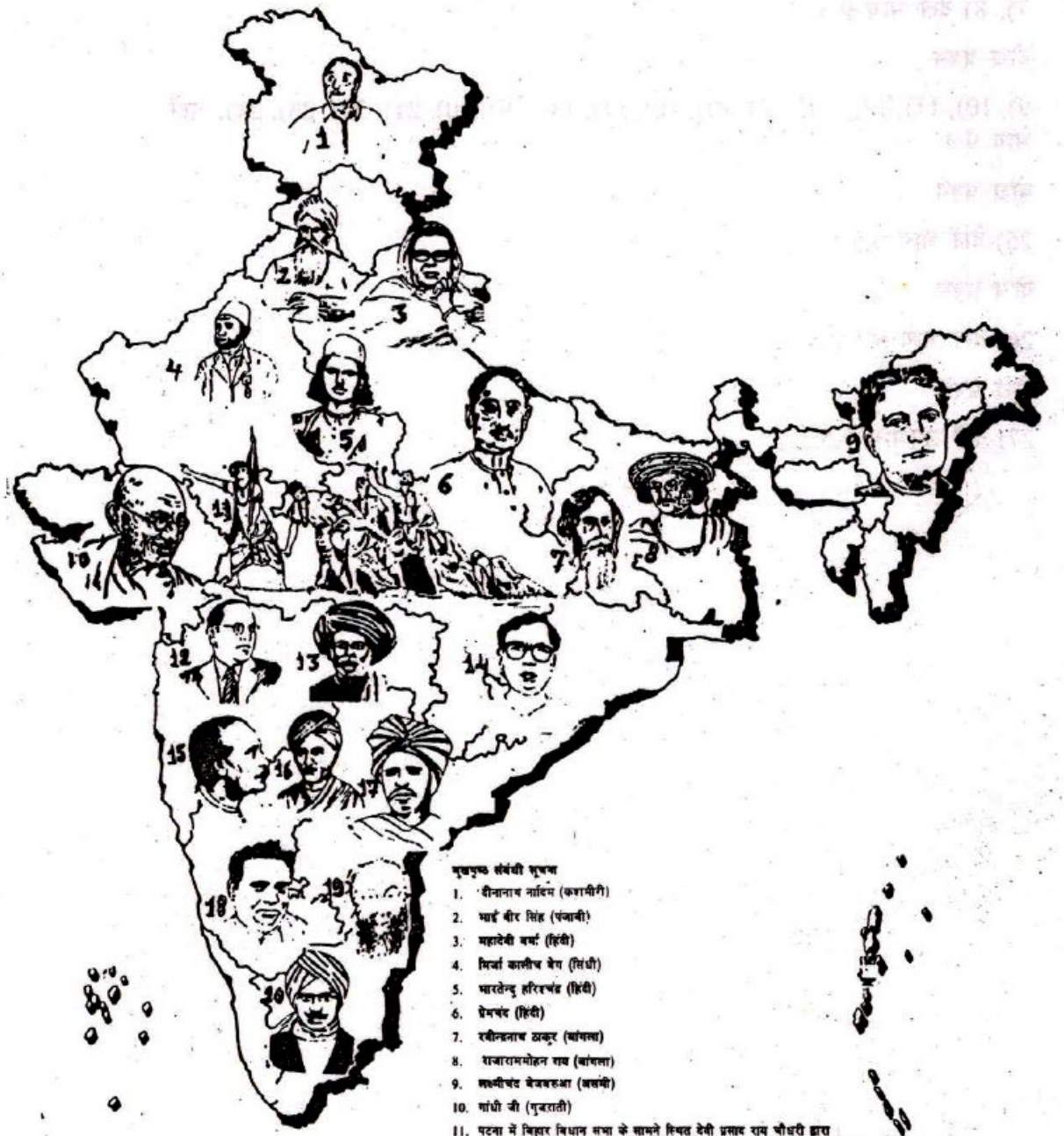

मुखपृष्ठ संबंधी सूचना

1. दीनानाथ नादिम (कश्मीरी)
2. भाई वीर सिंह (पंजाबी)
3. महादेवी वर्मा (हिंदी)
4. मिर्जा कलीच बेग (सिंधी)
5. भारतेन्दु हरिश्चंद्र (हिंदी)
6. प्रेमचंद (हिंदी)
7. रवीन्द्रनाथ ठाकुर (बांग्ला)
8. राजारामम्मोहन राय (बांग्ला)
9. लक्ष्मीचंद बेजबरुआ (असमी)
10. गांधी जी (गुजराती)
11. पटना में बिहार विधान सभा के सामने स्थित देवी प्रसाद राय चौधरी द्वारा निर्मित सात शहीद छात्रों की मूर्तियां जो, 1942 के आंदोलन में अंग्रेजों की गोली के शिकार हुए।
12. बाबा साहब डा. भीमराव अम्बेडकर (महाराष्ट्र)
13. ज्योतिबा फुले (महाराष्ट्र)
14. डा. गोपीनाथ महंती (ओड़िया)
15. केसवसुत (मराठी)
16. डा. के. शिवराम कारन्त (कन्नड़)
17. कांदुकुरी वीरेशलिंगम (तेलुगु)
18. कुमारन आशान् (मलयालम)
19. पेरियार ई.वी. रामास्वामी (तमिल)
20. सुब्रह्मण्यम् भारती (तमिल)

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

DCEHI-103

आधुनिक भारतीय साहित्य
नवजागरण और
राष्ट्रीय आंदोलन

खण्ड

3

दक्षिणांचल साहित्य-I

इकाई- 10

तमिल साहित्य - I 257

इकाई- 11

तमिल साहित्य - II 276

इकाई- 12

मलयालम साहित्य - I 291

इकाई- 13

मलयालम साहित्य - II 315

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. चन्द्रकांत बांदिवडेकर
हिंदी विभाग
मुंबई विश्वविद्यालय

प्रो. बी.एच. राजूरकर
मराठवाडा विश्वविद्यालय
औरंगाबाद

प्रो. मलिक मुहम्मद
हिंदी विभाग
कालीकट विश्वविद्यालय
कालीकट, केरल

प्रो. भीमसेन निर्मल
उस्मानिया विश्वविद्यालय
हैदराबाद

प्रो. रमेशकुंतल मेघ
हिंदी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

प्रो. इन्द्रनाथ चौधरी
सचिव, साहित्य अकादमी
नई दिल्ली

प्रो. अंबाशंकर नागर
गुजरात विद्यापीठ
अहमदाबाद

प्रो. जी.पी. देशपांडे
सेन्टर फॉर ईस्ट एशियन स्टडीज
स्कूल ऑफ इन्टरनेशनल स्टडीज
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

संकाय सदस्य:
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

प्रो. वी.रा. जगन्नाथन

डॉ. शत्रुघ्न कुमार
व्याख्याता हिंदी

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक

डॉ. रवीन्द्र कुमार सेठ (इकाई-10, 11)
रीडर, हिन्दी विभाग
पी.जी.डी.ए.वी. कालेज (सांध्य)
श्रीनिवासपुरी, रिंग रोड,
नई दिल्ली

डॉ. आर. सुन्दरम (इकाई-12)
रीडर, कालिकट विश्वविद्यालय
कालिकट

डॉ. सत्यकाम (इकाई-13)
व्याख्याता हिंदी
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

संकाय सदस्य:
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक

डॉ. शत्रुघ्न कुमार
व्याख्याता हिंदी

खंड संयोजक

डॉ. सत्यकाम
व्याख्याता हिंदी

डॉ. जवरीमल पारख
रीडर हिंदी

डॉ. रोतारानी पालीवाल
रीडर हिंदी

डॉ. राकेश वत्स
व्याख्याता हिंदी

श्रीमती स्मिता चतुर्वेदी
व्याख्याता हिंदी

श्रीमती विमल खांडेकर
व्याख्याता हिंदी

मुद्रण प्रस्तुति

सुश्री पुष्पा गुप्ता
कॉपी एडिटर
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

मई 1997

© इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 1993

ISBN-81-7263-487-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुन: प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

DCEHI-103(I)/254

खंड परिचय

"आधुनिक भारतीय साहित्य : राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण" (ऐच्छिक पाठ्यक्रम-5) का यह तीसरा खंड है। खंड-2 में आपने बांग्ला, असमी और ओड़िया साहित्य का परिचय प्राप्त किया। इस खंड में हम दक्षिणांचल साहित्य से परिचित होने जा रहे हैं। दक्षिणांचल साहित्य को दो खंडों में विभक्त किया गया है। प्रस्तुत खंड में तमिल और मलयालम साहित्य से आपको परिचित कराया जा रहा है। अगले खंड में (खंड-4) आप तेलुगु और कन्नड़ साहित्य का साक्षात्कार करेंगे।

प्रस्तुत खंड में चार इकाइयाँ हैं। तमिल से संबंधित दो इकाइयां है और मलयालम से संबंधित दो इकाइयां हैं। इन चारों इकाइयों में तमिल और मलयालम के प्रतिनिधि साहित्यकारों की रचनाओं का मूल्यांकन राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण के संदर्भ में किया गया है। इन इकाइयों में हम सुब्रह्मण्यम भारती, वल्लतोल, कुमारनाशान और बशीर की रचनाओं को पढ़ने और समझने की कोशिश करेंगे।

आइए सबसे पहले तमिल साहित्य का अध्ययन शुरू किया जाए।

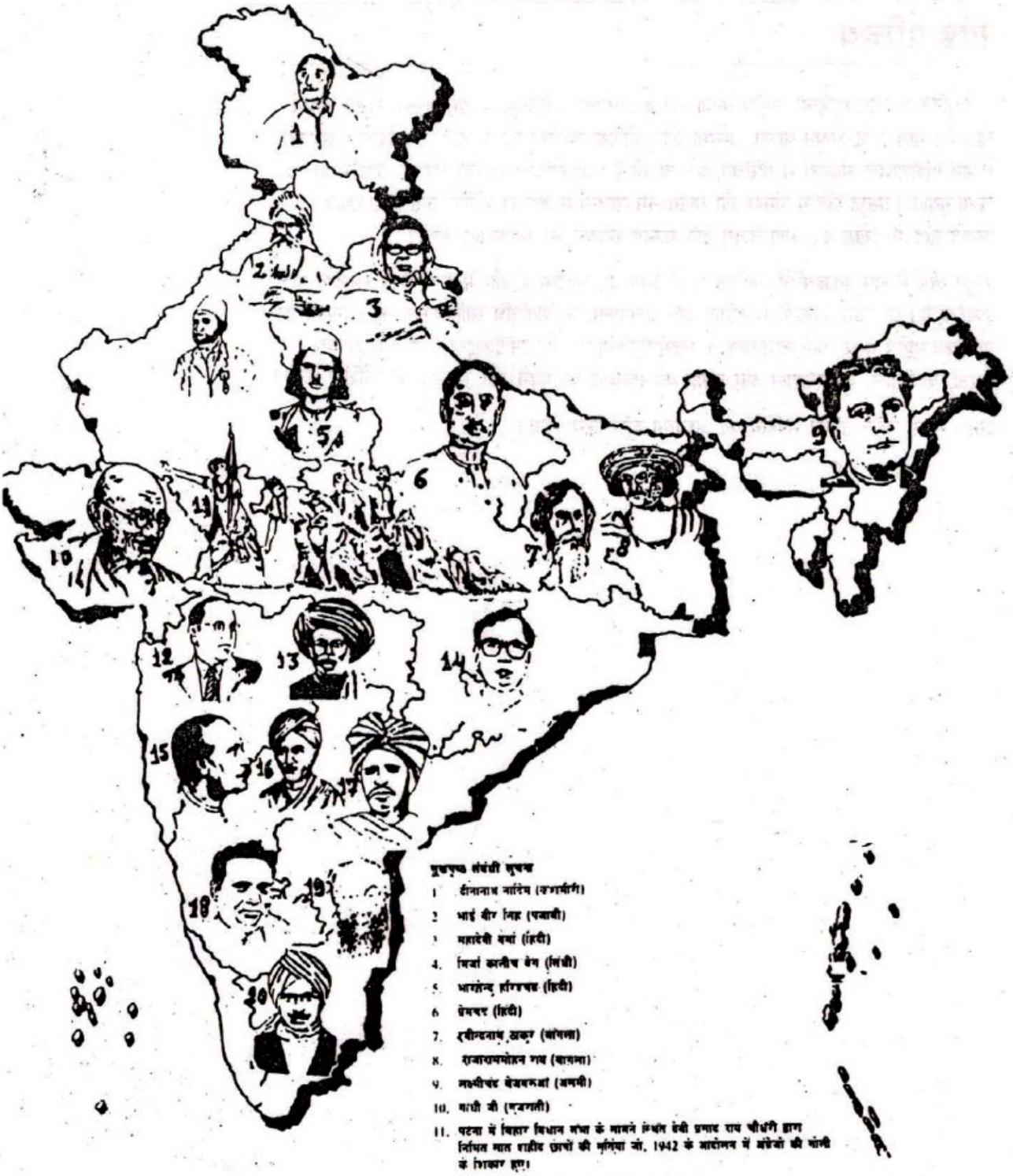

पृष्ठपृष्ठ संबंधी सूचना

1. दीनानाथ भार्गव (कश्मीरी)
2. भाई वीर सिंह (पंजाबी)
3. महादेवी वर्मा (हिंदी)
4. मिर्जा ग़ालिब बेग (सिंधी)
5. भारतेन्दु हरिश्चंद्र (हिंदी)
6. प्रेमचंद (हिंदी)
7. रवीन्द्रनाथ ठाकुर (बांग्ला)
8. राजाराममोहन राय (बांग्ला)
9. लक्ष्मीचंद्र बेजबरुआ (असमी)
10. गांधी जी (गुजराती)
11. पटना में बिहार विधान सभा के सामने स्थित देवी प्रसाद राय चौधरी द्वारा निर्मित सात शहीद छात्रों की मूर्तियां जो, 1942 के आंदोलन में अंग्रेजों की गोली के शिकार हुए।
12. बाबा साहब डा. भीमराव अम्बेडकर (महाराष्ट्र)
13. ज्योतिबा फुले (महाराष्ट्र)
14. डा. गोपीनाथ महंती (ओड़िया)
15. वेंकटप्पा (मराठी)
16. डा. के शिवराम कारन्त (कन्नड़)
17. काडगरी वीरेशलिंगम (तेलुगु)
18. कुमारन आशान (मलयालम)
19. पेरियार ई.वी. रामास्वामी (तमिल)
20. सुब्रह्मण्यम भारती (तमिल)

इकाई 10 तमिल साहित्य-I

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य
10.1 प्रस्तावना
10.2 पृष्ठभूमि
  10.2.1 तमिल भाषा और साहित्य
  10.2.2 सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियाँ
10.3 सुब्रह्मण्यम भारती
  10.3.1 जीवन परिचय
  10.3.2 साहित्य
10.4 सुब्रह्मण्यम भारती के साहित्य में राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण के तत्व
  10.4.1 राष्ट्रीय चेतना
  10.4.2 नवजागरण
10.5 सुब्रह्मण्यम भारती की कविता
  10.5.1 वन्देमातरम्
  10.5.2 पांचाली की शपथ
10.6 सारांश
10.7 शब्दावली
10.8 उपयोगी पुस्तकें
10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

यह दक्षिणांचल साहित्य के तीसरे खंड की दसवीं इकाई है। इस इकाई में आप तमिल भाषा के साहित्य में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के विकास का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- तमिल भाषा के साहित्य की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करेंगे,
- तमिल भाषा-साहित्य में हुए नवजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना के विकास का परिचय प्राप्त करेंगे,
- नवजागरण एवं राष्ट्रीय आन्दोलन के काल में रचे गए साहित्य के बारे में जानेंगे,
- तमिल के प्रमुख कवि सुब्रह्मण्यम भारती के साहित्य की जानकारी प्राप्त करेंगे,
- तमिल के राष्ट्रीय महाकवि सुब्रह्मण्यम भारती की रचनाओं के अंशों का अध्ययन करेंगे।

10.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम तमिल भाषा और साहित्य का संक्षेप में परिचय प्राप्त करने जा रहे हैं। इस परिचय से तमिल के महत्वपूर्ण कवि सुब्रह्मण्यम भारती को समझने में सहायता मिलेगी। पृष्ठभूमि के रूप में हमने उन सामाजिक-राजनीतिक परिस्थितियों की भी चर्चा की है, जिसके बीच सुब्रह्मण्यम भारती की रचनाओं ने जन्म लिया। एक सजग साहित्यकार के नाते स्वाभाविक रूप से भारती की रचनाएँ समकालीन राजनीतिक-सामाजिक परिस्थितियों से प्रेरित हैं।

जिस समय सुब्रह्मण्यम भारती जीवन से परिचित हो रहे थे उस समय भारत पराधीन था, यहां का समाज रूढ़ ग्रंथियों की जकड़न से सड़ रहा था। भारती ने एक ओर अपनी कविताओं में जर्जर सामाजिक मान्यताओं पर आक्रमण किया है तो दूसरी ओर उन्होंने अपनी कविताओं में राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता का जयघोष किया है। अपनी इस चेतना के कारण उन्हें कई बार साम्राज्यवादी सरकार का कोपभाजन बनना

पड़ा। पर उनकी लेखनी और कविता की धार कमजोर नहीं पड़ी बल्कि उसमें एक नयी स्फूर्ति और शक्ति आयी।

इस इकाई में हम आपको सुब्रह्मण्यम भारती की दो कविताओं "वन्देमातरम" और "पांचाली की शपथ" के काव्यांशों का अध्ययन करा रहे हैं। हमने मूल भाषा (तमिल) को नागरी लिपि में ढालकर प्रस्तुत किया है और उसका हिंदी रूपांतरण भी दिया है। इससे आपको तमिल भाषा के स्वरूप को जानने का मौका मिलेगा। विवेच्य दोनों कविताएँ राष्ट्रभक्ति और नवजागरण से संपृक्त हैं।

10.2 पृष्ठभूमि

हम इस इकाई में सुब्रह्मण्यम भारती की कविताओं का अध्ययन करने जा रहे हैं। भारती की कविताओं को समग्रता से समझने के लिए तमिल भाषा और साहित्य की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करनी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त भारतीयुगीन राजनीतिक और सामाजिक परिस्थितियों को जानना भी आवश्यक है। इस बात को ध्यान में रखते हुए बतौर पृष्ठभूमि हम इन तथ्यों का जिक्र करने जा रहे हैं।

10.2.1 तमिल भाषा और साहित्य

आधुनिक तमिलनाडु की प्रादेशिक भाषा "तमिल" है। दक्षिण भारत की चार भाषाओं तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम में से यह सर्वप्राचीन है। तमिल का शाब्दिक अर्थ है — "मधुर"। प्राचीन तमिल साहित्य लगभग दो हजार पांच सौ वर्ष पुराना है। इस भाषा का प्राचीनतम उपलब्ध व्याकरण "तोलकाप्पियम्" है। 27 अध्यायों और 1612 सूत्रों में विभक्त इस कृति में भारतीय चिंतन का ज्ञान संचित है। निश्चय ही **तोलकाप्पियम्** से पूर्व अनेक शताब्दियों से विशाल-साहित्य की दीर्घ परम्परा विद्यमान थी। प्राचीन तमिल साहित्य का मुख्य आधार मानव और प्रकृति का सहज संयोग है। प्रेम, युद्ध और प्रकृति वर्णन प्रमुख विषय है। वर्तमान युग में जीवंत भारतीय भाषाओं में संस्कृत और तमिल सर्वप्राचीन है।

तमिल के साहित्य का विश्व की प्रमुख भाषाओं के साहित्य में एक आदर का स्थान है। संघकाल का साहित्य ईसा की प्रारंभिक शताब्दियों का माना जाता है। प्राचीन तमिल साहित्य की जो संघकालीन रचनाएँ उपलब्ध हैं उनके आधार पर इन कृतियों को तीन वर्गों में विभक्त किया जाता है —

i) एट्टुतोगै (अष्ट पद्य-संग्रह) (एट्टु-आठ, तोगे-पद्यसंग्रह)

ii) पत्तुप्पाट्टु (दस दीर्घ कविताएँ) (पत्तु-दस, पाट्टु-पद्य)

iii) पदिनेण्कीळ कणक्कु (अठारह नीति परक काव्य)।

एट्टुतोगै — अष्ट पद्य संग्रह की कविताओं का विषय संयोग और वियोग शृंगार, प्रकृति-चित्रण, सामाजिक जीवन के अनेक विषय, भक्ति के कुछ संदर्भ आदि हैं। इन कविताओं में यत्र-तत्र तिरूमाल (विष्णु) और शेवेल् (कार्तिकेय), शिव और मुरूगन की भक्ति के संदर्भ मिलते हैं। इन कविताओं के साथ **पत्तुप्पाट्टु** की दीर्घ कविताओं को देखने पर उस युग की सामाजिक स्थिति, गृहस्थ जीवन, भोजन, वेशभूषा, व्यापार, धर्मचिंतन आदि की पर्याप्त जानकारी मिलती है। युद्ध, उत्सव, संगीत, विदेशी व्यापार और नगर-जीवन के अद्भुत वर्णन इन कविताओं में उपलब्ध हैं।

पदिनेण्कीळ्कणक्कु — अठारह नीति-काव्यों में **नालडियार आचारक्कोवै** और **तिरूक्कुरल** महत्वपूर्ण हैं। इनमें से **तिरूक्कुरल** तमिल का ही नहीं सारे विश्व का गौरव-ग्रंथ है। यह एक मुक्तक काव्य है जो दोहे जैसे वेण्पा छन्द में है। इसमें धर्म (अरम्), अर्थ (पोरूल्) और इनबम् (काम) का क्रमबद्ध चित्रण हुआ है। इसके रचयिता कवि तिरूवल्लुवर ईसा की प्रथम शती के निकट हुए माने जाते हैं। इस ग्रंथ के अनुवाद भारत और विश्व की अनेक भाषाओं में हो चुके हैं। 133 अध्यायों के इस ग्रंथ में प्रत्येक अध्याय 10 पदों-दोहों का है। एक अध्याय में एक विषय का सूक्ष्म, गहन और काव्यात्मक वर्णन है। धर्म खण्ड में मानव-मात्र के लिए स्वीकार किया जा सके — ऐसा धर्म-भाव वर्णित है। मन, वचन और कर्म की पवित्रता इसका मूल चिंतन है। दया, सत्य, निष्काम कर्म, संयम, अहिंसा इसका मूल स्वर है। अर्थ-खण्ड में शासन के अंगों जैसे शासक, मंत्री, दुर्ग, कोष, सेना, शक्ति, समय

और स्थल का बोध, मैत्री, मद्य-निषेध, कर्म-शुद्धि, उद्यमशीलता, कृषि, दरिद्र आदि का वर्णन है। वल्लुवर ने शृंगार-वर्णन में संयोग और वियोग के मादक, मधुर चित्र रचे हैं, यहां प्रेम का वर्णन गृहस्थ की मर्यादा में बंधा हुआ है। आज भी तिरूवल्लुवर का मानवता का संदेश विश्व के प्रत्येक व्यक्ति और समाज के लिए आदर्श का मार्ग दर्शक है। जैन, वैष्णव, शैव, ईसाई, मुसलमान तथा अन्य सभी वर्गों के लोग इस ग्रंथ को आदर के साथ अपना अनुभव करते हैं।

तमिलनाडु में ईसा की पांचवीं-छठी शती तक जैन और बौद्ध धर्म और चिंतन का व्यापक प्रभाव रहा। इस युग में रचे गए दो महाकाव्य बहुत विख्यात हैं। "शिलप्पदिकारम्" एवं "मणिमेखला" नामक इन महाकाव्यों में सत्य की प्रतिष्ठा, स्त्री की अपार शक्ति और पूर्व-जन्म के कर्मों का प्रभाव मूल विषय है। इन दोनों महाकाव्यों से उस युग के सामाजिक जीवन, त्योहार, चिंतन आदि की भरपूर जानकारी मिलती है।

पांचवी शती के अंतिम चरण से "भक्ति" का विकास तमिलनाडु के साहित्य में दिखाई देने लगता है। सर्वशक्तिमान, अंतर्यामी ईश्वर की वंदना की अनेक कविताएँ हमें संघम् युग में मिलती हैं। वहां मुरूगन अथवा कार्तिकेय का विशेष वर्णन है। शिव और विष्णु के बारे में भी अनेक पद मिलते हैं। परंतु एक आंदोलन के रूप में तमिल में वैष्णव भक्ति का विकास करने वाले भक्त आल्वार कहलाएँ। उनके चार हज़ार पदों का संग्रह **नालागिर दिव्य प्रबंधम्** के नाम से 7वीं शती में नाथमुनि ने किया। आलवार का अर्थ है — प्रभु के प्रेम के सागर में डूबा हुआ। इन कवियों ने जनभाषा का प्रयोग किया और भक्ति को जन-साधारण तक पहुंचा दिया। बाद में श्री रामानुजाचार्य ने इन्हीं भक्तों के काव्य को आधार बनाकर अन्य धर्मों की तुलना में वैष्णव-धर्म की पुनः प्रतिष्ठा की।

इन कवियों में नम्माल्वार, पेरियाल्वार, कुलशेखर आलवार और दक्षिण की मीरां "आण्डाल" भी हैं। इन बारह कवियों ने शखागति, विष्णु की विविध लीलाओं, कृष्ण और राम की कथा के अनेक प्रसंगों को कविता का विषय बनाया। आण्डाल तो नंदगोप के कुमार नारायण के प्रति पूरी तरह समर्पित है, पेरियाल्वार की यशोदा के कृष्ण मानव और अतिमानव के परस्पर विरोधी तत्वों से युक्त "माधव", "केशव", "पूर्ण", "दामोदर" मधुसूदन हैं। कहीं गोपियों को कृष्ण के नटखट कार्यों की शिकायत है तो कहीं माता यशोदा के हृदय की व्याकुलता का वर्णन है। कहीं कृष्ण की "मुरली माधुरी" के प्रभाव का वर्णन है तो कहीं हनुमान सीता को राम की मुद्रिका देकर पूर्वकथा का वर्णन करते हैं। आल्वार भक्तों ने भक्त-मन की सूक्ष्म भावनाओं का अद्भुत वर्णन किया है।

एक ओर वैष्णव भक्ति तो दूसरी ओर तमिल में शैव-भक्ति का विकास हुआ। शिवभक्ति के प्रमुख कवि तिरूज्ञानसम्बन्धर, अप्पर, सुन्दरमूर्ति और माणिक्यवाचकर हैं। इन शिव-भक्तों को नायनमार कहा जाता है। इनके काव्य में त्याग की भावना है, आस्था और श्रद्धा का स्वर है। मानव मात्र की एकता पर ये कवि बल देते हैं और शरणागति की भावना से संगीतमय रूप में इन्होंने काव्य रचा। मधुरा भक्ति, सख्य भाव की भक्ति और दास्य-भक्ति का यह शिव-भक्ति-काव्य शताब्दियों से जन-साधारण और प्रबुद्ध दोनों वर्गों को प्रभावित कर रहा है। इसी परम्परा में 15वीं शताब्दी में अरूण गिरिनादर और 19वीं शताब्दी में रामलिंग स्वामी हुए। इन्होंने भक्ति के साथ समाज-सुधार का सूत्रपात किया और समाज-कल्याण की भावना का विकास किया।

तमिल के वैष्णव और शैव भक्तों ने जाति-पाति और ऊंच-नीच का कोई भेद स्वीकार नहीं किया। स्त्रियों को सहजरूप में स्वीकार किया गया। जन सेवा और लोक कल्याण को विशेष महत्व दिया गया। भक्ति के सहज-सुलभ मार्ग पर चलने वाले सभी भक्त यहां समान हैं।

तमिल की एक अन्य श्रेष्ठ उपलब्धि कम्बन की रामायण है। वाल्मीकि की कथा, तमिल प्रदेश का चिंतन और कवि कम्बन की प्रतिभा का यह समन्वय राम के जीवन के आदर्शों को महत्व देता है। पात्रों के हृदय के सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्र, प्रकृति के हृदयग्राही वर्णन और घटनाक्रम को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करने के कारण कम्बनरामायण एक अमर काव्य बन गया। इसके बाद तमिल साहित्य का टीकाओं का युग है। टीकाकार प्राचीन ग्रंथों के "मूल" पर विस्तृत भाष्य रचते रहे, बाद में ये टीकाएँ जटिल और शास्त्रीय होती गई। आधुनिक काल के आगमन तक इस प्रकार के अनेक ग्रंथों की रचना का क्रम चलता रहा।

इस रूढ़िबद्ध परम्परा को नवीन चिंतन के साथ जोड़ने का श्रेय सुब्रह्मण्यम भारती से पूर्व गोपाल कृष्ण भारती को है। उन्होंने, जाति, कुल और वर्ण की संकीर्णता से ऊपर उठकर एक विद्रोह और क्रांति का प्रयास किया। **नन्दनार चरित्र कीर्तने** नामक कृति में शैव-संत हरिजन नन्दनार को प्रतिष्ठित करना समाज-सुधार और मानवतावाद की ओर एक ठोस कदम था। इसी काल में देसिय वेदनायकम् पिल्लै (1826-1889) ने करूणा, मैत्री, एकता, नारी जाति के उन्नैयन आदि विषयों पर रचनाएँ लिखीं। ईसाई धर्म में दीक्षित वेदनायकम् पिल्लै ने **"सर्वसमय समरस कीर्तन"** नामक कृति में अनादि अनन्त विशुद्ध ब्रह्म की उपासना का संदेश दिया। इसी के साथ श्री पी. सुन्दरम् पिल्लै (1855-1897) ने स्वच्छन्दतावादी दृष्टि से "मनोन्मणीयम्" प्रवृत्ति के अनुसार मुक्तछन्द का प्रयोग किया। विचारों की निरंतरता, प्रकृति का चित्रण, राष्ट्र-प्रेम, भाषा-प्रेम और जातीय गौरव इसके मूल विचार-बिन्दु थे। तमिल साहित्य में स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा के प्रथम कवि के रूप में पी. सुन्दरम् पिल्लै ने सुब्रह्मण्यम भारती के लिये मार्ग प्रशस्त कर दिया।

पराधीन भारत राष्ट्र में पीड़ित जन मानस को सर्वप्रथम तमिल भाषा में स्वर देने वाले सुब्रह्मण्यम भारती ही हैं। मानवतावादी, स्वच्छंदतावादी, क्रांतिवादी, आदर्शवादी, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चिंतन का उद्घोष करने का श्रेय सुब्रह्मण्यम भारती को है। पराधीन भारत में विदेशी सत्ता द्वारा किये जा रहे राजनीतिक अत्याचार, सामाजिक कुरीतियां, भय और आतंक आदि से जूझने का, संघर्ष करने का संदेश देने में वे अग्रणी रहे। भारती ने दार्शनिक चिंतन, प्रकृति, प्रेम और सौंदर्य आदि पर एक विशाल साहित्य की रचना की।

हम अब सुब्रह्मण्यम भारती के युग और तत्कालीन समाज का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।

10.2.2 सामाजिक-राजनीतिक परिस्थिति

अब तक आपने तमिल साहित्य के प्राचीन और सुब्रह्मण्यम भारती पूर्व तक के साहित्य का संक्षिप्त परिचय प्राप्त किया। आपने देखा कि एक विशाल साहित्य की परम्परा तमिल में विद्यमान है। अंग्रेज़ी शासन के फलस्वरूप तमिल प्रदेश में जो विशेष राजनीतिक और आर्थिक समस्याएँ पनपीं, अब हम उनका परिचय प्राप्त करेंगे। इसके अतिरिक्त तद्युगीन सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का अवलोकन करेंगे। भाग 10.2 में हमने साहित्यिक पृष्ठभूमि का अध्ययन कर ही लिया है।

सामाजिक परिस्थितियाँ

भारती के समय का समाज रूढ़िवादी और जाति प्रथा के चंगुल में फंसा हुआ था। अधिकांश लोग दलित और पीड़ित जीवन व्यतीत कर रहे थे। अंग्रेज़ी शासन की दासता, परम्परा से ऊँची जातियों का आधिपत्य और शक्ति के स्रोत "अर्थ" पर उनका नियंत्रण समाज का स्वीकृत सत्य था। श्रेष्ठ धार्मिक साहित्य के रहते हुए भी समाज में पाखण्ड और अंधविश्वास ने जाति को निर्जीव कर दिया था। सर्वहारा वर्ग की दशा दयनीय थी। पूँजीवादी व्यवस्था के कारण धनीवर्ग की दृष्टि विलासिता और ऐश्वर्य की ओर थी और निर्धन को दो समय रोटी मिलना भी दूभर था। नारी जाति की दशा भी दयनीय थी; शिक्षा का अभाव, घर की चार दीवारों में बंदी नारी अपमानित, अंधकारमय जीवनयापन कर रही थी। समग्रतः समाज में समता और न्याय की भावना का अभाव था, शिक्षा का अल्प प्रचार था और जाति, वर्ग, वर्ण, भेद के कारण खंडित तमिल समाज एक असहाय अवस्था का अनुभव कर रहा था।

राजनीतिक परिस्थितियाँ

अंग्रेज़ी शासन की साम्राज्यवादी नीति के कारण तमिल प्रदेश का आर्थिक शोषण भारत के अन्य प्रांतों के समान ही हो रहा था। अंग्रेज़ स्वतंत्रता के किसी भी स्वर को विकसित नहीं होने देना चाहते थे। आर्थिक शोषण के कारण भारत के इस प्रदेश में भी शिक्षा, संस्कृति आदि का ध्वंस कर शासक अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। राष्ट्र के प्रति प्रेम, जनकल्याण की भावना, आत्म संस्कृति का गौरव शनैःशनै नष्ट हो रहे थे। भारत के अनेक चिंतकों, राष्ट्रनेताओं ने देश की इस गौरवहीन स्थिति का अनुभव किया। राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी रामकृष्ण, स्वामी विवेकानंद आदि ने धार्मिक, सामाजिक सुधारों का सूत्रपात किया। 1882 में सुब्रह्मण्यम भारती का जन्म हुआ और उसी वर्ष ऑल इंडिया कांग्रेस की स्थापना हुई। लगभग इसी समय बंकिमचंद्र का उपन्यास "आनंदमठ" बंगला भाषा में प्रकाशित हुआ जिसका एक गीत "वंदेमातरम्" बाद में राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का मूलमंत्र बना।

ब्रिटिश सरकार विदेशी व्यापार, देश के आंतरिक उद्योगों के विकास आदि को पूर्ण नियंत्रण में रखना चाहती थी। दमन और अत्याचार की नीति देशभर में लागू थी ।

फलतः एक ओर अहिंसापूर्वक दमन का विरोध करने, असहयोग और सत्याग्रह के मार्ग का संदेश देने के लिए गांधी जी भारत के राजनीतिक मंच पर उतरे तो दूसरी और क्रांति और सशस्त्र संघर्ष का मार्ग चुनकर अरविन्द और वी.वी.एस. अय्यर जैसे नेता आगे आए। भारती की प्रथम कृति "स्वदेश गीत" 1907 ई. में छपी जो भगिनी निवेदिता को समर्पित थी। तब तक देश में बंगाल का विभाजन (1905 ई.) हो चुका था जिससे समूचा देश भड़क उठा था और अंग्रेज़ों के प्रति विद्वेष की आग में घी पड़ गया था।

बोध प्रश्न

1) तमिल साहित्य के दो प्राचीन काव्य ग्रंथों के नाम लिखिए।

.....

.....

2) तिरूवल्लुवर कृत तिरूक्कुरल का तीन पंक्तियों में परिचय दीजिए।

.....

.....

.....

3) सही (✓) या गलत (×) संकेत द्वारा वाक्य के आगे चिन्ह लगाइए :

i) आण्डाल शैव भक्त कवयित्री थीं।
ii) वैष्णव भक्त कवि आल्वार कहलाते हैं।
iii) नालाभिर दिव्य प्रबंधम् में चार सहस्र पद हैं।
iv) कम्बन ने कृष्ण-काव्य की रचना की।
v) तिरूज्ञान संबंधर और अप्पर शिव-भक्ति काव्य की रचना करने वाले कवि हैं।
vi) सुब्रह्मण्यम भारती से नवीन चिंतन के कवि गोपालकृष्ण भारती हुए।

10.3 सुब्रह्मण्यम भारती

आइए, अब हम तमिल भाषा में काव्य रचने वाले राष्ट्रीय भावनाओं के महाकवि सुब्रह्मण्यम भारती के जीवन का परिचय प्राप्त करें; उनके कविरूप से इतर पत्रकार, गद्यकार, समाजसेवक और एक स्वतंत्रता सेनानी के रूप का भी संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर उनकी साहित्य सेवा के विषय में सम्यक् जानकारी लें।

10.3.1 जीवन परिचय

तमिलनाडु के सुदूर दक्षिण में तिरूनेल्वेलि जिले के एट्टय्यपुरम् क्षेत्र में 11 दिसम्बर 1882 को सुब्रह्मण्यम भारती का जन्म हुआ। इनके पिता चिन्नस्वामी मशीनों के उपयोग द्वारा अपने क्षेत्र के पिछड़ेपन को दूर करने और एक लघु कपड़ा मिल स्थापित करने में लगे हुए थे। इनकी माता "लक्ष्मी" एक धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। एट्टय्यपुरम् एक जमींदारी थी जिसके जमींदार स्वयं को "राजा" कहते थे। ये "राजा" तमिल प्रेमी थे और सांस्कृतिक और धार्मिक कार्यों में रुचि रखते थे। चिन्नस्वामी अय्यर तमिल पंडित के रूप में उनकी सेवा में थे। सुब्रह्मण्यम भारती का बचपन का नाम "सुब्बैया" था। माता का देहांत भारती की पांच वर्ष की अवस्था में हो गया। पिता ने लगभग एक वर्ष बाद दूसरा विवाह कर लिया। विमाता ने भी भारती को अपनी पूरी क्षमता से स्नेह और ममता प्रदान की। परंतु भारती के अबोध मन पर माता का वियोग एक ग्रंथि-रूप धारण कर चुका था। पिता स्वयं तमिल और अंग्रेज़ी के अच्छे ज्ञाता थे अतः पुत्र को आदर्श और श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न करने की उनकी प्रबल आकांक्षा थी। पर, बालक सुब्बैया का मन स्कूल की नियमित शिक्षा ग्रहण करने में नहीं था। हाई स्कूल की पढ़ाई के लिए भारती को तिरूनेल्वेलि भेजा गया जहां उनके चाचा ने उनकी देख-रेख की।

परंतु यहां भी, मैट्रिक, की परीक्षा से पूर्व चुनाव-परीक्षा में सफल न होने पर "सुब्बैया" एट्टय्यपुरम लौट गए।

भारती अपने पिता से परम्परागत तमिल साहित्य का परिचय प्राप्त करते रहे। तिरूवल्लुवर, कम्बन, तायुमानवर आदि की कविताएं, सब ओर फैला प्राकृतिक सौंदर्य-यही भारती का अनुभव-क्षेत्र था। उन्हें एट्टय्यपुरम् के राजा के दरबार में एक सेवक-सहयोगी का काम मिल गया। विद्वान के समक्ष अपनी योग्यता, तर्क-क्षमता और यदा-कदा काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन करने पर एक वयोवृद्ध द्वारा उन्हें "भारती" उपाधि प्रदान की गई जो बाद में उनके नाम से अधिक प्रसिद्ध हुई।

पंद्रह वर्ष की आयु में 1897 ई. में भारती का विवाह सात वर्षीया "चेलम्मा" के साथ हुआ। विवाह के अगले वर्ष ही पिता श्री चिन्न स्वामी की अकस्मात् मृत्यु हो गई। प्रत्यक्ष रूप से सम्पन्न भारती के पिता की मृत्यु के बाद व्यापार में घाटे के कारण विधवा पत्नी और बच्चों पर अर्थ-संकट आ गया। विमाता को अपने बच्चों सहित अपने पितृगृह जाने को बाध्य होना पड़ा। एट्टय्यपुरम् के राजा के लिए शृंगार और प्रेम की कविता कर जीविका उपार्जन करने की भारती की कोई रुचि न थी, शिक्षा का अभाव भी अब मन को कचोट रहा था। भारती की एक फूफी कुपम्माल् और उनके पति कृष्णशिवन् काशी में रहते थे, उन्होंने भारती को अपने पास आने का नियंत्रण भेजा। उन्होंने पत्नी को "कडयम्" भेजा, जहां उनके पिता श्री चेलम् अय्यर रहते थे, और स्वयं काशी पहुंच कर इलाहाबाद विश्वविद्यालय से सम्बद्ध सेंट्रल हिन्दू कॉलेज के माध्यम से मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। काशी में भारती को हिंदी का पर्याप्त ज्ञान मिला, संस्कृत से भी निकट का सम्बन्ध हुआ। काशी में ही भारती ने राष्ट्र की पराधीनता का प्रथम अनुभव किया। "सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध, प्राचीन, विशाल राष्ट्र गुलामी की जंजीरों में जकड़ा हुआ है", मुट्ठी भर विदेशी इस पर मनमाना अत्याचार कर रहे हैं, ये विचार अब भारती के मानस का मंथन कर रहे थे। इसी काल में "शैली" (परसि बिशेशैली — अंग्रेज़ी के स्वच्छन्दतावादी कवि) और अन्य अंग्रेज़ी कवियों की कविताएँ मित्र-मण्डली में बैठकर सुनी जातीं, उन पर चर्चा होती। भारती के प्रारंभिक उपनामों में एक "शैलीदासन्" भी है। भारत के इस सपूत को देश, धर्म, जाति पर हो रहे अत्याचार, विदेशी शासन, जन मानस का निरीह मौन भाव से सब कुछ स्वीकार कर लेने की प्रवृत्ति, समाज में स्त्रियों की हीन अवस्था, निर्धनता के कारण दुःखी, असहाय मानवों की पीड़ा — ये सब कुछ उद्वेलित कर रहा था परंतु अभी उसके पास अभिव्यक्ति के लिए स्वर न थे।

एट्टय्यपुरम् के राजा के आमंत्रण पर भारती काशी से राजा के सहयोगी मित्र बन कर एट्टय्यपुरम् लौट आए। समाचारपत्र पढ़कर सुनाना, विद्वत् सभा में तर्क युक्त विवेचन करना आदि कार्य वे करते रहे। राजा की रुचि अश्लील कविताओं में अधिक थी, वे परम्परागत मान्यताओं और दरबारी ढंग से जीवन व्यतीत कर रहे थे। चापलूसों और स्वार्थी लोगों की महफ़िल में "भारती" काम न कर सके और त्याग-पत्र देकर अलग हो गए।

1904 ई. में मुदरै के सेतुपति हाई स्कूल में तमिल पंडित के रूप में कार्य किया और उसके बाद उन्होंने तमिल-भाषा के दैनिक पत्र "स्वदेश मित्रन" में तीस रुपया मासिक के वेतन पर सह-सम्पादक के रूप में दायित्व संभाला। पत्रकार के रूप में भारती ने बड़ी लगन, परिश्रम और निष्ठापूर्वक कार्य किया। इससे उनका चिंतन क्षेत्र विस्तृत हुआ, विश्व राजनीति को समझने का कुछ-कुछ अवसर मिला और जाति-प्रथा, स्त्री-शिक्षा, सत्ता की अंधभक्ति, परम्परा का अंधानुकरण आदि अनेक विषयों पर इनके लेख प्रकाशित हुए। 1905 ई. में बंग भंग के फलस्वरूप देश में विद्रोह की लहर फिर से फैलने लगी थी। 1882 ई. में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हो चुकी थी, एक क्रमबद्ध कार्यक्रम और उद्देश्य स्पष्ट होने लगा था। कांग्रेस में दो वर्ग बन गए — गरमदल और नरमदल। राष्ट्रीय भावनाओं को उद्बुद्ध करने में गरम दल के लोग अधिक सक्रिय थे। 1906 ई. में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में भारती ने भी भाग लिया। इस अधिवेशन से तीन सिद्धांतों का रूप-विस्तार हुआ — वन्दे मातरम् (जो एक मंत्र के रूप के रूप में उभरा), असहयोग आंदोलन और स्वदेशी आंदोलन।

उग्रपंथियों में लाला लाजपतराय, विपिनचन्द्रपाल, बाल गंगाधर तिलक और श्री अरविन्द जैसे जननायक थे। कलकत्ता कांग्रेस के अध्यक्ष दादा भाई नौरोजी थे, श्री गोपालकृष्ण गोखले इससे पूर्व के वाराणसी अधिवेशन के अध्यक्ष रह चुके थे। भारती इन सब के राष्ट्र प्रेम और चिंतन से पर्याप्त प्रभावित हुए।

1906 ई. में ही भारती की भेंट भगिनी निवेदिता से हुई। स्वामी विवेकानंद ने जो रामकृष्ण मठ कलकत्ता में स्थापित किया था उसका संचालन वे कर रही थीं। भगिनी निवेदिता ने उन्हें स्त्री-पुरुष के समान अधिकार, राष्ट्र के संघर्ष में स्त्री के संभावित योगदान का उल्लेख कर उन्हें यशस्वी होने का आशीर्वाद दिया। भारती के लिये निवेदिता जी के रूप में मानों "गुरू" के दर्शन हो गए। कवि के भावी जीवन के आध्यात्मिक उन्नयन का संकेत यहीं से प्राप्त होने लगता है। स्वदेश-गीतों की प्रथम लघु-पुस्तिका का 1908 में प्रकाशन हुआ, भारती ने अपने इन गीतों की भूमिका में लिखा — जिस प्रकार पार्थ को श्री कृष्ण ने विश्व रूप का दर्शन देकर आत्मज्ञान दिया था, उसी भांति भारत-माता के सम्पूर्ण रूप का साक्षात्कार करवाकर जिन गुरू ने स्वदेश भक्त का उपदेश दिया उन (भगिनी निवेदिता) के चरणों में यह लघु पुस्तिका समर्पित है। "एक दुःखी मां जो शृंखलाओं में बंधी है" — ऐसी भारतमाता का रूप निवेदिता जी ने उन्हें कल्पना के आधार के रूप में दिया था। 1909 ई. में प्रकाशित अपनी लघु पुस्तिका "जन्मभूमि" को भी भारती ने निवेदिता जी को ही समर्पित किया।

मन्दायम् तिरूमलाचारियार नामक एक निष्ठावान ब्राह्मण देशभक्त ने जब एक तमिल पत्रिका "इंडिया" का प्रकाशन 1907 ई. में प्रारंभ किया तो इसके सम्पादन का कार्यभार भारती को सौंपा गया। स्वतंत्रता संबंधी भावावेशयुक्त आग उगलने वाली कविताओं द्वारा भारती जन-जागरण का कार्य करते रहे। इधर तीन घटनाएँ लगभग एक साथ हुईं — लाला लाजपतराय को क्रांतिकारी घोषित कर देश निकाला दिया गया, गरम और नरमदल में भारी मतभेद के कारण भारतीय कांग्रेस का सूरत अधिवेशन बिना निर्णय के संघर्षमय वातावरण में भंग हो गया और मद्रास के प्रसिद्ध देशभक्त, उद्योगपति और व्यापारी श्री वी.ओ. चिदम्बरम् पिल्लै को अंग्रेज़ी सरकार के विरुद्ध विद्रोह के आरोप में 40 वर्ष के कैद का दण्ड दिया गया। भारती ने सूरत में बाल गंगाधर तिलक से भी भेंट की थी। तिलक "केसरी" का संपादन कर रहे थे और स्वतंत्र, निर्भीक राष्ट्रवादी विचारों के कारण अंग्रेज़ी सरकार की कोप दृष्टि उन पर बनी हुई थी। 30 अप्रैल 1908 के दिन मुजफ्फरपुर में बम-काण्ड हुआ। इसकी प्रतिक्रिया-स्वरूप अंग्रेज़ी सरकार ने प्रेस-एक्ट लागू किया और समाचारपत्रों और राष्ट्रभक्ति से प्रेरित पत्रिकाओं पर भारी अंकुश लगाए गए। "स्वदेश मित्रन्" के राष्ट्रभक्त सम्पादक सुब्रह्मण्यम अय्यर को बंदी बनाया गया, उधर बाल गंगाधर तिलक को छह वर्ष का कठोर कारावास-दण्ड मिला। इंडिया के सम्पादक भारती थे पर नाम श्री एम. श्रीनिवासन का छपता था, उन्हें भी बंदी बना लिया गया। विश्वस्त सूत्रों से भारती की संभावित गिरफ्तारी की जानकारी मिलने पर मित्रों के आग्रह पर वे पांडिचेरी जाने को विवश हुए। यह क्षेत्र अंग्रेज़ी सरकार के नियंत्रण में न था अपितु अभी तक फ्रांस के अधिकार में था। भारती इस बीच नियमित रूप से जनसभाओं में अपने गीतों द्वारा, उग्रपंथी नेताओं के भाषण आयोजित कर, पत्रिकाओं के माध्यम से राष्ट्रभक्ति की भावना का विकास कर रहे थे। एक अंग्रेज़ी पत्रिका "बाल-भारतम्" के सम्पादक के रूप में भी वह कार्य कर रहे थे।

पांडिचेरी में भारती के साथ "इंडिया" पत्रिका का काम भी आ पहुंचा। परंतु अनेक प्रकार के संघर्ष और कष्ट सहकर भी पत्रिका का प्रकाशन चला पाना संभव न हुआ। 12 मार्च 1910 ई. से पत्रिका का प्रकाशन बंद हो गया। पांडिचेरी में अंग्रेज़ी जासूस, पुलिस आदि भारती का पीछा करते ही रहे। उन्हें यहां 1910 ई. से श्री अरविन्द और क्रांतिकारी वी.वी. सुब्रह्मण्यम अय्यर का साथ मिला। विचार-विमर्श, साहित्यिक एवं राष्ट्रीय विषयों का विवेचन घंटों चलता रहता। अरविन्द गीता, उपनिषद्, संस्कृति, अध्यात्म आदि पर चर्चा करते, अय्यर प्राचीन तमिल साहित्य के समालोचक थे अतः साहित्य के विषयों पर अपने विचार रखते और भारती तमिल कवियों नम्मालवार, आण्डाल तथा प्राचीन काव्यों के मधुर रस का आस्वादन करवाते। पांडिचेरी प्रवास में भारती ने प्रचुर काव्य रचना की। उनकी **कुयिल पाट्टु** (कोयल गीत), **पांचाली शपतम्** (पांचाली की शपथ) **कण्णन पाट्टु** (कृष्ण गीत) आदि प्रसिद्ध काव्य-संग्रह यहीं रचे गए। गंभीर चिंतन, अनुभूति की तीव्रता, समृद्ध तमिल एवं संस्कृत साहित्य का गहन अध्ययन करने पर भारती को एक नव-शक्ति, एक नवीन ज्योति प्राप्त हो रही थी। अनेक दार्शनिक विचारों से युक्त कविताएँ भी इसी काल में रची गई।

20 नवम्बर 1918 को भारती ने भारत (मद्रास) लौटने का साहसिक कदम उठाया। उन्हें बंदी बनाकर जेल भेज दिया गया। अनेक प्रभावशाली नेताओं के प्रयास से 14 दिसम्बर 1918 को वे जेल से रिहा किए गए और पत्नी के पास "कदयम्" चले गए। इसके बाद वे अनेक स्थानों का भ्रमण कर मद्रास आए। यहां राजगोपालाचारी (राजाजी) ने उनका स्वागत किया। 1919 मार्च में श्री राजगोपालाचारी के घर पर ही उनकी महात्मा गांधी से भेंट हुई जो अत्यंत संक्षिप्त थी। परंतु भारती गांधी के अहिंसा

और सत्याग्रह के महत्व को समझ चुके थे। नवम्बर 1920 ई. में 75 रु. मासिक वेतन पर भारती को "स्वदेश मित्रन्" के उप-सम्पादक के पद पर नियुक्त कर लिया गया। उल्लेखनीय है कि पांडिचेरी में स्व-निर्वासन के पूरे काल में भारती अपने लेख, शब्द-चित्र आदि भेजते रहे जो यदा-कदा प्रकाशित होते रहे। पत्र के संचालक तीस रुपया मासिक निरंतर उनकी पत्नी को भेजते रहे। स्वतंत्रता सेनानी कवि भारती के प्रति उनके प्रेम का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है।

जून 1921 ई. में पार्थसारथी स्वामी के मंदिर में प्रतिदिन की भांति हाथी को केला खिलाते भारती को मदमत्त हाथी ने सूंड में पकड़ कर पटक दिया। मूर्च्छित भारती को उनके मित्र कुवलई कण्णन् ने प्राणों की बाजी लगाकर बचाया। इन्हीं दिनों उन्हें पेचिश का रोग हो गया। दुर्बल शरीर धीरे-धीरे और दुर्बल हो गया। 11 सितम्बर 1921 की रात्रि के समय 39 वर्ष की आयु में उनका देहांत हो गया।

सुब्रह्मण्यम भारती के सम्पूर्ण संग्राम के केन्द्र बिन्दु के रूप में त्याग एवं धैर्य की मूर्ति उनकी पत्नी चेलम्मा का योगदान सराहनीय है। घर में अन्न का दाना न हो पर भारती पैसे लेकर जाते और सार्इ की जगह पुस्तकें खरीद कर ले आते। कभी वे अपने वस्त्र किसी दीन दुःखी व्यक्ति को दे आते पर सामाजिक मर्यादाओं के दायरे में बंधी चेलम्मा अपने बच्चों के साथ शांत मन से, धैर्य की चरमसीमा तक कवि का साथ देती रहीं। उन्होंने कवि के मन को कभी अव्यवस्थित न होने दिया।

भारती एक अच्छे गायक भी थे, वे सभाओं में अपने गीतों द्वारा जनजागरण का प्रयास कर रहे थे। 1921 ई. में मृत्यु से कुछ दिन पूर्व भी उन्होंने मद्रास के ट्रिपलिकेन (तिरूवल्लिकेणि) समुद्र तट पर "भारत-समुदायम्" नामक अपने प्रसिद्ध एवं प्रिय गीत का गायन किया था। स्वयं को एक साधारण सैनिक मात्र मानने वाला यह महाकवि राष्ट्र को अमरत्व का, स्वतंत्रता का, राष्ट्रीय चेतना का संदेश देता रहा। भारती वैदिक सांस्कृतिक परम्परा और तमिल की समृद्ध विशाल साहित्य परम्परा दोनों के केन्द्र बिन्दु हैं। भारती ने स्वयं पीड़ा सहनकर समाज की अन्तर्वेदना को स्वर दिया, पीड़ितों और शोषितों के लिए मात्र आंसू नहीं बहाए अपितु उनको पीड़ा और घुटन से बाहर आने का संदेश दिया, उनका मार्गदर्शन किया। उनकी जनता की शक्ति में अटूट आस्था थी, राष्ट्र की स्वस्थ परम्पराओं पर दृढ़ निष्ठा थी।

बोध प्रश्न

4) "आनन्द मठ" के लेखक कौन थे? उन्होंने कौन-सा गीत रचा जो स्वतंत्रता का मूल-मंत्र बना।

.....

.....

5) भारती की प्रथम कृति कौन-सी थी? उसका समर्पण किसे किया गया?

.....

6) भारती की प्रारंभिक शिक्षा कहाँ हुई?

.....

7) काशी में भारती के प्रवास के विषय में तीन पंक्तियों में लिखे।

.....

.....

.....

8) भारती ने किन समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं का सम्पादन किया था। सह-सम्पादक के रूप में कार्य किया?

.....

.....

9) पांडिचेरी में भारती के साथ दो प्रमुख व्यक्ति कौन थे?

.....

.....

10.3.2 साहित्य

आइए अब भारती की साहित्यिक रचनाओं का परिचय प्राप्त करें।

सुब्रह्मण्यम भारती की प्रथम कविता मदुरै की तमिल साहित्यिक पत्रिका में जुलाई 1904 ई. में प्रकाशित हुई। 1908 ई. में उनकी प्रथम कृति "स्वदेश गीत" का प्रकाशन हुआ जो भगिनी निवेदिता जी को समर्पित थी। अब हम उनकी अन्य कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे :

i) "जन्मभूमि" शीर्षक से 1909 ई. में देशभक्ति के गीतों का प्रकाशन हुआ। सिस्टर निवेदिता को समर्पित यह लघु पुस्तिका राष्ट्र की परतंत्रता की बेड़ी को तोड़ फेंकने का आह्वान था।

ii) "पांचाली शपथम्" भाग-1 का प्रकाशन 1912 ई. में हुआ। दूसरे खण्ड का प्रकाशन कवि के मरणोपरांत 1924 ई. में हुआ। इसकी कथा महाभारत के द्रौपदी चीरहरण प्रसंग से लेकर द्रौपदी की शपथ तक है। इसका विस्तृत परिचय हम "पांचाली-शपथम्" से कविता-अंश पढ़ने और विवेचित करते समय प्राप्त करेंगे। (शपथम् — उच्चारण होगा — सबदम्)।

iii) कुयिल् पाट्टु — कोयलगीत की रचना 1914 ई. में हुई। स्नेह, सौंदर्य एवं प्रेम की यह एक उदात्त कल्पना है। "लघु परंतु असाधारण कृति" के रूप में कोयल (कुयिल्) गीत (पाट्टु) की प्रशंसा की जाती है। इनमें दर्शन के कई संदर्भ भी हैं। इसमें आत्म-चिंतन, संगीत-तत्व और प्रेम के मिश्रण से अलौकिकता का भाव उभर आया है।

iv) कण्णन्-पाट्टु की रचना 1917 ई. में हुई। कण्णन् (कृष्ण) पाट्टु (गीत) — में कृष्ण को विषय बनाकर 23 लघु एवं दीर्घ गीत हैं। इनमें लय, ताल और पाद का सुंदर समन्वय है, सरल शैली में गंभीर भावों की अभिव्यक्ति है। कृष्ण को मित्र रूप में, माता रूप में, राजा रूप में, प्रेमी रूप में, स्वामी रूप में तथा अनेक अन्य रूपों में कल्पित किया गया है। भक्ति और अध्यात्मिक भावों के साथ ही प्रेम-भाव के ये गीत तमिल भाषियों के दैनिक जीवन का अंग बन गए हैं।

v) दैवी गीत — विभिन्न कालों में रचे गए भारती के दो प्रकार के गीत इसके अंतर्गत हैं — स्तोत्र गीत और ज्ञान गीत।

vi) विविध गीत — इसके अंतर्गत प्रकृति, नीति और समाज विषयक रचनाएँ आती हैं।

भारती की गद्य रचनाओं की संक्षिप्त जानकारी हम पहले ही प्राप्त कर चुके हैं।

समग्रतः भारती का तमिल साहित्य के विकास में, उसे नवीन दिशा प्रदान करने और राष्ट्रीय नवजागरण के लिए विचारों की एक दृढ़ शृंखला बनाने के असाधारण योगदान है। 1882 ई. में उनका जन्म हुआ, 1921 ई. में 39 वर्ष की आयु में उन्होंने यह असार संसार त्यागा। पर इस बीच राष्ट्र के एक नायक के रूप में उनका साहित्य, विचार, मानवतावादी दृष्टिकोण हमारी चिंतन-प्रक्रिया को प्रभावित करने का साधन बना। 1982 ई. में उनकी जन्म शताब्दि पूरे राष्ट्र में मनाई गई।

10.4 सुब्रह्मण्यम भारती में राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण के तत्व

सुब्रह्मण्यम भारती का साहित्य राष्ट्र-भक्ति, प्रेमानुभूति, प्रभु-भक्ति, प्रकृति-प्रेम, मानव-मात्र के प्रति प्रेम, दृढ़ आस्थापूर्ण चिंतन से ओत-प्रोत है। "सामंतवाद और साम्राज्यवाद के युग में भारती समता और स्वतंत्रता में विश्वास करते थे।" विदेशी शासन द्वारा पददलित भारत अंध-विश्वासों और सड़ी-गली रूढ़ियों से ग्रस्त था, सब ओर अविश्वास और भय का साम्राज्य था। दक्षिण प्रदेश के तमिलनाडु में तमिल भाषा में लिखने वाले सुब्रह्मण्यम भारती ने सदा भारत की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए प्रयास किया। उनका चिंतन, उनका लेखन मानव मात्र के लिए कल्याण की कामना करता है और "इंसान में भगवान" देखने का संदेश देता है।

भारती की काव्य-प्रेरणा का संसार अद्भुत रूप से विराट है। उनके काव्य में देश भक्ति और राष्ट्रीय पुनर्जागरण के गीत हैं, भारतीय देव लोक की विभूतियों के प्रति स्तुतियां हैं, प्रकृति का वर्णन है, शक्ति की वंदना है, कृष्ण प्रेम के भावविह्वल उद्गार हैं और आख्यान हैं। उन्होंने तमिल साहित्य में एक नए युग का सूत्रपात किया।" प्रसिद्ध विद्वान् कृ. स्वामिनाथन् के ये शब्द भारती के साहित्यिक योगदान का परिचय देते हैं।

10.4.1 राष्ट्रीय चेतना

राष्ट्रीय चेतना के संदर्भ में भारती का योगदान भारतीय साहित्य में सदा अमर रहेगा। भारती की राष्ट्रीय कविताओं की श्रेणी में छः प्रकार की कविताएँ संग्रहीत हैं :

i) भारतभूमि विषयक (भारत नाडु)
ii) तमिल प्रदेश विषयक (तमिल् लाडु)
iii) स्वतंत्रता विषयक (सुतंतिरम्)
iv) स्वतंत्रता आंदोलन विषयक (देशीय इयक्कफ पाउल्हल्)
v) राष्ट्र नेताओं के विषय में (देशीयन् तलैवर्)
vi) अन्य देशों के स्वातंत्र्य संघर्ष से प्रेरित (पिरनाडुहळ)

i) भारत भूमि विषयक

इन समग्र गीतों में बन्दे मातरम् भारत देश, हमारा देश, भारतमाता, भारत माता नवरत्न माला, भारत समुदायम्, भारतजन की वर्तमान स्थिति जैसे गीत प्रमुख हैं। इनके मूल में एक ही भावन है कि पराधीनता के अंधकार को स्वाधीनता का सूर्य कब समाप्त करेगा? भारती मात्र राजनीतिक स्वतंत्रता की कामना नहीं करते अपितु यह तो प्रथम लक्ष्य है जहां से आर्थिक पिछड़ापन तथा सामाजिक वैषम्य समाप्त होगा। पददलित तथा कथित निम्न जाति के शूद्र अथवा अछूत कहे जाने वाले समाज के ये सहभागी पुरुष और स्त्री स्वतंत्र राष्ट्र के विकास के बराबर के भागीदार होंगे। उन्होंने धर्म और जाति के बंधनों को स्वतंत्रता के मार्ग में बाधक-तत्व के रूप में माना।

ii) तमिल जाति विषयक

भारती ने तमिलभाषा, तमिलनाडु एवं तमिल जाति के गौरव का भी गुणगान किया है। "मधुर तमिल की ध्वनि विश्वभर में गूंजे" यह उनकी कामना थी। तमिल के महान् कवियों तिरूवल्लुवर, इलंगों (शिलप्पविकारम् के रचयिता) एवं कंबन् (कंबरामायण के लेखक) का आदर सहित स्मरण किया है। उनका लक्ष्य तमिलु के गौरव की पुनः स्थापना करना था। "भारतमाता के कोटिशः मुख हैं पर आत्मा एक ही है, वह अठारह भाषाएँ बोलती हैं पर उसका चिंतन एक ही है।" जैसे वाक्यों से राष्ट्र की एक भाषा के रूप में वे तमिल को महत्व देते थे।

iii) स्वतंत्रता विषयक कविताएँ

स्वतंत्रता का महत्व, स्वतंत्रता का बिरवा, स्वतंत्रता की प्यास, स्वतंत्रता देवी की स्तुति, स्वतंत्रता, आदि कविताओं में स्वतंत्रता की प्रबल आकांक्षा अभिव्यक्त हुई है। उनकी एक कविता स्वतंत्रता (विडुदलै) में सभी निम्न जाति के लोगों की स्वतंत्रता की कामना व्यक्त करने के बाद कवि भारती कहते हैं —

"अब न कोई दीन रहेगा, न कोई दास,
भारत में कोई न ऐसा, जो हो जन्म से लघु!
हर कोई विद्या ग्रहण करेगा, धनवान् बनेगा।"

iv) स्वतंत्रता आंदोलन विषयक

इन कविताओं के अंतर्गत छत्रपति शिवाजी, गोखले स्वामी, हम क्या कर सकते हैं, आदि के अतिरिक्त देशभक्त चिदम्बरम् पिल्लै विषयक कविताएँ हैं। यहाँ भी मूल भावना जन जन के मन में स्वाधीनता के महत्व की प्रतिष्ठा करने का प्रयास था।

v) राष्ट्र नेताओं से संबंधित

राष्ट्र के स्वतंत्रता-संग्राम में अपना सर्वस्व न्यौछावर करने वाले नेताओं की प्रशस्ति गाते हुए भारती ने अनेक गीत लिखे। उन्होंने इन राष्ट्र-सेवकों की पीड़ा को अनुभव किया और उनके कष्टों को समाज के प्रत्येक प्राणी तक पहुंचाने का प्रयास किया। इनमें छत्रपति शिवाजी, गुरू गोविन्द सिंह, महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, चिदम्बरम् पिल्लै, दादाभाई नौरोजी, आदि के विषय में कविताएँ हैं। गांधी के असहयोग आंदोलन और सत्याग्रह के मूल में अहिंसा के मंत्र की भारती ने भरपूर सराहना की।

iv) अन्य देशों के स्वतंत्रता-संघर्ष से प्रेरित कविताएँ

भारती ने विभिन्न राष्ट्रों के स्वतंत्रता संघर्ष के प्रति स्वाभाविक सहानुभूति दिखाई। "पुदिय रूशिया" — "नव-रूस" कविता में उन्होंने रूस की क्रांति को किसान और मजदूर की विजय माना। इस क्रांति के प्रति उनकी सहानुभूति थी क्योंकि इससे असहाय जनता पर होने वाले अत्याचार नष्ट हुए। "बेल्जियम प्रशस्ति" में बेल्जियम द्वारा वीरतापूर्वक आक्रमण का सामना करने, अत्याचार और अधर्म का निर्भय होकर मुकाबला करने के लिए प्रशस्ति की गई है। इसी भांति "मेंजिनी का शपथ" कविता के भाव भी स्वतंत्रता के संघर्ष से जुड़े हैं।

भारती साहित्य में इन कविताओं के अतिरिक्त अनेक अन्य प्रसंगों में मातृभूमि की स्वतंत्रता, नारी की दीन और असहाय अवस्था, उचित शिक्षा द्वारा उसमें सुधार का प्रयास, स्त्री-स्वातन्त्र्य की प्रबल आवश्यकता, समग्र जाति-भेद, वर्ण भेद और वर्ग-भेद दूर कर भारत माता के प्रति समर्पित होकर राष्ट्र सेवा में प्रवृत्त होने के संदेश हैं। भारती ने ऐसे भारत राष्ट्र की कल्पना की थी जहाँ राष्ट्र के सभी प्रांतों, भाषाओं के लोग परस्पर आदान-प्रदान द्वारा नव-समाज की रचना करेंगे। एक कविता में सद्भाव, मैत्री और सहयोग के विचारों को गूंथा गया है —

चांदी जैसे हिमपर्वत पर
घूम विहार करेंगे हम
पश्चिम के व्यापक सागर पर
हम नित पोत चलाएँगे।

रेशम, सूत आदि के कपड़ों का भारी मात्रा में निर्माण, अस्त्र-शस्त्र, कागज, यंत्र, खेती के हल, गाड़ियों और जलपोतों के निर्माण की कल्पना करते हुए भारती कहते हैं —

चांदनी रात में सिन्धु नदी पर
संग केरल सुन्दरियां हों,
आंध्र देश के मधुर गीत गा
हम नैया में रमण करेंगे।

कवि ने राजस्थानी वीरों को कर्नाटक का स्वर्ण देने, कावेरी तट का पान देकर गंगातट पर उत्पन्न गेहूँ लेने आदि अनेक चित्र इस कविता में कल्पित किए हैं। उनकी कल्पना का भारत एक मुक्त, स्वाधीन, सशक्त राष्ट्र के रूप में उभरता है। इस कल्पना को साकार करने के लिए भारती ने देवी, पराशक्ति, सरस्वती, लक्ष्मी, चामुंडा आदि का अनेक कविताओं में वर्णन किया है। 1928 ई. में तत्कालीन मद्रास सरकार ने स्वदेश गीतों की लगभग 2000 प्रतियां जब्त कर लीं और उसे सरकार विरोधी साहित्य घोषित किया। इसका जनता और नेताओं ने भारी विरोध किया था।

10.4.2 नवजागरण

नवजागरण के संदर्भ में भारती का चिंतन आज भी हमारा मार्ग-दर्शक हो सकता है। वे एक सशक्त कवि और जागरूक चिंतक थे अतः समाज में व्याप्त अनाचार, सड़ी गली रूढ़ियां, जातिगत भेद आदि के साथ उन्होंने समझौता नहीं किया। उनकी राष्ट्र-भावना और नवजागरण के मूल में प्रेम, दया, ममता, करूणा और समवेदना आदि उदात्त मानवीय तत्वों का समावेश है। "देश की सेवा करना ही योग है, प्राणियों की सेवा में तनिक कष्ट सह लेना ही योग है।" वे जाति भेद की सम्यक् व्याख्या करते हैं — ब्राह्मण वेद विद्या पारंगत हो, न्याय से हटे बिना न्याय करने वाला क्षत्रिय हो, वस्तुओं का विक्रय कर भूख मिटाने वाला वैश्य और दास नामक कोई वर्ग नहीं है, काम करने में आलस्य नीच भावना है, चारों वर्ण समान हैं। वे वर्ग-भेद-हीन समाज के निर्माण का स्वप्न देख रहे थे। वे गांधी की ही भांति राजनीतिक स्वतंत्रता के बाद आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त कर रहे थे। उनका कथन है — "अपने काव्य-वैभव से इस अखिल विश्व की रक्षा करनी चाहिए।" उनके काव्य के अनेकानेक संदर्भ राष्ट्र की तत्कालीन स्थिति के लिए वेदना के स्वर हैं, अनेक स्थलों पर अतीत के गौरव का गान कर राष्ट्रीय जागरण और उद्बोधन का प्रयास है। उनकी एक कविता पाप्पा पाट्टु (बालगीत) में बच्चों के लिए संदेश है कि वे जाति भेद, आलस्य, अन्याय आदि का विरोध करें। भारती ने इस कविता में उन्हें देशभक्ति, ईश्वर भक्ति और प्राणि मात्र के प्रति प्रेम-भाव का संदेश दिया।

"जाति नहीं है हे बालक! ऊंचनीच का भेद मानना पाप है!" गुरू गोविन्द सिंह शीर्षक (गुरू गोविन्दर) कविता में कवि गोविन्द सिंह के द्वारा कथन करवाता है ··· शिष्यों, सिंहो, इस क्षण में तुम सब समान हो। तुम्हारी जाति, कर्म, कुल, धर्म-सब एक हैं, भेद मृत्यु है, अतः भेद विस्मृत कर दो, एकता के मार्ग का अनुसरण करो, हजारों जातियों में बंटवारा मिथ्या आडम्बर है, उसे त्यागो, परस्पर एकता के भाव से रहो ····।

भारती ने अल्लाह, यीशु क्राइस्ट, अग्नि, सूर्य, परमतत्व आदि विषयक गीतों की रचना द्वारा सर्वधर्म समभाव से सिद्धांत की पुष्टि की। उनकी पराशक्ति, श्रीकृष्ण, लक्ष्मी, सरस्वती, विनायक, तथा अन्य अनेक भक्तिपरक और स्तुतिपरक रचनाएँ परमसत्ता में विश्वास के साथ-साथ प्रभु के प्रत्येक रूप की स्वीकृति का प्रमाण है। भारती छियासठ में वे कहते हैं —

जितने भी हैं धर्म हमें ज्ञात
सबका सार-तत्व एक है।"

उन्होंने अपनी कृति पांचाली शब्दम् (पांचाली की शपथ) में द्रौपदी के माध्यम से एक ओर पराधीन भारत माता की पीड़ा व्यक्त की है तो दूसरी और पददलित, अधिकार विहीन नारी की स्थिति का भी चित्रण किया है। वे नारी को पुरुष के ही समान ज्ञान, उच्च शिक्षा, का अधिकार देकर उसे पुराने मिथ्यापूर्ण रूढ़ि बंधनों से मुक्त करवाना चाहते हैं। मानव जाति की रचना और रक्षा करने वाली नारी को नवयुग की मान्यताओं के अनुसार विधि-विधान बनाने, नीति नियम की रचना करने का अधिकार देने की इच्छा करते हैं। दैवी शक्ति का रूप "नारी" राष्ट्र के नवजागरण का एक अनिवार्य अंग है।

बोध प्रश्न

10) सुब्रह्मण्यम भारती की चार कृतियों के नाम लिखें।

.....
.....

11) भारती की राष्ट्रीय कविताओं में कितने प्रकार की कविताएँ हैं, स्पष्ट करें।

.....
.....
.....
.....

12) राष्ट्र नेताओं से संबंधित कविताओं में भारती ने किन नेताओं के विषय में कविताएँ लिखीं? केवल चार के नाम लिखिए?

.....
.....

13) भारती की नारी-विषयक दृष्टि क्या थी? केवल तीन पंक्तियों में स्पष्ट करें।

.....
.....
.....

10.5 सुब्रह्मण्यम भारती की कविता

आइए अब हम भारती की कविता की विशेषताओं का परिचय प्राप्त करें।

सुब्रह्मण्यम भारती भाषा में आडम्बर और कृत्रिमता को स्वीकार नहीं करते। भावों और विचारों के अनुरूप भाषा पर उनका दृढ़ विश्वास था। उनके राष्ट्रीय गीतों और कृष्ण गीतों की भाषा प्रायः जन-जीवन की

भाषा है। "पांचाली शब्दम्" (पांचाली की शपथ) आत्म चरित तथा कुयिल पाट्टु (कोयल गीत) में उन्होंने परम्परा से प्रयुक्त तमिल के सरल, और सहज शब्दों का प्रयोग किया है। उनका अपना कथन है — "सरल पद, सरल शैली, सरल छंद में लय एवं गति आदि से युक्त काव्य-रचना की आवश्यकता है। इससे हमारी मातृभाषा में नवजीवन का संचार होगा।" अन्यत्र उन्होंने कहा है — समय के अनुसार भाषा बदलती है, कविताओं में स्पष्टता और माधुर्य होना ही न्याय है, कवियों को जन-सामान्य की समझ में आने वाले शब्दों का प्रयोग करना चाहिए····। "भारती की भाषा में पाद और लयमत सौंदर्य प्रचुर मात्रा में है। भाव के अनुकूल शब्द योजना, बिम्ब-विधान, भाषा की लाक्षणिकता और ध्वन्यात्मकता आदि उनके काव्य के विशेष गुण हैं।' वर्ण्य विषय के अनुसार उनकी भाषा परुष, कोमल एवम् सरस होती है।' उन्होंने शुद्ध एवं साहित्यिक तमिल के अतिरिक्त गांवों के प्रचलित शब्दों, संस्कृत के प्रसिद्ध शब्दों आदि को सहज ही ग्रहण कर लिया। राष्ट्रीय, सांस्कृतिक नवजागरण की कविताओं में प्रायः भावानुकूल कोमल, सरस एवं प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग हुआ है।

अलंकार योजना की दृष्टि से परम्परा-स्वीकृत उपमा, रूपक, श्लेष, अर्थान्तर न्यास आदि अलंकारों का प्रयोग हुआ है। उनकी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति के अनुसार मानवीकरण, विशेषण तथा ध्वन्यार्थ व्यंजना की प्रचुरता है। मानवीकरण का एक उदाहरण देखें —

आकाश में तेज पुंज सूर्य धरती को स्नेह पूर्वक निष्पलक निहार रहा है। धरती भी उसके प्रति प्रेम युक्त हुई है, सूर्य के प्रकाश को देखकर वह भी मुस्करा रही है।

भारती के काव्य में यथासंभव लोकशैली का प्रयोग हुआ है। लय और ताल के लिए यह शैली काव्य के आनंद को कई गुणा कर देती है। वे कहते हैं — नाद समुद्र के मधुर प्रकाश के साथ में मधुर तमिल शब्दों के संगीत को मिला दूंगा। भावनाओं की सूक्ष्मता, अनुभूति की गंभीरता और संवेदना की तीव्रता के लिए लोक-हृदय को छू लेने वाली राग-रागिनियों और लोक धुनों का प्रयोग हुआ है। वे "गीत और काव्य को एक दूसरे से मिला देने" की बात कहते हैं। वे अपने गीतों को स्वयं गाया करते थे, वे संगीत के मर्मज्ञ थे और संगीत के विधि-विधान ज्ञाता थे।

छंद विधान की दृष्टि से भारती ने तमिल के छंद-शास्त्रीय विधान का पालन किया है। अनेक रचनाओं में उन्होंने छंद के नियमों का उल्लंघन भी किया है। उनका लक्ष्य जन-मानस को स्पर्श करने का रहता था, छंद और अलंकार तो साधन मात्र हैं।

10.5.1 वन्देमातरम्

वाचन

वन्दे मातरम् एन्बोम् — एङ्गळ्
मानिलन् ताये वणङ् गुदुम् एन्बोम्

जाति मद्ङ्गळै पारोम् — उयर्
जन्मम् इदेसत्तिल् एय्तिनरायिन्
वेदियरायिनुम् ओन्रे — अन्रि
वेरू कुलत्तिनरायिनुम् ओन्रे।

वन्दे मातरम् एनबोम्

ईनप् परैयार् कळेलुम् — अवर्
एम्मुडन् वाळ्न्दिङ् रूप्पवर् अन्रो?
चीनत्तराय् विडुवारो? पिर
देसत्तर् पोल् पल तीङ्गिळैप्पारो?

आयिरम् उण्डिङ्गु जाति — एनिल्
अन्नियर् वन्दु पुगल् एन्न नीति — ओर्
तायिन् वयिट्रिल् पिरन्दोर् — तम्मुळ्
सण्डै सेय्तालुम् सहोदरर् अनुरो?

वन्दे मातरम् एनबोम्

ओन्रू पट्टाल् उण्डु वाळवे — नम्मिल्
ओटुमै नीङ्गिल् अनैवरुम् ताळ्वे
नन्रिदु तेरन्दिडलू वेण्डुम् — इन्द
ज्ञानम् वन्दाल्र् पिन् नमक्केदु वेण्डुम्

वन्दे मातरम् एनबोम्

भावानुवाद

हम वन्देमातरम् कहेंगे
अपनी जननी जन्मभूमि की वन्दना करेंगे!

जाति धर्म को नहीं मानते हम
जो भी जन्मा है इस धरा पर
जन्म से ही वह महान्
ब्राह्मण हों अथवा अन्य, सब हैं समान!

हम वन्देमातरम् कहेंगे!

जो हैं अछूत, वे कोई अन्य नहीं है,
रहते वे भी हमारे संग, हमारे देशवासी,
भला अपने कहीं पराये होंगे?
हमको क्या क्षति पहुंचाएँगे?

हम वन्देमातरम् कहेंगे!

यहां अनेक जातियां हैं तो क्या?
पर विदेशियों को नहीं स्थान यहां!
चाहे कितना झगड़ें, एक मां के गर्भ से जन्में
हम भाई-भाई ही रहेंगे!

हम वन्दे मातरम् कहेंगे!

मिल-जुलकर रहने में ही है जीवन
और भेद से होना सबका अधःपतन
यह ज्ञान प्राप्त कर लें यदि हम
तो सब चिंताओं से मुक्त होंगे हम!

हम वन्दे मातरम् कहेंगे!

कविता को समझने का प्रयास

सुब्रह्मण्यम भारती ने "वन्दे मातरम्" मंत्र को आधार बनाकर जो कविताएँ लिखीं यह कविता उनमें प्रमुख है। "भारत नाडु" — भारत देश शीर्षक के अंतर्गत भारती ने इसी भांति की एक अन्य कविता "वन्दे मातरम् — जय वन्दे मातरम्" और "एन्दैयुम् तायुम् ....." शब्दों से प्रारंभ होने वाली कविता हैं। अनेक ऐसी कविताओं का मूल स्वर एक मुक्त, स्वतंत्र, भारत राष्ट्र की कल्पना है। इन गीतों में नाद एवं संगीत तत्व के साथ शब्द चमत्कार का समावेश होने से ये भावनामूलक गीत बन गए और स्वतंत्रता आंदोलन में समूह गान के रूप में गाए गए। जनमानस पर इनका प्रभाव असाधारण रूप से हुआ करता था। भारती के इन गीतों में राष्ट्र की मुक्ति और मानव की मुक्ति का स्वर प्रमुख है।

प्रस्तुत कविता में जाति-धर्म के भेद को अस्वीकार करता हुआ कवि जननी जन्म भूमि की संतान के रूप में प्रत्येक भारतवासी को वन्देमातरम् कहने का आह्वान करता है। ब्राह्मण और अब्राह्मण, अछूत और ऊँची जाति का भेद वृथा है। भारत के निवासी भारत माता के गर्भ से जन्म लेने वाले सभी भारतीय भाई-भाई हैं, यहां जातियां अनेक हैं पर सभी भारत मां की संतान हैं, "विदेशियों" (ब्रिटिश साम्राज्य) का कोई स्थान नहीं है। सबको मिलजुल कर रहने और भेद-भाव से होने वाले हानिकारक परिणामों का संकेत देकर कवि भारती राष्ट्र के संगठन का प्रयास करते हैं।

वाचन

कोयिर् पूसै सेम्वोर् — सिलैयैळ्
कोण्डु विट्टल् पोलुम्,
वायिल् कात्तु निरप्पोन् — वीट् है
वैत् तिळत्तल् चोलुम्
आयिरङ्ग ळान — नीति
यवै उणरन्द धरूमन्
तेयम् बैत् तिळ्न्दान् — चिच्ची
सिरियर् सेय्गै सेय्दान्।

नाट्टु मान्द रेल्लाम् — तम् पोल्
नररग ळेन्रू करूदार्,
आट्टु मन्दै या मेन् — रूलगै
अरस् रेण्णि विट्टार्।
काट्टु मुण्मै नूल्गळ् — पल ताङ्
काट्टिनारक ळेलुम्
नाट्टु राजनीति — मनिदर्
नन्गु सेय्यविल्लै।

भावानुवाद

मानो मंदिर का पुजारी
देव-मूर्ति को ले जाकर कहीं दे बेच,
मानो गृहरक्षक स्वयं ही घर को
बंधक बनाकर गंवा दे।
सहस्त्रों नीति-नियमों के ज्ञाता
धर्म (युधिष्ठिर) ने स्वयं ही राज्य खो दिया।
छिःछिः, क्षुद्रजन समान किया व्यवहार।

वे अपनी प्रजा को स्वयं की भांति
नहीं गिनते "मानव"
प्रजा को ये राजा मानते हैं केवल
निर्बुद्धि भेड़ों के समूह मात्र।
दूसरों को देते न्याय, नीति,
ज्ञान और सत्य की शिक्षा।
स्वयं करते व्यवहार में केवल
अनीति और अन्याय का आचरण।

कविता (पांचाली शपथम्) के दो पदों का संदर्भ

"पांचाली की शपथ" खण्डकाव्य महर्षि व्यास कृत महाभारत के प्रसिद्ध प्रसंग "द्रौपदी चीर हरण" से लिया गया है। भारती ने इस प्राचीन कथा को नवीन चिंतन, सूक्ष्म क्रमिक विवेचन और आधुनिक शिल्प-विधान द्वारा प्रस्तुत किया है। इसके प्रथम खण्ड का प्रकाशन 1912 ई. में और द्वितीय खण्ड का प्रकाशन कवि के देह-त्याग के बाद 1924 ई. में हुआ था। कवि ने महाभारत की कथा को नवयुग के वातावरण में ढाल दिया है। इस कृति की भूमिका में सुब्रह्मण्यम भारती ने कहा — "तमिल जाति को नवजीवन प्रदान करने का जो दृढ़ निश्चय पराशक्ति ने किया हुआ है — उसी की प्रेरणा से मैं यह कृति लिपिबद्ध कर सकने में समर्थ हुआ हूँ। ... ओम् वन्दे मातरम्।"

शकुनि की सहायता से दुर्योधन छल द्वारा युधिष्ठिर को द्यूत क्रीड़ा मे हरा देता है। समग्र राज्य, सम्पदा जुए में हारने के बाद कवि भारती की प्रतिक्रिया इन पदों में वर्णित है। राजा युधिष्ठिर राज्य के स्वामी

हैं परंतु नीति-नियमों के अनुसार द्यूत में पण लगाकर राज्य को हार जाना एक निन्दनीय कर्म है। कवि भारती उनके इस कार्य की निंदा करते हैं और स्पष्ट कहते हैं कि उन्होंने अपनी प्रजा को मात्र बुद्धि विहीन भेड़ों के समान गिना। न्याय और नीति की, ज्ञान और सत्य की शिक्षा देने वाले ने स्वयं अनीति और अन्याय का आचरण किया। ध्वनि यह भी है कि अंग्रेजी शासक भारतीयों को भेड़-बकरियों की तरह मानते हैं, उच्च आदर्शों का मात्र ढकोसला है, उनका आचरण अनैतिक और अन्यायपूर्ण है।

पांचाली की शपथ — एक अन्य संदर्भ

देवि दरौपदि सोल्वाळ् — "ओम्"
देवि परासक्ति आणै युरैत्तेन्
पावी दुस्सातनन् सेन्नीर् — अन्दप्
पाळ्त् दुरियोदनन् आक्कै इरतम्
मेवि इरण्डुङ् कलन्दु — कुऴल्
मीदिनर् पूसि नरूनेय् कुळित्ते
सीविक् कुऴल्मुडिप् पेन् यान्, इदु
सेय्यु मुन्ने मुडिये एन्नरू उरैत्ताळ्

भावानुवाद

देवी द्रौपदी ने की प्रतिज्ञा
"ओम् दैवी पराशक्ति की शपथ
पापी दुःशासन के रक्त और
दुष्ट दुर्योधन के रूधिर को मिला
इन खुले केशों में लगा कर
तभी रक्त से धोकर, संवारूंगी ये केश!
तब तक ये केश खुले ही रहेंगे,
ऐसे ही बिखरे रहेंगे ये केश!" यह कहा!

"पांचाली शपथ" का भाव और संदर्भ

पांचाली शपथ में द्रौपदी का चित्रण एक नारी की भांति है, वही नारी "शक्ति" का रूप है, यही नारी भारत-माता भी है। जब दुर्योधन के आदेश पर दुःशासन ने द्रौपदी की साड़ी उतारने का दुष्कर्म प्रारंभ किया तो उसने वृद्ध धृतराष्ट्र और भीष्म पितामह से रक्षा की प्रार्थना की। जब वे असफल रहे या मौन रहे तो भरी सभा में अपनी रक्षा के लिए "हिरणी सदृश नेत्रवाली" ज्ञान सुंदरी पांचाली ने प्रार्थना की मुद्रा में हाथ उठाकर चरम असहायावस्था में कृष्ण को पुकारा।

वहां कवि कथन है —

वह देवी मां (द्रौपदी) अंतःज्योति से एकीकृत हो गई,

"एकात्म हुई हरि हरि हरि जपने लगी शरण
दो शरण कृष्ण, मैं शरण तुम्हारी परमात्मन्"

विश्व रूप, विराट, अविवेच्य, अनादि, अनंत, ज्ञानातीत, अलौकिक कृष्ण के ज्योति रूप से प्रार्थना करते ही कृष्ण प्रकट हुए और द्रौपदी की साड़ी का आकार बढ़ता ही चला गया, दुःशासन खींचता रहा, खींचता रहा पर साड़ी अनेक रंगों में बढ़ती ही रही। जब दुःशासन थककर पराजित होकर भूमि पर गिर पड़ा तो देवताओं ने जयध्वनि की — "ओम् जय-जय भारत शक्ति" उसके उपरांत देवी द्रौपदी (पांचाली) ने शपथ ली जिसका वर्णन इस कविता में है।

इस "शपथ" के प्रसंग में शब्दों का चयन, पूर्व-घटना का विकास-क्रम और कवि के कौशल द्वारा दैवी द्रौपदी भारत माता, नारी मात्र, पराशक्ति तीनों का संयुक्त रूप बन जाती है। दुःशासन और दुर्योधन अंग्रेजी शासक के अत्याचारी रूप का प्रतीक बन जाते हैं, फलतः कविता मात्र पौराणिक गाथा न रहकर युगबोध से प्रेरित और प्रभावित होकर राष्ट्र जागरण का संदेश बन जाती है।

14) "पांचाली की शपथ" में द्रौपदी को किस रूप में चित्रित किया गया है? "पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

15) "वन्देमातरम्" का सारांश लिखिए। (दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए)।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

10.6 सारांश

इस इकाई में तमिल के प्रमुख कवि सुब्रह्मण्यम भारती की कविताओं से आपको परिचित कराया गया है। इसके अलावा पृष्ठभूमि के रूप में तमिल भाषा और साहित्य का संक्षिप्त परिचय भी प्रस्तुत किया गया है। तमिल भारतीय भाषाओं में प्रमुख स्थान रखता है। इसका विपुल साहित्य तमिल की समृद्धि का परिचायक है। पांचवीं शताब्दी के अंतिम चरण से तमिल साहित्य में "भक्ति" का विकास देखने को मिलता है।

पराधीन भारत में पीड़ित जनमानस को सर्वप्रथम तमिल भाषा में स्वर देने वाले कवि सुब्रह्मण्यम भारती हैं। उनकी कविता में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का स्वर स्पष्ट रूप में दीख पड़ता है। उनकी कविता "वंदेमातरम्" और "पांचाली की शपथ" में इस स्वर को आपने पहचाना होगा।

10.7 शब्दावली

उन्नयन	—	विकास
गर्भ	—	कोख
जननी	—	जन्म देने वाली
दीन	—	गरीब
धरा	—	पृथ्वी
निष्पलक	—	बिना पलक गिराए
निर्बुद्धि	—	बुद्धि हीन
पराशक्ति	—	ईश्वर की शक्ति
पोत	—	नौका

रमण	—	विहार, यात्रा
रूधिर	—	खून
संपृक्त	—	युक्त
सहस्र	—	हजार
क्षति	—	हानि

10.8 उपयोगी पुस्तकें

1) सुब्रह्मण्यम भारती — डॉ. रवीन्द्र कुमार सेठ, (साहित्य शोध संस्थान), 8 ए/141, पश्चिमी विस्तार क्षेत्र, करोल बाग, नई दिल्ली-110005, मूल्य रु. 100/- 1991 संस्करण।

2) सुब्रह्मण्यम भारती — संकलित कविताएँ एवं गद्य, प्रधान सम्पादक कृ. स्वामिनाथन्, प्रकाशक : अखिल भारतीय सुब्रह्मण्यम शताब्दी समारोह, समिति, नई दिल्ली, मूल्य रुपये 30/- 1989 संस्करण।

3) भारती की कविताएँ — श्रीमती आनंदी रामनाथन, साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, 35 फिरोजशाह रोड, नई दिल्ली-110001, 1983 संस्करण।

4) सुब्रह्मण्यम भारती — डॉ. रवीन्द्र कुमार सेठ, प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, भारत सरकार, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001, मूल्य रुपये 30/- 1989 संस्करण।

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) तिरूक्कुरल, एटअुतोगे

2) देखिए 10.2.1

3) i) ×
   ii) √
   iii) √
   iv) ×
   v) √
   vi) √

4) "आनंदमठ" के लेखक बंकिमचन्द्र थे। उनका गीत "वन्देमातरम्" भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का मूल-मंत्र बना।

5) सुब्रह्मण्यम भारती की प्रथम कृति "स्वदेश-गीत" 1907 ई. में छपी और अपनी आध्यात्मिक गुरू भगिनी निवेदिता को समर्पित थी।

6) भारती की प्रारंभिक शिक्षा एट्टय्यपुरम और तिरूनेल्वेलि में हुई।

7) पिता की मृत्यु के बाद व्यापार में घाटे के कारण भारती ने मजबूर होकर पत्नी को उसके पिता के पास कडयम् भेजा और फूफा-फूफी श्री कृष्ण शिवन् और कुपम्माल् के पास काशी आ गए। यहां उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में मैट्रिक परीक्षा पास की। यहीं हिंदी और संस्कृत का परिचय हुआ और विशाल, प्राचीन, सांस्कृतिक दृष्टि से समृद्ध भारत की परतंत्रता और विदेशी शासन के अत्याचारों का ज्ञान हुआ।

8) भारती ने जिन समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं का सम्पादन/सहसम्पादन किया उनमें स्वदेशमित्रम् (दैनिक) इंडिया तथा बाल-भारतम् प्रमुख-हैं।

9) जब भारती अंग्रेजों-दमन की नीति के कारण मित्रों के परामर्श से फ्रांस के नियंत्रण में चले आ रहे पांडिचेरी-क्षेत्र में जाने को बाध्य हुए तो वहां प्रसिद्ध क्रांतिकारी श्री अरविन्द और श्री वी.वी.एस. अय्यर भी मजबूर होकर वहीं रहने लगे।

10) जन्मभूमि, पांचाली की शपथ, कुयिल् पाट्टु (कोयल गीत) कण्णन् पाट्टु (कृष्ण-गीत)।

11) भारती की राष्ट्रीय कविताओं को छः भागों में बांटा गया है। (i) भारतभूमि विषयक, (ii) तमिल प्रदेश विषयक, (iii) स्वतंत्रता विषयक, (iv) स्वतंत्रता-आंदोलन विषयक, (v) राष्ट्र नेताओं के विषय में, (vi) अन्य देशों के स्वतंत्रता आंदोलनों से प्रेरित कविताएँ।

12) गुरू गोविंदसिंह, महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, चिदम्बरम् पिल्लै तथा लाला लाजपतराय विषयक कविताओं के द्वारा भारती ने स्वतंत्रता की अमिट प्यास और नेताओं के त्याग का उल्लेख किया।

13) सुब्रह्मण्यम भारती ने नारी की दीन और असहाय अवस्था का अनुभव किया और राष्ट्र की शक्ति के रूप में उसे जाना। उसकी उचित शिक्षा, पुरुष के समान अधिकार, देकर उसे मिथ्या रूढ़िबंधनों से मुक्त करने का उनका दृढ़ संकल्प था। उन्होंने दैवी-शक्ति के रूप में नारी को नवजागरण और राष्ट्र-निर्माण का अनिवार्य अंग माना।

14) देखिए 10.5.2.

15) देखिए 10.5.1.

इकाई 11 तमिल साहित्य-II

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 पृष्ठभूमि
  11.2.1 तमिल गद्य का विकास
  11.2.2 उपन्यास साहित्य का विकास
  11.2.3 कहानी साहित्य का विकास
11.3 उपन्यासकार कल्कि
  11.3.1 ऐतिहासिक उपन्यास
  11.3.2 सामाजिक उपन्यास
11.4 कहानीकार पुदुमैपित्तन
  11.4.1 पुदुमैपित्तन की कहानियों का अवलोकन
11.5 सारांश
10.6 शब्दावली
10.7 उपयोगी पुस्तकें
10.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ्यक्रम के तीसरे खण्ड की यह दूसरी इकाई है। इस इकाई में आप तमिल भाषा के साहित्य में उपन्यास और कहानी के माध्यम से हुए राष्ट्रीय चेतना के विकास का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- तमिल उपन्यास और कहानी के विकास और चिंतन-क्रम के विकास की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- तमिल भाषा में इन विधाओं के विकास और चिंतन-क्रम के विकास की जानकारी प्राप्त करेंगे।
- तत्कालीन लेखकों द्वारा किए गए सामाजिक सुधार के प्रयासों की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करेंगे।
- प्रमुख रचनाकारों का संकेत रूप में परिचय दे सकेंगे।
- तमिल के प्रख्यात उपन्यासकार रा. कृष्णमूर्ति (कल्कि) के उपन्यासों का सामाजिक एवं ऐतिहासिक रूप जान पाएँगे।
- तमिल के प्रसिद्ध कहानीकार चो. वृद्धाचलम् (पुदुमैपित्तन्) की कहानियों के परिचय के माध्यम से उस युग के चिंतन का और कहानी द्वारा किए जा रहे परिवर्तन के प्रयासों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।
- "कल्कि" एवं "पुदुमैपित्तन्" के राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण से संबंधित कार्य का परिचय प्राप्त कर लेंगे।

11.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाई में हमने तमिल साहित्य के विकास की संक्षिप्त जानकारी प्राप्त की। इसके साथ ही हमने तमिल भाषा के साहित्य में हुए नवजागरण एवं राष्ट्रीय चेतना के विकास का क्रमबद्ध परिचय प्राप्त किया। हमने यह भी देखा कि लगभग सन् 1900 ई. से 1930 ई. का तमिल प्रदेश किस भांति सम्पूर्ण राष्ट्र के ही समान रूढ़िवादी जाति प्रथा, आर्थिक पिछड़ेपन आदि के कारण असहाय अवस्था का अनुभव कर रहा था। सभस्त देशवासी राजनीतिक परतंत्रता के चंगुल से निकलने के लिए, आर्थिक शोषण

समाप्त करने और एक मुक्त, शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में भारत के निर्माण के लिए शनैःशनै तत्पर हो रहे थे। इसी संदर्भ में हमने सुब्रह्मण्यम भारती की कविताओं का, उनके समग्र साहित्य का परिचय प्राप्त किया। भारती के राष्ट्रीय चेतना के लिए किए गए योगदान की जानकारी लेने से हमें तद्युगीन काव्य का, काव्य के माध्यम से नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की अवधारण के लिए किए गए कार्यों की रूपरेखा स्पष्ट हो गई। अब हम तद्युगीन उपन्यास और कहानी के माध्यम से किए गए समाज-सुधार, सामाजिक-चिंतन में परिवर्तन और नवजागरण के लिए कार्यों का विवेचन करेंगे। उपन्यासकार के रूप में "कल्कि" और कहानीकार के रूप में "पुदुमैपित्तन्" अब हमारे इस अध्ययन का आधार बनेंगे। हम तमिल के गद्य का संक्षिप्त विकास जानेंगे और फिर उपन्यास और कहानी के उस युग तक के विकास का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे। इससे "कल्कि" और "पुदुमैपित्तन्" के साहित्य द्वारा किए गए नवजागरण के अध्ययन का आधार स्पष्ट हो जाएगा।

11.2 पृष्ठभूमि

तमिल साहित्य में उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में आधुनिकता का स्वर उभरने लगा था। तमिल प्रदेश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में परिवर्तन का क्रम चल रहा था। 18वीं शती के अंत तक दक्षिण भारत में अंग्रेजों का आधिपत्य हो चुका था। सातवीं शती से बारहवीं शती तक वैष्णव और शैव धर्मों का प्रचलन था। हिंदू समाज में उच्च और निम्न वर्ग की विचारधारा, पिछड़ी जातियों की आर्थिक परतंत्रता और उनके प्रति दुर्व्यवहार, धार्मिक अंध-विश्वास, रूढ़िवादिता, छुआछूत की भावना कुछ ऐसे मौलिक कारण हैं जिनके फलस्वरूप सामाजिक जीवन का ढाँचा दुर्बल हो गया था।

सामाजिक ढाँचे की दुर्बलता का आश्रय लेकर ईसाई पादरियों ने शिक्षा और जीवन की सुख-सुविधाओं का प्रलोभन देकर अनेक लोगों को ईसाई-धर्म में दीक्षित करना प्रारंभ किया। ईसाई पादरियों को अपने धर्म-प्रचार के लिए गद्य की आवश्यकता थी। मुद्रण यंत्रों का आविष्कार हो चुका था, अतः ईसाई धर्म ग्रंथों और प्रचार साहित्य के लिए उसका गद्य में अनुवाद और प्रकाशन प्रारंभ हुआ। इसके साथ ही भारतीय चिंतन के ग्रंथों को बोधगम्य शैली में देने की आवश्यकता का अनुभव कर अनेक संस्थाओं की स्थापना हुई। तमिल के विख्यात संत कवि रामलिंग अडिगळ ने शुद्ध तमिल का सरल गद्य रूप प्रस्तुत किया। मुदुरै तमिल संघ, सेतुपति सेन् तमिल कॉलेज, पाण्डियन् पुस्तकालय, शैव सिद्धांत संघ, तिरूवावडुतुरै धर्मपुरम् मठ आदि संस्थाओं की स्थापना द्वारा तमिल गद्य के विकास में योगदान मिला। यद्यपि इस गद्य का प्रयोग प्रायः धार्मिक विषयों के लिए किया गया पर सरल बोधगम्य शैली में भाषा का विकास एक विशेष उपलब्धि थी। इससे पूर्व 1812 ई. में दक्षिण भारतीय प्रांतों के सरकारी कर्मचारियों को शिक्षा देने के लिए "फोर्ट सेंट जार्ज कॉलेज" की स्थापना हो चुकी थी। इस भाँति दो दिशाओं में काम हो रहा था — (अ) हिंदू धर्म का खण्डन करने वाले ग्रंथ और ईसाई धर्म के प्रचारात्मक साहित्य की रचना (आ) हिंदू धर्म की रक्षा के लिए धार्मिक साहित्य को जनता तक पहुंचाने का प्रयास। दोनों दिशाओं में इस कार्य के फलस्वरूप गद्य के रूप का विकास हो रहा था।

11.2.1 तमिल गद्य का विकास

इसी।संदर्भ में हम कुछ ऐसे लोगों का भी अति संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे जो तमिल के गद्य के विकास में अपना योगदान दे रहे थे। ताण्डवराय मुदलियार ने 1820 ई. में तमिल व्याकरण के सूत्रों को गद्य रूप में प्रस्तुत किया। इटली के रॉबर्ट डी. नोबिली 1906 ई. में तमिलनाडु आए, मदुरै में मिशन स्थापित किया, भारतीय सन्यासी की वेशभूषा धारण की, भारतीय भाषाओं का अध्ययन किया और "तत्वबोधक स्वामी" कहलाए। प्राचीन साहित्य को खोजकर, पाण्डुलिपियों को संकलित और सम्पादित कर तमिल के महत्वपूर्ण ग्रंथों को प्रकाशित करने वाले डॉ. उ.वे. स्वामिनाथ अय्यर का कार्य विशेष महत्व का है। इसी भांति वि. कल्याणसुंदर मुदलियार, वी.वी.एस. अय्यर, मरैमळैअडिगळ जैसे विद्वानों ने गद्य का विकास किया। डॉ. जी. यू. पोप भी ईसाई धर्म के प्रचार के साथ-साथ तमिल-ग्रंथों — तिरूक्कुरल, तिरूवाचकम् आदि के अनुवाद द्वारा अपना योग दे रहे थे। नवीन ढंग के गद्य लिखने वाले ईसाई धर्म प्रचारकों ने बोलचाल की भाषा, संस्कृत के शब्द और प्रचलित शब्द-समूह का प्रयोग किया। तमिल गद्य-साहित्य के विकास में अंग्रेजी पाठ्य पुस्तकों के तमिल अनुवादों का भी महत्व है।

बोधगम्य तमिल गद्य में धार्मिक साहित्य लिखने वालों में आरूमुख नावलर, सभापति नावलर, जाफ़ना के तमिल लेखक कुमार सानि मुदलियार, विश्वनाथ पिल्लै, सदाशिवम् पिल्लै और वीरसामि चैट्टियार उल्लेखनीय हैं। शिक्षा, सभ्यता और संस्कृति के प्रचार से तमिल लेखकों ने स्वधर्म-रक्षा और विचार-प्रसार की ओर ध्यान दिया।

तमिल में मुद्रित प्रथम गद्य-ग्रंथ पादरी बिशि का "परमार्थ गुरूविन् कैदहळ" है। इटली के इस विद्वान पादरी ने 40 वर्ष तक तमिल प्रदेश में निवास किया और तमिल व्याकरण की रचना की। अपनी कृति "परमार्थ गुरूविन् कदैहळ" में उन्होंने कल्पना मिश्रित यथार्थ कहानियां कहने का प्रयास किया। 1775 ई. में मुत्तुक्कुट्टि अय्यर ने शिवरात्रि के अवसर पर रात्रि-जागरण को सहज बनाने के लिए "वचन संप्रदाय कदे" नामक कहानियां लिखीं। अतिरंजित, काल्पनिक वर्णनों से युक्त ये कहानियां बहुत प्रसिद्ध हुई और 1895 ई. में इनका प्रकाशन हुआ। 1793 ई. में ईसाई मिशनरियों द्वारा "जॉन बैनियन्" के "पिल्ग्रिम्स् प्रोग्रेस" का तमिल अनुवाद प्रकाशित किया।

11.2.2 उपन्यास साहित्य का विकास

गद्य के इस क्रमिक विकास के संदर्भ में तमिल के उपन्यास साहित्य का विकास जान पाना अब सरल प्रतीत होगा। तमिल का प्रथम उपन्यास "प्रताप मुदलियार चरित्रम्" (1876 ई.) माना जाता है जिसे वेदनायकम् पिल्लै ने रचा। इस उपन्यास का दृष्टिकोण आदर्शवादी नैतिकता से युक्त है। उपन्यास की भूमिका में लेखक ने कहा — "गद्य के विकास के फलस्वरूप ही यूरोपीय देश सभ्य एवं सुसंस्कृत हुए हैं, स्वभाषा में जब तक गद्य का अभाव रहेगा तब तक इस देश में सुधार होना असंभव है।" लेखक वेदनायकम् पिल्लै स्वयं मानते हैं कि उन्होंने पात्रों के निर्माण में अंग्रेजी लेखक जॉनसन का अनुकरण किया। उपन्यास में चित्रित उच्च आदर्श एवं सामाजिक मूल्य तमिल प्रदेश की प्राचीन परम्परा के अनुकूल थे; तमिल भाषा के महत्व के प्रतिपादन से तमिल पाठक प्रभावित हुए। इसके अतिरिक्त वेदनायकम् पिल्लै का दूसरा सामाजिक उपन्यास 1887 ई. में छपा। उन्होंने यथार्थ की अपेक्षा आदर्श को महत्व देते हुए, नैतिक शिक्षा और आदर्श परक जीवन-चित्रण के लिए उपन्यासों को माध्यम बनाया। बाल-विवाह का विरोध, सरकारी नौकरों द्वारा रिश्वत लेने और अन्य कुकर्मों का संकेत, धार्मिक नैतिक सिद्धांतों पर विचार आदि उपन्यास के मुख्य स्वर हैं। घटना-वैचित्र्य, आकस्मिक संयोग, प्रवाहपूर्ण व्यस्थित सरल भाषा शैली, पंडिताऊपन को छोड़कर व्यावहारिक भाषा का प्रयोग इस उपन्यासकार की सफलता का मुख्य कारण माना जा सकता है।

बी.आर. राजम अय्यर कृत उपन्यास "कमलाम्बाल चरित्रम्" 1893 ई. से "विवेक चिन्तामणि" पत्रिका में धारावाहिक रूप में प्रकाशित होना आरंभ हुआ। यह पारिवारिक-सामाजिक उपन्यास 1896 ई. में पुस्तकाकार प्रकाशित हुआ। इसकी कथावस्तु शिथिल है, पात्रों का चरित्र-चित्रण सशक्त है, रोमांस के स्थान पर यथार्थ को स्थान मिला है। का.ना. सुब्रह्मण्यम् इसे तमिल साहित्य की समृद्धि के लिए नींव डालने वाली कृति मानते हैं। गुण-दोष के चित्रण द्वारा उपन्यास की कथा में गति आती है। ग्रामीण समस्याओं का चित्रण इसकी अन्य विशेषता है। सामाजिक सुधार की दृष्टि से युक्त उपन्यासकार माधवय्या का उपन्यास "पद्मावती चरित्रम्" का विषय संयुक्त परिवार के दोष, विधवा की दयनीय स्थिति; सामाजिक कुप्रथाओं का विवेचन आदि है। 1898 ई. में प्रकाशित इस उपन्यास में वर्णन अधिक है, कथोपकथन में गठन का अभाव है, पात्र-निर्माण में शैथिल्य है तथा घटनाओं में क्रम-बद्धता नहीं है। उनका अपना कथन है — पौराणिक कथाओं का संक्षिप्त कथात्मक रूप तथा विस्तृत कथात्मक गद्य और इतिहास का अनुवाद उपन्यास कहलाने योग्य नहीं। माधवय्या ने "विनय मार्त्तण्डन", मुत्तुमीनाक्षी (1903) में नारी की सामाजिक समस्याओं, विशेषतः विधवा के प्रति हुए अत्याचार को महत्व दिया गया है। "मुत्तुमीनाक्षी" में विधवा नायिका "मुत्तुमीनाक्षी" का पुनर्विवाह हो जाता है। आधुनिक, प्रगतिशील दृष्टिकोण के कारण इन उपन्यासों को पर्याप्त सम्मान मिला।

इस संदर्भ में गुरूस्वामी शर्मा का "प्रेमकलावत्यम्" का उल्लेख आवश्यक है। इसका आधार लोक-संस्कृति और लोकगीत हैं। दैनिक व्यवहार की भाषा का प्रयोग है पर कथावस्तु शिथिल है, घटनाएँ विश्वसीय प्रतीत नहीं होतीं। प्रारंभिक उपन्यासकारों में एस.एम. नेटश शास्त्री के योगदान को हम "दीनदयालु", "कोमलम्-कुमरियानदु", "मामियार को लुविरुक्कळै" आदि अनेक उपन्यासों के रूप में देख सकते हैं। नटेस शास्त्री ने शैक्सपीयर, चार्ल्स डिकन्स के उपन्यासों का तमिल अनुवाद भी

किया। ति.म. पोन्नुस्वामी के उपन्यास कमलाक्षी, विजय सुंदरम्, ज्ञानसंबंधम्, ज्ञानाम्बिळै, शिवज्ञानम् आदि में यथार्थ का प्रभाव है पर दर्शन-शास्त्र के विवेचन की शैली इनमें भी विद्यमान है। मरैमलैअडिगळ् ने अपने उपन्यास किलाम्बाळ् में एक ब्राह्मणी विधवा का मार्मिक चित्रण किया है।

तमिल उपन्यास के विकासक्रम में जासूसी प्रेम कथाओं का भी विशेष स्थान है। एस.जी. रामानुजलु नायुडु, के दुरैस्वामी अय्यंगार, कुप्पुस्वामी मुदलियार, जे.आर. रंगराजु, को दैनायकि अम्माळ् आदि उपन्यासकार उल्लेखनीय हैं। इनकी कथाएँ अलौकिक घटनाओं, दैवी-चमत्कार, रहस्यपूर्ण संदर्भों, जासूसी और ऐय्यारी के चमत्कारों से भरपूर हैं। समग्रतः कल्कि पूर्व के उपन्यास में पिछड़ेपन के कारणों का विश्लेषण था, सामाजिक दायित्व के निर्वाह की ललक थी, यथासंभव सामाजिक अंधविश्वास, रूढ़िवादी जीवन-दृष्टि और सड़ी-गली परम्पराओं के प्रति विद्रोह का स्वर था। अशिक्षा, अंधविश्वास, नारी की दयनीय दशा आदि प्रश्नों का समाज के समक्ष विचार रूप में प्रस्तुत कर पाने में इन उपन्यासों का अपना विशिष्ट योगदान है।

बीसवीं शताब्दी के तृतीय दशक के अंतिम चरण और चतुर्थ दशक के प्रारंभ में बंगला, मराठी, हिंदी, अंग्रेज़ी.आदि से अनूदित ग्रंथों, विशेषतः उपन्यासों के प्रकाशन के बाद ही तमिल में साहित्यिक कोटि के उपन्यासों की रचना प्रारंभ हुई। पाश्चात्य उपन्यासों के सम्पर्क से उपन्यास-विधा के अनेक रूपों का विकास हुआ और तत्कालीन वातावरण, युगीन समस्याओं को आत्मसात् कर उपन्यास-रचना की प्रक्रिया विकसित हुई। इस संदर्भ में शृंखलाबद्ध घटनाओं और साहित्यिक शैली के प्रयोग से युक्त उपन्यासों का आगमन हुआ। मरैमलै अडिगळ् और पोत्रस्वामी पिल्लै के उपन्यास इसी कोटि के हैं।

11.2.3 कहानी साहित्य का विकास

सन् 1900 से तमिल में कहानी कला की प्रगति प्रारंभ हुई। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की बंगला कहानियों से प्रेरणा लेकर कवि "भारती" (सुब्रह्मण्यम भारती) ने कथाएँ लिखीं। उनकी "नवतंत्र कथा" में पंचतंत्र की छाप है। व.वे.सु. अय्यर (श्री वी.वी.एस. अय्यर) की कहानियों में पारिवारिक संबंध और प्रेम आदि का चित्रण हुआ। इसके साथ ही मादवैय्या, मरैमलै-अडिगळ् आदि ने तमिल कहानियों का सृजन केया। "मणिक्कोडि" पत्रिका का प्रकाशन 1933 ई. में प्रारंभ हुआ। इसके माध्यम से वि.एस. रामय्या, कु.प. राजगोपालन, पुदुमैपित्तन्, पिच्चमूर्ति, सि.सु. चेल्लप्पा आदि ने कहानी के रंगमंच पर प्रवेश किया। स्पष्ट है कि जब पुदुमैपित्तन् कहानी के क्षेत्र में आए तब तक तमिल कहानी अभी विकास के प्रारंभिक वरण में थी। "नवीन विचार, गंभीर संस्कृत शब्द-प्रयोग, प्रौढ़ तमिल शैली और काव्यात्मक गठन पुदुमैपित्तन् की कहानी कला की विशेषताएँ हैं।

आगे हम तमिल-कहानीकार "पुदुमैत्तिन्" और उनके कहानीकार के रूप में किए गए राष्ट्रीय चेतना और नव-जागरण के योगदान का अध्ययन करेंगे। हम पुदुमैपित्तन् का परिचय प्राप्त करने के बाद उनकी कुछ कहानियों का विवेचन-विश्लेषण करेंगे ताकि उनके चिंतन, उनकी कहानीकला और अन्य वेशेषताओं का प्रत्यक्ष परिचय प्राप्त कर सकें।

बोध प्रश्न

1) तमिल गद्य के विकास में योगदान देने वाले दो लेखकों के नामों का उल्लेख करें। (दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए)।

.....

.....

2) तमिल में मुद्रित प्रथम गद्य-ग्रंथ का नाम लिखिए। (एक पंक्ति में उत्तर दीजिए)

.....

3) तमिल का प्रथम उपन्यासकार कौन है? उपन्यास का क्या नाम है? (दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

4) उपन्यास "कमलाम्बाल चरित्रम्" के लेखक कौन थे? (एक पंक्ति में उत्तर दीजिए)

.....

5) कल्कि-पूर्व के उपन्यासों की विशेषताओं पर दस पंक्तियों में प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.3 उपन्यासकार कल्कि

तमिल के प्रसिद्ध उपन्यासकार रा. कृष्णमूर्ति साहित्य में "कल्कि" नाम से विख्यात हुए। आपका जन्म तमिलनाडु में "पुत्तमंगलम्" नामक स्थल में हुआ। इंटर परीक्षा पास करने के बाद आपने शिक्षा छोड़कर महात्मा गांधी के असहयोग आंदोलन में भाग लिया। आपका जन्म 1899 ई. और शरीरांत 1954 ई. में हुआ। बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार "कल्कि" ने उपन्यासकार के रूप में तमिल साहित्य में असाधारण ख्याति अर्जित की। असंख्य कहानियाँ, निबंध, गीत, समालोचना आदि की रचना करने वाले इस साहित्यकार का पत्रकारिता में भी योगदान है। अपना साहित्यिक जीवन "नवशक्ति" नामक पत्रिका के सह-सम्पादक के रूप में प्रारंभ कर वे बाद में "आनंद विकटन" नामक पत्रिका के साथ जुड़े। इस पत्रिका के माध्यम से "कल्कि" ने तमिल भाषा और साहित्य के प्रचार-प्रसार में विशेष योगदान किया। बाद में आपने अपनी पत्रिका "कल्कि" नाम से प्रारंभ की और उसके माध्यम से साहित्य सेवा करते रहे। आपने जनता को "व्यंग्य" की शक्ति से परिचित करवाया, अपनी सांस्कृतिक सम्पदा का महत्व प्रतिपादित किया और राष्ट्र-जागरण के लिए कार्य किया। "कल्कि" का संबंध तमिल-संगीत आंदोलन के साथ भी रहा और इनके उपन्यासों में शिल्प और नृत्य का विशेष स्थान रहा।

रा. कृष्णमूर्ति "कल्कि" उपनाम से प्रसिद्ध हुए। तमिल कथा साहित्य के लेखकों में अग्रणी "कल्कि" ने अपने पूर्ववर्ती जासूसी, तिलस्मी उपन्यासों के स्थान पर सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों की ओर तमिलभाषी जनता को प्रवृत्त किया। हम देख चुके हैं कि कल्कि से पूर्व के उपन्यासों में राष्ट्रीय जागरण के स्वर उभरने लगे थे। अभी तक झुकाव सामाजिक अंधविश्वासों, रूढ़िवादिता और नारी की दयनीय दशा में परिवर्तन की आवश्यकता आदि तक था। "कल्कि" तमिल साहित्य में उपन्यास-विधा के माध्यम से नवजागरण, प्राचीन सांस्कृतिक धरोहर के प्रति सम्मान और राष्ट्रीय स्तर पर अंग्रेज़ी शासन का विरोध करने वाले प्रथम लेखक कहे जा सकते हैं। "कल्कि" से पूर्व रूप-सौष्ठव युक्त गंभीर उपन्यास का एक भी उदाहरण नहीं है, अतः तमिल उपन्यास के विकास के महत् दायित्व को उन्हें निभाना पड़ा। अपने सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यासों द्वारा कल्कि ने जो तमिल उपन्यास के भवन की नींव डाली, वह परवर्ती काल में दोनों प्रकार के उपन्यासों के विकास के लिए आधार बनी। "कल्कि" के बाद ऐतिहासिक उपन्यास का पर्याप्त विकास हुआ है, अनेक उपन्यासकारों की उत्कृष्ट रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं परंतु "कल्कि" ने जिस युग में रचना की उसकी साहित्यिक चेतना को देखते हुए स्वीकार करना पड़ता है कि औपन्यासिक सृजनकारों में इनकी प्रतिभा अनुपम है और स्थान अद्वितीय है। ऐतिहासिक उपन्यास को ठोस धरातल प्रदान कर उसे "ऐतिहासिक" बनाने का श्रेय कल्कि को है। कल्कि का तमिल उपन्यास के विकास में बहुमुखी, चिरकालीन एवं महत्वपूर्ण योगदान है।

आइए आगे बढ़ने से पूर्व उपन्यासकार कल्कि ने कुछ उपन्यासों के नाम जान लें।

"कल्कि" के प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यासों के नाम इस प्रकार हैं :

i) पोन मान करडु
ii) सोलैमलै इलवरसि
iii) मुकुटपति
iv) त्याग भूमि
v) कलवनिन कादलि
vi) अलै ओसै

"अलै ओसै" उपन्यास 1956 ई. में साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत किया गया।

उपन्यासकार "कल्कि" के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों के नाम हैं —

i) पार्तिपन् कनवु (पार्तिप का स्वप्न)
ii) शिव कामियिन शपदम् (शिवकामी की शपथ)
iii) पोन्नियिन् सेलवन (कावेरी का पुत्र)

11.3.1 ऐतिहासिक उपन्यास

"कल्कि" ने तमिलनाडु के इतिहास-ग्रंथों का गहन अध्ययन किया, पल्लव और चोल नरेशों के युग के विषय में उपलब्ध शोध सामग्री को आत्मसात् किया। अपने उपन्यासों की पृष्ठभूमि और घटना-विशेष के वर्णन के लिए हर संभव सामग्री का अध्ययन किया। पल्लव और चोल वंश के युग की सामाजिक मान्यताओं, आचार-व्यवहार, विचार-पद्धति आदि का सम्यक् ज्ञान प्राप्त करने के बाद वे अपने उपन्यासों में कल्पना का समावेश करते हैं। जिन स्थलों पर इतिहास द्वारा प्रकाश नहीं पड़ता, इनका निर्माण कल्पना द्वारा करके, उपन्यासकार भूली हुई या खोई हुई सच्चाइयों को उद्घाटित करता है। उपन्यासकार परम्पराओं, जनश्रुतिओं, किम्वदन्तियों को भी महत्व देकर उन्हें ऐतिहासिकता के सांचे में ढालकर पाठक को आह्लादित करता है। उपन्यासकार "कल्कि" ने मम्मल्लपुरम् (महाबलीपुरम्) के खण्डहरों तथा अनेक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्थलों का साक्षात् परिचय प्राप्त किया, इस विषय पर लेख भी लिखे और जब इतिहास का वह युग उनके हृदय की गहराइयों तक उतर गया तो उस सामग्री को ऐतिहासिक उपन्यास की पृष्ठभूमि के रूप में चित्रित किया। उनके अनेक पात्रों का निर्माण "वीरतापूर्वक राष्ट्रभावना के लिए सर्वस्व समर्पण करने की भावना" का परिणाम था।

इस उपन्यास की कथावस्तु पल्लव नरेशों के शासनकाल से ली गई है। चोलवंश का शासन उसके बाद आया। पल्लव और चोलवंशों में दीर्घकाल से चले आ रहे वैमनस्य के फलस्वरूप चोल युवराज विक्रम को राजसिंहासन से हाथ धोना पड़ा। आगे चलकर अनेकानेक कष्टों का सामना करने के बाद विक्रम ने पल्लव राजकुमारी से विवाह करके इन दो वंशों के बीच के दीर्घ वैमनस्य को समाप्त किया तथा मैत्री और स्नेह के संबंधों की नींव डाली। इस उपन्यास में प्रेम और कर्त्तव्य का टकराव है। इसमें राष्ट्र-प्रेम, स्वाधीनता को प्राणों से भी अधिक महत्व देने का भाव अनेक रूपों में उभारा गया है। रोमांस अथवा कल्पना को महत्व देकर उसके माध्यम से आधुनिक युग की समस्याएँ उठाई गई हैं। उनका आदर्शवादी दृष्टिकोण इस चित्रण में अभिव्यक्त होता है। सामाजिक जीवन की विसंगतियों यथा धार्मिक संकीर्णता, जातिभेद और मिथ्याभिमान को प्रस्तुत कर वे नवयुग के मार्ग की बाधाओं को स्पष्ट करते हैं।

मामल्लपुरम् में पल्लवों ने जो अद्वितीय कला का निर्माण किया था उसे उपन्यासकार हमारे नेत्रों के समक्ष एक भित्तिचित्र की भांति प्रस्तुत कर देता है। उनके वर्णनों द्वारा झरने, नदनदियाँ, नन्दन-कानन, वनप्रदेश, रणक्षेत्र, राज-दरबार, अंतःपुर, पुष्प-वाटिकाएँ, सागर-तट, चम्पक द्वीप इतने स्पष्ट रूप से हमारे समक्ष आते हैं कि वे सब हमारे हृदय पर दीर्घकाल के लिए अंकित हो जाते हैं। इस उपन्यास में एक लघु-शब्दचित्र देखें। विक्रम के मस्तिष्क में विचार चल रहा है —

"चारों ओर भयानक आग की ज्वाला धधक रही है। पार्थिव महाराज विक्रम का हाथ पकड़कर खींचते हैं — "बेटा, जन्म-भूमि के लिए तुम इस आग में कूद पड़ने को तैयार हो?" पास ही महारानी अरूल्मोलि नैत्रों में अश्रु भरे खड़ी हैं। "कूद पड़ूंगा पिताजी!" विक्रम बड़े साहस के साथ उत्तर देता है। पिता का हाथ ढीला पड़ता है और विक्रम आग में कूद जाता है।"

स्त्री जाति की शक्ति का परिचय नरसिंह वर्मा अपनी पुत्री कुंदवि से वार्तालाप करते हुए देते हैं — **''तुमसे पहले कितनी ही औरतों ने कितने ही बुद्धिमानों को एकदम बुद्धू बना दिया, वैराग्यशील व्यक्तियों को रागशील ही नहीं पागल भी बना दिया है, वीरों को कायर बना दिया है। इसके विपरीत ऐसी भी स्त्रियां हुई हैं जो साधारण मनुष्यों को बुद्धिमान, वैराग्यशील और वीर बनाने में सफल हुई हैं। सच है, स्त्री जाति में वह गुण पूरी तरह विद्यमान है।**

उपन्यास में प्रायः घटना क्रम के विकास के लिए वर्णनों का माध्यम अपनाया गया है। अनेक स्थलों पर युग बोध का उद्घाटन करने के लक्ष्य से कतिपय संदर्भ साभिप्राय समाविष्ट किए गए हैं। कुंदवि को नरेश नरसिंह वर्मा द्वारा सूचना-रूप में कहे गए इस संदर्भ में तमिल के विख्यात शैव-भक्त कवि तिरूज्ञान संबंधर का परिचय उभरता है —

''चोल देश में काळि (उच्चारण ''कालि'' के निकट) नाम के गांव में एक नन्हा सा बालक दैव-सान्निध्य पाकर महाज्ञानी हो गया है। भगवान् शिव पर तमिल में सुंदर-सुंदर पद रचकर अमृतवर्षा-सी करता है। दुर्दमनीय महारोग तक उसके हाथों से भभूत (विभूति) लेकर लगाने पर भाग जाते हैं। उस बालक भक्त का नाम है ज्ञान-संबंध!'' इसी भांति एक अन्य स्थल पर तिरूमूल महर्षि (निरूमूलर) के **''प्रेम और शिव एक ही हैं''** का उल्लेख कर वैष्णव भक्तों की प्रेम-आधृत ज्ञान की साधना के साथ उसे जोड़ दिया है। ऐसा करने का लक्ष्य करूणामय प्रभु के प्रति नरबलि के विचार का खण्डन करना है। इस उपन्यास में शिरूतोण्डर, शिव-योगी, पोन्नन, आदि पात्रों के चरित्र मुख्य पात्रों विक्रम, कुन्दवि आदि की भांति अपना स्वतंत्र अस्तित्व लिए हुए हैं। शिवयोगी के वाक्यों में टुकड़े-टुकड़े तमिल प्रदेश को एक सुसंगठित राज्य के रूप में देखने की भावना भारत भूमि के एकत्व की भावना का संकेत देती है।

यद्धपि वर्णनात्मकता के माध्यम से घटनाओं का विकास हुआ है फिर भी अनेक स्थलों पर कथा में कथोपकथनों द्वारा सरसता एवं नाटकीय तत्वों का समावेश किया गया है —

थोड़ी देर बाद विक्रम ने पूछा, ''हम लोग कहां जा रहे हैं, पोन्नन?''

''मामल्लपुरम् को महाराज!''
''पोन्नन!''
''क्या है महराज?''
''कल सुबह तक हमें मामल्लपुरम् पहुंच जाना चाहिए!''
''हाँ, महाराज, इसीलिए मैंने कहा कि एक क्षण का भी विलम्ब नहीं होना चाहिए।''
''कल दोपहर तक जहाज प्रतीक्षा में खड़ा रहेगा।''
''तब तक हम जरूर पहुंच जाएँगे महाराज!''
विक्रम ने थोड़ी देर के मौन के बाद फिर पूछा, ''देवि कुंदवि अब कहां हैं, पोन्नन? उनसे अंत में एक बार विदा लेकर चला होता तो अच्छा होता। अब ...''
''यह संभव नहीं है, महाराज!''
''क्या संभव नहीं है?''
''देवी से विदा लेकर चलना।''
''हां, हां, वह तो संभव नहीं है, यह मैं जानता हूँ। अब दुबारा उरैयूर कैसे जा सकता हूँ।''
''देवी उरैयूर में नहीं हैं महाराज!''
देवी उरैयूर में नहीं हैं? तो कहां हैं?
''मामल्लपुरम् में!''
हैं? क्या कहा? विक्रम ने आश्चर्य से पूछा!

घटनाओं और पात्रों के चरित्रों के विकास के लिए इस प्रकार के कथोपकथन उपन्यास की गति को तीव्रता प्रदान करते हैं, पाठक के मन में भावी घटनाओं के लिए जिज्ञासा बढ़ाते हैं और कथावस्तु को सशक्त बनाते हैं।

''कल्कि'' के पास एक रोचक कथा है, जो उपन्यास का आधार बनती है। कथानक की रमणीयता, रोचकता एवं सरसता ''कल्कि'' के इस उपन्यास की भित्ति है। उन्होंने तमिल प्रदेश के इतिहास के

पल्लव एवं चोल राजाओं के युग का गंभीर अध्ययन एवं विश्लेषण किया था। उस युग की सांस्कृतिक चेतना, जीवन-पद्धति, सामाजिक अवधारणाओं और मानसिकता के साथ तादात्म्य स्थापित करने में उन्हें सफलता मिली है। "शिवकानी की शपथ" में ऐतिहासिकता के साथ-साथ स्थानीय गौरव, स्थानीय रंग और प्रकृति चित्रण की विशेषता है। यहां सभी पात्र परिस्थिति के अनुकूल स्वाभाविक गति से चलते हैं। अपने प्रत्यक्ष अनुभवों का लाभ उठाकर "कल्कि" ऐतिहासिक भग्नावशेषों को प्राणवन्त कर देते हैं। उपन्यास के पात्रों के माध्यम से मानव की आशा-आकांक्षा, सुख-दुःख, भावना और बुद्धि का संघर्ष कलात्मक ढंग से प्रस्तुत कर शाश्वत मानव-मूल्यों पर बल दिया गया है। "कल्कि" ने इतिहास, कल्पना, जनश्रुतियां, सत्य घटनाएँ इनका अद्‌भुत सम्मिश्रण करके जिस सौंदर्य की सृष्टि की है, वह आकर्षक एवं प्रभावशाली है। सामन्तीर्ग वर्ग से लेकर जनसाधारण वर्ग तक के प्रात्रों की चारित्रिक विशेषताओं, दुर्बलाताओं, सबलताओं का चित्रण व्यापकता और गहराई के साथ हुआ है। चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण उनकी प्रवृत्तियों को उभारता है, कहीं-कहीं पात्रों का अंतर्द्वंद्व मुखर हो उठा है, क्योंकि उपन्यास में घटनाओं के वर्णन की अपेक्षा पात्रों के चरित्रों के विकास को अधिक महत्व दिया गया है।

तमिलनाडु की सांस्कृतिक चेतना और परम्परा का अंकन, एक पात्र शिल्पी "आयनर" द्वारा धार्मिक सहिष्णुता का प्रतिपादन, युद्ध के भयंकर परिणामों का अंकन, महेन्द्रवर्मन द्वारा शांति की महिमा के वर्णन की हमारे राष्ट्रीय पुनर्जागरण के काल में एक महत्वपूर्ण भूमिका थी। तमिल नरेशों का कलाप्रेम, शिल्प, कला तथा नाट्य की महिमा का चित्रण, आधुनिक युग के संदर्भ में हुए अनुभवों के आधार पर प्राचीन-काल के दृश्यों और भावों का चित्रण हमारी सांस्कृतिक सम्पदा का महत्व उजागर करता है। इतिहास के अंतस्तल में प्रवेश करके समाज और देश के सम्मुख अपने अतीत के स्वर्णिम युग का अंकन एक निरंतर प्रगतिशील मार्ग को प्रशस्त करता है। लोकमानस में आस्था की भावना का विकास, कर्त्तव्य के प्रति आग्रह आदि विचारों को अग्रसर करता है। नारी के गौरवपूर्ण, सशक्त, देश के प्रति दायित्व-निर्वाह की प्रबल भावना को उभारने का उपन्यासकार कल्कि का प्रयास उल्लेखनीय है। "पार्तिव का सपना" की "कुंदवि" और "शिवकामी की शपथ" की "शिकामी" आदि अनेक नारी पात्र अपने "देश, धर्म, संस्कृति एवं सम्मान की रक्षा और उत्थान के निमित्त" कटिबद्ध हैं। "कल्कि" का नारी के प्रति दृष्टिकोण पवित्र और आस्थापूर्ण है। उनके हृदय में नारी के प्रति आदर, सम्मान और श्रद्धा का भाव है। इस कारण उनके नारी पात्र "साहसी, संयमी, स्वाभिमानी, कष्टसहिष्णु, आदर्शप्रिय और धर्मपरायण हैं, सांसारिक आकर्षण, धन-सम्पदा उन्हें मार्ग से भटकाकर, कर्त्तव्यविमुख नहीं कर पाते। इस तथ्य को राष्ट्रीय नवजागरण में नारी के महत्वपूर्ण योगदान के साथ जोड़कर देखने से नारी साहस, शक्ति और त्याग की जो रूपरेखा उभरती है वह राष्ट्र प्रेम और कर्त्तव्यनिष्ठा के लिए विशेष उपलब्धि है। नारी समाज का आधा अंग है, उसका विश्वास, उसकी कर्त्तव्य परायणता, उसका साहस राष्ट्र के स्वातन्त्र्य आंदोलन और स्वतंत्रता उपरांत के पुनर्निर्माण में पुरुष की तुलना में किसी भी रूप में कम नहीं। इसी भांति उनके पुरुष पात्रों में जो अदम्य उत्साह, देश और धर्म की रक्षा के लिए प्राण उत्सर्ग करने की ललक, आत्मगौरव, गौरव-रक्षा के लिए प्रतिबद्धता, व्यक्तिगत साधना का भाव व राष्ट्र की बलिवेदी पर तन-मन-धन न्यौछावर करने की प्रवृत्ति है उससे राष्ट्रीय जागरण के लिए आवश्यक भावभूमि तैयार करके का ठोस, प्रामाणिक आधार मिलता है।

"कल्कि" के "पार्तिपन कनवु" में आरंभ से अंत तक देशप्रेम का स्वर ही प्रमुख है। "कल्कि" के लेखन से देश-प्रेम का प्रसार हुआ, इससे विदेशी भाषा का मोह दूर हुआ, शिक्षितों में मातृभाषा के प्रति उपेक्षा का जो भाव फैला था, वह भी दूर होने लगा। कल्कि के जीवनीकार सुन्दा का दृढ़ मत है कि कल्कि का समस्त साहित्य-सर्जन ही राष्ट्र प्रेम और तमिल-भाषा-प्रेम से उद्‌भुत है।" इस उपन्यास के कुछ वाक्य इन कथनों की पुष्टि करते हैं। (i) **"हमारे बीच चाहे कितने ही मतभेद क्यों न हों, फिर भी शत्रु के समक्ष उसे प्रदर्शित करना सही नहीं है।"** (ii) **"दुश्मन कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, उनके आधिपत्य को स्वीकार करना स्वाभिमानी व्यक्ति का लक्षण नहीं।"** (iii) **इस देश के वासी अपने तन, मन, धन सब कुछ का बलिदान करके भी अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करने के लिए कटिबद्ध हैं।** (iv) **चोल प्रदेश में गुलाम बनकर रहने की अपेक्षा चम्पाद्वीप में स्वतंत्र मानव बनकर रहना पसंद करूंगा, दासता का जीवन मुझे स्वीकार्य नहीं, स्वतंत्रता के लिए मैं स्वयं को बलिदान करने को तैयार हूँ।**

इन उक्तियों को पढ़कर हमें राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्यम भारती के काव्य की पंक्तियां सहज ही स्मरण हो आती हैं। "कल्कि" ने "भारती" के स्वर के साथ अपना स्वर मिलाकर स्वतंत्रता की आवश्यकता पर बल दिया है।

11.3.2 सामाजिक उपन्यास

अलै-ओसै कल्कि का तीन भागों में विभक्त सामाजिक उपन्यास है। "कल्कि" पत्रिका में यह धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ। स्वतंत्रता संग्राम के संघर्ष को आधार बनाकर रचा गया यह उपन्यास भारत-राष्ट्र में तीव्र गति से हो रही घटनाओं, सामाजिक परिवर्तन आदि का चित्रण है। 1942 का "भारत छोड़ो आंदोलन" इसमें सजीव हो उठा है। इसमें कांग्रेस महासभाओं की बैठकें, समाजवादी दृष्टिकोण का विकास, युवकों और युवतियों का त्यागपूर्ण जीवन, गुप्त आंदोलन स्वतंत्रता प्राप्ति आदि का विशाल फलक पर चित्रण किया गया है। गांधीवाद का प्रभाव निरंतर बना हुआ है, साम्यवाद-मार्क्सवाद आदि का विवेचन हुआ है, असहयोग आंदोलन और अहिंसा-नीति को भी स्पष्ट रूप से अंकित किया गया है। एक पात्र "सीता" महात्मा गांधी के प्रति श्रद्धा से युक्त है, तारिणी और सूर्या (सूरिया) राष्ट्र की सेवा में संलग्न है। तारिणी बिहार-भूकम्प में अनाथ हुए असहाय जन-जन की सेवा कर रही है।

"कल्कि" के उपन्यास "अलै ओसै" वस्तुतः तमिल का स्वर है, उसका जयघोष है। इसमें संस्कृति, शिक्षा, रीति-रिवाज, राष्ट्रीय आंदोलन, न्याय, ईश्वर, विभिन्न मत, ग्रामीण एवं नगरीय जीवन, आदि अनेक विषयों को समाहित किया गया है। परतंत्र भारत के अंग्रेजी जेलों में कैदियों की दुर्दशा, निर्धन, असहाय, भूकम्प पीड़ितों की दारूण पीड़ा जैसे विषय पाठक को झकझोर देते हैं। निम्न एवं मध्यवर्गीय सामाजिक जीवन, दाम्पत्य जीवन के सुख-दुःख, ईर्ष्या-द्वेष, प्रेम आदि भाव कथावस्तु को गतिशील बनाते हैं। अधिकांश पात्र आदर्श रूप हैं, धर्म, नीति, सदाचार, न्याय और भक्ति के मार्ग के पथिक हैं। भावों का सूक्ष्म विश्लेषण, पात्रों का जीवन्त रूप, वार्तालाप द्वारा कथावस्तु का विकास, भावानुभूति की अभिव्यक्ति सहज और नवीन ढंग से हुई है। सरस, प्रभावशाली शैली का प्रयोग इस उपन्यास को एक सशक्त, सार्थक कृति बनाने में सफल हुए हैं।

बोध प्रश्न

6) "कल्कि" का पूरा नाम क्या है? (एक पंक्ति में उत्तर दीजिए)

.....

7) "कल्कि" के दो प्रसिद्ध सामाजिक उपन्यासों के नाम लिखें। (दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

8) "कल्कि" के दो प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासों के नाम लिखें। दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

9) "कल्कि" के सामाजिक उपन्यासों का मूल स्वर क्या था? (पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

10) "कल्कि" के ऐतिहासिक उपन्यासों का मुख्य लक्ष्य क्या रहा? (पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

.....

.....

11.4 कहानीकार पुदुमैपित्तन

तमिल कहानी साहित्य का विकास 1930 ई. के बाद अपेक्षाकृत तीव्र गीत से हुआ। इस विकास को अग्रसर करने में "मणिक्कोडि" नामक पत्रिका का विशेष योगदान है। यह उस युग की एकमात्र पत्रिका थी जो तमिल में केवल कहानियों के लिए समर्पित थी, कहानी के विविध-आयामी विकास तथा नवीन प्रयोगों के लिए इस पत्रिका के कहानी लेखकों ने सक्रिय कार्य किया। कहानीकार पुदुमैपित्तन ने इस पत्रिका के माध्यम से तमिल साहित्य में अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा का विभिन्न प्रकार से प्रदर्शन किया। उनके "कांचनै", "मणिओसै", "पुदियओलि" आदि अनेक कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए।

चो. वृद्धाचलम् तमिल साहित्य में पुदुमैपित्तन् नाम से विख्यात हुए। 1906 ई. में जन्म हुआ, तिरूनेलवेली में रहकर बी.ए. की डिग्री प्राप्त की और मद्रास आकर पत्रकार-जगत् में प्रवेश किया। आप "दिनमान" नामक समाचार-पत्र के सहायक-सम्पादक रहे, "मणिक्कोडि" पत्रिका द्वारा गंभीर, विचार प्रधान कहानियां प्रकाशित करते रहे और तमिल साहित्य के अग्रणी कहानीकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। "पुदुमैपित्तन्" — अर्थात् नवीनता के प्रति पागल!

पुदुमैपित्तन् प्रारंभ से ही प्रयोग धर्मी कलाकार रहे, वे यथार्थवादी दृष्टिकोण लेकर कहानी-क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। कथा में सहज प्रवाह, पात्रों का स्वाभाविक चरित्र-चित्रण, पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग, भाषा में आँचलिकता आदि उनकी कहानी कला की विशेषता है। उनकी तमिल-शैली प्रारंभ से ही विवाद का विषय रही। उनकी कल्पना और वैचारिक क्रांति जिस प्रकार विवाद का विषय बनी, इसी भांति भाषा-शैली पर भी विवाद चलता रहा। अपनी कहानियों की शैली के विषय में इस लेखक का अपना मत है — "मूल चिंतन को प्रधानता देते हुए वाक्यों को मात्र शृंखला के रूप में नियोजित करने वाली त्वरित शैली का गठन मैंने किया था। तमिल साहित्य की परम्परा को देखते हुए वह एकदम नयी है। कई लोग मेरे लेखक को समझ नहीं पाये। कुछ लोगों ने मेरे साहित्य को असंप्रेषणीय भी कहा। अब मैंने इस शैली को कुछ समय बाद छोड़ दिया··· इसका तात्पर्य यह नहीं कि इसमें कोई कमी थी··· मेरा उद्देश्य केवल यह दिखाना रहा है कि मेरे भाव देश के मानसिक उद्वेलनों से प्रसूत भले ही हों, पर मेरा साहित्य विश्व साहित्य की गति के अनुरूप रहा।"

पुदुमैपित्तन् प्रारंभ से ही सामाजिक सुधार की प्रवृत्ति को लेकर तमिल कहानी के क्षेत्र में आए। समाज के दलित एवं निम्न वर्ग की पीड़ाजनक स्थिति का चित्रण उनकी रुचि के अनुकूल था। समाज-सुधारवादी दृष्टिकोण रहते हुए भी वे कहानी-संरचना में कला का त्याग करने को कभी तैयार नहीं हुए। बाल्यावस्था के विवाह, अनमेल विवाह, आर्थिक-अभाव से उत्पन्न मानसिक उद्वेलन आदि का चित्रण उन्होंने कलात्मक ढंग से किया। पुदुमैपित्तन् से सामाजिक परिवर्तन और तमिल-प्रवेश के जन-जन के हृदय में नवीन विचारों, अत्याचार के प्रति विद्रोह तथा मानवीय प्रेम के जिस रूप का विकास किया वह प्रशंसनीय है। इस संदर्भ में उनका अपनी कहानियों के विषय में विचार देखें —

"साधारणतः मेरी कहानियां उपदेशात्मक संस्था नहीं है, न ही भविष्य को सुखमय बनाने वाली "बीमा पालिसी"। मैं उन सभी पर व्यंग्य करता हूँ जो मुझे अच्छे लगते हैं, और जो मुझे अच्छे नहीं भी लगते। कुछ मेरे साथ हँस भी लेते हैं, कुछ नाराज़ हो जाते हैं। वे जैसे-जैसे नाराज़ होते हैं, वैसे-वैसे मुझे उन्हें छेड़कर और अधिक नाराज़ करने को जी चाहता है। मेरी इच्छा को, मेरी आदत मानकर उसकी प्रशंसा करना लोगों के मस्तिष्क की परिपक्वता तो है, पर मुझे एक चौखटे में बांधकर मेरी टांग खींचने का इससे बेहतर तरीका और कुछ नहीं।"

पुदुमैपित्तन् का अपनी कहानियों के प्रति यह दृष्टिकोण है कि वे "दार्शनिकों की पकड़ में न आने वाले ईश्वर की भांति हैं", उनके लिए बने बनाए आलोचना के मापदण्डों के आधार पर मूल्यांकन उपयुक्त नहीं। इसलिए हमें स्मरण रखना होगा कि पुदुमैपित्तन् अपने समाज के चिंतन, अपने युग के मानदण्डों से कालक्रम में कहीं आगे थे, अतः उनकी आलोचना भी भरपूर हुई परंतु उनकी कला, उनकी कहानियों को सम्मान भी पर्याप्त मिला।

11.4.1 पुदुमैपित्तन की कहानियों का अवलोकन

अपनी कहानियों के माध्यम से पुदुमैपित्तन ने नयी समाजवादी, समाजसुधार की प्रवृत्ति को अग्रसर किया।'समाज के निर्धन, दलित और निम्नवर्ग की पीड़ा, दुरवस्था और उनके संघर्ष का चित्रण करने में वे सफल रहे। उनका कोई भी पात्र "दुर्बल" नहीं है। प्रत्येक कहानी में कोई न कोई समस्या उठायी जाती है, उस समस्या का मानवीय भावनाओं के आधार पर अंकन पात्र को सजीव बना देता है। "कहानी" के माध्यम से जीवन और जगत् को सूक्ष्म ढंग से समझने और समझाने का प्रयास है। हिंदी के प्रेमचंद के समान वे अनेक रूपों में सामाजिक परिवर्तन और नवजागरण का कार्य कर रहे थे। अपनी कहानियों के माध्यम से पुदुमैपित्तन समाज की छाती में एक कील सी ठोक देना चाहते हैं, उनकी अभिरुचि सामाजिक समस्या का विश्लेषण कर नवीन मार्ग की खोज करना था। मानव-जीवन का कपट-व्यवहार, पौराणिक कथावस्तु को नवीन अर्थ देना और मानव-जाति की प्रवृत्तियों का विश्लेषण उनका विशेष लक्ष्य है। पुदुमैपित्तन "कल्कि" अथवा तमिल के राष्ट्रीय कवि सुब्रह्मण्यम भारती के समान राष्ट्रीय नवजागरण और स्वतंत्रता आंदोलन के साथ नहीं जुड़े पर वैचारिक क्रांति, सामाजिक परिवर्तन और मानवीय सम्वेदनाओं को अंकित करने में उनका योगदान असाधारण है। आज भी पुदुमैपित्तन की अनेक कहानियां अपने नयेपन के कारण, विषय और शैली-शिल्प के नए प्रयोगों के कारण आकर्षण का केंद्र है। उनकी कई कहानियों का अनुवाद अनेकानेक भारतीय भाषाओं में हो चुका है।

पुदुमैपित्तन की कहानियों में "शाप विमोचनम्" अधिक चर्चित रही। रामायण की अहल्या का शाप विमोचन इसकी मूल कथावस्तु है। अनेक स्थलों पर नवीन विचारों की अभिव्यक्ति है। वर्णन-सौष्ठव की दृष्टि से कहानी सशक्त है — **"उस जंगली मार्ग में, प्रस्तर-निर्मित शोक की साकार प्रतिमा के रूप में, वह उस प्रकृति की गोद में पड़ी थी जो उसके दुःख के निरपेक्ष दृष्टि से निहारने वाली तपस्विनी के समान थी। सूर्य तप रहा है, ओस पड़ रही है, वर्षा हो रही है। धूल, पतंगे, चिड़ियां और कुछ उल्लू बैठे हैं, कुछ उड़ रहे हैं। वह संज्ञाविहीन तपस्विनी के समान प्रस्तर-खण्ड के रूप में पड़ी हैं।' ईश्वर के अवतार दो बालकों रामलक्ष्मण के ताड़कावध के बाद खेलने से उत्पन्न धूल के प्रभाव से शिला के भीतर हृदय धड़कने लगता है,''' पत्थर में चेतना का संचार होता है, वह सजीव काया बन जाती है, खोई हुई प्रज्ञा लौट आती है। शाप विमोचन तो हो गया पर "पाप" का विमोचन नहीं। स्नान करने जा रहीं ऋषि-पत्नियां उसे देखकर दूर से ऐसे भागीं मानों उन्होंने किसी चाण्डाली को देख लिया हो। उसने सुना — "वही अहल्या है", अंतर से उत्पन्न अग्नि से वह मानों झुलस गयी। युद्ध में रावण-वध के उपरांत श्रीराम, लक्ष्मण और सीता वन लौटते हैं, सीता के मुख से अग्नि-परीक्षा की बात सुनकर अहल्या के मन कें नवीन प्रश्न उभरते हैं। राम को सादर विदा करने के बाद गौतम पुनः दाम्पत्य-जीवन को स्वीकार करना चाहते हैं, अहल्या का आलिंगन करते हैं। अहल्या के हृदय में सीता द्वारा अग्निप्रवेश का चित्र उभरता है, उसे गौतम विरक्त होकर संयासी बन जाते हैं।** अहल्या और गौतम के मानसिक उद्वेलन के माध्यम से स्त्री की स्थिति, उसकी अस्मिता और पारिवारिक संदर्भ नए रूप में उभरते हैं। पुदुमैपित्तन् नवीन विचारों, नवीन जीवन और नवीन कलात्मक अभिव्यक्ति के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। इस कहानी में भी कहानीकार का यही उद्देश्य रहा है।

मानव-मन अनन्त सागर के समान अथाह है। भाव-तरंगे इसमें निरंतर उठती गिरती हैं। प्रयास द्वारा कभी मनुष्य मन पर विजय प्राप्त कर लेता है, कभी उससे पराजित हो जाता है, पराजित होना प्रायः अधिक होता है। इस मन के अंतःसंघर्ष का चित्रण पुदुमैपित्तन की कहानियों में अत्यंत सूक्ष्म और सहज ढंग से हुआ है। वह युवती कल्याणी आर्थिक दुरवस्था के कारण एक विधुर के साथ ब्याही जाती है। वह विधुर पति अनेक बार अपनी पहली मृत-पत्नी के गुणों की चर्चा करके अपनी दूसरी पत्नी के हृदय को ठेस पहुंचाता है। एक युवक परिवार में आकर पति-पत्नी के बीच मानसिक संघर्ष का कारण बन जाता है। पात्रों के मानसिक उतार-चढ़ाव का, अंतर्द्वंद्व का चित्रण करते हुए कहानीकार एक ओर कल्याणी की युवावस्था के कारण चांचल्य, चापल्य और युवक के प्रति आकर्षण को उजागर करता है तो दूसरी और सामाजिक बंधन, पारिवारिक नैतिकता की भावना के प्रभाव को स्पष्ट करता है। अपने साथ भाग जाने का निमंत्रण देने वाले युवक के प्रस्ताव को अस्वीकार कर वह मन की दृढ़ता प्रकट करती है। पारिवारिक जीवन की उलझनों में फंसी युवती कल्याणी के मानसिक उद्वेलन

का जैसा स्वाभाविक चित्रण हुआ है उससे पुदुमैपित्तन की कला की शक्ति का परिचय मिलता है। एक मेधावी कलाकार, अपनी दूरदृष्टि, अद्भुत क्षमता, स्वतंत्र चिंतन, भोगे हुए अनुभव, सामाजिक परिवेश के प्रति जागरूक विश्लेषण आदि द्वारा अपनी कहानियों के लिए विचार-बिन्दु ग्रहण करने में पुदुमैपित्तन अद्वितीय हैं।

उनकी एक कहानी "आणमै" है। इसमें मानव-मन में छिपी दानवी-वृत्तियों का चित्रण है। उन्होंने स्त्री-पुरुष के मासल प्रेम को चित्रित करने में संकोच नहीं किया। मनुष्य की हीन भावनाओं और निम्न वृत्तियों का चित्रण उन्होंने पूरी ईमानदारी के साथ किया। एक अन्य कहानी "पोन्नगरम्" में रोगशय्या पर पड़े अपने रूग्ण पति के रक्षा के लिए अपने शरीर को बेचने वाली पति-परायण नारी की कहानी हमें सोचने को विवश कर देती है। इस कहानी में दुर्घटनाग्रस्त "मुरूगेसन्" की सेवा कर रही उसकी पत्नी 'अम्मालु के पास मुरूगेसन् की दूध पीने की कामना को पूरा करने के लिए एक पैसा भी नहीं था। मिल में मजदूरी करने वाली अम्मालु के प्रति एक मनुष्य कई बार ललचाई नजरों से देख चुका था। वह अम्मालु के लिए भूखा था।

पुदुमैपित्तन् अत्यंत कलात्मक भाषा के द्वारा चित्र प्रस्तुत करते हैं —

अम्मालु जल लेने गयी।
घना अंधकार था···
प्रतिदिन की भांति शोर मच रहा था, पानी लिया, लौट रही थी···
गली के निकट एक मनुष्य··· अम्माल् पर बहुत दिनों
से उसकी नज़र थी, दोनों अंधेरे में विलीन हो गए···।
अम्माल् ने पौन रूपया कमा लिया!
हाँ, पति को दूध देने के लिए!

इस कहानी को पढ़ने के बाद नारीत्व का सौदा पौन रुपये में करने वाली स्त्री के प्रति क्रोध का भाव नहीं उभरता। उसे इस दयनीय आर्थिक, असहायावस्था में पहुंचाने वाले समाज और गरीबी के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों पर विचार करने को हम विवश हो जाते हैं। व्यक्ति की इस दयनीय अशक्तता और घटना चक्र में पिस रहे प्राणियों के प्रति हमारी सहानुभूति उभरती है। केवल शब्दों द्वारा समाज-परिवर्तन संभव नहीं, सामाजिक अन्याय, विदेशी सत्ता द्वारा किए जा रहे आर्थिक शोषण और सब ओर व्याप्त असहायावस्था के प्रति हमारा ध्यान आकृष्ट करने में कहानी समर्थ होती है।

पुदुमैपित्तन की एक और प्रसिद्ध कहानी "कडकुळुम् कन्दस्वामियुम्" (ईश्वर और कन्दस्वामी पिळ्ळै) एक उत्कृष्ट कहानी मानी जाती है। मानवों के कार्यकलाप का निरीक्षण-परीक्षण कर उसे समझने का लक्ष्य लेकर भगवान् स्वयं मर्त्यलोक में उतर आते हैं। सब प्रकार से घूम फिरकर देखने और अनुभव करने के बाद अपने को थका हारा अनुभव करते हैं। वे अंत में कन्दस्वामी पिळ्ळै (पिल्लै-उच्चारण) के समक्ष स्वीकार करते हैं — हम आप मानवों को दूर खड़े होकर वरदान दे सकते हैं पर आप लोगों के बीच जीवनयापन करना दुष्कर लगता है। "अपने जाने-माने पुराने पेशे (सृजनकार्य) से यहां मर्त्यलोक में आजीविका नहीं चलाई जा सकती"। इस कहानी को लेकर भक्तों के आक्रोश का उत्तर लेखक इस प्रकार देता है — "उनका आक्रोश इसलिए है कि मैं उनके द्वारा रुचिपूर्वक स्थापित शिला-प्रतिमाओं के बीच में से उनके आराध्य देव को चुपचाप निकालकर शहर के बीचों बीच ले आया। यदि मैं उन्हें मिल गया तो मुझे सूली पर चढ़ाकर वे प्रायश्चित करेंगे। यदि "ईश्वर" स्वयं कन्दरस्वामी पिळ्ळै के साथ घूमना चाहते हैं तो मेरा क्या दोष है? मैं कैसे गलत हो गया!"

उनकी एक कहानी एक दीन-हीन वृद्धा "मुत्ताचि" और डाकू "सन्गुतेवन्" के हृदय की सूक्ष्म भावनाओं का विवेचन करती है। अपनी एकमात्र पुत्री के विवाह के लिए पूरी शाम बैठकर वह वृद्ध, निर्धन स्त्री सुनार "तन्गवेलु असरी" से सोने के झुमके बनवाकर अंधेरा होने के बाद जंगली मार्ग से अपने गांव लौट रही है। वह जानती है कि इस क्षेत्र में डाकू "सन्गुतेवन्" का आधिपत्य है। उसकी डाकू से भेंट होती है, डाकू को पहचाने बिना वह उसकी निंदा करती है पर बदले में डाकू उसकी पुत्री के विवाह के लिए सौ रुपये के सिक्कों की थैली भेंट करता है। अपनी विचित्र भाग्यस्थिति पर न वह बोल पाई, न प्रतिक्रिया कर पाई; वह अत्यंत भयभीत, तीव्रगति से, बिना मुड़े सीधी गांव की ओर चलती गई।

निर्धन, असहाय वृद्धा को अपनी पुत्री की कितनी चिंता है, इसका संकेत लेखक ने कहानी के प्रारंभ में किया है — "हम जानते हैं कि वृथा पुराने रीति-रिवाजों को सामाजिक रूढ़ियों में केवल निर्धन और पददलित ही फंसे हुए हैं। हमारा हिंदू समाज आयु प्राप्त कन्याओं को, विशेषतः इस वर्ग की कन्याओं को, देर तक अविवाहित नहीं रहने देता। इस प्रकार से तो अविवाहित लड़की की स्थिति बाल-विधवा से भी अधिक दयनीय है। विधवा तो अपमानित और लांछित हो जाती है पर "कन्या" को तो लांछन और सामाजिक तिरस्कार की सूली पर प्रताड़ित किया जाता है। सामाजिक रूढ़ियों का अत्याचार अमीर लोगों के लिए नहीं क्योंकि वे तो समाज के कायदे-कानून से परे "देवता" लोग हैं।"

बोध प्रश्न

11) पुदुमैपित्तन का मूल नाम क्या है? (सही उत्तर के समाने (√) का निशान लगाइए)

क) वल्लतोल ( )

ख) कल्कि ( )

ग) चो. वृद्धाचलम् ( )

घ) कुमार स्वामी ( )

12) पुदुमैपित्तन की कहानियों की तीन विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

क) .....

ख) .....

ग) .....

13) पुदुमैपित्तन की तीन कहानियों का नामोल्लेख कीजिए।

क) .....

ख) .....

ग) .....

11.5 सारांश

इस इकाई में आपने आधुनिक तमिल गद्य साहित्य-उपन्यास और कहानी का परिचय प्राप्त किया। इसमें हमने उपन्यासकार के रूप में कल्कि और कहानीकार के रूप में "पुदुमैपित्तन" का अध्ययन किया।

उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में तमिल साहित्य में आधुनिकता का स्वर उभरने लगा था। इसलिए हम इस काल के प्रमुख रचनाकारों की रचनाओं में सामाजिक कुरीतियों का निषेध देख सकते हैं।

आधुनिकता के आगमन के साथ-साथ उपन्यास और कहानी साहित्य का उद्‌भव भी हुआ। यथार्थवाद आधुनिक अवधारणा है और इसी पर उपन्यास और कहानी विधा आधारित है।

तमिल का पहला उपन्यास **"प्रताप मुदलियार चरित्रम्"** है। इसके रचनाकार वेदनायकम् पिल्लै हैं। बी.आर. राजम अय्यर, गुरूस्वामी शर्मा आदि तमिल में लिखने वाले अन्य महत्वपूर्ण भारतीय उपन्यासकार है। कल्कि ने तमिल उपन्यास साहित्य को शीर्ष पर पहुंचा दिया। "पोन मानकरडु", "सोलैमलै इलवरसि", "त्यागभूमि", "पार्तिपन् कनवु", आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं। उन्होंने सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास लिखे। उन्होंने अपने उपन्यासों के माध्यम से नवजागरण का शंखनाद किया, प्राचीन धरोहर को सम्मान प्रदान किया और अंग्रेजी शासन का विरोध किया।

तमिल कहानी साहित्य में पुदुमैपित्तन् का नाम अविस्मरणीय है। वे यथार्थवादी दृष्टिकोण लेकर कहानी-क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। उनकी कथा में एक सहज प्रवाह है। उन्होंने अपनी कहानियों में नारी जाति पर होने वाले अत्याचारों पर प्रहार किया है। वे प्रारंभ से ही सामाजिक सुधार की प्रवृत्ति को लेकर कहानी क्षेत्र में आए। उन्होंने अपनी कहानियों में दलित एवं निम्न वर्ग की पीड़ा को अभिव्यक्त किया है। उनकी प्रमुख कहानियां हैं — "शाप विमोचनम्", "आणमै", ईश्वर और कन्दस्वामी पिल्लै" आदि।

11.6 शब्दावली

अनन्त	—	जिसका कोई अंत न हो
अविस्मरणीय	—	जिसे भुलाया न जा सके
आह्लादित	—	खुश
जनश्रुति	—	लोगों से सुनी बात
तद्युगीन	—	उस युग की
त्वरित	—	जल्दी
दुर्दमनीय	—	जिसका दमन न किया जा सके
प्रज्ञा	—	बुद्धि
प्रसूत	—	उत्पन्न
प्रस्तर-खण्ड	—	पत्थर का टुकड़ा
प्राणवन्त	—	जीवंत
भग्नावशेष	—	खंडहर, टूटा हुआ अवशेष
भित्ति	—	दीवार
शनैः शनैः	—	धीरे-धीरे
शाश्वत	—	जो सदा कायम रहे

11.7 उपयोगी पुस्तकें

1) हिंदी और तमिल के आधुनिक गद्य का विकास, सागर विश्वविद्यालय का पी.एचडी. उपाधि के लिए स्वीकृत, शोध प्रबंध (1967), लेखिका : वे. सौन्दरवल्ली।

2) "तमिल साहित्य एक झांकी : डॉ. एम. शेषन्।

11.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) इटली के रॉबर्ट डी. नोबिली (तत्वबोधन स्वामी), डॉ. उ.वे. स्वामिनाथ अय्यर।

2) पादरी बिशि का "परमार्थ गुरूविन् कदैहळ्" — कल्पना-मिश्रित यथार्थ कहानियां।

3) वेदनायकम् पिल्लै ने 1876 ई. में "प्रताप मुदलियार चरित्रम्" रचा। यह तमिल का प्रथम उपन्यास माना जाता है।

4) बी.आर. राजम अय्यर ने 1893 ई. में "कमलाम्बाल चरित्रम्" विवेक-चिन्तामणि" पत्रिका में धारावाहिक रूप में प्रकाशित करवाना प्रारंभ किया।

5) सामाजिक पिछड़ेपन के कारणों का विवेचन, रूढ़िवादी जीवनदृष्टि, सड़ी-गली परम्पराओं के प्रति विद्रोह का स्वर कल्कि-पूर्व उपन्यासों में प्रमुख विषय बना। अशिक्षा, अंधविश्वास, नारी की दयनीय दशा विशेषतः बाल-विवाह और विधवा-विवाह का न होना आदि समस्याओं का चित्रण इन उपन्यासों में हुआ। जासूसी उपन्यासों में अलौलिक घटनाएँ, रहस्यापूर्ण संदर्भों को प्रमुखता मिली।

6) रा. कृष्णमूर्ति "कल्कि" नाम से विख्यात हुए।

7) "त्यागभूमि", अलै ओसै।

8) पार्तिपन् कलवु (पार्तिप का सपना), शिवकामियिन् शपदम् (शिवकामी की शपथ)।

9) सामाजिक उपन्यासों के माध्यम से "कल्कि" ने अपने युग की संस्कृति, शिक्षा, रीति-रिवाज, राष्ट्रीय आंदोलन, ग्राम एवं नगर का जीवन, अंग्रेजी सरकार के अत्याचार, असहाय जन-समाज की दयनीय दशा का चित्रण किया है। मार्क्सवाद और गांधी के असहयोग आंदोलन के संदर्भ में अपने युग की राजनीतिक विचारधारा का परिचय दिया है।

10) ऐतिहासिक उपन्यासों को साधन बनाकर तमिल प्रदेश के गौरवपूर्ण इतिहास को जीवंत रूप में चित्रित करने में "कल्कि" सफल रहे हैं। सांस्कृतिक दृष्टि और प्राचीन युग की विशेषताओं, कला, साहित्य, आदि के वर्णन द्वारा जन-जागरण का यह असाधारण प्रयास था। आत्म-विश्वास और आत्म-गौरव की भावनाओं को विकसित करने, मानवीय संवेदनाओं का सूक्ष्म चित्रण, राष्ट्र की बलिवेदी पर न्यौछावर होने की भावना का विकास "कल्कि" के ऐतिहासिक उपन्यासों का लक्ष्य था।

11) ग).

12) क) यथार्थवादी दृष्टिकोण, ख) सहज प्रवाह, ग) अनुकूल भाषा का प्रयोग।

13) क) शाप विमोचनम्, ख) आणमै, ग) ईश्वर और कंदक स्वामी पिल्लै।

इकाई 12 मलयालम साहित्य-I

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य
12.1 प्रस्तावना
12.2 राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण—केरल के सन्दर्भ में
  12.2.1 मलयालम भाषा और साहित्य
12.3 कवि वल्लतोल
  12.3.1 जीवन परिचय
  12.3.2 काव्य यात्रा के पड़ाव
12.4 वल्लतोल की कविता के विभिन्न आयाम
  12.4.1 राष्ट्रीय आन्दोलन
  12.4.2 आज़ादी के महत्व की पहचान
  12.4.3 धार्मिक मैत्री का सन्देश
  12.4.4 जाति-पाँति की भर्त्सना
  12.4.5 प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति लगाव
  12.4.6 नारी जागरण का स्वर
  12.4.7 आर्थिक असमानता के प्रति आक्रोश
  12.4.8 शिक्षा और कला का महत्व
12.5 काव्य वाचन (मेरे गुरूदेव)
  12.5.1 पाठ
  12.5.2 भावार्थ
  12.5.3 विश्लेषण
12.6 सारांश
12.7 शब्दावली
12.8 उपयोगी पुस्तकें
12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई में मलयालम के प्रसिद्ध कवि वल्लतोल का परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है। इसे पढ़ने के बाद आपः

- केरल में व्याप्त राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण का उल्लेख कर सकेंगे,
- कवि वल्लतोल के जीवन वृत्त और कृतित्व को रेखांकित कर सकेंगे,
- वल्लतोल की कविता के विभिन्न आयामों को व्याख्यायित कर सकेंगे,
- वल्लतोल की कविता "मेरे गुरूनाथ" का वाचन कर उसका भावार्थ स्पष्ट कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

पिछली दो इकाइयों (10 और 11) में आपने तमिल साहित्य का परिचय प्राप्त किया। इस इकाई और इसके बाद वाली इकाई (13) में हम आपको मलयालम साहित्य से अवगत कराने जा रहे हैं। तमिल साहित्य के समान मलयालम साहित्य में भी नवजागरण और राष्ट्रीयता चेतना के तत्व स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। वल्लतोल और कुमारनाशान जैसे साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का प्रचार-प्रसार किया। प्रस्तुत इकाई में हम वल्लतोल की साहित्यिक उपलब्धियों की चर्चा करने जा रहे हैं।

यह पाठ्यक्रम नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना से संबद्ध है, अतः इस इकाई के आरम्भ में केरल में व्याप्त नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना पर सर्वप्रथम प्रकाश डाला गया है। इस क्रम में इस दौरान हुई रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है।

कवि वल्लतोल की कविता के विभिन्न आयामों से परिचित होने के पूर्व आपके लिए कवि का जीवन परिचय प्राप्त करना जरूरी है। इसके अतिरिक्त उनकी काव्य-यात्रा में आये पड़ावों की भी आपको जानकारी होनी चाहिए। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर इस इकाई में कवि वल्लतोल के जीवन और काव्य का सामान्य परिचय प्रस्तुत किया गया है।

वल्लतोल बहुमुखी प्रतिभा वाले कवि थे। उनकी कविताओं में राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण का स्पष्ट स्वर सुनाई पड़ता है। उनकी कविताओं में नारी का दर्द भी प्रस्फुटित हुआ है और आर्थिक असमानता पर चोट भी की गई है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से धार्मिक मैत्री का संदेश भी दिया है और जाति व्यवस्था की भी निन्दा की है। उनकी कविताओं में प्राचीन संस्कृति के प्रति उनका मोह स्पष्ट रूप से व्यक्त हुआ है। इसके साथ-साथ उन्होंने शिक्षा और कला के महत्व का प्रतिपादन करते हुए सांस्कृतिक उत्थान में इनके योगदान को स्वीकार किया है। इस प्रकार इस कवि की अनेक प्रकार की अभिव्यक्तियाँ हैं, जिन पर हमने इस इकाई में प्रकाश डाला है।

अंतिम भाग में हमने वल्लतोल की एक प्रमुख कविता "मेरे गुरूदेव" का वाचन भी किया है और उसके भावार्थ को समझने और विश्लेषित करने का प्रयास किया है। यह कविता राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रमुख नायक महात्मा गांधी के प्रति समर्पित है।

इस प्रकार इस इकाई में हमने वल्लतोल के कवि व्यक्तित्व को पूरी समग्रता में समझने और समझाने का प्रयास किया है।

12.2 राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण—केरल के संदर्भ में

हम सब एक बात जानते हैं कि उन्नीसवीं शताब्दी पूरे भारत के लिए एक सांस्कृतिक नवजागरण का युग था। भारत के विभिन्न प्रदेशों में इसके प्रेरणास्रोत अलग-अलग रहे हैं। केरल में भी इस युग में कई परिवर्तन हुए। शिक्षा, धर्म, समाज और राजनीति के क्षेत्रों में नवजागरण के स्वर और सन्देश मुखरित हो उठे। अब हमें भिन्न क्षेत्रों में आये परिवर्तन के स्वरूप पर ध्यान देना है।

धार्मिक संगठन : धर्म प्रचार के लिए ईसाई धर्मसंगठन के कुछ प्रतिनिधि केरल आये थे। लंदन मिशन (1805), सालवेशन आर्मी (1813), चर्च मिशन सोसाइटी (1813) और बासल इवांजलिकल मिशन (1841) इनमें मुख्य हैं। इन ईसाई समितियों की गतिविधियों से शिक्षा क्षेत्र में कई परिवर्तन आये। समाज की जड़ता और पाश्चात्य समाज के खुलेपन के बारे में जनता धीरे धीरे सोचने लगी।

कोदुंगल्लर गुरूकुलम केरल का एक सांस्कृतिक केन्द्र था। यह संस्कृत के विद्वानों की एक बड़ी मंडली थी। संस्कृत की वरिष्ठ कृतियों के अनुवाद के ज़रिये वे जनता को ज्ञान लाभ के अवसर प्रदान करने लगे। कुञ्चिक्कुट्टन तेपुरान ने "महाभारत" का मलयालम अनुवाद किया था। इससे सामान्य जनता को बड़ा प्रयोजन मिला।

समाज सुधार और वैचारिक क्रांति को नेतृत्व देने के लिए कई चिन्तक-मनीषी इस युग में सामने आये। श्री नारायण गुरू (1855-1928) इनके अग्रणी थे। अद्वैत वेदांत के वे बड़े विद्वान थे। देवालय, वाचनालय और विद्यालयों की स्थापना करके उन्होंने समाज-सुधार के अभियान को सुगम बनाया; गौतम बुद्ध के समान वे जनता के बीच में रहे। गूढ़ सिद्धांतों की भी व्याख्या उन्होंने जन भाषा में की। जातिगत विचारों और आचारों की उन्होंने भर्त्सना की; "आत्मोपदेश शनकम", "दर्शन माला" जैसी कृतियों में उनके आदर्श अभिव्यक्त हुए। "धर्म जो भी हो मानव का अच्छा होना काफी है", "एक जाति, एक धर्म, एक ईश्वर मानव के लिए" जैसे उनके सिद्धान्त वाक्यों से जनता प्रेरित और प्रभावित हो उठी। कुमारनाशान, डॉ पल्पु, सहोदरन अय्यप्पन, सी.वी. कुञ्ञुरामन आदि उनके अनुयायी बन गये। 1903 में श्री नारायण धर्म परिपालन संघम (SNDP) नामक सामाजिक संगठन की स्थापना गुरू ने की थी। सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन में इस संगठन ने ध्यान दिया।

सहोदरन अय्यपन (1889-1968) ने "सहोदर संघम" की स्थापना की। उन्होंने निम्न जाति के लोगों को निमंत्रित करके "मिश्र भोजन कार्यक्रम" आयोजित किया। "सहोदरन" नामक पत्रिका भी उन्होंने शुरू की। मानव-मानव के बीच समता लाने के लिए वे प्रयत्नरत थे।

अय्यनकाली (1863-1941) एक दूसरे समाज सुधारक थे। उन दिनों जातिच्युत लोगों को आम रास्ते से होकर चलने की आज़ादी नहीं थी। इस रिवाज़ को समाप्त करने की उन्होंने कोशिश की। सवर्णों द्वारा बनाये नियमों का उन्होंने खुले आम उल्लंघन किया।

जाति पांति और छुआछूत के रिवाज़ों का खण्डन करने के लिए एक उच्चकुलोद्भव विद्वान सामने आया। वे चट्टपी स्वामी (1853-1924) थे। "वेदाधिकार निरूपणम" शीर्षक ग्रंथ में उन्होंने उपनिषद् सूक्तियों की स्वतंत्र व्याख्या की। धीवर और पुलय जैसी निम्न जातियों के लोगों की मुसीबतों को दूर करने के लिए के.पी. करूप्पन (1885-1928) ने नेतृत्व दिया। शिक्षा देकर निम्न जाति के लोगों को जगाना करूप्पन का ध्येय था।

नंपूतिरि जाति ऊँची जाति मानी गयी थी। उनके समाज में भी कई बुरे रिवाज कायम हो गये थे। बहुपत्नीव्रत और बालिका विवाह इनमें शामिल थे। स्त्री शिक्षा को अवसर देना, विधवा विवाह को मान्यता देना—ये भी समाज की मांगे बन गयी थी। नंपूतिरि युवकों ने इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए 1905 में "योगक्षम सभा" का गठन किया था। 1907 में "केरलीय नायर समाज" की भी स्थापना हो गयी। शादी, संबंध विच्छेद, विधवा विवाह, पुनर्विवाह आदि मामलों में रूढ़ परंपरा को मानने के लिए कुछ लोग असहमत हो गये थे। ऐसे विद्रोहियों ने इस संगठन की स्थापना की थी।

मुसलमानों में भी इस युग में जागृति आ गयी थी। "इस्लाम धर्म परिपालन संघम" ने इधर नेतृत्व दिया था। अरबी भाषा तथा कुरान पढ़ने के लिए सुविधाएँ मिलना उनकी मांग थी। अब्दुल कादर मौलवी ने मुसलमानों को शिक्षा के क्षेत्र में उन्नति प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त किया था। "कोडुगल्लूर मुस्लिम एक्य संघम" के प्रयास भी इस दिशा में उल्लेखनीय थे।

ब्रह्म समाज : केरल में 1898 में ब्रहमसमाज की एक पहली शाखा कालिकट (कोषिक्कोड) में स्थापित हुई थी। मूर्तिपूजा, अस्पृश्यता और धार्मिक अनाचारों के खिलाफ लड़ने के लिए जनता को इससे प्रेरणा मिली। अय्यतान गोपालन, काराट गोविन्द मनोन और कुञिक्कण्णन गुरूक्कल इस के प्रवर्तक थे। 1913 में "आत्मविद्या संघम" की स्थापना हुई।

जाग उठो अरिबलेश का स्मरण करो
जगाओ आत्मशक्ति, करो अन्याय का विरोध

यही आत्मविद्या संघम का आदर्श वाक्य था। वागभडानंद (कुञिक्कण्णन गुरूक्कल) ने इस की स्थापना की थी।

आर्य समाज : आर्य समाज की प्रथम शाखा केरल में सन् 1922 में स्थापित हुई थी। इसका भी कार्य क्षेत्र कालिकट था। ब्रह्मचारी लक्ष्मण, के.सी. भल्लस और एम बुद्धसिंह इसके प्रारंभिक कार्यकर्ता थे। 1933 में दयानंद सरस्वती की अमर कृति "सत्यार्थ प्रकाश" का मलयालम अनुवाद प्रकाशित हुआ। ब्रह्मचारी लक्ष्मण इसके अनुवादक थे। धार्मिक अनाचारों को दूर करने के उद्देश्य से उन्होंने यह अनुवाद पेश किया था।

कांग्रेस की गतिविधियाँ : 1885 में कांग्रेस की स्थापना से भारत का राजनीतिक वातावरण जागृत हो उठा था अविलंब उसका सन्देश केरल में पहुँचा। 1889 के बंबई अधिवेशन में केरल से बैरिस्टर जी.पी. पिल्लै ने भाग लिया था। 1897 के अमरावती अधिवेशन ने एक केरलीय सर. सी. शंकरन नायर को कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में चुन लिया था।

1916 में कांग्रेस की एक विशेष बैठक पालक्काड़ में संपन्न हुई थी। फिर कालिकट में कांग्रेस की गतिविधियाँ मज़बूत हो गयी। के.पी. केशव मेनोन, के. केलप्पन, यु. गोपाल मेनोन, पोनपाडलु मोयदीन कोया, मुहम्मद अब्दुरहमान आदि कर्मठ व्यक्तियों के नेतृत्व में मलबार में कांग्रेस की जड़ें जम गयीं। ऐनी बसेंट की उपस्थिति और उपदेशों से वे लाभान्वित हो उठे थे।

अवर्णों को मंदिर में प्रवेश देने के लिए वैकम में एक आन्दोलन छिड़ा था। इस प्रसंग में गाँधीजी की मुलाकात हुई थी। यह मुलाकात केरल के सांस्कृतिक इतिहास का एक उज्जवल अध्याय है। उन दिनों केरल तीन भागों में बँटे थे, मलाबार, कोच्ची और तिरूविंताकूर। मलाबार सीधे अंग्रेज़ों के अधीन में था। कोच्ची और तरूविंतांकूर दीवान-शासन के अधीन थे। मलाबार से प्रेरणा पाकर उधर भी कांग्रेस की गतिविधियाँ तेज हो गयी थीं।

12.2.1 मलयालम भाषा और साहित्य

केरल राज्य में बोली जाने वाली भाषा मलयालम के नाम से जानी जाती है। मलयालम की व्युत्पत्ति है मल + आलम अर्थात् पर्वत + स्थल अर्थात् पर्वत शृंखला के समीपवर्ती भाग। प्रारम्भ में यह शब्द प्रदेश वाची था, जो बाद में भाषा के लिए प्रयुक्त होने लगा।

मलयालम साहित्य का वास्तविक आरम्भ कब से हुआ यह तो ठीक-ठीक नहीं बताया जा सकता है, पर इस भाषा में रचे कुछ परम्परागत लोकगीत अवश्य मिलते हैं। इसके बाद "पाट्टुकल" नाम से विशेष साहित्य मिलता है, जो गेय गीतों की परम्परा में लिखे गये हैं। इस प्रकार के गीत काव्यों के बाद "सन्देश काव्य", "चम्पू काव्य" तथा "कृष्ण काव्य" का युग प्रारम्भ होता है।

अन्य प्रकार के साहित्य में "कंथकलि" साहित्य आता है। अनेक प्रबंध काव्य इस शैली में लिखे गये। यह नृत्य और नाटक की मिली जुली शैली है। इस साहित्य की धारा में कोट्टयत्तु केरल वर्मा राजा, अ.न. राजा, उण्णायि वारियर आदि नाम उल्लेखनीय हैं।

गद्य साहित्य का आरंभ केरल वर्मा वलिय तथा राजराज वर्मा ने किया। इन्होंने अनेक लक्षण ग्रंथ लिखे और पाठ्य पुस्तकों की रचना की। अन्य कवि थे : के.सी. केशवपिल्लै, नटूवम् नंपूतिरी, कु. नारायण मेनन।

आधुनिक कविता में नयी धारा के प्रवर्तक आशान, उल्लूर तथा वल्लतोल थे। इन तीनों ने आधुनिक काल की नींव डाली। ये साहित्यकार राष्ट्रीयता और नवजागरण से प्रभावित और प्रेरित थे। यह युग महाकाव्यों का युग माना जाता है।

कथा साहित्य में सर्वश्री तकषि शिवशंकर पिल्लै, केशवदेव, वैकम मुहम्मद वशीर, एस.के. पोट्टेकाट तथा पी.सी. कुट्टिकृष्णन "उरूब" के नाम उल्लेखनीय हैं।

नाटक के क्षेत्र में कुट्टमन्तु, कु.कु. कुरूप तथा वेलुनायर प्रमुख हैं। आलोचना के क्षेत्र में केसरी, जोसफ मुंडशेरी. कृष्णपिल्लै, सुकुमार अषीकोंड आदि का नाम लिया जा सकता है।

हिंदी प्रचार

सन् 1918 में मद्रास में दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा की स्थापना हुई थी। गांधी जी के मार्गदर्शन सभा ने दक्षिण भारत में हिंदी प्रचार के लिए कदम उठाया। देवदास गांधी जी को सभा-संचालन का विशेष दायित्व भी दिया गया था। हिंदी के माध्यम से पूरे भारत को जानने का वातावरण बनाना हिंदी प्रचार एक लक्ष्य था। केरल से कई छात्र मद्रास जाकर हिंदी सीखने लगे। सभा के पाठ्यक्रम में बंगला, और मराठी से हिंदी में अनूदित किताबें भी शामिल थीं। यों इन छात्रों में सर्वभारतीयता की भावना दृढ़ बन गयी।

पत्र-पत्रिकाएँ

राष्ट्रीय आंदोलन के संदेश को सामान्य जनता तक पहुंचाने के लिए कई पत्र-पत्रिकाएँ मलयालम में प्रकाशित होने लगी थीं। इनमें "मातृभूमि" का स्थान सर्वथा उल्लेखनीय है। कोषिक्कोड से 1923 में मातृभूमि निकलने लगी थी। कांग्रेस के संदेश वाहक पत्रिका के रूप में "मातृभूमि" का आविर्भाव हुआ था। 1924 में इसी शहर से "अल अमीन" पत्रिका भी निकली। मुहम्मद अब्दुरहमान इसके संस्थापक थे। स्वदेशाभिमानि, "लोकमान्यन", "स्वराज", "युवा भारतम", "भाजे भारतम", "मलयाल राज्यम", "प्रभातम", "महात्मा", "नवजीवन", "केसरी", "प्रबोधनकन", "मलयामल मनोरमा", "दीनबंधु" आदि इस समय की अन्य पत्रिकाएं थीं। सरकार की सख्त पाबंदी के कारण ये पत्रिकाएं अक्सर खतरे में पड़ी थीं। संपादकों को कारावास की सजा भी मिलती थी। हर स्थिति में राष्ट्रहित पर बल देकर जनता को नितांत जागृत बनाने के लिए पत्रिकाएं कोशिश करती रहीं।

आज़ादी के आंदोलन के अवसर पर कुछ सिद्धांत और आदर्शों पर राष्ट्र नेताओं ने बल दिया था। इसका असर साहित्यकारों पर भी पड़ा। विभिन्न विधाओं की कृतियों में राष्ट्रीय आंदोलन का स्वर मुखरित हो उठा।

वल्लतोल नारायण मेनोन राष्ट्रीय भावना के अग्रणी कवि थे। गांधीवादी चेतना को उन्होंने आत्सात किया था। जाति व्यवस्था के कारण दम घुटने वाली मानवीयता का चित्रण कुमारनाशान ने किया। वे श्रीनारायण गुरू के आत्मीय शिष्य थे। भारतीय संस्कृति के उदात्त पहलुओं को उजागर करने में उल्लूर एस. परमेश्वर अय्यर ने बड़ा उत्साह दिखाया। जी. शंकर कुरूप, वेण्णिक्कुल गोपालक्कुरूप, पी. कुञ्जिरामन नायर, के.के. राजा, चंगपुषा कृष्णापिल्लै, एन.वी. कृष्णवारियार, वैलोपिल्ली श्रीधर मेनोन आदि कवियों ने भी राष्ट्र की पुकार को रेखांकित किया था।

कथा साहित्य में भी राष्ट्रीय आंदोलन के लक्ष्यों का चित्रण हुआ था। सांप्रदायिक भेदभावों को भूलने का संदेश इस युग की कथा कृतियों में मिलता है। एस.के. पोट्टेक्काट्ट, वैकम मुहम्मद बशीर, उरूब, केशवदेव, तकषी पोनकुन्नम वर्की, ललितांबिका अन्तर्जन्म आदि लेखकों की कथा-कृतियों में युग सत्य का चित्रण हुआ। इनके स्मरणीय पात्र पाठकों के मन में राष्ट्रप्रेम की भावना जगाते रहे।

के. दामोदरन, वी.टी. भट्टनिरिप्पाड और एम. आर. भट्टनिरिप्पाड के नाटकों ने जनता को सामाजिक यथार्थ के बारे में प्रेरक जानकारी दी। जर्जर आचार और विश्वास को समाप्त करने का संदेश इनके नाटकों से दर्शकों को मिलता रहा। यों जमींदारी शोषण, कट्टर जातिवाद, नारी की परतंत्रता आदि समस्याओं की परिणतियों के बारे में जनता जागरूक हो गयी।

सन् 1913 में भारतीय भाषाओं में पहली बार गांधी जी की जीवनी—"मोहनदास गांधी" मलयालम में प्रकाशित हुई थी। स्वदेशभिमानी रामकृष्ण पिल्लै इसके लेखक थे। इसकी भूमिका में लेखक ने लिखा था कि इस किताब की आमदनी दक्षिण अफ्रिका के भारतीयों के लिए बनायी निधि को समर्पित करने का विचार है।"

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि राष्ट्रीय आंदोलन एक सांस्कृतिक जागरण का परिणाम है। देश की खोयी हुई विरासत, परंपरा और अतीत से प्रेरणा पाकर भविष्य को उज्जवल बनाने का लक्ष्य उसमें प्रबल था। शिक्षा प्रचार, समाज सुधार, इतिहास बोध, पुराण ज्ञान आदि मार्गों से आगे बढ़कर जनता अपनी मंजिल पर पहुंची थी। दार्शनिकों साहित्यकारों, राजनीतिज्ञों और समाज सेवियों को मिल जुलकर काम करने का एक आम मंच राष्ट्रीय आंदोलन के युग संदर्भ ने प्रदान किया। देवालय, विद्यालय, वाचनालय और न्यायालय से उसको समर्थन मिला। साम्राज्यवाद, सामंतवाद, पूंजीवाद और उपनिवेशवाद के दुष्परिणामों से छुटकारा पाने के लिए जनता एकसाथ खड़ी हो गयी। राष्ट्र की उन्नति के लिए दृढ़संकल्प बने साहित्यकारों ने अपनी कृतियों के माध्यम से जनता को मार्गदर्शन दिया। इसके परिणामस्वरूप बीसवीं सदी के मध्य में भारतवासी आज़ादी का अरुणोदय देख सके।

बोध प्रश्न

1) उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान केरल में कौन-कौन से धार्मिक-सामाजिक संगठन सक्रिय थे? (तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए)।

.....

.....

.....

2) राष्ट्रीय आंदोलन के संदेश को जनता तक पहुंचाने वाली मलयालम की पत्र-पत्रिकाओं का उल्लेख कीजिए। (पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

3) राष्ट्रीय आंदोलन के विभिन्न पहलुओं को चित्रित करने वाले मलयालम के कवियों का उल्लेख कीजिए। (तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

.....

12.3 कवि वल्लत्तोल

राष्ट्रीय आंदोलन और सांस्कृतिक नवजागरण को लक्ष्य करके मलयालम में साहित्य-साधना करने वालों में महाकवि वल्लत्तोल नारायण मेनोन का नाम सर्वप्रथम आता है। देशानुराग, सांस्कृतिक गौरव, वेद, पुराण और उपनिषदों की आत्मवत्ता की पहचान, स्वतंत्रता-संग्राम के कर्णधारों के प्रति आदर भावना, अंधविश्वासों पर खुला आक्रमण, शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति, नारी स्वाभिमान, धार्मिकमैत्री, राष्ट्र पताका के प्रति आदर-भावना, खादी का उपयोग, अंग्रेज़ों के प्रलोभन से इंकार आदि तत्व वल्लत्तोल के व्यक्तित्व और कृतित्व की मूलभूत विशेषताएँ हैं। अपने युग की हर समस्या की बारीक पहचान के कारण उनकी कविता में राष्ट्र मानस को सही अभिव्यक्ति मिली है। देश की राजनीतिक, सांस्कृतिक और सामाजिक दुरवस्था के कारणों का विश्लेषण उन्होंने अपने काव्य में किया है। वे वर्तमान के कवि थे। काव्य साधना में वे भविष्योन्मुखी थे। अतीत की अच्छाइयों को उजागर करने का तरीका भी उन्होंने अपनाया था। जनता के साथ रहकर उन्होंने जनजागरण की कविताएँ लिखी थीं। देश की संस्कृति पर पड़ी कालिमा का कारण वे पहचान पाये और उसको मिटाने के लिए मिल जुलकर आगे बढ़ने की प्रेरणा भी वे जनता को देते रहे। परिस्थितियों से तालमेल स्थापित करके समझौतावादी बनना उनकी आदत नहीं थी। बदतर माहौल को बेहतर बनाने के लिए वे रचनारत हुए थे। सक्रियता और निर्भीकता का संदेश उनकी कृतियों में भरा पड़ा है। वल्लत्तोल की कविता जीवन-निषेध की कविता नहीं है। सांस्कृतिक लगाव और जीवनानन्द से उनकी कविता के ताने-बाने बुने गये हैं। दक्षिण भारत के इस सुदूर कोने में रहकर, इधर के लोगों में वे विशाल भारत की स्वतंत्रता का मंत्र फूँक रहे थे। उनका आह्वान था कि जब भारत का नाम सुनते हैं हमारा अंतरंग स्वाभिमान से ओत-प्रोत होना चाहिए। देशानुराग उनके काव्यवांगमय की आधारशिला है।

वल्लत्तोल की कविता की विकास-यात्रा में कुछ स्पष्ट पड़ाव देख सकते हैं। उसमें समय के अनुसार परिवर्तन आया है। किन्तु यह परिवर्तन पतन का द्योतक नहीं है, वह विकास का परिचायक है। उनकी कविता की समग्र शोभा और शक्ति को समझने के लिए उनकी जीवन परिस्थितियों की पहचान आवश्यक होगी। स्वतंत्रता-संग्राम का युग उनकी काव्य साधना का वैभवकाल था। श्लोक और स्तोत से आरंभ करके अनुवाद तक वे पहले पहुंच गये थे। फिर वे रोमांटिक काव्य धारा के सौंदर्य के चितेरे बन गये थे। उसके बाद परिवर्तित युग की मांग पर उनका ध्यान पड़ा था। वे बधिर थे। किन्तु भूखे आदमी की पेट की कंपन को भी उन्होंने पंक्तिबद्ध कर दिया है।

12.3.1 जीवन परिचय

सन् 1879 अक्तूबर सोलह तारीख को नारायण मेनोन का जन्म हुआ था। उस समय के वेट्टत्तुनाडु के पोन्नानी तालुका का मंगलम गांव उनका जन्मस्थान है। यह आज जिला मलप्पुरम के तिरूर तालुका का हिस्सा है। कुट्टिप्पारू अम्मा और दामोदरन इलयतु उनके मां-बाप थे। वल्लत्तोल उनके घराने का नाम है। उधर सम्मिलित परिवार और मातृसत्तात्मक रिवाज़ का प्रचलन था। भले ही आधुनिक शिक्षा का प्रचार इधर हुआ था, यह बालक उससे बिल्कुल वंचित रहा था। इस परिवार के तीन युवकों को कुछ साल पहले अंग्रेज़ी शिक्षा मिली थी। कुछ समय बाद चेचक की बीमारी के शिकार होकर वे मर गये। तब यह विश्वास फैल गया था कि परिवार की उपास्य देवी को अंग्रेज़ी शिक्षा की बात पसंद नहीं आयी थी। युवकों की मृत्यु का यही कारण है। इसके फलस्वरूप बालक नारायण को मां-बाप ने अंग्रेज़ी शिक्षा के लिए नहीं भेजा। उन्हें गुरूकुल शिक्षा दी गयी। कुंत्रन नायर, नारायण के प्रारंभिक गुरू थे। पिता दामोदरन इलयतु ने बेटे को ज्योतिष और संस्कृत का आरंभिक पाठ पढ़ाया। नारायण

के मुख्य गुरू का स्थान मामा रामुण्णि मेनोन को मिला था। पन्द्रह साल की आयु तक वे मामा के शिष्य रहे थे। वैद्य, काव्य और व्याकरण में उनको मामा का प्रशिक्षण मिला था। वैद्य की अपेक्षा साहित्य की ओर उनकी रुचि अधिक थी। भास, कालिदास और भवभूति की कृतियां नारायण मनोयोगपूर्वक पढ़ते रहे। संस्कृत साहित्य की रुचि ने उनमें बाद में काव्य-सृजन में भी दिलचस्पी पैदा की थी।

12.3.2 काव्य-यात्रा के पड़ाव

वल्लत्तोल की प्रारंभिक रचनाएँ ईश्वर स्तोत और श्लोकों की कोटि में आती हैं। मंगल श्लोक, शोक श्लोक, अक्षर श्लोक, आशु श्लोक, काव्यात्मक चिट्ठी, समस्यापूर्ति आदि उनके मनोरंजन के मार्ग बन गये थे। स्वाध्याय से उनकी विद्वत्ता और कांव्य-निर्माण पटुता बढ़ी। पारिवारिक तथा आम सभाओं में, नाटकों के मंचन में भी उनकी दिलचस्पी प्रकट हुई। कंसवर्ध, बालध्रुवचरित, शाकुन्तल, उत्तर रामचरित आदि नाटकों के मंचन में उन्होंने नायक की भूमिका अदा की थी। इन प्रयासों में उन्हें पिताजी का खुला प्रोत्साहन भी मिला था। बाद में केरल कलामण्डल की स्थापना करने के लिए वल्लत्तोल को इसी से प्रेरणा मिली होगी। गांव के छात्रों को एक सांस्कृतिक सभा बनाने के लिए भी वल्लत्तोल ने नेतृत्व दिया। "परिष्काराभिवर्धिनी सभा" का आरंभ सन् 1900 में इसी उद्देश्य से हुआ था। युवकों में मातृभाषा प्रेम, समाज-सुधार की तृष्णा और प्रगतिशील विचार पैदा करना इसका उद्देश्य था। भारत के विभिन्न कोनों में शुरू हुए सामाजिक जागरण के स्पन्दन की जानकारी तब तक वल्लत्तोल को मिल चुकी थी। "परिष्काराभिवर्धिनी" सभा की खिल्ली उड़ाने के लिए कुछ लोग उद्यत हुए। उन्होंने उसे विदूषक सभा बतायी। वल्लत्तोल इससे निराश नहीं हुए। उन्होंने स्वाभिमान के साथ कहा कि ईश्वर की कृपा मिले तो यह सभा भी कांग्रेस के समान बनेगी। यह बात उल्लेखनीय है कि केरल में कांग्रेस की जड़ें तब तक जमी नहीं थीं। सर्वभारतीयता के स्पन्दन की पहली झलक तब तक वल्लत्तोल में दिखायी देने लगी थी।

सन् 1896 में वल्लत्तोल की मां का देहांत हो गया। सन् 1901 में माधवी अम्मा से उनकी शादी हुई। यह एक प्रेम-विवाह था। वधु के पिता को इस रिश्ते से असंतोष था। सन् 1904 में वल्लत्तोल के पिता और मामा भी मर गये। ये सब उनके जीवन के मोड़ थे। मलयालम की कई प्रमुख साहित्यिक पत्रिकाओं से वल्लत्तोल का संपर्क बढ़ा। "भाषापोषिणी", "कवनकौमुदी", "केरलोदयम", "आत्मपोषिणी" आदि इनमें मुख्य हैं। साहित्यिक पत्रकारिता से जुड़ने के कारण भारत के भिन्न-भिन्न भागों में होने वाली गतिविधियों से भी वे अवगत रहे। भारत की राजनीति में गांधी युग का आरंभ हुआ तो वल्लत्तोल का ध्यान उस पर ज्यादा केन्द्रीभूत हो गया था। उसका प्रभाव उनके काव्य जीवन पर भी पड़ा था।

वल्लत्तोल के विपुल संस्कृत पाण्डित्य से मलयालम साहित्य को दो प्रकार से प्रयोजन मिले हैं। एक उनका पुराण-अनुवाद है और दूसरा पुराण प्रसंगों के आधार पर लिखी स्वतंत्र कविताएँ हैं। राष्ट्रीय आंदोलन को स्फूर्ति देकर कविता लिखते समय उन्होंने पुराणों से प्रेरणा प्राप्त की थी। वाल्मीकि रामायण, पद्म, मार्कंडेय मत्स्य और वामन पुराण, कालिदास का शाकुन्तल, भास के अभिषेक और स्वप्न वासवदत्तम, हालकवि की गाथा सप्तशती आदि वल्लत्तोल की मुख्य अनुवादोपलब्धियाँ हैं।

वल्लत्तोल के खण्ड काव्यों की सूची काफी विस्तृत हैं। "बधिरविलाप", "बंदी-अनिरुद्ध", "गणपति", "शिष्य और पुत्र", "पिता और पुत्री", "कोच्चुसीता", "मग्धलन मरियम", "बापूजी", "एक चिट्ठी अथवा रूग्मी का पश्चाताप", "ऋतुविलास", "विलास तलिका", "शरणामय्यप्पा", "दण्डकारण्य" आदि उनके बहुचर्चित खण्डकाव्य हैं। "चित्रयोगम्" उनका महाकाव्य है।

प्रगीत की विधा में भी वल्लत्तोल ने कई कृतियां लिखी हैं। उनके विभिन्न काव्य-संकलन भी मिलते हैं। "साहित्यमंजरी" के कुल दस भाग हैं। नवां तथा दसवां भाग उनकी मृत्यु के बाद प्रकाशित हुए हैं। उनके अन्य बहुचर्चित काव्य-संकलन हैं "दिवा स्वप्न", "वीर श्रृंखला", "मेरे गुरूनाथ", "परलोक, स्त्री", "अभिवादन", "रूस में", "भारत का रूदन", "विषु अर्चना"।

क्लासिज्म और रोमाटिसिज्म के लक्षण वल्लत्तोल की कृतियों में मिल जाते हैं। वे अपने पूरे काव्य-जीवन में सौंदर्योपासक रहे हैं। उनकी कविता मानव-प्रेम, राष्ट्र प्रेम और प्रकृति प्रेम की त्रिवेणी है। हर एक की अभिव्यक्ति के लिए उन्होंने अलग-अलग कृतियां नहीं लिखी थीं। वे सारे तत्व समवेत रूप में एक ही स्थान पर आते थे। उनकी कविता के राष्ट्रीय स्वर का विश्लेषण करते समय अन्य बातें भी स्वयमेव उससे जुट जायेंगी।

बोध प्रश्न

4) वल्लत्तोल का जीवन-परिचय दीजिए। (दस पंक्तियों में)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

5) वल्लत्तोल की कविताओं की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। (दस पंक्तियों में)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

6) वल्लत्तोल की पाँच रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

क) .....

ख) .....

ग) .....

घ) .....

ङ) .....

12.4 वल्लत्तोल की कविता के विभिन्न आयाम

वल्लत्तोल बहुमुखी प्रतिभा वाले कवि थे। उनकी कविता में विभिन्न रंग देखने को मिलते हैं। इस भाग में हम वल्लत्तोल की कविता के इन्हीं विभिन्न आयामों की चर्चा करने जा रहे हैं।

12.4.1 राष्ट्रीय आंदोलन

राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ने की प्रेरणा उन्हें कुछ विशेष परिस्थितियों से मिली थी। वह रातों रात का परिवर्तन नहीं था। मन की उत्सुकता पहली बात थी। साहित्यिक पत्रकारिता से जुड़ने पर उस भावना को और भी तीव्रता मिल गयी। इतिहासवेत्ता सरदार के.एम. पणिक्कर, से प्राप्त चिट्ठियों से उन्हें देश-विदेश की गतिविधियों की जानकारी मिलती रही। समानधर्मी कवि नलप्पाट्टु नारायण मेनोन अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों का सार समझ सके। वल्लत्तोल आस्तिक थे। इसलिए अन्य आध्यात्मिक नेताओं और उनकी कृतियों की भावभूमि वल्लत्तोल आसानी से समझ सके। "परिष्कारभिवर्धिनी सभा" के कार्यकलापों से भी उनका मानसिक विकास हुआ। फिर गाँधी की आंधी से भारतीय राजनीति का पूरा वायुमण्डल जोशीला और क्रियाशील बन गया था। पुराण की ओर मुड़कर राष्ट्रप्रेम और सांस्कृतिक उत्कर्ष की गौरव गाथाएँ आलाप करने की प्रेरणा भी उन्हें मिली थी। मालबार के कोने-कोने में कांग्रेस की गतिविधियां शुरू हो गयी थीं। अहिंसा के आचार्य गांधी जी को उन्होंने अपना परम आदरणीय गुरूनाथ मान लिया था। 1928 के कलकत्ता कांग्रेस में वल्लत्तोल ने भाग लिया। अन्य यात्राओं से जुड़कर शांतिनिकेतन में जाकर रवीन्द्रनाथ टैगोर से वे मिले थे। इलाहाबाद जाकर जवाहरलाल नेहरू से भी वे मिले थे। देश के भिन्न-भिन्न कोनों में छिड़े राजनीतिक-सांस्कृतिक आंदोलनों का प्रभाव भी उन पर पड़ा। फिर वह उनके यौवन का समय भी था। इसलिए उमंग, उत्साह और खोज उन्हें उस समय ज्यादा मिलते रहे। वेणमणि और कुञ्जुकुट्टन तंपुरान जैसे कवियों की काव्य-शैली में वल्लत्तोल ने पहले कविताएँ लिखी थीं। किन्तु बाद में राष्ट्रीय-आंदोलन से जुड़ने पर उनकी कविता की धुरी बहुत कुछ बदल गयी थी। राष्ट्रीय-आंदोलन की झांकियां प्रस्तुत करने वाली उनकी बहुचर्चित कविताओं के बारे में यहां हम चर्चा करेंगे।

12.4.2 आजादी के महत्व की पहचान

स्वतंत्रता के महत्व के संबंध में वल्लत्तोल ने कुछ कविताओं में स्पष्ट उल्लेख किया है। "किलिकोंचल" (चिड़िया की तुतली बोली) में पिंजरे में बंद एक तोते के आत्मकथन के रूप में कुछ मार्मिक पंक्तियां मिलती हैं। उसका भावार्थ यही है कि बंधन कभी सोने के पिंजरे में भी हो सकता है। तब भी बंधन बंधन ही ठहरता है। अर्थात् बाहरी वैभव से आंतरिक बंधन की तीव्रता में तनिक भी शांति महसूस नहीं होगी।

स्वतंत्रता संग्राम के कर्मठ नेता दादाभाई नौरोजी के निधन के अवसर पर लिखी गयी कविता में आजादी का महत्व रेखांकित हुआ है। उस कविता में श्रद्धांजलि और उद्बोधन दोनों हैं। उधर बताया गया है कि वीरवर देशप्रेमियों के लिए स्वर्ग भी तृण के समान है। जगत् में उन्हें एक ही बात प्रिय है। आजादी ही उनके लिए साक्षात् मोक्ष है।

"कर्षकजीवितम्" (कृषक जीवन) कविता में स्वतंत्रता को अर्थपूर्ण बनाने का सुझाव मिलता है। उसकी केंद्रीय पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार है —

अगर हम सौभाग्य, संतोष और स्वतंत्रता चाहते हैं तो हमें कालानुकूल, संस्कारपूर्वक कृषक जीवन में सुधार लाना होगा। कृषकों के जीवन स्तर को ऊपर उठाने का उस समय का यह उद्बोधन कवि की दूरदृष्टि का सही परिचायक है।

गांधी जी उस समय की भारतीय राजनीति के अग्रणी नेता बन गये थे। सत्य, अहिंसा और निर्भीकता के हथियार लेकर अंग्रेज साम्राज्यवादियों के खिलाफ लड़ने के लिए वे कर्मक्षेत्र में आये थे। उनके विराट् व्यक्तित्व ने वल्लत्तोल के मन को आकृष्ट किया था। उनसे व्यक्तिगत भेंट होने के पहले ही वल्लत्तोल ने उनके बारे में एक कविता लिखी थी। "कालम मारी" (जमाना बदल गया) शीर्षक कविता एक विस्मयजनक प्रश्न के साथ शुरू होती है — "पूर्व दिशा का यह कृशगात्र है कौन?" गांधीजी के पदार्पण के फलस्वरूप भारत की सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक क्षेत्रों में आये परिवर्तनों का विश्लेषण भी इस कविता में हुआ है —

अलस बन गया प्रबुद्ध, मलिन बन गया विशुद्ध
कलुष बन गया प्रसन्न, बदल गया ज़माना उतना

सन् 1921 में एक महत्वपूर्ण घटना घटी थी। वेल्स राजकुमार के भारत-आगमन का समाचार चारों तरफ फैल गया था। उनकी ओर से कवि वल्लत्तोल के सम्मान करने का प्रस्ताव हुआ। वल्लत्तोल

इस प्रलोभन के जाल में नहीं फंसे। अंग्रेज सरकार के पुरस्कार लेने से इंकार करने के लिए उनके सामने एक स्पष्ट कारण था। वल्लत्तोल ने बताया कि मेरे राष्ट्रीय आचार्य गांधी जी के बंदी रहने के अवसर पर इस ढंग के हर्षोल्लास में भागीदार होने के लिए मेरा मन बिल्कुल नहीं मानता है। कवि की इस कर्मठ मनोवृत्ति के कारण वे स्वतंत्रता प्रेमियों के आदर के पात्र बन गये। सन् 1922 में "मेरे गुरूनाथ" (एण्टे गुरूनाथन) शीर्षक कविता लिखी थी। भारतीय भाषाओं में गांधी जी के विराट व्यक्तित्व के बारे में लिखी गयी कविताओं की यह मुकुटमणि रहेगी। पारदर्शी ईमानदारी और हार्दिक आदर से उन्होंने लिखा कि मेरे गुरूनाथ के लिए पूरा संसार एक घराना है। सारे पौधे, घास, कीड़े-मकोड़े सब उनके परिवार के हिस्से हैं। उत्सर्ग उनकी उपलब्धि है। लघुता ही उनकी प्रभुता है। विश्व के समस्त मानव-प्रेमी महात्माओं के जीवन में उदात्त अंश गांधी जी के जीवन में घुल मिल गये हैं। भगवत्गीता को जन्म देने वाली यह भूमि ही इस ढंग के एक कर्मयोगी को जन्म दे सकती है। गंगा प्रवाह के इस देश में ही इस ढंग का मंगलदायक कल्पृक्ष पनप सकता है। सन् 1925 में वैकम सत्याग्रह के अवसर पर गांधी जी केरल आये थे। तब वल्लत्तोल को उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इस दर्शन पर "पापमोचन" शीर्षक कविता उन्होंने लिखी। गांधी भक्त बनने के बाद उन्होंने सिर्फ खादी का कपड़ा ही पहन लिया था। खादी वस्त्र पहनने के उद्बोधन के साथ उन्होंने सन् 1927 में एक मार्मिक कविता लिखी थी।

सन् 1930 की बात है। कुछ उत्साही युवकों ने कोषिक्कोड़ में एक "स्वदेशी प्रदर्शनी" का आयोजन किया। झण्डा फहराकर उद्घाटन करने के लिए आयोजकों ने वल्लत्तोल को निमंत्रित किया। कवि ने उसका सहर्ष स्वागत किया। समारोह का दिन समीप आया तो आयोजकों को धमकी दी गयी कि झण्डा फहराने की कोशिश छोड़ दें। कुछ हितैषियों ने वल्लत्तोल से बताया कि खतरा मोल लेने के प्रयास से आप पीछे हटें। किन्तु वल्लत्तोल ने इस वक्त दृढ़ स्वर में बताया कि हमारा झण्डा फहराना अपराध है तो हम सब एक साथ जेल जा सकते हैं। वे अपने निर्णय से विचलित नहीं हुए। समारोह में मुख्य अतिथि के रूप में वे आये तो उधर पुलिस खड़ी थी। उन्होंने झण्डा फहराया और एक ओजस्वी भाषण दिया। उनका पताका गीत का आलाप भी हुआ। वल्लत्तोल का यह गीत गाकर ही उन दिनों स्वतंत्रता संग्राम के योद्धा जेल जाते थे।

12.4.3 धार्मिक मैत्री का संदेश

धार्मिक मैत्री और जातीय सद्भाव के आदर्शों पर बल देकर भी वल्लत्तोल ने कविताएँ लिखी थीं। "मग्दलन मरियम" में ईसा के व्यक्तित्व की पावनता और सात्विकता का हृदयस्पर्शी वर्णन हुआ है। पतितों के जीवन को पावन बनाकर ईसा ने महत् जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया है। "अल्लाह" में वल्लत्तोल ने पैगम्बर मुहम्मद के विराट और विशुद्ध व्यक्तित्व को उजागर किया है। पैगम्बर का उपदेश सुनकर इस्लाम धर्मावलम्बी बनने वाली फातिमा के पुण्य चरित को "जन्मकुण्डली को सुधारा" (जातकम् तिरूत्ती) शीर्षक कविता में जगह मिली है। (वल्लत्तोल मानते थे कि सारे धर्मों में एकता का संदेश है। लेकिन धर्मावलम्बी ही उसमें विभेदों की सृष्टि करते हैं)।

स्वामी श्रद्धानन्द हिन्दू-मुस्लिम सिख एकता के लिए प्रयत्नरत थे। उनकी हत्या का दारुण समाचार पढ़कर वल्लत्तोल ने "पारवश्यम" शीर्षक कविता लिखी थी। उधर उन्होंने लिखा है कि सारे धर्म एक से हैं किन्तु हम धर्मभक्त विभेदशील हैं। हम ज्योति से तम को बनाते हैं।

12.4.4 जाति-पाँति की भर्त्सना

भले ही वे धर्म के महत्व को मानते थे तथापि धर्म में जड़ पकड़ने वाले अनाचारों को वे बर्दाश्त नहीं कर पाते थे। जाति पिशाच को दूर भगाने का आह्वान उनकी कविता में मिलता है। एक नौका यात्रा (ओरू तोणि यात्रा) में निम्न जाति के एक आदमी का वर्णन है। जलयात्रा के बीच संध्या ढलती है। तब केवट रामायण के परायण के लिए सवर्ण मेधावी से विनती करता है। अंत में कवि जाति के खोखलेपन का पर्दाफाश करते हैं। इस पुण्य वेला में युगों पहले एक मछुवारिन ने एक ब्रह्मर्षि को जन्म दिया था और आज उस भूमि में मनुष्य और मनुष्य के बीच का संपर्क कैसे अधर्म बन गया है। "परम शुद्ध" (शुद्धरिल शुद्धन्) शीर्षक कविता में कवि ने जातिगत मिथ्याभिमान पर प्रहार किया था। एक अभिजात नायर के घर को रात में आग लगी थी। तब पूरे इलाकेवाले इकट्ठे होकर घर को आग से बचाने के प्रयत्न में डूबे। वे कुएँ से पानी ले रहे थे। घर के मालिक ने तब देखा कि

इधर इकट्ठे हुए लोगों में निम्न जाति के लोग भी हैं। उनका जातीय मिथ्याभिमान खौल उठा। उन्होंने घर के "रक्षकों" को चेतावनी दी कि वे पानी को अशुद्ध मत बनावें। अंत में कवि उस पर व्यंग्य-बाण छोड़कर कहते हैं :

"हे नायर महानुभाव, आप हैं परमशुद्ध
घर जाने से क्या, बचाया है आपने अनर्घ जाति को"

"जाति का प्रभाव", "भक्ति और विभक्ति" आदि कविताओं में जातिगत शिथिल विचारों की भर्त्सना की गयी है। "हमारा उत्तर" (नम्मुडे-मरूपटि) एक विचारणीय कविता है। कुमारनाशान ने एक बार लिखा था भारतवासी जाति-धर्म की प्रतिस्पर्धा में डूब गये हैं। ऐसी स्थिति में स्वराज्य की क्या जरूरत है? इसी भाव को मन में रखकर वल्लत्तोल ने यह कविता लिखी थी। उधर उन्होंने बताया है कि जाति-धर्म के झगड़े से क्या एक देश आजादी के लिए अयोग्य बन सकता है? भाइयों का आपसी झगड़ा, झगड़ा नहीं है। वह सौहार्द्र भाव की छलक है। छुआछूत, सती, जन्तुबलि जैसे रिवाज़ों की भी उन्होंने भर्त्सना की है।

12.4.5 प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति लगाव

प्राचीन भारतीय संस्कृति और मूल्यों के उदात्त पहलुओं को अपनाने और आत्मसात करने की प्रवृत्ति वल्लत्तोल के देशानुराग का एक अनिवार्य हिस्सा है। इस कारण से उनको अतीतवादी नहीं मान सकते। वर्तमान की ज्वलन्त समस्याओं से उनका सक्रिय सरोकार था। उनका दृष्टिकोण था कि भूतकाल के तेजपूर्ण धागों से हमें एक सुनहरा भविष्य बुनना है। भारत के अतीत के अधिकांश सौभाग्य वापस आवें। शंकराचार्य, एषुत्तच्छन, पून्तानम, शिवाजी, विवेकानंद, तिलक आदि सांस्कृतिक सारथियों के बारे में लिखी गयी कविताओं में पूर्वजों के व्यक्तित्व की अपूर्वता के प्रति कवि ने अपनी निष्ठा व्यक्त की है। "पुराण" शीर्षक कविता में बताया है कि भारतवर्ष के पुराने ऋषीन्द्र विराट विश्व का शिलान्यास कर रहे थे। इधर कवि ने हमारी संस्कृति को पुष्ट बनाने में भूमिका निभाने वाले सारे आचार्यों और उनकी कालजयी कृतियों का यगोशान किया है। "हमारा उत्तर" में पश्चिम की ओर ताकनेवालों को लक्ष्य करके उन्होंने स्वाभिमान से दावा किया है कि भारत मेरी जन्मभूमि है। इधर के धीर ऋषिश्रेष्ठ मेरे पितामह हैं। ज्ञानरश्मि के भण्डार उपनिषद् और भगवतगीता मेरी कुलविधाएँ हैं। उनके खण्डकाव्यों में चित्रित पात्रों की अभिव्यक्ति में भी पुराण के प्रेरक प्रसंगों की छवि मिलती है।

12.4.6 नारी-जागरण का स्वर

नारियों के स्वातंत्र्य और स्वाभिमान को वल्लत्तोल की कविता में प्रमुखता मिली है। नारी-जागरण राष्ट्रीय आंदोलन का एक अनिवार्य पहलू था। वल्लत्तोल की दृष्टि में स्त्री विशुद्धि का प्रतीक है। स्त्री के स्वातंत्र्य के रास्ते में आयी बाधाओं की आलोचना उन्होंने कुछ कविताओं में की है। "अंतिम पर्ची" (ओडुक्कत्ते कुरिप्पु) में स्त्री को सिर्फ भोग्य सामग्री मानने वाली पुरुष-मनोवृत्ति को कवि ने इधर चेतावनी दी है। नारियों को अपनाने और छोड़ने के अनुकूल बने "गंधर्व प्रणाली" पर कवि ने प्रहार किया है। यह भामा नामक एक प्रेयसी की त्रासदी है। वह प्रेमी के संपर्क में रहकर मां बनने वाली है। प्रेमी उसको छोड़ देता है। बाद में उस प्रेमी को अपने प्रेम-पाश में बांधने के लिए सुभद्रा नामक एक दूसरी तरूणी मिलती है। यह समाचार पाकर भामा आत्महत्या कर लेती है। आत्महत्या के पहले भामा सुभद्रा के नाम एक चिट्ठी लिखती है। उस चिट्ठी के रूप में कवि की रचना हुई है।

"राधा की कृतार्थता" में भी प्रेम की धोखेबाजी में पड़नेवाली एक निरीह नारी की हृदय-व्यथा है। किंतु वह कभी भी प्रेमी-पथ का विघ्न नहीं बनना चाहती है। वह मन ही मन धोखेबाज प्रेमी के मंगल की कामना करती है।

"भारतीय स्त्रियों की भावशुद्धि" में एक कथा वर्णित हुई है। उस्मान खां बादशाह हुमायूँ का सेवक है। बादशाह को रमाने के लिए उस्माक खां एक स्त्री को पकड़ कर लाया। उसने सोचा कि इस स्त्री की खूबसूरती से वशीभूत होकर बादशाह उन्हें विशिष्ट पुरस्कार देगा। किन्तु उस स्त्री ने बादशाह के सामने साफ-साफ बताया कि मैं एक पतिव्रता हूँ और मेरे सतीत्व पर कलंक मत लगाइए। तब बादशाह में धर्मबोध जाग उठा और उसे सुरक्षित वापस भेजने की उन्होंने आज्ञा दी। एक कुलनारी के अपमान करने के अपराध के लिए बादशाह ने सेवक को बंदी बनाने का भी निर्णय लिया। तब स्त्री ने बताया

कि वह अनजाने किया अपराध होगा इसलिए उसे दण्ड मत देना। यह सुनकर भारतीय स्त्री की भावशुद्धि पर बादशाह को गर्व हुआ। "कोच्चुसीता" में भी नारी-सुधार की भावना है। इसमें "देवदासी प्रणाली" के अनुरूप आगे बढ़ने के लिए परिवार से उपदेश मिलने वाली चंपकवल्ली नामक युवती की कथा वर्णित है। एक बार एक बूढ़े को दादी ने उस युवती के पास भेजा। बूढ़े से सोने और पैसे प्राप्त करने के लिए दादी लालायित थी। चंपकवल्ली को इसकी पूर्वसूचना मिली। उसने कमरे में एक स्त्री के आकार में एक बड़ा तकिया ओढ़कर रखा। चंपकवल्ली का उधर से अंतर्धान भी हो गया। जाते समय उसने एक चिट्ठी भी लिखकर छोड़ दी थी। उसमें लिखा था कि चूंकि उसके चरित्र के लिए रक्षा नहीं है इसलिए वह अंतर्धान कर रही है। स्त्री को अंतःकरण की आजादी देने की बात इस कृति में मिलती है। "जाति प्रभाव", "बहिष्कृत अंतर्जन्म", "मद्रास का समुद्रतट" आदि कविताओं में भी स्त्री की परतंत्रता के खिलाफ कवि की प्रखर प्रतिक्रियाएँ देख सकते हैं। नारी-जागरण का संदेश वल्लत्तोल की कविता की एक खूबी रही है। पौराणिक और समकालीन इतिवृत्तों को अपनाकर उन्होंने उसके लिए आवाज उठायी है।

12.4.7 आर्थिक असमानता के प्रति आक्रोश

राष्ट्रीय आंदोलन का लक्ष्य सिर्फ राजनीतिक आज़ादी की प्राप्ति नहीं थी। आर्थिक असमानता को मिटाना भी उसका लक्ष्य था। भारत के दरिद्र-नारायणों के जीवन-स्तर को ऊपर उठाने के लिए भी राष्ट्रीय आंदोलन के नेता दृढ़-संकल्प थे। पूंजीवादी, सामंतवाद और नौकरशाही को समाप्त करके आर्थिक समानता का लक्ष्य भी हासिल करना उनका ध्येय था। गरीबी और शोषण आजादी के दुश्मन हैं। इन लक्ष्यों को भी रेखांकित करके वल्लत्तोल ने कविताएँ लिखी हैं। मेहनतकश लोगों पर कवि की दृष्टि पड़ी थी। किसान, मजदूर, मल्लाह और मछुआरों के बारे में लिखी कविताओं से पता चलता है कि खून को पसीना बनाकर आजीविका चलाने के लिए तरसने, तड़पनेवालों के लिए वल्लत्तोल के मन में सहानुभूति का अमृत था। ज़माने के कठोर यथार्थ से उन्होंने मुँह नहीं मोड़ा था। इस दृष्टि से वे एक जनोन्मुखी कवि थे।

"तिरूर पोन्नानी नदी" शीर्षक कविता में उन्होंने मछुआरों की जीवन की तकलीफों का वर्णन किया है। समुद्र में बहुत सारी संपत्तियां हैं, किन्तु मछली पकड़ने के लिए इनको बहुत देर तक डूबना है।

क्या दारिद्रय भूत की उर है? नारियल के रेशे से काम करने वाले मजदूरों के बारे में उन्होंने उस वक्त लिखा था। ये लोग बहुत गरीब हैं। भूख मिटाने के लिए वे इतनी कोशिश करते हैं कि रीढ़ की हड्डी तक टूट जाती है। किन्तु उसका महत् फल अमीरों को ही मिलता है। शोषण पर प्रकाश डालकर लिखी एक कविता का भाव है—मालिक को रेशमी कपड़ा सिलाकर इनका हाथ थक जाता है। किन्तु इनको मरने के लिए किसी पेड़ का छिलका ही मिलेगा। 1925 में लिखी एक कविता में उन्होंने बताया है कि पापी-प्रभुओं को पंखा चलाने के लिए गरीबों के प्राणरूपी हवा चाहिए। "माफी" (माप्पु) शीर्षक कविता में रेलवे के प्लेटफार्म पर लेटकर अंतिम श्वास लेने वाले एक बदनसीब आदमी का चित्रण हुआ है। उधर पड़ी लावारिस लाश को देखकर कवि के मन में कई विचार उमड़ आते हैं। मालिक वर्ग ने निर्मम होकर कई कमजोरों का रक्त चूस लिया है। यों फेंकी गयी लाशों में से एक यह भी है। मालिक ऐश-आराम से आलीशान अट्टालिका पर बैठा है। किन्तु सौध बनाने वाले मजदूर भूखे गिरकर मर जाते हैं। यह बात स्मरणीय है कि इधर मार्क्सवादी के आविर्भाव के बहुत पहले ही वल्लत्तोल ने आर्थिक-शोषण का चित्रण किया है।

1928 में "प्रयाग स्नान" कविता की रचना हुई थी। कांग्रेस के कलकत्ते अधिवेशन में कवि ने भी भाग लिया था। अधिवेशन के पंडाल में कई किसान और मजदूर जुलूस में आये। कवि को यह दृश्य बहुत प्रेरक लगा। उन्होंने कहा कि इधर गंगा और कालिंदी का संगम हुआ है। कवि ने आह्वान किया कि इन धीर अतिथियों का सादर स्वागत करना सम्मेलन का कर्तव्य है। यानी राजनीतिज्ञ, किसान और मजदूरों को एक ही लक्ष्य की पूर्ति के लिए मिल-जुलकर आगे बढ़ना चाहिए।

12.4.8 शिक्षा और कला का महत्व

वल्लत्तोल ने देश की संस्कृति के व्यक्तित्व को कलंकित करने वाली शिक्षा प्रणाली की खिल्ली उठायी है। उसी प्रकार हर प्रदेश की कला को भी अक्षण्ण बनाये रखने के लिए भी उन्होंने कोशिश की थी।

केरल की कला कथकली के उत्थान के लिए कवि ने "कलामंडलम" की स्थापना की थी। सन् 1939 में वे शांति-निकेतन जाकर टैगोर से मिले थे। उधर कथकली का मंचन भी हुआ। प्राचीन कला के पोषण में डूबे वल्लत्तोल को टैगोर ने बधाई दी थी। रूस में आये परिवर्तनों पर भी उन्होंने ध्यान दिया था। विदेश यात्रा से भी उनका दृष्टिकोण विशाल बनता गया।

वल्लत्तोल की कविता में सौंदर्य, संस्कृति और स्वातंत्र्य का त्रिभुज हम देख सकते हैं। प्रथम दो तत्व उन्हें पारिवारिक परिवेश से मिले थे। तीसरा तत्व युगबोध से मिला था। राष्ट्रीय आंदोलन ने उनके काव्य को एक नया तेवर प्रदान किया। सामाजिक और आर्थिक समता के प्रवर्तक के रूप में उनकी कविता ने भूमिका निभायी। वे चाहते थे कि भारत की पताका आसमान की ऊँचाई में फहरा उठे और देशवासियों का स्वाभिमान भी बढ़े। राष्ट्रप्रेम से ओत-प्रोत काव्य-पंक्तियों से वे जनमानस को पुलकित और प्रभावित कर सके थे। आज़ादी का अरुणोदय भी वे देख पाये थे। उनका काव्य कर्मोन्मुखता और जिजीविषा का काव्य है। 1958 मार्च 13 तारीख को वल्लत्तोल का स्वर्गवास हुआ। देश के इस सुदूर कोने में रहकर समग्र भारत की स्वतंत्रता के लिए उन्होंने अपनी कलम को तलवार बनाया था। प्रणयगीत के कवि को प्रयाणगीत का कवि बनने की प्रेरणा उस युग और समाज से ही मिली थी।

बोध प्रश्न

7) वल्लत्तोल की राजनीतिक सक्रियता पर प्रकाश डालिए। (पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

8) वल्लत्तोल ने अपनी किस कविता में धार्मिक मैत्री का संदेश दिया है। किन्हीं दो का उल्लेख कीजिए (दो पंक्तियों में)

.....

.....

9) "परम शुद्ध" कविता में कवि ने क्या कहना चाहा है? (तीन पंक्तियों में)

.....

.....

.....

10) कवि वल्लत्तोल ने नारी संबंधी दृष्टिकोण का उल्लेख कीजिए। (पाँच पंक्तियों में)

.....

.....

.....

.....

.....

11) "तिरूर पोन्नानी नदी" में कवि क्या कहना चाहता है? (पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास

1) वल्लत्तोल की कविता में राष्ट्र प्रेम किन-किन रूपों में व्यक्त हुआ है। (पंद्रह पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) वल्लत्तोल का आर्थिक असमानता के प्रति आक्रोश किन-किन कविताओं में किस रूप में व्यक्त हुआ है?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12.5 काव्य वाचन

अभी तक आपने कवि वल्लत्तोल के जीवन और उनकी कविता की जानकारी प्राप्त की। हमने आपको वल्लत्तोल के सम्पूर्ण काव्य-संसार के विभिन्न आयामों की झलक दिखाने का प्रयत्न किया। अब आप वल्लत्तोल की एक प्रमुख कविता "मेरे गुरूदेव" या "एण्डे गुरूनाथन" का अध्ययन करेंगे। इस कविता का नागरी लिपि में लिप्यांतरण और हिंदी में अनुवाद दोनों प्रस्तुत किया जा रहा है। इससे आपको

मलयालम और हिंदी भाषा को एक साथ रखकर देखने का अवसर मिलेगा। आप महसूस करेंगे कि हिंदी और मलयालम के बहुत से शब्द एक से हैं। "मेरे गुरूदेव" और "एण्डे गुरूनाथन" को एक साथ रखने पर यह बात स्पष्ट हो जाएगी। काव्य-वाचन करने के बाद कविता का अर्थ स्पष्ट किया जाएगा और उसका विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा। आइए, पहले कविता का अर्थ समझने की कोशिश की जाए।

12.5.1 पाठ

एण्डे गुरूनाथन

1) लोकमे तरवाडु तनिक्की चेड़िकलुम
पुलकलुम पुषुक्कलुम कूडित्तन कुडुंबक्कार,
त्यागमेन्नते नेट्टम ताषमा तान आर्भ्युन्नति
योगवित्तेवम जयिककुन्नु इतेन गुरूनाथन्।

2) तारका मणिमाला चारत्तियाल अतुम कोल्लाम्।
कारणि चलि नीलो पुरण्डाल अतुम कोल्लाम्,
इल्लिह संगम लेपम् एन्निव समस्वच्छम्
अल्लयो विहायस्स अव्वण्णम ऐन गुरूनाथन।।

3) दुर्जन्तु विहीनमां दुर्लभ तीर्थ हृदम्,
कज्जलोल गममिल्लात ओरू मंगलदीपम्
पांपुकला तींडिडात्त माणिक्य महानदी
पाष निषल उंडाक्कात्त पूनिलाव एन आचार्यनां।

4) शस्त्र मेन्निये धर्म संगरम नडत्तुन्नोन,
पुस्तकमेन्ये पुण्याध्यापनम् नडत्तुन्नोन,
ओषध मेन्ये रोगम शमिप्पिप्वन
हिंसा दोष मेन्ये यज्ञम चेयववन एन आचार्यन।

5) शाश्वतं अहिंसथाणु अम्महात्माविन व्रतम,
शांतियाणु अविडेक्कु परदेवता पण्डे,
ओतुमाखण्ड अद्वेहम अहिंसा मणिचट्टम
एतु उडवालिन कोड़ वायत्तला मडक्कात्तु?

6) भार्यये कंडेत्तिया धर्मत्तिन सल्लापंगल
आर्य सत्यात्तिन सदस्सिंगले संगीतंगल
मुक्तितन मणिमय काल तलकिलुक्कंगल
मुट्टुमेन गुरूविण्डे शोभनावचनंगल।

7) प्रणयत्तालो लोकम वेल्लुमी योद्धाविन्नो
प्रणवम धनुस्स आत्मावाशुगम, ब्रह्म लक्ष्यम,
ओंकारत्तेयुम क्रमाल अलिचिच्च अलिचिच्चु
तान कयकोल्लुन्नु तुलोम सू ममां अंशाम मात्रम।

8) क्रिक्षत्तु देवझडे परित्याग शीलवुम साक्षाल
कृष्णनां भगवाण्डे धर्म रक्षोपायवुम,
बुद्धण्डे अहिंसयुम शंकराचार्यरूडे
ब्रुद्धि शक्तियुम रंतिदेवण्डे दयावायपुम,
श्री हरिश्चन्द्रनुल्ल सत्यवुम मुहम्मदनि
स्थेर्थंकम ओरालिल चेरन्नु-ओत्तु काणणमेंकिल
चेल्लुविन भवानमार एन गुरूविन निकटत्तिल
अल्लायकिल अविडने चरिम तारिकनिन।

9) हा तत्रभवलापादम ओरिक्कल दश्च्येन्नाल
कारतन अतिधीरन कर्कशन कृपावशन!
पिशुक्कन प्रदानोलक्कन पिशुनन सुवचनन
अशुद्धन परिशुद्धन अलसन सदायासन

10) अतत प्रशमनांम् अतपस्वीतन मुन्निल माल्यम!
आततायी नन कैवाल करिकूवल
कूर्त दंष्ट्रकल चेरन्ना केसरी कुआ
आरत्तेन्नी तडम तल्लुम वनकडला कलिपोयका।

11) कार्यचिन्तना चेरूयुम नेरम आ नेताविन्नु
कानन प्रदेशकुम कांचन सभातलम,
चट्टट्ट समाधिलिल एरपुडुम आ योगिक्कु
पट्टण नडुत्तट्टुम पर्वत गुहान्तरम!

12) शुद्मां तंकत्ते तान अल्लयो विलयिपति
धर्मकर्षकण्डे सल्कर्मम वयलतोरूम?
सिद्धनां अविडत्ते तृक्कण्णो कनकत्ते
ई धरित्रि तन वेरूम मंञ्ञ मण्णयि काणमू!

13) चामर चलनत्ताला इलिच्चु कट्टुम पिशाच
आ महाविरक्तन्नु पूज्य साम्राज्य श्रीलुम
एतु पूंकुषलिन्नुम अष तोन्नायवान आरी
स्वातंत्रय दुर्गा ध्वाविल पट्टुकल विरिक्कुन्नु।
अत्तिरुवड़ी वल्ल वलक्कल तुडम उडुत्तु
अर्ध नगन आयल्लो मेवुन्नु सदाकालम!

14) गीतकु मातावाय भूमिथे दृढमितु
मातिरियोरू कर्मयोगिये प्रसविक्कू
हिमवत विंध्याचल मध्यदेशत्ते काणम्
शममे शीलिच्चेषुम इत्तरम सिंहत्तिने
गंगाधार ओषुकुन्न नाट्टिले शरिक्कित्र
मंगलम कायक्कुम कल्पपादपम उंडाय वरू!

15) नमस्ते गतहर्ष! नमस्ते धुराधर्ष
समस्ते सुमहात्म! नमस्ते जगल गुरो!

मेरे गुरुदेव

हिंदी रूपान्तर

(अनुवादः श्रीमती रत्नमयी देवी दीक्षित)

1) 'यह लोक ही मेरा कुटुम्ब है;
ये तृण-पल्लव कीट-पतंग ही मेरे परिजन हैं;
त्याग ही सम्पत्ति है; विनय ही उन्नति है—'
ऐसा मानने वाले योग के ज्ञाता मेरे गुरूदेव की जय हो!

2) तारक-रत्न-माल्य पहनाया जाय तो भी ठीक, और
काले मेघों से ढक दिया जाय तो भी ठीक!
वे हैं सर्वथा निःसंग, निर्लिप्त! सम स्वच्छ
आकाश-जैसे हैं मेरे गुरुदेव!

3) मेरे गुरुदेव ऐसे दुर्लभ तीर्थ-हृदय हैं जो दुर्जन्तु रहित हैं,
वे ऐसे हैं जिनसे कालिमा नहीं फैलती,
वे ऐसे माणिक्य महानिधि हैं जिन पर सर्पों की छाया
भी कभी नहीं पड़ी।
मेरे गुरुदेव! ऐसी चाँदनी हैं जिसने कभी छाया नहीं
डाली।

4) बिना शस्त्र के धर्म-युद्ध करने वाले,
बिना पुस्तक के पुण्याध्ययन करने वाले,
बिना औषध के रोग नष्ट करने वाले,
बिना हिंसा-दोष के यज्ञ करने वाले हैं मेरे गुरुदेव!

5) शाश्वत अहिंसा उन महात्मा का व्रत,
शान्ति प्रारंभ से ही उनकी इष्ट देवी है
वे कहा करते हैं, अहिंसा रूपी कवच किस
तलवार की धारा नहीं मोड़ देता?

6) अहिंसा-रूपी पत्नी से मिले धर्म का सरस संलाप,
आर्य-सत्य की सभा का संगीत एवं
मुक्ति के रत्न-मंजीर की झनकार हैं —
मेरे गुरुवर्य के शोभन वचन!

7) प्रेम से लोक को जीतने वाले इस योद्धा के लिए
प्रणव ही धनुष है, आत्मा ही बाण, और ब्रह्मा ही लक्ष्य!
ओंकार को भी धीरे-धीरे पिघलाकर वे
उसका एक सूक्ष्मतम अंश ही अपने लिए लेते हैं।

8) भगवान् ईसा का त्याग, साक्षात्
श्रीकृष्ण का धर्म-रक्षा-उपाय,
बुद्धदेव की अहिंसा, शंकराचार्य की प्रतिभा,
रन्तिदेव की करुणा, हरिश्चन्द्र का सत्य,
मुहम्मद की स्थिरता सब एक साथ
एक व्यक्ति में देखना हो तो,
आइये मेरे गुरु के पास।

अगर वह नहीं है संभव
पढ़िये उनकी जीवन गाथा।

9) उनके चरणों का दर्शन कर लेने पर
एक बार कायर भी धीर बन जाता है; क्रूर भी कृपालु.
कृपण भी दानवीर, परुषवादी भी प्रियवादी,
अशुद्ध भी परिशुद्ध और आलसी भी परिश्रमी बन जाता है।

10) चारों ओर शान्ति फैलाने वाले उस तपस्वी के सामने
आततायी की कटार नीलोत्पल-माला है।
दंष्ट्रा-कराल केसरी, मृग-शावक और
भयंकर लहरें उठाने वाला सागर क्रीड़ा-पुष्करिणी है!

11) गम्भीर कार्य-चिन्तन के समय उस नेता के लिए
कानन-प्रदेश भी कांचन-सभा-मंडप है।
निश्चल समाधि में स्थित होने पर उस योगी के लिए
नगर-मध्यस्थल भी पर्वत-गुहान्तर है।

12) उस धर्म-कर्षक का सत्कर्म, खेत-खेत में
शुद्ध स्वर्ण ही पैदा करता है
और उस सिद्ध की आँखें स्वर्ण को भी
इस भूमि की पीली मिट्टी-जैसा ही देखती हैं!

13) उस महा विरक्त के लिए संपूज्य साम्राज्यश्री भी
चामर-चलन से दाँत दिखाने वाली पिशाचिनी है
किसी मृदुतम, कुसुम-कोमल चरण को भी पीड़ा न हो,
इसलिए जो महात्मा स्वातंत्र्य के दुर्गम मार्ग पर रेशमी
पाँवड़े बिछा रहे हैं,
यह महानुभाव स्वयं वल्कल का टुकड़ा
पहनकर सदा अर्धनग्न रहते हैं!

14) गीता-जननी भारत-भूमि ही
ऐसे किसी कर्मयोगी को जन्म दे सकती है
हिमवत्-विंध्याचल, मध्य प्रदेश में ही
शम की साधनाँ करने वाला ऐसा सिंह दिखाई देगा।
गंगा नदी जिस प्रदेश में प्रवाहित होती है उसीमें
मंगल-फल देने ऐसा कल्प-वृक्ष उग सकता है।

15) नमस्ते गतवर्ष! नमस्ते दुराधर्ष।
नमस्ते सुमहात्मन्! नमस्ते जगद्गुरो!

12.5.2 भावार्थ

1) कवि कहता है कि मेरे गुरूदेव का मानना है कि सारा संसार उनका कुटुम्ब है। तिनके, पत्ते, कीड़े, मकोड़े उनके आत्मीय बंधु हैं। उनके अनुसार त्याग ही सबसे बड़ी सम्पत्ति है, विनय से बढ़कर कोई उन्नति नहीं है। ऐसे विचार रखने वाले योग के ज्ञाता अपने गुरू की कवि जय-जयकार करता है।

2) कवि आगे कहता है कि मेरे गुरूदेव आकाश की तरह स्वच्छ, निर्लिप्त और निःसंग है। किसी की संगत से उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता, वे राग और द्वेष से मुक्त हैं, उनका हृदय आकाश के समान स्वच्छ है। उन पर न तो प्रकाश का असर होता है न अंधकार का। उन्हें तारों की रत्न माला से ढ़का जाए या काले मेघों से; उनके व्यक्तित्व पर जरा भी प्रभाव नहीं पड़ता। तात्पर्य यह कि जीवन की कलुषता उन्हें मलिन नहीं कर पाती और चारों ओर फैली ऐश्वर्य की चकाचौंध उन्हें आकर्षित नहीं कर पाती।

3) मेरे गुरूदेव का हृदय एक पवित्र और दुर्लभ तीर्थस्थल है, जहां बुरे जन्तु नहीं रहते, वे जहां जाते हैं वहां कालिमा का नाश हो जाता है। वे मणियों के ऐसे महाकोष हैं जहां सांप का आधिपत्य नहीं है। मेरे गुरूदेव में चांदनी की शीतलता तो है पर इस चांदनी की कालिमा इनमें नहीं है।

4) मेरे गुरूदेव ने बिना किसी अस्त्र के लड़ाई की है। उनका यह युद्ध धर्म-युद्ध है। बिना पुस्तक के उन्होंने पुण्य अध्ययन किया, बिना दवा के रोगों को नष्ट किया, बिना हिंसा के यज्ञ किया। ऐसे विलक्षण हैं मेरे गुरूदेव।

5) उस महात्मा का अहिंसा और सत्य में विश्वास है। अहिंसा उनका व्रत है और शांति इष्ट देवी। उनके अनुसार अहिंसा का कवच तलवार की धार को मोड़कर रख देता है।

6) मेरे गुरूदेव जब बोलते हैं तो ऐसा लगता है मानों अहिंसा रूपी पत्नी से धर्म का सरस वार्तालाप हो रहा हो, सत्य की सभा में संगीत बज रहा हो और मुक्ति के रत्नजड़ित मंजीरे की मधुर ध्वनि गूंज रही हो।

7) यह योद्धा है, पर यह प्रेम से ही संसार पर विजय प्राप्त करता है। परमेश्वर ही इसका धनुष है, आत्मा ही बाण है और ब्रह्म लक्ष्य है। शिव को अपने तप से वे पिघलाते हैं, पर उसका सूक्ष्मतम अंश ही अपने पास रखते हैं।

8) ईसामसीह का त्याग, श्रीकृष्ण की धर्म-रक्षा, बुद्ध की अहिंसा, शंकराचार्य की प्रतिभा, रन्तिदेव का करूणा, हरिश्चन्द्र का सत्य, पैगम्बर मुहम्मद की स्थिरता अगर कहीं एक व्यक्ति में देखनी है, तो मेरे गुरूदेव को देखो।

9) उनके चरणों का दर्शन करते ही कायर भी वीर हो जाता है, क्रूर दयालू बन जाता है, कंजूस दानी हो जाता है, कठोर वचन बोलने वाला मृदुभाषी हो जाता है, अशुद्ध शुद्ध हो जाता है और आलसी अपने आलस्य को त्याग कर परिश्रम का सहारा लेता है।

10) यह तपस्वी चारो ओर शांति फैलाता है, इस शांतिदूत के लिए आततायी की कटार नीलोत्पल की माला है। द्रष्टा कराल केसरी, मृग-शावक और भयंकर लहरें उठाने वाला सागर उनके लिए क्रीड़ा-सरोवर है।

11) गंभीर कार्य-चिंतन करते समय उसके लिए जंगल ही सोने की सभा मंडप बन जाता है। एक बार समाधि में जाने के बाद वह नगर के कोलाहल के बीच भी पर्वत की गुफा में व्याप्त शांति का अनुभव करता है।

12) वह धर्म का किसान है, उसके सत्कर्मों से खेतों में सोना पैदा होता है और उसके लिए सोना और पीली मिट्टी में कोई अंतर नहीं है।

13) वह सब चीजों से विरक्त है। जिस साम्राज्य को लोग पूजते हैं उसे वह वीभत्स पिशाचिनी मानते हैं। किसी भी कोमल, मुलायम पैर में पीड़ा न हो, इसके लिए यह महात्मा स्वतंत्रता के दुर्गम मार्ग पर रेशम बिछा रहे हैं। पर स्वयं यह महान् व्यक्ति अर्धनग्न रहता है, केवल वल्कल का टुकड़ा डाले रहता है।

14) ऐसे किसी कर्मयोगी का जन्म गीता रचने वाली भारत भूमि पर ही हो सकता है। हिमालय, विध्यांचल और मध्य प्रदेश से युक्त इस देश में ही ऐसा साधक सिंह दिखायी पड़ सकता है। जिस देश में गंगा नदी बहती है, उसी में मंगल फल देने वाला ऐसा कल्पवृक्ष उग सकता है।

15) बीते हुए काल को प्रणाम। प्रणाम विकट, व्यक्तित्व, प्रणाम प्रचंड व्यक्तित्व। प्रणाम जगत् गुरू।

12.5.3 विश्लेषण

जिन दिनों महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारत का राष्ट्रीय आंदोलन जोर पकड़ रहा था, उन्हीं दिनों वल्लत्तोल की कविता में एक नया तेवर पैदा हुआ। उनकी कविताओं में राष्ट्रीय चेतना का स्वर सुनाई पड़ने लगा। गांधी जी को उन्होंने अपना गुरू मान लिया। गांधी जी के असाधारण व्यक्तित्व से कवि प्रभावित हुआ और गांधी जी के प्रति उनके मन में श्रद्धा का संचार हुआ। उसी से प्रभावित होकर उन्होंने सन् 1923 में "एण्डे गुरूनाथन" (मेरे गुरूदेव) की रचना की। इस कविता में वल्लत्तोल ने अपने गुरू महात्मा गांधी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है।

कवि ने प्रस्तुत कविता "एण्डे गुरूनाथन" (मेरे गुरूदेव) में भाव-विह्वल होकर महात्मा गांधी की स्तुति की है। वे गांधी जी को राष्ट्रीयता का प्रतीक मानते हैं। वस्तुतः गांधी जी के प्रति अपनी भावना व्यक्त करके कवि ने राष्ट्रीयता के प्रति अपने विचारों को ही व्यक्त किया है। आप कविता पढ़ते वक्त महसूस करेंगे कि कवि गांधी की चर्चा करते वक्त आत्मविभोर हो उठता है। कभी वह अपने गुरू को ऐसा तीर्थ स्थल कहता है जहां दुर्जन का निवास नहीं है, कभी वह उन्हें ऐसा माणिक्य महानिधि मानता है, जहां सर्पों की छाया नहीं है, तो कभी वह उसे ऐसी चांदनी की संज्ञा देता है, जिसमें छाया नहीं हैं।

कवि का मानना है कि गांधी का व्यक्तित्व बिल्कुल साफ, सुथरा और निष्कलुष है। वस्तुतः वह गांधी जी को देवता के पद पर आसीन कर देता है। उन्हें मानव नहीं रहने देता। यह कवि की भावुकता का प्रमाण है। वह कह बैठता है :

भगवान ईसा का त्याग, साक्षात,
श्री कृष्ण का धर्म-रक्षा-उपाय,
बुद्धदेव की अहिंसा, शंकराचार्य की प्रतिभा,
रन्तिदेव की करूणा, हरिश्चन्द्र का सत्य,
मुहम्मद की स्थिरता सब एक साथ
एक व्यक्ति में देखना हो तो,
आइये मेरे गुरू के पास।

कवि ने गांधी जी के अहिंसा और त्याग की बार-बार चर्चा की है। पूरी कविता इससे भरी पड़ी है। कवि का मानना है कि "शाश्वत अहिंसा उन महात्मा का व्रत/शांति प्रारंभ से ही उनकी इष्ट देवी है।" कवि आगे कहता है "प्रेम से लोक को जीतने वाले इस योद्धा के लिए प्रणव ही धनुष है, आत्मा ही बाण, और ब्रह्म ही लक्ष्य।" कवि गांधी जी के व्यक्तित्व में विश्व पुरुष के दर्शन करता है। कवि का मानना है कि इस महान् व्यक्ति का कुटुम्ब सारा संसार है, कीड़े-मकोड़े भी उसके परिजन हैं। त्याग और विनय उसके व्यक्तित्व के केन्द्र बिंदु हैं। वह सबके साथ है, पर निःसंग और निर्लिप्त है। उसके चरित्र में एक विरोधाभास दीख पड़ता है। ध्यान रहें यह विरोधाभास केवल ईश्वर में ही लक्षित हो सकता है। वह युद्ध करता है, पर शस्त्रों का उपयोग नहीं करता, वह अध्ययन करता है, पर उसे पुस्तकों की जरूरत नहीं पड़ती, वह रोग को नष्ट करता है, पर उसे औषधि की जरूरत नहीं पड़ती। आततायी की कटार उसके लिए नीलोत्पल-माला है। वह जंगल में रहकर भी "कंचन-सभा-मंडप" का सुख भोग सकता है, कोलाहल के बीच रहकर भी वह शांति की शरण में जा सकता है। वह संसार के लिए कर्म करता है, पर संसार से वह निर्लिप्त है। उसे किसी चीज़ की चाह नहीं है। वह सुख-दुख, अभिलाषा, तृष्णा से ऊपर उठ चुका है। अंधकार और प्रकाश से उसके व्यक्तित्व पर तनिक भी फर्क नहीं पड़ता। "तारक-रत्न-माल्य" में भी वह उसी प्रकार रहेगा जैसे काले मेघों से ढक दिए जाने पर।

कवि वल्लत्तोल के गुरू महात्मा गांधी त्याग और तप के मूर्त रूप है। लेने की कोई चाह नहीं है। केवल देना ही देना है। उसे साम्राज्य की भी लालसा नहीं। स्वतंत्रता-संग्राम में वह अपने लिए कांटे चुनता है और दूसरों के लिए राहों पर फूल बिछाता है। सारे कष्ट खुद सहन करता है, दूसरों को कष्ट उठाते देख, उसका हृदय द्रवित हो उठता है। सबके लिए वस्त्र जुटाता फिरता है, पर स्वयं एक टुकड़े वस्त्र से ही काम चलाता है।

कवि का मानना है कि ऐसा विराट व्यक्तित्व भारत में ही पैदा हो सकता था। गंगा नदी के इस पावन देश में ही ऐसे कल्प-तरू का जन्म हो सकता है। कवि ऐसे महान् योद्धा को शत-शत प्रणाम करता है।

आप पूरी कविता ध्यान से पढ़ें और हमने जो अर्थ और भाव-विश्लेषण किया है, उसे भी गौर से देखें। आप पाएंगे कि कवि राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत है। कवि अपने गुरूदेव को एक व्यक्ति-मात्र नहीं मानता बल्कि व्यक्तित्वों का पुंज मानता है, राष्ट्रीयता, संघर्ष, स्वतंत्रता संग्राम का प्रतीक मानता है। अतः कवि ने यहां केवल महात्मा गांधी का गुणगान नहीं किया है, बल्कि संघर्षरत भारत का यशोगान प्रस्तुत किया है। कवि यह बात काफी अप्रत्यक्ष रूप से कहना चाहता है, पर अंत में वह अपने को रोक नहीं पाता और कह बैठता है :-

नमस्ते गतवर्ष/नमस्ते दुराधर्ष
नमस्ते सुमहात्मन/नमस्ते जगद्गुरो।

अर्थात् उन वर्षों को प्रणाम जिन वर्षों में गांधीजी के नेतृत्व में लोगों ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष किया। यह संघर्ष विकट और प्रचंड व्यक्तित्व के जगत्गुरू के नेतृत्व में हो रहा है। इस विकट और प्रचंड व्यक्तित्व और उसके नेतृत्व में चल रहे संघर्ष को कवि प्रणाम करता है। कवि गांधी जी के देवत्व-मात्र से प्रभावित नहीं है, बल्कि इसलिए प्रभावित है क्योंकि वे स्वतंत्रता संग्राम के दुर्गम मार्ग पर चल रहे हैं।

वस्तुतः यह कविता राष्ट्रीयता के लिए हो रहे संघर्ष के प्रति कवि की श्रद्धांजलि है। निश्चित रूप से कवि गांधी जी के व्यक्तित्व से प्रभावित था। पर गांधी जी एक व्यक्ति नहीं बल्कि सम्पूर्ण रूप में संघर्ष और लड़ाई के प्रतीक थे। कवि यहां उस गुरूदेव की स्तुति करता है जो बिना शस्त्र के स्वतंत्रता

संग्राम में कूद पड़ा है। सत्य और अहिंसा ही उसके अस्त्र हैं। शांति ही उसका मूल मंत्र है। प्रेम से वह विश्व को जीतना जानता है। गांधी जी के इन्हीं गुणों ने उन्हें देवत्व की सीमा तक उठा दिया था जहां राग-द्वेष, माया-मोह, छल-कपट आदि का कोई स्थान नहीं होता। पर यह तपस्वी संसार से, कर्म से पलायन नहीं कर गया था, बल्कि संघर्ष और कर्म ही इसकी तपस्या थी।

काव्य शिल्प

महान् कवि की यह विशेषता होती है कि वह अपनी बात साधारण और सरल शब्दों में कहता है। वह जनता का कवि होता है, अतः जनता की भाषा में बात करता है। उसकी सरलता में भी एक गहराई होती है। उसकी सरलता में एक अपनापन होता है, जिसके कारण कवि जनता से जुड़ता है। जनता से उसका जुड़ना ही उसकी काव्य-प्रतिभा का प्रमाण है। सुर, तुलसी, कबीर, नागार्जुन, भारती, इसी कारण महान् कवि बन सके क्योंकि उन्होंने जनता की भाषा में अपनी बात कही। वल्लत्तोल भी जनता के कवि थे, अतः उन्होंने जनता की भाषा "मलयालम" में अपनी बात कही। उनकी कविता में एक प्रकार की वर्णनात्मकता है, पर इसमें भी एक रस है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी :-

"प्रेम से लोक को जीतने वाले इस योद्धा के लिए
प्रणव ही धनुष है, आत्मा ही बाण, और ब्रह्म ही लक्ष्य।"

आप ध्यान से पढ़ें और खासकर दूसरी पंक्ति को, तो आप महसूस करेंगे कि इस इतिवृत्तात्मकता में भी एक सरसता है। प्रणव, आत्मा और ब्रह्म को क्रमशः धनुष, बाण और लक्ष्य के रूपक में बांधकर कवि ने सरलता में भी सरसता पैदा कर दी है। पूरी कविता में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं।

कवि ने अलंकारों का प्रयोग किया है, पर ये अलंकार बोझिल नहीं है, बल्कि कविता को प्राणवान बनाने में मदद करते हैं। एक जगह विरोधाभास अलंकार का प्रयोग कर उन्होंने कविता को सरस बना दिया है —

बिना शस्त्र के धर्म-युद्ध करने वाले,
बिना पुस्तक के पुण्याध्ययन करने वाले,
बिना औषध के रोग नष्ट करने वाले,
बिना हिंसा दोष के यज्ञ करने वाले हैं मेरे गुरूदेव।

कवि रूपक बांधने में माहिर है। कभी वह तीर्थ का रूपक बांधता है, तो कभी अहिंसा और धर्म का संलाप कराता है, कभी "आर्य-सत्य की सभा का संगीत एवं/मुक्ति के रत्न-मंजीर की झंकार" पैदा करता है। कभी वह कर्मयोगी तो कभी कल्पवृक्ष का रूपक बांधकर अपने गुरूदेव की स्तुति करता है।

कवि वल्लत्तोल की भाषा का सबसे बड़ा गुण उसकी सम्प्रेषणीयता है। कवि सरल-सहज शैली में अपनी बात लोगों तक पहुंचा देता है। उन्होंने जो बिम्ब लिए हैं, वे भी सरल और जीवन से उठाए हुए हैं। कहीं भी दूर की कौड़ी लाने का प्रयत्न कवि ने नहीं किया है। इसलिए कवि की भाषा सुबोध और सरस बन पड़ी है।

बोध प्रश्न

12) निम्नलिखित पंक्तियों का अर्थ स्पष्ट कीजिए (पाँच पंक्तियों में)

क) यह लोक ही मेरा कुटुम्ब है,
ये तृण-पल्लव कीट-पतंग ही मेरे परिजन हैं,
त्याग ही सम्पत्ति है, विनय ही उन्नति है
ऐसा मानने वाले योग के ज्ञाता मेरे गुरूदेव की जय हो।

.....
.....
.....
.....
.....

ख) उनके चरणों का दर्शन कर लेने पर
एक बार कायर भी धीर बन जाता है, क्रूर भी कृपालु,
कृपण भी दानवीर, पुरुषवादी भी प्रियवादी,
अशुद्ध भी परिशुद्ध और आलसी भी परिश्रमी बन जाता है।

.....

.....

.....

.....

.....

13) "एण्डे गुरूनाथन" या "मेरे गुरूदेव" कविता में कवि ने किसकी स्तुति की है? (दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

14) "मेरे गुरूदेव" का रचनाकाल क्या है? (सही उत्तर के सामने √ का चिह्न लगाइए)।

1925 [ ]
1923 [ ]
1927 [ ]
1931 [ ]

अभ्यास

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर पन्द्रह-पन्द्रह पंक्तियों में दीजिए।

3) "मेरे गुरूदेव" का भावार्थ संक्षेप में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) "मेरे गुरूदेव" कविता के भाषा-पक्ष पर विचार कीजिए।

.....

.....

.....

12.6 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने मलयालम के महत्वपूर्ण कवि वल्लत्तोल के जीवन और काव्य का अध्ययन किया। उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी के दौरान केरल प्रदेश में नव-जागरण और राष्ट्रीय आंदोलन की लहर दौड़ पड़ी। ब्रह्म समाज, आर्य समाज ने एक ओर नवजागरण की लहर फैलाई तो दूसरी ओर महात्मा गांधी सरीखे राष्ट्रीय नेताओं ने स्वतंत्रता संग्राम की चेतना फैलाई। इसका असर मलयालम में रचना कर रहे साहित्यकारों पर पड़ा। वल्लत्तोल नारायण मेनन इसमें एक उल्लेखनीय साहित्यकार है।

वल्लत्तोल की कविताओं पर इस आंदोलन का असर पड़ा और उनकी कविताओं में राष्ट्रीय और मानवीय प्रेम स्पष्ट रूप से उभर कर आया

वल्लत्तोल की कविता "एण्डे गुरूनाथन" या "मेरे गुरूदेव" राष्ट्रीय चेतना से युक्त कविता है। इसमें कवि ने अपने गुरूदेव "महात्मा गांधी" की स्तुति की है। पर यह स्तुति एक व्यक्ति की स्तुति नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण स्वतंत्रता संग्राम और उसके सेनानियों की स्तुति है।

12.7 शब्दावली

आततायी—अत्याचारी

आत्मवत्ता—आत्म नियंत्रण, बुद्धि, समझ, चेतना।

ओंकार—शिव।

कलुषता—कालापन।

कांचन सभा मंडप—सोने की सभा-मंडप।

कृपण—कंजूस।

चितेरा—चित्रकार।

जगद्गुरू—विश्व का गुरू।

तारक रत्न माल्य—तारारूपी रत्न की माला।

दुराधर्ष—विकट।

दुर्जन्तु—बुरा जीव।

निर्लिप्त—जो किसी में लिप्त न हो।

नि:संग—जो किसी से जुड़ा न हो।

नीलोत्पल—नील कमल।

परूषवादी—कठोर वचन कहने वाला।

प्रणव—शिव।

पावड़ा—वह कपड़ा जो किसी आदरणीय व्यक्ति के पांव रखकर चलने के लिए उसके मार्ग में बिछाया जाता है।

माणिक्य महानिधि—मणि से युक्त महाकोष।

रन्तिदेव—एक परम दानी और यज्ञकर्मा पौराणिक राजा।

वल्कल—पेड़ की छाल का कपड़ा।

संपूज्य—बहुत आदरणीय।

सुमहात्मन—प्रचण्ड।

स्पन्दन—धड़कन।

12.8 उपयोगी पुस्तकें

पी.के. परमेश्वरन् नायर, अनु. सी. आर. नानप्पा, *मलयालम साहित्य का इतिहास,* साहित्य अकादमी, दिल्ली।

के. भास्करन नायर, *मलयालम साहित्य का इतिहास,* हिंदी भवन, लखनऊ।

वल्लत्तोल की कविताएं, साहित्य अकादमी।

कैलाश चन्द्र भाटिया, *भारतीय भाषाएँ,* प्रभात प्रकाशन, दिल्ली।

12.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) ईसाई धर्म संगठन, ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, देखिए 12.2।
2) मातृभूमि "अल अमीन", "लोक मान्यन" आदि पत्रिकाओं के माध्यम से राष्ट्रीय आंदोलन का संदेश सामान्य जनता तक पहुंचा। देखिए 12.2।
3) जी. शंकर कुरूप्प, वेण्णिक्कुल, गोपाल कक्करूप, आदि। देखिए 12.2।
4) देखिए 12.3।
5) प्रारंभिक रचनाएँ ईश्वर स्तोत और श्लोकों की कोटि में/राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ी कविताएँ/खण्डकाव्यों का लेखन/प्रगीत लेखन/प्रमुख काव्य-संकलन—दिवा स्वप्न, वीर श्रृंखला, मेरे गुरूदेव या गुरूनाथ आदि। कविताओं में मानव प्रेम, राष्ट्र प्रेम की बहुलता। देखिए 12.3.2
6) देखिए 12.3.2।
7) गांधी जी से प्रभावित,1928 में कलकत्ता कांग्रेस में शामिल हुए। जवाहरलाल नेहरू, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, आदि राष्ट्रीय नेताओं और साहित्यकारों से सम्पर्क। देखिए 12.4।
8) "मग्दलन मरियम", "अल्लाह", "पारवश्यम" आदि। देखिए 12.4.2।
9) जातिगत मिथ्याभिमान पर प्रहार, जातिगत शिथिल विचारों की भर्त्सना आदि। देखिए 12.4.4।
10) देखिए 12.4.6।
11) मछुआरों की जीवन-दशा का चित्रण। आर्थिक असमानता पर चोट। देखिए 12.4.7।
12) क) देखिए भावार्थ 12.5.2।
    ख) वही।
13) महात्मा गांधी।
14) 1923।

अभ्यासों के उत्तर आप खुद लिखिए।

इकाई 13 मलयालम साहित्य-II

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 कवि कुमारनाशान

13.2.1 जीवन परिचय

13.2.2 साहित्य परिचय

13.3 कुमारनाशान की कविता के विभिन्न आयाम

13.3.1 रोमांटिक रुझान

13.3.2 सामाजिक रुझान

13.3.3 आध्यात्मिक रुझान

13.3.4 आत्मगीत

13.4 काव्य वाचन (**दुरवस्था**)

13.4.1 पाठ

13.4.2 भावार्थ

13.4.3 विश्लेषण

13.5 वैकम मुहम्मद बशीर

13.5.1 एक परिचय

13.6 **टाइगर** कहानी का वाचन

13.7 **टाइगर** का विश्लेषण

13.7.1 कथावस्तु

13.7.2 चरित्र चित्रण

13.7.3 परिवेश

13.7.4 संरचना शिल्प

13.7.5 प्रतिपाद्य

13.8 सारांश

13.9 शब्दावली

13.10 उपयोगी पुस्तकें

13.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इकाई 12 में आपने मलयालम साहित्य की जानकारी प्राप्त की और इस भाषा के प्रमुख कवि वल्लत्तोल की रचनाओं का अध्ययन किया। मलयालम साहित्य के उस क्रम को हम इस इकाई में आगे बढ़ा रहे हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- कवि कुमारनाशान के जीवन और साहित्य को रेखांकित कर सकेंगे
- कुमारनाशान की कविता के विभिन्न आयामों को स्पष्ट कर सकेंगे
- कुमारनाशान की कविता "दुरवस्था" का वाचन और विश्लेषण कर सकेंगे
- प्रमुख मलयाली कहानीकार वैकम मुहम्मद बशीर के जीवन और साहित्य का वर्णन कर सकेंगे
- बशीर की कहानी "टाइगर" का वाचन और विश्लेषण कर सकेंगे।

13.1 प्रस्तावना

इस इकाई में आप एक कवि और उसकी कविता तथा एक कहानीकार और उसकी कहानी से परिचित होने जा रहे हैं। इसके पहले आप वल्लत्तोल और उसकी रचना से परिचित हो चुके है। वल्लत्तोल की रचनाओं को पढ़ते वक्त आपने महसूस किया होगा कि इन कवियों पर राष्ट्रीय नवजागरण और स्वतंत्रता आन्दोलन का पूरा प्रभाव था। खासकर ये रचनाकार गांधी जी से काफी प्रभावित थे। इसीलिए इन रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से जीर्ण और जर्जर जाति व्यवस्था पर प्रहार किया, धार्मिक उन्माद का विरोध किया और औरतों तथा दलितों पर हो रहे जुल्म और शोषण का पर्दाफाश किया।

इस इकाई में हमने दो रचनाकारों को अध्ययन के लिए चुना है। कुमारनाशान और वैकम मुहम्मद बशीर। कुमारनाशान कवि हैं और बशीर कहानीकार हैं। हमने यहां कुमारनाशन की कविता "दुरवस्था" को अध्ययन के लिए चुना है। इसी प्रकार बशीर कहानीकार हैं। बशीर की कहानी "टाइगर" आपके अध्ययन के लिए चुनी गयी है। दोनों ही रचनाओं में नवजागरण और स्वतंत्रता का स्वर आप आसानी से सुन सकते हैं।

13.2 कवि कुमारनाशान

कुमारनाशान मलयालम के महाकवि हैं। इस भाग में हम उनके जीवन और साहित्य का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करने जा रहे हैं। कवि के जीवन और उनकी रचनाओं को जानने समझने के बाद उनकी कृति को समझने में सुविधा होगी।

13.2.1 जीवन परिचय

महाकवि कुमारनाशान का जन्म सन् 1872 ई० के आसपास केरल के चिरयिनकीष नामक तहसील के काथिक्करा नामक गाँव में हुआ था। कुमारनाशान का मूल नाम कुमारन था। आशान का मतलब होता है। "गुरू"। कुमारन ने संस्कृत में पांडित्य प्राप्त करके जब लड़कों को पढ़ाने का काम शुरू किया तब से वह "कुमारनाशान" नाम से प्रसिद्ध हुए।

कुमारनाशान ने बंगलोर और कलकत्ता जाकर संस्कृत का ज्ञान प्राप्त किया। कुमारन बचपन से ही कवि थे और उन्हें रोमांटिक कविता अपनी ओर खींचती थी। उनकी मुलाकात श्री नारायण गुरू से हुई। गुरू का प्रभाव आशान पर खूब पड़ा। कलकत्ते रहने के दौरान बंगाल के कई विद्वानों से उनका सान्निध्य हुआ। इसी दौरान उनपर रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द आदि महापुरुषों का प्रभाव पड़ा। बंकीम और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं से भी वे परिचित हुए।

अध्ययन समाप्त कर कुमारनाशान अपने प्रदेश लौटे और अपने गुरू के संघ "श्री नारायण धर्मपरिपालन योगम्" (एस.एन.डी.पी.) के नियमपालन में रम गये। उनको चिन्न स्वामी (छोटा स्वामी) का नाम दिया गया। किन्तु अचानक उनका विवाह हो जाने पर लोगों में बड़ी खलबली मची। पर जब यह पता चला कि गुरू के आदेश से ही उन्होंने विवाह किया है, तब जाकर खलबली रुकी।

13.2.2 साहित्य परिचय

कुमारनाशान का साहित्य संसार बहुरंगी और बहुआयामी है। आरंभिक काल में कुमारनाशान ने शंकरशतकम्, सौन्दर्यलहरी (अनुवाद) विचित्र विजयम् (नाटक) आदि लिखे। उनकी प्रौढ़ कृतियों में प्रमुख वीणपूव (गिरा फल), नलिनी, लीला, श्री बुद्ध चरितम्, बालरामायणम्, प्ररोदनम्, चिन्ताविष्टायाय सीता, पुष्पवाटी, दुरवस्था, करुणा इत्यादि हैं। उन्होंने राजयोगम्, मनःशक्ति, मैत्रेयी आदि ग्रंथों की भी रचना की।

बोध प्रश्न

प्रश्न 1 से 3 तक सही उत्तर के सामने दिए कोष्ठक में (√) का निशान लगाए।

1) कुमारनाशान का जन्म कब हुआ था?

क) 1930 (लगभग) ( )

ख) 1920 (लगभग) ( )
ग) 1872 (लगभग) ( )
घ) 1886 (लगभग) ( )

2) कुमारनाशान का मूल नाम क्या था?
क) कुमारस्वामी ( )
ख) कुमारन ( )
ग) कुमार ( )
घ) कुमार्य ( )

3) कुमारनाशान का जन्म कहाँ हुआ था?
क) कलकत्ता ( )
ख) बंगलोर ( )
ग) कायिक्कार ( )
घ) कुन्नूर ( )

4) कुमारनाशान की पाँच प्रमुख कृतियों का नामोल्लेख कीजिए।
क) .....
ख) .....
ग) .....
घ) .....
ङ) .....

13.3 कुमारनाशान की कविता के विभिन्न आयाम

कुमारनाशान की कविताओं का फलक और आयाम बहुत विस्तृत है। उनकी कविताओं में रोमांटिक रचनाओं से लेकर सामाजिक रुझान वाली रचनाएँ भी शामिल हैं। उन्होंने आध्यात्मिक कविताएँ भी लिखी, कविताओं के माध्यम से तत्व चिन्तन भी किया और आत्मगीत भी लिखे। उनकी कविताएँ रोमांटिक हों या आध्यात्मिक, सामाजिक हो या व्यक्तिगत सबमें एक बात समान मिलती है। वह यह कि उनकी कविताएँ मनुष्य और उसकी पीड़ा से जुड़ी हुई हैं। यही विशेषता उनकी कविताओं को महान बनाती हैं।

13.3.1 रोमांटिक रुझान

मलयालम में राजराजवर्मा और उनके शिष्यों ने जिस रोमांटिक काव्य धारा का उद्घाटन किया था, उसके प्रति कुमारनाशान आकर्षित हुए। अंग्रेजी साहित्य से उनका परिचय था और उन्होंने टेनिसन, कीट्स, शैली आदि कवियों को पढ़ा था। निश्चित रूप से इनकी रोमांटिक कविताओं पर इन कवियों के प्रभाव देखे जा सकते हैं।

1909 ई में "वीणपूवु" (पतित पुष्प या गिरा फूल) नामक काव्य की रचना हुई। यह कविता मलयालम रोमांटिक काव्य धारा में अपने आप में बिल्कुल अलग था। इस कविता में हृदय के गहन भावों, ऊर्वर कल्पना और तत्व चिंतन का सुन्दर समन्वय किया गया है। यह कविता विलाप शैली में लिखी गयी है। इसमें पुष्प मानव की प्रतीक है। पुष्प के माध्यम से इसमें मनुष्य के जीवन के अनुभवों और गहन भावों की अभिव्यक्ति हुई है। "वीणपूवु" ने मलयालम कविता को नया स्वर दिया। इस कविता पर शैली, कीट्स आदि कवियों के शोक काव्यों का स्वर और भाव साफ झलकता है। इसके बावजूद कवि की विचारधारा शत प्रतिशत भारतीय है।

"वीणपूवु" की परम्परा में आशान की दो और रचनाएँ प्रकाशित हुई। पहली का नाम "नलिनी" और दूसरी का नाम "लीला" है।

13.3.2 सामाजिक रुझान

कुमारनाशान की कविताओं में समकालीन जीवन और प्रश्न स्पष्ट रूप से उभरे हैं। जिस दूषव समाज में आशान का जन्म हुआ था, वह केरल की अछूत जातियों में से एक था। अपने वर्ग की सामाजिक और राष्ट्रीय पराधीनता के खिलाफ उन्होंने संघर्ष किया और अपनी कविताओं में अपनी इस रुझान को व्यक्त किया।

"ओरुतियय्कुट्टियुटे विचारम्" (1909 एक इषव बालक के विचार) में कवि का आक्रोश पूर्ण रूप से व्यक्त हुआ है। सन् 1919 में "सिंहनाद" की रचना हुई। इसमें इस पराधीनता और असमानता के प्रति उनका विरोध पूरी सशक्तता के साथ प्रकट हुआ।

सन् 1923 में "दुरवस्था" काव्य प्रकाशित हुआ। इस कविता ने समूचे केरल में हलचल मचा दी। उन्होंने अपनी सि कविता में एक हरिजन युवक का विवाह उच्च वर्ग की नंपूतिरि युवती से कराया है। इस काव्य की रचना कवि ने एक खास उद्देश्य से की है। इसके द्वारा कवि ने छुआछूत और जाति-भेद की व्यर्थता का हृदयस्पर्शी चित्रंण किया है। इस कविता का हम आगे विस्तार से अध्ययन करेंगे।

"चंडालभिक्षुकि" इसी प्रकार की एक अन्य सशक्त रचना है। उत्तर भारत की एक चंडाल युवती, बुद्ध के शिष्य आनन्द के संसर्ग से आत्मबोध पा जाती है। इस कविता में भी कवि ने सामाजिक आचार विचार की आलोचना की है।

13.3.3 आध्यात्मिक रुझान

आशान की कविता में तत्व चिंतन की प्रधानता है। उनका तत्व चिंतन शत प्रतिशत भारतीय है। उनके चिंतन पर उपनिषद् का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। पर आशान का तत्व चिंतन वायवीय नहीं है, बल्कि वह सामान्य जीवन से जुड़ा हुआ है। वेदान्त का सामान्य जीवन से जहाँ तक सम्बन्ध रहता है, वहां तक की कविता में उसे आशान ने स्थान दिया है। "वीणपूवु", "लीला" आदि में उन्होंने मनुष्य के स्नेहमय स्वभाव, प्रेम तथा कोमलता की अनश्वरता ही सिद्ध की है। आत्मा की अनश्वरता और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को वे अपनी कविताओं में बार-बार व्यक्त करते है। "प्ररोदनम्", "चिन्ताविष्टयाय सीता" "चंडालभिक्षुक्षि", "करुणा" आदि सभी रचनाओं में इसी भावात्मक तत्व चिंतन का समावेश किया गया है।

13.3.4 आत्मगीत

आशान की रचनाओं में आत्मगीत को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। जब कवि दुखी होता है, क्षुब्ध होता है, तब वह रो लेता है या अपने मन की व्यथा आत्मीय के समक्ष प्रकट कर देता है। "पुष्पवाट", मणिमाला, बनमाला आदि संकलनों में आत्मगीत संकलित है। कवि ने इन गीतों में अपने मन को संबोधित करते हुए यह उद्घाटित करने का प्रयत्न किया है कि "शिव" ही शाश्वत है। उनका वेदान्त सम्बन्धी चिन्तन आत्मगीतों में ढल गया।

कुमारनाशान के आत्मगीतों में "ग्रामवृक्षत्तिले कुयिल" (ग्रामवृक्ष की कोयल) का स्थान सर्वोपरि है। यह कविता कवि के निजी जीवन की पीड़ा का कलात्मक प्रकाशन है। कवि पर उनके जीवन काल में कई प्रकार के आक्षेप लगाये गये। कवि दुखी अवश्य हुआ, पर हारा नहीं है। उसने अपनी स्थिति स्पष्ट की। ग्रामवृक्ष पर बैठकर गानेवाली कोयल स्वयं आशान ही हैं। "ग्रामवृक्ष की कोयल" कवि की दृढ़ता, आत्मविश्वास और कर्मठता का प्रतिबिंब है।

बोध प्रश्न

5) "वीणपूवु" किस रुझान की रचना है?

क) रोमांटिक ( )
ख) आध्यात्मिक ( )
ग) सामाजिक ( )
घ) व्यक्तिगत ( )

6) "दुरवस्था" की रचना कब हुई?

क) 1909 ( )
ख) 1921 ( )
ग) 1923 ( )
घ) 1925 ( )

7) कुमारनाशान की रचनाओं के आध्यात्मिक पक्ष के बारे में पाँच पंक्तियाँ लिखिए।

.....
.....
.....
.....
.....

8) कुमारनाशान का सर्वश्रेष्ठ आत्मगीत कौन सा है? नामोल्लेख कीजिए। (एक पंक्ति में उत्तर दीजिए)

.....

13.4 काव्य वाचन (दुरवस्था)

अभी तक आपने कुमारनाशान के जीवन और साहित्य से परिचय प्राप्त किया। आपने उनके काव्य के विभिन्न आयामों और रुझानों की जानकारी हासिल की। इन सभी रुझानों में सामाजिक रुझान का पलड़ा हमेशा भारी रहा। कवि ने निम्न वर्ग की चेतना को अभिव्यक्त करने की भरपूर कोशिश की। उन्होंने परम्परागत रुढ़ियों और जकड़ी हुई व्यवस्था को झकझोरने का प्रयास किया। इस प्रयास के क्रम में उन्होंने "दुरवस्था" जैसे विद्रोही काव्य की रचना की। आइए, पहले इसका काव्य वाचन करें। पहले इसका लिप्यंतरण प्रस्तुत किया जा रहा है, फिर भावानुवाद।

13.4.1 पाठ

दुरवस्था

(लिप्यंतरण)

अन्तणे चमच्चुल्लोरु कैथल्लो
हन्ता निर्मिच्चु चेरुमनेयुम
बाहु वीर्यंगलुम बुद्धि प्रभकलुम
स्नेह मोलिकुंउश्वकलुम
आहन्तथेत्र विफल माक्कि तीरत्तु
नी हिन्दु धर्मेमे "जाति" मूलम।
एत्र पेरुमाक्कल शंकराचार्यन्मार
एत्रयों तुंचनमार कुंचनमारूम
क्रश्मां जातियाल नून मलसिप्पोय
केरला मातावे निन् वयट्टिल।
तेच्चु मिनुक्कियाल कान्तियुं मूल्यवुम
वाचिच्चुम कल्लुकल भारतांबे,
ताणु किटक्कुन्नु निन कुक्षिथिल चाणा
काणाते आरेषु कोटियिन्नुम।
एंतिन्नु केषुन्नु दीनयो नी देवी,
एंतु खेदिप्पान दरिद्रियो नी,
हंतई जातिये होमिच्चोषिच्चाल निन
चिन्तितम साधिच्चु रत्नगर्मे,
तोट्ट कूटात्तंवर तीटि कुटत्तवर

दृष्टिथिल पेट्टालूं दोषमुल्लोर
केट्टिल्लवात्तोर तमिलुणात्तोर इंगने
ओट्टल्लो जाति कोमरंगल।
भेदगंलट्टा पोरूलिने काहलम
अति वाषत्तीटुन्नु वेदम नालुम,
वैदिक मानिकल मर्लरिल भेदवुम
भेदत्तिल भेदवुम जल्पिक्कुन्नु।
एंतोरू वेंकृतम ब्रह्मविघे, निन्निल
एंताणि काणुन्ना वैपरीत्यम।
निर्णयम निन्नेप्पोल पाटिल अधोगति
विण्णवर गंगक्कुं उंटाविथिल्ला।

दुरवस्था

(भावानुवाद) (अनुवादकः डॉ॰ आर॰सुन्दरम आरसु)

ब्राह्मण को जन्म दिये
हाथों से ही हुआ है
चेरुमन[1] का भी सृजन
भुजबल, बुद्धिबल
स्नेह के बहते सोते
हाय हिन्दूधर्म तू ने कितना
विफल बनाया है इन सब को
इधर जाति के नाम।
कितने भले शासक
शंकराचार्य, तुंजन, कुंजन
सरीखे कितने कवि मनीषियों के
हुए गर्भपात है केरला मां
इधर तेरे उदर में
निष्ठुरजाति निमित्त।
हे भारत माँ छिपे पड़े हैं आज
कितने कांति-मूल्य के पत्थर समान
छह सात करोड़ जनता
नहीं है परख-पहचान की
सही कसौटी इधर।
क्यों रोती बिलखती है
क्या दीन है तू देवी?
क्यों खेद है तुझे
क्या दरिद्र है तू देवी?
हटाओ जाति को
झट होम से
हे रत्नगर्भे[2] होगी तब
तेरी कामना साकार
आदमी आपस में न छू सकते
नहीं चल सकते साथ
अगर पड़े थे लोग दृष्टि में
मानेंगे उन्हें अपशकुन

1. निम्न जाति का आदमी 2. पृथ्वी

मना है साथ की शादी खानपान
है इधर बेशुमार जाति पिशाच।
चारों वेद करते हैं यशोगान
भेदहीनता का पावन सार
किन्तु ढूँढते हैं मानव में भेद
बगुले पंडित लगातार
उकसाते हैं भेदों में भी भेद
स्थिति है कितनी गंदी भद्दी
बोलो ब्रह्मविधे[3] आया तुझ में
कैसा इबना परस्पर विरोध
काश। स्वर्ग गंगा का भी
हुआ नहीं ऐसा पतन इस दुनिया में।

---

3. वेद

13.4.2 भावार्थ

जिन हाथों से ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई है, उन्हीं हाथों से दलित की भी सृष्टि हुई है। कितनों ही का बाहुबल, कितनी मूर्तियाँ और स्नेह की कई निर्मल धाराओं को, हे हिन्दू धर्म, तुमने जाति भेद के कारण नष्ट कर डाले। कितने ही पेरुमाल (केरल के एक लोकप्रिय शासक), कितने ही तुंचन (रामायणकार महाकवि) और कुंचन (एक अन्य महाकवि) इस क्रूर जाति भेद के कारण, हे केरल माता, तेरी कोख में नष्ट हो गये। झाड़ने पोंछने पर कांति व मूल्य परखनेवाली, हे भारत माँ, तेरे गर्भ में आज भी छह सात करोड़ रत्न कसौटी का स्पर्श न पाकर पड़े हुई हैं। हे देवी, तुम हमेशा रोती-बिलखती क्यों रहती हो, क्या तू इतनी दीन है? तुझे दुःख क्यों है? तू इतनी दरिद्र तो नहीं।

एक झटके से तुम इस जातिव्यवस्था को मिटा डालो, तभी तुम्हारा रत्नगर्भा नाम सार्थक होगा और तभी कामना मूर्तरूप ग्रहण कर सकेगी। कवि कहता है कि आज स्थिति बहुत विषम है, भयावह है। एक आदमी दूसरी आदमी को छू नहीं सकता, एक साथ चल नहीं सकता। इनकी दृष्टि भी कुछ लोगों के लिए अपशगुन का कारण होती है। शादी ब्याह और खान पान तो दूर की बात है। चारों ओर जाति पिशाच फैले हुए हैं।

चारों वेद सिद्धान्तः तो जाति व्यवस्था का तिरस्कार करते हैं, पर व्यवहार रूप से बगुला रूपी पंडित मानव-मानव में भेद करते है। ये लोगों के बीच खाई उत्पन्न करते हैं, लोगों को उकसाते हैं। कवि कहता है कि यह कितनी भद्दी स्थिति है हे वेद, तू ही बता तुझमें यह परस्पर विरोध क्यों? तुम्हारी कथनी और करनी में अन्तर क्यों? कवि को लगता है कि स्वर्ग से धरती पर उतरी गंगा का भी इतना पतन नहीं हुआ, जितना ब्राह्मणों और उनके ग्रंथों का हुआ है।

13.4.3 विश्लेषण

सन् 1923 ई॰ में इस कविता की रचना हुई। इसमें कुमारनाशान ने एक बहुत ही गंभीर इतिवृत्त की कल्पना की है।

मलबार के तरनाडु प्रदेश में एक धार्मिक झगड़ा छिड़ा था। इस झगड़े के दौरान सावित्री नामक एक नंपूतिरि युवती बिल्कुल अनाथ हो गयी थी। जाति की दृष्टि से नंपूतिरियों को उस समाज में उच्च स्थान मिला था। नितांत निस्सहाय होने की स्थिति में निम्न जाति (पुलय) के युवक चात्तन की झोपड़ी में उसने शरण ली। चात्तन ने उसके प्रति आदर प्रकट किया।

कई दिन गुजर गये। सावित्री सोचने लगी कि निम्न जाति का आदमी व्यवहार से बहुत अच्छा है। जाति गौण है मानवता ही मुख्य बात है। अनपढ़ चात्तन को सावित्री ने कई सावान बातें समझायी। अन्त में सावित्री ने चात्तन से शादी करने की इच्छा प्रकट की। चात्तन तब चौंक उठा। सावित्री ने तब बताया कि खतरे के क्षण में आपने मुझे बचाया था। अब पूरे जीवन आपके साथ रहने में कोई कलंक और अवरोध नहीं है। शरणदाता और शरणार्थी का वह रिश्ता दांपत्य में बदल गया। अग्निसाक्षी होकर

सावित्री ने चान्तन का पाणिग्रहण किया। "दुरवस्था" में समाज के पतन का मुख्य कारण जाति जन्य भेदभाव ही बताया गया है।

कवि परिवर्तन के पक्षधर हैं। जड़ आचारों को झकझोर देने का आह्वान इस कृति में है। जाति के आधार पर बनाये दीवारों के बारे में कवि ने प्रारंभ में अपने विचार प्रकट किये हैं। उदधृत काव्यांश "दुरवस्था" प्रारंभिक भाग से है। जाति के पिशाचों को होम करके हटाने का सन्देश इस भाग से मिलता है।

कविता का उद्देश्य: राष्ट्रीय नवजागरण का उद्देश्य जनमन को जागृत करना था। रूढ़ियों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए जनता को तैयार करना उसका ध्येय था। समाज के पिछड़ेपन के कारणों का विश्लेषण उस युग के कवि मनीषियों ने किया था। पूरे भारत में परिवर्तन का शंखनाथ बजाया गया था। मलयालम के महान कवि कुमारनाशान ने भी उस नैतिक दायित्व का निर्वाह किया था। **दुरवस्था** इसका ज्वलंत उदाहरण है।

उच्चकुलोद्भवा सावित्री और निम्नकुलोद्भवा चात्तन के दांपत्य का उदाहरण पेश कर कवि ने जाति व्यवस्था के खोखलेपन का वर्णन किया है। मानवता ही मुख्य बात है। जाति रूपी पिशाच नंगा नाच कर रहा है। इसलिए उसके कई दुष्परिणाम भी हमारे समाज में व्याप्त है। जाति को महत्व देने के कारण कई असंगतियाँ पैदा होती हैं। कई महात्माओं और मनीषियों के बारे में हम जान भी नहीं पाते है। भारत की सामाजिक सांस्कृतिक दार्शनिक दुरवस्था के कारणों पर सोचने वाले एक कवि के विचार इसमें प्रतिपादित हुए है। हमें आगे बढ़ना है तो जाति भेद को भूलना होगा। जाति व्यवस्था को पकड़े रहने से राष्ट्र और समाज की अवनति ही होगी। कवि के ये विचार आज भी प्रासंगिक है।

यह स्पष्ट है कि कुमारनाशान ने इस कथा को एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए लिखा है। इस कविता के द्वारा आशान ने छुआछूत और जाति भेद को व्यर्थता का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। उनका उद्देश्य भी यही है। इस कविता के जरिए आशान ने पूरी सशक्तता के साथ यह सिद्ध किया है कि ब्राह्मण-दलित के आधार पर बुद्धि और हृदय में भेद स्थापित नहीं किया जा सकता है। यह भेदभाव कृत्रिम है और इसे एक खास वर्ग ने अपनी सुविधा के लिए निर्मित किया है। यह वर्ग धर्म ग्रंथो की मनमानी व्याख्या करता है और एक ही रास्ते से जन्मे दो व्यक्तियों में जाति के नाम पर फर्क पैदा करता है।

भविष्य के प्रति आशावान

इस कविता में कवि दुःखी है, इसमें उसका आक्रोश व्यक्त हुआ है। पर वह निराश नहीं है। कवि का मानना है कि भविष्य में जाति-पाँति का भेद मिट जाएगा। सावित्री की दुर्दशा का चित्रण इस रचना में बड़ी तन्मयता से खींचा गया है। अतः इसका "दुरवस्था" नाम सटीक है। कवि ने यह भी दिखाया है कि सच्चे प्रेम में जाति-पाँति, आचार विचार, रहन सहन आदि बाधा नहीं डाल सकते, बाधा डाली जाए तो भी अन्त में सच्चा प्रेम सफल होता है।

बोध प्रश्न

9) "दुरवस्था" कविता का सार अपने शब्दों में लिखिए। (दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

10) "दुरवस्था" कविता लिखने के पीछे कवि का उद्देश्य क्या है? (पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

.....

.....

.....

11) इस कविता का शीर्षक "दुरवस्था" क्यों रखा गया? (तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

.....

13.5 वैकम मुहम्मद बशीर

वैकम मुहम्मद बशीर मलयालम के प्रसद्धि कथाकार हैं। उन्होंने उपन्यास भी लिखे और कहानियाँ भी लिखीं। यहाँ हम कहानीकार के रूप में उनका मूल्यांकन करेंगे। इस सन्दर्भ में हम उनकी एक कहानी "**टाइगर**" का वाचन और विश्लेषण भी करेंगे।

पृष्ठभूमि: वैकम मुहम्मद बशीर पर विचार विमर्श करने के पूर्व मलयालम कहानी साहित्य का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करना तर्कसंगत प्रतीत होता है। अन्य साहित्य विधाओं की अपेक्षा मलयालम में कहानी साहित्य का विकास अपेक्षाकृत तेजी से हुआ। मलयालम के अधिकतर आरंभिक कथाकार रोमांस प्रधान कहानियां लिखते थे। उन्होंने अपनी कहानियों में प्रेम को विशेष महत्व दिया। इनकी कहानियों में विनोद और वैचित्र्य का वर्चस्व है। वस्तुतः आरम्भ में कहानीकार अंग्रेजी की नकल करके कहानियाँ लिखते थे। इन कहानियों का प्रकाशन "विद्याविनोदिनी", "भाषापोषिणी" जैसी मासिक पत्रिकाओं में हुआ करता था। मलयालम के प्रारंभिक कहानिकारों में प्रमुख हैः ओटुविल कुंञिकृष्ण मेनन, सी. कुञिराम मेनन, अम्पाटि नारायण पोतुवाल, के. सुकुमारन, सी.बी. कृष्ण पिल्ले आदि।

इसके बाद के कहानी लेखकों ने कहानी में यथार्थवाद का समावेश किया। इसमें तकषी शिवशंकर पिल्ले, केशवदेव, बशीर, पोटेक्काड, पोनकन्नम बर्की, के. सरस्वती अम्मा, पी.सी. कुट्टिकृष्णन, कारूर नीलकंठ पिल्ले आदि कहानीकार प्रमुख हैं। इन कहानीकारों ने जनता की आवाज को अपनी रचनाओं में जगह दी। इनकी कहानियों पर नवजागरण और स्वतंत्रता आन्दोलन का स्पष्ट प्रभाव दीख पड़ता है

13.5.1 एक परिचय

वैकम मुहम्मद बशीर का जन्म 1908 ई॰ में हुआ था। वे स्वतंत्रता संग्राम के सक्रिय सेनानी रहे हैं। कई बार उन्हें कारावास की सजा मिली थी। उन्होंने अपने जीवन में कभी हार नहीं मानी और सतत संघर्ष करते रहे हैं। बशीर की पीड़ा उनकी कहानियों में व्यक्त हुई है। उनकी हर रचना में एक प्रकार का स्थायी गाम्भीर्य और शोक रस हम देख सकते हैं। उनका जीवन दर्शन मनुष्य के दर्द और वेदना से जुड़ा हुआ है। अपनी एक कहानी में वे कहते है—"मनुष्य वेदनापूर्ण मन को लेकर सब कुछ देखता है, अन्तहीन स्पर्धा, अनन्त यातनाएँ, भुखमरी, व्याधियाँ, जलन, अधिकार के लिए संघर्ष, अट्टहास, घायलों का दीन रुदल—कैसी विषमता है।" उनकी कथाओं और चरित्रों में यह निस्सहायता व्यक्त हुई है। पर कहानीकार निराश नहीं है। वह जानता है कि जीवन वेदनाओं से परिपूर्ण है पर इन्हीं के बीच रहकर जीना है। सुख और दुख, इन दोनों के मेल से ही कहानीकार का जीवन-दर्शन निर्मित हुआ है।

'जन्मदिन', मूर्खों का स्वर, ताश के खिलाड़ी की बेटी, याद्दाशत, बेचारों की वेश्या, भूख आदि उनके प्रमुख कहानी-संग्रह है।

बोध प्रश्न

12) आरम्भिक मलयाली कहानीकार किस प्रकार की कहानियाँ लिखते थे? (सही उत्तर के सामने (✓) का चिह्न लगाइए)

क) तिलस्मी ( )

ख) जासूसी ( )

ग) रोमांस प्रधान ( )

घ) यथार्थवादी ( )

13) आरम्भिक मलयाली कहानीकारों और बाद के कहानीकारों की रचनाओं में मूल फर्क क्या था? (तीन पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....

.....

.....

14) वैकम मुहम्मद बशीर की तीन रचनाओं का उल्लेख कीजिए।

क) .....

ख) .....

ग) .....

13.6 "टाइगर" कहानी का वाचन

कहानीकार: वैकम मुहम्मद बशीर
अनुवादक: डॉ॰ आर॰ सुन्दरम (आरसु)

टाइगर बहुत नसीबवाला एक कुत्ता है। पूरा इलाका अकाल का शिकार हो गया था। लोग दुबले पतले हो गये थे। इस हालत में भी टाइगर हृष्ट पुष्ट था। उसकी शक्ल देखने पर लगता था मानो काले कंबल का बंडल हो। चारों पैर और पूँछ का रंग सफेद था। आँखों में लालिमा युक्त भूरा रंग था।

टाइगर सड़क की किसी आवारा कुतिया का बेटा है। शहर के किसी गटर में वह पैदा हुआ था। किन्तु उसे इन बातों का अता पता नहीं था। जब से होश संभाला तब से वह पुलिस स्टेशन में पला बढा है। चतुर्भुज के आकार में आकाश दीखती चार दीवारी है। उसका आगंन टाइगर का महासंसार है। कैदी और पुलिस उसके साथी हैं। हर किसी को वह पहचान सकता है। पुलिस इन्स्पेक्टर से उसे ज्यादा लगाव है। कैदी अक्सर बताते हैं कि इंस्पेक्टर और टाइगर की आँखें एक जैसी है।

हत्यारा, चोर और राजनीतिक कार्यकर्ता सब कैदियों में शामिल है। टाइगर के अनुसार दो ही किस्म के मानव है—पुलिस और अपराधी। लॉकप में पैंतालीस कैदी हैं। टाइगर की दृष्टि में वे सारे कैदी समान हैं। चार कैदी अलग से एक लॉकप में बन्द हैं। टाइगर इस बात की परवाह नहीं करता है कि वे राजनीतिक कार्यकर्ता हैं क्यों कि सारे लॉकप बराबर हैं। रोशनी और हवा उधर नहीं घुसती है। मलमूत्र की बदबू उधर फैली है। खटमल काट रहे हैं। इन सब को सहकर चिथड़ों से वे तन को ढके हुए है। दाढ़ी और मूछ बड़ी हो गयी हैं। एक दम पीले पड़े कंकाल उधर रहते हैं। यह कैसी अजीब स्थिति है। इधर न अंधकार है न प्रकाश। देश भर में इस प्रकार के कई लॉकप कमरे हैं। उधर से निकलती असहनीय बदबू मानवहृदयों को एकदम सुखा डालेगी। किन्तु कैदियों के विचार उस पर केन्द्रित नहीं है। खाना मिलने का विचार ही उनमें प्रबल है। सुबह की कंजी पीने के लिए ही वे रात को सो जाते हैं। कंजी पीने के बाद वे दोहपर के खाने के बारे में सोचते हैं। फिर रात के खाने के बारे में। एक दम घबराहट की स्थिति है। किसी की भी भूख नहीं मिटेगी। सब की कामना यही है कि सजा पाकर जल्दी जेल में जाना है। पुलिस द्वारा दर्ज किए मामले से छुटकारा मिलना असंभव है। जेल कैद का स्वर्ग है। उसका नरक पुलिस लॉकप है। हर कैदी के हृदय में कठिन क्रोध है। आँखों से उस क्रोध को टाइगर की ओर वे बौछार करेंगे। टाइगर पर उसका कुछ भी असर नहीं पड़ेगा। वह गंभीर होकर लॉकप के आमने-सामने घूम उठता था। कभी वह किसी लॉकप के दरवाजे के समीप जाकर लेटता था। खाना देते समय वह इंस्पेक्टर के कमरे के पहरेदार के समान खड़ा रहता था। इंस्पेक्टर खाना खाने के बाद डकार लेते हुए जूठा पत्ता कुत्ते के सामने रखता था। एक आदमी को पेट भर खाने के लिए पर्याप्त चावल उस पत्ते में होगा। कुत्ता उसे धीरे-धीरे खायेगा। जब कैदी इस दृश्य को देखते उनके मुँह में पानी भर जाता था।

खाना खाने के बाद बाग में आकर वह पौधों की छाया में लेटेगा। एक छोटी नींद के बाद वह पुनः लॉकप के दरवाजे के समीप हाजिर हो जायेगा। तब आँखों में मन्दहास छा जायेगा। उसका भाव यही होगा कि मानों वह उधर की तमाम गुप्त बातें जानता हो। कई लोगों का कसूर बनावटी है। पुलिस

और इंस्पेक्टर रिश्वत लेते हैं। उसके बाद मामला दर्ज करते हैं। कुछ आदमियों ने जीवन में एक बार चोरी की होगी। उसके बाद इलाके में कहीं चोरी होती है तो इन्हीं लोगों को अपराधी माना जाता है।

हमेशा पुलिस उनके साथ चलती है। सरकार ने हर कैदी के खाने के खर्च के लिए एक निश्चित रकम तय कर ली है। उसका तीस गुना रकम एक पुलिस के मासिक वेतन से भी ज्यादा होगा। पुलिस के लिए भी खाना और कपड़ा चाहिए। बीवी और बच्चों को पालना है। आमदनी के लिए और कोई चारा नहीं है। छोटे वेतन से पुलिस की जरूरतों की पूर्ति कैसे होगी? कैदी लोहे की छड़ो के बीच से हाथ डालकर बड़े क्रोध से टाइगर को पुचकारेंगे।

वे कहेंगे, "हमारा चावल है।"
टाइगर पूँछ हिलायेगा।

"हाँ यही तो जिन्दगी है। कौन इसको बदल सकेगा?" इस भूख से वह जानवर उनकी ओर देखेगा।

क्या असल में यह संभव है।? शुरू में कुछ लोगों ने पूछा था।

हमारी भूख मिटती नहीं है। सरकार की ओर से तय की गयी रकम का खाना हमें मिलता है।

किन्तु उन्हें पुलिस ने घूँसा दिया था। इंस्पेक्टर ने बूट पहनकर लात मारी थी। इतना ही नहीं इंस्पेक्टर ने घृणा से कहा था।

"सरकार की तय की रकम। क्या तेरा बाप है सरकार?"
क्या सरकार किसी का बाप है? उन सब लोगों ने कहा
"सरकार टाइगर है।"

क्या सही उपमा है। हर कैदी को सरकारी दर से खाना देने का दायित्व एक होटल मालिक ने ले लिया था। बहुत निचले स्तर से उसने होटल शुरू किया था। किन्तु कैदियों के कारण उसकी तरक्की हुई थी। होटल मालिक बड़ी मूंछ और तोंदवाला आदमी है। पुलिस इंस्पेक्टर से उसकी सांठ गांठ थी। उसके होटल में इंस्पेक्टर और स्टेशन राइटर रोज खाना खाया करते थे। खाना और कॉफी उन्हें मुफ्त में मिलता। इतना ही नहीं होटल मालिक से उन्हें प्रतिमाह एक निश्चित रकम भी मिलती थी। घाटे की रकम कैदियों के हिसाब से मिलती थी। रोज पचास या साठ कैदी लॉकप में होंगे। अगर उन्हें खाना नहीं देता है तो भी पूछने वाला कौन है? मान लो मामले के लिए अदालत ले जाते समय मजिस्ट्रेट से यह बात कैदी कहें तो·····हाँ उन्हें लॉकप में ही वापस आना है न। इंस्पेक्टर पूछेगा····· हँसते हुए वे पूछेंगे·····किन्तु वह हँसी। ·····

अरे तू ने कहा है न?"

फिर बेहोश होने की स्थिति तक उसे मारेगा। यों कई दिन गुजरे तो कैदी शिकायत भी नहीं करने लगे। वे उस कुत्ते से बदला लेते थे। सब लोग जानते थे कि कैदी टाइगर को पसन्द नहीं करते हैं। इंस्पेक्टर को यह बात अद्भुत लगती थी। क्यों वे लोग उस भोले भाले जानवर को पसन्द नहीं करते हैं?

किन्तु कैदियों ने टाइगर को पसन्द नहीं किया था। जब कभी मौके मिलते थे वे उसे सताते थे। जब टाइगर को पता चलता था कि कैदी उसे सताने की कोशिश करते हैं, तब वह भौंकने लगता था।

"अरे कुत्ते को कौन सता रहा है?" इंस्पेक्टर बेंत लेकर बाहर आता था। "अरे कुत्ते मैंने बताया था न टाइगर को मत छूना—किसने छुआ है वह हाथ बढ़ा दे"

लोहे की छड़ों से एक हाथ बाहर बढ़ेगा। उन अंगुलियों को मजबूती से पकड़कर इंस्पेक्टर मारेगा। उधर रोने की आवाज सुनायी पड़ेगी। हथेली पर चोट लगेगी। खून की बूँदे नीचे गिर पड़ेगी। टाइगर उसको चाट लेगा।

कैदी उस गुनाह को दुहरायेंगे। सजा उनको आन्तरिक तौर पर ज्यादा वीर बनाती थी। उस कुत्ते को छूने के गुनाह के लिए ज्यादातर कैदियों को कई बार सजा मिली है।

टाइगर बाहर नहीं जाता था। वह बहुत डरपोक था। किन्तु उधर और कोई कुत्ता आ जाये तो वह ऊँची आवाज में भौंकने लगता था। उसके पास एक बाघ का शौर्य था। किन्तु कभी कभार पुलिस

स्टेशन के बाहर जाते समय किसी कमजोर कुत्ते को देखते ही वह डर जाता था। तब वह अपनी पूंछ को पीछेवाले पैरों के बीच रखकर भीतर दौड़ता था। एक कैदी ने इस ढंग का एक दृश्य देखा था।

"देख लिया है.....हमारे इंस्पेक्टर का आगमन।"

तब एक दार्शनिक कैदी ने बताया—

"हममें से एक कैदी एक एक इंस्पेक्टर है।"

उस मुद्दे पर बड़ा वाद विवाद हुआ। एक पक्ष में तीन कैदी थे। दूसरे पक्ष में सिर्फ एक था। उसकी पराकाष्ठा में खुशी की एक खबर के साथ इंस्पेक्टर आया।

"इधर क्या झगड़ा चल रहा है?"
सब लोग चुप रहे।
"खोल दो" पहरेदार को इंस्पेक्टर ने हुकुम दिया।
पहरेदार ने लॉकप का फाटक खोला।
तुम से मिलने के लिए कुछ लोग आये हैं।

वे उधर आये तो देखा कि अभी छिड़े झगड़े के जिम्मेदार कैदी के दोस्त आये हैं। वे कई पकवान और संतरे लाये हैं। इंस्पेक्टर ने उसमें से दो संतरे खा लिए। गांव की बातें बताई गयी। किन्तु वे कतई आश्चर्यजनक बाते नहीं थी। गाँव में घोर गरीबी है। भूखे पड़कर लोग मरते हैं। युद्ध के समाचार भी सुने। चीज़ों का दाम बढ़ रहा है। आम तौर पर भयानक अकाल पड़ा है।

"हम भी उसको भोग रहे है।" झगड़ालू ने कहा।

"तुम्हारा हाल क्या है? अच्छा खाना मिलता है न? तनिक भी तकलीफ नहीं है। अच्छी क़िस्मतवाले लोग हैं।"

तब झगड़ालू ने दरवाजे के समीप खड़े कुत्ते की ओर इशारा करते हुए कहा "काश। हमें उस टाइगर कुत्ते के बराबर किस्मत होती....."

इंस्पेक्टर को बहुत हंसी आयी। वे पुनः लॉकप में बन्द हो गये। चारों कैदी बहुत सन्तुष्ट थे। उन्हें भरपेट खाने के लिए पकवान मिले थे। उस दिन संध्या को भात मिला तो कुछ बाकी था वह भी पूरा हो गया। उनके भी पहले लॉकप में पड़े कैदियों के कमरे के दरवाजे पर उन्होंने वह चावल रख दिया। उधर बाइस कैदी थे। वे बड़ी लालच से दरवाजे के पास आये। एक कैदी ने लोहे के छड़ों के बीच से पत्ते पर रखे चावल को भीतर खींच लिया। तब कुछ अन्न के दाने फर्श पर पड़े थे। उसको चाटने के लिए टाइगर उधर खड़ा था। लॉकप में इक्कीस कैदी कायदे से बैठे थे। एक कैदी चावल परोसने लगा था। उसमें बाइस कौर चावल भी नहीं होंगे। तब भी वे बड़ी ललक से उसको खाने के लिए बैठे थे। परोसने वाले ने पाँच के हाथ पर थोड़ा सा चावल डाला। टाइगर ने आगे बढ़कर फर्श पर पड़ी सब्जी चाट डाली। उसके बाद वह लोहे के छड़ों को बाटने लगा। एक कैदी ने उसके मुँह पर लात मार दी। तब वह कुत्ता प्राणभय से भौंकने लगा। पहरेदार उधर दौड़ा आया। पुलिस और इंस्पेक्टर भी आये। इंस्पेक्टर ने बाइस लोगों के हृदय को तोड़ने वाला दुर्व्यवहार किया। उनको परोसे गये चावल को इंस्पेक्टर ने एक पत्ते पर इकट्ठा करवाया।

फिर चावल बाहर लाकर कुत्ते के सामने रख दिया। इंस्पेक्टर इससे भी शांत नहीं हुआ। बाद में लॉकप खुलवाकर इंस्पेक्टर ने उनका बहुत मारा पीटा। फिर वह बाहर आ गया।

वह घटना यों गुजर गयी। उस दिन रात को दस बजे कुत्ते की आवाज सुनायी पड़ी। पुलिस स्टेशन का परिसर एकदम कांप उठा। पहरेदार ने दौड़कर देख लिया। उसने देखा कि दो कैदियों ने कुत्ते को पकड़ लिया है वे उसके मुँह को लोहे की छड़ों से भीतर की ओर दबा रहे है। उस में दो आदमी जरूर शामिल थे। पहरेदार ने सिर्फ एक को पहचान लिया था।

पुलिस इंस्पेक्टर उसे बाहर ले आया। वह एक चोरी के मामले में गुनाहगार था। इंस्पेक्टर पहले उसके मुँह पर एक घूँसा मारा। फिर उस पर एक लात जमाया। वह मुँह के बल गिर पड़ा। फिर पीठ पर

लगातार लात मारी। अन्त में उसे पकड़ कर उठा लिया। मुँह से खून आ रहा था। एक दाँत फर्श पर पड़ा था। पापड़ के आकार में खून भी जम गया था।

पैंतालीस कैदी, करीब नौ पुलिस और टाइगर ने उस दृश्य को देखा। फर्श पर पड़े खून को टाइगर ने चाट कर सुखा दिया।

इंस्पेक्टर ने पूछा-
"बोलो दूसरा कौन है?"
किन्तु वह नहीं बोला।
क्या नहीं बतायेगा?

इंस्पेक्टर ने उस कैदी के दोनों पैरों को लोहे की छड़ो से बाँधा और बैंत से उसे मारा उसका तलवा फट गया। खून बहने लगा। तब भी उसने दूसरे का नाम नहीं लगाया। वह बेहोश हो गया था उसके तल्वे की चोट को टाइगर ने अपनी खुरदरी जीभ से चाट लिया। बेहोश होने के कारण वह बिना हिले लेटा था।

टाइगर बहुत नसीबवाला एक कुत्ता है।

बोध प्रश्न

15) टाइगर कहानी का सार दस पंक्तियों में लिखिए—

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

16) कहानीकार वह क्यों कहता है कि "टाइगर एक नसीब वाला कुत्ता है।" (पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....
.....
.....
.....
.....

17) जेल कैदी का स्वर्ग है और पुलिस लॉकप उसका नरक—कैदी ऐसा क्यों सोचते हैं? (पाँच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....
.....
.....
.....
.....

18) इंस्पेक्टर इक्कीस कैदियों से भात छीनकर कुत्ते को क्यों खिला देता है? (दो पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....
.....

13.7 "टाइगर" का विश्लेषण

अभी आपने बशीर की कहानी "टाइगर" पढ़ी। कहानी पढ़ते समय आपके मन में कुछ सवाल, कुछ जिज्ञासाएँ उठी होंगी, मसलन क्या वह लेखक का अपना भोगा हुआ सत्य है? इस कहानी में कुत्ता को एक पात्र क्यों बनाया गया है? इसके पीछे लेखक का क्या मकसद था? कुत्ता किसका प्रतिनिधित्व करता है? क्या वह एक प्रतीक है? अगर है तो किसका?.....ऐसे ही सवालों का जवाब देने के लिए हम इस कहानी का विश्लेषण करने जा रहे हैं। इस क्रम में हम आपको इस कहानी की कथावस्तु, परिवेश, संरचना शिल्प और प्रतिपाद्य या उद्देश्य से परिचित कराएँगे। आइए पहले इस कहानी की कथावस्तु से परिचित हो लें।

13.7.1 कथावस्तु

वैकम मुहम्मद बशीर (जन्म 1908) मलयालम के विख्यात कथाकार हैं। वे स्वतंत्रता संग्राम के सक्रिय सेनानी रहे हैं। कई बार उन्हें कारावास की सजा मिली थी। कारावास के दिनों की स्मृतियाँ उनकी कुछ कहानियों में आयी हैं। "टाइगर" शीर्षक कहानी उनमें मुख्य है। "टाइगर" नामक एक कुत्ता इस कहानी के केन्द्र में है। कुत्ता एक प्रतीक है। वह अंग्रेज साम्राज्यवादियों की आँखों का तारा है। कैदी भूखे रहते थे। किन्तु जेल संचालकों के लाड़ प्यार में कुत्ता हृष्ट पुष्ट बन रहा था। निष्ठुरता और भ्रष्टाचार का चोली दामन संबंध यहां हम देख सकते हैं।

कहानीकार बशीर खुद कैदी थे। टाइगर कहानी में उन्होंने अनुभूत सत्य को अभिव्यक्ति दी है। स्वतंत्रता आन्दोलन के कार्यकर्ताओं को जेल में कई कटु अनुभवों का शिकार होना पड़ा था। सत्ताधारियों को विवेक नहीं था। जानवर के प्रति मानवीय व्यवहार और मानवों के प्रति जानवरतुल्य व्यवहार, यही उन दिनों का क्रम था। स्वतंत्रता सेनानियों का जेल जीवन तकलीफों से भरा था। लॉकप में प्रकाश और हवा का अभाव था। कैदियों को नाममात्र का खाना मिलता था। रिश्वत लेकर पुलिस बेकसूरों को जेल में फँसाती थी। उस युग के जेल, जेलर और कैदियों की जिन्दगी की झलक दिखाकर इस कहानी में जीवन के कटु सत्य का प्रतिपादन हुआ है। आज की तरुण पीढ़ी को स्वतंत्रता संग्राम के युग की सच्चाई का चित्र इस कहानी से मिल जायेगा।

13.7.2 चरित्र चित्रण

यह कहानी एक कुत्ते की है। कुत्ते से ही कहानी की शुरुआत होती है और अन्त भी कुत्ते से ही होता है। कहानी का आरंभ इस प्रकार हुआ—"टाइगर बहुत नसीब वाला एक कुत्ता है। पूरा इलाका अकाल का शिकार हो गया था। लोग दुबले पतले हो गये थे। उस हालत में भी टाइगर हृष्ट पुष्ट था। उसकी शक्ल देखने पर लगता था मानो काले कंबल का बंडल हो। चारों पैर और पूँछ का रंग सफेद है। आँखों में लालिमा युक्त भूरा रंग है।

टाइगर सड़क की किसी आवारी कुतिया का बेटा है। शहर के किसी गटर में वह पैदा हुआ था। किन्तु उसे इन बातों का अता पता नहीं था। जब से होश संभाला तब से वह सुबह पुलिस स्टेशन में पल बढ़ा है। चतुर्भुज के आकार में आकाश दीखती चारदीवारी है। उसका आंगन टाइगर का महासंसार है।"

कहानी का अंत भी इसी पंक्ति से होता है "टाइगर बहुत नसीब वाला एक कुत्ता है।"

इतने विस्तार से कहानीकार ने मात्र एक कुत्ते का चरित्र चित्रण नहीं किया है। यह कुत्ता एक प्रतीक है। यह सरकार का प्रतीक है, यह इंस्पेक्टर का प्रतीक है, यह उन चाटुकारों का प्रतीक है जो अपने ही बंधु बांधवों का खून चाट चाटकर हृष्ट पुष्ट हो रहे है। कहानीकार एक स्थान पर कहता है "कैदी अक्सर बताते हैं कि इन्स्पेक्टर और टाइगर की आँखें एक जैसी है।" इस प्रकार कहानीकार ने प्रकारान्तर से इन्स्पेक्टर और साम्राज्यवादी शक्ति के चाटुकारों को कुत्ते से ज्यादा नहीं माना है। उन्हें हरामी माना है, क्योंकि "टाइगर सड़क की किसी आवारी कुतिया का बेटा है।" देश द्रोहियों के खिलाफ कहानीकार का आक्रोश कितना तीखा है, यह इसी बात से पता चलता है।

यह कुत्ता सरकार के टुकड़ों पर पलता है। इन्स्पेक्टर का जूठन खाता है। मौका मिलने पर कैदियों का भोजन भी यह चट कर जाता है। टाइगर केवल कुत्ता नहीं, वह सरकार है। जिस प्रकार साम्राज्यवादी सरकार स्वतंत्रता सेनानियों का खून पीती है, उसी प्रकार यह कुत्ता भी कैदियों के खून को चाहता है। कैदियों को मार पड़ती है और इसे संतोष मिलता है।

कैदी इस कुत्ते को बिल्कुल पसन्द नहीं करते। कैदियों को जब भी मौका मिलता है, वे कुत्ते को पीट डालते हैं। उन्हें इसका दंड भुगतना पड़ता है। इंस्पेक्टर के डंडे से उसका शरीर तोड़ दिया जाता है, पर वे हार नहीं मानते। ऐसा लगता है कि कहानीकार बशीर इस प्रतीक के माध्यम से क्रांतिकारियों का समर्थन कर रहे हैं। आपको याद होगा कि भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद सरीखे क्रांतिकारियों ने अंग्रेजों पर सशस्त्र हमला किया। अधिकांश क्रांतिकारी अपने धोखेबाज साथियों की धोखेबाजी के कारण पकड़े गये। वे मार खाते रहे पर अंतिम दम तक अंग्रेजों पर आक्रमण करना नहीं छोड़ा। कुत्ते और कैदी की इस कहानी से इन घटनाओं की याद ताजा हो जाती है।

13.7.3 परिवेश

यह कहानी स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान लिखी गयी थी। इस कहानी की पृष्ठभूमि में स्वतंत्रता आन्दोलन है। चरित्र चित्रण के अंतर्गत आपने पढ़ा कि टाइगर नाम के एक कुत्ते के इर्द गिर्द सारी कहानी घूमती है। वस्तुतः टाइगर इस कहानी में एक पात्र मात्र नहीं है बल्कि उसमें कहानी की कथावस्तु भी शामिल है; परिवेश भी उसी के माध्यम से निर्मित हुआ है और उसी के माध्यम से कहानी का प्रतिपाद्य भी स्पष्ट किया गया है।

इस कहानी का घटनाक्रम पुलिस लॉकप और थाने के भीतर चलता है। पुलिस लॉकप का बड़ा तल्ख चित्र कहानीकार ने खींचा है—"रोशनी और हवा उधर नहीं घुसती है। मल मूत्र की बदबू उधर फैली है। खटमल काट रहे हैं। इन सबको सहकर चिथड़ों से वे तन को ढके हुए हैं। दाढ़ी और मूछ बड़ी हो गयी है। एकदम पीले पड़े कंकाल उधर रहते है। यह कैसी अजीब स्थिति है। इधर न अंधकार है न प्रकाश।" कहानीकार ने अपनी कहानी में जेल के परिवेश को देश के परिवेश से जोड़कर कहानी का आयाम और उद्देश्य विस्तृत कर दिया है।

"देश भर में इस प्रकार के कई लॉकप कमरे हैं। उधर से निकलती असहनीय बदबू मानव हृदयों को एकदम सुखा डालेगी।" वस्तुतः कहानीकार यहाँ कहना चाहता है कि देश ही एक लॉकप है, जहाँ सारे भारतवासी अमानवीय स्थिति में रहने के लिए बाध्य हैं। जहाँ इन्स्पेक्टर और उसके चमचे टाइगर की तो मौज है, जो साम्राज्यवादी शक्ति के तले फल फूल रहे हैं। पर आजादी के दीवानों को एक रोटी क्या अन्य का एक दाना भी मयस्सर नहीं।

पूरी कहानी एक भयावह रात की तरह प्रतीत होती है। ऐसा लगता है हम किसी बंद कमरे में रोशनी गुल करके डरावना दृश्य देख रहे हों। इस कहानी को डरावना सपना भी कहा जा सकता है। हाँ, आपके और हमारे लिए तो यह डरावना सपना ही है, क्योंकि हमने उन यातनाओं को झेला नहीं, जिन्हें स्वतंत्रता सेनानियों को झेलना पड़ा। पर यह एक ऐसा डरावना सपना है जो आज भी प्रासंगिक और सत्य है। आज भी आप किसी पुलिस लॉकप में जाइए, कैदियों को इसी हालत में पाइएगा। राज्य बदल गया, शासक बदल गये, लेकिन शासन का तरीका नहीं बदला, पुलिस के डंडे में कोई फर्क नहीं आया है। वस्तुतः हम अंग्रेजों से प्राप्त परिवेश को आज तक ढोए जा रहे हैं।

13.7.4 संरचना-शिल्प

"टाइगर" कहानी एक प्रतीकात्मक कहानी है। इसमें एक कुत्ते "टाइगर" के माध्यम से कहानीकार ने कहानी का "प्लाट" निर्मित किया है। कहानी की कथा एक कुत्ते की जीवनी से आरम्भ होती है, पर उसके माध्यम से कहानीकार ने स्वतंत्रता आन्दोलन के दमन की कहानी प्रस्तुत की है। इसमें लेखक ने वर्णनात्मक शैली का सहारा लिया है। कहानी का आरम्भ लेखक कथा कहने की शैली में करता है। पर बशीर एक अन्तर्मुखी कहानीकार है, अतः इस वर्णनात्मकता में कहानीकार की अन्तर्मन की कथा छिपी हुई है।

कहानाकार कहाना कहत वक्त पर्द के पीछे रहना पसन्द नहीं करता, बल्कि बराबर वह कथा के साथ साथ टिप्पणी करता चलता है। पर वह कहानी के साथ छेड़छाड़ करना पसन्द नहीं करता है, इसलिए कहानी अबाध गति से बढ़ती चली जाती है।

यह एक प्रतीक कहानी है। टाइगर, पुलिस लॉकप, इन्स्पेक्टर, कैदी सभी प्रतीक मात्र हैं। टाइगर साम्राज्यवादी शक्ति का प्रतीक है, इन्स्पेक्टर साम्राज्यवादी शक्ति का पोषक है, कैदी देश के स्वतंत्रता सेनानी है और लॉकप पूरे देश के माहौल का प्रतीक है। इस कारण पूरी कहानी में एक जटिल कथावस्तु का निर्माण किया गया है। पर इस जटिलता के बावजूद कहानीकार का संदेश स्पष्ट है। यह कहानीकार की शैली की उत्कृष्टता का प्रमाण है।

पूरी कहानी में एक शोक का वातावरण छाया हुआ है। इस वातावरण के निर्माण में लेखक की अभिव्यक्ति शैली, व्यंग्य और हास्य का पूरा योग है। शोक और व्यंग्य का मिला जुला रूप कहानी को सशक्त बनाता है।

कहानी की भाषा सरल है और सीधे पाठक के हृदय को छूती है। कहीं भी कहानीकार ने भाषा को जटिल बनाने का प्रयास नहीं किया है। भाषा सरल है, पर सपाट नहीं है, इसमें लेखक की वेदना छिपी हुई है। वेदना और पीड़ा से सनी यह भाषा कहानी को काफी मार्मिक बना देती है।

अच्छी कहानी वह होती है, जिसमें कुछ मार्मिक प्रसंग हों। इस कहानी में भी लेखक ने कई मार्मिक प्रसंगों का निर्माण किया है। कैदियों के सामने से भात हटाया जाना और कुते के सामने परोस दिया जाना, कैदियों का पिटना और कैदी के शरीर से रिस रहे खून का कुत्ते द्वारा चाटना, ऐसे ही कुछ मार्मिक प्रसंग है, जो पाठक हो छुए बिना नहीं रहते हैं।

कहानी का अंत भी कलात्मक है। कहानीकार ने कहानी का अंत खुला छोड़ दिया है। कोई समाधान नहीं प्रस्तुत किया है। "टाइगर" एक नसीबवाला कुत्ता है, "से कहानीकार कहानी आरंभ करता है और इसी वाक्य से कहानी का अंत भी करता है। कहानी को अपने शीर्ष पर पहुँचाकर कहानीकार उसे छोड़ देता है। कैदी के शरीर से रिस रहे खून को टाइगर चाहता है और कहानीकार केवल इस टिप्पणी के साथ कि टाइगर एक नसीबवाला कुत्ता है, कहानी समाप्त कर देता है। वस्तुतः कहानी का यह अंत त्रासदीपूर्ण है, उसी प्रकार जैसा प्रेमचंद के कफन, ठाकुर का कुँआ और उनके उपन्यास "गोदान" का अंत। इस कहानी को हम लोमहर्षक त्रासदी की संज्ञा दे सकते हैं। यह त्रासदी कहानी के अंत करने के ढ़ग से और भी हृदयस्पर्शी हो गयी है।

13.7.5 प्रतिपाद्य

यहाँ कहानीकार का उद्देश्य स्पष्ट है। वह इस कहानी के माध्यम से अंग्रेजों के दमन और शोषण तथा स्वतंत्रता सेनानियों के संघर्ष को प्रतिपादित करना चाहता है। यह कहानी स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान लिखी गयी और इसमें लेखक ने अपनी वेदना व्यक्त की है। यहाँ कहानीकार की यह वेदना उसकी वेदना उसकी व्यक्तिगत वेदना मात्र नहीं है, बल्कि यह पूरे देश के स्वतंत्रता सेनानियों की पीड़ा और वेदना है। ध्यातव्य है कि बशीर एक स्वतंत्रता सेनानी रहे हैं और उन्हें कई बार जेल भी जाना पड़ा है। अतः उन्होंने अपने भोगे हुए सत्य को कहानी में रूपांयित किया है।

आइए, अब थोड़ा इस कहानी के शीर्षक पर भी विचार कर लें। इस कहानी का शीर्षक "टाइगर" है। टाइगर एक कुत्ते का नाम है, जिसके इर्द गिर्द कथा घूमती है। टाइगर इस कहानी प्लाट भी है, पात्र भी है। उसी से कहानी का पूरा परिवेश निर्मित हुआ है और उसी के माध्यम से कहानीकार ने अपनी विचारधारा, अपना मत, अपनी बात सामने रखी है। इसलिए इस कहानी का शीर्षक "टाइगर" उपयुक्त है।

बोध प्रश्न

18) सही उत्तर के सामने (√) का निशान लगाइए

टाइगर कहानी का केन्द्रीय पात्र कौन है?

क) कैदी ( )

ख) इन्स्पेक्टर ( )

ग) कुत्ता ( )
घ) सेठ ( )

19) "टाइगर" किस प्रकार की कहानी है?
क) सुखात्मक ( )
ख) मनोवैज्ञानिक ( )
ग) प्रतीकात्मक ( )
घ) पारिवारिक ( )

20) "टाइगर" का कुत्ता किस प्रवृत्ति का प्रतीक है? (पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....
.....
.....
.....
.....

21) "टाइगर" के संरचना शिल्प पर अपने विचार प्रकट कीजिए। (दस पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....
.....

22) "टाइगर" कहानी का प्रतिपाद्य क्या है? (पांच पंक्तियों में उत्तर दीजिए)

.....
.....
.....
.....
.....

13.8 सारांश

इस इकाई में आपने मलयालम साहित्य के दो प्रसिद्ध रचनाकारों—कुमारनाशान और बशीर का परिचय प्राप्त किया। आपने कुमारनाशान की कविता "दुरवस्था" और बशीर की कहानी "टाइगर" का भी वाचन-विश्लेषण किया।

कुमारनाशान की कविता यात्रा में कई पड़ाव देखने को मिलते है। उन्होंने रोमांटिक कविताएँ भी लिखी, अपनी कविताओं में उपनिषद् के तत्व चिंतन का भी समावेश किया, आत्मगीत और शोकगीत भी लिखे। दूसरी तरफ उन्होंने समाज में व्याप्त असमानता और शोषण का भी पर्दाफाश किया और उसपर जमकर प्रहार किया। "दुरवस्था" इसका ज्वलंत उदाहरण है।

बशीर स्वतंत्रता सेनानी थे। उन्होंने अपने जीवन काल में कई बार जेल की यात्रा की। उनकी कहानियों में उनकी जेल यात्रा और स्वतंत्रता संघर्ष की झलक मिलती है। "टाइगर" इसी प्रकार की कहानियों का प्रतिनिधित्व करता है।

13.9 शब्दावली

अवनति	गिरावट, पतन
उच्चकुलोद्भवा	ऊँचे कुल में जन्म लेने वाला
उन्माद्	पागलपन
निम्न कुलोद्भवा	निम्न कुल में जन्म लेने वाला
समक्ष	सामने
सान्निध्य	साथ

13.10 उपयोगी पुस्तकें

मलयालम साहित्य का इतिहास—'डॉ. के. भास्करन नायर, हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन, हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ

मलयालम साहित्य का इतिहास, पी.के. परमेश्वरन् अय्यर, साहित्य आकदमी, दिल्ली

13.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) ग
2) ख
3) ग
4) देखिए 13.2.2
5) क
6) ग
7) देखिए 13.3.3
8) "ग्रामवृक्षल्लि कुयिल"
9) देखिए 13.4.2
10) देखिए 13.4.3
11) देखिए 13.4.3
12) ग
13) आरम्भिक मलयालम कहानीकार जहाँ रोमांस, विनोद और वैचित्र्य को महत्व देते थे, वहीं बाद के कहानीकारों ने अपनी रचनाओं में सामाजिक यथार्थ को अभिव्यक्त किया। (देखिए 13.5)
14) देखिए 13.5.1
15) कहानी ठीक से पढ़िए और खुद लिखने का प्रयास कीजिए।
16) "टाइगर" को दो वक्त का भोजन नसीब है, पर लॉकप में बंद कैदियों और अकाल से त्रस्त ग्रामीणों को नहीं।
17) लॉकप में कैदियों को भोजन तक नसीब नहीं। वहाँ उन्हें अमानवीय तरीके से रखा जाता है। यहाँ उसे अपने भविष्य का भी पता नहीं होता। जेल में कम से कम दो जून की रोटी मिल जाती है। यह पता रहता है कि कब तक यहाँ रहना है।
18) ग
19) ग
20) देखिए 13.7.2
21) देखिए 13.7.4
22) देखिए 13.7.5

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

DCEHI-103

आधुनिक भारतीय साहित्य
नवजागरण और
राष्ट्रीय आंदोलन

खण्ड

4

दक्षिणाचंलीय साहित्य

इकाई- 14

तेलुगु साहित्य - I 337

इकाई- 15

तेलुगु साहित्य - II 356

इकाई- 16

कन्नड़ साहित्य - I 376

इकाई- 17

कन्नड़ साहित्य - II 387

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. चंद्रकांत बांदिवडेकर
हिन्दी विभाग
मुंबई विश्वविद्यालय

प्रो. बी.एच. राजूरकर
मराठवाडा विश्वविद्यालय
औरंगाबाद

प्रो. मलिक मुहम्मद
हिन्दी विभाग—
कालीकट विश्वविद्यालय
कालीकट, केरल

प्रो. भीमसैन निर्मल
उस्मानिया विश्वविद्यालय
हैदराबाद

प्रो. रमेशकुंतल मेघ
हिन्दी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

प्रो. इंद्रनाथ चौधरी
सचिव, साहित्य अकादमी
नयी दिल्ली

प्रो. अंबाशंकर नागर
गुजरात विद्यापीठ
अहमदाबाद

प्रो. जी.पी. देशपांडे
मेन्टर फार ईस्ट एशियन स्टडीज
स्कूल ऑफ इन्टरनेशनल
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली

संकाय सदस्य
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
प्रो. बी. रा. जगन्नाथन

डा. शत्रुघ्न कुमार
व्याख्याता, हिन्दी
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक
डॉ. सी. एच. रामुलु (इकाई सं. 14)
रीडर, हैदराबाद विश्वविद्यालय
हैदराबाद

डा. विजयशेखर रेड्डी (इकाई सं. 15)
मुख्य अधिकारी
केंद्रीय हिन्दी संस्थान
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(शिक्षा विभाग), हैदराबाद

बी. वै. ललिताम्बा (इकाई सं. 16, 17)
आचार्य तथा विभागाध्यक्ष
देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर

पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक
डॉ. शत्रुघन कुमार
व्याख्याता, हिन्दी विभाग
इन्दिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

खंड संयोजक
डॉ. शत्रुघ्न कुमार
व्याख्याता, हिन्दी विभाग
इंदिरा गांधी
राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

संकाय सदस्य: इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

डॉ. जवरीमल पारख
रीडर, हिन्दी

डॉ. रीतारानी पालीवाल
रीडर, हिन्दी

डॉ. सत्यकाम
व्याख्याता, हिन्दी

डॉ. राकेश वत्स
व्याख्याता, हिन्दी

श्रीमति विम.. खांडेकर
व्याख्याता, हिन्दी

श्रीमति विमल खांडेकर
व्याख्याता, हिन्दी

मुद्रण प्रस्तुति

सुश्री पुष्पा गुप्ता
कॉपी एडिटर
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

मई 1997

© इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

ISBN-81-7263-566-4

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना, मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन में पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खंड 4 का परिचय

आधुनिक भारतीय साहित्य: नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना स्नातक उपाधि कार्यक्रम के अंतर्गत हिन्दी का पाँचवां ऐच्छिक पाठ्यक्रम है। इसके अंतर्गत आपने तीन खंडों का अध्ययन कर लिया है। यह चौथा खंड दक्षिणांचलीय साहित्य से संबंधित है। खंड में दो महत्वपूर्ण भारतीय भाषाओं तेलुगु और कन्नड़ के राष्ट्रीय एवं सामाजिक साहित्य का अध्ययन कराया जाएगा। स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान रचे गए साहित्य से परिचय कराना ही हमारा उद्देश्य है। भारतीय इतिहास ही नहीं बल्कि संपूर्ण विश्व के लिए 19वीं शती का समय अत्यंत महत्वपूर्ण था। इस अवधि में मानव जीवन में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। एक ऐसा परिवर्तन जो व्यक्ति के सर्वांगीण विकास से संबंधित था। विभिन्न राजनैतिक एवं सामाजिक बंधनों से मुक्ति का समय था। भारत के लिए भी यह काल महत्वपूर्ण परिवर्तन का था।

देश के अन्य भागों की तरह तेलंगाना एवं कन्नड प्रदेश में भी एक परिवर्तन का दौर शुरू हुआ। यह खंड चार इकाइयों में बांटा गया है जो इस प्रकार से हैं:

इकाई 14: तेलुगु साहित्य-I
इकाई 15: तेलुगु साहित्य-II
इकाई 16: कन्नड़ साहित्य-I
इकाई 17: कन्नड़ साहित्य-II

प्रथम दो इकाइयों में तेलुगु भाषा साहित्य के उद्भव, विकास एवं विस्तार का अध्ययन कराया जाएगा। राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान जो महत्वपूर्ण रचनाएँ की गईं उनका विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा। तेलुगु भाषा साहित्य के महत्वपूर्ण रचनाकारों का भी अध्ययन कराया जाएगा। विभिन्न गद्य एवं पद्य साहित्य से उदाहरणों द्वारा हम जानेंगे कि किस प्रकार साहित्य द्वारा चेतना फैलाई गई। वीरेशलिंगम विश्वनाथ सत्यनारायण श्री श्री, आदि रचनाकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय एवं सामाजिक जागरण का कार्य किया।

खंड की अन्य दो इकाइयाँ कन्नड़ भाषा साहित्य से संबंधित हैं। राष्ट्रीय आंदोलन तथा गांधी जी का प्रभाव कन्नड़ क्षेत्र पर पड़ा। लोक शैली पर रची गई रचनाओं में लावणी तथा दुमदुमे द्वारा जन-जागरण का कार्य हुआ। सिम्पी राव नीलकण्ठप्पा तथा रामस्वामी ने गीतों की रचना की जो प्रदेश में काफी प्रचारित हुआ। इकाई में ऐसे ही रचनाकारों की रचनाओं का अध्ययन कराया जाएगा। रामचंद्रराव ने गांधी जी से प्रभावित होकर राष्ट्रीय चेतना से युक्त रचनाओं का कुवेंपु ने अपनी रचनाओं द्वारा जन-जागरण का कार्य किया। इस कवि का विशेष अध्ययन कराया जाएगा। राष्ट्रीय चेतना जगाने के लिए महिला लेखकाएँ भी पीछे नहीं रहीं। तिरुलाम्बा, इनमें प्रमुख थीं। 17वीं इकाई में विस्तार से अन्य कन्नड़ रचनाकारों का अध्ययन कराया जाएगा।

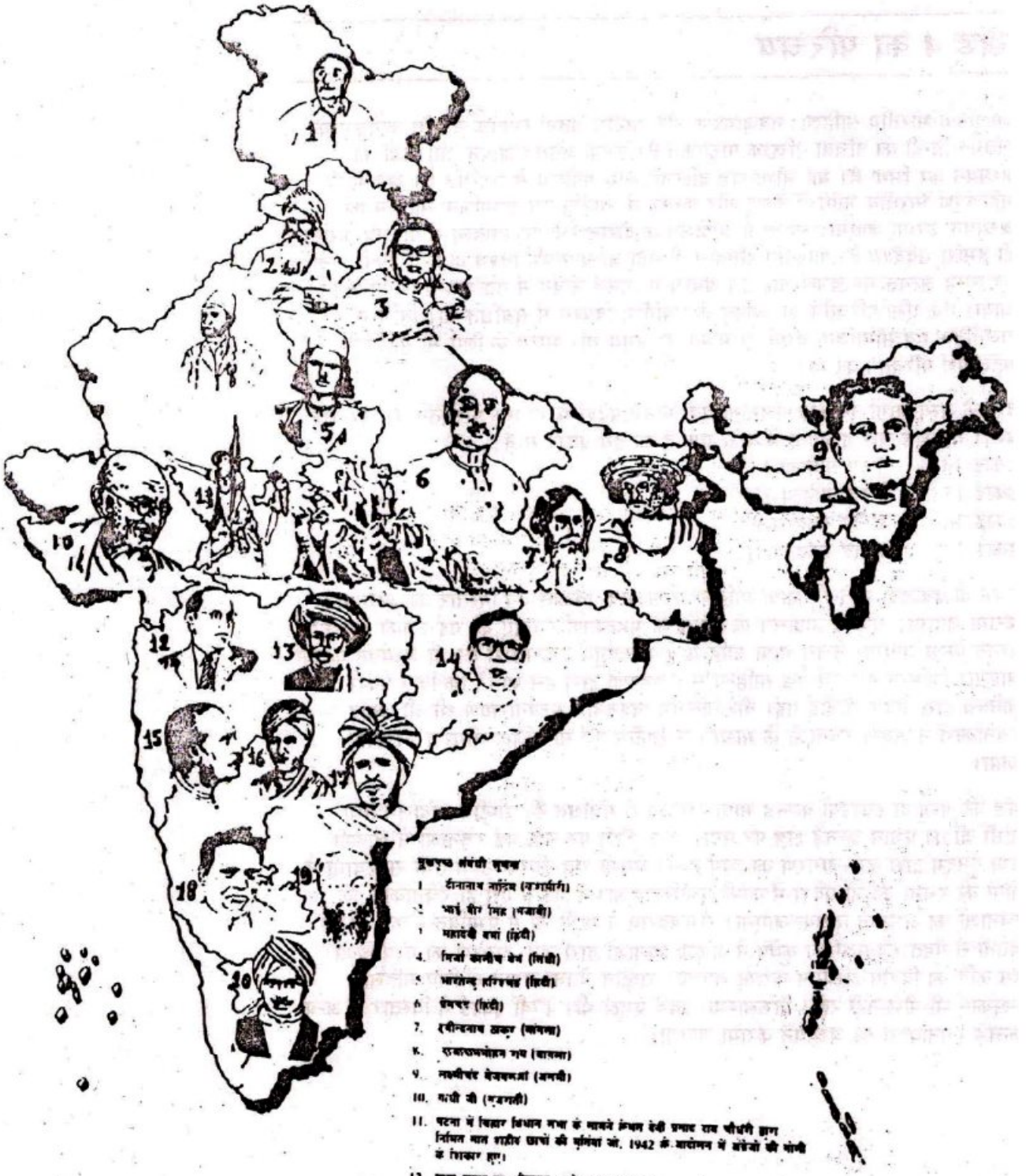

मुखपृष्ठ संबंधी सूचना

1. दीनानाथ भार्गव (कश्मीरी)
2. भाई वीर सिंह (पंजाबी)
3. महादेवी वर्मा (हिंदी)
4. मिर्जा खलीफ बेग (सिंधी)
5. भारतेन्दु हरिश्चंद्र (हिंदी)
6. प्रेमचंद (हिंदी)
7. रवीन्द्रनाथ ठाकुर (बांग्ला)
8. एकात्मकथोक्तम सेन (बांग्ला)
9. नजरुलइस्लाम (बांग्ला)
10. गांधी जी (गुजराती)
11. पटना में बिहार विधान सभा के सामने लेफ्ट लेफ्टि प्रभात राय चौधरी द्वारा निर्मित सात शहीद छात्रों की मूर्तियां जो, 1942 के आंदोलन में अंग्रेजों की गोली के शिकार हुए।
12. राव साहब डा. श्रीनिवास कन्नेडकर (महाराष्ट्र)
13. ज्योतिबा फुले (महाराष्ट्र)
14. डा. बाबासाहब आंबेडकर (महाराष्ट्र)
15. केलप्पन (मलयाली)
16. डा. के शिवराम कारन्त (कन्नड़)
17. काडकोल वीरेन्द्रलिंगम (तेलुगु)
18. कुमारन आशान (मलयालम)
19. चिदंबरम् पिल्लै (तमिल)
20. सुब्रह्मण्यम भारती (तमिल)

इकाई 14 तेलुगु साहित्य-I

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 तेलुगु भाषा और लिपि

14.3 पृष्ठभूमि

14.4 तेलुगु साहित्य: प्रमुख साहित्यकार
- 14.4.1 श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री
- 14.4.2 कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु
- 14.4.3 श्री गुरजाड वेंकट अप्पाराव
- 14.4.4 वेदम वेंकटराय शास्त्री
- 14.4.5 धर्मवरपु कृष्णमाचार्युलु
- 14.4.6 गिडुगु वेंकटराममूर्ति पंतुलु
- 14.4.7 काशी भट्ट ब्रह्मय्या शास्त्री
- 14.4.8 नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि
- 14.4.9 पानुगंटि लक्ष्मी नरसिंहाराव
- 14.4.10 चिलुकमर्ति लक्ष्मी नरसिंहम्
- 14.4.11 चेन्नाप्रगड भानुमूर्ति
- 14.4.12 कामराजु वेंकट लक्ष्मण कवि

14.5 काशीनाथुनि नागेश्वर राव पंतुलु
- 14.5.1 काव्य साहित्य
- 14.5.2 भाषा-शिल्प
- 14.5.3 गद्य
- 14.5.4 नाटक

14.6 वाचन: स्त्री शिक्षा (वीरेशलिंगम पंतुलु)

14.7 वाचन: देशभक्ति (स्व. गुरजाड अप्पाराव)

14.8 सारांश

14.9 शब्दावली

14.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

14.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

दक्षिणांचल साहित्य के अंतर्गत इस खंड में हम तेलुगु तथा कन्नड साहित्य का उध्ययन करेंगे। तेलुगु भाषा साहित्य से संबंधित इस 14वीं इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- तेलुगु भाषा साहित्य, लिपि आदि के बारे में बता सकेंगे,
- आधुनिक तेलुगु साहित्य में हुए परिवर्तन को स्पष्ट कर सकेंगे,
- उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण में साहित्य द्वारा व्यक्त राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना का विश्लेषण कर सकेंगे, तथा
- तत्कालीन महत्वपूर्ण लेखकों एवं उनके रचित साहित्य द्वारा भारत के नव-निर्माण में जो योगदान मिला उसे भी बता सकेंगे।

14.1 प्रस्तावना

हिन्दी में ऐच्छिक पाठ्यक्रय-05 "आधुनिक भारतीय साहित्य: नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन" के अंतर्गत यह चौथा खंड है। इस खंड में आप दक्षिणांचल साहित्य के अंतर्गत दो महत्वपूर्ण भारतीय भाषाओं–तेलुगु तथा कन्नड़–के साहित्य का अध्ययन करेंगे। यह इकाई इस खंड की पहली इकाई है अर्थात् पाठ्यक्रम की 14वीं इकाई है। इसमें हम तेलुगु साहित्य का अध्ययन करेंगे। भारत के अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य में जिस प्रकार का बदलाव हुआ वैसा तेलुगु भाषा साहित्य में भी हुआ। राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में तत्कालीन लेखकों को एक विशेष प्रकार के साहित्य रचने की प्रेरणा दी। यह विशेष प्रकार का साहित्य भारत के नवजागरण से संबंधित था। आइए पहले तेलुगु भाषा लिपि आदि के बारे में जानें।

14.2 तेलुगु भाषा और लिपि

उत्तर में 12-41 अक्षांश से लेकर दक्षिण में 20 "अक्षांश और पूर्व में 70 देशान्तर से लेकर 84-50" देशान्तर के बीच आन्ध्र प्रदेश अवस्थित है। आज आन्ध्र प्रदेश की जनसंख्या लगभग 7 करोड़ है। इसका क्षेत्रफल 1,06,286 वर्ग मील है। भारत संघ के राज्यों में अकारादि क्रम में यह प्रथम तथा जनसंख्या की दृष्टि से चौथा राज्य है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भारत का पाँचवाँ राज्य माना जाता है।

'आन्ध्र' शब्द प्रारम्भ में देशवाचक के रूप में प्रयुक्त हुआ। कालान्तर में इसका प्रयोग भाषापरक हो गया। "आन्ध्र पथ" प्रदेशवाची और 'आन्ध्र' जातिवाचक दोनों का प्रयोग प्रचलित मिलता है। पुराणों में तेलुगु और तेलुगु शब्दों का प्रयोग हुआ। तेलुगु त्रिलिंग से बना है। श्री शैल, कालेश्वरम तथा द्राक्षाराममु नामक तीन प्रसिद्ध शैव क्षेत्र (तीर्थ) के मध्य स्थित भूभाग है। प्राचीनकाल में गंगा नदी के तट से लेकर उड़ीसा के कटक तक का भूभाग उत्तर कलिंग (उत्कल) नाम से व्यवहृत होता था। कटक से लेकर मलय पर्वत श्रेणी तक मध्य कलिंग गोदावरी तक का प्रान्त दक्षिण कलिंग नाम से पुकारा जाता था। ये तीन कलिंग शब्द इस आन्ध्र के एक प्रान्त के लिए व्यवहृत होता है। त्रिलिंग से ही तेलुगु का उद्भव हुआ। तेलुगु शब्द के मूल में तेने-अगु है अर्थात् तेने से तात्पर्य मधु है और अगु से तात्पर्य मधुसम है) भाषा के माधुर्य के कारण तेनुगु कहलाया।

आन्ध्र राज्य के संस्थापक आन्ध्र विष्णु माना जाता है। बाद में सातवाहन राजाओं ने उसको सुस्थापित किया। पश्चात् इक्ष्वांकु, बृहत्पलायन, शालंकायन, विष्णुकुंडिन, चालुक्य, चोल, कामतीय, रेड्डी तथा नायक राजा, विजयनगर राजा आदि ने शासन कर आन्ध्र राज्य को श्री सम्पन्न बनाया। गोलकोण्डा के नवाब कुली कुत्बशाह इब्राहीम कुली कुत्बशाह आदि ने तेलुगु भाषा से प्रेम किया। तेलुगु भाषा और साहित्य के विकास में अपना योगदान दिया।

तेलुगु अत्यन्त मधुर भाषा है। क्योंकि वह स्वरांत है। स्वर प्रधान संगीत का और वर्ण प्रधान साहित्य का सुन्दर समन्वय हुआ है। इसीलिए देशी तथा विदेशी विद्वानों ने इटालियन आफ दि ईस्ट कहकर इसकी प्रशंसा की है। ब्रज भाषा के समान संगीतात्मक है। तेलुगु भाषा में आर्य तथा द्रविड़ भाषाओं का समन्वय हुआ है। संस्कृत के शब्द भण्डार से यह सुसम हुआ है। सर्वनाम, क्रियापद, द्रविड़ से और संख्यावाचक आर्य भाषाओं से लिया हुआ है। 80% शब्द संस्कृत के होने के कारण यह संस्कृत के निकट की हो गई। परन्तु मूलतः तेलुगु द्रविड भाषा परिवार से है। ई. पु. 500 वर्ष में तेलुगु भाषा का प्रयुक्त होने का प्रमाण है।

तेलुगु लिपि की उत्पत्ति ब्रह्मी की द्रविड शैली से मानी जाती है। परन्तु इसके अक्षर गोलकार, सुन्दर होते हैं। उत्तर भारत में भूर्जपत्र तथा दक्षिण भारत में ताल पत्र अधिक प्राप्त होते हैं। उत्तर की लिपियों में खड़ी पाई है जो भूर्ज पत्रों पर आसानी से लिखी जाती है। वही खड़ी पाई ताल पत्र पर लिखी नहीं जा सकती। ताल पत्र फट जायेगा। इसलिए दक्षिणी भाषाओं (तेलुगु, कन्नड़, तमिल, मलयालम) के अक्षर गोलाकार में रुपायित हुए। अब हम तत्कालीन पृष्ठभूमि को जानें।

बोध प्रश्न

1) एक या दो पंक्तियों में उत्तर लिखिए:

i) तेलुगु भाषा बोलने वालों की संख्या कितनी है?

.....

ii) जनसंख्या की दृष्टि से तेलुगु भारत के किस क्रमांक में आता है?

.....

iii) तेलुगु का शाब्दिक अर्थ क्या है?

.....

iv) तेलुगु भाषा में कितना प्रतिशत शब्द संस्कृत का है?

.....

v) तेलुगु लिपि की उत्पत्ति का मूल क्या है?

.....

2) उचित शब्द रखकर वाक्य पूर्ति कीजिए:

i) आंध्र प्रदेश का निर्माण ..... माह में सन् ..... को हुआ।

ii) ब्रिटिश शासन के खिलाफ आवाज उठाने वाले तेलुगु भाषा के प्रथम कवि ..... थे।

iii) गोदावरी मण्डल की स्थापना सन् ..... में सरकार की ..... के विरुद्ध की गई।

iv) पी. रामशास्त्री ने ..... पद्यों में राष्ट्र भक्ति व्यक्त की है।

v) "द काई मदर ऑफ इण्डिया" की रचना ..... कवि ने की।

vi) लाला लाजपतराय की गिरफ्तारी के विरोध में आंध्र प्रदेश के लेखक ..... ने महत्वपूर्ण रचनाएँ कीं।

vii) "भारत माता" के रचयिता ..... थे।

3) एक या दो पंक्तियों में उत्तर लिखिए:

i) मृत्याल सरालु के रचयिता कौन हैं?

14.3 पृष्ठभूमि

1857 की भारत की क्रांति के परिणामस्वरूप आन्ध्र में स्वतंत्रता के लिए अनेक क्षेत्रों में गतिविधियाँ बढ़ गईं। 1885 में कांग्रेस की स्थापना, आर्य समाज की स्थापना 1905 में वंग-भंग आदि से आन्ध्र जनता में जोश भर गया। ई. सन् 1913 में बापट्ला नामक शहर में आन्ध्र महासभा का अधिवेशन हुआ। लगातार 40 वर्ष के संघर्ष के बाद 1953 के अक्तूबर की पहली तारीख को आन्ध्र प्रदेश की स्थापना हुई। और जिसके फलस्वरूप 1956 में नवम्बर पहली तारीख को आन्ध्र प्रदेश का निर्माण हुआ। महात्मा गांधीजी, के नेतृत्व में सम्पन्न स्वतन्त्रता आन्दोलन, असहयोग आन्दोलन, नमक सत्याग्रह, व्यक्तिगत सत्याग्रह, झण्डा सत्याग्रह, भारत छोड़ो आन्दोलन आदि का प्रभाव आन्ध्र पर पड़ा और आन्ध्र जनता ने सभी आन्दोलनों में सक्रिय भाग लिया। इन सबका प्रभाव तेलुगु साहित्य पर देखा जाता है।

राजनैतिक घटना चक्र तथा साहित्यिक प्रतिक्रिया

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही विविध राज्यों में राष्ट्रीय चेतना प्रज्वलित हुई इस राष्ट्रीय चेतना से प्रभावित होकर कवियों ने उसके अनुरूप कविताएं लिख कर देश की जनता को स्वतन्त्रता प्राप्त करने के मार्ग में अग्रसर किया। इस दिशा में तेलुगु साहित्य के कवियों का योगदान उल्लेखनीय है।

भारत में क्रांतिकारी की जन्मभूमि के रूप में बंगाल का नाम चिरस्मरणीय है। तत्कालीन

गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन के बंगाल राष्ट्र का विभाजन करने से बंग देश की प्रजा ने प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश सरकार का विरोध किया। वे स्वराज्य प्राप्ति की दिशा में अग्रसर हुए। बंगदेश में प्रारंभिक इस आन्दोलन ने सारे देश को प्रभावित किया।

"बन्देमातरम्" का नारा देश की सारी दिशाओं में गूँज उठा। इससे प्रभावित होकर आन्ध्र राज्य ने भी आन्दोलन का मार्ग अपनाया। इससे शिक्षित वर्ग अत्यधिक रूप से प्रभावित हुआ। इस आन्दोलन को आन्ध्र राज्य में प्रसार करने के उद्देश्य से बिपिन चन्द्रपाल ने कलकत्ता से यात्रा प्रारम्भ करके चरंपुरम्, विशाखापट्टणम् से राजमहेन्द्रवरम्, बंदरु, नेल्लूरु आदि मख्य नगरों में सरकार की दमन नीति के विरुद्ध गंभीर भाषण दिये। इन भाषणों से आन्ध्र राज्य के लोग प्रभावित हुए।

प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश सरकार के शासन के विरुद्ध आवाज उठाने वाले प्रथम राष्ट्रीय कवि के रूप में चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम् पंतुलु का नाम ही लिया जाता है। सरकार की कर-नीति के विरुद्ध सन् 1895 ई. में "गोदावरी मंडल सभा" में पठित इनकी कविता "चिन्तामणि" शीर्षक पत्रिका में प्रकाशित हुई। उन्होंने लिखा है–"खेतीबारी करने के लिए, पानी माँगने पर, चीजों को बेचने के लिए, यहां तक कि लकड़ियों को बेचने के लिए भी कर देना पड़ता है। नगरों में नगर-निगमों को, भाग जाना चाहेंगे तो गाड़ी में बैठने के लिए टिकट के रूप में, अगर हम मकान को बेचना चाहेंगे तो स्टैंप के रूप में, यहां तक कि नमक खरीदने के लिए भी कर देना पड़ता है। इस प्रकार उन्होंने तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के प्रति असंतोष की भावना अभिव्यक्त की। इस कविता के माध्यम से राष्ट्रीय आन्दोलन का मूल स्वर गूँज उठा।

इसी प्रकार पी. रामशास्त्री जी ने "विशाखपट्टणम् मंडल सभा" पद्यों में देश के प्रति प्रेम भावना अभिव्यक्त की। उनके अनुसार "देश के प्रति प्रेम भावना प्रकट करने वाले गुण से बढ़कर और कौन-सा गुण अच्छा होता है? सारी जनता देश के प्रति प्रेम भावना रखकर एकत्रित हो जाए, वह प्रजा समूह ही एक किले के समान होती है।" इस प्रकार के पद्यांशों द्वारा लोगों में देश के प्रति प्रेम भावना को अंकुरित किया।

इस सभा में ईश्वर जगन्नाथ-मार्तांड शास्त्री ने एक छन्द के माध्यम से भारत की अवनति का वर्णन किया–"गोरों को अकाल से पीड़ित जनता की दयनीय स्थिति से परिचित कराने के लिए, ऐसी आवाज हजारों मुखों के माध्यम से मुखरित करो, जिससे हिमालय की चोटियाँ गूंज उठें।" इस प्रकार हर साल मंडल सभाओं के माध्यम से राष्ट्रीयों की असंतोष की भावना अभिव्यक्त की जाती थीं।

सन् 1902 ई. से ""कृष्णापत्रिका" ने देश भक्तिपूर्ण लेखों को प्रकाशित किया। दिसम्बर 1905 ई. की "कृष्णापत्रिका" में कोंडा वेंकटप्पय्या जी ने अपने संपादकीय में बंग-भंग आन्दोलन के बारे में इस प्रकार लिखा–"हम इस बात पर संतोष व्यक्त कर रहे हैं कि आज सेतु से हिमालय तक व्याप्त देशाभिमान को देखने के लिए जीवित हैं। ब्रिटिश शासन में "वन्देमातरम्" शब्द गाली के रूप में परिवर्तित हो गया। स्वदेश के प्रति प्रेम प्रकट करने वाले जंगली जानवर के समान शिकार होते जा रहे हैं। बड़े बड़े लोग चपरासियों के रूप में परिवर्तित हो रहे हैं।" इस प्रकार उन्होंने उक्त पंक्तियों के माध्यम से देश की दुरवस्था के बारे में बताने के साथ-साथ देशाभिमान की स्तुति की।

इसी पत्रिका में चेन्नाप्रगड भानुमूर्ति जी ने इस प्रकार लिखा–"देश की उन्नति के लिए एवं लोगों के सुख के लिए देश के प्रति प्रेम भावना एक उपकरण के रूप में काम में आयेगी।"

इस प्रकार हमें यह बात स्पष्ट होती है कि बिपिन चन्द्रपाल के आन्ध्र राज्य की यात्रा करने के पूर्व ही हमारे नेताओं ने राष्ट्रीय चेतना के विकास को लक्ष्य कर देश भक्ति की भावना का प्रचार किया।

इससे प्रभावित होकर एक अज्ञात कवि ने "द क्रई मदर ऑफ इण्डया" (हिन्दू देश का आर्तनाद) शीर्षक गीत की रचना की। उसने इस गीत में इस प्रकार लिखा है–हिन्दुओं कितने वर्ष इस दीनावस्था में जीवन बिताना चाहते हो? निरुत्साह या उदास बनकर और भी हीन या दीन बनोगे क्या? आप जैसे अत्यन्त सुन्दर लोगों के कमजोर बनने से क्या मुझे अपना जीवन दूसरों के लिए बिताना चाहिए? मेरे संपूर्ण फसल कुछ भी न बचकर संपूर्ण रूप से बाहर गया। बिना पौरुष के किस प्रकार जीवन बिताऊँ? इस प्रकार जीवित रहने पर भी उस जीवनी की सार्थकता क्या है? बछड़े के मुँह को बन्द करके अनगिनत द्रोह करके समस्त दूध, दही एवं मक्खन को दूसरों को बेचने की दीन स्थिति, भूखे-प्यासे बेटों

को छोड़कर मेरा समस्त धन कहीं जा रहा है। मेरे प्रति प्रेम भावना प्रकट करो। अब तक तो आप बिगड़ गए। कम से कम इस क्षण से आप सब भाई बनकर मेरे प्रति प्रेम भावना प्रकट करों। हाय? कितने दिन इस प्रकार जीवन बिताना पड़ेगा। ईश्वर आपकी सहायता करे। हे माता? हम से की गई सारी गलतियों को क्षमा करो और हम पर कृपा करो। पूर्व की तरह हम सब आपसी वैर भावना युक्त न होकर एक बनकर जीवन बितायेंगे।"

चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम् पंतुलु जी ने "वन्देमातरम्" आन्दोलन से प्रभावित होकर सन् 1906 ई. में "मनोरमा" शीर्षक पत्रिका में कुछ पद्यों की रचना की। "भरत खण्ड विमुक्ति" शीर्षक के अंतर्गत लिखित पद्यों के कवि का नाम उल्लेख नहीं किया गया, परन्तु मोदलि नागभूषण शर्मा के मतानुसार "संभवतः ये पद्य इस पत्रिका के संपादक चिलकमर्ति जी के ही होंगे।" "भारतखण्ड विमुक्ति" शीर्ष में लिखित पद्य सन् 1906 ई. में प्रकाशित हुए।" मद्दूरी सुब्बारेड्डी जी लिखते हैं–"हमारा इस प्रकार अनुमान करना गलत नहीं होगा कि चिलकमर्ति "मनोरमा" के सम्पादक होने से इन पद्यों को उन्होंने लिखा होगा।" इन दोनों के मत से सहमत होना उचित प्रतीत होता है।

चिलकमर्ति ने पद्यों के माध्यम से स्वतन्त्रता की भावना को संपूर्ण रूप प्रदान किया उन्होंने पद्यों में यह बताया कि "स्वतन्त्रता के बिना जीवन बिताना जीवन नहीं कहलाता है।" सन् 1907 ई. में सरकार ने "पंजाब केसीर" लाला लाजपतराय को गिरफ्तार किया। इस घटना से आन्ध्र राज्य में क्रान्ति ने भयानक रूप धारण किया। लोगों की इस क्रान्तिकारिता को उन्होंने अपने पद्यों में अभिव्यक्त किया। देश भक्तों को राजद्रोही मानकर कारागार भेजने की शासन-नीति को भावावेश पूर्ण पद्यों के माध्यम से प्रत्यक्ष रूप से विरोध किया। उन्होंने लिखा है–"भारत वर्ष ही एक बहुत बड़ा कारागार है। उसमें बंधित कैदी पड़ोसियों के समान हैं। कारागार को भेजने का अर्थ यह है कि एक कमरे से दूसरे कमरे में ले जाना।"

भरतखंडबे योक पेद्द बंदेखाना, अंदलोनुन्न खड्दील् पोंदुजनुलु
ओक्क गदिनुंडि मार्चि वेरोकक्णदिति, बेट्टुटे काक चेरयंदु वेर गलदे?
"–चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम् पंतुलु–स्वीयचरित्र-पृष्ठ 405.

इस प्रकार हम देखते हैं कि चिलकमर्ति जी ने अपने पद्यों के माध्यम से देश की जनता को उत्तेजित किया।

अपनी कविताओं के माध्यम से देश भक्ति भावना अभिव्यक्त करके राष्ट्रीय चेतना को प्रज्वलित करने वालों में मंगिपूडि वेंकटशर्मा प्रमुख माने जाते हैं। जन्मभूमि एवं स्वदेश को ही भगवान मानकर, देश भक्ति को ही भगवदभक्ति मानकर साहित्य रचना करने वालों में मंगिपूडि वेंकटशर्मा अग्रगण्य हैं। उनसे लिखित राष्ट्रीय गीत देश भक्ति भावना से ओत-प्रोत है। स्वतन्त्रता आन्दोलन काल में वेंकटशर्मा जैसे देश भक्तों ने मातृदेश को आराध्य देवता के रूप में ग्रहण किया। उन्होंने भारतमाता को सर्वदेवता स्वरूपिणी माना। वेंकटशर्मा जी मातृभूमि और अपने बीच के सम्बन्ध को "भारत माता" शीर्षक कविता में मनोहर रीति से अभिव्यक्त किया। यह कविता सन् 1911 ई. में "आन्ध्र पत्रिका" तेलुगु नये वर्ष के संस्करण में प्रकाशित हुई।

वे मानते हैं कि प्राणी एवं जन्मभूमि का सम्बन्ध अविच्छिन्न है। उस पुण्यभूमि की मिट्टी को स्पर्श करने मात्र से ही मनुष्य के ज्ञानेन्द्रिय स्पंदित होते हैं। "जन्मभूमि" नामक भावना के नस-नस में बिजली की तरह प्रवाहित होकर हृदय रूपी वीणा को झंकृत करती है। इसी भावना के अनुरूप उन्होंने कविता के माध्यम से जन्मभूमि के साथ सम्बन्ध स्थापित किया–" हमारे चरण जिधर चलें, हृदय को एक पल के लिए भी द्रवित न कर सकने की जादू का बन्धन जन्मभूमि और हमारे बीच में है।"
यह "जननी जन्मभूमिश्च" सूक्ति के अनुसार लिखा गया है। उन्होंने आगे इस प्रकार लिखा है–"है मेरा मातृदेश? तू मेरा प्राणप्रद एवं तप का फल है। मेरी आत्मा अपने प्राण एवं तन से बढ़कर तुम्हारे प्रति प्रेम भावना प्रकट करेगी। मैं विदेशी सीमाओं में अत्यन्त सुन्दर बाग-बगीचों में समुद्र के किनारों पर, सुन्दर निर्मित महलों में एवं हरी भरी सुन्दर मैदानों में विहार करते समय भी बहुत तीव्र गति के साथ मुझे अपनी जन्मभूमि को ले जाने वाला वायु का मैं स्वागत करता हूँ।" इस प्रकर उन्होंने जन्मभूमि के प्रति अपार भक्ति भावना अभिव्यक्त की।

सन् 1907 ई. में वेंकटशर्मा और मुट्नूरि सुब्बारायुडु ने "बन्देमातरम्" शीर्षक गीत की रचना की। इसमें "वन्देमातरम्" को महान मंत्र के रूप में वर्णन करते हुए जनता को

राष्ट्रीय आन्दोलन स प्रभावित हाकर और इस आन्दोलन के विकास क लिए उपयुक्त कविताएँ लिख कर तेलुगु साहित्याकाश में अपने लिए एक विशेष स्थान प्राप्त करने वाले कवियों में ''कविकोकिला'' दुव्वूरि रामिरेड्डी भी प्रमुख हैं।

उन्होंने अपनी ''भारत मातृ बोधम्'' (1916-18) शीर्षक कविता के माध्यम से देश की जनता को प्रभात के तजोमय प्रकाश म अंधकार के विलीन होने का रूपक बान्ध कर निद्रा से जागृत होने की सूचना दी।

''देशमातृ स्तवम्'' (1916-18) शीर्षक कविता में उन्होंने अतीत भारत के गुण गायन करने के साथ-साथ वर्तमान युग के महा पुरुषों—विवकानन्द, रविवर्मा, रवीन्द्र इत्यादि की स्तुति की।

उनसे लिखित देश भक्तिपूर्ण कविताओं में ''मातृ शतकम्'' (1916-18) भी उल्लेखनीय है।

उद्बोधनों म मण्डित देश भक्तिपूर्ण गीतों की रचना करने वालों में गुरजाड अप्पाराव जी सिद्धहस्त हैं। वे आन्ध्र देश में राष्ट्रीय आन्दोलन के आरम्भ होने के पूर्व ही राष्ट्रीयता एवं सामाजिक सुधार भावों से परिचित थे। अगस्त 1, सन् 1901 ई. में परिचय डायरी में निम्नलिखित इन पंक्तियों से हम उनके राष्ट्रीय दृष्टिकोण से परिचय प्राप्त कर सकते हैं।

''पाश्चात्य सभ्यता कुछ अन्धविश्वासों को दूर करती है इस बात के कुछ सीमा तक सत्य होने पर भी, उससे स्वातन्त्र्य एवं सामाजिक विकास प्राप्त करना असम्भव है। यह स्वतन्त्रता का पूर्ण रूप न होकर नाममात्र ही होगा। इस प्रकार की सभ्यता मनुष्यों को अवलक्षणों, अस्थिरत्व एवं दासों के शिकार बनाती है।'' इससे हम उनकी राष्ट्रीय भावना का अनुमान लगा सकते हैं।

देश के प्रति इतना गम्भीर दृष्टिकोण रखने के कारण ही उन्होंने ''मुत्याल सरालु'' काव्य में ''देश भक्ति गीत'' के माध्यम म देश के प्रति भक्ति भावना अभिव्यक्त की। अत्यन्त साधारण भाषा में लिखकर असाधारण संदेश दिया।

इस गीत के प्रथम चरण में ''हमें देश के प्रति प्रेम भावना रखना चाहिए। भलाई का मार्ग अपनाना चाहिए। व्यर्थ की बातों से अपने आपको दूर रखकर देश की भलाई के लिए कदम उठाना चाहिए।'' आगे वे लिखते हैं—''स्वार्थ को त्याग कर दूसरों की सहायता करनी चाहिए। देश का अर्थ मिट्टी न होकर मानवों का समूह होता है। हाथ में हाथ मिलाकर सारे देशवासियों को चरण से चरण मिलाकर चलना चाहिए। भाइयों की तरह सारी जातियों एवं धर्मों को एक बनकर चलना चाहिए।'' इस गीत के अंत में देश के प्रति भक्ति भावना रूपी बीजों को अंकुरित करने का महान संदेश दिया है।

समाज-सधारवादी आन्दोलन

स्वतन्त्रता आन्दोलन के साथ आन्ध्र में समाज सुधार की चेतना जागृत हुई ब्रह्मर्षि सर रघुपति वेंकट रत्नम्नायुडु के नेतृत्व ब्रह्म समाज की स्थापना हुई, जिसम सुधारवादी कार्यक्रमों का शुभारम्भ हुआ।

बाल विवाहों का निषेध, विधवा विवाहों को प्रोत्साहन जाति-पाँति भेद-भाव का निर्मूलन अनाथ शिशुओं का संरक्षण, देवदासी प्रथा का बहिष्कार, वेश्यावृत्ति का निर्मूलन इत्यादि कार्यक्रम सफलता पूर्वक संचालित होने लगे। ब्रह्म समाज के तत्वावधान में वेंकट रत्नम नायुडु ने सभा समाजों में भाषण देकर अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखकर जनता में सुधार की भावना को उजागर किया। आप से प्रेरित होकर राव बहादुर श्री कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु ने विधवा विवाह, कन्या शिक्षा, इत्यादि कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक निर्वाह किया। इसके लिए आपने रचना को माध्यम बनाया। गद्य-पद्य दोनों विधाओं में रचना कर साहित्य को समाजोपयोगी सिद्ध किया।

14.4 तेलुगु साहित्य: प्रमुख साहित्यकार

आधुनिक युग का तेलुगु साहित्य प्रधानत: गद्य, पद्य, नाटक तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है। आधुनिक युग विशेष रूप से गद्य का युग कहा जाता है। उपन्यास, कहानी, निबन्ध, प्रहसन, समालोचना, जीवनी, यात्रा वृत्तान्त, आत्म कथा शास्त्र ग्रंथ, नीति-नाटक इत्यादि विधाओं में गद्य का प्रादुर्भाव और विकास हुआ। इस संक्रांति युग के साहित्य में प्राचीन परम्पराओं को साथ लिये नवीनता का पोषण हुआ। आधुनिक युग के साहित्य को चार प्रधान धाराओं में विभाजित कर सकते हैं।

1. सम्प्रदाय सिद्ध प्राचीन कविता पद्धति
2. राष्ट्रीय कविता पद्धति
3. भाव कविता पद्धति
4. अभ्युदय कविता पद्धति।

अब हम आधुनिक तेलुगु साहित्य का प्रथम चरण (1885-1920) के अन्तर्गत गद्य का विकास तथा कविता में सम्प्रदाय सिद्ध प्राचीन कविता पद्धति, राष्ट्रीय कविता पद्धति का परिचय प्राप्त करेंगे।

प्रमुख साहित्यकारों का परिचय

आधुनिक तेलुगु में गद्यशैली का श्रीगणेश परवस्तु चिन्तय सूरि (ई. सन् 1806-1862) ने बाल व्याकरण रचकर किया। इससे आप आन्ध्रपाणिनी कहलाये।

बहुजन पल्लि सीतारामाचार्युलु (ई. सन् 1827-1901) ने शब्द रत्नाकरमु नामक कोश तथा प्रौढ़ व्याकरण की रचना कर तेलुगु भाषा को संयमित किया। वर्णक्रम पद्धति पर रचित कोशों में यह सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। इनसे पूर्व ए.डी. कालबेल तथा सी.जी. ब्राउन नामक पाश्चात्य विद्वानों ने कोश रचना का आरंभ किया था।

गद्य रचना में आदि पुरुष के रूप में विख्यात, समाज सुधारक, नारी **जनोद्धारक** श्री वीरेशलिंगम पंतुलु बहुमुखी प्रतिभाशाली साहित्यकार हुए। प्राचीन परंपरा के पक्षपाती, हिन्दू जाति के उद्धारक कोक्कोड वेंकट रत्नमु पंतुलु (ई. सन् 1842-1915) जी ने भाषा तथा साहित्य सम्बन्धी विवादों का सूत्रपात किया। आप आन्ध्र के जानसन कहलाये।

आधुनिक युग में रीति ग्रंथकार वेदमु वेंकटराय शास्त्री प्रख्यात हैं। तेलुगु नाटक के आदयपुरुष धर्मवरपु कृष्णमाचार्युलु हुए। सर्वश्री वड्डादि सुब्बाराय कवि (ई. सन् 1854-1938) कोलाचलम् श्री निवास राव (ई. सन् 1854-1979) आकोंडि व्यासमूर्ति (ई. सन् 1860-1916) जयन्ति रामय्या (ई. सन् 1860-1941) पूंडला रामकृष्णय्या (ई. सन् 1860-1904) अल्लंराजु रंगशायि कवि (ई. सन् 1860-1936) आदि आधुनिक तेलुगु के प्रमुख वैतालिक हुए।

आधुनिक युग में व्यावहारिक भाषा (जनभाषा) तेलुगु के प्रयोग के प्रबल समर्थक के रूप में गिडुगु राममूर्ति पंतुलु का विशेष योगदान है। श्री काशीभट्ट ब्रह्मय्य शास्त्री जी प्रमुख नाटककार तथा भाषा शास्त्री हुए। आन्ध्र वाल्मीकि नाम से प्रचयात श्री वाविलिकोलनु सुब्बाराव (ई. सन् 1863-1939) ने वाल्मीकि रामायण का तेलुगु में काव्यानुवाद प्रस्तुत किया। श्री नादेल्ला पुरुषोत्तम कवि (ई. सन् 1863-1938) आन्ध्र के हिन्दुस्तानी नाटककार के रूप में सुप्रसिद्ध हैं। लगभग सौ वर्ष पहले आन्ध्र में हिन्दी नाटकों का रचा जाना और उनका मंचित होना राष्ट्रीय एकता का **बलवती** प्रमाण कहा जा सकता है। ठेठ तेलुगु के प्रति प्रेम जगानेवाले कवि के रूप में श्रीदासु श्रीराम कवि (ई. सन् 1864-1908) चिरस्मरणीय हैं। आन्ध्र का एडिसन, नाम से विख्यात श्री पानुगंटि लक्ष्मीनरसिंह राव, सुधारवादी रचनाकार, विशेष रूप से व्यंग्य लेखक के रूप में जाने जाते हैं।

14.4.1 श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री

श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री (ई. सन् 1866-1961) शतावधानी के रूप में विख्यात हुए। आप बहुमुखी प्रतिभाशाली, लगभग 200 ग्रन्थों के प्रणेता हैं। आन्ध्र में मिल्टन और आन्ध्र स्काट नाम से प्रसिद्ध चिलकमर्ति लक्ष्मी नरसिंहमु राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत हैं। श्री चिलुकूरि वीरभद्रराव (ई. सन् 1872-1939) ने "आन्ध्र चरित्र (आन्ध्रों का इतिहास) रचकर इतिहास रचना का सूत्रपात किया। अनुसंधान कार्य में अपना सारा जीवन बिताया। आपको आन्ध्र महासभा ने "आन्ध्र चरित्र चतुरानन" विरुद्ध देकर सम्मानित किया। कोमर्राजु वेंकट लक्ष्मणकवि शास्त्र ग्रन्थों की रचना कर चिरस्मणीय हुए। तेलुगु में विश्वकोश का पहला भाग प्रकाशित कराने का श्रेय आपको है। तेलुगु भाषा में "आन्ध्र पत्रिका" नाम से पूर्व प्रथम पत्रिका चलाने का श्रेय श्री काशीनाथुनि नागेश्वरराव को है। अन्य साहित्यकारों में तंजनगरपु तेवप्पेरुमाल्लय्या (ई. सन् 1872-1921) और मंत्रि प्रगड भुजंगराव (ई. सन् 1876-1940) उल्लेखनीय हैं। इनमें विशेष रूप से विविध विधाओं में ख्याति प्राप्त साहित्यकारों का परिचय दिया जाता है।

14.4.2 कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु (इ. सन् 1848-1919)

आधुनिक तेलुगु गद्य के निर्माताओं में आप आद्य पुरुष हैं। गद्य ब्रह्म तथा गद्य तिक्कना नाम से आप आधुनिक तेलुगु साहित्य में चिरस्मरणीय हैं। गद्य में विविध विधाओं का आपने शुभारम्भ किया था। आधुनिक तेलुगु को संस्कृत निष्ठ समासबद्ध शैली से मुक्त कराकर सरल एवं व्यावहारिक तेलुगु को आपने प्रशस्त किया। पाश्चात्य संस्कृति तथा अंग्रेजी-शिक्षा की अच्छाइयों को स्वीकार करने का आपने अनुरोध किया। आपने अंग्रेजी विद्धवान "गोल्डस्मित" कृत "विकार आफ वेक फील्ड" के अनुकरण कर "राजशेखर चरित्रमु" नामक उपन्यास की रचना की, जो तेलुगु साहित्य का प्रथम उपन्यास माना जाता है। इसमें हिन्दू समाज की कुरीतियों का खण्डन किया गया। इसकी लोकप्रियता से प्रभावित होकर एक अंग्रेज लेखक ने इसका अनुवाद किया, जो "फार्चून्स व्हील" नाम से प्रसिद्ध है। गलिवर्स ट्रावल्स का आपने "सत्य राजा पूर्वदेश यात्रलु" नाम से तेलुगु अनुवाद प्रस्तुत किया। इसमें आपने सनातन विचारों वालों की हंसी उड़ाई। "अभिज्ञान शाकुन्तलमु", "मालवीकाग्नि मित्र" "प्रबोध चन्द्रोदय", "रत्नावली" आदि संस्कृत नाटकों का आपने अनुवाद किया। प्रह्लाद नाटक, दक्षिण गो ग्रहणमु, सत्य हरिश्चन्द्र, विवेक दीपिका इत्यादि आपके मौलिक नाटक हैं।

वीरेशलिंगम पंतुलु ने तेलुगु में सर्वप्रथम "प्रहसन" रचना का सूत्रपात किया है। प्रहसनों के द्वारा आपने समास में प्रचलित कुरीतियों पर करारा व्यंग्य किया। अपूर्व ब्रह्मचर्य प्रहसन् विचित्र विवाह, कलह प्रिया, बलात्कार गान विनोद, वेश्या प्रिय, महावंचक असहाय शूर, कौतुक वर्धनी, इत्यादि प्रहसन प्रमुख हैं।

नारी जनोद्धरण के लिए आपने साहित्य को साधन बनाया। "सत्यवती चरित्र", "चन्द्रमती चरित्र", "सत्य संजीवनी", "सती मणि विजयमु", "भानुमती कल्याणमु" आदि नारी जागरण सम्बन्धी रचनाओं का प्रणयन किया।

'पंतुलु जी ने तेलुगु में जीवनी साहित्य का सूत्रपात किया। श्री विक्टोरिया महारानी का चरित्र, जीसेस चरित्र आदि प्रमुख जीवनियों की रचना की।

आपने आत्मकथा रचना का शुभारम्भ किया। स्वीय चरित नाम से अपनी आत्मकथा रचते हुए आपने तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, एवं साहित्यिक प्रवृत्तियों का विवरण प्रस्तुत किया।

वीरेशलिंगम पन्तुलु जी ने "आ-धुकवुल चरित्र" रचना में आदिकवि नन्नसा से लेकर अपने समय तक के समस्त कवियों के जीवन तथा साहित्य का परिचय दिया। कवियों का काल निर्णय तथा ऐतिहासिक तथ्यों को प्रस्तुत करने में आपने अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया। पंतुलु जी अच्छे समीक्षक और अनुसंधाता हुए। आपने नाचनसोमनाथ कृत "उत्तर हरिवंश", अनंत कवि कृत "भोजराजीय", चेरिगोंड धर्मन्ना कृत "चित्र भारत", नारायण कवि कृत पंचतन्त्र, कवयित्रि मोल्ल कृत "रामायण", नंदि मल्लया तथा घंटा सिंगया कृत वराह पुराण आदि का संपादन कुशलता पूर्वक किया। पंतुलु जी बहुमुखी प्रतिभाशाली हुए। आपने तर्क संग्रह, ज्योतिष शास्त्र, शरीर शास्त्र, भौतिक शास्त्र इत्यादि शास्त्र ग्रन्थों का प्रणयन किया। आपके भाषण विद्वत्तापूर्ण होते थे। इस प्रकार वीरेशलिंगम पंतुलु जी आधुनिक परिभाषा के अनुरूप तेलुगु साहित्य में उपन्यास, नाटक, जीवनी, आत्मकथा, प्रहसन, निबन्ध, समीक्षा, शास्त्र ग्रन्थ, अनुवाद आदि में सर्व प्रथम कृति की रचना करते हुए युग निर्माता हुए।

वीरेशलिंगम पंतुलु ने तेलुगु साहित्य में विविध प्रकार की विधाओं का सूत्रपात किया। इससे पूर्व आपने "शुद्धांध निरोष्ठ्य निर्वचनमु, नैषधमु, शुद्धांध भारत संग्रहमु" इत्यादि काव्यों में सुदीर्घ समासों का प्रौढ़ कात्य रचा था। बाद में आपने अनुभव किया कि सरल भाषा में गद्य रचनाओं से जनता को लाभ हो सकाता है। तब से आपने व्यावहारिक भाषा में रचना करते हुए साहित्य को जनोपयोगी बनया। आपने "सरस्वती नारद संवाद" नामक खंडकाव्य रचा। गद्य में संधिविग्रह" की रचना की। जिसके पहले चिन्नयसूरी ने गद्य शैली में परिवर्तित किया था।

वीरेशलिंगम पंतुलु एक साथ समाज सुधारक तथा लेखक थे। रचना को आपने समाज सुधार का साधन बनाया। आपने शुद्ध साहित्यिक रचनाओं के साथ-साथ समाज-सुधार संबंधी रचनाओं का भी प्रणयन किया। नारी जनोद्धार के लिए आपने बहुत प्रयास किये। नारी शिक्षा पर आपने बल दिया। बाल-विवाहों को बंद करवाया। विधवा विवाह तथा

अन्तर वर्ण विवाह करवाये। विवेकवर्धिनी पत्रिका की स्थापना कर श्रुति स्मृति एंव पुराणों से प्रमाण देकर विधवा विवाहों को उपयुक्त बताया वितंतु (विधवा) शरणालय की स्थापना कर तीस हजार रुपयों का चंदा जमा किया। आपने स्त्री शिक्षा का प्रचार करते हुए अनेक गाँव तथा नगरों में कन्या पाठशालाएं खुलवाईं। इनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर तत्कालीन सरकार ने आपको "राव बहादुर" उपाधि प्रदान की।

14.4.3 श्री गुरजाड वेंकट अप्पाराव

श्री गुरजाड वेंकट अप्परावजी का जन्म 21 सितम्बर 1862 में हुआ और निधन 30 नवम्बर 1915 को हुआ। आप तेलुगु साहित्य के नवयुग के वैतालिक माने जाते हैं। आपने कहानी, उपन्यास, एकांकी, नाटक, निबन्ध, समीक्षा, जीवन चरित्र, डायरी आदि साहित्यिक प्रक्रियाओं द्वारा समाज में नई चेतना भरने का प्रयास किया।

तत्कालीन समाज के परम्परागत भ्रष्टाचार, अन्धविश्वास आदि को निर्मूल कर क्रांतिकारी भावनाओं का प्रचार करनेवालों में अग्रसर समाज सेवी स्व. कन्दुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु के साथ आपने साहित्यिक क्षेत्र में काम किया। स्त्री शिक्षा का प्रचार मूर्ति पूजा का खण्डन निर्गुणोपासना का मण्डन आपने किया। बाल्य विवाह के दुष्परिणामों को समाज के सम्मुख रखकर सामाजिक भ्रष्टाचार का विरोध किया। विधवा-विवाह का आपने समर्थन किया। वेश्या-वृत्ति का विरोध किया। समाज में ऊँच-नीच की भावनाओं को मिटाने के लिए शास्त्रीय ज्ञान का प्रचार किया और सहपंक्ति भोजनों का आयोजन करवाया। सरकारी कार्यालयों में व्याप्त रिश्वतखोरी का भण्डाफोड़ किया।

आपने 1886 में बी.ए. प्रथम श्रेणी में पास कर जिलाधीश कार्यालय में लिपिक का कार्य सम्भाला। स्वल्प समय में उसे छोड़कर विजयनगरम् के महाराजा कालेज में आप अध्यापक बन गये। कुछ वर्ष बाद "श्री श्री आनन्द गजपति राजा" के सहयोग से आपने समाज की सेवा की। आपके राज्य में दीवान के पद पर प्रतिष्ठित होकर आपने शासन कार्य सम्भाला। राजनैतिक क्षेत्र में भी आपने काम किया। विजयनगर की नगर पालिका के सदस्य के रूप में आपने काम किया। 1913 में मद्रास विश्वविद्यालय के सेनेट के सदस्य मनोनीत हुए। आप मितभाषी सुदृढ़, हास्यप्रिय तथा प्रसन्न चित्त व्यक्ति हुए।

आपकी रचनाओं में मुत्याल सरालु, कासुलु, लवणराजु कला, कन्यका, दामन-पितियस, पूर्णम्मा, मनिषि, देशभक्ति, लंगरेत्तुमु आदि प्रसिद्ध कविताएँ हैं। मुत्याल सरालु में आपने नये छन्द का प्रयोग किया। 29 मोती समान कविताओं में समाज का उद्धार परक खण्डिकाएँ हैं, जिनमें जाति-पाँति, सम्प्रदाय, ऊँच-नीच की भेदभावना को मिटाने पर विचार किया। "तोकचुक्क" (पुच्छलतारा) नामक कविता से जगत को नया सन्देश दिया। "लवणराजु कला" (लवणराजा का स्पप्न) में आपने अस्पृश्यता का खण्डन किया। राजा रामचन्द्र और वशिष्ठ के बीच "ज्ञान वाशिष्ठ" के आधार पर वेदान्त परक सम्भाषण प्रस्तुत किया गया। "कन्यका" नामक कविता में मानहरण करनेवाले राजा को धर्म की चुनौती देते हुए कन्यका देवी ने अग्निकुण्ड में प्रवेश कर प्राण त्याग किया। "डामन-तितियस" कविता में दो मित्रों के बीच परस्पर प्राण की रक्षा के लिए संसिद्ध होने का निर्मल स्नेह का वर्णन किया। "पूर्णम्मा" नामक कविता में मूर्ति पूजा का खण्डन करते हुए "मानव सेवा ही माधव सेवा" का प्रबोध किया। "देश भक्ति" कविता में देश का तात्पर्य केवल मिट्टी नहीं। देश का तात्पर्य मनुष्य है प्रस्तुत किया। आज यह गीत आन्ध्र जनता का कण्ठहार बन गया है।

पद्य रचना के अतिरिक्त गद्य रचना में भी आप सिद्धहस्त हैं। "मी पेरेमिटि?" (आपका नाम क्या है?) नामक कहानी में शैव-वैष्णव के बीच भेदभाव का खण्डन किया। "पेद्द मसीदु" (बड़ी मस्जिद) नामक कहानी में हिन्दू-मुस्लिम की वैमनस्यता पर प्रहार किया। "दिद्दुबाटु" (सुधार) नामक कहानी में पत्नी के रहते हुए भी वेश्यागामी पुरुषों का चित्रण कर स्त्री-शिक्षा, स्त्री का मूल्य आदि तत्वों का विशद वर्णन किया। "मेटिल्डा" नामक कहानी में वृद्ध पति और नवयुवती पत्नी के बीच संघर्ष का चित्रण हुआ। पुनर्विवाह का निषेध, स्त्री को पति त्यागने का हक नहीं, स्त्री जाति की आर्थिक स्वतन्त्रता आदि समस्याओं पर प्रकाश डाला गया। "संस्कर्त हृदयम्" कहानी में समाज सुधार की चर्चा हुई।

"रवीन्द्र कवि", "आधुनिक आन्ध्र वचनम्", "संस्कृतम्-मातृ-भाषलु" आदि निबन्ध अंग्रेजी में विरचित हुए। काव्य में श्रृंगार रस, वर्डसवर्त-कविता, बंगीय साहित्य, ग्राम्य

भाषलु (ग्राम्य भाषाएँ), आन्ध्र कविता पितामहुड् आदि आपके प्रसिद्ध निबन्ध हैं। डायरी शैली में तेलुगु साहित्य में आप विशेष उल्लेखनीय हैं।

"कन्या शुल्कम्" नाटक में ब्राह्मण परिवारों में व्याप्त भ्रष्टाचार, विधवाओं की दीनता, वृद्ध विवाह का संरम्भ, कोर्ट-कचहरी के चक्कर, समाज में धोखा देने वाले तत्वों को आपने प्रस्तुत किया। "कोण्डु भट्टीयम्", (बिल्हणीयम्) आपके प्रसिद्ध रूपक हुए। अप्पाराव जी ने "कला-कला के लिए" नहीं "कला समाज के लिए" माना और अपने समस्त जीवन में समाज की उन्नति के लिए साहित्य रचना की। आपकी शैली सरल होकर जनरंजक हुई और प्रगतिशील शक्तियों के लिए प्रेरणाप्रद हुई। आधुनिक तेलुगु साहित्य में आपका स्थान गणमान्य है।

14.4.4 वेदम् वेंकटराय शास्त्री (ई. सन् 1853-1929 तक)

वेदम् वेंकटराय शास्त्री एक साथ कवि, समालोचक, नाटककार और संपादक हुए। आपने संस्कृत से "उत्तर रामचरित" अभिज्ञान शाकुंतल, मालविकाग्नि मित्र, नागानंद रत्नावली आदि नाटकों का तेलुगु रूपांतर प्रस्तुत किया था। "प्रतापरुद्रीयम्", बोब्बिलि युद्धम्, उषानाटकम् इत्यादि विशुद्ध मौलिक नाटकों की रचना की। आपने प्राचीन काव्यों की विद्वत्तापूर्ण व्याख्याएँ लिख कर तेलुगु जनता में साहित्य के प्रति रुचि जगाई। आपने "शृंगारनैषध" तथा "आमुक्तमाल्यदा" की व्याख्या क्रमशः सर्वकष व्याख्या और संजीवनी व्याख्या नाम से की।

शास्त्री जी बहु-भाषा विद्वान थे। आप तमिल, कन्नड, और हिन्दी भाषाएँ जानते थे। तर्क, व्याकरण और दर्शन शास्त्र में पंडित थे। प्राचीन परंपरा के पक्षपाती होते हुए भी आपने नवीन सिद्धांतों का प्रणयन किया और आधुनिक तेलुगु के निर्माताओं में प्रमुख हुए। आपने कविता की भाँति गद्य में संधि नियमसें का पालन नहीं करने का सैद्धांतिक विवेचन प्रस्तुत किया। इस संदर्भ में आपने "विसंधि विवेक" नामक ग्रंथ भी लिखा। इन नियमों का पालन करते हुए "कथासरितसागर" की रचना की। "प्रक्रिया छन्दस्सु", "अलंकार सार संग्रह" नामक रीति ग्रन्थों की आपने रचना की। आपने "जन विनोदिनी" नामक पत्रिका का संपादन किया। जिसमें आपने विविध समस्याओं को लेकर पंडितों के साथ वाक्युद्ध या लेखनी युद्ध चलाया। वीरेशलिंगम् के विधवा विवाह आन्दोलन का विरोध करते हुए आपने "स्त्री पुनर्विवाह दुर्वाद नर्वापण" नामक ग्रन्थ प्रस्तुत किया।

आपने "ज्योतिष्मति" नामक मुद्रणालय" की स्थापना कर उत्तम ग्रन्थों का टीका सहित प्रकाशन किया। "सूर्य राय आंध्रनिघंटुवु" के संपादन का कार्य कुछ समय तक किया। साहित्यिक सेवाओं के लिए "आंध्र महासभा" ने आपको सन् 1920 में "महोपाध्याय" उपाधि देकर सम्मानित किया। "द्वारकापीठाधिपति" ने आपको "महा महोपाध्याय" और "विद्या दान व्रत महोदधि" उपाधियाँ प्रदान कीं। आन्ध्र विश्वविद्यालय ने आपको सन् 1927 में "कलाप्रपूर्ण" की उपाधि से सम्मानित किया।

14.4.5 धर्मवरणु कृष्णमाचार्युलु

कृष्णमाचार्युलु पेशे से वकील थे। अभिनय में रुचि रखते हुए नाट्य प्रदर्शन के लिए आपने वेशधारण किया। आपने तेलुगु रंगमंच का शुभारंभ किया। बल्लारि में "सरस विनोदिनी" सभा की स्थापना का आपने तेलुगु के नाटकों के साथ शेक्सपीयर के नाटकों का भी प्रदर्शन किया। जनता में नाटक के प्रति रुचि पैदा की। आपने "विषाद सारंगधर" नामक दुःखांत नाटक को अंग्रेजी नाटक कला की शैली में प्रस्तुत किया।

कृष्णमाचार्युलु के तेलुगु में तीस नाटक, कन्नड में दो नाटक रचे गये जिनमें बारह तेलुगु नाटक प्रकाशित हुए। चित्रनलीयम, विषाद सारंगधर, प्रहलाद, सावित्री और पादुका पट्टाभिषेकम् आदि नाटक प्रसिद्ध हुए। "मुक्तावली" प्रमीलार्जुनीयम्" पांचाली स्वयंवरम्, "रोषनारा", "वरुधिनी" आपके अन्य नाट्य ग्रन्थ हैं। आपके नाटकों में पद्यों की बहुलता है। नाटक रचना के साथ साथ कुशल अभिनेता भी थे। बाहुक, दशरथ, राजराज नरेन्द्र इत्यादि पात्रों के अभिनय में आपने अपूर्व प्रतिभा का प्रदर्शन किया। गद्वाल के महाराज ने आपके नाटक साहित्य की सेवा पर प्रसन्न होकर 1910 ई. में "आन्ध्र नाटक कविता पितामह" की उपाधि से सम्मानित किया।

14.4.6 गिडुगु वेंकटराममूर्ति पंतुलु

गिडुगु वेंकट राममूर्ति पंतुलु भाषा को प्राथिक शैली की अतिशय व्याकरण बद्यता से मुक्त करवाकर सहज माधुर्य पूर्ण सरल प्रवाहमयी तेलुगु को प्रशस्त करने वालों में अग्रणी हैं। आपने व्यावहारिक तेलुगु के प्रचार हेतु "तेलुगु" नामक मासिक पत्रिका चलायी। प्रारंभ में परंपरावादी पंडितों ने आपका विरोध किया था। आन्ध्र साहित्य परिषद के 1925 वार्षिक अधिवेषण में अनेक प्राचीन ग्रंथों से प्रमाण देकर आपने व्यावहारिक भाषा का समर्थन कियां। एतदर्थ अधिवेषन में भाषा सिद्धांत का प्रस्ताव पारित किया गया। बाद में नव्य साहित्य परिषद साहिती समिति आदि साहित्यिक संस्थानों ने इसका समर्थन किया। परिणाम स्वरूप आधुनिक तेलुगु साहित्य में व्यावहारिक भाषा का प्रयोग बढ़ गया। राममूर्ति जी ने सवर (शबर) जाति की भाषा पर कार्य किया। सवर तेलुगु निघण्टु नाम से दो कोशों का निर्माण किया। मद्रास सरकार ने आपको "राव साहब" उपाधि देकर सम्मानित किया। आपके "सवर-मैन्युअल एण्ड रीडर", "सवर-इंग्लिश डिक्शनरी" तथा "इंग्लिश सवर डिक्शनरी" का प्रकाशन मद्रास सरकार ने किया और आपको "कैसर-ए-हिन्द" स्वर्ण पदक देकर आदर दिया। आपने तेलुगु में बाल कवि-शरण्यमु, व्यास-मंजरी, "पंडित-भिषक्कुल-भाषा-भेषजमु" तथा गद्य-चिंतामणि" आदि की रचना की।

14.4.7 काशी-भट्ट ब्रह्मय्या शास्त्री (ई. सन् 1863-1940 तक)

ब्रहमयुया शास्त्री जी भाषा शास्त्री और अनुसंधाता के नाम से प्रसिद्ध हैं। आपने "आर्यमत बोधिनी" नामक पत्रिका की स्थापना की जिसके द्वारा हिन्दु धर्म की विशिष्टता का प्रचार किया और वीरेशलिंगम् पंतुलु के सुधारवादी आन्दोलन का विरोध किया।

ब्रहमयुया शास्त्री जी ने "आर्य बृन्दानंद-संधायिनी" नामक नाटक समाज की स्थापना की। इसमें वीरेशलिंगम कृत "शाकुंतल" तथा स्वरचित "त्रिपुरासुर विजय व्यायोग" नामक नाटकों का प्रदर्शन करवाया। आपने भारती, शारदा, आन्ध्र पत्रिका, उदयलक्ष्मी, सुजाता आदि पत्रिकाओं में लगभग 200 लेख प्रकाशित कर विमर्श कांग्रेसर नाम से सम्मानित हुए। आपने विवेकानंद पुस्तक भण्डार तथा भक्त समाज संस्थाओं की स्थापना की। गलती से किसी पत्रि में आपके निधन का समाचार छपा था। उसका देखा-देखी सभी पत्रिकाओं ने शोक समाचार छपवाये। कई संस्थाओं ने शोक सभाएँ की। शास्त्री जी विनोदी स्वभाव के होने के कारण इसके काव्य रूप दिया। कविबुध-लोक-सन्दर्शन" नामक मनोहर शैली में काव्य रच कर आपने बुद्धि कुशलता का परिचय दिया।

14.4.8 नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि (ई. सन् 1863-1938 तक)

पुरुषोत्तम एक उत्तम कवि, नाटककार और संपादक के रूप में विख्यात है। आपने कोश और शास्त्र ग्रन्थों का प्रणयन किया। मछिली पट्टणम् में नेशनल थियेट्रिकल सोसायटी नामक नाटक समाज ने आपको नाटक रचना का प्रोत्साहन दिया। आपने 32 मौलिक हिन्दी नाटकों की रचना की। भाषा दक्खिनी और तेलुगु लिपि में नाटक रचना कर आपने दक्षिण में हिन्दी प्रचार का शुभारंभ किया था।

आपने "बुध विधेयिनी" नामक मासिक पत्रिका का संपादन किया और उसके द्वारा राष्ट्रीय भावना का प्रचार किया। चित्र कविता, बन्ध कविता, गर्भ कविता करने में आप सिद्धहस्त थे। चतुर्मुखी कंद पद्य, रामायण तथा शतकों में आपकी कविता की प्रतिभा देखने योग्य हैं। अद्भुतोत्तर रामायण, यादवाद्रीशोपाख्यानमु, महेन्द्र पुराण, रंग दासीयमु, यामिनी विनोदमु, बभ्रुवाहन चरित्र, कण्णानदी माहात्म्य आदि आपके काव्य हैं। पारिजातापहरण हरिश्चन्द्र और सांगधर आपके प्रसिद्ध नाटक हैं। सीताराम शतक, मल्लिकार्जुन शतक पूर्वकर्म शतक आदि आपके प्रमुख शतक ग्रन्थ हैं।

14.4.9 पानुगंटि लक्ष्मी नरसिंहाराव (ई. सन् 1865 से 1940 तक)

लक्ष्मी नरसिंहाराव ने "साक्षी" नाम से अनेक निबन्ध लिख कर छः भागों में प्रकाशित किया। इनके द्वारा आपने तत्कालीन समाज में व्याप्त जाति, साहित्य, सम्प्रदाय तथा अन्यान्य कुरीतियों का खण्डन किया। इन निबन्धों में प्रयुक्त शब्द वैचित्र्य, व्यंग्य और परिहास भावना, आक्षेप-पद्धति, आन्तरिक विकारों को अनेक सूक्तियों के द्वारा मर्मस्पर्शी बनाकर प्रस्तुत किया। इनकी शैली सरस तथा प्रवाहमयी है। "साक्षी" निबन्धों में जंघाल शास्त्री काल्पनिक पात्र नामक विलक्षण पात्र है। अंग्रेजी साहित्य के एडिसन कृत स्पेक्टेटर के नमने पर इनका सृजन माना जाता है।

नरसिंहाराव जी अंग्रेजी तथा संस्कृत के अच्छे विद्वान थे। आप सरस कवि, नाटककार और निबन्ध लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं। कण्ठाभरण आपका जनप्रिय नाटक बना। इनके नाटकों में राधाकृष्ण, विजयराघव, कल्याण राघवम्, विप्र नारायण, सारंगधर चरित्र, वृद्ध विवाह, कोकिल, पूर्णिमा, वीरमति, सरस्वीत, दृष्ट-प्रधानि आदि प्रसिद्ध हैं। आपने बुद्ध बोधसुधा द्वारा लोगों में गौतम बुद्ध और अहिंसा के प्रति श्रद्धाभाव का संचार किया। प्रचण्ड चाणक्य और चूडामणि आपके प्रमुख ऐतिहासिक नाटक हैं। आपने आनेगोंदि उर्लाम संस्थानों का दीवान मंत्री पद कार्य सम्भाला। आपकी साहित्य सेवा और पाण्डित्य पर प्रसन्न होकर पिठाकुरम के राजा ने 116 रुपये का मासिक पुरस्कार जीवन पर्यन्त देने की व्याख्या की।

14.4.10 चिलुकमर्ति लक्ष्मी नरसिंहम्

श्री लक्ष्मी नरसिंहम् बहुमुखी प्रतिभाशाली थे। आप कुशल कवि नाटककार उपन्यासकार, प्रहसन तथा निबन्ध लेखक हुए। विचित्र बात यह है कि 40 वर्ष की अवस्था में ही आपकी आँखों की रोशनी चली गई। फिर भी आपने प्रज्ञा चक्षु हो, साहित्य सृजन किया। देश माता मनोरमा आदि पत्रों का सम्पादन किया। श्री वीरेशलिंगम् पंतुलु द्वारा चलायी गई उत्तम मौलिक रचनाओं की प्रतियोगिता में आपको रामचन्द्र विजय नामक उपन्यास पर चिन्तामणि नामक पुरस्कार प्राप्त हुआ।

अहल्याबाई, हेमलता आदि ऐतिहासिक उपन्यास तथा गणपति नामक हास्यरस प्रधान उपन्यास, सौन्दर्य तिलक, कर्पूर मंजरी, आपके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

गयोपाख्यान आपका लोकप्रिय नाटक रहा है। कीचक वध, द्रौपदी परिणय, श्रीराम जननम्, पारिजातापहरणम्, नल चरित्र और सीता कल्याण आदि आपके प्रमुख नाटक हैं। आपके लगभग सभी नाटक मंचित हुए।

आपने भास कृत सभी नाटकों का तेलुगु में अनुवाद किया। आपने ऋग्वेद का अनुवाद प्रारम्भ किया था। पर यह कार्य अपूर्ण रहा। आन्ध मिल्टन और आन्ध स्काट नाम से आप प्रसिद्ध हैं। अपनी आत्मकथा रचते हुए आपने उसके साथ-साथ आन्ध का इतिहास प्रस्तुत किया। विशेषता यह है कि रचना कार्य द्वारा आपने उन दिनों में 1 लाख रुपया कमाया था। एक लेखक के लिए यह बड़े गर्व की बात है। आपकी षष्ठि पूर्ति के अवसर पर आपकी सभी रचनाएँ दस भागों में प्रकाशित हुईं।

आप एक महान देशभक्त थे। बिपिन वंद्रपाल की अध्यक्षता में आयोजित गोदावरी मंडल महासभा में आपने आशु कविता सुनाई थी, जो देशभक्ति से ओत-प्रोत थी। (भरतखंडमूबु चक्कीन पाडि आवु) आपको आन्ध विश्व विद्यालय ने सन् 1943 में कलाप्रपूर्ण उपाधि देकर सम्मान दिया।

14.4.11 चेन्नाप्रगड भानुमूर्ति (ई. सन् 1869-1945 तक)

तेलुगु साहित्य में राष्ट्रीय आन्दोलन से सम्बन्धित सर्वप्रथम खण्ड काव्य "भारत धर्म दर्शनम्" (1907) की रचना करने वाले श्री चेन्नाप्रगड भानुमूर्ति हैं। देश, धर्म, दर्शन, सम्बन्धी आपकी रचनाएँ तथा प्राचीन भारत की गौरव गाथा सम्बन्धी अनेक रचनाएँ प्रमुख हैं। जिनमें भारत धर्म दर्शनम् अहिंसा, उल्लेखनीय हैं।

14.4.12 कोमराजु वेंकट लक्ष्मण कवि (ई. सन् 1877-1923 तक)

कोमर्राजु वेंकट लक्ष्मण कवि ने विज्ञान-चन्द्रिका मण्डलि संस्था के नाम ग्रन्थमाला का प्रकाशन शुरू किया। उसके द्वारा तेलुगु भाषा के विविध शास्त्र ग्रन्थों का प्रकाशन किया। आपने पदार्थ विज्ञान भौतिक, रसायन प्रकृति शास्त्र, वृक्ष, जीव तथा वैद्य शास्त्रों से सवंधित अनेक ग्रन्थों को प्रकाशित कराया। चिलुकूरि वीरभद्रराव से आन्ध चरित्र और कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी से अर्थ शास्त्र लिखवाया। इस प्रकार के अनेक ग्रन्थ आपने विशेषज्ञों के द्वारा लिखवाये।

आप अनुसंधान के प्रति विशेष रूप से रुचि रखते थे। मुनगाल राजा रंगराय के यहाँ दीवान के पद पर कार्यरत थे। व्यस्तता में भी आपने तेलुगु भाषा तथा शास्त्र ग्रन्थों की रचना तथा अनुसंधान पर ध्यान रखा। आपने सर्वप्रथम सन् 1913 में विश्वकोश के निर्माण का शुभारंभ किया और प्रथम भाग प्रकाशित किया। तदनंतर काशीनाथुनि नागेश्वर राव पंतुलु ने दूसरा भाग प्रकाशित करवाया। तदनंतर तेलुगु भाषा समिति ने इसके आठ भाग प्रकाशित किये।

हिन्दु महम्मदीय युगमुलु, शिवाजी चरित्र, हिन्दू देश कथा संग्रहमु, आपकी इतिहास सम्बन्धी रचनाओं में प्रमुख हैं। लक्ष्मणराय व्यासावली आपका आलोचनात्मक निबन्धों का संग्रह है। तेलुगु भाषा में वैज्ञानिक पद्धति में शास्त्र ग्रन्थों की रचना करने वाले आप चिरस्मरणीय हैं।

बोध प्रश्न

4) निम्नलिखित में उचित शब्द रखकर वाक्य पूर्ति कीजिए:
   i) आधुनिक तेलुगु गद्य की शुरु ..... के ..... नामक रचना से होती है।
   ii) वीरेशलिंगम प्रतिभाशाली साहित्य के अलावा ..... भी थे।
   iii) ..... को आंध्र का जानसन कहा जाता है।
   iv) ..... को तेलुगु नाटक का प्रवर्तक कहा जाता है।
   v) तेलुगु भाषा के मिलन के रूप में ..... का नाम विख्यात है।
   vi) वीरेशलिंगम ने "सत्य राजा पूर्वदेश यामलु" के नाम से ..... का अनुवाद किया।
   vii) तेलुगु साहित्य में प्रहसन की शुरूआत ..... ने की।

5) दो-तीन पंक्तियों में उत्तर लिखिए:
   i) नारी जागरण से संबंधित वीरेशलिंगम की तीन रचनाएँ कौन-कौन सी हैं?
   .....
   .....

   ii) पंतुलु द्वारा किए गए दो समान सुधार कार्य के बारे में लिखिए।
   .....
   .....

   iii) गुरजाड अप्पाराव ने समाज सुधार के लिए क्या किया?
   .....
   .....

   iv) अस्पृश्यता के विरोध में गुरजाड ने कौन सी रचना की?
   .....
   .....

   v) मूर्तिपूजा के खंडन से संबंधित गुरजाड की रचना का नाम लिखिए।
   .....
   .....

   vi) धार्मिक एकता से संबंधित गुरजाड की दो रचनाओं के नाम लिखिए।
   .....
   .....

   vii) कन्या शुल्कम रचना क्यों प्रसिद्ध है?
   .....
   .....

14.5 काशीनाथुनि नागेश्वर राव पंतुलु (ई. सन् 1867 से 1938 तक)

तेलुगु में प्रथम दैनिक पत्रिका, निकालने का श्रेय नागेश्वर राव पंतुलु को है। "अमृतांजन"

नामक औषधि का आविष्कार कर उसके प्रचार के लिए प्रथम बम्बई में (आन्ध्र पत्रिका) साप्ताहिक निकाली। 1914 में मद्रास में वह दैनिक के रूप में अवतरित हुआ। 1924 में आपने "भारती" नामक साहित्यिक पत्रिका का शुभारम्भ किया।

नागेश्वरराव जी ने "आन्ध्र वाङ्गमय चरित्र" नाम से तुलुगु साहित्य का संक्षिप्त इतिहास भी लिखा। आपकी दानशीलता पर मुग्द्ध हो महात्मा गांधी ने आपको "विश्वदाता" और देशोद्धारक" नामक उपाधियाँ प्रदान कर गौरवान्वित किया। साहित्य सेवाओं के लिए आप कलाप्रपूर्ण कहलाये। आप रचनाओं को प्रोत्साहित करते थे। पुरस्कार देकर सम्मान दिया करते थे। आपने तेलुगु भाषा और साहित्य की बड़ी सेवा की।

14.5.1 काव्य साहित्य

आधुनिक युग का काव्य साहित्य अपनी परंपरागत काव्य रीतियों में तत्कालीन युग प्रवृत्तियों को लिए अवतरित हुआ। प्रचीन काव्य शैली एवं प्रबन्ध काव्यों को नवीन गुणों के साथ प्रस्तुत करने का श्रेय तिरुपति वेंकटेश्वर कविद्वय को है। दिवाकर्ल तिरुपति शास्त्री (ई. सन् 1871 से 1919 तक) चल्वपिल्ल वेंकट शास्त्री (ई. सन् 1870 से 1950 तक) कविद्वय ने गाँव-गाँव में जाकर पण्डित सभाएँ, कवि सम्मेलन करते हुए आन्ध्र जनता में तेलुगु साहित्य के प्रति सुरुचि पैदा की। आप दोनों ने तत्कालीन समस्त राज दरबारों में जाकर शतावधान, अष्टावधान, आशु कविता, चाटूक्ति इत्यादि द्वारा राजा-महाराजाओं को प्रसन्न कर सम्मान के साथ पुरस्कार भी प्राप्त किये। आप कविद्वय स्वतन्त्र प्रवृत्ति वाले कवि थे। आपने तेलुगु भाषा को परिष्कृत करते हुए व्याकरण के नियमों को संकुचित बताया। और तेलुगु भाषा को उपादेय करने का प्रयास किया। अपने आपको कवीन्द्र मानकर कविता में पराजित करने की चुनौती दिया करते थे। इनकी चुनौती पर वेंकटरामकृष्ण तथा कोप्परपु कविद्वय रुष्ट हो गये थे। पण्डित सभाओं में भिडंत होती थी। इसी श्रेणी में वेंकट पार्वतीश कविद्वय हुए। बालन्तरपु वेंकट राव (सन् 1880) तथा ओलेटि पार्वतीश (सन् 1882)।

तेलुगु साहित्य में प्रथम देशभक्ति का प्रबोध करने वाले कवि श्री गुरजाड वेंकट अप्पाराव थे। देश की दुर्दशा को देख कर कवि का मन कलात्मक काव्य रचना से निकल कर राष्ट्र भक्ति के रूप में प्रकट होता है। उद्यम शील बनकर सभी क्षेत्रों में अग्रसर होने का प्रबोध करता है। देश की परिकल्पना केवल मिट्टी से नहीं वहाँ के निवासी मनुष्य मात्र से की जाती है। साम्प्रदायिक दीवारों को लाँघकर प्रेम रूपी पुष्पों को सुरक्षित करता है। पत्रों की आड़ में छिपकर कविता कोयल बोल उठे और उस वाणी से देश प्रेम रूपी सुन्दर भावनाएँ जागृत हों।

14.5.2 भाषा-शिल्प

कविता को सर्व साधारण की सम्पत्ति बनाने हेतु भाषा को परिमार्जित कर सर्व जनोपयोगी करने हेतु वीरेशलिंगम् पंतुलु, गिडुगु राममूर्ति पंतुलु, काशीनाथनि नागेश्वर राव तथा गुरजाड अप्पाराव आदि ने व्यावहारिक भाषा का प्रचार किया। स्वतन्त्रता संग्राम में नव जागरण की कविता में गेयता लाकर भाषा तथा साहित्य को समृद्ध किया। मुत्याल सरालु गीत में कथावस्तु, छन्द, रचना रीति आदि में नवीनता पायी जाती है।

इस युग की कविता शैली में निम्न प्रकार के नवीन लक्षण पाये जाते हैं। इतिवृत्त संक्षिप्त तथा स्वतन्त्र होता था। प्राचीन परंपरागत वृत्त तथा छन्दों को छोड़कर लोक गीत शैली में कन्नड के शट्पदि तथा फारसी के गजल के अनुरूप नवीन शैली में रचना होती थी। वस्तु तथा कथ्य तत्कालीन सामाजिक समस्याओं से लिया जाता था। रचना में सरलता तथा सहजता का ध्यान रखा जाता था। राष्ट्रीय भावनाओं के साथ नव जागरण का समाज सुधार का खण्डन होता था।

14.5.3 गद्य

श्री परवस्तु चिन्नयसूरि ने बाल व्याकरण की रचना की। आपने व्याकरण सम्मत भाषा का स्वरूप निर्धारण करते हुए नीति चन्द्रिका की रचना कर आधुनिक तेलुगु में गेय रचना का सूत्रपात किया। श्री वीरेशलिंगम पंतुलु ने कहानी को छोड़ तेलुगु में समस्त गद्य विधाओं का बीजारोपण किया। श्री गिडुगु राममूर्ति पंतुलु ने साहित्यिक भाषा और व्यावहारिक भाषा में अन्तर स्पष्ट करते हुए, जन सामान्य की भाषा अर्थात् व्यावहारिक भाषा के प्रयोग पर बल दिया। परिणाम स्वरूप पत्र-पत्रिकाओं में व्यावहारिक भाषा का प्रयोग होने लगा। विश्व

विद्यालय के पाठ्य पुस्तकों में व्यावहारिक भाषा की पुस्तकें अपठित पुस्तकों के रूप में स्वीकृत की गईं।

अनुसंधान कार्य के अन्तर्गत प्राचीन हस्त लिखित ग्रन्थों का परिमार्जन सम्पादन व मुद्रण, साहित्यिक इतिहास भाषा शास्त्र पर अनुशीलनात्मक ग्रन्थों का प्रकाशन इस युग में हुआ। रीति ग्रन्थ, कोश, विविध शास्त्र, ग्रन्थ, विश्व कोश आदि का प्रणयन हुआ।

तेलुगु भाषा तथा साहित्य के विकास तथा संवर्धन हेतु अनेक संस्थाओं का आविर्भाव हुआ। साहिती-समिति, नव्य साहित्य परिषद, नाटक कला-परिषद, तेलुगु भाषा समिति, आन्ध्र साहित्य परिषद तथा विश्वविद्यालयों की ओर से उल्लेखनीय कार्य हुआ। पत्र, पत्रिकाओं ने भाषा के प्रयोग तथा परिमार्जन में अभूत पूर्व योगदान दिया। इस प्रकार माना जाता है, विविधता, उत्तमता तथा नवीनता के लिए हुए "गद्य युग" नाम से अभिहित हुआ। उपन्यास, कहानी, नाटक आदि की रचना प्रारंभ में अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव रहा। तदनन्तर मौलिक सृजन हुआ। इस युग की प्रवृत्तियों में नवीनता होने से यह नवीन युग कहा जाता है।

14.5.4 नाटक

समाज सुधार के विचार को लेकर रचा गया श्री गुरजाडा अप्पाराव का नाटक "कन्याशुल्कम्" विशेष प्रसिद्ध है। वेदमु वेंकटराय शास्त्री कृत प्रताप रुद्रीयम् तथा बोब्बिलि युद्धम् आदि ऐतिहासिक नाटक श्री चिलकमर्ति नरसिंहम् कृत "कीचक वध" तथा "गयोपाख्यान" आदि पौराणिक नाटक लोकप्रिय हुए। ध्यान देने की बात यह है कि "आन्ध्र केसरी", "टंगुटूरि प्रकाशम". "विश्वदाता" देशोद्धारक नागेश्वर राव पंतुलु, "देशभक्त" कोंडा वेंकटप्पय्या पंतुलु, "आन्धरत्न" दुग्गिराल गोपाल कृष्णय्या जैसे राजनैतिक नेताओं ने इन नाटकों में अभिन्य किया था।

आन्ध्र में अनेक संस्थाएँ स्थापित हुईं, जिनके द्वारा ऐतिहासिक, सामाजिक नाटक अभिनेय होते रहे। बल्लारि राघवाचारी ने रंगमंच को विशेष रूप में संवारा। इच्छा पुरपु यज्ञनारायण कृत रसपुत्र विजय, गुंडिमेड सुब्बाराव कृत "खिल्जी राज्य पतन, कोप्परपु सुब्बाराव कृत "रोशनारा" और वाविलाल सोमयाजुलु कृत "नायकुरालु", लोकप्रिय ऐतिहासिक नाटक हुए। श्री गुरजाड़ा अप्पाराव कृत "कन्याशुल्कम्" के अतिरिक्त पानुगंटि लक्ष्मीनरसिंहम् कृत "कंठाभरण" काल्लकरि नारायण द्वारा विरचित चिंतामनि, वरविक्रयमु, मधुसेवा और -सोमराजु रामानुज कृत "रंगून रौडी" आदि सामाजिक नाटक विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसी युग में तेलुगु प्रान्त में नाद्रेल्ल पुरुषोत्तम कवि कृत हिन्दुस्तानी नाटक आन्ध्र प्रान्त में खेले जाते थे।

प्रहसन लेखन में श्री वीरेशलिंगम आद्य पुरुष हैं। सामाजिक कुरीतियों के प्रक्षालन हेतु प्रहसन लिखे गये। इनमें गुरजाडा अप्पाराव कृत "विलहणीयम्" उल्लेखनीय है।

निबन्ध लेखन में पानुगंटि लक्ष्मी नरसिंह राव के साक्षी (छः भाग) कट्टमंचिराम लिंगारेड्डी के व्यासमंजरी (पाँच खण्ड) महत्वपूर्ण हैं।

श्री उन्नव लक्ष्मी नारायण पंतुलु कृत "माल पल्ली" उपन्यास में गाँधी जी के आदर्शों के अनुसार दलित जनोद्धार, उच्च वर्ण वालों के उत्याचार दुखियों की सहिष्णुता आदि का प्रभावशाली चित्रण किया गया।

तेलुगु में कहानी (कथा) का शुभारंभ गुरजाडा अप्पाराव कृत "मी पेरेमि" (आपका नाम क्या है), दिद्दु वाटु (सुधार), तथा संस्कृत हृदयमु आदि सामाजिक कहानियों से हुआ।

समालोचना क्षेत्रों में श्री वीरेशलिंगमु, कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी ने सूत्रपात किया। इन सभी साहित्यिक विधाओं में उत्तरोत्तर विकास होता गया और सामाजिक जागरण के लिए रचना होने लगी।

बोध प्रश्न

6) वेदम वेंटराय शास्त्री के साहित्यिक कार्य को दो-तीन पंक्तियों में लिखिए।

.....

7) धर्मवरण, कृष्णामाचर्युलु ने नाटक रचना के अलावा इस क्षेत्र में कौन-सा महत्वपूर्ण कार्य किया?

.....

.....

8) तेलुगु साहित्य को जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए वेंकटरामूर्ति पंतुलु ने क्या कार्य किया?

.....

.....

9) पानुर्गति लक्ष्मी नरसिंहाराव ने साहित्य द्वारा क्या कार्य किया?

.....

.....

10) चिलुकमर्ति लक्ष्मीनर्सिंहम ने नेत्र खोने के बाद भी साहित्य सेवा की। राष्ट्र के लिए किए गए उनके कार्यों का चार पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

11) उचित शब्द रखकर वाक्य पूर्ति कीजिए:

i) भारत धर्म दर्शनम ..... की रचना है।

ii) तेलुगु विश्व कोश के प्रथम भाग का निर्माण ..... ने किया।

iii) आन्ध्र दैनिक पत्रिका का प्रकाशन ..... ने किया।

14.6 वाचन: स्त्री शिक्षा (वीरेशलिंगम पंतुलु)

विद्य वलन विनय विवेकादि सद्गुणमुलु गलुगुनन्न विषयमु ऐल्लवारलकु देलिसि युन्नदे कदा! विद्य नेरुगनि वारु मनुष्युले कारनि मनु पेद्दलयभिप्राय मगुट चेत वारु "विद्या विहीनः पशुः" अनि व्रासि युन्नारु। ओक्क मुरुषुलकु मात्रमे काक स्त्रीलकु सहितमु विद्य यावश्यकमगुट, स्त्रीलकु कूड विनय विवेकादि सद्गुणमुलु कलुगवलयुननि कोरुवारि केल्लनु गरतलामतकमै युंडुनु। पुरुषुडु समस्त शास्त्रमुलनु जदिविन रसिक शिरोमणियै युंडि भार्य पशुप्रायमैन मूढ शिरोमणिगा नुंडिन येडल, वारिरुवुरंकुनु मनसेट्लु कलियुनु? सौख्य मेट्लु संभविंचुनु? मुदोक हयरत्नमुनु वेनुकोक दुन्नपोतनु गट्टिअनं बंडि यट्लुगाक कुटुंब चक्रमेट्लु तिन्नगा नडुचुनु? विद्य वलन स्त्री लकुनु बेक्क प्रयोजनमुलु गलवु। मोट्ट मोदट विद्य वलन तेलिवि गलुगुनु। गृहकृत्य निर्वहणमुयंदु तेलिवि मुख्यमुगा गावलसिये युंडुनु गान स्त्रील चदिविन वारगुदुरैनि इंटि पानुलनु वारु मिक्किलि पोदुपु गानु जाग्रत्त तोनु निर्वहिंतुरु। तेलिवि गलुगुटचे निदि युक्तमु, इदि ययुक्तमु अनु ज्ञानमु कलुगुनु। अंदुवलन सत्कार्यमुलने चेयगोरुटयु, दुष्कार्यमुलनु मानगोरुठयु संभविंचुनु। दानिनि बट्टि योक्क कुटुंबमुलोनि वारंदरुनु तगवुलु लेक यैकमत्यमु गलिगि युदुरु। स्त्रीलु चदिविन वारैन बूर्वपु पुण्यसतुल चरित्रमुलनु जदिवि तामुनु वारिवलेनगुटकु प्रयत्नपडुदुरु। इप्पटि वले स्त्रीलु पदिमंदि कूडिनपुडु परुलमीदि दोषमुलु गणिंचुटतो प्रोद्दपुच्चक, मंचि ग्रंथमुलनु चदुवुकोनुट चेतगानि यदलि विषयमुलनु जेप्पुकोनुट चेतगानि कालक्षेपमु चेयुदुरु। भर्त पर्देशामुनकु बोव दटस्थिंचिनपुडु गृहकृत्य विषयमंदु रहस्यमुगा भर्त यालोचनन बोंदि वारिनि चक्कगा निर्वर्तिंप समर्थुरांड्रगुदुरु। तम बिड्डलकु विद्या बुद्धुलनु नेर्पि सत्प्रवर्तनमु गल वारिगा चेयुटये गाक वारु पाठशाला यंदु चदुवुकोन्नवानिनि परीक्षिंचि सिक्षिंचु चुंदुरु। विद्य वलन गलिगेडि इट्टि प्रयोजनमुलु स्त्रीलकुनु लेक्कक मिंचि युन्नवि।

पूर्व कालमंदु पुरुषलवलेने स्त्रीलनु ऐल्लर चेतनु गौरविंप बडुचुंडिरि। सीत मोदलगुवारु तम भर्तलतो सभलकु वच्चि सिंहासनमु मीद कूचंडुट मोदलगु संगतुल पेक्किंटि निंदुकु दुष्टांतमुग जेयवच्चुनु। स्त्रीलु स्वातंत्र्यरांड कारनुन मैत्रमुन वारु गौरविंप नरहरांड्र कारनि यैंचुट

केवलम् पोरपाटु। स्त्रीलनु पुरुषुलतो समानमुग गौरविंचुन्नंत कालमुन मनदेशमेंतो युन्नत स्थिति यंदे युंडिनदि। अट्ल गौरविंचुट मानि, विद्य येप्पिंचुट वदिलिवेसि, वारिनि दासीजनुलनुलें जूड मोदलु पेट्टिन तरुवातने मन देशमुन किट्टि दौर्भाग्य दशा यारंभमायेनदि।

अंदुवलन मनवारु स्त्रीलकु मंचि विद्यनु जेप्पिंचि विवेक महितु रांड्रनुगा जेसि, पिम्मट वारि यालोचननु सहितमु तगिन विषयमुलंदंगी करिंचि वारिनि गौरविंचुचु मन पूर्वुलु पोंदि युंडिन महोन्नतदशनु मरल पोंदुटके प्रयत्निंतुरनि मरि मरि कोरुचुन्नानु।

भावार्थ: स्त्री शिक्षा (वीरेशलिंगम पंतुलु)

यह विषय सबको विदित ही है कि विद्या (शिक्षा) के कारण विनय, विवेक आदि सद्गुण संप्राप्त होते हैं। हमारे पूर्वजों का विचार था कि विद्या से अनभिज्ञजन मनुष्य ही नहीं हैं, इसलिए उन्होंने लिख दिया कि "विद्या विहीन: पशु:"। मात्र पुरुषों को नहीं स्त्रियों के लिए भी विद्या आवश्यक होने से, स्त्रियों में भी विनय, विवेक आदि सद्गुण होने चाहिए, ऐसा माननेवालों के लिए यह तथ्य करतलामलक (सुज्ञेय) है। यदि पुरुष समस्त शास्त्रों का अध्ययन कर चुकने वाला रसिक शिरोमणि हों और पत्नी पशु प्राय: मूढ-शिरोमणि बनकर रहें तो उन दोनों के मन कैसे मिलेंगे? सुख कैसे संभव होगा? सामने एक हयरत्न (श्रेष्ठ अश्व) और पीछे एक भैंस के जुती गाड़ी के समान है, कुटुंब-चक्र (परिवार रूपी गाड़ी) ठीक तरह से कैसे चलेगी? शिक्षा से स्त्रियों के कई प्रयोजन हैं। सर्वप्रथम शिक्षा से अकल बढ़ती है। गृह-कृत्य-निर्वाह में मुख्य रूप से बद्धि (अकूल) की आवश्यकता है, इसलिए स्त्रियाँ शिक्षित हों तो घर के काम-काज को और सावधानी के साथ संपन्न करेंगी। बुद्धि के होने से यह युक्त (समुचित) है और यह अयुक्त (अनुचित) है, यह ज्ञान होगा। इससे सत्यकार्यों को ही और दुष्कार्यों को न करना, यह संभव हो जाएगा। इससे एक परिवार के लोग, बिना कलहों के, एकता के साथ रहेंगे। यदि स्त्रियाँ शिक्षित हों तो पूर्व की पुण्य सतियों की कथाओं को पढ़कर, स्वयं भी उनके समान बनने का प्रयत्न करेंगे। आज के समान (शिक्षा रहित हो) जब दस स्त्रियाँ एकत्र होती हैं, तब दूसरों के दोषों को न गुन कर, अच्छे ग्रन्थों को पढ़ते हुए या उन ग्रन्थों के अच्छे विषयों की चर्चा करते हुए समय बिताएँगी। जब पति को परदेश जाना पड़े तब गृहकृत्य-निर्वाह में गोपनीय रूप से पति से विचार विमर्श कर, उनको ठीक ढंग से संपन्न करने में समर्थ होती हैं। अपनी संतान को विद्या और बुद्धि सिखाकर, सदाचरण से युक्त बनाने के अतिरिक्त पाठशाला में पढ़े हुए विषयों की परीक्षा कर, उन्हें दंडित भी करती हैं। स्त्रियों के लिए शिक्षा के कारण प्राप्त होने वाले प्रयोलान अगिणत हैं।

पूर्वकाल में पुरुषों के समान ही स्त्रियाँ भी सबसे समाहृत होती थीं। सीता आदि का अपने पतियों के साथ सभाओं में आकर, सिंहासन पर बैठना आदि कई विषयों को इसके उदाहरण के रूप में प्रस्तुत कर सकते हैं। स्त्रियों को अस्वतन्त्र कह देने मात्र से यह समझना गलत होगा कि वे आदर के योग्य नहीं हैं। जब तक पुरुषों के समान स्त्रियों का आदर होता था, तब तक हमारे देश काफी उन्नत दशा में था। ऐसा समादर करना छोड़, शिक्षित करना छोड़कर, उन्हें दासी जन के समान देखना प्रारंभ करने के बाद ही, हमारे देश की दुर्भाग्य युत दशा का प्रारंभ हुआ है।
इसलिए अब हमारे लोगों (देशवासियों) से पुन: पुन: निवेदन कर रहा हूँ कि वे स्त्रियों को अच्छी शिक्षा दिलाकर, विवेक महितात्मा बनाकर, उसके बाद समुचित विषयों में उनके विचारों को स्वीकार कर, उन्हें समादर करते हुए, हमारे पूर्वजों की चर मोन्नत दशा को पुन: प्राप्त करने के प्रयत्न करें।

14.7 वाचन: देशभक्ति (स्व: गुरजाड अप्पाराव)

1. देशमुनु प्रेमिंचुमन्ना, मंचि अन्नदि पेंचुमन्ना।
   वट्टि माटलु कट्टि पेट्टोय, गट्टि मेल तल पेट्टवोय।।
2. पाडि पंटलु पोंगिपोर्ले, दारिलो नुवु पाटु पडवोय।
   तिंडि कलिगिते कंड कलदोयु, कंड कलवाडेनु मनिषोय।।
3. ईसुरोमति मनुषुलुंटे, देशमेगति बागुपडुनेयूं।
   जल्दकोनि कललेल्ल तेर्चक. देसि सरुकल निंपवोय।।

4. अन्नि देशाल क्रम्मवलेनोय्, दोस सरकुल नम्मवलनाय्।
डब्बु तेलेनट्टि नरुलकु, कीर्ति-संपदलब्बवोय्।।

5. वेनुक चूसिन कार्यमे मोय? मंचि गतमुन कोंचमोनोय्।
मंदगिंचक मुंदु अडुगेय्, वेनुक पडिते वेनुकेनोयू।।

6. देशाभिमानं नाकु कद्दनि, वट्टि गोप्पलु चेप्पुकोकोय्।
पूनि यैदानानु बोकमेलु, कूर्चि जनुलकु चूपवोय्।।

7. सोंतलाभं कोंतमानुकु, पोरुगु वाडिकि तोडुपडवोय्।
देशमंटे मट्टि कादोय, देशमंटे मनुषुलोय्।।

8. चेट्टपट्टाल् पट्टकोनि, देशस्थुलंता नडुव वलेनोय्।
अन्नदम्मुल वलेनु जातुलु, मतमुलन्नी मेलगवलेनोयू।।

9. मतं वेरैतेनु येमोय्?, मनसु वोकटै मनुषुलुंटे।
जाति यन्नदि लेंचि पेरिगि, लोकमुन राणिंचुनोय्।।

10. देशमनियेडि दोड्ड वृक्षः प्रेमलनु पूलेत्तवलेनोय्।
नरुल् चेमटनु तडिसि मूलं, धनं पंटलु पंड वलेनोय्।।

देशभक्ति (सारांश) स्व. गुरजाड अप्पाराव

1. देश से प्रेम कर रे भाई, भलाई को विवर्द्धित कर रे भाई।
व्यर्थ की बड़ाइयाँ (गप्पे) बंद कर दे, सकारात्मक (सुदृढ़) उपकार की बात सोच।।

2. दूध-दही, फसल आदि की पुष्पकलता हो, ऐसे मार्ग (उपाय) के लिए प्रयास कर।
अन्न (भोजन) उपलब्ध हो तो शक्ति है, शक्तिवान ही मानव है।।

3. निर्वीर्य हो मानव (देशवासी) रहें तो देश का उद्धार (सुधार) कैसे होगा?
शीघ्रता से समस्त कलाओं को सीखकर, देशी माल से (देश को) भर दे।।

4. सभी देशों में फैल जाना चाहिए, देशी माल को (वहाँ) बेचना चाहिए।
जो धन नहीं कमा सकता, उसकी कीर्ति-प्रतिष्ठा नहीं होती।।

5. पीछे (अतीत की ओर) की ओर देखना व्यर्थ है, अतीत में अच्छाई कम ही है।
आल्सय न करके कदम बढ़ा, पीछे रह गया तो पीछे ही रह जाएगा।

6. ये गप्पे मत हाँक कि मुझ में देशाभिमान है।
प्रयास कर, एक तो भला काम कर, जनता को दिखा।।

7. स्वार्थ (अपना लाभ) थोड़ा त्याग कर, पड़ोसी की सहायता कर।
देश का तात्पर्य मिट्टी नहीं है, देश का अर्थ मानव है।।

8. हाथ से हाथ मिलाकर, समस्त देशवासियों को चलना (काम करना) चाहिए।
सहोदर भाव से समस्त जातियों और धर्मों को आचरण करना चाहिए।।

9. यदि मनुष्य एक होकर (एकता से) रहें तो धर्म अलग हों तो क्या होगा?
राष्ट्र की भावना उभर कर, लोक में शोभायमान होगी।

10. देशरूपी महान् वृक्ष पर, प्रेम रूपी फूलों को विकसित होना चाहिए।
मानवों के पसीनों से सींच कर, मूलधन रूपी फसलों को पल्लवित होना चाहिए।

14.8 सारांश

- दक्षिणांचल भाषाओं में तेलुगु भाषा साहित्य का अपना अलग महत्व है। इसे भाषा में साहित्य रचना की पद्धति बहुत प्राचीन है। आप अब इस भाषा, साहित्य तथा लिपि के बारे में बता सकते हैं।
- विदेशी शासन के दमनचक्र से संपूर्ण भारतीय जनता त्रस्त थी। समाज का बुद्धिजीवी वर्ग इस दुःस्थिति से उबरने के लिए उपाय सोचने लगा। लेखकों ने परिवर्तन के लिए लेखन शुरू किया। आप आधुनिक तेलुगु साहित्य में आए बदलाव को बता सकते हैं।
- तेलुगु भाषा के कई महत्वपूर्ण रचनाकारों ने न सिर्फ राष्ट्रीय बल्कि सामाजिक चेतना के

लिए भी कार्य किया। आप बता सकते हैं कि-किन महत्वपूर्ण रचनाकारों ने तेलुगु भाषा में महत्वपूर्ण रचनाएँ की।

14.9 शब्दावली

कालान्तर	:	बाद में
दुरवस्था	:	खराब स्थिति
अविच्छिन्न	:	बिना अलग हुए, जुड़ा हुआ
निर्मूलन	:	समाप्त करना
जनोद्धारके	:	जनता के उद्धार के लिए
गेतालिक	:	गीत रचने वाले
बलवती	:	मजबूत
वर्धिनी	:	बढ़ाने वाला
अनुसंधाता	:	खोज करने वाला
मण्डन	:	समर्थन
स्वल्प	:	कप समय
मितभाषी	:	अच्छा बोलने वाले
खण्डन	:	विरोध
जनरंजक	:	जनता के मनोरंजन के लिए
वाक्ययुद्ध	:	वाद, विवाद
मनोहर	:	मन को हरण करने वाला, सुंदर

14.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- तेलुगु साहित्य का इतिहास, श्री बाल शौरि रेड्डी, उत्तर प्रदेश शासन राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डनः हिंदी कनक, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ
- आन्ध्र भारती, श्री बालशौरि रेड्डी, कला निकेतन, पटना-4,
- दक्षिण के विद्या सागर, के. आदिनारायण मूर्ति, करुण श्री पब्लिकेशन्स
- तेलुगु साहित्य परिमल, डॉ. भीमसैन निर्मल, दक्षिणांचलीय साहित्य समिति, हैदराबाद
- तेलुगु का उपन्यास, डॉ. भीमसैन निर्मल, दक्षिणांचलीय साहित्य समिति, हैदराबाद

14.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न
1, 2, 3 देखें भाग 14.2

बोध प्रश्न
4, 5 देखें भाग 14.4

बोध प्रश्न
6, 7, 8, 9, 10, 11 देखें भाग 14.4 तथा 14.5

इकाई 15 तेलुगु साहित्य-II

इकाई की रूपरेखा

15.0 उद्देश्य

15.1 प्रस्तावना

15.2 स्वतंत्रता आंदोलन में आंध्रों का योगदान
- 15.2.1 असहयोग आंदोलन
- 15.2.2 आंध्र में आदिवासी विद्रोह
- 15.2.3 राष्ट्रीय चेतना और प्रादेशिक अस्मिता
- 15.2.4 सुधारवादी आंदोलन
- 15.2.5 सामाजिक सुधार आंदोलन
- 15.2.6 शैक्षिक और सांस्कृतिक सुधार

15.3 राष्ट्रीय आंदोलन और तेलुगु साहित्य
- 15.3.1 तेलुगु कविता: आधुनिक प्रवृत्तियाँ

15.4 तेलुगु गद्य साहित्य का विकास
- 15.4.1 उपन्यास साहित्य
- 15.4.2 कहानी साहित्य
- 15.4.3 नाटक और एकांकी
- 15.4.4 आलोचना

15.5 सारांश

15.6 शब्दावली

15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.0 उद्देश्य

दक्षिणांचलीय साहित्य के अंतर्गत तीसरे खंड में आपने तमिल एवं मलयालम साहित्य का अध्ययन किया। खंड चार की पहली इकाई में तेलुगु भाषा साहित्य के विकास का अध्ययन किया। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- आंध्र प्रदेश में राष्ट्रीय आंदोलन एवं उस समय रचे गए राष्ट्रीय साहित्य के बारे में बता सकेंगे,
- तेलुगु भाषा साहित्य में आए विभिन्न मोड़ों को स्पष्ट कर सकेंगे,
- तत्कालीन समय में हुए सामाजिक आंदोलनों एवं उसमें सहायक साहित्य का विश्लेषण प्रस्तुत कर सकेंगे, तथा
- सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से तेलुगु साहित्य के महत्व को बता सकेंगे।

15.1 प्रस्तावना

हिंदी में ऐच्छिक पाठ्यक्रम-05 "आधुनिक भारतीय साहित्य: राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण" के खंड चार की यह दूसरी इकाई है। पहली इकाई में आपने तेलुगु भाषा साहित्य के उद्भव एवं विकास का अध्ययन किया है। आपने देखा कि तेलुगु भाषा एक बहुत बड़े क्षेत्र में बोली जाती है। अन्य भारतीय भाषाओं की तरह इस भाषा साहित्य में भी समयानुसार परिवर्तन आया। भारतीय नवोत्थान में इस भाषा साहित्य के लेखकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस इकाई में हम देखेंगे कि किस प्रकार स्वतंत्रता आंदोलन के विस्तार के साथ-साथ साहित्यकारों ने भी राष्ट्रीयतायुक्त रचनाएँ की। सामाजिक उत्थान के लिए जहाँ व्यक्तिगत रूप से साहित्यकारों ने आंदोलनों में भाग लिया, वहीं जन-जागृति से संबंधित रचनाएँ भी कीं। विभिन्न साहित्यिक विधाओं के माध्यम से जन-चेतना फैला-

का बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया गया। आइए, सर्वप्रथम विभिन्न आंदोलनों की जानकारी प्राप्त करें।

15.2 स्वतंत्रता आंदोलन में आंध्रों का योगदान

19वीं सदी के मध्य भाग में अंकुरित राष्ट्रीय चेतना 20वीं सदी के प्रथम दो दशकों में विकास को प्राप्त करती रही। 20वीं सदी के दूसरे दशक के बाद से भारतीय जन मानस की राष्ट्रीय चेतना जोर पकड़ने लगी। समस्त देश की प्रशासन-व्यवस्था एक ही राजतंत्र के अधीन होने से शिक्षा, संचार व परिवहन सुविधाओं के विस्तार तथा उनके सारे भारत में फैल जाने के कारण समस्त जनता में यह भावना घर कर गयी कि "हम सब भारतीय हैं"। भारत की राजनैतिक एकता (Political integration) के कारण देश में भावात्मक एकता (Emotional integration) भी दृढ़ हो गयी।

स्वतंत्रता आंदोलन में वर्ष 1920 को महत्वपूर्ण विभाजन रेखा के रूप में हम देख सकते हैं। 1920 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेतृत्व में आजादी की लड़ाई जो लड़ी गयी उसने एक नयी मोड़ अख्तियार कर ली थी। यह वही वर्ष है जहाँ भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की बागडोर गाँधी जी ने संभाली थी। गाँधी जी के नेतृत्व में संचालित सत्याग्रह आंदोलन के कारण ब्रिटिश सरकार को 1947 में देश को आजाद करना पड़ा तथा 1950 को भारत गणतंत्र बना और जनतंत्रात्मक राज्य व्यवस्था कायम हो पायी। इस कारण 1920 से लेकर 1950 तक की अवधि हमारी राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक गतिविधि के लिए एक महत्वपूर्ण काल-अवधि मानी जाती है।

इस अवधि के स्वतंत्रता आंदोलन में सभी प्रदेशों के, सभी वर्गों के एवं सभी भाषाओं के लोगों ने कंधे से कंधा मिला कर योगदान दिया। इस आंदोलन में आँध्रों का योगदान न केवल महत्वपूर्ण रहा अपितु विशिष्ट भी रहा।

15.2.1 असहयोग आंदोलन

1920 से गाँधी के नेतृत्व में स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए जब अहिंसात्मक आंदोलन प्रारंभ हुए, और सारे देश में उन के स्वागत हुए तो आँध्र प्रदेश में भी हिंसात्मक विद्रोह और क्रांतियाँ समाप्त हो गयीं और जनता संगठित हो कर गाँधी जी का अनुसरण करने लगी। गाँधी जी के इन कार्यक्रमों में तथा गाँधी जी के पूर्व संचालित 'होम रूल लीग' आदि में रंगय्यानायडु, आनंदाचर्युलु, न्यापति सुब्बाराव पंतुलु, गुत्ति केशव पिल्लै, गंजाम वेंकट रत्नम्, कु. पेर्राजु, वराहगिरि जोगय्या, दुग्गिराल गोपालकृष्णय्या (आँध्र रत्न) काशीनाथुनि नागेश्वर राव (विश्वदाता) कोंडा वेंकटप्पय्या (देशभक्त) भोगराजु पट्टाभि सीतारामय्या, टंगुटूरि प्रकाशम (आंध्र केसरी) चिर्रावूरि यज्ञेश्वर चिंतामणि और पोट्टि श्रीरामुलु आदि अनेक युवक कार्यकर्ताओं ने आंध्र प्रदेश में तथा बाहर भी सक्रिय सहयोग दिया था। 1922 में विजयवाड़ा में अखिल भारतीय कॉंग्रेस का अधिवेशन संपन्न होने से आंध्र जनता में कांग्रेस के प्रति तथा गाँधी जी के कार्यक्रमों के प्रति अधिक श्रद्धा भावना उत्पन्न हुई थी; इस कारण इस अधिवेशन में प्रस्तावित तथा आरंभ की गयी एक करोड़ रुपये की "तिलक-निधि" के लिए अपार धनराशि आंध्र प्रदेश से इकट्ठी हो गयी थी। अखिल भारतीय स्तर के असहयोग आंदोलनों के अतिरिक्त राज्यस्तर पर भी उस समय अनेक आन्दोलन हुए थे, जिन में से दो ऐसे थे, जिन्होंने सबल अंग्रेजों की सत्ता को हिलाने का काम किया था। वे हैं: (1) आंध्ररत्न दुग्गिराल गोपालकृष्णय्या के नेतृत्व में चीराला और पेराला की बीस बीस हजार जनता म्युनिसिपैलिटी की स्थापना के विरुद्ध सामूहिक रूप से अपने घरों को छोड़ कर एक साल तक अनेक तकलीफों को झेलते हुए गाँव के बाहर झोंपड़ियों में रहने लगी। देश के इतिहास में यह एक अनोखी घटना है जो 1921 में घटित हुई थी। (2) पेदनंदिपाडु (गुण्टूर जिला) तथा उस के आस-पास के एक सौ गाँव के किसानों ने सरकार को कर न देकर जो असहयोग किया था। यह घटना 1922 की है। उस समय के मद्रास के गवर्नर वेलिंगडन ने लंदन के पार्लियामेंट में इस घटना के बारे में बोलते हुए कहा कि वास्तव में गुण्टूर जिले के किसान अंग्रेज शासन की नींव हिलाने में समर्थ हुए।

15.2.2 आंध्र में आदिवासी विद्रोह

ब्रिटिश राज के खिलाफ आंध्र के आदिवासियों के विद्रोहों का भी महत्वपूर्ण स्थान है। 1920 के बाद आंध्र के आदिवासियों ने जो दो विद्रोह किये थे उन्होंने ब्रिटिश सत्ता को हिला दिया था। वे हैं (1) 1922 में संपन्न स्वर क्रांति। वर्तमान श्रीकाकुलम और गंजाम (उड़ीसा) जिले में रहने वाले शवर/सवर आदिम जाति के लोगों ने अंग्रेज दमन-नीति के प्रति विद्रोह करते हुए क्रांति मचाई, जिसे शवर/सवर क्रांति कहते हैं। (2) इसके बाद आन्ध्र के क्रांतिकारी नेता अल्लूरी सीताराम राजु के नेतृत्व में राष्ट्रभक्ति की भावना से प्रेरित हो कर गंजाम, श्रीकाकुलम, विशाखापट्टणम, पूर्व गोदावरी तथा पश्चिम गोदावरी की जनता तथा इन प्रांतों के पहाड़ों में रहने वाली कोय जाति के लोगों ने जिस क्रांति का श्रीगणेश किया था, वह दो वर्ष तक अवाध गति से चलता रहा, और इस ने अत्यंत भयंकर रूप धारण कर लिया था, जिस के कारण अंग्रेज शासन तिलमिला उठे थे। लंबी अवधि तक विस्तृत भू-भाग में व्याप्त होने, सुनियोजित नेतृत्व और साहसिक कार्यों तथा अनन्य देश भक्ति की भावना से प्रेरित होने के कारण यह क्रांति भारत के स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान रखती है।

1927 में जब साइमन कमीशन मद्रास आयी तब उस के बहिष्कार के लिए टंगुटूरि प्रकाशम पंतुलु ने जो वीरता दिखायी उससे वे आंध्र केसरी कहलाये। 1929 के नमक सत्याग्रह में दंडी यात्रा के दौरान आंध्र के नेता एनेंनि सुब्रहमण्यम गाँधी जी के साथ थे। उस समय गाँधी जी के आदेश के अनुसार आंध्र के सभी जिलों में सत्याग्रह चलाये गये। हजारों स्वयं सेवक उस आंदोलन में कूद पड़े। 1939-40 में हैदराबाद के उस्मानिया विश्वविद्यालय के छात्रों ने वंदेमातरम नारे को बुलंद करते हुए कक्षाओं से निष्काशित हुए। 1941 के व्यक्ति सत्याग्रह में तथा 1942 के भारत छोड़ो आंदोलनों में आंध्रों ने अनुपम वीरता का परिचय दिया।

15.2.3 राष्ट्रीय चेतना और प्रादेशिक अस्मिता

भारत एक राष्ट्र है। एक इकाई है। लेकिन पाश्चात्य दृष्टिकोण में जो राष्ट्र की संकल्पना है उससे भिन्न है हमारी राष्ट्र की संकल्पना। भारत राष्ट्र अनेक जातियों, भाषाओं, धर्मों व आचार-विचारों की सहभागिता से युक्त एक बृहद संगठन (Great Communion) है। वास्तव में एकता में अनेकता इस राष्ट्र की विलक्षणता है, न कि "अनेकता में एकता" जैसा कि पाश्चात्य देशों में प्रचारित कर रखा है। इटली, फ्रांस, स्पेन, ग्रेटब्रिटेन कहने से जिस प्रकार से एक भाषिक व समरूप या सजातीय समाज का बोध होता है, उस प्रकार का बोध भारत कहने से नहीं होता। इसी प्रकार एक राजनीतिक इकाई का भी बोध पहले हमारे यहाँ होता नहीं था। भारत को यूरोप और अफ्रीका की भाँति एक भौगोलिक इकाई मान सकते हैं। भारत शब्द भौगोलिक व सांस्कृतिक संकल्पना से संबद्ध माना जाएगा, न कि राजनीतिक संकल्पना से संबद्ध। ब्रिटिश लोगों से पहले जितनी भी जातीयाँ यहाँ आयीं और जिन्होंने यहाँ राज्य भी स्थापित किये उन सब का भारतीयकरण होता गया। भारत एक पवित्र भूमि है। भारत में सांस्कृतिक एकता है। ये हमारे पौराणिक संकल्पनाएँ हैं। भारत बहुभाषा भाषी राष्ट्र है। (Multilingual Nation) यह विचार पाश्चात्यों की देन है। वास्तव में हमारे यहाँ धार्मिक सांस्कृतिक समन्वयन तथा भाषिक अभिसरण (Language Convergen ce) के कारण साहित्यिक आत्मा एक रही। यहाँ भाषाओं का और साहित्यों का समामेलन (Amalgamation) होता रहा। अतः भारत का समाज उस प्रकार का बहु भाषा भाषी समाज नहीं है जिस की संकल्पना (Multilingual Nation) में है। पाश्चात्य देशों में प्रत्येक भाषा समाज अपने में स्वतंत्र है एक दूसरे से अलग थलग। वहाँ की भाषिक स्थिति स्थिरक (Static) माना जाता है। जब कि हमारे यहाँ की स्थिति इस से भिन्न प्रवाहमान (Fluid) है। अतः हमारा समाज बहुरंगी भाषी (Pluni-lingual) समाज है।

अखिल भारतीयता सांस्कृतिक और साहित्यिक अर्थ में हमारे यहाँ कायम थी। इसे हम सांस्कृतिक/साहितिक राष्ट्रीयता कह सकते हैं। राजनीतिक राष्ट्रीयता या राष्ट्रवाद अंग्रेजों की देन है। अंग्रेजों की हुकूमत के खिलाफ लड़ने के लिए राष्ट्रीयता आंदोलन के समय अखिल भारतीय राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता का जन्म हुआ, यह कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। इस अखिल भारतीय राष्ट्रीयता से प्रादेशिक अस्मिता या भाषिक अस्मिता खत्म नहीं हुई है। प्रादेशिक और भाषिक विशिष्टताओं और कुछ हद तक साहित्यिक विशिष्टताओं और निजी व्यक्तित्व को बनाये रखते हुए हमारी अखिल भारतीय राष्ट्रीयता

काम करती रही। वंग भग (1905) के समय समस्त देश में जो आंदोलन हुए हैं वे इस बात को प्रमाणित करते हैं कि हमारे देश में क्षेत्रीय राष्ट्रीयता अखिल भारतीय राष्ट्रीयता का एक अविभाज्य अंग है। क्षेत्रीय राष्ट्रीयता कभी भी भारतीय राष्ट्रीयता में आड़े नहीं आयी। मसलन राष्ट्रीयता आंदोलन के समय उसके समानांतर आदोलन के रूप में "आंध्रोद्यमम् चलता रहा। तेलुगु की राष्ट्रीय काव्यधारा में प्रादेशिक राष्ट्रीयता से संबद्ध काव्यधारा भी चलती रही। तेलुगु में अलग आंध्रराज्य की स्थापना, आन्ध्र-तेलुगु भाषी, आंध्र जाति, आंध्र गौरव आदि से संबद्ध विषयों पर साहित्य लिखा गया जो राष्ट्रीय साहित्य का ही अंग माना गया।

15.2.4 सुधारवादी आंदोलन

स्वतंत्रता आंदोलन के समय समस्त देश में गांधी जी के नेतृत्व में जागृत राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण के साथ सुधार के आंदोलनों ने समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने तथा सामाजिक उन्नयन के लिए बहुत बड़ी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। तेलुगु प्रदेश में सार्वदेशिक सामाजिक सुधार के आंदोलनों के साथ-साथ कुछ स्थानिक आंदोलन उठ खड़े हुए जिन का संबंध केवल तेलुगु भूमि तक सीमित रहा था। ये सुधार के आंदोलन दो प्रकार के रहे। एक सामाजिक सुधार से संबंधित आंदोलन तथा दो शैक्षिक और संस्कृतिक दिशा में सुधार।

एक तरफ अहिंसात्मक तरीके से आजादी की लड़ाई लड़ी जा रही थी तो दूसरी तरफ सामाजिक परिस्थितियों के कारण सारा भारत प्रगाढ़ अंधकार और निराशाओं में डूबा हुआ था। हमारी जनता की आंतरिक कमजोरियों से भली भाँति परिचित हमारे देश के महान चिंतकों ने यह महसूस किया कि आंतरिक एकता से प्रगतिशील आधुनिकता की दिशा में यदि परिवर्तन नहीं लाएँगे तो सार्थक और संतोषजनक भविष्य की आशा नहीं कर सकते। इस संदर्भ में तीन स्रोतों से प्रकाश की किरणें फूटने लगीं। वे हैं—ब्रह्म समाज, आर्य समाज और रामकृष्ण मठ। दिव्यज्ञान समाज अर्थात् थियोसोफिकल सोसाइटी को भी इन स्रोतों में जोड़ सकते हैं। ब्रह्म समाज के संस्थापक राजा राममोहन राय ने कुछ हद तक यूरोपीय आदेशों पर आश्रित तरीकों से हमारी संस्कृति और आचारण का पुनर्निर्माण करना चाहा था। अपने मार्ग दर्शन के लिए सहज ही उन्होंने वेद और उपनिषदों का आश्रम लिया। लेकिन उन की शिक्षा का सार और मानसिकता पाश्चात्य थी। लेकिन पाश्चात्यों के अनुकरण करने का अभिमान, और इस अभिमान से बढ़कर हमारी अहम्मन्यता ने विद्रोह किया था।

राममोहन राय ने अंग्रेजी में अपना कार्य किया और अंग्रेजी को भारत में प्राप्त स्थान के कारण उन के संदेश बंगाल तक सीमित न हो कर सारे भारत में फैल गये।

पश्चिम भारम में वैदिक शिला से तराशे गये गहन गंभीर दृढ़ निश्चल मूर्ति से दयानंद सरस्वती ने जन्म लिया। समानता और आधुनिक प्रगति नामक दो जुड़वे आधारों के तहत वे हिंदु समाज में परिवर्तन लाये थे। लेकिन ये पविर्तन वेद शिक्षा के आधार पर रूप निर्मित एवं निर्देशित होकर हमारे प्राचीन महान उन्नत सादगी एवं संतुलन की ओर जड़े जमाए हुये थे।

उसी वक्त एक तीसरा प्रकाश भी उदित हुआ। लेकिन यह थोड़े से भिन्न प्रकार का है। वेश्व में स्थित शेष सभी के रास्तों से भिन्न किन्तु अत्युन्नत रास्ते से संबंधित। वह प्रकाश है रामकृष्ण परम हंस और उन के द्वारा स्थापित रामकृष्ण मठ।

शैक्षिक और सांस्कृतिक क्षेत्र से संबंधित सुधार के कारण देश में और इसी प्रकार आंध्र प्रदेश में शिक्षा, एवं कला और रंगमंचों के क्षेत्रों में नवीनता आयी। नीचे क्रमशः उन का संक्षेप में परिचय प्रस्तुत है।

15.2.5 सामाजिक सुधार आंदोलन

जहाँ तक आँध्र में ब्रह्म समाज का संबंध है दो प्रमुख और पुरोधा सुधारकों के नाम आदर के साथ लिये जाते हैं। वे हैं ब्रह्मर्षि सर रघुपति वेंकटरत्नम नायुडु और कंदुकूरि वीरेशलिंगम पंतुलु। पंडित शिवनाथ शास्त्री, हेमचंद्र सरकार, सतीशचंद्र चक्रवर्ति एवं नवविधान प्रचारक अमृतलाल बोस और निर्भय प्रिय घोष आदि ब्रह्म समाजियों को बंगाल से आंध्र में बुलाकर जगह-जगह उन के प्रवचनों का आयोजन कर ब्रह्म समाज के विचारों का विपुल मात्रा में प्रचारित करने का श्रेय श्री नायुडु जी को है, तो ब्रह्म समाज के विचारों को आंध्र की मिट्टी के अनुरूप ढाल कर उन के द्वारा आंध्र समाज में सुधार लाने का श्रेय

वीरेशलिंगम जी को है। नायुडु जी ने मद्रास की शासन परिषद (1953 में आँ : राज्य की स्थापना तक तेलुगु भाषी जिले मद्रास प्रसीडेंसी के अधीन थे) के सदस्य के रूप में रहते हुए 1923 में ही नशाबंदी को अमल में लाने का बिल न लाने के कारण तत्कालीन ब्रिटिश सरकार की कड़ी आलोचना की थी। नायुडु जी धूम्रपान, ताड़ी-पान पर रोक लगाने, अस्पृश्यता निवारण, हरिजन-उद्धार, कलाकारों का प्रोत्साहन, स्वदेशी वस्तुओं का उपयोग आदि रचनात्मक कार्यों के लिए निष्काम तपस्वी व ऋषि की भाँति निरंतर कार्य करते रहे हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है ये सारे रचनात्मक कार्य नायुडु जी ने कांग्रेस के द्वारा इन कार्यक्रमों को हाथ में लेने से 50 वर्ष पहले ही शुरू किया था।

जहां तक वीरेशलिंगमू का संबंध है वे राजा राममोहन राय के समान उच्च वर्ग के नहीं थे। कलंक रहित शाली नेता के लिए ऋषि के समान गौरव प्राप्त संपूज्य दयानंद सरस्वती के समान अद्भुत व्यक्ति भी नहीं थे। फिर भी राजा राममोहन राय और दयानंद सरस्वती ने जिस तरह से कठिन लड़ाई लड़ी उसी प्रकार की कठिन लड़ाई वीरेशलिंगम ने जारी रखी थी। यौन एवं विधवा विवाह जैसे विषयों में, जिन्हें हम सब अति संवेदनशील मानते हैं, ब्राह्मणों की सनातना से टक्कर लेना पड़ा। दयानंद सरस्वती की भाँति अपनी दलीलों में कठोरता न प्रदर्शित करते हुए राजाराम मोहन राय के तर्क के मार्ग का अनुसरण करते हुए उन्होंने प्राचीन शास्त्र ग्रन्थों का सहारा लिया। उन्होंने अतिमानवतावाद या राष्ट्रीयतावाद की अभ्यर्थना नहीं की। नहीं अपनी लड़ाई में ईश्वर या स्वराज्य की अभ्यर्थना की।

मूलतः वीरेशलिंगम बुद्धिवादी और मानवतावादी थे। इसलिए उन्होंने सब में प्रवाहमान तार्किक विचार धारा, सामान्य बोध, न्याय की अभिलाषा और मानव की सहृदयता को उद्बोधित किया। उन्होंने प्राचीन रुढ़िवादिता से डट के मुकाबला किया। उसका खात्मा करना उन का असली उद्देश्य रहा था। उन्होंने अटल तर्कतावाद और मानवतावाद के पथ पर एक कदम आगे बढ़ते हुए प्रगति को हासिल करते हुए अपने कार्यक्रमों को आगे बढ़ाया। आखिरकार अपने जनेऊ, साथ में अपने कुल तथा सनातन हिन्दू धर्म को भी त्याग दिया। उन का ब्रह्म समाज आंध्र से बाहर उत्पन्न ब्रह्म समाज से अपनाया गया सिद्धांत न हो कर उन में से ही सीधे व सरल रूप से विकसित विश्वास था। इसके बावजूद वे अपने को ब्रह्म समाजी कहा करते थे।

स्थानिक रूप से आंध्र तक सीमित सुधारों में उल्लेखनीय हैं, त्रिपुरनेनी रामस्वामी चौधरी (1887-1943) के द्वारा हेतुवाद/तार्किकवाद के नाम से प्रचारित वैचारिक क्रांति तथा गोरा जी के द्वारा प्रचारित क्रियाशील नास्तिकवाद। ये दोनों आंध्र में परवर्ती युग के सुधारक माने जाते हैं। इन दोनों क्रांतिकारी विचारकों का प्रभाव भी आंध्र जनता पर पड़ा। परिणामतः इन के विचारों की अभिव्यक्ति तेलुगु साहित्य में देखी जा सकती है।

कविराज त्रिपुरनेनी रामस्वामी चौधरी और हेतवाद ये दोनों आँध्र प्रदेश में समानार्थक शब्द-से स्वीकार किये जाते हैं। तब तक जनमानस में विद्यमान कई मौलिक विश्वासों और विचारों पर अपने तर्कणावाद से कुठाराघात करते हुए आप ने नयी सोच प्रदान की तथा साहित्य की नयी व्याख्या प्रस्तुत की। समकालीन सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त कुरीतियों एवं तिरोगामी विचारों पर कुठाराघात करते हुए अपने एक ओर उन के विरुद्ध क्रांति का आह्वान किया तो दूसरी ओर जाति, धर्म, संप्रदाय आदि संकुचित विचारों से ग्रस्त समाज में नयी चेतना को जागृत करने की दृष्टि से रचनाएँ कीं। हिन्दु वर्ण व्यवस्था, विषमता का मूल कारण उन के अनुसार उच्च वर्ग है, जिसने अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए इतिहास और पुराणों को ऐसा निर्मित किया जिनके माध्यम से वह निम्न वर्ग वालों के सामाजिक शोषण में समर्थ हो सका। यह शोषण सदियों से चल रहा है। उन का मानना है कि हमारी पुराण कथाएँ धीरे-धीरे समाज में जमा होते जा रहे जंग (Rust) को ह्रासोन्मुख म्रियमानता (Decadence) को लीप पोतकर सर्वग्रहय बना रही हैं। इस के पीछे पुरोहित वर्ग का बड़ा षड़यंत्र छिपा हुआ है। अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने इन विचारों का वपुल प्रचार किया। पुराणपंथी अंधविश्वासियों की आस्था के मूल आधारों पर प्रश्न चिह्न लगा कर तर्क बद्ध एवं औचित्यपूर्ण चिंतन के लिए प्रेरित किया है। जस्टिस पासी के हिमायती, तेलुगु भाषा साहित्यों के विकास में संस्कृत एवं हिन्दी भाषा के अध्ययन को अवरोधक मानने, तथा ब्राहमणों की श्रेष्ठता के औचित्य पर प्रश्न चिह्न लगाने के कारण आप की सभी रचनाओं को कुछ लोग "आर्य ग्रंथों की द्राविड व्याख्या" करार कर देते हैं। अपने विचारों को प्रचारित करने के लिए कविराजु ने तेनाली में सूताश्रम की स्थापना की। विवाह संस्कार को तेलुगु भाषा में संपन्न कराने की व्यवस्था की।

श्री गोराजी (गोपराजु रामचंद्र राव) का व्यक्तित्व विलक्षण, विचार क्रांतिकारी और कार्यक्रम गाँधीवादी दर्शन से प्रभावित जन हितकारी रहे हैं। अस्पृश्यता निवारण, दलित

एवं हरिजन उद्धार, ग्राम राज्य की स्थापना आदि सर्वोदय कार्यक्रमों में सक्रियता से भाग लेते हुए गाँधी जी के प्रीति पात्र बने हुए गोरा जी ने राजनीति में निर्दलीय जनतंत्री (Partyless Democracy) तथा धर्म के क्षेत्र में आस्तिकवाद का घोर खंडन करते हुए नास्तिकवाद का प्रचार किया। गोरा जी का मानना है कि जीवन के हर क्षेत्र में ईश्वरीय विश्वास ने मानव को गुलाम बना दिया, उसे पंगु बना दिया अकर्मण्य व नियतिवादी बना दिया। गोरा जी ने अपने आसपास के जीवन की दयनीय स्थिति से यह निर्द्वन्द्व रूप से महसूस किया कि ईश्वरीय विश्वास बहुत बड़ा अनर्थ कर रहा है। वे ...स से तिलमिला उठे। उन की आस्था विद्रोह कर बैठी। गोरा जी ने घोषणा की ईश्वर मानव कल्पित है। ईश्वर झूठ है। इस झूठ पर विश्वास करने से और असत्य पर सामाजिक रचना और नीतियों को निर्धारित करने से समाज में भ्रष्टाचार, गुलामी, अनीति निरंकुशता आदि राज कर रहे हैं। सामाजिक क्षेत्र में जातिवाद का और दार्शनिक क्षेत्र में आस्तिक दर्शन का विरोध कर नास्तिकता का प्रतिपादन व प्रचार शुरू किया। गाँधी जी के साथ आश्रम में रहने के अतिरिक्त गोरा जी ने अपने विचारों एवं कार्यक्रमों को लेकर गाँधी जी से लंबी चर्चाएं भी की हैं। आपने गांधी जी से दो टूक शब्दों में यों कहा कि "मैं नास्तिकवाद इसलिए चाहता हूँ कि मनुष्य आत्म विश्वासी और स्वावलंबी बने और सामाजिक तथा आर्थिक समानताओं की प्रतिष्ठा, शांति और अहिंसा के साथ हो जाए।" गोरा जी के द्वारा विजयवाड़ा के पास 'पटमट' में स्थापित नास्तिक केन्द्र के द्वारा 1930-1950 के बीच अनगिनत अंतरजाति के विवाहों का तथा सहपंक्ति भोजनों का आयोजन किया गया।

15.2.6 शैक्षिक और सांस्कृतिक सुधार

1920 के बाद से गाँधी जी के नेतृत्व में, संचालित राष्ट्रीय आंदोलनों में छात्र अपने स्कूल व कालेज छोड़ कर कूद पड़े। असहयोग आंदोलनों में भाग लेने के कारण कुछ छात्रों को सरकार ने स्कूलों व कालेजों से निष्कासित किया। ऐसे छात्रों के शिक्षण की व्यवस्था के लिए देश भर में राष्ट्रीय स्कूल/कालेज खुल गये जिन में अन्य बातों के अलावा राष्ट्रीय भाव धारा की शिक्षा भी जाती थी। आँध्र प्रांत में स्थापित ऐसे कालेजों में प्रमुख है—राजमंड्री की वंदेमातरम पाठशाला और बंदर (मछलीपट्टनम) का जातीय (राष्ट्रीय) कलाशाला (कालेज) गाडिचर्ल हरिसर्वोत्तिक राव, कोफल्ले हनुमंतराव और मुट्नरि कृष्णा राव आदि राष्ट्रीय नेताओं ने इन कालेजों की स्थापना में सक्रिय सहयोग प्रदान किया था। इन कालेजों के माध्यम से राज्य के युवकों में राष्ट्रीय चेतना तथा नवजागरण के विचारों का प्रचार हुआ। इसी दौरान 1926 में वाल्तेर में आँध्र विश्वविद्यालय की स्थापना की गयी। यह पहला विश्वविद्यालय था जो भाषा के नाम पर स्थापित हुआ था।

चित्रकला के क्षेत्र में राजमंड्री के कालेज के प्रिन्सिपल आस्वांलड जेम्स कूलड्रे और बंदर कलाशाला के प्रिसिंपल प्रमोदकुमार चटोपाध्याय आदि ने बड़ा योगदान प्रदान किया। इन्हीं दिनों बंगाल के प्रख्यात चित्रकार अवनीद्र ठाकुर, नंदलाल बोस का आंध्र के युवा कलाकारों पर अधिक प्रभाव पड़ा था, और इस प्रकार कला के क्षेत्र में नव जागरण प्रारंभ हुआ था। इसी प्रकार सुरिभ नाटक मंडली की स्थापना आंध्र की सांस्कृतिक पुनरात्थान के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण घटना सबित हुई थी जिस के माध्यम से कई महत्वपूर्ण व प्रेरणा प्रद नाटकों का मंचन हुआ जिन से राष्ट्रीय चेतना व नवजागरण को बल मिला। 1931 में तेलुगु सिनेमा में मूक सिनेमा स्थान पर टाकी सिनेमा (Talky Cinema) का युग प्रारंभ हुआ। इन दिनों गृहलक्ष्मी मालपिल्ला (अछूत कन्या) रैतु बिड्डा (किसान का बेटा) वंदेमातरम, सुमंगली, वेदमा आदि फिल्मों ने राष्ट्रीय चेतना के प्रचार में चार चाँद लगा दिये थे।

आंध्र महासभा और आंध्र संघमु के सतत प्रयासों से, उनके वार्षिक अधिवेशनों में पारित प्रस्तावों तथा आँध्र की प्रादेशिक कांग्रेस के निरंतर प्रयत्नों से पूरे तेलुगु भाषी इलाके में ऐसा वातावरण बना जिससे तेलुगु जनता दृढ़ता से यह महसूस करने लगी कि भारत में उसकी अहमियत है, उसकी विशिष्ट पहचान है। इसी दौरान उपर्युक्त विचारों से प्रेरित हो कर अनेक तेलुगु की शोध संस्थाएँ, साहित्यिक संस्थाएँ, ग्रंथालय, प्रकाशन संस्थाएँ जैसे, साहिती समिति, सारस्वत परिषत, वैतालिक समिति, लेखकों समितियों आदि जगह-जगह स्थापित हुई जिन्हों ने तेलुगु भाषा और साहित्य के विकास में योग दान दिया।

बोध प्रश्न

1) निम्नलिखित कथनों में कुछ सही हैं और कुछ गलत हैं। सही के सामने ✓ और गलत के सामने × लगाइए।

(क) स्वतंत्रता आंदोलन में वर्ष 1920 को हम एक महत्वपूर्ण विभाजन रेखा के रूप में देख सकते है। ( )

(ख) डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन की अध्यक्षता में मद्रास में संपन्न आंध्र महासभा में अलग आंध्र राज्य स्थापना का जोरदार खंडन किया गया। ( )

(ग) भारत जब गणतंत्र हुआ तब पूरे देश में ए.बी. सी. डी. के नाम से चार प्रकार की प्रशासनिक इकाइयाँ गठित की गयीं। ( )

(घ) 1926 में बाल्टेर में स्थापित आंध्र विश्वविद्यालय भाषा के नाम पर स्थापित पहला विश्वविद्यालय है। ( )

(ङ) गिडुगु राम मूर्ति ग्रांथिक भाषा के हिमायती थे। ( )

2) निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

(क) भारत की राजनीतिक एकता के कारण ..... भी दृढ़ हो गयी।

(ख) 1920 से लेकर 1950 तक की अवधि हमारी राजनीतिक ..... काल अवधि मानी जाती है।

(ग) 1939-40 में ..... ने वंदेमातरम् नारे को ..... निष्काशित हुए।

(घ) पांडिच्चेरी से आंध्र विश्वविद्यालय के नाम प्रेषित पत्र में अरविंद घोष ने लिखा कि ..... देश का स्वभाव स्वधर्म है।

(ङ) कविराज त्रिपुरनेनी रामस्वामी चौधरी ने जनता में विद्यमान ..... पर कुठाराघात किया और ..... की नयी व्याख्या प्रस्तुत की।

(च) बाल व्याकरणमु को प्रामानिक मानकर चिन्नय सूरि ने ..... की रचना की जो ..... ग्रंथ बना।

3) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में दीजिए।

(क) किन्हें आँध्र रत्न, आँध्र केसरी और देशभक्त की उपाधियाँ प्राप्त हुईं?

.....

(ख) राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्य को हिन्दुस्तानी में संपन्न करने का निर्णय किस अधिवेशन में लिया गया?

.....

(ग) अल्पमत मुसलमान और उर्दू भाषा का बोल-बाला कहाँ था?

.....

(घ) यूनिटी ऑफ इंडिया पुस्तक में पंडित नेहरू ने क्या लिखा?

.....

(ङ) हमारे देश के महान चिंतकों को सामाजिक सुधार के लिए तीन स्रोतों से प्रकाश मिलता है। वे स्रोत कौन हैं?

.....

(च) किन की रचनाओं को आर्य ग्रंथों की द्रविड़ व्याख्या कहा गया है?

.....

(छ) निर्दलीय जनतंत्र प्रचारक कौन थे?

.....

(ज) भाषा के चार विकल्पों को लेकर उन दिनों आंध्र में विवाद चला। वे विकल्प कौन कौन हैं?

.....

4) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर संक्षेप में दीजिए।

(क) किन घटनाओं को लेकर गवर्नर केलिगंडन ने यह कहा कि गुंटुर जिले के किसान अंगेजी शासन की नीवें हिलाने में समर्थ हैं?

(ख) जे. वी. पी. कमेटी की रिपोर्ट की मुख्य सिफारिशें क्या थीं।

(ग) कविराज त्रिपुरनेनी चौधरी के मूल विचारों पर प्रकाश डालिए।

(घ) भाषिक राष्ट्रवादी त्रय (Linguistic Nationalistic Triumvirate) पर टिप्पणी लिखिए।

(ङ) तेलुगु भाषा के आधुनिकीकरण के प्रयास क्या-क्या हैं?

15.3 राष्ट्रीय आन्दोलन और तेलुगु साहित्य

स्वतंत्रता आंदोलन में आंध्र जनता की भूमिका, राष्ट्रीय चेतना के साथ उसके अनुपूरक अंग के रूप में तेलुगु प्रदेश में विकसित प्रादेशिक अस्मिता, भाषावार राज्य रचना के संदर्भ में तेलुगु भाषियों के लिए अलग राज्य की स्थापना के लिए किये गये प्रयत्नों के साथ उन दिनों उठे सामाजिक शैक्षिक तथा सांस्कृतिक आंदोलनों का परिचय हम ने ऊपर के अध्यायों में प्राप्त किया। हमने यह भी देखा कि सफल संप्रेषण माध्यम के रूप में तेलुगु भाषा के रूप नयन में और उसे सर्वजन सुलभ व आधुनिक बनाने के लिए आंध्र में जो लंबा संघर्ष चला था, उसका भी विवरण आप ने प्राप्त किया। 1920 से 1950 तक संचालित इन राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा भाषिक आंदोलनों का तेलुगु साहित्य पर गहरा प्रभाव पड़ा। परिणाम स्वरूप इस अवधि का तेलुगु साहित्य नये उद्भावनों को लिये प्रकट हुआ जो पूर्ववर्ती, साहित्य से विलक्षण भी दिखाई देता है। आगे हम इस अवधि में रचित तेलुगु साहित्य का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

15.3.1 तेलुगु कविता: आधुनिक प्रवृत्तियाँ

साहित्य की अन्य विधाओं के साथ तेलुगु में इस अवधि में बड़ी मात्रा में काव्यों, खंड काव्यों और असंख्य कविताओं की रचना की गयी। अध्ययन की सुविधा के लिए हम इस दौर के काव्य साहित्य को उनकी प्रवृत्तिगत विशेषताओं के आधार पर राष्ट्रीय कविता, अवधान प्रक्रिया और कविता का प्रचार, भाव कविता, अभ्युदय कविता के नाम से विभाजित कर सकते हैं। प्रत्येक प्रकार की कविता पर नीचे क्रमशः विवरण प्रस्तुत है:

1) राष्ट्रीय कविता

आलोच्य युग (1920-1950) से पहले के युग की तेलुगु कविता को उस समय के युग प्रवर्तकों की देन के आधार पर वीरेश लिंगम युग, गुरजाडा–रायप्रोलु युग में विभाजित कर सकते हैं। वीरेशलिंगम युग की कविता में सुधारवादी तत्व विपुल मात्रा में रहे जिसमें विकृत समाज, जाति भेद, सामाजिक एकता के बाधक तत्व, विधवा की दयनीय दशा, बाल व्याह, बाल विधवा, दहेज प्रथा, वर विक्रय, धार्मिक अंधविश्वास आदि का चित्रण करते हुए समाज के सर्वांगीण सुधार के स्वर बड़ी मात्रा में दिखाई देते हैं जो उस समय में संचालित सामाजिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक सुधार आंदोलनों के सबल प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। इसलिए इस युग की कविता सुधारवादी कहलायी। सुधारवादी आंदोलन हमारे राष्ट्रीय पुनर्जागरण के अंग होने के कारण इस युग की कविता में भी राष्ट्रीयता के स्वर परिलक्षित हैं। अतः इस युग को हम राष्ट्रीय कविता का प्रथम चरण कह सकते हैं। गुरजाडा रायप्रोलु के युग में राष्ट्रीय कविता के स्वर प्रखर रूप से प्रकट हुए। गुरजाडा की देशभक्ति और रायप्रोलु की "जन्म भूमि" कविता ने राष्ट्रीय कविता को अधिक प्रेरण दी। इसी युग में हम सुधारवादी कविता की राष्ट्रीय परिणति पाते हैं। यहीं से तेलुगु राष्ट्रीय कविता का दूसरा चरण प्रारंभ होता है।

आलोच्य युग के प्रारंभ से अर्थात् 1920 में गाँधी जी के द्वारा कांग्रेस की बागडोर संभालने से लेकर गाँधी जी से प्रेरणा पा कर तेलुगु के कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्र प्रेम, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय भावनाओं के उन्नयन तथा भारत के प्राचीन बैभव एवं तत्कालीन भारत की दयनीय स्थिति आदि का जीता जागता चित्र ही प्रस्तुत नहीं किया अपितु उन स्थितियों से उबरने के लिए जनता में जो स्फूर्ति फूँक दी थी यह उस बात का प्रमाण है कि तेलुगु साहित्यकार सारे देश में एक ही प्रकार के जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए प्रयत्नशील रहे। तेलुगु की राष्ट्रीय कविता में कहीं ऐसे उदाहरण नहीं मिलते कि उस ने देश के विभाजित करने या विखंडित करने का उद्घोष किया हो। यह देश को सदैव संयोजित, संघटित व समृद्ध करने का माध्यम रही है। तेलुगु में राष्ट्रीय काव्य रचना प्रक्रिया आजादी की लड़ाई के पूरे समय में गतिशील रही। आजादी के बाद भी विशेष कर तेलुंगाना में निजाम की निरंकशता को लेकर उस से मुक्ति पाने के लिए राष्ट्रीय कविता की धारा 1948 तक प्रवाहित होती रही।

अंग्रेजों की दमन नीति और उनके कुशासन का बंडा फोड़ करते हुए इस अवधि में अनेक रचनाएँ प्रकट हुईं। जैसे चिलकमर्ति की ये पंक्तियाँ:

भारत खंडंबु चक्कनि पाडि आवु	भरत भूमि यह काम धेनु है
हिंदवल लेगदडलैं एड्च चंड	हिन्दु बछड़ों को दुःख से भर

तेल्लवारनु गड्डसरि गोललवारु	श्वेत जाति के ग्वाल बाल से
पितुकु तुन्नारु मूतुलु बिगिय गट्टि	दुहते मुँह बांधे कस कर

त्रिपुरनेनी रामस्वामी चौधरी की सूत्राश्रम गीतालु तथा यनमँड कृष्णाराव के स्वराज्य मंत्र नामक गीतों में इस विषय से संबंधित अनेक कविताएँ यहाँ स्मरण करने की हैं।

भारत छोड़ो आंदोलन को लेकर तथा वेल्स युवराज के भारत आगमन के समय उन का बहिष्कार करते हुए अनेक तेलुगु कवियों ने अपनी प्रखर कलम चलायी थी। मोक्कपाटि श्रीराम शास्त्री की रचना 'महात्मा गाँधी उपवासमुलु' और गरिमल्लम सत्यनारायण के 'स्वराज्य गीतमुलु' में हमें ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं। तथा–

पो, पो, पो वोयि, वेलुसु युवराजा, बानिसंलुगा मम्मु
जेसि बागु बागनि चेप्पवस्तिवि।।
है युवराज। जाओ, जांओ, वापस जाओ। हम को गुलाम बनाकर, अच्छा, अच्छा करने आये।।

(मोक्कपाटि श्रीराम शास्त्री)

माकोद्दी तेल्ल दोरतनमु देवा। माकोद्दी तेल्ल दोरतनमु।
प्राणालु पै पोंचि मानालु हरियिंचे।।
हमें चाहिए नहीं यह गोरों का शासन, जान माल की हीनी जो शासन कर रहा है------।।

(गरिमल्ल सत्यनारायण)

पिंगलि-काटूरी ने "सौंदर नंदमु" में पी. रामशास्त्री ने "देशाभिमानि" में तथा जाबुवा ने अपनी अनेक कविताओं में गाँधीजी की तथा गाँधीवादी दर्शन की खूबियों का वर्णन करते हुए असयोग आंदोलन की वकालत प्रस्तुत की थी।

देश प्रेम, देशभक्तों एवं वीर पुरुषों के गुणगान प्रस्तुत करते हुए, बलिदान के लिए आमंत्रित करते हुए अनेक उद्बोधनात्मक गीत इस युग में लिखे गये हैं।

जैसा कि 15.2.1 में जिक्र किया गया क्षेत्रीय राष्ट्रीयता या प्रादेशिक भाषिक अस्मिता कभी भी भारतीय राष्ट्रीयता के विरोध में नहीं पनपी, अपितु वह उस के अविभाज्य अंग तथा अनुपूरक रही। तेलुगु प्रदेश में देश की आजादी के लिए संघर्ष चलता रहा और राष्ट्रीयता के प्रेरित करते हुए साहित्य रचा जा रहा था, तो दूसरी तरफ भाषावार राज्य रचना की दिशा में अलग आंध्र राज्य की स्थापना के लिए प्रयास तथा इन प्रयासों को प्रेरणा देने के लिए भी रचनाएँ की जाती रहीं। इस तरह हम तेलुगु की राष्ट्रीय काव्यधारा में एक उपधारा देखते हैं जिसे साहित्यकारों ने आंध्रोयम कविता के नाम से अभिहित किया। आंध्रोयमभु कविता में भी काव्यवस्तु भी मोटे रूप से तीन प्रकार की दृग्गोचर होती है–आंध्र प्रदेश के प्रति उत्कट अभिमान व उस के प्राकृतिक संसाधनों का वर्णन, आंध्र जाति के प्रति अभिमान और तेलुगु भाषा के प्रति अभिमान। रामप्रोलु जी ने अपनी एक कविता की पंक्ति में "नादु देशमु, ना जाति, नादु भाषा" नाम से जो मूल मंत्र दिया था सो ही इस उपधार का सूत्र रहा है।

विश्वनाथ सत्यनारायण के आंध्र प्रशस्ति और आंध्र पौरुषमु तुम्मल के "राष्ट्रगानमु" और मातृभाषा, गादे जगन्नाथ स्वामी के "आँध्र देश प्रशंसा" त्रिपुरनेनी के "समदर्शिनी" जाषुवा के "तेलुगु वेलुगु" पुट्टपर्ति के "पेनुकोंड लक्ष्मी" श्रीनिवास सहोदरों के ओरुगल्लु कोट कोडाली के "हंपीक्षेत्र" इंद्रगंटि हनुमच्छास्त्री के "दक्षारामम्" दुव्वूरि रामि रेड्डी के "कोंडवीडु" रायप्रोलु के "तेलुगु मान्यम्" कर्लपालेम कृष्ण राव के "परागिपंट" आदि ऐसी असंख्य काव्यकृतियाँ हैं जिन में आँध्रों की शोर्य प्रशस्ति, ऐश्वर्य प्रशस्ति, कला प्रशस्ति क्षेत्र प्रशक्ति, नदी प्रशस्ति, भाषा का अभिमान आदि का बखूबी से वर्णित हुआ है।

2) अवधान प्रक्रिया और कविता का प्रकार

अवधान का शाब्दिक अर्थ है, एकाग्रता अथवा ध्यान। मन की एकाग्रता को आलोच्य वस्तु से हटा कर अन्य विषयों पर भटक जाने में उसे नियंत्रित करके, अनेक बाधाओं के बावजूद प्रस्तावित विषय की ओर ही बनाये रखना इसकी प्रधान विशेषता है। अवधान प्रक्रिया एक अत्यंत साहित्यिक चमत्कार है जिसके पश्चिम भाषा एवं संस्कृति नितांत अनभिज्ञ हैं। इस कला ने आंध्र प्रदेश में पूर्णता के उत्तुंग शिखरों को प्राप्त किया है, जिसका उदाहरण भारत के अन्य प्रांतों में शायद ही मिलता हो। असाधारण स्मृति-ज्ञान एवं आशु कविता के निर्माण में अपूर्व अभ्यास इसके दो प्रमुख लक्षण हैं, जो उसमें सफलता प्रदान करने में

प्रधान भूमिका निभाते हैं। अवधान के वैसे बहुत से वर्ग हैं, परंतु अष्टावधान तथा शतावधान इस कला की सर्वाधिक लोकप्रिय विधाएँ हैं। अष्टावधान में आठ पृच्छक (प्रश्नकर्त्ता) और शतावधान सौ पृच्छक होते हैं। इन को प्रश्नों का अवधानी को आशु कविता में उत्तर देना होता है।

आधुनिक तेलुगु साहित्य में अवधान प्रक्रिया का बड़ा प्रचार हुआ है। ओलोच्य युग में तिरुपति वेंकट कवि द्वय ने (दिवाकर्ला तिरुपति शास्त्री और चेल्लपिल्ल वेंकट शास्त्री) बड़ी ख्याति प्राप्त की है। इस कवि द्वय ने अनेक जमींदारों के आस्थानों की यात्रा करके संस्कृत तथा तेलुगु दोनों भाषाओं में प्रदर्शनों का आयोजन किया। इन्होंने न केवल इस जीर्णप्राय कला का पुनरुद्धार किया अपितु उसे एक मनोरंजक एवं सर्वप्रिय रूप भी प्रदान किया, तथा जनता जनार्दन में तेलुगु कविता के प्रचार करने में बड़ा योगदान प्रदान किया। स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों में महाभारत कथा को केन्द्र में रखकर इन्होंने जो अवधान कार्यक्रमों का अयोजन किया उसमें तेलुगु जनता में राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण की स्पूर्ति फूंक दी है। इस नाते अवधान प्रक्रिया को हम इस संदर्भ में एक अनुपम देन मान सकते हैं।

3) भाव कविता

तेलुगु में भाव कविता एक आंदोलन के रूप में प्रकट हुई, जिस की अधिकांश प्रवृत्तियाँ हिन्दी की छायावादी कविता से मेल रखती हैं। भाव कविता की पूर्ववर्ती तेलुगु काव्य धारा जो सुधारवादी काव्य के नाम से अभिहित हैं, उस में रूढ़ अभिव्यक्ति, बाह्य सामाजिकता स्थूल सुधारवाद, नौतिक आदर्शवाद आदि की प्रधानता थी, इस इतिवृत्तात्मक्ता की प्रतिक्रिया में जब आंतरिक भावों, मानव की मूल प्रवृत्तियों, नवीन सौंदर्य चेतना और सूक्ष्म अनुभूतियों की प्रधानता हुई तो तेलुगु के काव्य में एक युगांतर ही उपस्थित हुआ। यह युगांतरकारी कविता ही तेलुगु में भाव कविता कह लायी। इस कविता में सामाजिक तत्वों की अपेक्षा कवि की आत्मालीनता के अधिक्य के कारण यह कविता "आत्माश्रयी कविता" अतिशय काल्पनिकता के कारण कल्पनिक, कविता, तथा गेयता की प्रमुखता के कारण मिरिकल पोयट्री, कहलायी। भाव कविता का समय 1910 से लेकर 1935 तक माना जा सकता है।

भाव कविता की उल्लेखनिय प्रवृत्तियों में से कुछ प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं– रहस्यानुभूति: तेलुगु समीक्षकों ने रहस्यानुभूति से युक्त कविता को तात्विक कविता (मिस्टिक पोयट्रीय) कहा है। दुव्वीर रामिरेड्डी की "पिच्चि ब्रिकारि" 'पागल भिखारी' और दीप निर्वाणमु, वेंकट पार्वतीश्वर कपुलु की विचार लहरी, तथा एकांत सेवा तथा कृष्ण शास्त्री की विश्रांति, और "एल प्रेमिंतुनु" (क्यों प्यार करुँ।) आदि इस के कुछ उदाहरण है। कृष्ण शास्त्री की ये पंक्तियाँ यहाँ द्रष्टव्य हैं–

आकुलो नाकुनै
पूवुलो बूबुनै
कोम्मलो गोम्म नै
ई यडवि दागिपोना?
(कृष्ण पक्षमु से)

पल्लव में बन नव पल्लव
फूल में बन फूल
डाली में बन डाली
बन नव कोंपल छिपू इस बन में?

प्रकृतिचित्रण, प्रकृति का मानवीकरण: भाव कवि के लिए प्रकृति ही कविता की प्रेरणा बनी है। भाव कवि ने सोचा कि आकाश, मेघावलियाँ, चाँदनी, हिम इत्यादि कविता के प्रेरणा प्रदान करने के हेतु बने हुए हैं। फलत: उस ने पुष्पों की सुकुमारता, मधु की मिठास, मधुप का गुंजन, चाँदनी की शीतला, तारों का सौंदर्य आदि का वर्णन बड़ी तत्परता से किया। जैसे,

रेक्कलं तादाल्चि परतेंचु रे लतांगि
कारु काटुक चीर सिंगार मोदव
चीकटि चरंगु विसरुलु जेदरि ओक
उडुमणि विषादपूरित घुतुलु राल्च

(कृष्ण शास्त्री कृतुलु से)

अर्थात्
काजल-सी साड़ी से कर शृंगार
पंखे धारण कर आती है रजनी

जिस के तिमराँचल के झोंकों में
उडुमणि जो बिखर गयी है,
वही विषादमयी छुतियाँ टपकाती हैं।

नदी के मानवीकरण से संबंधित श्री विश्वनाथ सत्यनारायण की किन्नेरसानि पाटलु, की अनूदित से पंक्तियाँ द्रष्टव्य है–

ज्योत्स्ना-से धवल तुम्हारे
कोमल तन की सुंदरता
आँखों को दीख रही है
लघु लहरों की लकीर-सी
फेन बनी है हँसी तुम्हारी
लहरों-सी है तन रेखाएं
मीनों से है नयन तुम्हारे
यों तुम बहती जाती हो।

नारी को भाव कविता में विविध संदर्भों में विविध रूपों में अपनी कविताओं में चित्रित किया है जैसे उसे गृहिणी, प्रेरक शक्ति, प्रेयसी, आदि के रूप में। नारी के आंतरिक सौंदर्य को लेकर तेलुगु की भाव कविता में अधिक चित्रण मिलता है और यह तेलुगु में अमलिन शृंगार कहा गया है। भाव कवियों में प्रमुख हैं–रायप्रोलु सुब्बा राव, अब्बूरि रामकृष्ण राव, दुव्वूरि रामि रेड्डी, वेंकट पार्वतीश्वर कवुलु, देवुल पल्लि कृष्ण शास्त्री, बमवराजु अप्पाराव, वेदुल सत्यनारायण शास्त्री, शिवशंकर शास्त्री, अडिवि बापिराजु, विश्वनाथ सत्यनारायण, नार्ला सुब्बाराव, जाषुवा, आदि हैं। काव्य संकलनों में कुछ उल्लेखनीय हैं, लालिता, कष्टकमल तृण कंकणमु, मल्लिकांव, कडपाटि वीडुकोलु (आखरी विदाई) जलमालिका, कृष्ण पक्षमु, ऊर्वशी, दीपावली, मधुकीला, हृदयेश्वरी, शशिकला, किन्नेरसानि पाटलु, यंकि पाटलु, एकांत सेवा, भग्न हृदयमु, मातृगीतालु, वरलक्ष्मी त्रिशति आदि।

4) अभ्युदय कविता

तेलुगु में अभ्युदय कविता का युग 1935 से 1950 तक माना जाता है। जिस प्रकार प्राचीन रूढ़िवादिता और इतिवृत्तात्मकता से ओत-प्रोत कविता की प्रतिक्रिया में भाव प्रधान चेतना के प्रतीक के रूप में भाव कविता का जन्म हुआ, उसी प्रकार भाव कविता की अतिशय काल्पनिकता, आत्मलीनता तथा असामाजिकता के विरुद्ध यथार्थमूलक दृष्टि के प्रतीक के रूप में अभ्युदय कविता का उदय हुआ। भाव कविता का तीव्र विरोध करने हुए मार्क्सवादी विचारधारा को लेकर "श्री श्री" ने चतुर्थ दशक के प्रारंभिक दिनों में तेलुगु-कविता क्षेत्र में अभ्युदय कविता का प्रवेश कराया था। "श्री श्री" अभ्युदय कविता के जनक और पोषक माने जाते हैं। इस कारण अभ्युदय कविता युग को "श्री श्री" युग भी कहा जाए, तो इसमें कोई आपत्ति नहीं है। जिस समय "श्री श्री" अभ्युदय कविताएँ लिख कर जनता में असीम उत्साह और नई चेतना जागृत कर रहे थे, उसी समय उनके कुछ समकालीन कवियों ने जोकि अभ्युदय कविता में उनके अनुयायी भी थे, कुछ प्रयोगशील कविताएँ लिखना प्रारंभ किया था। इस संदर्भ में 1938 में प्रकाशित शिष्ट्ला के दो काव्य-संकलना "विष्णु धनुष" और "नवभि चिलुक" और पठाभी का काव्य-संकलन "पिडेल रागाल डजन" उल्लेखनीय हैं। लेकिन प्रयोगशील कविताओं की यह धारा बहुत समय तक अभ्युदय कविता के अंतर्गत उसी नाम से अभिहित होती रही। (1950 के आसपास जाकर कहीं वह अपना अलग अस्तित्व कायम कर सकी थी।) इसके कारण में प्रमुख हैं: (1) तेलुगु-काव्य जगत में चौथी और पाँचवीं दशकों में अभ्युदय कविता का बोलबाला था। श्री श्री ने अपनी कविता "मरो प्रपंचमु", "अगली दुनियाँ" के द्वारा नव युवकों को उद्बोधित कर साहित्य में एक नया आन्दोलन खड़ा कर दिया। इस कविता ने जनता में एक तरह का तहलका मचाया था। "श्री श्री" नये युग के नये नेता मान लिये गये थे। इन दो दशकों में जितनी अधिक कविताएँ लिखीं गयीं हैं, जितने अधिक काव्य-संकलन निकाले गये हैं और जितनी अधिक मात्रा में उसकी प्रतियाँ बिकी हैं, उतनी अधिक मात्रा में इससे पहले कभी भी नहीं हुई थी। जनता में इन कविताओं ने अप्रतिम नाम कमाया था। वे जनता में इतने लोकप्रिय थीं कि हर सार्वजनिक सभा में और उत्सव में उनका गायन होता था। अभ्युदय कविता सर्वत्र हावी थी और इसके सामने किसी अन्य प्रवृत्तिगत कविता को अपना सिर उठा कर खड़ा हो जाना और अपना अलग अस्तित्व स्थापित करना सरल नहीं था। उन दिनों आन्ध्र प्रदेश की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों भी इस कविता के लिए अत्यन्त अनुकूल थी। 1943 में अभ्युदय रचयिताओं का मंच स्थापित होना, 1947 में स्वतंत्रता की प्राप्ति, और

फिर तेलंगाना-विमुक्ति आन्दोलन का जोर पकड़ना, अलग आन्ध्र राज्य की स्थापना के लिए आन्दोलन आदि ऐसी परिस्थितियाँ थीं, जिन्होंने अभ्युदय कविता के लिए उर्वर भूमि तैयार कर दी थी। तेलंगाना-अविमुक्ति आन्दोलन स्वतन्त्रता-प्राप्ति का ही आंदोलन था, लेकिन वह सामंतवादी निजामशाही के विरुद्ध, उसे उखाड़ फेंकने के लिए जनता जनार्दन के द्वारा की गयी क्रांति के रूप में लड़ा गया था। इस क्रांति के पीछे सुस्थिर साम्यवाद की स्थापना की परिकल्पना थी। इस क्रांति को लेकर जनता को इसमें भाग लेने के लिए, गोरिल्ला युद्ध तक करने के लिए उद्बोधित करते हुए, लिखी गयी कविताएँ और उनकी जन-प्रियता इस बात के प्रमाण हैं कि उन दिनों अभ्युदय कविता की जड़ें समाज में कितनी गहराई तक पहुंच चुकी थी। इन सामाजिक परिस्थितियों में और अभ्युदय कविता के प्रति जनता के रुझान को देखते हुए यह स्वाभाविक ही लगता है कि प्रयोगशील कविता के स्वर उभर कर सामने नहीं आ पाये। उस समय प्रयोगशील कविता लिखने वाले कवियों का कोई अलग दल भी नहीं था। अभ्युदयवादी कवि ही यदा-कदा प्रयोगशील कविताओं की रचना करते थे। जिनकी अलग कोई पहचान न बन पायी थी जो अभ्युदय कविताओं में ही शुमार की जाती रही।

श्री श्री की कविता महाप्रस्थानमु (1934) से अभ्युदय कविता का श्रीगणेश हुआ जिसे मार्क्सवादी विचारों का काव्य संस्करण कहा जा सकता है। तत्कालीन समाज, अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों, क्रांति का आह्वान आदि अधिक उत्तेजनापूर्वक इस में प्रकट हुए हैं। श्री श्री की ही कविताएँ—बाटसारी (राहगीर) प्रतिज्ञा, अभ्युदयमु, व्यत्यासमु नव कविता (1937-38) कविताओं कविता। (1940) जगन्नाथनि रथ चक्रालु (1940) उन दिनों जनता में धूम मचा रखी थी। महा प्रस्थानमु कविता से पहले लिखी हुई श्री श्री की कविता जय भेरी (1933) में विश्व मानवता के लिए क्रांति की पुकार है जो अभ्युदय कविता युग के नांदि प्रस्तवना के रूप में प्रकट हुई है। जय भेरी की कुछ अनूदित पंक्तियाँ यों हैं—

करुँ यदि मैं एक बार विद्रोह,
निश्चय मचेगा सर्वत्र प्रलय।
छिन्न भिन्न हो जाएँगी अवश्य
विश्व की ये अखंड शक्तियाँ।।

न रहेगी लू, न वर्षा
न सताएगी शीत-लहर,
न कंगाल रहेगा, न धनी,
क्षण में होंगे सब चकनाचूर
छत से गिर कर सारे नक्षत्र
बिखर जाएंगे सर्वत्र।।
बरसाएंगे गरम मधिर
ये श्यामल जलधर।
न रहेगा दिन, न रात
न रहेगी कभी प्रात।
करेगी भीषण नर्तन
जग की सुंदर प्रकृति।।

अभ्युदय कविता के काव्य संकलनों में श्री श्री के महा प्रस्थानमु के बाद उल्लेखनीय हैं—डॉ. त्रिपुरनेत्रि वेंकटेश्वर राव का अभ्युदयमु (1940) बेल्लमोंड रामदासु, एल्लूरि सुब्रहमण्यम् और कुंदुर्ति की नयागरा (1944) दाशरथी का अग्नि धारा (1949) रुद्रवीणा (1950) सोमसुंदर का वज्रायुधमु (1949) आरुद्रा का लुमेवाहम् (1950) अनिसेट्टी का अग्निवीणा (1949) नारप रेड्डी का अश्रुमाला (1950) रेंटाल का संघर्ष (1950) गोगिनेनि का उदमनी (1950) आदि।

आलोच्य काल, 1950 के बाद भी अभ्युदय कविता के जो काव्य संकलन निकले हैं उन में से श्री श्री—खड्ग सृष्टि, नारायण रेड्डी-नावीणा (मेरी वीणा) सोमसुंदर-काहलि, रक्ताक्षि, कुंदुर्ति-तेलंगाना, युगे युगे, रेंटाल-सर्वयागमु, दशरधि-महान्ध्रोदयमम्, पुट्टपर्ति-पुरोगमनमु, बैरागी-चीकटि नीडलु, रमता रेड्डी-अडपि, भुवन घोषा, और अंगार वल्लरी, गज्जेला मल्ला रेड्डी-मल्ला रेड्डी गेयलु; और शंखारावमु आदि प्रमुख हैं।

अभ्युदय कविता का परवर्ती तेलुगु कविता को उसकी प्रवृत्तिगत विशेषताओं के आधार पर उसे प्रयोगवादी कविता (1950-1960) वचन कविता (1960 से लेकर) दिगंबर कविता

(1965--970) विरसम् कविता (1970 से) के नाम से विभाजित कर अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है।

15.4 तेलुगु गद्य साहित्य का विकास

समस्त भारतीय भाषाओं में गद्य का विकास आधुनिक युग से हुआ। गद्य में साहित्यिक विधाओं की रचना आरंभ हुई। साहित्येतर विषयों की रचना गद्य में होने लगा। गद्य के प्राचुर्य के कारण आधुनिक युग को गद्य युग भी कहा गया। तेलुगु इस का अपवाद नहीं। गद्य में निर्मित साहित्य को मोटे रूप से दो भागों में बाँट कर (क) गद्य में सहित्येतर विषयों का लेखन या उपयोगी साहित्य और (ख) साहित्य की विधाएँ, अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकता है। नीचे क्रमशः उनका विवरण प्रस्तुत है।

(क) गद्य में साहित्येतर विषयों का लेखन

15.4.1 में आप ने देखा कि मुद्रण की सुविधाओं के विस्तार, शिक्षा के विस्तृत प्रचार के कारण तथा शिक्षा के माध्यम के रूप में तेलुगु को स्वीकार किये जाने के कारण विभिन्न विषयों पर विविध स्तरों पर तेलुगु में पाठ्य-पुस्तकों की आवश्यकता आ पड़ी थी। इस आवश्यकता की पूर्ति में तत्कालीन विद्वानों ने अपनी कलम चलाई, पाठ्य-पुस्तकों के अतिरिक्त समाज के विभिन्न स्तरों के पढ़े-लिखे लोगों के उपयोगार्थ, महिलाओं के लिए एवं बच्चों के लिए बड़ी संख्या में उपयोगी साहित्य लिखा गया। वीरेशलिंगम् तथा कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी (1880-1951) ने न स्वयं विपुल मात्रा में ऐसे साहित्य का निर्माण किया अपितु अन्य अनेक तेलुगु के लेखकों के लिए प्रेरणा स्रोत बने।

जहाँ तक उपयोगी साहित्य के निर्माण का प्रश्न है उन दिनों तेलुगु में विविध साहित्येतर विषयों पर बहुत सी-पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। ये विषय हैं--भूगोल, राजनीति अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, धर्म नीति, गणित, बीज गणित, जामिति, क्षेत्र विज्ञान, आईन, कृषिकार्य, ग्रामशासन, आदि-आदि। वीरेशलिंगम ने खुद इन में से कुछ विषयों पर पुस्तकें लिखीं और उस समय के विविध प्रकाशनों से भी इन विषयों पर पुस्तकें प्रकाशित करवायीं। स्वयं वीरेशलिंगम ने स्त्री उपयोगी विषयों पर बहुत लिखा। ऐसी रचनाओं की भाषा सरल और बोधगम्य थी ही, साथ ही उन्होंने पहली बार ऐसे नये विषयों से संबंधित पारिभाषिक शब्दावली का भी प्रयोग किया जिसको जनता को समझने से कोई कठिनाई नहीं होती थी। इसका प्रमुख कारण है कि उन्होंने शब्द जनता के प्रयोग से लिये थे, न कि आजकल के समान विजातीय अंग्रेजी भाषा से अनुवाद करके। ऐसी रचनाओं में हमें अनेक ऐसे शब्द भी मिलते हैं जिनकी जीवंत शक्ति और प्रयोग से हम लोग आज अपरिचित होते जा रहे हैं। संदर्भ साहित्य के अंतर्गत तत्कालीन रजवाड़े और जातियों का इतिहास भी लिखे गये। वीरेशलिंगम जी ने तो तेलुगु साहित्य का इतिहास तीन खडों में लिखकर साहित्यिक इतिहास रचना की नींव डाली। वीरेशलिंगम ने व्याकरण ग्रंथ भी लिखा जिसका नाम था "संग्रह व्याकरनमु"। इसी प्रकार उन्होंने काव्यालंकारों पर दो ग्रंथों का निर्माण किया। शिक्षण में परीक्षा में और पाठ्यपुस्तकों में कौन-सी भाषा प्रयुक्त हो इसके लिए बहुत बड़ा विवाद तेलुगु प्रदेश में उठ खड़ा हुआ था। तेलुगु प्रदेश में यह संघर्ष 1952 से लेकर वीरेशलिंगम के स्वर्गवास होने तक निरंतर चलता रहा। बीच-बीच में ग्रांथिकवादी सरकार पर जोर डालकर अपने अनुकूल सरकारी आदेश निकलवाते थे। और शिष्ट व्यवहार के हिमायतियों के प्रयासों पर कुठाराघात करवाते थे। इस विवाद को लेकर दोनों पक्षों की तरफ से जगह-जगह पर अनेक आम सभाएँ आयोजित की जाती रहीं और सरकार के पास हजारों के हस्ताक्षर लेकर ज्ञापन भी भिजवाते रहे। कई संघ व समितियाँ बनीं और अपनी-अपनी पत्रिकाएँ भी चलायीं। अंग्रेजी और तेलुगु दैनिक पत्रों के संपादकों के नाम पर भी अनेक पत्र प्रेषित होते रहे और वे प्रकाशित हुए।

व्यास मंजरी नामक संकलन में डॉ. कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी के निबंध संकलित है। संख्या में बीस से कम रेड्डी जी के ये निबंध साहित्य से लेकर समकालीन सोहित्य तक, इतिहास, धर्म, से लेकर शिक्षा, समाजशास्त्र विषयों तक व्याप्त हैं। विषयोचित और संदर्भोचित रीति से वे निबंध की शैली मे युक्तियुक्तता, चुटकलेपन, काव्यात्मकता व दार्शनिकता का पुट लाते थे। उनका विषय प्रतिपादन पूर्वाधिकार संपन्न मूल सिद्धांतों एवं सामयिक समस्याओं के परिपूर्ण निश्चितता के आधार पर ही होता था। भारतीय अर्थशास्त्र पर सर्व-प्रथम डॉ. रेड्डी ने तेलुगु में "भारत अर्थ शास्त्रमु" नामक शोधात्मक उद्ग्रंथ की रचना की जो इस

विषय का आकर ग्रंथ माना जाता है। इस संबंध में पानुगंटि लक्ष्मनरसिंह राव (1865-1940) के छह खंडों में प्रकाशित "साक्षि व्यासमुलु" विविध विषयों पर उस समय लिखी गयी रचनाओं के अन्यतम उदाहरण माने जाते हैं। "स्वभाषा" नामक आप के निबंध की कुछ पंक्तियों का हिन्दी अनुवाद नमूने के लिए यहाँ प्रस्तुत है:

> "इस भ्रम में न रहे कि परिभाषा के शब्दों के अर्थ समझन से भाषा पर प्रवीणता प्राप्त हो गयी है। किसी भी भाषा के अध्येत्ता को भाषा में निगूढ़ कलात्मकता, प्राणवत्ता की आत्मा को आत्मसात् करना होता है। यह आप से संभव नहीं है। आखिरकार इतने इनामों के (इनाम में प्राप्त जयदाद) बेच कर माँ के गले का मंगलसूत्र बेचकर, रसोई के बर्तन-भांड़े बेच कर, सप्ताह-सप्ताह घर-घर में खा कर भीख माँग कर दीनावस्था में अर्जित अंग्रेजी भाषा की प्रवीणता की असलियत की राज यही है। इस तरह आप की अंग्रेजी अपभ्रष्ट तो हो गयी और स्वभाषा इससे पहले ही आप के हाथों मर गयी। देखा आप ने आप की स्थिति किस तरह उस धोबी के कुत्ते की तरह बन गयी। आप ने जो धन व्यय किया, जो श्रम किया, जितना समय खर्च किया, जिस दीनावस्था में आप गुजरे और जितना रोना रोया था, उसमें से सोलहवें भाग से भी कम खर्च से आप निजभाषा में पंडित हुए होते: स्वभाषा सीखने में क्या कोई श्रम लगता है?"

(ख) साहित्य की विधाएँ

गद्य में निर्मित साहित्य की विधाओं में प्रमुख हैं i. उपन्यास साहित्य, 2. कहानी, 3. नाटक और एकांकी साहित्य, और 4. आलोचना साहित्य। इनका परिचय हम क्रमशः प्राप्त करेंगे।

15.4.1 उपन्यास साहित्य

19वीं सदी के उत्तरार्ध में ही तेलुग में उपन्यास साहित्य की रचना का श्रीगणेश हुआ। कई पत्र-पत्रिकाओं ने उन दिनों उपन्यास रचना को प्रोत्साहित किया। कुछ पंत्रिकाओं ने पुरस्कारों का संचालन किया। प्रारंभिक दिनों में बंगला, अंग्रजी एवं अन्य द्रविड़ भाषाओं से तेलुगु में उपन्यासों का अनुवाद होते रहे। बाद में अधिक उपन्यास लिखे गये। इनमें से अधिकांश ऐतिहासिक थे, लेकिन कल्पना का पुट भी उसमें होता था। 20वीं सदी के दूसरे व तीसरे दशकों में जब अलग आंध्र राज्य की स्थापना की माँग जोर पकड़ने लगी तब आंध्र की ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर ऐतिहासिक उपन्यास प्रकट हुए जिन में उल्लेखनीय हैं: विजयनागर साम्राज्यंमु,,रामचूर युद्धमु, प्रमदावनमु, विषभुजंगमु, आंध्रराष्ट्रमु आदि। इन्हीं दिनों कुछ सामाजिक उपन्यास भी प्रकाशित हुए। जिन में आधुनिक विचारधारा का प्रभाव दिखाई देता है। शिल्प में भी नयापन आने लगा है। समाज सुधार जैसे, विधवा विवाह तथा हरिजनों का उत्थान आदि कथावस्तु को लेकर जो उपन्यास उन दिनों सामने आये उनमें प्रमुख हैं—सुगुणवती परिणयमु, सुंदरी, कुलपालिका, हेलावती आदि।

आलोचक काल के प्रारंभिक दिनों में प्रकाशित उन्नव लक्ष्मीनारायण का उपन्यास मालपल्ली (हरिजनों की बस्ती) भाषा, भाव, व शिल्प की दृष्टि से एक मील का पत्थर माना जाता है। चिल्लकमर्ती का "गणपति" तत्कालीन ब्राहमण समाज के विचारों में हो रहे परिवर्तन, परिवर्तन के संदर्भ में हो रहे संघर्ष आदि का जीता-जागता चित्र प्रस्तुत करता है। इस में हास्य का पुट भी अधिक पाया जाता है।

परवर्ती काल के उपन्यास तत्कालीन व्यावहारिक भाषा आंदोलन, काल्पनिकतावाद तथा मार्क्सवाद एवं फ्रायडवाद से प्रभावित हुए दिखाई देते हैं। इस दौर के उपन्यासकारों में गुडिपाटि वेंकटचलम्, विश्वनाथ सत्यनारायण, अडवि बापिराजु अग्रगण्य रहे। नारी की स्वतंत्रता, प्रणय की स्वतंत्रता की वकालत चलम ने की तो सामाजिक उन्नयन के लिए नैतिकता एवं पारंपरिक आचार-विचारों पर जोर देते हुए विश्वनाथ सत्यनारायण ने उपन्यास लिखे। अडवि बापिराजु ने अपने उपन्यासों में कलात्मकता तथा तेलुगु संस्कृति सभ्यता को आधार बना कर श्रेष्ठ उपन्यासों की सृष्टि की। विश्वनाथ सत्यनारायण ने ऐतिहासिक, सामाजिक और प्राचीन परंपराओं के पुनरुद्धार को कथावस्तु का आधार बना कर पचास से अधिक उपन्यास लिखे थे। इनमें अंतरात्मा, वेदि पडगलु (सहस्रफण) चेलियल कट्टु, एकवीरा, बददेन सेनानी, मा बाबु विष्णु शर्मा इंगलिष चदुवु (विष्णु शर्मा की अंग्रेजी पढ़ाई) अधिक चर्चित हैं। शशिरेखा, मैदानम्, अमीना, दैवमिच्चिन आर्य (पत्नी जो भगवान ने दी) आदि उपन्यासों ने तेलुगु जनता में चलम् की ख्याति बढ़ायी। गोन गन्ना रेड्डी, नारायण राव, कोनंगी, हिमबिंदु आदि उपन्यास लिखकर अडवि बापिराजु ने अपना विशिष्ठ स्थान प्राप्त किया।

सौ फीसदी तेलुगुपन, तेलुगु लोगों के पारिवारिक शिष्ट हास्य, तेलुगु संस्कृति को प्रतिबिंबित करते हुए उपन्यास लिखने वालों में अग्रगण्य हैं—मोक्कपाटि नरसिंह राव, मुनिमाणिक्यम् नरसिंह राव, और श्रीपाद सुब्रमण्य शास्त्री। मोक्कपाटि का "बारिस्टर पार्वतीशम" उत्तम हास्य उपन्यास है। 'मुनिमाणिक्यम् की कथा नायिका कांतम सोलह आने तेलुगु गृहणी है। इन के उपन्यासों में दीक्षितलु, रुक्कुतल्ली, तिरुपालिगा आदि अधिक प्रसिद्ध हुए है। श्रीपाद सुब्रहमण्य शास्त्री के आत्मबलि, रक्षा बंधनम् अधिक चर्चित उपन्यास हैं।

गोपीचंद ने "असामर्धुनि जीवमात्रा" और बुच्चिबाबू ने चिवरकु मिगिलादि (आखिर जो बचा) तथा कोडवटिगंटि कुटुंब राव ने चदुवु (पढ़ाई) उपन्यास लिख कर तेलुगु उपन्यास साहित्य को आखिल भारतीय स्तर पर पहुँचा दिया।

राजनीतिक, सामाजिक आंदोलनों को कथावस्तु के रूप में स्वीकार करने हुए आलोच्य काल के अंतिम दशकों के श्रेष्ठ उपन्यास लिखे गये हैं जो तत्कालीन तेलुगु जन-जीवन का सच्चा चित्र प्रस्तुत करते हैं। वट्टिकोट आलुवार स्वामी का प्रजल मनिषि, दाशरथि रंगाचार्य के "चिल्लर देवल्लु" और "मोहनु फूलु" तथा महीधर राममोहन राव के रथ चक्रालु और "कोल्लायिगट्टितेनेमी" आदि में स्वतंत्रता संग्राम के दिनों के आंध्र समाज की भूमिका का चित्रण मिलता है। स्वतंत्रयोत्तर काल में महिला उपन्यासकारों के उपन्यासों की बाढ़-सी आ गयी। जिस में पारिवारिक समस्याओं को लेकर अच्छा चित्रण प्रस्तुत है।

15.4.2 कहानी साहित्य

अन्य भारतीय भाषाओं की भाँति तेलुगु कहानी भी आधुनिक युग की देन है। आधुनिक गद्य विकास के साथ-साथ तेलुगु कहानी के विकास की कहानी जुड़ी हुई हैं। कथावस्तु में सुधारवादी दृष्टिकोण, नारी का उद्धार, कथन में सपाट बयानगी प्रारंभिक कहानियों की विशेषता रही है। 1910 में प्रकाशित गुरजाडा अप्पा राव की कहानी दिद्दुवार, (सुधार) तेलुगु की प्रथम मौलिक कहानी मानी जाती है। चूँकि अप्पाराव जी महान कवि साहित्यकार और युग पुरुष थे, इस कारण उन जैसे साहित्य शिल्पी के द्वारा निर्मित इस पहली कहानी ने तेलुगु कहानी के विकास में एक सुदृढ़ नींव डाली थी। 1950 तक अर्थात् प्रथम कहानी के प्रकाशन के बाद के इन 40 वर्षों में तेलुगु कहानी में जो नवीन परिवर्तन आये हैं उन पर गौर करेंगे तो हम पाएँगे कि इसने बड़ी प्रगति हासिल की है—मात्रात्यक दृष्टि से भी. गुणात्मक दृष्टि से भी।

शुरू के दिनों में, "सुवर्ण रेख कथलु" और "मद्रासु कथलु" नाम से दो संकलन तथा त्तलाव्झुल शिवशंकर शास्त्री के "मल्लिका गूच्छमु" के नाम से 12 कहानियों का एक संकलन प्रकाश में आये।

तेलुगु कहानी में जान फूँकने वाले तथा उसे शुद्ध तेलुगुपन प्रदान करने वालों में श्रीपाद सुब्रहमण्य शास्त्री अग्रगण्य रहे हैं। इन के आठ कहानी संकलन प्रकाशित हुए हैं। बड्लशिंजली (चावल के धान) गुलाबी अत्तर, मार्गदर्शि आदि आप की उत्तम कहानियाँ हैं। कथाषट्कमु, और कथा सप्तकमु, नामक संकलनों में संग्रहीत श्री वेलूरि शिवराम शास्त्री की कहानियों में द्वितीय विश्व युद्ध के समय की भयानक परिस्थितियों का मार्मिक चित्रण मिलता है। मोक्कपाटि नरसिंह शास्त्री के दो कथा संकलन भी इन दिनों प्रकाशित हुए।

1930 तक तेलुगु साहित्य में चलम ने तहलका ही मचा दिया था। कथावस्तु, भाषाभिव्यक्ति, शैली और भाषा में आपने क्रांति उपस्थित की। परंपरा का कड़ा विरोध, नारी मुक्ति और सैक्स के संबंध में नारी की स्वतंत्रता आपके विषय रहे हैं। आपने कई सैकड़ों कहानियाँ लिखी हैं जो दर्जनों संग्रहों में संकलित हैं। कुछ संग्रहों के नाम हैं—पापम् कल्याणी, ओ पुव्वु पूसिंदि ('खिली एक कली' कन्नीटि कालुव आँसूओं की नाली) आदि।

स्वतंत्रतापूर्व के कहानीकारों में विश्वनाथ सत्यनारायण, मुरवरम प्रताप रेड्डी, वनुपर्ति वरलक्ष्मम्मा, मुनिमाणिक्यम् और मल्लादि रामकृष्ण शास्त्री आदि प्रमुख हैं। इनकी कहानियों ने पाठकों में धूम मचायी थी। अंतिम दोनों कहानीकारों ने तो शताब्धिक कहानियाँ लिखीं हैं जो मधुर हास्य के लिए भी प्रसिद्ध हुई हैं।

स्वतंत्रोत्तर काल में कहानी ने मनोविश्लेषण प्रक्रिया से प्रभावित हुई। बुच्चिबाबु, गोपीचंद ने ऐसी कहानियों की रचना का श्रीगणेश किया। कोडवटिगंटि कुटुंब राव, कालीपटनमु रामा राव, चांगटि सोमयाजी, राचकोंड विश्वनाथ शास्त्री, मधुरांतकमु राजाराम आदि अनेकों ने इस दौर में वैविध्यपूर्ण कहानियाँ लिख कर तेलुगु कहानी साहित्य भंडार की श्री वृद्धि की

तथा उसे सार्वदेशिक मान्यता प्रदान की। "गालि–वान" (तुफान) के माध्यम से तेलुगु कहानी को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित करायी पालगुम्मि पद्मराजु ने।

इन दिनों बड़ी संख्या में तेलुगु में महिला कहानीकार उभर कर आयी हैं जो बड़ी मात्रा में कहानियाँ लिख रही हैं। नयी पीढ़ी के कई कहानीकार आंध्र प्रदेश के कोने-कोने से वाह की स्थानिक विशेषताओं को लिये सामने आ रहे हैं। एक सर्वे के अनुसार तेलुगु में वर्ष भर में 8-9 हजार की संख्या में कहानियाँ छपती हैं।

15.4.3 नाटक और एकांकी

1920 से पहले से ही तेलुगु में नाटक रचना का श्रीगणेश हुआ था। उन दिनों के नाटक मुख्य रूप से रंगमंच के लिए लिखे जाते रहे और इन नाटकों को धारवाड़ व फ़ारसी नाटक समाज प्रदर्शित करते रहे। पौराणिक व ऐतिहासिक इतिवृत्त से संबंधित इन नाटकों ने जनता में बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की थी। गुरजाड़ा अप्पा राव के कन्याशुल्कम नाटक से तेलुगु नाटक साहित्य में नयी मोड़ आयी। सामाजिक समस्याओं को लेकर आधुनिक विचारधारा को लेकर लिखा गया यह प्रथम नाटक था। सामाजिक सुधार को दृष्टि में रख कर रचित इस नाटक का प्रदर्शन कई बार होता रहा। इसके प्रदर्शन का शताब्धि वर्ष 1993 में मनाया गया।

इस अवधि में रचित व प्रदर्शित पौराधिक नाटकों में अधिक उल्लेखनीय नाटक हैं–पानुगंटि लक्ष्मी नरसिंह राव के राधाकृष्णा, कंठाभारणम्, श्री पाद कृष्णामूर्ति शास्त्री का बोब्बिलि युद्धम, तिरुपति वेंकट कवुलु के मुद्राराक्षसम्, मृच्छकटिकम्, पांडवोद्योगम्, विजय, बलिजेपल्ली लक्ष्मीकांत कवि का हरिश्चंद्र, धर्मवरम् गोपालाचार्युलु का "रामदास्" आदि।

स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित होकर लिखे गये नाटकों में गाँधी महोदयम्, गांधी विजयम् पांचाल पराभावम् (जलियानवाला बाग की घटना पर आधारित) अधिक प्रसिद्ध हुए। इन नाटकों के रचीयता हैं–दामराजु पुंडरीकाक्षुडु, रोषनारा, नाराजु, विंध्यारानी आदि ऐतिहासिक नाटकों की रचना इसी अवधि में हुई।

सुधारवादी दृष्टिकोण को लिये लिखे गये नाटकों में निम्नलिखित नाटकों ने बहुत ख्याति अर्जित की:

> काल्लकूटी नारायण राव के वरविक्रयम् और चिंतामणी, विश्वनाथ सत्यनारायण के वेनराजु, नर्तनशाला, त्रिपुरनेनी रामस्वामी चौधरी के खूनी, शंबुक वध।

1943 में प्रजानाट्यमंडली की स्थापना से बहुत सारे नाटक लिखे और प्रदर्शित किये गये। परतंत्र राष्ट्र को स्वतंत्रता दिलाना तथा निजाम से ही तेलंगना की विमुक्ति को लेकर ये नाटक लिखे गये। इस दौर के नाटकों में मुंदडुगु (आगे का कदम) माभूमि (हमारी जमीन) और एन. जी. ओ. अधिक प्रसिद्ध हैं। आलाच्य अवधि में पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक और सामाजिक विषयों को लेकर कई एकांकी लिखे गये। एक सर्वेक्षण के अनुसार 1920 से 1950 तक तेलुगु में लगभग 200 एकांकी लिखे गये थे।

15.4.4 आलोचना

स्वतंत्रता आंदोलन के दिनों में जागृत राष्ट्रीय चेतना, राष्ट्रीय चेतना से उत्पन्न नवजागरण ने तेलुगु के अलोचना साहित्य को भी प्रभावित किया। आधुनिक विचारधारा के अनुसार, सर्वप्रथम तेलुगु में प्रकाशित आलोचना ग्रंथ हैं "कवित्वतत्व विचारमु" जो प्रबंध काव्य कलापूर्णोदयम् पर लिखा गया है। इस के लेखक हैं डॉ. कट्टमंचि राम लिंगा रेड्डी। डॉ. रेड्डी आधुनिक आलोचना के आद्य पुरुष माने जाते हैं। डॉ. रेड्डी के रास्ते का खंडन मंडन काफी होता रहा। डॉ. रेड्डी जी ने आलोचना में जो प्रतिमान स्थापित किये थे, उनका अनुसरण करते हुए परवर्ती काल में अनेक आलोचक तेलुगु में प्रकट हुए। उनमें प्रमुख हैं राल्लपल्लि अनंत कृष्णा शर्मा और अक्किराजु उमाकान्तम्।

कृष्णा शास्त्री, नंडूरि, वेदुल, नायनि, अब्बूरी, श्री श्री, और आरुद्र ने जो स्वयं प्रतिष्ठित कवि हैं, कविता और कवियों पर उच्चकोटि के आलोचनात्मक निबंध प्रस्तुत किये।

स्वतंत्रता के बाद के काल में बड़ी संख्या में पुस्तक समीक्षाएँ, आलोचनात्मक ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं। मार्क्सवादी सौंदर्य शास्त्र को, आधार बनाकर आलोचना प्रस्तुत करनेवालों में के. वी. रमणा रेड्डी, राममल्लु रामचंद्रा रेड्डी, चेकूरि रामाराव, त्रिपुरनेनि मधुसूदन राव, रामभट्ल कृष्ण मूर्ति, के. के. रंगनाथाचार्युलु उल्लेखनीय हैं।

बोध प्रश्न

5) निम्नलिखित वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए:

क) तेलुगु की राष्ट्रीय कविता में कहीं ऐसे उदाहरण नहीं मिलते कि ..... उद्घोष किया हो।

ख) अवधान प्रक्रिया एक अत्यंत ..... नितांत अनभिज्ञ है।

ग) भाव कविता की अतिशय काल्पनिकता ..... अभ्युदय कविता का उदय हुआ।

घ) श्री श्री की कविता महाप्रस्थनमु से ..... काव्य संस्करण कहा जा सकता है।

ङ) वीरेशलिंगम तथा कट्टमंचि रामलिंगा रेड्डी ने ..... अनेक तेलुगु लेखकों के लिए स्रोत बने।

च) भारतीय अर्थशास्त्र पर सर्वप्रथम डॉ. रेड्डी ने तेलुगु में ..... इस विषय का आकर ग्रंथ माना जाता है।

छ) उन्नव् लक्ष्मीनारायण का उपन्यास मालपल्ली ..... मील का पत्थर माना जाता है।

ज) आधुनिक विचारधारा के अनुसार सर्वप्रथम तेलुगु में प्रकाशित आलोचना ग्रंथ ..... पर लिखा गया है।

6) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर एक वाक्य में दीजिए।

क) किसे हम राष्ट्रीय कविता का प्रथम चरण कह सकते हैं?

.....

ख) किन कवियों ने असहयोग आंदोलन की वकालत प्रस्तुत की?

.....

ग) आँध्रोद्यममु कविता में काव्य वस्तु तीन प्रकार की मिलती है। वे तीन प्रकार क्या क्या हैं?

.....

घ) अवधान प्रक्रिया को किसकी अनुपम देन मानते हैं?

.....

ङ) अमलिन शृंगार किसे कहते हैं?

.....

च) किन परिस्थितियों ने अभ्युदय कविता के लिए उर्वर भूमि तैयार कर दी?

.....

छ) समाज सुधार को दृष्टि में रख कर लिखे गये कुछ उपन्यासों का नाम लिखिए।

.....

ज) स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में आंध्र समाज की भूमिका किन उपन्यासों में चित्रित है?

.....

झ) किसकी कहानी ने तेलुगु कहानी के विकास में सुदृढ़ नींव डाली थी? उसका नाम क्या है?

.....

ञ) स्वतंत्रता संग्राम के दिनों में राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित होकर लिखे गये नाटकों के नाम लिखिए।

.....

7) निम्नलिखित विषयों में संक्षेप में टिप्पणी लिखिए।

क) अवधान प्रक्रिया

.....

.....

.....

.....

.....

ख) अभ्युदय कविता

.....

.....

.....

.....

.....

ग) साहित्येतर विषयों में गद्य भाषा का रूप

.....

.....

.....

.....

.....

घ) तेलुगु कहानी

.....

.....

.....

.....

.....

15.5 सारांश

इस इकाई के प्रारंभ में यह परिचय दिया गया है कि 1920 से ले कर 1950 तक गाँधी जी के नेतृत्व में स्वतंत्रता-आन्दोलन, अहिंसा-आन्दोलन, भारत छोड़ो आन्दोलन आदि में तत्कालीन मद्रास प्रेसिडेंसी के तेलुगु इलाके तथा निजाम राज्य के तेलंगाना इलाके के लोगों ने क्या भूमिका निभायी है। उस समय आदिवासी इलाकों में सम्पन्न विद्रोह का भी इसमें परिचय दिया गया है। भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्र के अन्तर्गत प्रत्येक भाषाई इकाई के सर्वांगीण विकास के लिए राष्ट्रीय कांग्रेस के द्वारा प्रचारित भाषावार राज्य-रचना के विचारों से अनुप्राणित हो कर तेलुगु प्रदेश में जो प्रादेशिक अस्मिता, उसके चलते अलग आन्ध्र राज्य की स्थापना की दिशा में जो आन्दोलन चलाये गये, उनका सिलसिलेवार विवरण तीन कालखण्डों में बाँटकर दिया गया है। जैसे1—1920 से 1928 तक (अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की भाषावार पुनर्गठन से लेकर नेहरू रिपोर्ट की प्रस्तुति तक), 2—1928 से 1947 तक (नेहरू रिपोर्ट की प्रस्तुति से स्वातंत्र्य प्राप्ति तक), 3—1947 से 1950 तक (आजादी प्राप्ति से ले कर भारतीय संविधान के लागू होने तक)।

दूसरे अध्याय में आन्ध्र प्रान्त में संचालित सुधारवादी आन्दोलनों का परिचय देते हुए राष्ट्रीय स्तर पर संचालित ब्रह्मसमाज, आर्यसमाज, थियोसोफिकल सोसायटी और रामकृष्ण मठ आदि के परिप्रेक्ष्य में उन संघटनों के संस्थापकों से प्रेरणा पा कर आन्ध्र में वीरेशलिंगम, पन्तु ने जो कार्य किये, उनका विवरण दिया गया है। साथ में प्रादेशिक स्तर पर संचालित सुधारवादों, जैसे त्रिपुरानैनी रामस्वामी चौधरी के द्वारा संचालित हेतुवाद और गोराजी के द्वारा संचालित नास्तिकवाद के विचारों का तत्कालीन जनता पर पड़े प्रभावों का विवरण दिया गया है। बाद में शैक्षिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में हुए आन्दोलनों का विवरण प्रस्तुत किया गया है। उसके बाद तेलुगु भाषा में सुधार लाने के लिए संचालित आन्दोलनों का परिचय देते हुए पुस्तकीय भाषा और व्यावहारिक भाषा के बीच में उठ खड़े हुए विवादों का विस्तार से परिचय दिया गया और परिणामस्वरूप तेलुगु भाषा में हुए आधुनिकीकरण का विवरण प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट कर दिया गया कि तेलुगु भाषा आधुनिक विचारधारा की अभिव्यक्ति के लिए सक्षम बना दी गयी है।

अन्तिम अध्याय में राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा भाषिक आन्दोलनों का तेलुगु साहित्य पर जो प्रभाव पड़ा है, इसको स्पष्ट करने के लिए 1920 से 1950 तक तेलुगु में रचित राष्ट्रीय कविताओं का उदाहरण सहित परिचय दिया गया है। बाद में तेलुगु की जो विशिष्ट साहित्यिक प्रक्रिया है, अवधान प्रक्रिया के परिचय के साथ उन दिनों कविता के प्रचार के लिए उसने किस प्रकार योगदान दिया, उसका भी परिचय दिया गया है। हिन्दी के छायावादी और प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्तियों के समतुल्य तेलुगु प्रवृत्तियां, भाव कविता (1910-1935) अभ्युदय कविता (1935-50) की प्रवृत्तिगत विशेषताओं का सोदाहरण विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। तेलुगु कविताओं को देवनागरी में लिप्यंतरित कर के प्रस्तुत किया गया है और साथ में हिन्दी अनुवाद भी। गद्य साहित्य के विकास के अन्तर्गत गद्य में साहित्येतर विषयों के लेखन का परिचय तथा उस समय प्रकाशित उपयोगी साहित्य पर विवेचन प्रस्तुत किया गया है। गद्य के साहित्य की विधाओं के अन्तर्गत उपन्यास साहित्य, कहानी साहित्य, नाटक और एकांकी साहित्य तथा आलोचना साहित्य के विकास का संक्षिप्त परिचय देते हुए यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि राष्ट्रीय चेतना के कारण विकसित नवजागरण के परिप्रेक्ष्य में तत्कालीन आन्दोलनों ने तेलुगु साहित्य पर किस तरह प्रभाव डाला है।

इस इकाई के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि भिन्न भाषाओं में लिखे गये हमारे भारतीय साहित्य की आत्मा एक है।

15.6 शब्दावली

जनतंत्रात्मक	:	जनता का
कंधे से कंधा मिलाकर (मुहावरा)	:	एक साथ मिलकर
सुनियोजित	:	योजना बनाकर
अनुपम	:	जिसकी तुलना नहीं की जा सके
सहभागिता	:	मिलकर
विलक्षणता	:	विशिष्ट प्रकार का
सजातीय	:	एक ही जाति का
बहुरंगी	:	बहुत प्रकार का
हुकूमत	:	शासन
उन्नयन	:	उत्थान
अत्युन्नत	:	अधिक अच्छा
विपुल	:	अधिक
ह्रासोन्मुख	:	नीचे की ओर जाता हुआ
सर्वग्राह्य	:	सबके लिए लेने योग्य
बखूबी	:	अच्छी प्रकार
अपवाद	:	अलग
दीनावस्था	:	गरीबी
शताब्दिक	:	सौ से अधिक

15.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- **विजयराघव रेड्डी, तेलुगु भारती,** रंजन प्रकाशन, आगरा।
- **तेलुगु साहित्य का इतिहास,** श्री बाल शौरि रेड्डी, उत्तर प्रदेश शासन, राजर्षि। पुरुषोत्तम दास टण्डन, हिंदी कनक, महत्मा गाँधी मार्ग, लखनऊ।
- **तेलुगु साहित्य परीमल,** डॉ. भीमसैन निर्मल, दक्षिणांचलीय साहित्य समिति, हैदरावाद।
- **दक्षिण के विद्यासागर,** के आदिनारायण मूर्ति, करुणा श्री पब्लिकेशन।

15.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) (क) √ (ख) × (ग) √ (घ) √ (ङ) ×

2) (क) देश में भावनात्मक एकता
(ख) राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक गतिविधियों के लिए एक महत्वपूर्ण
(ग) हैदराबाद के उस्मानिया विश्वविद्यालय के छात्रों ने, बुलंद करते हुए कक्षाओं से
(घ) जनता की न्यायिक आकांक्षाओं की पूर्ति करते हुए राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाया जा सकता है, ताकि उनकी आकांक्षाओं को दबा कर। अनेकता में एकता हमारे।
(ङ) कई मौलिक विश्वासों और विचारों पर अपने तर्कणावाद से, और साहित्य
(च) नीतिचंद्रिका ग्रंथ भावी तेलुगु गद्य लेखन के लिए आकर

3) (क) दुग्गिराल गोपाल कृष्णय्या, टंगुटूरि प्रकाशम् कोंडा वेंकटप्पय्या
(ख) 1925 का कानपूर में संपन्न अधिवेशन में
(ग) हैदराबाद निजाम राज्य में
(घ) जनता का सांस्कृतिक व शैक्षिक विकास उनकी अपनी भाषाओं के माध्यम से ही संभव है
(ङ) ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मठ
(च) त्रिपुरनेनी रामस्वामि चौधरी
(छ) गोराजी
(ज) ग्रांधिकमु, शिष्ट व्यावहारिकमु, ग्राम्यमु, सरल ग्रांथिकमु

4) (क) चीराला और पराला तथा पेदनंदिपाडु की घटनाएँ
(ख) देखें 15.2.3 का उपशीर्षक (घ)
(ग) देखें 15.3.1 का उपांत्य अनुच्छेद
(घ) देखें 15.4.2
(ङ) देखें 15.4.3 का अंतिम अनुच्छेद

5) (क) उसने देश के विभाजित करने या विखंडित करने का
(ख) साहित्यिक चमत्कार है जिसके पश्चिम भाषा एवं संस्कृति
(ग) आत्मलीनता तथा असामाजिकता के विरुद्ध यथार्थमूलक दृष्टि के प्रतीक के रूप में
(घ) अभ्युदय कविता का श्रीगणेश हुआ जिसे मार्क्सवादी विचारों का
(ङ) न स्वयं विपुल मात्रा में उपयोगी साहित्य का निर्माण किया अपितु अन्य अनेक तेलुगु लेखकों के लिए प्रेरणा
(च) "भारत अर्थ शास्त्रम्" नामक शोधात्मक उदग्रंथ की रचना की जो
(छ) भाषा, भाव व शिल्प की दृष्टि से एक
(ज) कवित्वतत्वविचरमु जो प्रबंध काव्य कलापूर्णोदयम्

6) (क) सुधारवादी कविता युग को
(ख) पिंगलि-काटूरी, पी. रामशास्त्री, जापूवा
(ग) आँध्र प्रदेश के प्रति उत्कृट अभियान व उस के प्राकृतिक संसाधनों का वर्णन, आँध्र जाति के प्रति अभिमान आँध्र/तेलुगु भाषा के प्रति अभिमान
(घ) राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण की स्फूर्ति फूँकने में
(ङ) नारी के आंतरिक सौंदर्य का वर्णन
(च) 1947 में स्वतंत्रता की प्राप्ति, तेलुगाना विमुक्ति का आंदोलन अलग आँध्र राज्य स्थापना के आंदोलन
(छ) सुगुणवर्ती परिणयमु,,सुंदरी, कुलपालिका, हेलावती
(ज) प्रजल मनिषि, चिल्लर टेपुल्लु, मोदुग पूलु, रथ चक्रालु, कोल्लायिगट्टिटतेनेमी।
(झ) गुरजाडा की हिद्दुबाटु कहानी
(त्र) गाँधी महोदयम, गाँधी विजयम, पाँचाल पराभवम्

7) (क) देखें 15.5.1 में 2
(ख) देखें 15.5.1 में 4
(ग) देखें 15.5.2 में (क)
(घ) देखें 15.5.1 में 2

इकाई 16 कन्नड़ साहित्य-I

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य

16.1 प्रस्तावना
16.1.1 युगीन परिस्थितियाँ
16.1.2 राष्ट्रीय चेतना गेय काव्य रूप में

16.2 गाँधी युग और स्वाधीनता की चेतना

16.3 अन्य प्रसिद्ध कवियों का योगदान
16.3.1 कुवंपु
16.3.2 कुवंपु और नवजागरण

16.4 विभिन्न गद्य साहित्य और राष्ट्रीयता
16.4.1 अनुवाद और राष्ट्रीयता
16.4.1 रामस्थली

16.5 सारांश

16.6 शब्दावली

16.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

दक्षिणांचीय साहित्य के अन्तर्गत इस इकाई से पूर्व आपने तेलुगु साहित्य का अध्ययन किया है। इस इकाई में आप कन्नड़ भाषा साहित्य का अध्ययन करेंगे। इसे पड़ने के बाद आप:

- राष्ट्रीय आंदोलन तथा कन्नड़ साहित्य पर उसके प्रभाव के बारे में बता सकेंगे,
- आधुनिक विचार से समाज में परिवर्तन तथा उसका कन्नड़ साहित्य पर पड़े प्रभाव को स्पष्ट कर सकेंगे,
- विभिन्न गद्य विद्याओं में हुए परिवर्तन को बता सकेंगे, तथा
- आधुनिक कन्नड़ साहित्य के महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे।

16.1 प्रस्तावना

वर्तमान कर्नाटक प्रदेश में कन्नड़ भाषा बोली जाती है। वैसे महाराष्ट्र राज्य के दक्षिणी जिले, कुर्ग और कोंकण प्रदेश में भी इस भाषा के लोग रहते हैं। यह द्रविड़ परिवार की भाषा है। इसके बोलने वालों की संख्या लगभग दो करोड़ है इस भाषा की अपनी लिपि है जो तेलुगु लिपि से मिलती जुलती है। इस लिपि का विकास भी ब्राहणी लिपि से हुआ।

कन्नड़ भाषा का साहित्य अत्यंत प्राचीन है। इस भाषा में छठी शताब्दी के करीब जैन कथाएँ रची गई। इसके बाद का काल महाकवि पम्प का है। जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में कालिदास को सम्मान दिया जाता है उसी प्रकार कन्नड़ साहित्य में पम्प को सम्मान प्राप्त है। इसके बाद कन्नड़ साहित्य "वचन" तथा दास साहित्य के रूप में प्रसिद्ध है।

आधुनिक कन्नड़ साहित्य का प्रारंभ देश में अन्य भाषाओं के साहित्य की तरह ही हुआ। पश्चिम से आए ज्ञान-विज्ञान की रोशनी यहाँ भी एक नया संदेश लेकर आई। सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि थी छापाखाना की। अनुवाद तथा बड़ी मात्रा में छपाई की सुविधा ने साहित्य को नया आयाम प्रदान किया।

इस इकाई में आप राष्ट्रीयता आंदोलन के संदर्भ में आधुनिक कन्नड़ साहित्य का परिचय प्राप्त करेंगे। किस प्रकार साहित्यकारों ने एक भारतमाता की कल्पना की, एक राष्ट्र का आदर्श उनके सामने था। और देश के आंदोलन में सहभागी होने के लिए लेखकों ने, युवकों को आवाज दी, इन सबके लिए साहित्य किस प्रकार का सशक्त माध्यम बना।

राजा राममोहन राय और दयानंद सरस्वती के धार्मिक आंदोलन के फलस्वरूप फैला नवजागरण साहित्य के लिए किस प्रकार स्फूर्ति दायक बना।

16.1.1 युगीन परिस्थितियाँ

बीसवीं शती के आरम्भ में, भारत की कुल साक्षरता 10 प्रतिशत से अधिक नहीं थी। इस कारण जनता में जागृति फैलाने का सशक्त माध्य गेय साहित्य ही था। 1857 के गदर का असर सुदूर दक्षिण में कर्नाटक तक फैल चुका था। तब कर्नाटक कई टुकड़ों में बंटा हुआ था। कुछ भाग मद्रास राज्य में, मुम्बई के अधीन कुछ हैदराबाद के निजाम के आश्रय में थे और मैसूर संस्थान अलग था। इस कारण शिक्षा का माध्यम भी एक रूप में नहीं था। और तब राष्ट्रव्यापी आंदोलन "लावणी" और "दुमदुमें" के गेय माध्यम से प्रसारित हुआ।

16.1.2 राष्ट्रीय चेतना गेय काव्य रूप में

उन दिनों कर्नाटक के वीरों का आदर्श राष्ट्रीयता की भावना के प्रसार का एक सशक्त माध्यम बन सका। कित्तूर चेन्नम्मा, संगोल्ली राश्ण्णा, भीमराव मुण्डरगी पर ढोला मारू रचे गये। सिम्पी लिंगण्णालावणी विषकण्ठ राव, नीलकण्ठप्पा और रामस्वामी प्रसिद्ध गीतकार के रूप में कर्नाटक के विभिन्न कोनों में पहचाने गए। इसी प्रकार कोडगू प्रांत से बिदरूर मादे गौड़, गुत्तल के नाडिगेर भी गायक थे। ये सभी गायकों ने स्वयं आंदोलन में भाग लिया था, इससे भी इनके गाने प्रभावशाली बन सके थे।

आज हमें वे सभी गाने प्राप्त नहीं होते। तब भी उनकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार थी :

करो भारत माँ की सेवा, जो है सच्ची महान सेवा।
भारत मां को स्वतंत्र बनाओ, यह हमारा लक्ष्य है।
वंदे मातरम् आपना एक मंत्र है।

और

विदेशी कपड़े फेंको आग में, राख बनें वह खद्दर श्रेष्ठ है, खद्दर पहनो।

लावणी की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार थीं :

सब वीर-धीर लोगों, मिलकर आओ, करो देश की प्रगति के लिए सेवा।
देखो, चले महात्माजी दण्डी, कांपने लगा लंदन भय से।

कम्बली बसवययां के गाने कुछ इस प्रकार के थे :

हम भी कैसे लोग हैं इस देश के जबकि
सुरेन्द्रनाथ, लाजपतराय और तिलक को देखो,
ऐसे वीर हैं वे लोग, देश माता के लिए बलिदान करेंगे
कष्ट सहेंगे जो भी आएं, सामना उनका करेंगे,

मित्रो
छोड़ो खाली खाना, पीना, खुश रहना,
करो अनुसरण अपने प्रिय नेताओं का।
स्वतंत्रता का झंडा ऊंचा फहराओ,
उसकी कीर्ति फैलाओ,
जोर से कहो, वंदे मातरम्।"

महिला स्वयं सेविकाओं ने भी इसी प्रकार के गाने गाए थे :

हे भारत
हमारे हर काम में
तुम कुलदेवता हो।
आशीर्वाद दो कि हम

स्वाधीन देश में
सुख से जी सकेंगे।
हमें विश्वास है कि
गुलाम मालिक बनेंगे
मित्रों,
बुद्धिमान बनो
जागो, उठो।

"राष्ट्री गहगह पदगलु" की रचना बमप्पा सबगप्पस, बेटगेरी अनुमप्पा और बसप्पा मिर्जी इन तीन लोगों ने मिलकर की थी। इन गानों में अपनी महिलाओं के लिए एक संदेश है। वह कहते हैं:

बहिनों और माताओ, सुनो
हमारे शब्द सोने की तरह मूल्यवान हैं,
अपने पुरुष को खादी पहनाओ, उन्हें
विदेशी नकल करने से दूर करो,
उनके गाल पर ऐसे थप्पड़ लगाओ
कि निशान पड़ जाएं। उन्हें अपने कमरे में घुसने न दो।

उन दिनों हरिकथा भी राष्ट्रीयता के प्रचार का एक प्रभावशाली माध्यम बनी थी। आर. बी. करगुदिरी तब एक प्रसिद्ध कीर्तनकार थे।

शिशुनाल शरीफ (1818-89) इस अवधि के एक संत थे जिनको हिन्दू और मुसलमान दोनों से समान सम्मान मिला था। उन्होंने भी अपनी रचनाओं में अंग्रेजों के विरुद्ध आक्रोश प्रकट किया था।

वह कहते हैं:

यह राजनीतिक बुद्धिमत्ता की विजय है क्या?
नहीं,
आग की वर्षा होगी इस
अंग्रेज शासित भूमि पर।

शरीफ साहब अंग्रेजी शासन की बुराइयों का खूब वर्णन करते हैं। वे यह भी कहते हैं:

"विजय होगी सत्य की, नाश होगा अन्यायी का।

बोध प्रश्न 1

सही उत्तर पहचान कर लिखिए:

(i) कर्नाटक में गेय पद .....
   अ) दमदमें थे
   आ) कीर्तन था
   इ) हरिकथा थी

(ii) लावणी कर्नाटक के वीर ..... पर लिखी गई थी।
   अ) तिलक
   आ) करिबसप्पा
   इ) कित्तूर रानी चेन्नाम्मा

(iii) आरम्भकाल में राष्ट्रीयता के प्रचार के लिए साहित्य का कौन-सा रूप अपनाया गया। वे साहित्यकार कौन थे। चार पंक्तियों में उत्तर लिखिए।

.....

.....

.....

.....

16.2 गांधी युग और स्वाधीनता की चेतना

स्वाधीनता की चेतना इस युग के साहित्यकारों की देन थी। कविता, कहानी, नाटक और उपन्यास, साधारण गद्य में भी स्वाधीनता की लड़ाई के लिए आवाज दी गई थी। और साथ ही गांधी साहित्य का; गांधीजी की आत्मकथा का कन्नड़ में अनुवाद हुआ था।

साली रामचंद्रराव अपनी कविताओं में स्वाधीनता की तुलना सूर्य से करते हैं। वह कहते हैं, कि स्वाधीनता का सूर्य जैसे उदय हो रहा है, दासता का अंधकार इससे दूर हो रहा है। उनकी कविता "हम्बलु" (चाह) की कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं:

नहीं चाहिए मुझे गो माता का दूध
नहीं चाहिए मुझे अमृत स्वर्ग का
भगवती जातना हूं कितना मीठा नाम तुम्हारा
पावन माता, भगवान की कृपा है ऐसी
मैं कर सकता हूं सेवा तुम्हारी
चरणों पर। नहीं चाहिए मुझे कुछ और।

जन्म लूं यदि ब्राहम्ण होकर
जन्म लूं यदि अंतेवासी,
नहीं मिलेगी तृप्ति मुझे, जानता नहीं मैं, मां
यह कृपा अपार है
जन्म लिया है बनकर संतान तुम्हारी।
भाग्य हो ऐसा कि
जन्म ले सकूं मैं होकर पुत्र तुम्हारा
जन्म जन्म।

मिले मुझे कुछ खाने को अन्न कण,
ऊबड़-खाबड़ भूमि सोने भर को,
घुटने ढंक सकने को चादर
घास-फूस की रहे झोपड़ी सोने की
धनी भगवान: नहीं चाहिए मुझको कुछ और
भाग्य मानूं अपना यदि मात्र जी सकूं भारत भूमि पर।

नहीं चाहता धन-सम्पत्ति हे भगवान
नहीं चाहिए मुझको कुछ सम्मान
विद्धानों में, विख्यातों में। हे दयालु भगवान,
दया करना इतनी कि मैं स्मरण कर सकूं मातृभूमि को
सोते-जागते, और नष्ट हो यह शरीर
सेवा करते अपनी मातृभूमि की।

ई. 1916 में इस कविता की रचना हुई थी।

मुदवीड़ कृष्णराव, गोविंद वै, एम. एन. कामत और मास्ति वेंकटेया अयूयगार ने भी राष्ट्रीयतावादी कविताएं रचीं। मास्ति के काव्य संकलन मलारा की एक कविता "भारत वर्षद अण्णर कुरितु" में अपने देश भारत की दुःस्थति पर उन्होंने दुःख व्यक्त किया है।

गोविंद वै की कविता होलेयनु यारू (अछूत कौन) वह कहते हैं

अपने देश की स्वतंत्रता के लिए जो लड़े नहीं वह अछूत हैं
वह जो स्वार्थी है वह अछूत है
स्वार्थ में वह जो भूलें अपने देश को, वह अछूत है
वह जिसमें राष्ट्र प्रेम नहीं, वह अछूत है।

उन्होंने अपनी एक कविता में "भारत छोड़ो" को हमारे लिए गायत्री मंत्र माना। दत्तात्रेय रामचंद्र बेंद्रे (द. रा. बेंद्रे-1896-1981) भारतीय श्रेष्ठ कवियों में से गिने जाते हैं। वह अपनी कविता को प्रवाहमयी बनाने के लिए कई बार लोक साहित्य के छन्द और भाषा को भी अपनाते हैं। उनकी शैली पाठक को अपनी ओर बरबस आकर्षित करती है। उन्हें इसी

कारण "गारुडिगा-ऐंद्र जालिक" भी कहते हो। "नरबलि" नामक कविता रचने पर उन्हें जेल जाना पड़ा था। उनकी रचनाओं में से इस संदर्भ में "मूवत्तमूरू कोटि विशेष उल्लेखनीय है। उस कविता में भारत माता स्वयं बहुत दुःखी होकर बोलती है, मेरे तो गिनती के तैंतीस करोड़ संतान हैं मगर बिलकुल खाली हैं।

1918 में उन्होंने "आहाहा स्वातंत्रदेवी" नामक कविता रची थी जिसमें स्वतंत्रता की देवी को देवता और मनुष्यों की आंखों का सपना माना था, और उसे संसार का अत्यंत प्रिय उपहार कहा था। उनकी एक कविता "बिडुगडे (छुकारा-विमोचन) की पंक्तियां इस प्रकार से थी:-

पंछी स्वच्छद हो उड़ता आकाश में,
मछली स्वेच्छा से जीती है समुद्र में
झरना पहाड़ पर मंजुल निनाद से झरता है
हम-लोग ही बंधन में हैं–यह क्यों

आक्रोश से आत्मा तड़पती है
हृदय **जुगुप्सासे** भर उठा है
समझो भगवान हमारी यह वेदना
और हमारा साथ दो।

"ध्वज सत्याग्रह" में भाग लेने हेतु 1923 में धारवाड़ से कई युवक नागपुर के लिए रवाना हुए थे। तब रेलवे स्टेशन पर उनको बिदा करते समय बेन्द्रे ने "नाडगुडि (देश मंदिर)" नामक कविता की रचना की थी। उस कविता में एक युवा सत्याग्रही बोलता है। वह कहता है, मेरे पूर्वजों से कमाया पुण्य अपने रक्त में बहें, हिन्दु और मुसलमान एक जुट होकर ध्वज रक्षा करें। 1923 में धावपाड़ के किसी आगजनी में कुछ युवकों को अनावश्यक ही पकड़ लिया था जिस अवसर पर बेद्रे ने "तरुण तपस्वी" नामक एक प्रभावपूर्ण कविता की रचना की थी। तरुण (युवा) तपस्वी कहता है,

भगवान की इच्छा से आग जलती है
भगवान की इच्छा से हवा चलती है

उस कविता में निराशा पर विजय का वर्णन है। युवक जो कि जेल भेज गया है, निराश है। वह सोचता है कि भविष्य का क्या होगा, मगर सोते समय भारत माता उसके सपने में आकर आश्वासन देती है कि अंत में तुम्हारी विजय होगी। इससे वह अपनी आंतरिक ज्योति जगाकर सम्पूर्ण बलिदान के लिए तैयार होता है।

कन्नड़ के अन्य जाने माने कवियों में से वी. सी. के नाम से प्रसिद्ध वी. सीतारामय्या (1899-1984) की रचनाएं "भारत जगदम्बे", "दुंदुभि (1931), "नाडताययें (देशमाता)", "नेल्कले" बेलकु (अंधकार–प्रकाश)" कविता संग्रह की कई कविताएं इस संदर्भ पर उल्लेखनीय हैं।

आनंदकंद-बेटगेरी कृष्णशर्मा (1900-82) की "भारत माता की गरिमा", "निम्य पूजा" आदि राष्ट्रीयतावादी रचनाएं हैं।

बोध प्रश्न 2

कोष्ठकों में दिए गए शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर लिखें:

अ) साली रामचन्द्रराव की रचना ····· में स्वाधीनता की चेतना है।
(चाह, हम्बलु)

आ) गोविंद वै ने ····· को गायत्री मंत्र कहा है।
(होलेयनु यारु/भारत छोड़ने)

इ) द. रा. बेद्रे ने ····· कविता रेलवे स्टेशन पर रची थी।
(नाहगुडि/आहा हा स्वतंत्र देवी)

ई) बेंद्र की कविताओं की विशेषता को स्पष्ट कीजिए (तीन वाक्यों में)

.....

.....

.....

16.3 अन्य प्रसिद्ध कवियों का योगदान

इसमें कोई संदेह नहीं कि स्वतंत्रता आंदोलन का प्रभाव कन्नड़ साहित्य पर तीव्रतर रहा। ऊंची कोटि के अनेक कवियों ने इस दिशा में अपना उत्तरदायित्व जताया है।

16.3.1 कुवेंपु

के. पी. पुट्टप्पा (जन्म 1904) जो कुवेंपु के नाम से जाने जाते हैं, अपने श्रेष्ठ रचनाकार व्यक्तित्व के कारण जिन्हें भारती ज्ञानपीठ पुरस्कार भी प्राप्त हो चुका है, उन्होंने अपनी रचना धार्मिता आंदोलन और नवजागरण की दोनों दिशाओं में निभायी। युवकों को आंदोलन में भाग लेने के लिए जाग्रत करना भी उतना ही जरूरी था जितना कि सामाजिक बुराइयों के कलंक को धोने का था। 1933 में कुवेंपु का कविता संकलन "पांचजन्य" प्रकाशित हुआ था जिसकी अधिकांश रचनाएं राष्ट्रप्रेम से समबद्ध थीं। "पांचजन्य" कविता में भी आंदोलन में शामिल होने के लिए आवाज दी है। ओजपूर्ण उनकी कविता की पंक्तियां इस प्रकार चलती हैं--

बढ़े चलो, बढ़े चलो
चलो, आगे बढ़ो
झुको नहीं, हिलो नहीं
घुसो आगे बढ़ो।

चौंको नहीं, विश्वास रखो
अपनी समर्थ छाती में,
बंधन दूर करो उसका धूल बना कर
मुझे मिटना पड़े, तुमको मिटना पड़े
बनेगी हमारी हड्डियों पर
नव भारत की लीला।

भारत की गुलामी का कारण हमारे आपस की बैर भावना है। बाहर से आकर अंग्रेजों ने हमारे लोगों के हाथ हमारी हत्या करायी और राज्य किया। बाहर से आकर यहां पर सुख-सम्पदा भोगी। हम लोगों में आपस में अविश्वास और द्वेष का बीज बोया। हमारे लोग मूर्ख रहे कि अंग्रेजी राज्य का कइयों ने समर्थन भी किया। ऐसे लोगों को उद्देशित कर वे कहते हैं:

भारत खण्ड के हित में
अपना हित मानकर
भारत माता का मत
अपना मत मानकर
भारत माता की संतान को
अपनी संतान मानकर
भारत माता की मुक्ति
अपनी मुक्ति मानो।

भारत माता को उद्दशित कर लिखे अपने एक सानेट में कुवेंपु कहते हैं अपने देश की इस लूट की कहानी सुनकर कोई भी आँखों में आंसू भर लेता है, अपमान के दुःख की कल्पना मात्र से खून खौलने लगता है। छाती में एक साथ मानों हजारों सांप अपना फन खोल देते हैं। हृदय में क्रोध की ज्वाला तीव्र होकर शत्रुओं को जलाकर भस्म कर देना चाहती है। यह जन्म-मरण की लड़ाई है।

अपनी "भारत तपास्विनी" नामक कविता में वह कहते हैं भारत एक ऐसी समर भूमि है। जहां पर स्वर्ग-नरक दोनों की यहां पर मुठभेड़ होती है। संस्कृति का सर्प अपना फन उठाकर मृत्यु का चुम्बन देना चाहता है। वह कहते हैं तपास्विनी भारत माता पुनः जागृत होकर जगत का मार्ग दर्शन करेगी।

कुवेम्पु कन्नड़ साहित्य के रस कवि माने जाते हैं। वह अपनी अगली पीढ़ी के यहां तक कि आज के साहित्यकारों के भी मार्ग दर्शक गुरु माने जाते हैं। उन्होंने राष्ट्रीयता का संदेश तो दिया ही, साथ ही अपने लोगों को अंध रुढ़ि और विचारों से बाहर निकलने के लिए भी

अपने साहित्य में आवाज दी।

16.3.2 कुवेंचु और नवजागरण

बीसवीं सदी का आरंभकाल साहित्यिक आंदोलन के साथ-साथ विचारवाद का युग भी माना जाता है। अपने देश की प्रगति में बंधक बने सड़े-गले विचारों के उन्मूलन के लिए साहित्य से अत्यधिक प्रेरणा प्राप्त हुई। एक सच्चे साहित्यकार का यह दायित्व होता है कि वह समाज के हित का चिंतन करे। जाति-धर्म की आड में मानवीयता को विनष्ट होने दे रहे अपने जाति बंधुओं को उद्देशित कर कुवेंचु ने "मनुज मत को विश्वपथ" की ओर अग्रसर होने का आदेश दिया। वह कहते हैं:

मंदिर गिरिजाघर से निपटकर आओ
गरीबी की जड़ सहित उखाड़ने चले आओ
मौढ़ की राक्षसी को दूर करने आओ
विज्ञान का दीपक हाथ लेने आओ
भाईयो जल्दी आओ।

उलझो नहं मतधर्म के मोह-अज्ञान में,
बुद्धि से काम करो लोकहित में
वह मत वह मत इस प्रकार के पुरानेपन का सहवास
बस है, मिल जाओ, मनुज मत में,
आओ भाइयो। विश्व पथ के लिए।

उनके भगवान की कल्पना कुछ इस प्रकार चलती है:

सड़क साफ करने वाले गरीब के हृदय में मैं निवास करता हूँ
खेत जोतते मजदूर के हृदय में मैं रहता हूँ
जहां जमादार अपने काम में लगा है
मैं उसकी बगल हूँ, लंगड़े
अंधे, दीन दलित का हाथ धरकर
पालन जहां पर कर रहा है, मैं वहां पर हूँ।

कुवेंपु के नाटकों भी नवजागरण का संदेश मिलता है। "जलगार" उनका विचारवादिता से पूर्ण एक प्रभावशाली नाटक है। "जलगार" समाज का अंत्यन है वह कहते हैं जलगार सारा शहर साफ करता है, मगर वह खुद अछूत माना जाता है। इस नायक में एक पात्र उक्त व्यवहार से विद्रोह कर कहता है, इस प्रकार के विचार भारत के पतन के मूल बीज हैं, हमारे पुरखों के अज्ञान का भी कोई अंत नहीं,,वह कहते हैं, भगवान सब जगह वास करता है मगर फिर भी मंदिरों में जाकर उसे ढूढ़ते हैं। वचन और क्रिया में ये लोग भेद मानते हैं, इनके इसी भेदभाव ने भारतभूमि का नाश किया है। ..... वे प्राणहीन भगवान की पूजा करते हैं, दरिद्र नारायण की पूजा को श्रेष्ठ नहीं मानते।

"शुद्ध तपस्वी" नाटक के माध्यम नाटककार राम के मुंह से बोलते हैं। "अच्छे विचारों से करने वाले सत्कार्य के लिए शास्त्र की मदद नहीं चाहिए। कोई भी हो, तपस्या का धनी पूजनीय है। कुवेंपु चाहते हैं कि ब्राहम्ण से अपेक्षित यह विचारों का परिवर्तन समाज के आरंभिक स्तर पर ही दिखाई देना चाहिए।

"रामायण दर्शनम्" कवेपु रचित महाकाव्य है। इस पर उनको भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। साकेत की उर्मिला अगर विशगिणि है तो कुवेंपु की उमिला तपस्विनी है। ग्रन्थ की मूल धारा में उर्मिला के त्याग की महिमा ध्वनित हुई है। मंथरा के पात्र के साथ भी कुवेंपु की मानवीय दृष्टि जाग्रत हुई है मूल रामायण का पात्र "मथरा" का कलंक यहां पर धुल गया है और रक्त-मांस हृदय से पूरित एक व्यक्ति बनकर वह प्रस्तुत होती है।

इस प्रकार राष्ट्रीय और नवजागरण के लिए साहित्यकार कुवेंपु की महान देन है।

बोध प्रश्न 3

कोष्ठकों में दिये गए शब्दों को चुनकर वाक्य पूर्ण करें:

(अ) 1933 में कुवेंपु का कविता संकलन ..... छपा था।
(पांचजन्य/कोगिल मत्तु सोवित रथ)

(आ) कुवेंपु कन्नड़ साहित्य के ..... माने जाते हैं। (रसऋषि/राष्ट्र कवि)

(इ) कुवेंपु ने मनुजमत को ..... की ओर अग्रसर होने का आदेश दिया।
(साहित्यकार/विश्वपथ)

(ई) जलगार सारा शहर साफ करता है मगर ..... माना जाता है।
(अछूत/निम्न)

16.4 विभिन्न गद्य साहित्य और राष्ट्रीयता

बीसवीं सदी का आरम्भकाल भारत की अधिकतर भाषाओं में साहित्यिक विधाओं का आरम्भकाल भी था। कन्नड़ साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है। कन्नड़ के साहित्यकारों में भी इन विधाओं का जन्म दिया है और राष्ट्रीय का संदेश जनता तक पहुंचाने के लिए इन विधाओं का उपयोग किया। कविता के बाद जब हम नाटकों को देखते हैं, गरुड़ सदाशिवराव का उल्लेख करना पड़ेगा वे एक नाटककार थे। उन्होंने अपने नाटकों में विदेशी कपड़े जलाना दिखाया था।

"राच्चमन्नायक" नाटक का नायक एक इतिहास वीर था जो स्वत्रंता आंदोलन को जोर देने में प्रभावशाली पात्र बना था।

"नरगुंद बाबा साहेब" नामक नाटक उन्होंने खेलना चाहा था मगर सरकार ने जब खेलने नहीं दिया, उसी को "मालकम विजय" में बदलकर प्रदर्शित किया था। उस नाटक की विषयवस्तु कुछ इस प्रकार थी—बाबा साहेब ने अंग्रेजी हुकूमत से मुक्त होकर स्वाधीन बनाना चाहा था। जिसे मालकम ने योजना बनाकर चौपट किया था और उसे हराया था। गरुड़ सदाशिव का "बध विमोचने" बालचंद्र घाणेकर का "गांधी टोपी", "रैतर भाग्योदय" (किसानों का भाग्योदय), "अस्पृश्य देव" "भारतोदय" इसी उद्देश्य से रचे गए नाटक थे।

देवेन्द्र गोसाई ने "उद्धार" नामक नाटक की रचना की थी। उसमें उन्होंने हजरत मोहम्मद, बसवेश्वर, गांधी जी और जवाहरलाल नेहरू जी को आदर्श मानकर उनके उद्धरण दिए थे और शराब की बुराइयां बताकर उनसे बचने को आवाज दी थी।

एम. आर. श्रीनिवास मूर्ति ने "नागरिक" नामक नाटक की रचना की थी। उसमें एक युवक के पात्र का चित्रण है जो विजय नगर जाता है, वहां के खण्डहर देखकर दुःखी होता है। वहां भी मंदिर में जाकर पुजारी बाबा से मिलता है। दोनों के बीच आपस में चर्चा होती है। पुजारी की बातों से उसके विचार मेल नहीं खाते। इससे उसे बुरा लगता है। वह इसीसे आगे जाकर मृत्यु के देवता यम से मिलता है। फिर वधारण्य से उसकी भेंट होती है। वह विजयनगर के खण्डहरों की बात लेकर उनसे प्रश्न करता है, कि जो भगवान अपनी रक्षा भी नहीं कर पाते, वह और लोगों की क्या रक्षा कर पाएंगे? वह यम से कहता है कि मातृभूमि की रक्षा से बढ़कर दूसरा कोई श्रेष्ठ धर्म नहीं होता। विद्यारण्य उसे आश्वासन देते हैं कि वे यहीं पर रहकर शांति से भगवान का ध्यान करेंगे। इससे शुभ मुहर्त पर योग्य वीरों का यहां पर जन्म होगा।

बी. कृ. गोकाक के नाटक "जन नायक" में धार्मिक नेताओं की भर्त्सना है, स्वार्थी नायकों को दोष दिया है, रामदास जैसे सहिष्णु और उदार धर्म नेताओं का स्वागत है।

16.4.1 अनुवाद और राष्ट्रीयता

उपन्यास विद्या में बंगला से "आनंदमठ" का अनुवाद (अनुवाद बी. वेंकटाचार्य ने किया था), मराठी से हिरनाराण आप्टे के "ईश्वरी सूत्र" का अनुवाद विशेष उल्लेखनीय है। इन अनुवादों के माध्यम से भी राष्ट्रीयता आंदोलन का देश के नाना भागों में समान प्रभाव देखा जाता है। "ईश्वरी सूत्र" में शिवाजी की वीरता का आदर्श दर्शाया गया था और श्री गलग नाथ ने इनका कन्नड़ में अनुवाद प्रस्तुत किया था।

16.4.2 रामस्वामी

गोरूर रामस्वामी अयुयंगार कन्नड भाषा के एक प्रमुख गांधीवादी साहित्यकार थे। उन्होंने अपनी छोटी उम्र में ही शिक्षा का त्याग कर राष्ट्रीयता के आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया था, "नव जीवन" और यंग इण्डिया" पत्रिकाओं के संपादक भी रह चुके थे। साथ ही ग्राम जीवन का सुंदर परिचय था। इस कारण भी उनका साहित्य राष्ट्रीयता और नव जागरण की भावनाओं में डूबा था, जेल जीवन का स्वानुभव था। "मेरवणिगे" (जुलूस) उनका एक राष्ट्रीयतावादी उपन्यास है। इसमें एक ऐसे युवक का पात्र विचित्र है जो नाम का सुदर्शन होकर भी व्यक्तित्व का बदमाश है। इस कारण समाज में कहीं पर उसकी कोई गिनती नहीं, कोई उसकी परवाह नहीं करता। वह किसी तरह गांधी आश्रम में आ टपकता है। यहां आने से पहले, जीवन के प्रति उसका एक भिन्न दृष्टिकोण था वह सरकारी नौकरी चाहता था, हाथ में अधिकार चाहता था। यहां आकर उसकी काया पलट होती है। वह कहता, भारत के किसान ग़रीब हैं, मुझसे बढ़कर गरीब हैं। इस कारण इस देश में गरीब बने रहना अंपमानजनक बात नहीं है।

मिर्जी अण्णाराव का "राष्ट्रपुरुष" एक अन्य गांधीवादी उपन्यास है। "माडिदवरू" (कर्त्तव्य निभाकर वीरगति पाने वाले) सीधे स्वतंत्रता आंदोलन का चित्र प्रस्तुत करता है।

वैसे कहानियां कन्नड़ में राष्ट्रीयता आंदोलन से काफी हद तक अछूत रहीं। पु. ति. नरसिंहाचार का "ध्वज रक्षण" इसका एक अपवाद माना जा सकता है।

बोध प्रश्न 4

कोष्ठकों में दिए गए शब्दों में से चुनकर वाक्य पूरा करें।

(अ) गरुड़ सदाशिवराव एक राष्ट्रीयतावादी ..... थे। (नाटककार/कहानीकार)

(आ) "नरगदबाबा साहेब" का बाद में चलकर ..... नाम पड़ा था।
(बाबा साहेब/मालकम विजय)

(इ) उद्धार नाटक में ..... को आदर्श माना था।
(तिलक, नेहरु, गांधी, गोखले, ईसा, हजरत मोहम्मद, बसवेश्वर)

(ई) आनंदमठ का अनुवाद ..... किया था।
(गलग नाथ/बी. वेंकटाचार्य)

(ड) "मेरवणिगे ..... ने लिखा था।
(त. रा. सु/गोरूर रामस्वामि अंग्गार)

बोध प्रश्न 5

निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त (तीन वाक्य) उत्तर लिखिए:

(अ) राष्ट्रीयता आंदोलन के संदर्भ में कन्नड़ के किन्हीं तीन कवियों का उल्लेख कीजिए और उनकी रचनाओं का नाम बताइए?

.....

(आ) जनजागरण किसे कहते हैं? हमारे कवि और लेखकों के साहित्य में वह कैसे प्रकट हुआ है?

.....

(इ) कुवेंपु का संदेश क्या है? वे राष्ट्रीय कवि क्यों माने जाते हैं?

.....

(ई) निम्नलिखित काव्यांश की विशेषता नवजागरण की दृष्टि से बताइए:

सड़क साफ करने वाले गरीब के हृदय में मैं निवास करता हूं
खेत जोतते मजदूर के हृदय में मैं रहता हूं।

.....

.....

.....

16.5 सारांश

अंग्रेजी शासन के खिलाफ देशव्यापी आंदोलन ने लोगों में जागृति लाई। विदेशी शासन के खिलाफ कन्नड़ भाषा-साहित्य के रचनाकारों ने लोक-शैली में रचनाएँ की दुमदुमें और लावणी का गायन कर लोग आंदोलन में हिस्सा लेने लगे आप बता सकते हैं कि किस प्रकार साहित्य ने लोगों में राष्ट्रीयता की ज्योति जलाई।

समाज में फिर आई बुराइयों के कारण लोगों का उद्घाटन हो रहा था। साहित्यकारों ने समाज सुधार आंदोलन से प्रेरणा ग्रहण कर रचनाएँ की। आप स्पष्ट कर सकते हैं कि किस प्रकार साहित्य से समाजिक उत्थान में सहयोग मिला।

आधुनिक जागरण के फलस्वरूप भारतीय भाषाओं के साहित्य में नवीन विधा का समागम हुआ। कन्नड़ भाषा साहित्य में भी विभिन्न गद्य विधाओं द्वारा सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना फैलाई गई। आप भिन्न गद्य विधायों रचे गए साहित्य को बता सकते हैं।

अन्य भारतीय भाषाओं में तरह कन्नड़ साहित्य में भी समय की आवश्यकता को ध्यान में रखकर रचनाएँ की गईं। आप इस समय में रचे-गए साहित्य के महत्व को बता सकते हैं।

16.6 शब्दावली

साक्षरता	:	पढ़ाई लिखाई
आक्रोश	:	क्रोध, गुस्सा
उबड़-खाबड़	:	ऊँची-नीची भूमि
	:	घृणा का भाव
मार्ग दर्शक	:	रह दिखाने वाले
पूरित	:	भरा हुआ
चौपट	:	नष्ट
स्वानुभव	:	अपना अनुभव

16.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

रं. श्री मुगलि, अनुवाद सिद्धगोपाल, **कन्नड़ साहित्य का इतिहास,** साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली।

गोरी शंकर पंड्या, **भारतीय भाषाओं के साहित्य का रूप दर्शन,** इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन में कृष्णनगर दिल्ली।

16.8 बोध प्रश्न/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न 1 अ, इ

जनता अधिक संख्या में साक्षर नहीं थी। मगर जब तक जनता में जागृति नहीं आती, आंदोलन सफल नहीं हो सकता था। इसलिए दुदुमे/लावणी आदि में रूप अपनाए गए। खिम्पी लिंगण्णा, लावणी विष्कण्ठराव, नीलकण्ठप्पा और रामस्वामी उस समय के गीतकार साहित्यकार थे।

बोध प्रश्न 2

अ) हम्बलु आ) भारत छोड़ो इ) नाडगुडि

इ) बेंद्रे अपनी कविता को प्रवाहमयी बनाने के लिए लोक साहित्य के छंद और भाषा को अपनाते हैं। उसकी शैली पाठक को अपनी ओर बरबस आकर्शित करती है। उन्हें इसी कारण "गारुडिगा-ऐंद्र जालिक" भी कहते हैं।

बोध प्रश्न 3

अ) पांचजन्य आ) रसऋषि इ) विश्वपथ ई) अछूत

बोध प्रश्न 4

अ) नाटककार आ) मालकम विजय इ) हजरत मोहम्द, बसवेश्वर, गांधी जी, जवाहरलाल नेहरु ई) बी. वेंकटाचार्य ड) गोरुर रामस्वामी अरूयंगार

बोध प्रश्न 5

अ) जनआंदोलन

अभ्यास।

अ) साली रामचंद्र राव, द. रा. बेंद्रे और कुवेंपु ने राष्ट्रीयता आंदोलन से सम्बधित कविताएं रची थी। साल ने स्वाधीनता की तुलना सूर्य से, बेंद्रे ने तैंतीस करोड़ संतान की दुःखी मां से भारत माता की ओर कुवेंपु ने भारत माता की एक तपस्विनी से तुलना की थी। साली रामचंद्रराव की "हम्बलु", द. रा. बेन्द्रे कि "मुक्तुमूरु कोटि" और कुवेंपु की "भारत तपस्विनी" यहां पर उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

आ) एक सच्चे साहित्यकार का यह दायित्व होता है कि वह समाज के हित का चिंतन करें। जाति धर्म की आड़ में विनष्ट हो रहे समाज की ओर जनता का ध्यान आकर्षित कर उन्हें जगाएं उन्हें यह जन जागरण है।

इ) मनुज मत को विश्वपथ की ओर अग्रसर करने का संदेश कुवेंपु हमें देते हैं, मंदिर-गिरिजाघर आदि संकुचित भावनाओं से बाहर निकलकर गरीबी की जड़ उखाड़ने का वे आदेश देते हैं। संकुचित भावनाओं से बाहर निकलकर मानव मात्र को संदेश देने वाले अपने राष्ट्र के कवि कुवेंपु राष्ट्र कवि माने जाते हैं।

ई) यहां कवि कुवेंपु के भगवान की कल्पना पर प्रदर्शित है, उनके भगवान मंदिरों में बंद होने वाले नहीं हैं, सड़क साफ करने वाले और खेतों में मजदूरी करने वाले मजदूरों में वे भगवान को देखते हैं।

इकाई 17 कन्नड़ साहित्य-II

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

17.1 प्रस्तावना

17.2 राष्ट्रीय चेतना का विकास

17.3 गांधी साहित्य: अन्य लेखक
- 17.3.1 प्रभु और राव

17.4 अन्य रचनाएं

17.5 प्रमुख जीवनियाँ

17.6 नवजागरण का साहित्य
- 17.6.1 महिला साहित्यकार
- 17.6.2 नंजनगूड तिरूमलाम्बा
- 17.6.3 जीवन परिचय
- 17.6.4 तिरूमलाम्बा : रचना संसार
- 17.6.5 साहित्य का संक्षिप्त मूल्यांकन

17.7 वाचन: तिरूमले राजम्मा "भारती"
- 17.7.1 रचनाएँ
- 17.7.2 भाषा शैली
- 17.7.3 अन्य रचनाएं

17.8 कुछ प्रमुख लेखिकाएं
- 17.8.1 कल्याणम्मा

17.9 सारांश

17.10 शब्दावली

17.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

17.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

17.0 उद्देश्य

इकाई 16 में आपने कन्नड़ भाषा के साहित्य में राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना की शुरुआत के बारे में पढ़ा। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप:

- कन्नड़ भाषा साहित्य में गांधीवाद के प्रभाव को बता सकेंगे,
- साहित्य के माध्यम से जन-जन तक जो राष्ट्रीयता की लहर फैलाई गई उसे स्पष्ट कर सकेंगे,
- साहित्य द्वारा तत्कालीन युवकों में राष्ट्र एवं समाज के प्रति एक नए उत्साह के आगमन का विश्लेषण कर सकेंगे, तथा
- तत्कालीन समय में कन्नड़ भाषा की लेखिकाओं द्वारा राष्ट्र एवं समाज के प्रति किए गए महत्वपूर्ण कार्य का आकलन कर सकेंगे।

17.1 प्रस्तावना

आप दक्षिणांचल साहित्य के अंतर्गत कन्नड़ साहित्य का अध्ययन कर रहे हैं। 16वीं इकाई में आपने कन्नड़ भाषा साहित्य में आए परिवर्तन का अध्ययन किया। आपने देखा कि किस प्रकार राष्ट्रीयता की लहर से साहित्यकारों को प्रेरणा मिली। साथ ही उनमें समाज में घिर आई बुराइयों के प्रति चेतना आई और वे उसे दूर करने के लिए साहित्य रचना करने लगे।

इस इकाई में आप कन्नड़ में राष्ट्रीयता आंदोलन को गांधीवादी विचारधारा ने किस प्रकार प्रभावित किया, उसका अध्ययन करेंगे। गांधी जी की विचारधारा तथा उनका कन्नड़ भाषा में अनुवाद हुआ। अन्य राष्ट्रीय नेताओं की जीवनियां भी रची गईं। इस युग की विशेष देन महिला साहित्यकारों का उदय था और नवजागरण की धारा के लिए उनके विचारवाद का विशेष योगदान था। हम इस इकाई में आपको उन सभी गांधीवादी प्रमुख लेखक-अनुवादकों का परिचय भी देंगे, जिनका देश के राष्ट्रीयता आंदोलन के लिए विशेष योगदान था। साथ ही प्रमुख लेखिकाएं और उनके साहित्य की विशेषताओं का भी परिचय कराएंगे।

17.2 राष्ट्रीय चेतना का विकास

आप पिछली इकाई में यह अध्ययन कर चुके हैं कि देशव्यापी राष्ट्रीयता आंदोलन से कन्नड़ साहित्य किस प्रकार प्रभावित हुआ था। फिर भी गांधी जी और राष्ट्रीयता आंदोलन पर लिखे गए गद्य साहित्य का आपने वहां अध्ययन नहीं किया था।

कन्नड़ भाषा में राष्ट्रीयता आंदोलन से संबंधित गद्य विपुल मात्रा में प्राप्त होता है। इनमें विशेष रूप से गांधी जी की आत्मकथा का कन्नड़ अनुवाद "सत्य के साथ मेरे प्रयोग" विशेष उल्लेखनीय है। कर्नाटक के हर कोने में गांधी जी के विचारों के प्रचार के उद्देश्य से उन दिनों "सत्यशोधन पुस्तक भण्डार" की स्थापना की थी। उन्होंने ऊपर उल्लिखित दोनों पुस्तकों का "गांधीणीयवर आतमकथे अथवा सत्यशोधने" के नाम से अनुवाद प्रकाशित कराया था। गांधी जी की प्रामाणिकता का आदर्श, उनका मौल्य विवेचन, अपनी दुर्बलताओं को स्वीकार करने का तरीका आदि कन्नड़ में पढ़कर कन्नड़ की जनता बहुत प्रभावित हुई थी और उनको महात्मा स्वीकारने लगी थी। यह पुस्तक 1928 में प्रकाशित हुई थी।

उन्हीं दिनों सी. अश्वत्थनारायण राव ने जवाहरलाल नेहरू की आत्मकथा का भी अनुवाद किया था। उसमें पूर्व और पश्चिम की संस्कृति का जुड़ा प्रभाव था जो समकालीन घटनाओं को तीव्र रूप से स्पंदित होता है।

जीवनियां काफी बड़ी मात्रा में रची गईं। गांधी जी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, राजेन्द्र प्रसाद, नेताजी सुभाषचंद्र बोस, राजाजी आदि व्यक्तियों पर सरल रूप से, प्रशंसात्मक शैली अपना कर जीवनियां लिखी गईं। और ये बच्चों को पढ़ाने के उद्देश्य से लिखी गई थीं। इसलिए इन पुस्तकों में प्रशंसा का अंश अधिक था। विश्लेषण की कमी थी। आज इतने साल बाद जब हम इन पुस्तकों को पढ़ते हैं, वे बहुत सरल लगती हैं, मगर भारतीय साहित्य की दृष्टि से देखने पर इनका महत्व बढ़ जाता है। वास्तविक घटनाओं को लेकर जीवनी लिखने की यह परंपरा भारतीय साहित्य के लिए ही नई थी। इनमें मैसूर सरकार के शिक्षा विभाग से प्रकाशित "चिरत्रेय महा पुरुषक" (इतिहास के महान पुरुष) 1939 का उल्लेख करना जरूरी है। इस पुस्तक के दो भाग थे। पहले भाग में पेरीक्लीस, हजरत मोहम्मद आदि की जीवनी थी। द्वितीय भाग में शिवाजी, रामकृष्ण परमहंस और गांधी की जीवनियां थीं।

जीवनियों की रचना के लिए संदर्भ पर एक आने की पुस्तकमालाओं का उल्लेख करना जरूरी है। धारवाड़ के समाज पुस्तकालय से बालचंद्र घाणेकर ने कई पुस्तकें प्रकाशित कीं। घाणेकर स्वयं राष्ट्रीयता आंदोलन से जुड़े थे। वे कई बार जेल भी जा चुके थे। 1930 में उन्होंने "गांधी हुच्चु" (गांधी जी पर मोह) नामक पुस्तक लिखी। वह जहां भी जाते, इस पुस्तक की प्रतियां उठाकर ले जाते और एक आने में बेचते। 1932 में उनकी अगली पुस्तक "नाने हो लेय (मैं हूं अछूत) निकली। फिर "रैतर भाग्योदय" (किसानों का भाग्योदय) के नाम से एक एकांकी नाटक प्रकाशित किया। इन पुस्तकों को प्रकाशित करने से सरकार क्रोधित हुई और अठारह महीनों के लिए उसे जेल भेज दिया।

सिद्धवनहल्ली कृष्ण शर्मा ने इसी प्रकार "गांधी साहित्य माला" के नाम से पुस्तकें रचीं। कृष्ण शर्मा की रचनाओं का युवकों पर बहुत प्रभाव पड़ा। उनका भाषा पर बड़ा अच्छा अधिकार था। वाक्य छोटे-छोटे, विचार स्पष्ट, शैली सरल होती थी जिससे पाठक बहुत प्रभावित होता था। उन्होंने गांधी जी पर, गांधी के विचारों पर बहुत ज्यादा लिखा। "गांधीजीयवर राजकीयय पत्रगलु (गांधी जी के राजनीतिक पत्र)" कृष्ण शर्मा के अनुवादों में

एक उल्लेखनीय रचना थी। गांधी जी ने जो अनेक लोगों को पत्र लिखे थे, वायसराय, रामसे मेकडोनाल्ड, एच. पी. वेल्स आदि के उद्देशित वे पत्र थे। उसमें मानव के मूलभूत अधिकार, असहकार आंदोलन वाक् स्वतंत्रता का महत्व आदि कई विषयों पर लिखे गए पत्रों का यह संकलन था। यह 1944 में प्रकाशित हुआ था। इन पत्रों में पहला पत्र गांधी-जी का वायसराय लिनांथ गो का 14 अगस्त 1942 को लिखा वह पत्र भी शामिल था जिसमें गांधी जी ने सरकार के उस उद्देश्य की ओर संकेत किया था कि वह युद्ध के बाद सभी राजनीतिक पार्टियों से सलाह-मशविरा करना चाहती है और उसके बाद किसी तरह की सरकार भी देने को तैयार हो जाएगी। गांधी जी इस पर स्पष्ट रूप से विरोध प्रकट करते हैं और कहते हैं कि सरकार इस प्रकार की नीति अपनाकर पार्टियों के अनावश्यक जन्म का अवकाश दे रही है। गांधी जी उस पत्र में सिंगपूर आर मलया का उदाहरण देकर कहते हैं–ब्रिटिश कामनवेल्थ की वहां क्या दुःस्थिति हुई है, भारत की सुरक्षा का सरकार का नैतिक कर्त्तव्य है।

कृष्ण शर्मा ने गांधी जी के भाषा और वार्तालाप का भी कन्नड़ में अनुवाद किया था। "संवाद माले (वार्तालाप माला)" इसका शीर्षक था। गांधी जी से मिलकर चर्चा करने वाले कई विदेशी ईसाई पादरी आदि से गांधी जी के वार्तालाप का यह संग्रह था। "अहिंसा का महत्व", 'मद्यपान निषेध क्यों?' आदि कई विषयों की चर्चा इसमें आती है। उदाहरण के लिए, गांधी जी का केरल के सी. रामचंद्रन से वार्तालाप यहां पर देखा जा सकता है–

रामचंद्रन: तो आप कहते हैं कि हमें मशीनों का उपयोग नहीं करना चाहिए।

गांधीजी: (हंसकर) यह कैसे कहूं। मनुष्य का शरीर एक अद्भुत मशीन नहीं है क्या? चरखा भी तो मशीन है। दांत साफ करने वाली सलाई भी एक मशीन है। मैं मशीन का विरोधी नहीं। मशीन के पीछे मनुष्य का मोहाकर्षण है, मैं उसका विरोध करता हूं। मशीनों के अधिक उपयोग से लोगों के लिए नौकरी नहीं रह जाएगी, फिर लोग सड़कों पर भूखे मरने लगेंगे। मैं वैसे भी सभी मनुष्यों का श्रम कम होते देखना चाहता हूं। दस लोगों के पास पैसे इकट्ठे हो जाएं, इसका मैं विरोध करता हूं। पैसे सभी के पास हों। आज मशीनों से कुछ ही लोगों के पास धन जमा हो गया है। इससे आपस में प्रेम भावना नहीं, द्वेष की भावना बढ़ती है। इस तरह के मशीन का मैं विरोध करता हूं।

कृष्ण शर्मा से सम्पादित "गांधी कतेगलु (गांधी जी की कहानियां)" एक विशिष्ट रचना थी। महादेव देसाई जी ने इसकी भूमिका लिखी थी। गांधी जी के जीवन की सही घटनाओं से संबंधित वर्णन इन कहानियों में था, गांधी जी की हास्यपरकता इसमें प्रदर्शित थी, बच्चे गांधी जी से कितना प्रेम करते थे, इसके उदाहरण थे।

बोध प्रश्न

सही उत्तर पर चिह्न लगाइए।

1) गांधीजीयवर आत्मकथे अथवा सत्यशोधने ..... ने प्रकाशित की थीं
   अ) गुजरात
   आ) सत्यशोधन पुस्तक भंडार

2) जवाहरलाल नेहरू की आत्मकथा का ..... ने अनुवाद किया था।
   अ) सी. अश्वत्थनारायण
   आ) कृष्ण शर्मा

3) एक आने की मालिका क्या थी? उसके लेखक कौन थे? पुस्तकें कौन-सी थीं? लेखक को किस परिस्थिति का सामना करना पड़ा? चार पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

17.3 गांधी साहित्य: अन्य लेखक

कृष्ण शर्मा के अलावा भी कई अन्य लेखकों ने कन्नड़ की जनता को गांधी साहित्य से परिचित कराने की कोशिश की।

17.3.1 प्रभु और राव

श्री आर. के. प्रभु और यू. आर. राव ने गांधी जी के भाषणों का "महात्मर मनोरंग" (महात्माजी के विचार) शीर्षक से अनुवाद किया। फिर दोनों ने ही "भारत छोड़ो" आंदोलन पर एक पुस्तक छापी। स्वास्थ्य संबंधी गांधी जी के विचारों का संग्रह "महात्मा गांधी जी-यवर आरोग्य साधने" (महात्मा जी की स्वास्थ्य साधना) के नाम से टी. आर. नरसिंहय्या ने एक किताब छापी। इसमें गांधी जी निष्ठापूर्ण जीवन पर कैसे जोर देते हैं, आहार पर नियंत्रण रखकर डॉक्टर से दूर होने का नुस्खा बताते हैं। श्री जी. पी. राजरत्नम् ने "देवर साक्षी" और "गांधी शक्तिय मूल" नामक दो पुस्तकें प्रकाशित कीं। पहली पुस्तक में गांधी जी के भाषणों का संकलन था, दूसरी पुस्तक में प्रार्थना और गीता के महत्व पर गांधी जी के विचार संग्रहीत थे।

गांधीजी के "सेण्ट परसेंट स्वदेशी" का "पूर्ण स्वदेशी" के नाम से लेखक और स्वयं सेवक गोरूर रामस्वामी आयुयंगार ने अनुवाद किया। इसमें ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर गांधी जी के विचारों का संग्रह था।

डॉ. के. भारद्वाज ने "इंडियन होम रूल" का "हिन्द स्वराज" के नाम से अनुवाद प्रस्तुत किया। इसमें गांधी जी भारतवासियों की मानसिक स्थिति का विश्लेषण करते हैं। अंग्रेजों का मन किस प्रकार जीतें? हिन्दु-मुसलमान एकता की आवश्यकता पर जोर देते हैं, और कहते हैं कि अंग्रेज वैसे यहां शासन करने नहीं आए थे, मगर भारतवासियों ने अपने आपस के झगड़े निपटाने के लिए अंग्रेजों से मदद मांगी जिससे वह हमारे शासक बन बैठे। गांधी जी इस पुस्तक के अंत में अंग्रेजों को सावधान करते पाए गए हैं। वे कहते हैं, आपके पास सेना का सहारा है। हमारे पास वह कुछ नहीं है। मगर जब हमारी बात नहीं मानोगे, तो हम भी अपने को तुम्हारी प्रजा नहीं मानते। तुम हमारी बोटी-बोटी काट सकते हो, बंदूक से उड़ा सकते हो। मगर समझ लो, हमारी मदद के बिना तुम एक पग भी आगे नहीं बढ़ पाओगे।

17.4 अन्य रचनाएं

गांधी साहित्य के अलावा जनता में स्वतंत्रता का चिंतन बढ़ाने के उद्देश्य से श्री डी. वी. गुण्डप्पा ने "स्वातंत्रय एंदरे येनु (स्वतंत्रता का अर्थ क्या है)" "स्वातंत्रय बंदरे येनु अनुकूल (स्वतंत्रता प्राप्त होने से क्या लाभ होगा)" आदि विचार साहित्य प्रकाशित किया। इन पुस्तकों में वैचारिक चर्चा थी। भावुकता के लिए वहां गुंजाइश नहीं थी। इसमें वे स्वाधीनता के प्रति जनता को जागृत करना चाहते हैं, वह कहते हैं कि इस देश की प्रजा होने से हम यहां पर सुख-दुख के सहभागी हैं।

वह कहते हैं कि यह समाज का कर्त्तव्य है कि यहां रहने वाले सभी लोगों को एक सुख-सुविधापूर्ण जीवन दे सकें।

लेखक यहां पर मतदान के अधिकार की व्याख्या देते हैं। अपनी दूसरी पुस्तक में डी. वी. जी कहते हैं कि स्वतंत्रता का मतलब सभी को समान रूप से स्वतंत्रता प्राप्त होने से है। वे सरकार के कर्तव्यों को दो भागों में बांटते हैं: वे जो करना जरूरी है, और दूसरे वे जो करना चाहिए। जैसेकि जायदाद की सुरक्षा सरकार का परम कर्तव्य है। मगर कई दूसरी सेवाएं ऐसी हैं, जो करनी चाहिए। मगर इस देश में रहने वाली हर प्रजा की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति और उसकी सुरक्षा सरकार की जिम्मेदारी है।

एम. ए. गोपाल स्वामी आयुयंगर ने "भाग्य चक्र" नामक पुस्तक लिखी। यह कपड़ा उद्योग से संबंधित पुस्तक है जिसमें यह बताने की कोशिश की गई है कि हमारा देश एक जमाने में औद्योगिक रूप से एक विकसित देश था और विदेशी शासकों ने इसकी जड़ ही काट दी और भारत को विदेशियों का गुलाम बना दिया।

1935 में सिद्धवनहल्ली कृष्ण शर्मा की "निर्भाग्य बीरेगौडा" पुस्तक छपी। इस पुस्तक की विषयवस्तु किसान के जीवन की दुस्थिति थी। इस पर उन्होंने सही घटनाओं का वर्णन किया था, सही आंकड़े भी इकट्ठा कर दिये थे। किसान के जीवन को उत्तम बनाने की दिशा में उन्होंने अपनी ओर से कई सलाह भी सुझाये थे।

डी. के. भारद्वाज रचित "जगत्तिन स्वातंत्र्य संग्राम (संसार में स्वतंत्रता की लड़ाई) एक उल्लेखनीय रचना थी जिसमें संसार के नाना भागों की शोषित गुलाम जनता की स्वतंत्रता की लड़ाई का वर्णन था।

17.5 प्रमुख जीवनियाँ

नाडिग कृष्णमूर्ति ने कमला नेहरू की जीवनी लिखी। इसमें कमला नेहरू को वीर महिला बताया गया। सहज रूप से यह कर्नाटक की महिलाओं को स्वतंत्रता आंदोलन में भर्ती होने की चुनौती थी।

"महर्षि अरविंद घोष" नामक पुस्तक की रचना शंकर बाल दीक्षित जोशी ने की थी। इसमें यह बताने की कोशिश की गई थी कि अपनी गुलामी के जिम्मेदार हम स्वयं हैं। मानसिक दासता ने हमें राजनीतिक दासता के लिए बाध्य किया है। इस कारण इस पुस्तक में यह बताने की कोशिश की गई है कि अरविंद घोष इस मानसिक दासता से कैसे मुक्त होना चाहते हैं।

इसके साथ अशोक, बुद्ध आदि ऐतिहासिक व्यक्तियों पर भी पुस्तकें रची गईं तथा भारत के प्राचीन वैभव की याद दिलाकर आज की स्थिति में स्वतंत्रता के महत्व से परिचित कराने की कोशिश की गई।

श्रीमती यशोधरा दासप्पा ने काका कालेलकर की "स्वतंत्रता के नगर का बुलंद दरवाजा बलिदान है" का "नवचैतन्य" शीर्षक से कन्नड़ में अनुवाद किया। हिन्दी में लिखे नौ लेखों का यह कन्नड़ रूपांतर था। उन लेखों के शीर्षक कुछ इस प्रकार थे: "मेरी मातृभूमि", "देशसेवा", "भय का भूत", "वीरता का धर्म"। "स्वातंत्र्यप्रिय" नाम से एक व्यक्ति ने प्रसिद्ध लेखक विल ड्यूराण्ट के "द केस फॉर इंडिया" का "भारतद राजकीय समस्ये" के नाम से अनुवाद किया। उसमें विल ड्यूराण्ट लिखते हैं—उन्होंने जो देखा, वह इतना भयंकर था कि वह स्तब्ध रह गए। मनुष्य जाति का 1/5 भाग भारत में निवास करता है। ऐसी स्थिति में कोई भी सरकार जनता को इस अपमानजनक असहनीय स्थिति तक पहुंचा सकेगी, इसकी कल्पना करना भी कठिन है। राष्ट्रीयता आंदोलन में कर्नाटक के योगदान की एक महत्वपूर्ण रचना गुरूनाथ जोशी जी की "कर्नाटककद बलिदान" थी। उस पुस्तक के प्रथम अध्याय में लेखक लिखते हैं कि दुःख और अवसाद के कारण देश कायर नहीं बना है। ईस्ट इंडिया कंपनी और विली डालहौसी की प्रवंचना भरी कार्यवाही का उल्लेख देकर लेखक स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार ब्रिटेन ने हमारे देश का शोषण किया है और करता रहा है। लेखक कहते हैं कि भारत में 634 विदेशी कंपनियां हैं। उन कंपनियों ने और नहीं तो कम से कम साढ़े सात हजार करोड़ रुपये भारत में रहकर जमा किया है। चाय से ही इंग्लैण्ड को भारत से छत्तीस करोड़ रुपये मिलते हैं। ब्रिटेन का 1/10 भाग निर्यात भारत के लिए होता है। सन, ऊन, चमड़ा, रुई, और तेल के बीज ये सभी उनकी लाभदायक वस्तुएं हैं। इसके बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जन्म और भारत में उस समय अंग्रजी हुकूमत, लार्ड कर्जन का पात्र, बंगाल का विभाजन आदि सबका विवरण उस अध्याय में प्राप्त होता है। लोकमान्य तिलक और गांधीजी का नेताओं के रूप में अवतरण, 1920 का असहयोग आंदोलन का ब्यौरा भी उसमें प्राप्त होता है। 1929 से युवा शक्ति के संघटन का भी उसमें उल्लेख मिलता है।

इस प्रकार उक्त ग्रंथ कई अन्य महत्वपूर्ण घटनाओं का भी विवरण देता है। संबंधित नायकों के योगदान का भी उल्लेख करता है।

इस प्रकार राष्ट्रीयता आंदोलन संबंधी गद्य हमारे यहां विपुल मात्रा में प्राप्त होता है। यह ठोस सामग्री है, जो हमें बताती है कि राष्ट्र की एक धारा में, स्वतंत्रता के आंदोलन में कर्नाटक की जनता किस सीमा तक जुड़ी थी।

बोध प्रश्न

4) कोष्ठक में दिए गए शब्दों से उपयुक्त शब्द चुनकर वाक्य पूरा करें।
   अ) गांधी जी के "सेंट परसेंट स्वदेशी" का हिन्दी में ..... के नाम से गोरूर रामस्वामी आयंगार ने अनुवाद किया। (खादी/पूर्ण स्वदेशी)
   आ) "स्वातंत्र्य तंदरे एनु ..... ने लिखा। (डी. वी. गुण्डप्पा/कृष्ण शर्मा)
   (इ) "भाग्य चक्र" ..... से संबंधित पुस्तक है। (गोपालस्वामी आयंगर/कपड़ा उद्योग)
   (ई) यशोधरा दासप्पा ने ..... शीर्षक से अनुवाद किया।

5) "कर्नाटकद बलिदान" किसने लिखा था, उसकी क्या विशेषता थी? चार पंक्तियों में उत्तर लिखिए।
   .....
   .....
   .....
   .....

17.6 नवजागरण का साहित्य

आधुनिक युग की एक महत्वपूर्ण घटना महिला जागृति के रूप में पहचानी जा सकती है। एक ओर स्त्री शिक्षा, राष्ट्रीयता आंदोलन में महिलाओं का प्रवेश, सामाजिक पिछड़ेपन से मुक्ति, बाल-विवाह का निषेध, विधवा समस्या के निर्मूलन के प्रयत्न, वेश्यावृत्ति के उच्चाटन की दिशा में प्रयत्न आदि नवजागरण की धारा की पहचान हैं। इस दिशा में जागृत महिला लेखन 19वीं-20वीं शती की अद्भुत प्राप्ति मानी जा सकती है।

17.6.1 महिला साहित्यकार

उन्नीसवीं सदी के अंतिम चरण और बीसवीं शती के आरंभकाल साहित्य, पत्रकारिता और राष्ट्रीयता के आंदोलन में कुछ एक महिलाओं का योगदान एक महत्वपूर्ण घटना मानी जा सकती है। श्रीमति नंजनगूड तिरुमलाम्बा, तिरुमले राजम्मा, कल्याणम्मा, बेलगेरे जानकम्मा, शामला देवी बेलगांवकर, जयलक्ष्मी, कोडागिन गौरम्मा आदि कुछ ऐसे नाम हैं जिनका योगदान कन्नड़ साहित्य और भारतीय साहित्य के लिए अन्यतम माना जा सकता है।

17.6.2 नंजनगूड तिरुमलाम्बा

नंजनगूड तिरुमलाम्बा आधुनिक कन्नड़ साहित्य की प्रथम लेखिका एवं पत्रकार थीं। उन्होंने कविताएं रचीं थीं, कहानियां, उपन्यास, नाटक एवं सरल गद्य की रचना की थी। नव जागरण काल में उभरी इस लेखिका ने स्त्री शिक्षा पर विशेष जोर दिया था। बाल विधवा होकर भी सार्वजनिक क्षेत्र में लगातार कार्य करती रहीं। "सती हितैषिणी" और "सन्मान ग्रंथमाला" ये दोनों प्रकाशन संस्थाएं उनकी थी जिनका संचालन उन्होंने स्वयं किया था। "कर्नाटक नंदिनी" और "सन्मार्गदर्शी" उनसे संपादित पत्रिकाएं थीं जिनमें उनकी स्वयं की साहित्य रचनाएं भी छपती थीं तथा युवा प्रतिभा को लिखने के लिए प्रोत्साहन भी मिलता था।

17.6.3 जीवन परिचय

तिरुमलाम्बा का जन्म नंजनगूड नामक स्थान पर 25 मार्च 1887 में हुआ था। 10वीं उम्र में विवाह, फिर चार साल बाद विधवा बनीं थीं। पिता वेंकटकृष्ण आयंगार ने पुत्री के भविष्य की चिंता से उसे रामायण, महाभारत आदि ग्रंथ दिये और पढ़ाया।

16वें साल में उन्हें एक विचित्र अनुभव हुआ था। उस दिन वे 1902 ई. में सुबह सूर्य भगवान को टकटक देखती बैठ गई थीं। तभी अनजाने उनके मुंह से कविता का एक वाक्य फूट पड़ा था-"सरस्वती पारेएन्नेनु–सरस्वती, मेरी रक्षा करो।" यह उनके गीत की आरंभिक पंक्तियां थीं। इसके बाद वे लगातार लिखती रहीं।

17.6.4 तिरुमलाम्बा : रचना ससार

इसके बाद उन्होंने "भक्ति गीतावली" की रचना की। फिर "सावित्री चरित्र मतु यक्षगान, जानकी कल्याण" नामक नाटक, 1910 तक सुशीला, नभा, विरागिणी, विघल्लता, समखी विजय, अजामिलोपाख्यान आदि ग्रंथों की रचना हुई। विवाह गीत रचे। वैचारिक लेखन किया।

17.6.5 साहित्य का संक्षिप्त मूल्यांकन

इसके बाद उन्होंने "भक्ति गीतावली" की रचना की। फिर बीसवीं सदी के आरंभकाल की इस लेखिका में यद्यपि क्रांतिकारी विचारों के दर्शन नहीं होते, तब उनका स्त्री शिक्षा पर जोर देना, उनके उपन्यास "मातृ नंदिनी" में दहेज प्रथा की आलोचना उनकी विचारवादिता के संकेत स्वरूप हैं। उस उपन्यास का एक पात्र नागेशराव जो यह कहते हैं, वरतिक्रय नामक यह सांक्रामिक रोग जब तक पूरी तरह नाश न हो जाए, मैं और अपने मित्र परिवार के लोग अपनी बेटियों को व्यर्थ ही खाटिक लोगों का ग्रास बनने नहीं देंगे। फिर नंदिनी कहती हैं, "मूर्खतावश जो लोग देना चाहते हैं, वह मिटें, जो अपने लिए जीवन नहीं बना पाते, दूसरों के पैसों के आगे हाथ फैलाकर जीना चाहने वाले कायरों को तो हम अपनी बेटियां नहीं देंगे।"

तिरूमालाम्बा के इस उपन्यास के पात्र नंदिनी और स्वर्णा के विवाह के समय वर-वधू देश सेवा की प्रतिज्ञा करते हैं। "नंदिनी का विवाह: देश सेवा की दीक्षा" कहा गया है।

आगे बढ़कर वह यह भी कहती हैं—देशमाता के सभी हितों की कारणदायी महिलाओं को अब हम हीन भावना से देखते हैं। उनके परमोद्देश्य को पहचाने बिना, विकल्पार्थ से उनकी अवहेलना कर उनकी उपेक्षा कर उनके साथ कठोर व्यवहार कर रहे हैं। उनके सेवाकार्य के प्रति सहानुभूति न दिखाकर, उनके आगे कड़े कानून रखकर, कई तरह से उनका मन दुखाकर उन्हें विद्या सिखाने, शास्त्र आदि सिखाने के संबंध में भी उनकी सहज कुशलता (बुद्धिशक्ति) का नाश ही कर रहे हैं। .... इससे भी ज्यादा और क्या दुर्गुण चाहिए।

नवजागरण संबंधी यह महिला जागृति भी बीसवीं शती के आरम्भकाल के लिए मामूली-उपलब्धि नहीं है।

बोध प्रश्न

6) कोष्ठक में दिए गए शब्दों से उपयुक्त शब्द चुनकर वाक्य पूरा करें।

(अ) सामाजिक पिछड़ेपन से मुक्ति, वेश्यावृत्ति के उच्चाटन के प्रयत्न आदि ..... की धारा की पहचान है। ( )

(आ) "सती हितैषिणी" और "सन्मान ग्रंथमाला" दोनों ..... थीं। ( )

(इ) ..... और ..... तिरुमलाम्बा से संपादित पत्रिकाएं थीं।

(ई) तिरुमलाम्बा के ..... उपन्यास में वर-वधू देश सेवा की प्रतिज्ञा करते हैं।

17.7 वाचन : तिरुमले राजम्मा "भारती"

जय भारत भुविगे मातेगे जय पावन मूर्तिगे
सन्मंगलवागल सतताम्।।
देव धर्मवितार गो विप्र हित विचार
पावन महिला कृतिगे।।
भाव वैभवद सृष्टि भाव ज्ञान सत्यशोध
जीवित सुखदायकिगे।।
दीना भय दानककृतिय ध्यान हृदय गान निधिय
आनंद पयोदधिगे।।
साधुगुणद सनातनद देवधर्म युगदज्ञान
साधना विद्या धरिगे।।

राम राज्य वैभवद भीमार्जुन पराक्रमद
धीमतिगे क्षमा सतिगे।।
सौमित्रि परशुराम भीष्मादि जितेन्द्रियर
निर्मल तेजोनिधिगे।।
ईशनोलवनोंदिद तेरदासगसाद प्रेमसेवे
आशिसे विश्वम्भरिगे।।

यह भारत माता के लिए समर्पित एक राष्ट्रगीत था जिसका हिन्दी अनुवाद कुछ इस प्रकार होगा।

राग कल्याणी भावार्थ:

जय भारत भूमि की, जय हो पावन मूर्ति की
सतत सन्मंगल हो।।
देव धर्मावतार गोविप्र हित विचार
पावन महिमा कृति की।।
भाव वैभव सृष्टि लावण्य का सत्यशोध
जीवन की सुखदायिका की।।
दीना भय दान कृति का ध्यान हृदय गान निधि की
आनन्द पयोधरी की।।
साधु गुण की सनातन के वेद धर्म युग का ज्ञान
साधन विधाधरीकी।।
राम राज्य वैभव के भीमार्जुन पराक्रम की
धीमति की क्षमा सती की।।
सौमित्रि परशुराम भीष्मादि जितेंद्रियों की
निर्मल तेजो निधि की।।
ईश्वर का प्रेम पाकर खुले आकाश की प्रेम सेवा
चाहने वाली विश्वम्भरी की।।

—"भारती"

"भारती" के उपनाम से लिखने वाली तिरुमले राजम्मा का यह एक राष्ट्रभक्ति गीत है। गांधी जी से निकट सम्पर्क रखकर, उनसे प्रभावित होकर, देश के लिए अपने व्यक्तित्व को उन्होंने समर्पित किया था।

17.7.1 रचनाएं

भारती का साहित्य मात्रा में उतना अधिक न होकर भी राष्ट्र भक्ति एवं नवजागरण की दृष्टि से वे महत्वपूर्ण हैं।

"राष्ट्रभक्ति" उनके राष्ट्रीय गीतों के दो संकलन हैं। "भारती" के शब्दों में, "राष्ट्रीयता आंदोलन के आरंभकाल से मैंने राष्ट्र गीतों की रचना की है। पुस्तककार में प्रकाशित नहीं किया। (बाद में प्रकाशित हुए हैं) पहले इस राजनीतिक डर से कि गाने से जेल जाना पड़ेगा, कोई भी इसे गाने को तैयार नहीं होता था। पत्रिकाओं ने भी प्रकाशित नहीं किया।"

इस तरह उन गीतों में भारती के हृदय में, "स्वतंत्रता पूर्व उस भारत की कल्पना है, उन दिनों देशव्यापी राष्ट्रीयता आंदोलन की चिंता है। .... पग-पग पर मुक्ति की चाह रखकर, प्रकाश की प्रतीक्षा में लगे भारतवासी हैं। बातू से चलाये "नमक बनाओ आंदोलन के समय उन्हीं की वाणी को लेकर "वीर वाणी" की रचना हुई है। "भारत छोड़ो" आंदोलन पर रची रचना "अपूर्व संधि" है। स्वतंत्रता के अरुणोदय से पूर्व गाढ़े अंधकार को देखकर, सब पुत्र जेल गए हैं, शहर जंगल बना है। इस जंगल में किसे ढूंढकर आई हो माता" कहकर भारत माता को सांत्वना देती है।

"तपस्विनी" भारती का एक काव्य रूपक है। कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ने कविकुल से उपेक्षित नारियों पर काव्य रचने का आदेश कवियों को दिया था। उसी का परिणाम था कि बंगाल में मैकेल मधुसूदन दत्त ने "मेघनाद वध" की रचना कर, हिन्दी में मैथिलीशरण गुप्त जी ने "साकेत" काव्य की रचना कर पति से दूर तड़पने वाली उर्मिला को काव्य का विषय बनाया था। भारती के "तपस्विनी" की नायिका भी उर्मिला ही है। लक्ष्मण जब वन गये तो उर्मिला ने तपस्या शुरू की। लक्ष्मण के लिए वन ही अयोध्या बना तो उर्मिला के लिए

अयोध्या ही वन बना। जब लक्ष्मण लौटकर आए, उससे मिलने गए तभी उसे अपने अस्तित्व का ज्ञान हुआ।

17.7.2 भाषा शैली

"तपस्विनी" नए छंद में रचा एक गीत नाटक है। उर्मिला अपनी तपस्या में कहती है, "मेरे प्रिय बंधु आओ न। सुंदरता की मूर्ति। नटखट बालक अभी तक नहीं आया।" कहकर उर्मिला के विश्व प्रेम का दर्शन कराती है। प्रवाहमही, आकर्षक, सुंदर शैली है।

17.7.3 अन्य रचनाएँ

भारती जी ने तीन गीत नाटकों की रचना की है जो क्रम से "तपस्विनी", "महासती", और "वात्स्य तरंग लीला" हैं। व्यक्ति चित्रों में "आर्य कैलासम्" पर लिखा है। बापू जी पर तथा साहित्यिक समीक्षाओं की रचना की है। कई अप्रकाशित रचनाएं भी हैं।

बोध प्रश्न

7) कोष्ठक में दिए शब्दों में से उपयुक्त शब्द चुनकर वाक्य पूरा करें।

अ) वीरवाणी की रचना ..... ने की है।
(तिरुमलाम्बा/तिरुमले राजम्मा)

आ) तपस्विनी ..... पर लिखा गया है।
(भारत छोड़ो/उर्मिला)

इ) तपस्विनी ..... छंद में लिखा गया है।
(नए/पुराने)

ई) भारती ने ..... तीन गीत नाटक रचे हैं।
(महासती, वात्सलय तरंगलीला, तपस्विनी, राष्ट्रभक्ति गीत)

8) कविता को पढ़कर दो वाक्यों में उसका सारांश लिखिए।

.....

.....

17.8 कुछ प्रमुख लेखिकाएं

17.8.1 कलयाणम्मा

1891-99 के मध्य कभी जन्मी कलयाणम्मा की देन भी राष्ट्रीय नवजागरण के लिए महत्वपूर्ण है। इस शती की एक प्रमुख लेखिका होने के साथ-साथ "बाल साहित्य" के लिए "मक्कल कूट" की स्थापना और "सरस्वती" पत्रिका के संचालन से महिला जगत को प्रेरणा देने वाली एक श्रेष्ठ महिला थीं। स्त्री जागृति संबंधी उनके विचारों को उन्हीं के शब्दों में देखा जा सकता है–धन, सरस्वती (विद्या), सत्य, संतान, सदनुग्रह, उत्त स्थान (ओहदो), सत्कार्य आदि सदगुणों से पूर्ण महिलाओं की संख्या में जितनी वृद्धि होगी, देश की अभिवृद्धि भी होगी। इस संकल्पना को पूर्ण होने में महिलाओं के विषयाभ्युदय को प्रकट करने वाली, महिलाओं से ही संचालित देशभाषा की पत्रिकाओं का अधिक संख्या में प्रकाशित होना जरूरी है।

कलयाणम्मा ने करीब 40 वर्षों तक उपरोक्त पत्रिका चलाई थी। साहित्य की हर विधा में रचनाएं रचीं।

शामला देवी बेलगांवकर

उत्तर कर्नाटक की पहली लेखिका शामला देवी की देन भारतीय नवजागरण की दृष्टि से महत्वपूर्ण मानी जा सकती है। 1910-11 में धारवाड़ में जन्मी शामला ने अपने परिवार की वेश्यावृत्ति का त्यागकर "जय कर्नाटक" पत्रिका के संपादक रामचंद राव से विवाह किया था। संख्या की दृष्टि से कम होते हुए भी महिला जागृति के भिन्न दृष्टिकोण के कारण वे महत्व की लेखिका बनती हैं। शामला देवी ने अन्य लेखिकाओं की तरह विधवा समस्या को हाथ में नहीं लिया। उनकी कहानियों में पति से परित्यक्त होकर, शील भंग का शिकार बनकर भी पुनर्विवाह करने वाली महिला का उल्लेख आता है। "कंतिय देशांतर" "तायि माताई (माता-महामाता)" "वसंत रायन मदुबे" इस तथ्य के उदाहरण स्वरूप हैं।

"कमल कत्तरि", "ताइ माताइ", "स्नेह दर्शन" जैसी कहानियों में वैश्या जीवन से छुटकारा पाने के लिए लड़ती हुई महिलाओं का चित्रण है। "नीलेय मैसार", "दोड्डम्म नोडिद वर", "सवतियरू" "मूरु नरा अरवन्तैड्" में महिलाओं को अपना जीवन चुनने में बाधा बनी चर्चाओं का उल्लेख है। "दहेज प्रथा", "बेमेल विवाह", आदि समस्याओं की चर्चा यहां पर दिखाई देती है। उनकी कहानियों के संकलन दो हैं–"हू बिसिलु" और "होम्बिसिलु" उनके शीर्षक हैं। "महिलाएं और ग्राम उद्योग", "ग्रामोद्धार कार्य में महिलाओं का पात्र" "भारत में महिला आंदोलन" आदि अन्य कई लेख भी प्राप्त होते हैं। दमे के कारण 1943 में उनकी मृत्यु हो गई।

बोध प्रश्न

9) कोष्ठक में दिए गए शब्दों से उचित शब्द चुनकर वाक्य पूरा कीजिए।

(अ) कल्याणम्मा ने ..... पत्रिका 40 वर्षों तक चलाई थी।
(सरस्वती/कर्नाटक नदिणी)

(आ) शामला देवी की कहानियां ..... में संग्रहीत हैं।
(हू बिसिलु, होम्बिसिलु, मक्कल कूट)

अभ्यास

1) निम्नलिखित प्रश्नों के संक्षिप्त उत्तर लिखिए: (तीन वाक्यों में)

अ) राष्ट्रीयता आंदोलन के समय प्रकाशित गद्य की प्रमुख धाराएं पहचानिए।

.....

.....

.....

आ) सिद्धवन हल्ली कृष्ण शर्मा की राष्ट्रीयता आंदोलन के लिए क्या देन थी?

.....

.....

.....

2) "भारती" के साहित्य की क्या विशेषता थी?

.....

.....

.....

3) शामला देवी बेलगांवकर के साहित्य की विशेषता क्या है?

.....

.....

.....

17.9 सारांश

- भारतीय राष्ट्रीय राजनीति में गांधी जी के आगमन से परिवर्तन आया था। राष्ट्रीय आंदोलन का विस्तार करने के लिए उन्होंने ग्रामीण जनता को भी साथ मिला लिया था। उनकी आत्मकथा तथा अन्य विचारों का देश के कई भागों में प्रभाव पड़ा। कर्नाटक में भी यह प्रभाव पड़ा। कन्नड़ भाषा के साहित्य में आत्मकथाओं के अनुवाद एवं विचारों का प्रभाव स्पष्ट रूप से पड़ा। आप बता सकते हैं कि गांधी के विचारों ने कन्नड़ साहित्य को किस प्रकार प्रभावित किया।
- सामाजिक आंदोलनों ने भी लेखकों को प्रभावित किया। देश के अन्य भागों में आ रहे सामाजिक बदलाव की लहर कन्नड़ क्षेत्र में भी पहुंची। आप स्पष्ट कर सकते हैं कि किस प्रकार उस समय के लेखकों ने सामाजिक उत्थान में सहयोग किया।
- गांधी एवं राजा राममोहन राय अपने-अपने क्षेत्रों में चेतना फैला रहे थे। सामाजिक एवं राजनीतिक आंदोलनों ने तत्कालीन युवकों को अपनी ओर आकर्षित किया। आप

बता सकते हैं कि उस समय की युवा पीढ़ी ने किस प्रकार राष्ट्र के नव निर्माण में योगदान दिया।

- नवजागरण की लहर ने समाज के सभी वर्गों को प्रभावित किया। महिलाएं जो समाज का आधा हिस्सा हैं, उनमें भी जागृति आई। तत्कालीन महिला लेखिकाओं ने भी अपनी रचनाओं द्वारा राष्ट्रीय एवं सामाजिक आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आप कन्नड़ साहित्य में महिला लेखकों के महत्वपूर्ण योगदान का आकलन कर सकते हैं।

17.10 शब्दावली

विपुल	:	अधिक
दु:स्थिति	:	खराब स्थिति
नुस्खा	:	उपाय
सहभागी	:	साथ में भाग लेने वाले
सन	:	जूट
निर्मूलन	:	समाप्त करने के
ग्रास	:	भोजन
सत्य	:	सत्य की खोज
सदनुग्रह	:	अच्छा आग्रह
परित्यक्त	:	छोड़ा हुआ

17.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

र श्री मुगलि, अनुवाद सिद्ध गोपाल, कन्नड़ साहित्य का इतिहास, साहित्य अकादमी, नयी दिल्ली। गौरी शंकर पंडया, भारतीय भाषाओं के साहित्य का रूपदर्शन, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, कृष्णानगर, दिल्ली।

17.12 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) आ
2) अ
3) धारवाड़ के समाज पुस्तकालय से एक आने की पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं। बालचंद घाणेकर इनके लेखक थे। "गांधी डुच्चु", "नाने होलेय", "रैतर भाग्योदय" इन पुस्तकों के शीर्षक थे। इन पुस्तकों के लेखक को सरकार ने जेल भेज दिया था।
4) अ) पूर्ण स्वदेशी
   आ) डी. वी. गुण्डप्पा
   इ) कपड़ा उद्योग
   ई) नव चैतन्य।
5) "कर्नाटक बलिदान" गुरुनाथ जोशी जी ने लिखा था। उसमें लेखक लिखते हैं कि दु:ख और अवसाद के कारण देश कायर नहीं बना है। वह यह बताते हैं कि ब्रिटेन ने हमारा किस प्रकार शोषण किया है। और राष्ट्रीय कांग्रेस के उदय का उल्लेख भी उसमें मिलता है।
6) अ) नवजागरण
   आ) प्रकाशन संस्थाएं
   इ) "कर्नाटक नंदिनी" और "सन्मार्ग दर्शी"
   ई) मातृनंदिनी
7) अ) तिरुमले राजम्मा
   आ) उर्मिला
   इ) नए
   ई) तपस्विनी, महासती,,वात्सलय तरंग लीला

8) यह राष्ट्र भक्ति गीत है। भारत माता पर रचा गया यह गाना है।

9) अ) सरस्वती
आ) हू बिसिलु, होम्बिसिल

अभ्यास

1) अ) राष्ट्रीयता आंदोलन के समय गांधी जी के साहित्य का अनुवाद हुआ। राष्ट्रीयता की भावना के प्रचार के लिए "एक आने में पुस्तकें रची गईं। और अंग्रेज द्वारा शोषित भारत की स्थिति पर ग्रंथ रचे गये।

आ) सिद्धवनहल्ली कृष्ण शर्मा ने सरल सुंदर शैली में गांधी साहित्य का कन्नड़ में अनुवाद किया। "निर्भाग्य बीरेगौडा" के नाम से पुस्तक रचकर ग्राम जीवन की पुनःस्थिति पर प्रकाश डाला।

2) "भारती" ने राष्ट्रभक्ति गीत रचे थे। वे गाने योग्य थे। "तपस्विनी" गीत नाटक में उन्होंने उर्मिला के तपस्विनी स्वरूप का वर्णन किया है।

3) शामला देवी ने महिलाओं की भिन्न समस्या उठाई। वेश्या जीवन से पार होने के लिए छटपटाती महिला का स्वरूप उसमें था। अपने जीवन को स्वयं न चुन सकने की विवशता में तड़पती महिलाओं की स्थिति का चित्रण उसमें था।

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

DCEHI-103

आधुनिक भारतीय साहित्य
नवजागरण और
राष्ट्रीय आंदोलन

खण्ड

5

पश्चिमांचलीय साहित्य

इकाई- 18

मराठी साहित्य - I 405

इकाई- 19

मराठी साहित्य - II 421

इकाई- 20

गुजराती साहित्य - I 443

इकाई- 21

गुजराती साहित्य - II 459

पाठ्यक्रम विशेषज्ञ समिति

प्रो. चन्द्रकांत बादिवडेकर
हिंदी विभाग
मुंबई विश्वविद्यालय

प्रो. बी.एच. राजूरकर
मराठवाड़ा विश्वविद्यालय
औरंगाबाद

प्रो. मलिक मुहम्मद
हिन्दी विभाग
कालीकट विश्वविद्यालय
कालीकट, केरल

प्रो. भीमसैन निर्मल
उस्मानिया विश्वविद्यालय
हैदराबाद

प्रो. रमेशकुंतल मेघ
हिंदी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय
लखनऊ

प्रो. इन्द्रनाथ चौधुरी
सचिव, साहित्य अकादमी
नयी दिल्ली

प्रो. अंबाशंकर नागर
गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद

प्रो. जी.पी. देशपांडे
सेन्टर फॉर ईस्ट एशियन स्टडीज
स्कूल ऑफ इन्टरनेशनल स्टडीज
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली

संकाय सदस्य
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
प्रो. वी.रा. जगन्नाथन
डॉ. शत्रुघ्न कुमार
वरिष्ठ अध्यापक (हिन्दी)
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली-68

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

पाठ लेखक
श्रीमती विमल खांडेकर (इकाई सं. 18, 19)
व्याख्याता, हिन्दी विभाग
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मैदान गढ़ी
नयी दिल्ली-68

डॉ. वर्षादास
नेशनल बुक ट्रस्ट
ए-5, ग्रीन पार्क
नयी दिल्ली (इकाई सं. 20, 21)

पाठ्यक्रम संयोजक एवं संपादक
डॉ. शत्रुघ्न कुमार
वरिष्ठ अध्यापक
हिंदी विभाग
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

खंड संयोजक
डॉ. शत्रुघ्न कुमार
वरिष्ठ अध्यापक

संकाय सदस्य
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
डॉ. जवरीमल पारख
रीडर, हिंदी

डॉ. रीतारानी पालीवाल
रीडर, हिंदी

डॉ. सत्यकाम
अध्यापक, हिंदी

श्रीमती स्मिता चतुर्वेदी
अध्यापिका, हिंदी

सामग्री निर्माण

श्री बालकृष्ण सेल्वराज
कुलसचिव
मुद्रण एवं प्रकाशन प्रभाग
इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

मई, 1995

© इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 1995

ISBN-81-7263-768-3

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

खंड 5 का परिचय

स्नातक उपाधि कार्यक्रम के अन्तर्गत आप हिंदी के पांचवें ऐच्छिक पाठ्यक्रम का अध्ययन कर रहे हैं। यह पाठ्यक्रम "आधुनिक भारतीय साहित्य" पर आधारित है। पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य है आपको नवजागरण और राष्ट्रीय आन्दोलन से संबंधित साहित्य का परिचय कराना। इस पाठ्यक्रम में हमने प्रमुख भारतीय भाषाओं के साहित्य की विशेषताओं को विश्लेषित करने का प्रयत्न किया है। इस पांचवें खंड से पूर्व चौथे खंड में आपने दक्षिण भारत के दो महत्वपूर्ण भाषाओं तेलुगु तथा कन्नड भाषाओं के विकास को भी समझा है। उस खंड की चारों इकाइयों के अध्ययन से आपको यह जानकारी मिली होगी कि किन-किन परिस्थितियों में रचनाकारों ने अपनी रचनाएं की। साथ ही साहित्य के माध्यम से लेखकों ने सामाजिक सुधार तथा राष्ट्रीय आन्दोलन को गति प्रदान की।

पाँचवा खंड पश्चिमांचलीय साहित्य से संबंधित है। इस खंड में पश्चिम भारत के दो महत्वपूर्ण भाषाओं मराठी तथा गुजराती के साहित्य को शामिल किया गया है। चार इकाइयों में विभक्त इस खंड का विवरण इस प्रकार है :

इकाई 18 : मराठी साहित्य-I

इकाई 19 : मराठी साहित्य-II

इकाई 20 : गुजराती साहित्य-I

इकाई 21 : गुजराती साहित्य-II

अठारहवीं इकाई मराठी साहित्य से संबंधित है। इस इकाई में मुख्य रूप से उन बिन्दुओं पर विचार किया गया है जिनके आधार पर असमानता पर आधारित भारतीय समाज पर कठोर प्रहार किया गया। महात्मा फुले तथा भीमराव अम्बेडकर के कार्यों का विश्लेषण भी किया गया है। इकाई में इस बात को स्पष्ट करने की कोशिश की गई है कि हिंदु धर्म व्यवस्था पर आधारित भारतीय समाज कभी भी एक शक्तिशाली राष्ट्रीय समाज नहीं बन सकता। इसके लिए जरूरी है इस अमानुषिक व्यवस्था का समूल नाश किया जाए जिससे एक मजबूत और राष्ट्रीय समाज का निर्माण हो पाए।

उन्नीसवीं इकाई भी मराठी साहित्य से संबंधित है। इस इकाई में मुख्य रूप से मराठी साहित्य के उदय एवं विकास को दर्शाते हुए विविध गद्य विधाओं में व्यक्त राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना का विश्लेषण किया गया है। जिस वैचारिक पृष्ठभूमि को महात्मा फुले तथा अम्बेडकर तैयार कर चुके थे उसी के आधार पर रचे गए राष्ट्रीय विचारधारा से युक्त साहित्य के महत्व को इस इकाई में बताया गया गया है।

बीसवीं इकाई गुजराती साहित्य से संबंधित है। इस इकाई में सर्वप्रथम गुजराती भाषा साहित्य के उदय एवं विकास की चर्चा की गई है। विभिन्न समय में किन-किन परिस्थितियों ने इस भाषा के साहित्य को प्रभावित किया उसका विवरण दिया गया है। इसके बाद विभिन्न गद्य एवं पद्य में व्यक्त सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना को दर्शाया गया है। इकाई में नर्मद तथा बलवंतराय क. ठाकोर जैसे महत्वपूर्ण रचनाकारों का अध्ययन भी कराया गया है।

इक्कीसवीं इकाई भी गुजराती साहित्य से संबंधित है। गाँधीजी का गुजराती साहित्य पर काफी प्रभाव हुआ। उनके कार्यों से लेखकों ने अछूते विषयों पर लेखन कर समाज में समानता फैलाने का प्रयास किया। बाद में रामनारायण वि. पाठक तथा झवेरचंद मेघाणी के साहित्य का अध्ययन कराया गया। इन रचनाकारों के अध्ययन से हम देखेंगे कि साहित्यकारों ने किस प्रकार लोगों में राष्ट्रीय चेतना जगाई।

प्रत्येक इकाइयों के साथ बोध प्रश्न तथा अभ्यास भी दिए गए हैं इनसे आप स्वयं जाँच सकेंगे कि आपने अध्ययन से कितना सीखा।

इकाई 18 मराठी साहित्य-I

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 पृष्ठभूमि

- 18.2.1 मध्ययुगीनता की समाप्ति
- 18.2.2 ब्रिटिश शासन और अंग्रेजी शिक्षा

18.3 धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलन की भूमिका

18.4 प्रमुख सुधारक और उनका योगदान

- 18.4.1 लोकहितवादी (गोपालहरि देशमुख)
- 18.4.2 महात्मा ज्योतिबा फुले
- 18.4.3 महादेव गोविन्द रानडे
- 18.4.4 डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर

18.5 नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का अंतःसंबंध

18.6 सारांश

18.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

18.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

18.0 उद्देश्य

यह ऐच्छिक पाठ्यक्रम-5 के पांचवें खंड की पहली इकाई है। इसमें आप महाराष्ट्र में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के विकास से संबंधित जानकारी प्राप्त करेंगे। इस इकाई में हम नवजागरण के स्वरूप, समाज सुधार आंदोलनों की भूमिका और समाज सुधारकों द्वारा किए गए प्रयासों से आपको परिचित करवाएंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- महाराष्ट्र में नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन की पृष्ठभूमि को स्पष्ट कर सकेंगे,
- मध्ययुगीनता की परंपरागत सोच और अंग्रेजी शिक्षा से प्राप्त नए दृष्टिकोण के अंतर को बता सकेंगे,
- धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलन की भूमिका को स्पष्ट कर सकेंगे,
- महाराष्ट्र के प्रमुख समाज सुधारकों के कार्य और उनके योगदान के बारे में बता सकेंगे,
- नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के अंतःसंबंध को स्पष्ट कर सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

ऐच्छिक पाठ्यक्रम-5 का यह पांचवां खंड है। इस खंड की इस पहली इकाई में आप महाराष्ट्र में नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन के विकास का परिचय प्राप्त करेंगे। सामाजिक और राजनीतिक चेतना के क्षेत्र में महाराष्ट्र अग्रगण्य रहा है। महाराष्ट्र के सुधार आंदोलनों के प्रणेता महात्मा फुले, डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर, रानडे, गोखले, लोकहितवादी जैसे महामान्य रहे हैं। सुधार आंदोलनों के अंतर्गत महात्मा फुले ने बाल विवाह प्रथा का विरोध, विधवा विवाह का समर्थन, स्त्री-शूद्रों के लिए शिक्षा की अनिवार्यता, ब्राह्मणवाद, जातिवाद, धार्मिक रूढ़िबद्धता और धार्मिक कट्टरता का विरोध किया। सामाजिक परिवर्तन के इस महान कार्य में रानडे, गोखले, लोकहितवादी, बाबासाहेब अम्बेडकर ने अपने वैचारिक और सक्रिय आंदोलन द्वारा पूरा योगदान दिया। स्वतंत्रता, समानता, भाईचारे के मूल्यों को भारतीय समाज ने जीवन मूल्य के रूप में अपनाए इसलिए अथक प्रयास किए। इस सामाजिक और वैचारिक परिवर्तन की परिणती

राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की चेतना को विकसित करने में हुई महाराष्ट्र के अग्रगण्य साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के द्वारा इस आंदोलन को आगे बढ़ाने में योगदान दिया। इस इकाई को पढ़ते हुए आप देख सकेंगे कि महाराष्ट्र के समाज सुधारकों, विचारकों और साहित्यकारों ने केवल महाराष्ट्र में ही नहीं, बल्कि भारतीय राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के विकास में भी अपना योगदान दिया है। अम्बेडकर, तिलक, गोखले, रानडे राष्ट्रीय स्तर के विचारक और नेता के रूप में सर्वविदित हैं। इन राष्ट्रीय स्तर के नेताओं ने न केवल स्वाधीनता आंदोलन में ही अपना योगदान दिया बल्कि साहित्य के क्षेत्र में भी अपनी विशिष्टता के लिए ये प्रसिद्ध हुए। समाचार पत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना और समाजिक परिवर्तन की आवश्यकता को बताते हुए ये नए समाज की स्थापना के लिए अपने-अपने स्तर पर कार्यरत रहे।

18.2 पृष्ठभूमि

अंग्रेजों के आगमन से पूर्व सामाजिक स्थिति : मराठी भाषा साहित्य में नवजागरण और राष्ट्रीय आंदोलन के उद्‌भव और विकास की पृष्ठभूमि को जानने के लिए महाराष्ट्र की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्थिति का अवलोकन करना आवश्यक है। अंग्रेजों के आगमन के समय भारतीय समाज अनेक प्रकार की कुरीतियों, रूढ़ियों, अंधविश्वासों से घिरा हुआ था। चेतनाहीन, संकीर्ण परंपराओं में लिपटा हुआ था। धर्म के क्षेत्र में ब्राह्मणवादी विचारधारा का वर्चस्व था। धार्मिक कट्टरता, जाति-व्यवस्था और जमींदारी प्रथा के कारण समाज-व्यवस्था अपरिवर्तनशील थी।

जातियों के विभाजन के कारण समाज अनेक समूहों में बंटा हुआ था। कर्म सिद्धान्त और पुनर्जन्म के सिद्धांतों के कारण समाज में घोर निराशा छाई हुई थी। सांस्कृतिक साधनों पर मुट्ठीभर लोगों का अधिकार था और सामान्य जनता अज्ञान के अंधेरे में भटक रही थी। उत्पादन और यातायात के साधनों की कमी थी। अर्थार्जन के लिए कृषि, सेना की नौकरी, मामूली दर्जे की हस्तकलाएं और वैद्यकीय व्यवसायों के अलावा कोई व्यवसाय उपलब्ध नहीं थे। मराठा और बाद में आए पेशवाओं की आर्थिक नीति अत्यंत कमजोर थी। चौथाई, जमींदारी, लगान, छोटे सरदारों से रकम वसूल करना और उत्तर भारत की धन संपदा को दक्षिण में लाना ये पेशवाओं की महत्वाकांक्षा थी। अपनी शान-शौकत बनाए रखने के लिए पेशवा हमेशा कर्ज में डूबे रहे। आर्थिक सुधार यहाँ नामुमकीन था। महाराष्ट्र मूलतः पथरीला प्रदेश है। बंगाल जैसी उपजाऊ जमीन यहां नहीं और गुजरात जैसी व्यापारी प्रवृत्ति यहां नहीं थी। महाराष्ट्रियों की कभी भी व्यापार में दिलचस्पी नहीं रही। इसके परिणामस्वरूप महाराष्ट्र में विदेशी व्यापारियों की भरमार थी। पेशवाओं की उत्तर काल में सारे बाजार विदेशी माल से लदे रहते थे। देश रक्षा की जिम्मेदारी भी पेशवाओं ने अंग्रेजों को सौंप दी थी। यहाँ तक कि युद्ध के लिए आवश्यक यंत्र सामग्री और हथियार भी विदेशियों से खरीदे जाते थे। पेशवा ने अपना तोपखाना जरूर बनवा लिया था। नये प्रकार के यंत्र बनाने में मराठों को कोई दिलचस्पी नहीं थी। इसी समय जबकि, कलकत्ता, गोवा और पांडिचेरी में छापेखाने खुल गए थे, मराठी राज्य में छापाखाना नहीं खुला था। आधुनिक यंत्रविद्या सीखने से सभी डरते थे, यह भी धर्म का ही प्रभाव था। अश्वमेघ यज्ञ के मंत्र और मंत्र को कंठस्थ करने के लिए वैदिकों की कमी नहीं थी लेकिन यूरोपीयन डॉक्टरों से वैद्यकशास्त्र के ज्ञान प्राप्ति में ब्राह्मणों की रुची नहीं थी। आधुनिक विज्ञान के प्रति जनमानस में किसी भी प्रकार का रुझान दिखाई नहीं देता था। पेशवाओं में कवि, पंडित शाहीर बखरकारों को राजाश्रय मिला था लेकिन ललित कलाओं की ओर ध्यान नहीं दिया गया। मराठी भाषा को भी शिवाजी तथा पेशवा काल में महत्व नहीं दिया गया। शिवाजी ने स्वयं कवि भूषण को राजदरबारी कवि के रूप में रखा था और पेशवाओं ने केवल संस्कृत कवियों को आश्रय दिया। साहित्य निर्मिती की दृष्टि से उन्होंने केवल संस्कृत भाषा को ही सम्मान दिया मराठी को नहीं। मध्यकाल में भक्ति आंदोलन के द्वारा संत तुकाराम, संत नामदेव, ज्ञानेश्वर, चोखामेला ने संस्कृति भाषा तथा ब्राह्मणों के वर्चस्व का विरोध करके जनसामान्य की भाषा मराठी में काव्य रचना की थी। जन-जन तक भक्ति काव्य की धारा को पहुंचाया था। साथ ही अध्ययन और अध्यापन के अधिकार को ब्राह्मणों से इतर भी प्रदान किया था। लेकिन पेशवा के समय में इस क्रांतिकारी विचार को पूर्ण रूप से भुला दिया गया और पठन-पाठन का अधिकार जो कि धर्मशास्त्रों के अनुसार केवल ब्राह्मणों का माना जाता है, उन्हें फिर से सौंप दिया गया। इस प्रकार सामान्य जन और उच्चवर्णियों के बीच में अंतर और बढ़ता

गया। वर्ण तथा जाति के बंधन और कसे गए। अछूतों को अत्यंत दयनीय स्थिति तक पहुंचाने का काम भी पेशवा काल में हुआ। पेशवा के एक फर्मान के द्वारा अछूतों को गले में मिट्टी का बर्तन और पीछे झाड़ू बांधने तथा हाथ और गले में काला धागा बांधने का और घुंघरू लगी लाठी लेकर चलने का आदेश लागू किया गया। अछूत की थूक से जमीन अपवित्र न हो और उसके पैरों के निशानों पर ब्राह्मणों के पैर पड़कर वे भ्रष्ट न हो, तथा उन्हें दूर से देखकर पहचाना जा सके, ताकि ब्राह्मणों व सवर्णों पर अछूतों की परछाई न पड़े। इस प्रकार पेशवाई में ब्राह्मणवाद और धर्म की कट्टरता और वर्चस्व बढ़ने के ये परिणाम थे।

18.2.1 मध्ययुगीनता की समाप्ति

मध्ययुगीन भारत में संस्कृति और सभ्यता को संस्कारों से वंचित रखे गये ब्राह्मणेतर समाज को ईश्वर भक्ति की धारा से प्लावित कर समाज को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयत्न साधु-संतों ने किया था। लेकिन ये प्रयत्न समाज में बहुत परिवर्तन न ला सके। शिक्षा और साहित्य लेखन पर चातुर्वर्ण्य समाज-व्यवस्था के कारण केवल ब्राह्मण वर्ग का अधिकार था। जनसामान्य को शिक्षा ग्रहण करने तथा शास्त्रों, वेदों, पुराणों तक को सुनने का अधिकार भी नहीं था। वर्ण और जाति-व्यवस्था के संपूर्ण समाज को पंगु बना दिया था। शिवाजी तथा पेशवा के काल में इस स्थिति में सुधार की कोई संभावना ही नहीं बनी। बल्कि पेशवा जैसे कट्टर ब्राह्मण शासनकर्त्ता ने पर्व परंपराओं को निभाने में और अधिक सहयोग दिया। शिक्षा के अंतर्गत वैदिक, व्यावहारिक और फौजी शिक्षा शामिल थी। शिक्षा प्रणाली संपूर्ण रूप से धर्मग्रंथों पर आधारित थी। यहाँ तक कि बखर लेखक जैसी व्यवहारोपयोगी लेखन कला पर भी इसका प्रभाव था। शिक्षा पूरी तरह से गैर-सरकारी थी और पेशवाओं द्वारा दी जाने वाली गुरु-दक्षिणा तथा सेठ-साहूकारों द्वारा दिए गए अनुदार पर निर्भर थी। ग्रंथ निर्मिती अत्यंत अल्प और कीमती तथा दुर्लभ थी। पुराणिक और हरिदास प्रवचन के माध्यम से रामायण, महाभारत और भागवत की कथाएँ सुनाकर जनता का मनोरंजन करते थे। उच्च विचार और नैतिक वातावरण निर्मिती के लिए संतों की वाणी समूहों के समक्ष सुनायी जाती। दूसरे बाजीराव पेशवा में कुछ परिवर्तन हुआ। शायरी काव्य और उत्तर-हिन्दुस्तानी पद्धति के ख्याल, टप्पा, गजल और कव्वाली की शुरुआत हुई। बाजीराव पेशवा (द्वितीय) इस प्रकार के संगीत और काव्य पसंद करता था। अतः संगीत गायन तथा नृत्य को राजाश्रय मिला। इस समय के प्रसिद्ध शायरों में रामजोशी, प्रभाकर, होनाजी, परशुराम, सगनभाऊ मशहूर थे।

काव्य रचना में संस्कृत का प्रभाव ही अधिक रहा। मराठी भाषा पर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। पद्य रचना की तुलना में गद्य रचना सीमित थी। सभी तरह से चरमराई हुई इस मध्ययुगीन सांस्कृतिक स्थिति में ही ब्रिटिशों के आगमन से ब्रिटिश शासन का प्रारंभ हुआ। ब्रिटिश शासन के दौरान जो अनेक परिवर्तन हुए उनका प्रभाव मराठी साहित्य पर स्पष्ट दिखाई देता है।

18.2.2 ब्रिटिश शासन और अंग्रेजी शिक्षा

बम्बई समुद्र के किनारे स्थित है यह स्थान पहले से व्यापारिक केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध था। अंग्रेजों ने भी अपनी व्यापारिक कोठियाँ यहीं स्थापित की। स्वभावतः यहीं से नवजागरण की शुरुआत हुई। ई. सन् 1818 में पेशवा के शासन का अंत हुआ और पूना शहर अंग्रेजों के कब्जे में आ गया था। अंग्रेजों के आने से पूर्व महाराष्ट्र में ब्राह्मण वर्ग का वर्चस्व था जिससे सामान्य जनता त्रस्त थी। चारों ओर ब्राह्मण वर्ग द्वारा फैलाए गए ढोंग, आडंबर, ऊंच-नीच का भेदभाव, छुआछूत, स्त्रियों तथा दलितों का शोषण तथा चारों ओर अनादर तथा अन्याय का वातावरण फैला था। ऐसे में अंग्रेजी शासन की शुरुआत और उनके द्वारा प्रसारित शिक्षा प्रणाली से मराठी जनसामान्य को इस अन्यायपूर्ण वर्चस्व से मुक्त होने का एक मार्ग प्रशस्त हुआ। शासन की स्थिरता के लिए अंग्रेजों ने कुछ महत्वपूर्ण सुधार किए। उनका मूल उद्देश्य था लाभ कमाना, फिर भी उनके द्वारा बनाई गई नीतियों के कारण जो सुधार और क्रान्तिकारी परिवर्तन भारत में हुए उनको भी भुलाया नहीं जा सकता। महाराष्ट्र में ई. सन् 1818 के पहले से ही सांस्कृतिक आदान-प्रदान का कार्य चल रहा था। 1805 में कैरे ने मराठी भाषा का व्याकरण अंग्रेजी में तैयार किया। एल्फिस्टन ने शिक्षा प्रसार की आवश्यकता को समझा। शिक्षा को उसने सामाजिक कुरीतियों को खत्म करने का एक प्रभावी माध्यम माना था। यहीं यह कहना उचित होगा कि बाद के 75 वर्षों में महाराष्ट्र में जो सामाजिक परिवर्तन का लंबा आंदोलन चला उसकी पूर्व तैयारी एल्फिस्टन के समय में ही हुई। ब्रिटिश सरकार द्वारा चलाई गए शिक्षा नीति को बहुत

सफलता प्राप्त नहीं हो पाई। लेकिन इसाई धर्म प्रचार-प्रसार के लिए आए हुए ईसाई मिशनरियों ने यह कार्य बड़ी सफलतापूर्वक किया। ई. सन् 1813 से ई. सन् 1818 तक बम्बई में मराठी पाठशालाएं खोली गईं। ई. सन् 1824 में लड़कियों के लिए भी स्कूल खोला गया। ईसाई मिशनरियों द्वारा स्थापित पाठशालाओं और छात्रावासों ने निर्माण से अस्पृश्य जातियों के बच्चों को पढ़ने तथा रहने का अवसर मिला। लेकिन हिंदू जाति-व्यवस्था और मानसिकता के कारण ईसाई धर्म प्रचारकों के इस कार्य में बाधाएं भी आती रही।

ब्रिटिश शासक भी राज्य-प्रसार को प्राथमिकता देने के कारण मिशनरियों का विरोध करते रहे। इसी समय बम्बई में एक घटना घटी जिसके कारण हिंदू धर्म की कट्टरता को नकारकर नये विचारों की ओर नये जीवन-मूल्यों की नींव रखी गई। बम्बई में एक और पारसी युवक के ईसाई धर्म स्वीकार करने पर जोरदार आन्दोलन हुआ। मामला कोर्ट तक पहुंचा और कोर्ट द्वारा निर्णय दिया गया कि हिंदू युवक को फिर से उसके पिता के पास लौटा दिया जाए। लेकिन उस युवक को फिर से हिंदू बनाने के लिए कर्मठ ब्राह्मणों ने विरोध किया। लेकिन शास्त्री जांभेकर जैसे सुधारक ब्राह्मणों के नेता ने उस युवक का शुद्धिकरण किया। इस प्रकार आपने देखा कि नये विचार और नई कल्पनाओं का उदय हो रहा था। अब तक अभेद्य मानी जाने वाली जाति व्यवस्था को इस प्रसंग ने जोरदार धक्का दिया।

18.3 धार्मिक, सामाजिक सुधार आंदोलन की भूमिका

आपने देखा कि 18वीं 19वीं सदी में समाज में अनेक प्रकार धार्मिक रूढ़ियों, अंधविश्वास तथा सामाजिक कुरीतियाँ प्रचलित थी। जातिप्रथा, छुआछूत तथा स्त्रियों की दशा अत्यंत दयनीय थी। बहुत छोटी उम्र में लड़कियों का विवाह कर दिया जाता था। स्त्रियों को पति के मरने पर सती प्रथा के नाम पर जिंदा जलने पर मजबूर किया जाता था। स्त्री-शिक्षा का पूर्णतः निषेध था। विधवा स्त्री की स्थिति तो अकल्पनीय रूप से दयनीय थी, उसे सामाजिक और पारिवारिक उत्पीड़न झेलने पड़ते थे। निम्न वर्ग की दशा इससे भी अधिक शोचनीय थी। मानवीय अधिकारों से वे वंचित रखे गए थे, उनकी बस्तियाँ अलग थी। छुआछूत के कारण न तो वे पानी छू सकते थे और ना ही संपत्ति अर्जित कर सकते थे। समाज के सबसे घृणित माने जाने वाले काम उन्हें सौंपे गये थे। काम के चुनाव का उन्हें अधिकार ही नहीं था। पेशवाओं के समय में अस्पृश्यों के साथ जिस प्रकार का अपमानजनक व्यवहार किया गया ऐसा विश्व की किसी भी सभ्यता में नहीं दिखाई देता। धर्म के नाम पर घोर अंधविश्वास और अमानुषिक रीति रिवाज प्रचलित थे।

अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण महाराष्ट्र के युवकों को नई सभ्यता, संस्कृति, विचार और बंधुत्व, समानता, स्वतंत्रता के क्रांतिकारी विचारों से परिचित होने का अवसर प्राप्त हुआ। उस समय की युवा पीढ़ी ने शिक्षा के महत्व को समझा। अंग्रेजी विद्या के सम्पर्क और अंग्रेजी शिक्षा के संस्कारों के फलस्वरूप उन्हें सामाजिक और धार्मिक सुधारों की आवश्यकता महसूस हुई। उन्होंने धर्म के संबंध में वैज्ञानिक और मानवीय दृष्टि अपनाने का प्रयत्न किया।

ईसाई धर्म के प्रचार-प्रसार से कट्टर सनातन तथा सुधारक सभी में ईसाई धर्म के प्रभाव को कम करने के प्रति उत्साह उत्पन्न हुआ। धर्म के अंदरूनी रूप को न बदलते हुए सामाजिक रूढ़ियों को तोड़ने का प्रयत्न किया जाने लगा। अंग्रेजी शिक्षा और अंग्रेजी शासन के कारण जो वैचारिक परिवर्तन हुआ उसका सबसे अधिक प्रभाव सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र पर पड़ा। राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तन के कारण सामान्य जनता जीवन में कुछ परिवर्तन आने की संभावनाओं को देख रही थी। राजनीतिक क्षेत्र में जनतांत्रिक और आर्थिक क्षेत्र में औद्योगिकरण के मूल्य को लोकहितवादी जैसे समाज सुधारक भी मान्यता देने लग गए थे। उन्होंने अपने "शतपत्र" नामक ग्रंथ में ब्रिटिश पार्लमेंट को एक अर्जी भेजकर उन्ही की तरह की पार्लमेंट की मांग की थी।

नोट : नीचे दिये गये प्रश्नों का सही उत्तर दीजिए और अपने उत्तर इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से मिलाइए।

1) महाराष्ट्र में अंग्रेज पूर्व समाज व्यवस्था
   क) अपरिवर्तनशील थी।

ख) ब्राह्मणवाद के वर्चस्व में थी।
ग) समानता पर आधारित थी।
घ) प्रगतिशील था।

2) पेशवाकालीन शाहिर कवियों की तीन विशेषताएं बताइए।

i) .....

ii) .....

iii) .....

3) ब्रिटिश शासन में शिक्षा के क्षेत्र में कौन से महत्वपूर्ण कार्य किए गए। किन्हीं तीन कार्यों को बताइए।

i) .....

ii) .....

iii) .....

अभ्यास

1) धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलन की भूमिका पर पाँच पंक्तियों में अपने विचार स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

18.4 प्रमुख सुधारक और उनका योगदान

महाराष्ट्र में उन्नीसवीं शताब्दी मे अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से शिक्षित युवकों की पीढ़ि में सबसे पहले यहाँ की सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था के खिलाफ आवाज उठाकर उसे परिवर्तित करके नए सामाजिक मूल्यों की स्थापना करने की कोशिश की। अंग्रेजी शिक्षा से प्राप्त नए दृष्टिकोण के कारण इन्हें देश की पराधीनता के कारणों को जानने का अवसर मिला। असमानता, धार्मिक कट्टरता, अंधविश्वास, रूढ़िवादिता, संकीर्णता और भाईचारे की कमी के कारण भारतीय समाज विखंडित हो चुका था। मानवीय मूल्य नष्ट हो चुके थे। धार्मिक वर्चस्व के कारण समाज में ऊँच-नीच के भेदभाव तथा जातिवाद का बोलबाला था। ऐसी स्थिति में देश की स्वाधीनता का स्वप्न देखना भी कठिन था। समाज में जब तक परिवर्तन ना हो और स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे के एक सूत्र में भारतीय समाज बंध नहीं जाता तब तक स्वाधीनता को प्राप्त करना असंभव कार्य था। इस सोच ने महाराष्ट्र के कुछ विचारकों को समाज परिवर्तन के लिए प्रवृत किया जिनमें प्रमुख हैं—लोकहितवादी, महादेव गोविंद रानडे, महात्मा ज्योतिबा फुले, बाबासाहेब अम्बेडकर। आगे महाराष्ट्र के समाज सुधारक और उनके द्वारा चलाए गए सुधार आंदोलनों से आपका परिचय कराएंगे।

18.4.1 लोकहितवादी (गोपालहरि देशमुख)

लोकहितवादी महाराष्ट्र के अग्रगण्य सुधारक हैं। ई. सन् 1892 में इनकी मृत्यु हुई। 1878 तक उन्होंने अनेक सरकारी ओहदों पर काम किया। 1848 से 1850 तक "प्रभाकर" नामक पत्र में छपे लेखों का संकलन "शतपत्रे" नाम से प्रसिद्ध है। इसमें लिखे लेखों के द्वारा पता चलता है

कि उन्होंने महाराष्ट्र की तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक स्थिति का एक सुधारक की पैनी दृष्टि से अवलोकन किया था। देश की निर्धन स्थिति पर लोकहितवादी ममतिक पीड़ा के साथ लिखते थे। उन्होंने ब्राह्मणों को उनकी आलस्य वृत्ति और गरूर के लिए बहुत फटकारा है। लोगों के बीच स्वदेशी वस्तुओं के लिए प्रेम बढ़ाने के लिए उसके महत्व को समझाया है। आध्यात्मिकता के स्थान पर भौतिक दृष्टिको०, को उन्होंने स्वीकार किया है। यन्त्र-विद्या के महत्व को समझने और सीखने की आवश्यकता पर जोर दिया। उन्होंने जाति व्यवस्था का विरोध किया और समानतामूलक समाज-व्यवस्था की आवश्यकता को समझाने का प्रयास किया। धार्मिक आडंबर और पाखंड का विरोध किया। भारतीय शासन व्यवस्था के लिए पार्लियामेंट की माँग की। अमरीका की तरह भारत भी पार्लियामेंट और स्वराज्य का उपयोग करके अन्त में स्वतंत्र होगा। ऐसा लोकहितवादी का मानना था। ब्रिटिशों की आर्थिक नीति के कारण भारतीय जनता का शोषण हो रहा था और देश गरीब होता जा रहा था। इसकी चिंता उनके द्वारा लिखे गए लेखों में मिलती है। लोकहितवादी के संबंध में न.र. फारक ने कहा है "लोकहितवादी की राजनैतिक छलांग में पार्लियामेंट की मांग से लेकर सम्पूर्ण स्वतंत्रता और क्विट इण्डिया की घोषणा तक सब मंजिल आ गयी हैं। गत वर्षों के राजनीतिक जागृति का लैखा जोखा करने पर लोकहितवादी जैसा अन्य दूसरा विचारक दिखाई नहीं देता। 1849 में उनके ये विचार समझने की योग्यता समाज के श्रेष्ठ और समझदार वर्ग में भी नहीं थी।"

आप देखेंगे कि उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में महाराष्ट्र में मध्यमवर्ग में धार्मिक सुधारों के प्रति जागरूकता आ गई थी। परम्पराओं और रूढ़ियों का खुलकर विरोध हो रहा था। दलितों, पिछड़ों और महिलाओं को शिक्षा, संस्कृति और अधिकारों से वंचित रखने वाली धार्मिक विकृतियों को दूर करने का प्रयास होने लगा था। सभी को समानता के एक सूत्र में बांधा जाए इसलिए सामाजिक आंदोलन शुरू किया गया। इसी के साथ राजनीतिक स्वतंत्रता की इच्छा भी जोर पकड़ने लगी थी। अंग्रजों की राजनीतिक और आर्थिक नीति की कटु आलोचना भी होने लगी थी। भारतीय जनता की बढ़ती गरीबी पर चिंता व्यक्त हो रही थी। यह कहा जा सकता है कि बुद्धिवाद, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, भौतिक सुख की आकांक्षा, कठोर आत्मनिरीक्षण, राष्ट्रीयता, जनतंत्रवाद आदि का सूत्रपात उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में ही हुआ। सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक विचार-मंथन के साथ-साथ कुछ संस्थाएं और सभाएं भी स्थापित हुईं। क्योंकि ईसाई मिशनरियों ने सामाजिक-धार्मिक सुधारों के लिए वैचारिक आंदोलन के साथ ही संस्थाएं और सभाएँ स्थापना करना शुरू किया था अंग्रेजी शासनकाल में अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव और पाश्चात्य संस्कृति की जानकारी के कारण यहाँ के शिक्षित विचारों ने अपने सामाजिक और धार्मिक मूल्यों पर पुनर्विचार और पुनःपरिक्षण तुरंत करने की आवश्यकता को जान लिया था। दूसरी तरफ ईसाई मिशनरियों द्वारा शुरू किए गए सामाजिक परिवर्तन आंदोलन के कारण सहायता मिली। सभी के मिले जुले प्रयासों के कारण स्त्री-पुरुष समानता, जातिवाद का विरोध, छुआछूत को नष्ट करना, स्त्री-शिक्षा और आपसी भाईचारे की भावना बढ़ाने हेतु साहित्य निर्भित भी होने लगी थी। अंग्रेजी शासकों और इसाई मिशनरियों द्वारा चलाए गए इस सामाजिक परिवर्तन के अभियान के कारण महाराष्ट्र के सनातनी और सुधारकों को सामाजिक और धार्मिक मूल्यों पर पुनर्विचार करना आवश्यक लगने लगा।

बोध प्रश्न

4) आधुनिक युग से पूर्व महाराष्ट्र में जाति व्यवस्था के कारण अस्पृश्यों के साथ किस प्रकार का व्यवहार किया जाता था?
   क) समानता का
   ख) अस्पृश्यता का कड़ाई से पालन
   ग) घृणात्मक व्यवहार
   घ) खान-पान में बराबरी

5) महाराष्ट्र के समाज सुधारकों ने स्त्री विषयक सुधार के लिए कौन से कदम उठाने जरूरी समझे? किन्हीं तीन के नाम बताइए।

.....

.....

6) लोकहितवादी ने ब्राह्मणों को क्यों फटकारा? (दो पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए)

.....

.....

अभ्यास

2) सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों का विरोध करके समाज सुधारक लोकहितवादी ने किस समाज के निर्माण का स्वप्न देखा था?

.....

.....

.....

.....

.....

18.4.2 महात्मा ज्योतिबा फुले (1827-1890)

महाराष्ट्र के समाज सुधार आंदोलन के नेता के रूप में महात्मा ज्योतिबा फुले का नाम सर्वप्रथम लिया जाना चाहिए। महाराष्ट्र में ब्राह्मणवादी विचारधारा परंपरावादी समाज व्यवस्था और समाज पर धर्म के अत्यधिक प्रभाव का विरोध सबसे पहले महात्मा ज्योतिबा फुले ने ही किया था। ज्योतिबा फुले ने समानता के मूल्यों का समर्थन और जातिभेद, वर्ण भेद का धिक्कार किया था। उन्होंने किसानों-मजदूरों के शासन का भी स्वप्न देखा था और यह स्वप्न तभी साकार हो सकता है जब समानता और स्वतंत्रता के मूलभूत तत्वों को स्वीकार करके नए राष्ट्र का निर्माण हो। महात्मा फुले का यह मानना था कि पूर्व परंपरा के अभिमान तथा जातिगत व्यवस्था का समर्थन करने वाली समाज व्यवस्था को यथास्थिति रखने की भावना पर हिंदी राष्ट्रीय आंदोलन का निर्माण हुआ है। अतः इस आंदोलन के कामयाब होने पर जिस राष्ट्र का निर्माण होगा उसमें बहुजन समाज पूर्ववत् सामाजिक और आर्थिक शोषण को सहते हुए गुलाम ही बना रहेगा। ज्योतिबा मानवीय समानता, भाईचारा और व्यक्ति स्वतंत्रता पर आधारित जनतंत्र चाहते थे। उन्होंने "सार्वजनिक सत्य धर्म पुस्तक" इस ग्रंथ में मानवविषयक संकल्पना का विवेचन किया है।

ज्योतिबा जी ने तत्कालीन विषम सामाजिक स्थितियों, अस्पृश्यों के दुःख दर्द को समझा और उसे दूर करने के लिए प्रयास भी किए। उन्होंने एक ओर लेखन के माध्यम से चातुर्वर्ण संस्था और जातिभेद का विरोध किया तो दूसरी ओर प्रत्यक्ष रूप से दलितों के लिए सर्वप्रथम पाठशालाएं खोली। विद्या के अध्ययन और अध्यापन से दलितों को वंचित रखना ही उनकी दयनीय स्थिति का कारण है ये वे जान चुके थे। अंग्रेजों के शासन काल में सामाजिक स्थिति में समाज सुधारकों के प्रयत्नों से हो रहे परिवर्तन के साथ-साथ दलितों के मन में उन्नति करने की आशा का निर्माण हो रहा था। ज्योतिबा फुले के अनर्थक प्रयत्नों से सन् 1852 में दलितों की प्रथम पाठशाला का प्रारंभ हुआ।

सत्यशोधक समाज की स्थापना

सत्यशोधक महात्मा ज्योतिबा फुले ने सत्यशोधक समाज की स्थापना करके उसके द्वारा सामाजिक आंदोलन को आगे बढ़ाया। उनके आंदोलन का मूलभूत आधार था जनसामान्य के अधिकार को सामाजिक शोषण से मुक्त करना तथा उसके छीन लिए गए अधिकारों को फिर से प्राप्त करना। सत्यशोधक समाज द्वारा चलाए गए आंदोलन के जिन महत्वपूर्ण समस्याओं पर प्रकाश डालकर उनमें सुधार की मांग की वे हैं— स्त्री शिक्षा, बाल हत्या प्रतिबंध, विधवा विवाह, अस्पृश्यों को समानता और शिक्षा का अधिकार, किसानों-मजदूरों के अधिकारों की मांग आदि।

स्त्री शिक्षा की आवश्यकता

महात्मा फुले ने भारतीय स्त्रियों की दयनीय स्थिति के लिए जिम्मेदार परंपराओं, रूढ़ियों और सोच का विरोध करके, स्त्रियों भी समान अधिकारों की अधिकारी है इस बात का जोरदार समर्थन किया। भारतीय परंपरा और धर्म ने स्त्री और शूद्रों को एक ही स्तर पर रखकर दोनों

को शिक्षा से वंचित रखा। धर्म, रूढ़ि-रीतियों में उन्हें जकड़ कर रखा गया था। उनके अस्तित्व को नकारा गया। सबसे पहले स्त्री और शूद्रों के लिए शिक्षा की अनिवार्यता को जानते हुए ज्योतिबा फूले ने उनके लिए पाठशालाएं चलाईं। सन् 1848 में पहली बार लड़कियों के लिए और 1852 में शूद्रों के लिए पाठशालाएं खोली गईं। लड़कियों को पढ़ाने के लिए स्त्री शिक्षिका का होना अनिवार्य था। इसलिए ज्योतिबा ने अपनी पत्नी सवित्रीबाई को घर में ही शिक्षा देकर उन्हें शिक्षिका की परीक्षा देने के लिए प्रोत्साहित किया। सवित्रीबाई फूले ने पहली स्त्री शिक्षिका के रूप से लड़कियों की पाठशाला में पढ़ाया। स्त्री शिक्षा के लिए युग परिवर्तन का कार्य फूले ने किया। इस कार्य की सराहना करते हुए ब्रिटिश सरकार ने उनको 1852 में सत्कार भी दिया। तत्कालीन समय में अस्पृश्यों की स्थिति बड़ी दयनीय थी। अंग्रेज शासन के बावजूद भी भारतीय ब्राह्मण धर्म का सामाजिक व्यवस्था पर पूरी तरह से प्रभाव था। अस्पृश्यों की बस्तियाँ अलग थी। उनसे छूआछूत बरती जाती, इन्हें पानी के लिए घंटों सवर्णों के सामने गिड़गिड़ाना पड़ता था। बुनियादी अधिकारों से वंचित अस्पृश्यों के लिए शिक्षा प्राप्त करना असंभवप्राय था। जयोतिबा फूले ने अंग्रेजी शासन के समक्ष अस्पृश्यों के बच्चों के लिए अलग पाठशालाएँ खोलने का प्रस्ताव रखा। अंग्रेजी सरकार के भरोसे न रहकर उन्होंने अस्पृश्यों के बच्चों के लिए पहली पाठशाला भी शुरू की।

ज्योतिबा फूले ने सामाजिक चेतना जगाने हेतु समय-समय पर वैचारिक लेखन भी किया। परंपरावादी समाज, रूढ़ी-रीतियों पर अंधविश्वासों को पनपने में मदद करने वाले धर्म की उन्होंने अपने "गुलामगिरी" नामक ग्रंथ आलोचना की।

"ब्राहमसांचे कसब" नामक ग्रंथ में ब्राह्मण वर्ग ने अपने स्वार्थ के लिए किस प्रकार वेदों और पुराणों की रचना में स्वयं को ईश्वर के मुख से उत्पन्न बताकर बाकी तीन वर्णों को अपने से तुच्छ बनाकर रखा। मेहनत किए बिना सुख सुविधापूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए नई-नई चालाकियों द्वारा समाज को मूर्ख बनाकर रखा। ब्राह्मणवाद के फैलाव ने संपूर्ण समाज को विषमता, असमानता के चुंगल में फंसाकर रखा। ब्राह्मणों के पुलाव को नकारकर ब्राह्मणेतरों को स्वाभिमान से जीने का संदेश दिया। क्योंकि शासनतंत्र आर्थिक साधन, सामाजिक और धार्मिक सत्ता ब्राह्मण वर्ग के हाथों में थी। ब्राह्मणेतर समाज की स्थिति अति दयनीय थी। इसलिए फुलेजी द्वारा चलाए हुए आंदोलन का स्वरूप ब्राह्मण-ब्राह्मणेतर रहा है। उनका एक और महत्वपूर्ण ग्रंथ है "शेतकन्याचा असूड" (किसान का चाबुक) इस ग्रंथ में उन्होंने किसानों की दुरावस्था का हृदय-विदारक चित्रण किया है। और उनकी अधोगती के कारणों की खोज करके उसके सुधार के लिए उपाय भी बताए हैं। भूमि की काश्तकारी कैसे करनी चाहिए, बांध कैसे और कहाँ बनाए, भूमि की उर्वरता में कैसे सुधार किया जाए, अच्छी नस्ल के पशु कैसे तैयार करें, खेती की और बच्चों की उन्नति के लिए कुछ योजनाएं बनानी चाहिए, आदि विषयों का उन्होंने विस्तार से विवेचन किया है। सत्यशोधक समाज आंदोलन एक ऐसा आंदोलन था जो कि गांवों तक फैल गया था। इस आंदोलन ने ग्रामीणों में शिक्षा और ज्ञान का प्रकाश फैलाया। ग्रामीणों में फैले अंधविश्वास और अज्ञान को दूर किया। उन्हें आधुनिक संस्कृति और वैज्ञानिक विचारों से परिचित कराया।

भारतीय इतिहास में ज्योतिबा फुले शूद्रातिशूद्रों के उद्धारक, स्त्री शिक्षा के जनक, स्त्री स्वतंत्रता और उनके अधिकारों के उद्गाता, किसान और मजदूरों के दुखों को दूर करने के लिए आंदोलन चलाने वाले नेता, चातुर्वण्य व्यवस्था और जातिभेद को मिटाने के लिए तत्पर लोक नेता के रूप में जाने जाते हैं।

18.4.3 महादेव गोविंद रानडे

अंग्रेजों की आर्थिक नीति के कारण देश की आर्थिक दशा बिगड़ चुकी थी। अंग्रेजों की आर्थिक नीति और आर्थिक शोषण से देश में भुखमरी, गरीबी, बेरोजगारी बढ़ती गई। बड़े पैमाने पर यहाँ की धन संपदा इंग्लैण्ड में भेजी जा रही थी। औद्योगिक पूंजीवाद ने देश की स्थिति को और अधिक कमजोर बना दिया। भारत की इस आर्थिक दुर्दशा से व्यथित होकर रानडे जी ने प्रथम बार भारतीय अर्थ-विज्ञान का वैज्ञानिक और वस्तुनिष्ट दृष्टि से अध्ययन किया।

उन्होंने यह स्पष्ट किया कि ब्रिटिश पूंजीवादी पद्धति पर आधारित खुले व्यापार की पद्धति भारत जैसे पिछड़े हुए देश के लिए हानिकारक है। रानडे जान चुके थे कि भारत पर अंग्रेजों का केवल राजनीतिक प्रभुत्व सही नहीं, बल्कि औद्योगिक प्रभुत्व भी है जिसके कारण देश कमजोर

होता जा रहा है। इस बात को रानडे ने लोगों के समक्ष रखा। देश की राजनैतिक और आर्थिक स्थिति से रानडे जितने व्यथित थे उतने ही सामाजिक स्थिति से भी दुःखी थे। राजा राममोहन राय के ब्रह्म समाज से प्रेरणा लेकर रानडे ने महाराष्ट्र में प्रार्थना समाज की स्थापना की। इस समाज द्वारा उन्होंने हिंदू धर्म और समाज के सुधार के साथ ही हिंदू मुस्लिम एकता का भी प्रयास किया। उनका सबसे महत्वपूर्ण कार्य था, सामाजिक कुरीतियों का नाश कर नए सुधारों द्वारा समाज को नई दृष्टि देना। उन्होंने सामाजिक कुरीतियों को नष्ट करने में जुटे हुए देश भर के विभिन्न संगठनों और आंदोलनों के प्रतिनिधियों को आपसी विचार-विमर्श के लिए प्रतिवर्ष एक स्थान पर एकत्र किया। उन्होंने 1885 में स्थापित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के बाद उसी पण्डाल में "राष्ट्रीय सामाजिक सम्मेलन" का भी अधिवेशन करना प्रारंभ किया था। बाद में गरम दल के नेता बाल गंगाधर तिलक और अन्य नेताओं ने इस सम्मेलन का विरोध करके यह प्रक्रिया 1895 में खत्म कर डाली। रानडे ने नरम दल के नेता के रूप में उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में महाराष्ट्र और भारत का सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से नेतृत्व किया। महाराष्ट्र की प्रसिद्ध शिक्षाविद नलिनि पंडित ने रानडे के बारे में कहा है "सुधारवाद के केवल तात्विक सिद्धांत प्रस्तुत कर अथवा प्रगति की दिशा दिखाकर वे चुप नहीं बैठे, बल्कि दैनन्दिन व्यवहार की कुरीतियों का नाश कर नये सुधारों को स्थापित करने के लिए उन्होंने अपने अनुयायियों को प्रवृत किया। "पुनर्विवाहोत्तेजक मंडल", वक्तृत्वोतेजक सभा, "सर्वत व्याख्यानमाला", "फीमेलहायस्कूल" इत्यादि छोटी-छोटी संस्थाएं उन्हीं के प्रयत्न से स्थापित हुई।"

(नलिनी पंडित – महाराष्ट्रातील राष्ट्रवादाचा विकास, पृ. 44)

बोध प्रश्न

7) महात्मा ज्योतिबा फुले ने भारत में सर्वप्रथम किस उद्देश्य से किया था।

क) समानता का अधिकार

ख) धर्म का निषेध

ग) परंपरा का पालन

8) महात्मा ज्योतिबा फुले ने स्त्री शिक्षा का प्रारंभ किस प्रकार किया? उत्तर लगभग पाँच पंक्तियों में लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

9) महात्मा फुले द्वारा स्थापित सत्यशोधक समाज की स्थापना का उद्देश्य क्या था?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

18.4.4 डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर

महाराष्ट्र के समाजिक सुधार आंदोलन के प्रमुख समाज सुधारकों में डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर का योगदान महत्त्वपूर्ण है। महात्मा फुले ने सामाजिक समानता के लिए जिस संघर्ष की शुरुआत की थी, उसी सामाजिक संघर्ष को डॉ. अम्बेडकर ने आगे बढ़ाया।

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर का जन्म रत्नागिरी जिले के अंबेड नाम गांव में 1891 में महार जाति में (जो कि अस्पृश्य मानी जाती थी) हुआ। उनके पिता रामजी अम्बेडकर सेना में सूबेदार मेजर थे। दलित कुटुंब में जन्मे बालक अम्बेडकर ने हजारों साल की गुलामी से हीन स्थिति को प्राप्त दलित वर्ग में जन्म लिया था इसलिए बचपन में सामाजिक बहिष्कार के अत्यंत कटु अनुभवों से गुजरना पड़ा। दलितों को नित्यप्रति अपमानित करने वाली सामाजिक व्यवस्था की फौलादी बेड़ियों के कारण वर्ग व्यथित था। डॉ. अम्बेडकर को जातिगत भेद-भाव और छुआछूत जैसी घृणित प्रथाओं के कारण अनेक अपमानजनक प्रसंगों को झेलते हुए अपनी शिक्षा पूरी करनी पड़ी। वे जानते थे कि दलित वर्गों तथा अन्य पिछड़े वर्गों को शिक्षा से ही उन्नति का अवसर प्राप्त होगा और उनकी प्रगति होगी। बड़े एकाग्र मन से उन्होंने अपनी शिक्षा पूरी की। बंबई विश्वविद्यालय से उन्होंने स्नातक की पदवी प्राप्त की। बड़ौदा रियासत में नौकरी की। सन् 1913 में उन्हें बड़ौदा सरकार की तरफ से अर्थशास्त्र की उच्च शिक्षा के लिए अमरीका भेजा गया। उन्होंने कोलंबिया विश्वविद्यालय से पी.एच.डी. की उपाधि प्राप्त की और आगे के अध्ययन के लिए इंग्लैंड गए। लंदन विश्वविद्यालय से बैरिस्टर की उपाधि और एम.एस.-सी. की उपाधि प्राप्त की।

विश्व के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों से विद्या प्राप्त करके वे बंबई लौटे। प्राइवेट टयूशन करने और एक व्यापारी के सलाहकार के रूप में काम करने के बाद अंत में वे सिडनेहॅम कालेज में प्राध्यापक हो गए। नौकरी के साथ-साथ दलित वर्गों की समस्याओं को लेकर संघर्ष शुरू किया। बाद में बंबई में ही वकालत शुरू की। "बहिष्कृत हितकारिणी सभा" को पुनर्जीवित किया। सभा की स्थापना के बाद इसी को अम्बेडकर की रचनात्मक कार्यक्रमों के अंतर्गत विरोध, आंदोलन और सीधी कार्रवाई का मंच बना लिया। दो हजार वर्षों से वंचित दलित वर्ग की मूल समस्याओं को उन्होंने सर्वप्रथम हाथ में लिया। दलितों को सार्वजनिक कुओं, बावड़ी और तालाबों से पानी भरने नहीं दिया जाता था। उनकी बस्तियाँ गाँव के बाहर बनाई जाती थी, मंदिर में प्रवेश, नौकरियों में प्रवेश नहीं था। एक सामान्य इंसान के मूलभूत अधिकारों से वे वंचित थे। इस सामाजिक अन्याय से लड़ने के लिए उन्होंने सबसे पहले हिंदू धर्म के इन कठोर बंधनों को नष्ट करने के लिए महाउ चवदार तालाब का सत्याग्रह छेड़ा।

सामाजिक समानता का आंदोलन

1) महाउ के चवदार तालाब का ऐतिहासिक सत्याग्रह :

महाउ के चावदार तालाब पर नगरपालिका का अधिकार था। अर्थात् वह सार्वजनिक संपत्ति थी। लेकिन उस तालाब से पानी लेने का अधिकार महाउ के दलितों को नहीं था। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने इस तालाब पर दलितों का भी अधिकार है और वे पानी जैसी बुनियादी अधिकार की वस्तु को संघर्ष के द्वारा ले सकते हैं यह सिद्ध करने के लिए यहाँ पर सत्याग्रह किया। सवर्णों की ओर से इस सत्याग्रह का डटकर विरोध हुआ। लेकिन अपने इस अधिकार को प्राप्त करने के लिए डॉ. अम्बेडकर हाजारों दलित स्त्री पुरूष सत्याग्रहियों के साथ महाउ के तालाब में उतरे और जलप्रशन किया। इस प्रसंग का ऐतिहासिक महत्व इसलिए है कि दो हजार वर्षों से दलितों के साथ हो रहे अन्याय को प्रथम बार सामूहिक प्रयास द्वारा ललकारा गया।

डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने इस प्रसंग पर कहा था———राम मंदिर प्रवेश सत्याग्रह (ई. सन् 1930) अंग्रेजों के शासनकाल में था। हिंदू मंदिरों में दलितों को मंदिर प्रवेश नहीं था। उनके प्रवेश से मंदिर अपवित्र होंगे ऐसा हिंदू धर्म ग्रंथों में लिखा है और इसलिए अछूतों को मंदिर प्रवेश नहीं था। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने इसके विरोध में संघर्ष शुरू किया। महाउ के सत्याग्रह की यह अगली कड़ी थी।

2) मंदिर प्रवेश सत्याग्रह :

पुणे का पार्वती मंदिर प्रवेश सत्याग्रह और अमरावती स्थित अंबा देवी मंदिर प्रवेश सत्याग्रहों के द्वारा छीने गए अधिकारों को हासिल करना ही मुख्य उद्देश्य था। अब तक सवर्णों द्वारा निर्धारित

सामाजिक और धार्मिक बंधनों को तोड़कर, हिंदू होने के नाते प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म के प्रति श्रद्धा और प्रेम प्रदर्शित करने का अधिकार है। मानव निर्मित धार्मिक निषेधों के द्वारा समाज के एक बहुत बड़े हिस्सों को बुनियादी अधिकारों से वंचित रखने के षडयन्त्र के विरुद्ध यह संघर्ष शुरू किया था। इस संघर्ष को रोकने तथा खत्म करने के लिए सनातनी हिंदुओं ने सत्याग्रहियों पर पत्थर तथा जलते हुए गोले फेंके थे। लाठियों से उन्हें अमानुषिक रूप से पीटा गया था। सनातनी हिंदू का यह मानना था कि धर्म विरोधी हर प्रयत्न का वे इसी प्रकार मुकाबला करेंगे और धर्म की रक्षा करेंगे। डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने दलितों को उनके अधिकार देने के लिए किए जा रहे आंदोलन के विरोधियों को स्पष्ट रूप से कहा था "जो दलित वर्ग भक्तिभाव से और हिंदू धर्म के प्रति मन में प्रेम लेकर ईश्वर दर्शन करना चाहते हैं, यदि उन्हें रोका गया तो कहीं वे गजनी के महमूद जैसी मूर्तिभंजन की मुहिम न शुरू कर दें। पानी के प्रवाह को दूसरी दिशा में ले जा सकते हैं, लेकिन प्रवाह को रोकना कठिन है। यदि इस प्रवाह को बांध डालकर रोकना चाहेंगे, तो निश्चित ही रोका गया प्रवाह बांध को तोड़कर कोई न कोई विनाश तो करेगा ही।" (बहिष्कृत भारत 25 नवम्बर 1929 "पुणे का पार्वती सत्याग्रह प्रकरण") सामाजिक समता के लिए छोड़े गए सत्याग्रह से पूर्व डॉ. अम्बेडकर द्वारा जारी किए गए घोषणा पत्र में उन्होंने कहा था कि उनका लक्ष्य केवल अस्पृश्यता को हटाना ही नहीं, बल्कि जाति व्यवस्था के खिलाफ युद्ध छेड़ना भी है। उन्होंने हिन्दुओं के इस दावे का खंडन किया कि विश्व के सब धर्मों में हिन्दू धर्म सबसे उदार और सहिष्णु है। जाति उन्मूलन का जोरदार समर्थन करते हुए उन्होंने कहा था "हिंदू अपनी मानवतावादी भावनाओं के लिए प्रसिद्ध है और प्राणी जीवन के प्रति उनकी आस्था तो अद्‌भुत है। कुछ लोग तो विषैले साँपों को भी नहीं मारते।"

(डॉ. अम्बेडकर : एक चिन्तन–पृ. 17 वरुन घेणे)

3) जाति-व्यवस्था का विशेष :

डॉ. अम्बेडकर का यह विश्वास था कि जाति-व्यवस्था को नष्ट किए बिना अस्पृश्यता खत्म नहीं होगी। जाति भेद के कारण समाज श्रेष्ठ और निम्न की श्रेणियों में बंटा हुआ है। उनमें खान-पान, विवाह का कोई आदान-प्रदान नहीं है। केवल अस्पृश्यता को दूर करने का मतलब होगा अस्पृश्यों को अन्य शूद्रों की श्रेणी में रखना। और हिन्दू धर्मशास्त्रों, के अनुसार शूद्र भी नीच ही कहलाए जाते हैं। अतः जातिभेद, वर्ण व्यवस्था को खत्म करना चाहिए और अधिकार, उत्तरदायित्व तथा प्रतिष्ठा आकस्मिक जन्म के बजाय योग्यता पर आधारित होनी चाहिए।

हिन्दू धर्म के विरोध का कारण एक यह भी है कि धर्मशास्त्रों और स्मृतियों में वर्ण व्यवस्था, जातिप्रथा का समर्थन किया गया है। साथ में अस्पृश्यों, महिलाओं को स्वतन्त्रता, समानता तथा अधिकारों से वंचित रखने उन्हें दासों की श्रेणी में रखने के लिए नियमावली बनाई गई है। चूंकि यह धर्मशास्त्रों और स्मृतियों में कहा गया है। इसलिए उन नियमों की कट्टरता से पालन करना हिन्दू अपना कर्त्तव्य मानता है। इन अन्यायपूर्ण परंपराओं, नियमों को "मनुस्मृति" के द्वारा प्रस्तुत किया गया है। डॉ. अम्बेडकर और उनके अनुयायियों ने समतामूलक समाज की स्थापना के लिए इस अन्यायमूलक ब्राह्मणवादी परंपरा का समर्थन करने वाले ग्रंथ का विरोध दर्शाने के लिए मनुस्मृति को जलाया था। भारत के इतिहास में यह स्मरणीय दिन था। इस प्रकार जाति-व्यवस्था पर चारों तरफ से हल्ला बोला गया था।

डॉ. अम्बेडकर ने जाति व्यवस्था को समूल नष्ट करने की बात कही था। दिसम्बर, 1935 में लाहौर में जात-पात तोड़क मंडल द्वारा आयोजित सम्मेलन की अध्यक्षता के लिए उन्हें बुलाया गया। इस सम्मेलन के लिए लिखे गये भाषण के कुछ अंश को निकाल देने की बात मंडल के आयोजकों ने की। इसके लिए डॉ. अम्बेडकर सहमत नहीं हुए। सम्मेलन का विचार ही छोड़ दिया गया। बाद में यह भाषण स्मारिका के रूप में छपा जिसका नाम है "जातिव्यवस्था का विनाश (Annihilation of Caste)। उन्होंने इसमें कहा है कि जाति-व्यवस्था के आधारभूत धार्मिक सिद्धान्तों को तोडे बिना जाति को नहीं तोड़ा जा सकता।

नामवंत समाजवादी नेता मधु लिमये ने इस भाषण को डॉ. अम्बेडकर की सबसे प्रभावशाली कृति कहा है। वे कहते हैं "यह निर्मम तर्क और युक्ति पर आधारित है। तथापि इसमें इतनी आग है कि इसकी तुलना कार्ल मार्क्स और एंगेल्स द्वारा लिखित कम्युनिस्ट मैनिफैस्टो से ही की जा सकती है। हम भारतीयों के लिए तो यह कम्युनिस्ट मैनिफैस्टो से भी अधिक प्रासंगिक है।"

(डॉ. अम्बेडकर : एक चिंतन पृ. 18)

डॉ. अम्बेडकर ने इसी भाषण में कहा है राजनैतिक सुधारों के लिए सामाजिक सुधारों की आवश्यकता क्यों है। समाज व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन लाने के लिए केवल सामाजिक सुधार की नहीं, बल्कि सामाजिक क्रांति की आवश्यकता है। दलित वर्गों के प्रति हिंदू समाज के रवैये में कोई परिवर्तन न देखकर उनके मन में यह शंका आने लगी कि अंग्रेजों के द्वारा हिंदूओं के हाथों में सत्ता दी जाने के बाद भी दलित वर्ग की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं होगा। उनके साथ समानता का व्यवहार नहीं किया जाएगा और जाति के आधार पर उनके साथ भेदभाव किया जायेगा। इसलिए वे चाहते थे कि राजनैतिक आंदोलन को मजबूत बनाने के लिए सामाजिक सुधार आंदोलन में तेजी लानी चाहिए। वे कहते हैं –

"समाजवादी और मार्क्सवादियों के अनुसार आर्थिक परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन लाने की क्षमता रखती है। मानव आर्थिक प्रेरणा से ही प्रत्येक कार्य करता है और आर्थिक शक्ति से ही सत्ता प्राप्त की जा सकती है। राजनैतिक सत्ता आर्थिक सत्ता से प्रभावित होती है।"

4) हिंदू धर्म प्रणित समाज-व्यवस्था का विरोध :

डॉ. अम्बेडकर को आने वाले कल की चिंता थी। आज यदि जातिपांत, अस्पृश्यता, असमानता, दासता को खत्म नहीं किया गया तो आने वाले संयम में भी इन समस्याओं से दलितों को जूझना पड़ेगा। समाजवादियों का उन्होंने इस बात के लिए विरोध किया कि यदि उन्हें ऐसा लगता है कि आर्थिक क्रांति के बाद सबको सामाजिक समानता हासिल होगी तो यह उनका भ्रम है। उन्हें सामाजिक परिवर्तन को सबसे पहले लेना चाहिए। वे कहते हैं "उन्हें समाज में व्याप्त ऊँच-नीच, पवित्र-अपवित्र के पूर्वाग्रहों से लड़ना होगा। उन्हें इस बात को स्वीकार करना होगा कि समाज-सुधारों की समस्या बुनियादी समस्या है। इससे बचा नहीं जा सकता। यदि उन्होंने इसे पहले स्वीकार नहीं किया तो क्रांति के बाद इसे स्वीकार करना पड़ेगा। तुम किसी भी दिशा में जाओ जातिवाद के राक्षस को नहीं मारोगे तब तक तुम कोई भी आर्थिक या राजनैतिक परिवर्तन नहीं ला सकते।" आप देखेंगे कि डॉ. अम्बेडकर ने जब भी हिंदू धर्म की बुराइयों पर प्रहार किया है तब वह हिंदू धर्म में शामिल वेदों और शास्त्रों के आधार पर फैले, बलि विधान और सामाजिक, राजनैतिक नियमों पर किया है। हिंदू धर्म को बचाने के लिए उस पर छाए हुए ब्राह्मणवाद को खत्म करना चाहिए। उन्होंने इस बात को अच्छी प्रकार से समझाने का प्रयास किया था कि हिंदू समाज में पूर्ण परिवर्तन हो, जिसका अर्थ होगा जीवन के मूलभूत दृष्टिकोण में पूर्ण परिवर्तन और जीवन मूल्यों में आमूल परिवर्तन।

महाराष्ट्र में सामाजिक परिवर्तन के लिए हुए सुधार आंदोलनों का स्वरूप भारत में अन्य प्रदेशों से कुछ अलग भी रहा है। आपने महात्मा फुले, रानडे, लोकहितवादी और बाबासाहेब अम्बेडकर के समाज सुधार आंदोलनों का परिचय प्राप्त किया। आगे आने वाले राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन के लिए जिस वैचारिक, परिवर्तनवादी, समानतामूलक दृष्टिकोण की आवश्यकता थी उसकी पृष्ठभूमि इन सुधारकों ने अपने प्रयासों द्वारा तैयार कर दी थी। देश के कोने-कोने से स्त्री-पुरूष अमीर-गरीब, जमींदार-मजदूर, किसान, शिक्षित-अशिक्षित जनता ने एक साथ मिलकर काम करके ब्रिटिशों से देश की स्वाधीनता हासिल की है। इसका श्रेय इन्हीं समाज सुधारकों को जाता है।

18.5 नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का अंतःसंबंध

महाराष्ट्र में नवजागरण की चेतना के विकास के कारण वैचारिक परिवर्तन का काल शुरू हुआ। राजनीतिक दासता की पृष्ठभूमि में यह वैचारिक क्रांति बहुत महत्वपूर्ण थी। एक ओर जहाँ अंग्रेजों ने भौतिक सुधारों द्वारा भारतीय जीवन को नया अर्थ दिया दूसरी ओर अंग्रेजों ने एक बात का ध्यान रखा था और वह है धार्मिक रूढ़िवादिता और विशिष्ट वर्णवादी समाज व्यवस्था से निश्चित यहाँ का जीवनक्रम मूल रूप में ही रहे। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन न हो, इसके लिए अंग्रेजों द्वारा नीति बनाई गई। लेकिन नवजागरण की चेतना के फलस्वरूप मध्यकालीन सामंतीय मूल्यों, धार्मिक रूढ़िवादिता, जातिवाद के विरोध के साथ ही उपनिवेशवादी दासता के विरोध की भावना भी बढ़ती गई।

इससे पहले आप इस बात से परिचित हो चुके हैं कि महात्मा ज्योतिबा फुले, लोकहितवादी, रानडे, गोखले, डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर सम्पूर्ण सामाजिक परिवर्तन हेतु कृतिशील आंदोलन

चला रहे थे। दूसरी ओर बाल गंगाधर तिलक जैसे गरमदलीय या राष्ट्रवादी बाल विवाह का समर्थन और विधवा विवाह का विरोध कर रहे थे। सामाजिक व्यवस्था को बदले बिना ही राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्ति की कामना कर रहे थे। राष्ट्रीयता की भावना का अर्थ उनके लिए केवल हिन्दुओं के मन में हिन्दु धर्म और राष्ट्र के प्रति अभिमान जागृत करना, अपने गौरवशाली इतिहास को याद करना और फिर से उन्हें हासिल करने के लिए धर्म का आधार लेना। इसी विचार के अंतर्गत तिलक ने शिवाजी उत्सव और गणेश पूजा जैसे साम्प्रदायिक रंगत वाले उत्सवों को राष्ट्रीय उत्सव के रूप में मानना शुरू किया। राष्ट्रीयता की भावना बढ़ाने के लिए धार्मिक कट्टरता बढ़ाने और आपसी मतभेदों को हवा देने वाले उत्सवों की नहीं बल्कि रानडे, गोखले, महात्मा फुले डॉ. अम्बेडकर द्वारा चलाए गए सुधार आंदोलनों की आवश्यकता और महत्व था। स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे की भावना से एकजुट होकर आपसी मतभेदों को भूलकर सभी को राष्ट्रीय आंदोलनों में सक्रिय भूमिका निभाने की आवश्यकता थी। तिलक द्वारा शुरू किए गए उत्सवों ने नवजागरण और धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रीय चेतना के विकास में बाधा उत्पन्न की। इस स्थिति का अंग्रेज शासकों ने फायदा उठाया और हिन्दु-मुसलमानों के बीच शत्रुता पैदा करने में वे सफल हो गए। तिलक लोकसंग्रह के आधार पर राष्ट्र की स्वाधीनता की समस्या सुलझाना चाहते थे। उस समय की भारतीय जनसामान्य की परंपरावादी विचारधारा के कारण, तिलक को सबसे अधिक जनाधार प्राप्त हुआ। वे महाराष्ट्र के सबसे लोकप्रिय नेता सिद्ध हुए। नवजागरण की चेतना ने एक महत्वपूर्ण विचार आंदोलन को जन्म दिया। वह था स्वतंत्रता, समानता और भाईचारे की भावना ने देश के अमीर-गरीब, उच्चवर्णीय-निम्नवर्णीय, शिक्षित-अशिक्षित का देश के राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में एक साथ शामिल होना। महाराष्ट्र में नवजागरण की चेतना ने व्यापक सामाजिक जागरण और राष्ट्रीय स्वाधीनता की चेतना को मजबूत किया। हम देखेंगे कि नवजागरण और राष्ट्रीय भावना को जागृत करने में मराठी साहित्य का बहुत योगदान रहा। साहित्य रचनाओं में अभिव्यक्त देश की पराधीनता, असहायता, दासत्व, परवशता की भावना ने स्वाधीनता, स्वदेश, स्वभाषा के प्रति स्वाभिमान जागृत करने का कार्य किया। स्वाभिमान जागृति से परवशता की श्रृंखलाओं को तोड़कर फेंकने की अदम्य इच्छा जन-जन में प्रस्तुत हुई। साथ ही साथ सामाजिक अंतर्विरोध, ऊंच-नीच के भेद, सड़ी-गली परंपराओं, रूढ़ियों, धार्मिक बंधनों, जातिप्रथा आदि कुरीतियों का अहसास हुआ। इसी के परिणामस्वरूप सामाजिक परिवर्तन के लिए समाज सुधारकों ने अथक प्रयासों से भारतीय समाज को नए मूल्यों पर ढालने की कोशिश की। इस परिवर्तन के विचारशील, शिक्षित समाज सुधारकों और रचनाकारों ने जीवन विषयक नया दृष्टिकोण दिया। इस नए दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति साहित्य में दृष्टिगत होती है। चिपलूधकर की "निबंधमाला" (ई. सन् 1874) में इसकी शुरुआत मानी जाती है।

मराठी के प्रसिद्ध कवि केशवसुत और उनके संप्रदाय के अन्य कवियों की कविता को इस नई जीवन दृष्टि ने नया स्वर दिया। हरिभाऊ आपटे, खांडेकर, मामा वरेरकर, श्री म. माटे, माउखोलकर आदि लेखकों ने परिवर्तन की प्रक्रिया को अपने साहित्य द्वारा गतिशील बनाया। अगली इकाई में हम क्रमवार मराठी, गद्य, पद्य, नाटक, निबंध इन विविध विधाओं के अंतर्गत निर्मित साहित्य और उसके द्वारा नवजागरण की चेतना और राष्ट्रीय चेतना के विकास का परिचय प्राप्त करेंगे।

बोध प्रश्न

10) डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर द्वारा महाउ के चवदार तालाब का सत्याग्रह किस उद्देश्य प्राप्ति के लिए किया गया था?
   क) मानव के बुनियादी अधिकार
   ख) तालाब को खुला करने
   ग) तालाब पर ब्राह्मण वर्ग का अधिकार

11) डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने अस्पृश्यों को उनके अधिकार दिलाने हेतु क्या-क्या कदम उठाए? (चार पंक्तियों में)

.....

.....

.....

12) महाराष्ट्र के संदर्भ में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के अंतःसंबंध के प्रमुख बिंदुओं का उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास

3) हिंदु जाति का हिस्सा होने के बावजूद अस्पृश्यों को अस्पृश्यता के अपमान को क्यों झेलना पड़ा? महत्वपूर्ण कारणों की चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

4) सामाजिक समानता के लिए सामाजिक क्रांति की आवश्यकता है। ऐसा डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर क्यों मानते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

18.6 सारांश

- पश्चिमांचल साहित्य की मराठी साहित्य-I नामक इस इकाई में आपने महाराष्ट्र में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के पूर्व की स्थिति का अध्ययन किया है। मध्ययुगीन पेशवाकाल में महाराष्ट्र की सामाजिक और धार्मिक स्थिति पर भी विचार किया है। अंग्रेजों ने 19वीं शती के आरंभ में पश्चिमी ढंग की शिक्षा पद्धति आरंभ की और राज्य व्यवस्था में अपने लिए अनुकूल बदलाव किए। इनके संपर्क से महाराष्ट्र के शिक्षित युवा वर्ग में नये विचारों का उदय हुआ। अंग्रेजों द्वारा स्थापित कल कारखानों, प्रेस की स्थापना ने महाराष्ट्र के जीवन में व्याप्त परिवर्तन किए। शिक्षित समाज ने आधुनिक चेतना को फैलाने का कार्य किया।

- आधुनिक चेतना के कारण महाराष्ट्र में फैले अंधकार, रूढ़ि-रीतियों के कारण समाज में आए खोखलेपन, अशिक्षा, स्त्री और दलितों की दयनीय स्थिति, धार्मिक आडंबर, सामाजिक कुरीतियों के प्रति आधुनिक समाज में क्षोभ निर्माण हुआ। इसी शिक्षित युवकों महात्मा फुले, रानडे, लोकहितवादी, डॉ. अम्बेडकर ने सामाजिक चेतना जगाने हेतु महाराष्ट्र में सामाजिक और धार्मिक रूढ़िवाद के विरुद्ध समाज सुधार आंदोलन चलाये।

- समाज सुधारकों ने लेखन के माध्यम से वैचारिक क्रांति का सूत्रपात किया। पारंपरिक लेखन पद्धति और परंपरा को नये दृष्टिकोण के द्वारा आधुनिक रूप दिया। अभी तक पिछड़े समाज के प्रति समाज का क्या रवैया है और वह क्यों है, आदि की चर्चा की। जिससे आधुनिक समाज अपनी भूल को समझे और सुधारे।

- महाराष्ट्र में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का संबंध कितना गहरा है यह देखा। तिलक, जैसे नेताओं के उग्र राष्ट्रवादी विचारों के कारण महाराष्ट्र में सांप्रदायिक और पुनरुत्थानवाद को भी जन्म दिया। जिससे राष्ट्रीय चेतना आंदोलन में सम्मिलित नेताओं में दो विभाग हो गये। लेकिन अंततः नवजागरण के श्रेष्ठ मूल्य और राष्ट्रीय भावना का धर्मनिरपेक्ष स्वरूप ही महाराष्ट्र को और देश को बनाये रख सकता है। महाराष्ट्र ने राष्ट्रीय आंदोलन को नेतृत्व ही नहीं, बल्कि एक निश्चित दिशा भी दी है। इकाई को पढ़कर आप इन सभी पक्षों को अपने शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं।

18.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- रजनी पाम दत्त : *आज का भारत*, *मैकमिलन*, नयी दिल्ली।
- डॉ. नगेन्द्र : *भारतीय साहित्य*, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली।
- *मराठी साहित्य का इतिहास*, साहित्य अकादमी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
- विश्वनाथ नवरणे : *आधुनिक भारतीय चिंतन*, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
- *भारतीय भाषाओं के साहित्य का इतिहास (संपादित)*, केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली।

18.8 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) क

2) रामजोशी प्रभाकर, होनाजी बा

3) i) लड़कियों के लिए स्कूल खोले।
   ii) अस्पृश्यों को पढ़ने का अधिकार मिला।
   iii) मराठी पाठशालाएं खोली गई।

4) ख

5) देखिए भाग 18.3

6) देखिए उपभाग 18.4.1

7) क

8) देखिए उपभाग 18.4.2

9) देखिए "सत्यशोधक समाज की स्थापना"

10) क

11) अस्पृश्यों को उनके अधिकार दिलाने के लिए डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने महाड़ के प्रसिद्ध चवदार तालाब का सत्याग्रह किया। जिससे हिन्दु प्रणित समाज को यह पता चल सके कि अस्पृश्य भी इसी हिन्दु जाति की एक इकाई है। मंदिर प्रवेश सत्याग्रह के द्वारा यह एहसास कराया कि अस्पृश्यों को भी ईश्वर की आराधना करने का अधिकार है। मंदिर, मस्जिद, गुरद्वारे सभी मनुष्यों के लिए विदित, प्रार्थना का स्थान है। उस पर किसी उच्च वर्ण या जातियों का अधिकार नहीं। हिंदू धर्म के आचार नियम को कट्टरता से पालन करने के लिए बनाई गयी आचार संहिता मनुस्मृति का दहन करके मनुस्मृति में अस्पृश्यों और स्त्रियों के लिए बनाए गए विधि निशेध, नियमों का विरोध किया। स्त्रियों और अस्पृश्यों के लिए समानता के अधिकारों की मांग की। हिन्दु धर्म के ब्राह्मण के वर्चस्व के कारण आये ऊंच-नीच के भेदभाव का जोरदार विरोध करके प्रत्येक मनुष्य समानता, स्वतंत्रता का अधिकारी है। इसके लिए कानून बनाने के लिए ब्रिटिश सरकार पर जोर डाला।

12) देखिए भाग 18.5

अभ्यास

1) देखिए भाग 18.3

2) लोकहितवादी ने सामाजिक चेतना के द्वारा सामाजिक परिवर्तन लाने के लिए प्रयास किया है। उन्हें ऐसा समाज अभिप्रेत था जिसमें स्त्री-पुरुष समानता हो, ऊंच-नीच के भेदभाव पर आधारित अस्पृश्यता ना हो, धार्मिक आडंबर, ब्राह्मणवाद का वर्चस्व न हो। दलितों, पिछड़ों के नाम पर सामाजिक, आर्थिक शोषण न हो सके। इसलिए धर्म के ठेकेदारों, धर्मगुरुओं, कठमुल्लाओं की कट्टरता का विरोध करके, धर्मनिरपेक्ष समाज बनाना चाहते थे।

3) संकेत :
i) वर्ण व्यवस्था के आधार पर जाति व्यवस्था।
ii) पूर्वजन्म और कर्म सिद्धांत पर विश्वास।
iii) हिंदू धर्म के धर्म ग्रंथों का आधार।
iv) ब्राह्मणवाद का समाज पर वर्चस्व।
v) दास प्रथा के कारण उच्च कहने वाले समाज को मिलने वाला लाभ।

4) डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर ने सामाजिक समानता के लिए सामाजिक क्रांति की आवश्यकता है ऐसा कहा था, क्योंकि सामाजिक सुधार आंदोलन के द्वारा किए गए अनथक प्रयत्नों के बावजूद भी हिंदू समाज के मन में दलित वर्ग के प्रति घृणा और तिरस्कार, भेदभाव कम नहीं हुआ हैं। यदि अंग्रेजों के हाथों से जब हिन्दुओं के हाथों में सत्ता का हस्तांतरण होगा तो सामाजिक स्थिति में कोई बदलाव फिर भी नहीं आएगा। दलितों की स्थिति स्वतन्त्रतापूर्वक और बाद में भी वही रहेगी। इसलिए वे चाहते थे कि सामाजिक क्रांति ही इस प्रकार के शोषण को और सौतेले व्यवहार को खत्म करने की क्षमता रखती है।

इकाई 19 मराठी साहित्य-II

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 मराठी साहित्य का उदय और विकास

19.3 आधुनिक मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि

19.4 मराठी गद्य साहित्य
- 19.4.1 निबंध
- 19.4.2 उपन्यास
- 19.4.3 नाटक

19.5 मराठी पद्य साहित्य
- 19.5.1 केशवसुत
- 19.5.2 रचनाएँ और काव्य दृष्टि
- 19.5.3 सामाजिक परिवर्तन के स्वर

19.6 काव्य वाचन
- 19.6.1 भावार्थ
- 19.6.2 विश्लेषण
- 19.6.3 कविता का उद्देश्य

19.7 सारांश

19.8 उपयोगी पुस्तकें

19.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

19.0 उद्देश्य

"पश्चिमांचलीय साहित्य : मराठी-II" नामक इस इकाई में आप आधुनिक मराठी साहित्य में अभिव्यक्त नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना तथा मराठी साहित्य के योगदान का अध्ययन करेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- आधुनिक मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि का उल्लेख कर सकेंगे,
- आधुनिक मराठी साहित्य के उदय के कारणों को बता सकेंगे,
- मराठी गद्य साहित्य और पद्य साहित्य के महत्वपूर्ण लेखकों, कवियों की रचनाओं में अभिव्यक्त नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के स्वर को जान सकेंगे,
- आधुनिक मराठी साहित्य में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे, तथा
- आधुनिक मराठी साहित्य के ऐतिहासिक योगदान को बता सकेंगे।

19.1 प्रस्तावना

"आधुनिक भारतीय साहित्य : राष्ट्रीय चेतना और नवजागरण" नामक इस पाठ्यक्रम के पांचवें खंड की यह दूसरी इकाई है। इस खंड की पहली इकाई मराठी साहित्य-I में महाराष्ट्र में नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की पृष्ठभूमि, सामाजिक, धार्मिक, सुधार आंदोलन की भूमिका और समाज सुधारकों के योगदान से आपको परिचित कराया गया है। आप उन परिस्थितियों से भी परिचित हो चुके हैं जिनके बीच नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ। महाराष्ट्र में राष्ट्रीय चेतना के विकास और नवजागरण से उसके संबंध के विभिन्न पहलुओं को भी आप समझ चुके हैं। इस उन्नीसवीं इकाई में आधुनिक मराठी साहित्य में नवजागरण और राष्ट्रीय

चेतना की अभिव्यक्ति पर प्रकाश डाला है। आधुनिक मराठी साहित्य का आरंभ किन परिस्थितियों में हुआ, नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के विकास में साहित्य का योगदान क्या रहा। इस पर इस इकाई में विचार किया जाएगा। नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना की उन विशेषताओं से भी आपका परिचय कराया जाएगा जिनकी अभिव्यक्ति आधुनिक मराठी साहित्य में हुई है।

19.2 मराठी साहित्य का उदय और विकास

महाराष्ट्र की भाषा मराठी की उत्पत्ति संबंधी अनेक मत हैं। मूलतः संस्कृत से उत्पन्न मराठी भाषा का विकास शोरसैनी मागधी, पैशाची और महाराष्ट्री प्राकृत से हुआ है। इन प्राकृत भाषाओं का विकास अपभ्रंश के रूप में हुआ। महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी का उद्‌भव हुआ। लगभग ई. सन् 1275 के आसपास मराठी को सामाजिक साहित्यिक महत्व प्राप्त हो गया था। मराठी का विस्तार काफी बड़े क्षेत्र में पाया जाता है, उत्तर में विंध्य और सतपुड़ा तक, पूर्व में छोटा नागपुर और आंध्र तक, दक्षिण में उत्तरी कर्नाटक तक और पश्चिम में अरब सागर तक।

ई. सन् 933 का एक पुरातन उत्कीर्ण लेख प्राप्त हुआ है, जो मराठी भाषा में लिखा हुआ है। मैसूर के निकट त्रावणबेलगोला में गोमटेश्वर की विशाल पत्थर की मूर्ति के नीचे मराठी और कन्नड़ भाषाओं में एक वाक्य खुदा हुआ है—"श्री चावुण्डराजे करवियले" इससे यह स्पष्ट होता है कि मराठी एक प्रचलित भाषा थी और उसका निश्चित रूप भी विद्यमान था। मराठी उस समय सामान्य बोलचाल की भाषा थी।

ई. सन् 1202 का एक और दानपात्र, जो कि राजा सोइदवा ने अपने गुरु को दिए गए दान के विवरण रूप में बनवाया था, मराठी भाषा में है। यादव राजाओं के काल में मराठी को राजसभाओं में सम्मानित स्थान मिल चुका था। रामदेवराय का पंढरपुर का सन् 1273 का शिलालेख शुद्ध मराठी में खुदा हुआ है। मराठी उस समय साहित्य का माध्यम बन चुकी थी। प्रसिद्ध "नलोपाख्यानम्" और "रुक्मिणी-स्वयंवर" जैसी साहित्यिक और आलंकारिक रचनाएं मराठी में की जाने लगी थी। मराठी के प्रसिद्ध कवि मुकुन्दराज ने "विवेकसिंधु" की रचना मराठी में की थी।

मराठी गद्य का प्रारंभ यादवकाल से हुआ था। उसका श्रेय महानुभाव संप्रदाय को है। महानुभाव संप्रदाय के भक्त लेखकों ने गद्य और पद्य शैली में विशाल ग्रंथ रचना की है। उनकी यह मान्यता थी कि मराठी जन-सामान्य की भाषा है और जन-सामान्य तक महानुभाव संप्रदाय की विचारधारा को यदि पहुंचाना है तो संस्कृत के स्थान पर मराठी का ही उपयोग किया जाना चाहिए। महानुभाव संप्रदाय को कवियों का मराठी साहित्य भंडार को बढ़ाने में बहुत योगदान है। म्हाईभट रचित "लिण्गाचरिण" और "गोविन्द प्रभु चरित्र" काव्य रचनाएं मराठी के शुद्ध रूप की रचनाएं मानी जाती हैं। इन रचनाओं के अलावा और सात विशाल काव्य रचनाएं भी इसी समय में रची गईं। इन रचनाओं का उद्देश्य केवल मराठी भाषा को जन-सामान्य तक पहुंचाना ही नहीं था, बल्कि उस समय धर्म के नाम पर समाज में बढ़ चुके कर्मकांड, जातिभेद, स्त्री-पुरुष भेद, ब्राह्मणवाद आदि का खंडन करते हुए एक समानतावादी समाज की स्थापना करना भी था। महानुभाव संप्रदाय का उदय उस समय की सामाजिक स्थिति के विरुद्ध एक विद्रोह के रूप में हुआ था। हिन्दू रूढ़िवादिता के विरुद्ध महानुभाव संप्रदाय से भी प्रभावशाली और प्रबल विद्रोह ज्ञानेश्वर ने किया। एक संन्यासी की संतानें होने के नाते ज्ञानेश्वर और उनके तीन भाई-बहनों को सनातनी समाज से बहिष्कार और अत्याचार सहने पड़े थे। इन कटु अनुभवों से निवृत्ति नाथ और ज्ञानेश्वर को धर्म के नाम पर फैले रूढ़िवाद और कर्मकांडों का ज्ञान हुआ। धर्म के ठेकेदारों के हाथों हिन्दू धर्म में फैले अनाचार और अत्याचार का ज्ञानेश्वर ने अपने "भावार्थदीपिका" (ज्ञानेश्वरी) और "अनुवामृतत" नामक ग्रंथों में पर्दाफाश किया। जनसामान्य की भाषा को अपनाकर उन्होंने मराठी में रचनाएं की। इनकी ये रचनाएं मराठी भाषा और साहित्य की अप्रतिम रचनाएं हैं। जिसने मराठी को बहुत बड़ा सम्मान दिया, भक्तिकाल के इस आंदोलन ने और भी संत कवि महाराष्ट्र को दिए जिनमें प्रमुख हैं—नामदेव, तुकाराम, सावता माली, गोरा कुम्हार, नरहरि सुनार, चोखामहार आदि ज्ञानेश्वर द्वारा स्थापित भागवत धर्म की विचारधारा को अपनाकर उसका प्रचार करने लगे। नामदेव, तुकाराम, चोखा मेला आदि संतों ने

कट्टर रूढ़िवादिता, जात-पात, ऊंच-नीच, स्त्री-पुरुष भेद का अपनी काव्य रचनाओं द्वारा विरोध किया और एक नई समाज व्यवस्था, जीवन मूल्यों की स्थापना के लिए प्रयत्न किया। इस भक्ति आंदोलन की विचारधारा ने जो मनुष्य की बीच के भेदभाव, जाति व्यवस्था को नष्ट करना चाहती थी समानता, स्वतन्त्रता और भाईचारे के मूल्यों पर आधारित समाज रचना चाहती थी, संपूर्ण महाराष्ट्र को आंदोलित किया था। 1293 ईसवी में यादव काल का अंत हो गया, लेकिन इस काल ने मराठी साहित्य और भाषा को समृद्ध करने वाली एक परंपरा का निर्माण किया। बहमनी काल के दौरान संत एकनाथ ने "भागवत की टीका" और "भारुड़" रचनाओं द्वारा मराठी को और समृद्ध किया। संस्कृत में रचित पुराणों की कथाओं को मराठी भाषा ने पद्यबद्ध किया। उनकी मंडली के दासोपंत ने पद्य रचनाओं द्वारा विपुल साहित्य का निर्माण किया। मराठी भाषा को संस्कृत से भी अधिक संशक्त भाषा के रूप में प्रस्थापित किया। सोलहवीं शताब्दी में मुक्तेश्वर की आख्यानकाव्य रचनाओं ने मराठी भाषा और साहित्य को समृद्ध किया। सत्रहवी शताब्दी के प्रारंभ में संत तुकाराम की भक्तिपूर्ण अभंगों से संपूर्ण महाराष्ट्र उद्वेलित हो उठा। भक्तिकाल द्वारा संत शिरोमणी तुकाराम ने संपूर्ण महाराष्ट्र की जनता को एकसूत्र में बांधने का प्रयास किया। उनके अभंग महाराष्ट्र के अभंग जनसामान्य में लोकप्रिय हैं। उसका कारण यह है कि सरल और सुबोध मराठी में अभंग की रचना की गई है। उनकी ईश्वर विषयक उक्तियों में व्यक्त भावुकता की तीव्रता मराठी काव्य में अन्यत्र कम ही दिखाई देती है। सामान्य जनता की भावनाओं को उन्हीं की भाषा में अभिव्यक्ति करने की कला में संत तुकाराम निपुण थे। संत तुकाराम के भक्ति काव्य रचनाओं में एक ओर मराठी भाषा साहित्य को उच्चतम शिखर पर पहुंचाया तो दूसरी ओर वामन पंडित जैसे कवियों ने आख्यान काव्य, कथा काव्य को अपनी रचनाओं द्वारा समृद्ध किया। शिवाजी द्वारा मराठी स्वराज की स्थापना के दिनों में वीरों के आत्मबलिदान के कारण आत्मगौरव और आत्मविश्वास का उदय हो रहा था। वीरों की शूरवीरता को काव्य द्वारा अभिव्यक्त किया जाने लगा। काव्य गायन की एक शैली का उदय हुआ जिसे "पवाडा" कहा जाने लगा। इस काव्य के रचयिता और गायक "शाहीर" कहलाते थे। "पवाडा" वीर काव्य का ही एक प्रकार है। भाषा की सजीवता और स्फूर्तिमान प्रवाह के कारण यह काव्य प्रकार अतीशय लोकप्रिय रहा शिवाजी और उनके सहयोगी वीरों की शूरता का वर्णन करने वाले अनेक पवाड़े लिखे गए।

शिवाजी के समय में मराठी गद्य का भी विकास हुआ। इस गद्य को "बखर" कहते हैं, जिसकी व्युत्पत्ति फारसी के "खबर" शब्द से है। राजाओं की विजय का वर्णन इन "बखर" में किया जाता था। शिवाजी के समय में गद्य मुख्य रूप से महत्वपूर्ण पत्रों और शासकीय आज्ञाओं के रूप में प्राप्त है। उस समय की सबसे महत्त्वपूर्ण बखर "वाकेनवीस बखर" है। ऐतिहासिक गद्य के रूप में इसका महत्त्व है।

शिवाजी के बाद का समय महाराष्ट्र के लिए राजनीतिक उथल-पुथल का रहा है। पेशवाओं के समय महाराष्ट्र में अशांति का वातावरण और बढ़ गया। ऐसे समय में साहित्य सर्जन की ओर पहले जैसा ध्यान नहीं दिया गया। कृष्णदयार्णवप और श्रीधर पेशवाओं के प्रारंभिक समय के प्रमुख कवि थे। कृष्णदयार्णवप के दार्शनिक पद्यों की और श्रीधर के भक्तिपूर्ण आख्यानों को महाराष्ट्र में बड़ी लोकप्रियता प्राप्त हुई। एक महत्वपूर्ण कवि मोरोपंत की रचनाओं ने भी मराठी साहित्य भंडार को समृद्ध किया। मोरोपंत ने अपने प्रिय छंद आर्यावृत्त में रचनाएं की, संस्कृत के इस पुराने छेद को नया रूप दिया। उनकी प्रसिद्ध काव्य रचनाएं "केकावलि" और "संशय रत्न-माला' उच्चकोटि के प्रगीत कहे जाते हैं।

पेशवाओं के समय में पवाडो लावणियों का विकास हुआ। प्रसिद्ध शाहीर होनाजी बाला, सगन भाऊ, अनंत फंदी रामजोशी और प्रभाकर ने अपनी शाहीर काव्य रचनाओं पवाडे और लावणियों से साहित्य में संगीतात्मक गायन शैली का नया अध्याय जोड़ा। पवाडों में मुख्य रूप से सरदारों के युद्ध विजय का गान होता था तो लावणियों में उनकी विलासिता का मुक्त श्रृंगारपूर्ण वर्णन किया जाता था। ये दोनों मुख्य रूप से दरबारी काव्य रचनाएं मानी जाती हैं।

आपने देखा कि इस प्रकार यादवकाल से (ई. सन् 1189) पेशवाकाल तक ई. सन् 1850 तक मराठी साहित्य का गद्य और पद्य साहित्य द्वारा विकास होता गया।

19.3 आधुनिक मराठी साहित्य की पृष्ठभूमि

इस इकाई से पहले की इकाई में आपने मध्ययुगीन महाराष्ट्र की सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक परिस्थिति का परिचय प्राप्त किया है। मध्ययुगीन सामंतवादी समाज-व्यवस्था की अपरिवर्तनशीलता का यह परिणाम था कि समाज परम्पराप्रिय, चेतनाहीनता को ढोते समाज के ढांचे में परिवर्तन करने वाली सभ्यता अंग्रेजों की है। यद्यपि अंग्रेज जाति व्यापारिक उद्देश्य और आर्थिक लाभ के लिए भारत में आयी थी, उसके सम्पर्क से भारतीय समाज-व्यवस्था में पहली बार मूलगामी परिवर्तन हुए। व्यापार करते-करते अंग्रेजों ने यहाँ की परिस्थिति से लाभ उठाकर किस प्रकार सम्पूर्ण भारत पर शासन स्थापित किया इसकी चर्चा इस पाठ्यक्रम के प्रथम खंड में की जा चुकी है। अंग्रेजों के शासन का मुख्य उद्देश्य आर्थिक लूट ही रहा है, लेकिन अन्य विदेशियों से अधिक चतुर होने के कारण अंग्रेजों ने अपने उद्देश्य की पूर्ति करते हुए कुछ महत्वपूर्ण सुधार भी किये। इन सुधारों का मूल हेतु अधिक समय तक शासन के सूत्र हाथ में रखकर आर्थिक लूट का ही रहा है, फिर भी शासन के हिस्से के रूप में जो सुधार और क्रांतिकारी परिवर्तन भारत में हुए, उनको स्वीकार किया ही जाना चाहिए।

अंग्रेजों का महत्वपूर्ण कार्य उनके शिक्षा विषयक प्रयत्नों में दिखाई देता है। भारत में धर्म और दर्शन की शिक्षा पंडितों और मौलवियों द्वारा विशिष्ट जाति और वर्ग को दी जाती थी। यह शिक्षा प्रणाली हजारों वर्ष पुरानी और परंपरावादी थी। नये परिवर्तित समाज के अनुकूल वह नहीं थी। अंग्रेजों ने भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहन देने के लिए फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना की। अंग्रेजी विद्वानों ने मराठी भाषा के विकास के लिए कोश, व्याकरण और अनुवाद के माध्यम से मराठी साहित्य को समृद्ध करने का प्रयत्न भी किया। लॉर्ड मैकाले ने भारतीयों को पाश्चात्य शिक्षा और साहित्य का ज्ञान देने हेतु महाराष्ट्र में कालेजों और विश्वविद्यालयों की स्थापना की और पाश्चात्य साहित्य तथा संस्कृति से भारतीय जनता का परिचय अधिक दृढ़ होने लगा। एल्फिन्स्टन ने बंबई में अंग्रेजी शिक्षा का प्रचार करने हेतु ई. सन् 1815 में "बांबे एज्युकेशन सोसायटी" की स्थापना की। पूना में एक संस्कृत कालेज की स्थापना भी की, जिसमें विद्याध्यन करने वाले छात्रों को विद्यावेतन देने की व्यवस्था की थी। अनुवाद युग की शुरुआत भी बांबे एज्युकेशन सोसायटी के द्वारा हुई थी। देशी भाषाओं में ग्रंथनिर्मिती भी शुरू हो गई थी। महाराष्ट्र में शिक्षा प्रसार का कार्य इसाई मिशनरियों ने भी किया। इनका मुख्य उद्देश्य अपने धर्म का प्रसार करना था, इसीलिए भारत के निम्न-वर्ण की बस्तियों के बीच पाठशालाएं खोलकर और आर्थिक रूप से उनकी मदद करते हुए ईसाई प्रचारकों ने धर्म प्रसार का प्रयत्न किया। इस कार्य में ईसाई प्रचार को ज्यादा यश नहीं मिला लेकिन ईसाई धर्म प्रचार से यहां के हिन्दू समाज के विचारकों पर प्रभाव पड़ा। हिन्दू धर्म के मूलभूत दोषों में निहित असमानता पर आधारित वर्ण-व्यवस्था, जाति-व्यवस्था और धार्मिक शुद्धिकरण के प्रति उदासीनता की ओर उनका ध्यान आकृष्ट हुआ। उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक धर्म-विषयक अनेक वाद-विवाद महाराष्ट्र में हुए। महाराष्ट्र में अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव और सम्पर्क में आई पीढ़ी ने शिक्षा के महत्त्व को समझा था। सामाजिक और धार्मिक सुधारों की आवश्यकता उन्हें महसूस हुई। आप इससे पहली इकाई में समाज सुधारकों के द्वारा समाज में चेतना जागृत करने के लिए किए गए प्रयासों से परिचित हो चुके हैं। लोकहितवादी ने इसी आंदोलन के तहत "प्रभाकर" नामक पत्र निकाला जिसमें महाराष्ट्र की तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया। समाज के ढांचे को बदलकर नये समाज की रचना और देश की स्वाधीनता की चेतना जगाने का कार्य किया। अंग्रेजी शिक्षा के कारण उभरी नव चेतना ने मराठी साहित्य के इतिहास को नया मोड़ दिया। जिस परिवर्तन की शुरूआत हो चुकी थी उसकी अभिव्यक्ति साहित्य में होने लगी थी। बल्कि नए प्रकार के साहित्य निर्माण की प्रेरणा भी जाग चुकी थी। इस काल खंड में लिखे गए साहित्य को आधुनिक साहित्य से संबोधित किया गया।

बोध प्रश्न

1) मराठी साहित्य के दो प्राचीन काव्य ग्रंथों के नाम लिखिए।

i) .....

ii) .....

2) महानुभाव संप्रदाय ने संस्कृत भाषा का विरोध और मराठी को क्यों अपनाया? तीन पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

3) निम्नलिखित वाक्य सही या गलत है इस (√) अथवा (X) चिन्ह लगाकर बताइए।

i) ज्ञानेश्वर ने महानुभाव संप्रदाय की स्थापना की थी।

ii) म्हाइमंट ने लिनचरित्र की रचना की।

iii) संत एकनाथ द्वारा रचित "भारुड" रचनाओं ने मराठी भाषा को सम्बद्ध किया।

iv) "पवाडा" काव्य-गायन शैली का उदय शिवाजी के समय की देन है।

v) होनाजी बाला ने केकावलि की रचना की।

19.4 मराठी गद्य साहित्य

आधुनिक काल की एक विशेषता यह है कि इस काल में मराठी गद्य को महत्त्व प्राप्त हुआ। प्राचीन साहित्य में पद्य रचना ही साहित्य का महत्वपूर्ण अंग माना जाता था। विवेचनात्मक लेखन के लिए भी ओवी जैसी पद्य रचना का ही सहारा लेना पड़ता था। गद्य के केवल दो प्रकार मराठी के प्राचीन साहित्य में दिखाई देते हैं वे हैं—बखर साहित्य और महानुभव पंथ का गद्य साहित्य। अंग्रेजो के समय में गद्य महत्व को विशेष मान्यता मिली और उसका स्थान निश्चित हुआ। साहित्य निर्मिती का एक महत्वपूर्ण कारण था—शिक्षा का प्रसार। नए शासन में व्यवहारोपयोगी शिक्षा को विशेष महत्व दिया गया। शिक्षा के उपयोग के लिए अंग्रेजी भाषा की विविध विषयों की किताबो का मराठी में अनुवाद होने लगा। कुछ विषयों की मूल मराठी में रचना होने लगी और इस प्रकार गद्य साहित्य की निर्मिती होने लगी थी। मराठी के प्राचीन गद्य से इस गद्य की रचना सुबोध और अलंकारहीन थी, व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध और निर्दोष वाक्य रचना पर अधिक बल दिया जाने लगा था। इसी शैली का अनुसरण बाद में कृष्णशास्त्री चिपलुणकर और उनके बाद उनके पुत्र विष्णुशास्त्री चिपलुणकर ने भी किया तथा मराठी को एक नया स्वरूप प्रदान किया।

इस गद्य साहित्य का मुख्य हेतु ज्ञान प्राप्ति और ज्ञान प्रसार का था इसलिए उसी दृष्टि से उसकी निर्मिती भी हुई। सदियों से इस ज्ञान प्राप्तियों वंचित समाज को शिक्षा की सुविधा के कारण ज्ञान अमलय भंडार इस गद्य साहित्य से प्राप्त हुआ। अपने देश, समाज के इतिहास, विश्व के इतिहास से सभी को परिचय हुआ। ज्ञान प्राप्ति की लालसा शिक्षित समाज में बढ़ती गई और शिक्षित नवयुवकों ने इस बढ़ती हुई प्यास को ग्रंथ रचनाओं के द्वारा बुझाने का प्रयास किया। मराठी वाचकों को नए विषयों की जानकारी देने और सामाजिक सुधार की आवश्यकता को देखते हुए सामाजिक बुराइयों को दूर करने हेतु कुछ पत्रिकाओं और समाचार-पत्रों का उदय हुआ। ज्ञान प्रसार हेतु "ज्ञानोदय" (ज्ञानप्रकाश), "ज्ञानचक्षु" ये समाचार-पत्रों के और "ज्ञानचन्द्रोदय", "ज्ञानप्रसारक" "ज्ञानदर्पण", "विविध ज्ञानविस्तार", "ज्ञानसंग्रह" आदि पत्रिकाओं के नाम रखे गए। इन पत्रिकाओं का और समाचार-पत्रों का उद्देश्य समाचार देना मात्र नही था बल्कि ज्ञान का प्रसार, मतप्रदर्शन और वैचारिक चेतना जगाना था। इसी उद्देश्य से बाद में मराठी गद्य की महत्वपूर्ण गद्य विधा "निबंध" का जन्म हुआ। पत्रिकाओं और समाचार-पत्रों में लिखे जाने वाले लेख, अग्रलेख और कभी-कभी तो पत्र भी निबंध के रूप में लिखे जाते थे, जिनके द्वारा धार्मिक और सामाजिक सुधारों की ही मुख्य रूप से चर्चा की जाती है। लोकहितवादी, रानडे, गोखले, तिलक, विष्णुशास्त्री चिपलुणकर, बालशास्त्री जांभेकर आदि अग्रणी लेखकों और समाज सुधारकों ने ई. सन्. 1840 के आसपास विविध पत्र-पत्रिकाओं का संचालन किया और मराठी मानस को जागृत करने का प्रयत्न किया। इन्हीं नेताओं ने पत्रकारिता की नींव डाली और महाराष्ट्र में एक नये युग की शुरुआत हुई।

आप देखेंगे कि इसी सम्बद्ध पृष्ठभूमि का आधार बाद में मराठी साहित्य में आने वाले उज्ज्वल साहित्य विधाओं को मिला। खाडिलकर के नाटक, हरिभाऊ आपटे का उपन्यास, साहित्य, केशवसुत की नई कविता इसी पृष्ठभूमि की उपज थी। आइये, अब आपका परिचय मराठी गद्य साहित्य की विधा "निबंध" और उसके प्रमुख अग्रनायक विष्णुशास्त्री की "निबंधमाला" से करवाए।

19.4.1 निबंध

विष्णुशास्त्री चिपलुणकर

महाराष्ट्र में सामाजिक सुधारों के लिए जिन विचारकों ने निबंध को प्रमुख साधन बनाया उनमें विष्णुशास्त्री चिपलुणकर का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। विष्णुशास्त्री के साहित्य में उनका यह प्रयत्न सबसे अधिक सफल रहा। ई. सन् 1874 में उनकी "निबंधमाला" का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। विष्णुशास्त्री संस्कृत और अंग्रेजी भाषा और साहित्य के विद्वान थे। इन दोनों भाषाओं की विशेषताओं का प्रभाव उनके लेखन पर पड़ा। इनके निबंध पाठकों द्वारा बहुत पसंद किए जाते थे। इन्होंने निबंधमाला की शुरुआत "मराठी भाषेची सांप्रतयी स्थिति" नामक निबंध लिखकर की थी। मराठी भाषा के प्रति महाराष्ट्रीयन लोगों में प्रेम जागृत करने का प्रयत्न निबंधों द्वारा किया। ईसाई मिशनरियों द्वारा किए जा रहे ईसाई धर्म प्रसार रोकने का काम भी निबंध द्वारा किया। ब्रिटिश शासन के स्वार्थी नीत का पर्दाफाश किया और पराधीनता के प्रति लोगों के मन में घृणा उत्पन्न कर उनमें स्वाधीनता की चेतना जगाने का कार्य इनके निबंधों द्वारा हुआ। वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से प्रत्येक समस्या का विश्लेषण करते थे। पुराणपंथियों की उन्होंने आलोचना की तो साथ में ही नव-शिक्षितों को भी विदेशियों की दासता से मुक्त होने के लिए सचेत किया। बाद में "निबंधमाला" का प्रकाशन बंद कर "केसरी" और "मराठा' पत्रों का संचालन किया। उनके "निबंधमाला" प्रकाशन से मराठी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारंभ माना जाता है। "निबंधमाला" वास्तव में आधुनिक मराठी गद्य की आधारशिला है।

महाराष्ट्र में चिपलुणकर के अलावा निबंधकारों की श्रृंखला में बालशास्त्री जांभेकर, भाऊ महाजन, ज्योतिबा फुले, लोकहितवादी, बाबा पदमजी, विष्णुबुआ, ब्रह्मचारी, कृष्णशास्त्री, चिपलुणकर (विष्णुशास्त्री चिपलुणकर पिता) रा. भी गुंजीकर आगरकर, शिवरामपंत परांजये, ना. गो. पाफेकर, श्री क. कोल्हटकर, न.चि. केलकर आदि नामवंत साहित्यकारों की निबंध रचनाओं ने तल्लीन स्थिति में सामाजिक अभिसरण का काम किया। "निबंधमाला" में प्रकाशित विष्णुशास्त्री चिपलुणकर का एक निबंध यहाँ नमूने के रूप में दे रहे हैं। जिससे आप आधुनिक गद्य साहित्य की शब्द रचना, शैली और तत्कालीन समस्याओं के प्रति निबंध द्वारा किए जाने वाले प्रयासों से परिचित हो सकेंगे।

हिन्दी अनुवाद

मराठी भाषा की सांप्रत की स्थिति
(निबंधमाला, अंक पहला)

यह विषय बड़ा महत्वपूर्ण है। आज के समय में इस बारे में विचार किया जाना अत्यंत जरूरी है। कारण यह समय देश और भाषा बदलाव का है। आज तक इन दोनों में जो परिवर्तन होते रहे हैं, सब मिलाकर उनकी स्थिति को एक समान मानने से भी चिन्ता की बात नहीं। क्योंकि दोनों में बहुत उलट-पुलट हुआ है फिर इसके आगे जो स्थिति बदलने की आशा नजर आ रही है उसकी तुलना में यह कुछ भी नहीं। इसलिए अब इन दोनों की स्थिति पर विक्षन अपना लक्ष्य केन्द्रित करें।

प्रस्तुत निबंध का विषय भविष्य में देश में से प्रचार का परिवर्तन होने वाला है। यह नहीं है। इस संबंध में बड़े-बड़े इतिहास संशोधक भी अटकलें नहीं बांध सकते हैं। सामान्य जन को केवल ईश्वर पर भरोसा रखकर चुप बैठना पड़ेगा। लेकिन यह निश्चित है कि भाषा की अभिवृद्धि देश के उत्कर्ष का एक बहुत बड़ा साधन है। इसलिए यहाँ उसी पर विचार करेंगे।

मराठी भाषा का इतिहास अर्थात् वह किस भाषा से उत्पन्न हुई, उसमें बाद में क्या-क्या परिवर्तन हुए, आदि बातों का अध्ययन यहाँ जरूरी नहीं। इसलिए उस संबंध में यहाँ पर कुछ

न लिखते हुए आज वह किस स्थिति तक पहुंच चुकी है व उसमें और सुधार होने की आशा है अथवा नहीं, इस पर मेरे मन में जो विचार आ रहे हैं वह पाठक वर्ग को बताना चाहूंगा।

ऊपर कही गई बातों के बारे में हमारे मन में एक निश्चित धारणा बनी है। हमें याद है कि बहुत से लोग यह कहते हैं कि मन के भावों की अभिव्यक्ति करने में मराठी भाषा समर्थ नहीं, जानदार भाषा नहीं। बहुत से शिक्षक अंग्रेजी के पाठ को मराठी में समझाते हुए हतबुद्ध हो जाते हैं। उनमें भी यदि कोई चतुर हो तो, साफ बता देते हैं कि, मराठी भाषा में इसका अनुवाद हो ही नहीं सकता। अपनी भाषा बहुत दरिद्र है। आजकल के विक्षनों ने तो पुराने शास्त्रियों को भी मात दे दी। उन्हें देश भाषाओं का संसर्ग भी नहीं भाता। दस-बीस वर्ष पूर्व शिक्षित लोगों में मराठी में ग्रंथ लेखन करने की इच्छा दिखाई देती थी। लेकिन अब यह भाषा किसी को नहीं भाती। अपने विचारों को प्रदर्शित करना हो तो वे अंग्रेजी से निकृष्ट भाषा के द्वारा लोगों के पहुंचने का प्रयास दिखाई नहीं देता। लेकिन धर्म का उपदेश अथवा देशहित संबंधी मत प्रदर्शित करना हो, या अशिक्षित लोगों से बातचीत करनी हो तो अपनी योग्यता को भुलाना पड़ता है। इसमें वे अपना बहुत अनादर समझते हैं। विषय का प्रतिपादन करते समय अथवा गहन अर्थ समझते हुए मराठी की अयोग्यता मानते हुए, अंग्रेजी शब्दों का बार-बार अपने भाषणों में प्रयोग करते हैं। आज ये शब्द बड़ी तेजी से उपयोग में लाए जा रहे हैं। ऐसे शब्दों की उत्पत्ति कैसे हुई, उनके संबंध में लोकमत क्या है। इन बातों की चर्चा यहां पर नहीं की जा सकती। आगे अन्य किसी निबंध में इस पर विचार करेंगे। अपनी भाषा का इस प्रकार अपमान और तिरस्कार करने का कोई कारण दिखाई नहीं देता। जिस भाषा के बोलने वालों ने दिल्ली अटक तक अपनी विजयपताएं लहराई थी, जिस भाषा में तुकाराम-रामदास जैसे संतों ने अपने अभंग और श्लोकों की रचना की, मुक्तेश्वर, वामनपंडित, मोरोपंत जैसे कवियों ने अपने समय और प्रासादिक वाणी द्वारा जिसे संस्कृत भाषा की श्रेणी में लाकर रखा, ऐसी भाषा को गंभीरता और सरसता जैसे गुणों के लिए अन्य भाषा का सहारा लेने की जरूरत नहीं। ये मेरा विश्वास है। ये बात किसी को झूठी स्तुति लग सकती है लेकिन मेरा पूर्ण विश्वास है कि जिस किसी को अपनी भाषा की योग्यता जानने की इच्छा हो, वह मोलस्वर्थ और क्यांडी द्वारा लिखित कोश की प्रस्तावना पढ़कर देखे। मोलस्वर्थ कृत कोश तो शुद्ध मराठी भाषा का मार्मिक ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा करने वालों के लिए बड़ा ही उपयोगी है। वह बड़े परिश्रम और आस्था से तैयार किया है और उसमें अपनी भाषा का विचित्र शब्द भंडार है। औरों के मत से उसका मत भिन्न क्यों हुआ? इसलिए कि कोश रचना करते समय उसे संपूर्ण भाषा का भंडार ढूंढना पड़ा और इसलिए इस भाषा के गुणों से उसका परिचय हुआ। लेकिन मोलस्वर्थ के मत को कोई पढ़कर देखे तब तो अपनी भाषा के महत्व को कोई जान पाएगा। हमारा अपनी भाषा संबंधी जो भी मत हो वही सही है, उसमें सगोरा साहेब अपना मत क्यों कर दे? इस प्रकार की अवहेलना और अपनी भाषा संबंधी लज्जास्पद अज्ञान के कारण आज तक मराठी भाषा की उपेक्षा होती रही। जिन्हें उसकी प्रगति और वृद्धि के लिए निरंतर प्रयास करने चाहिए वे उनके आलस्य, कृतज्ञता और पंडितमान्ता जैसे दोषों के कारण उसकी (भाषा) बड़ी हानि हो रही है और दिन-ब-दिन क्षय की ओर बढ़ रही है।

बोध प्रश्न

4) बॉम्बे एज्युकेशन सोसायटी की स्थापना किसने की थी? और इसका उद्देश्य क्या था?

.....

5) भारतीय भाषाओं को प्रोत्साहन देने हेतु किस कालेज की स्थापना की गई थी?

.....

6) महाराष्ट्र में सामाजिक सुधार आंदोलन में किन पत्रिकाओं और समाचार-पत्रों का विशेष योगदान रहा है। कोई चार नाम बताइए।

.....

.....

.....

.....

7) मराठी साहित्य में निबंध की शुरुआत किस रचना से मानी जाती है।

.....

.....

8) विष्णुशास्त्री चिपलुणकर द्वारा लिखित निबंधों की कुछ विशेषताएं बताइए।

.....

.....

.....

.....

.....

19.4.2 उपन्यास

मराठी उपन्यास की परंपरा हिन्दी उपन्यास की परंपरा से अपेक्षाकृत पुरानी है। मराठी में उपन्यास "कादंबरी" कहा जाता है और अंग्रेजों के शासनकाल में ही कादंबरी का उदय हो चुका था। मराठी का पहला उपन्यास बाबा पदमजी का "यमुना पर्यटन" (1857) है, जिसमें विधवा की स्थिति का करुण चित्रण किया है, अंत में नायिका यमुना ईसाई धर्म के आश्रय में चली जाती है और ईसाई धर्म-प्रचार का कार्य करने लग जाती है। लेकिन "यमुना पर्यटन" से पहले मराठी में अनुवाद के द्वारा कथात्मक साहित्य प्रकाशित हुआ था। जिसमें प्रमुख है स. का. छत्रे का "बालचत्र" (1828), इसाप-नीति कथा (1829) हरि केशव जी का किया हुआ "पिलिग्रिम प्रोग्रेस" का अनुवाद "यांत्रिक क्रमण" (1841) कृष्णशास्त्री चिपलुणकर का "अरबी भाषेतील सुरस व चमकारिक गोष्ठी" (1861) हातिमताई, बखत्यारनामा आदि अनुवाद मराठी कथा साहित्य के उदयकाल में हुये। "बेतालपंचविशी", "सिंहासन बतिशी", "पंचोपाख्यान" "शुकबहातरी" इत्यादि अनुवाद हिन्दी में किये गये। शेक्सपियर के नाटकों के अनुवाद भी कथात्मक रूप में किये गये।

उपन्यासकार हरिनारायण आपटे से पहले उपन्यास साहित्य में अद्‌भुतरम्य उपन्यास, ऐतिहासिक उपन्यास और सामाजिक उपन्यास लिखने की परंपरा चली आ रही थी। सामाजिक उपन्यास की शुरुआत बाबा पदमजी के "यमुना पर्यटन" से मानी जाती है। इसी परंपरा को निभाते हुए 1829 में म. वि. हालकर ने उनके उपन्यास "नारायणराव और गोदावरी" में उन्होंने प्रेम-विवाह करने वाले साहसी युवक युवती की दुखांत कहानी का चित्रण किया है। वि. को. ओक का उपन्यास "शिरस्तेदार" 1879 में लिखा गया जिसमें सरकारी कर्मचारियों की घूसखोरी का वर्णन है। कुछ सामाजिक उपन्यास अंग्रेजी से अनूदित किये गये जिनमें "जग हे असे आहे", "वाईकर भटजी", "पुरी हौस फिटली", "मथुरा" आदि प्रमुख हैं। इसी सामाजिक उपन्यासों की श्रृंखला को हरिनारायण आपटे ने अपने सामाजिक उपन्यासों द्वारा समृद्ध किया। हिन्दी उपन्यास साहित्य के विकास में जो स्थान और महत्व प्रेमचंद का है, वही मराठी उपन्यास साहित्य में इ. ना. आपटे का है।

हरिनारायण आपटे (1885-1920)

हरिनारायण आपटे मराठी साहित्य जगत में हरिभाऊ नाम से जाने जाते थे। हम भी अपने इस उपन्यास साहित्य के परिचय में उनका इसी नाम से उल्लेख करेंगे।

हरिभाऊ का पहला उपन्यास "मछलीह स्थिति" 1885 में "पुणे वैभव पत्र" में क्रमशः प्रकाशित हुआ। सामाजिक उपन्यासों की यह पहली शुरुआत थी। हरिभाऊ प्रेमचन्द की तरह आदर्शोन्मुख यथार्थवादी थे। अपने-अपने उपन्यासों में समाज के यथार्थ चित्र को जीवन की समस्याओं को

प्रतिबिम्बित कर समाज और राष्ट्र जागृति में महत्वपूर्ण योगदान देना उपन्यासकार का कर्त्तव्य समझते थे। इनके उपन्यासों में निश्चित जीवनदृष्टि को अपनाकर यथार्थ को अभिव्यक्त करने का प्रयास दिखाई देता है। इनको उपन्यासों के पात्र इतने वास्तविक लगते हैं कि तत्कालीन समाज में हरिभाऊ के पाठक उनके पात्रों को प्रत्यक्ष ढूंढ़ने का प्रयास करते थे।

अंग्रेजों के आगमन के तुरंत बाद की पीढ़ी को लेकर 1920 तक के समाज का क्रमिक विकास इनके उपन्यासों में मिलता है। सामाजिक जीवन, समस्याएं, राजनैतिक विचार-प्रवाह, सुधारकों-पुराणपंथियों के वाद-विवाद तथा मध्यमवर्गीय जीवन का सच्चा प्रतिबिंब हरिभाऊ के उपन्यासों में मिलता है।

पूंजीवादी संस्कृति और वैज्ञानिक सभ्यता के आगमन के बाद भारतीय विचारधारा में जो अनेक परिवर्तन हुए उनमें नारी विषयक दृष्टिकोण संबंधी परिवर्तन क्रांतिकारी और महत्वपूर्ण हैं। नारी स्वतन्त्रता की विचारधारा के मूल मानव-मात्र में समानता की कल्पना अभिनिहित है। जब मानव की प्रतिष्ठा का विचार किया जाता है तब समाज में नारी उत्पीड़न, अपेक्षा की ओर ध्यान जाना स्वाभाविक है। मराठी का उपन्यास साहित्य नारी विषयक समस्याओं के प्रति क्रांतिकारी दृष्टिकोण रखता है। मराठी के कुछ उपन्यास तो नारी पात्र को प्राधान्य देकर ही लिखे गये हैं। नारी विषयक नयी मान्यताओं ने संवेदनशील लेखकों को बौद्धिक और भावनात्मक स्तर पर हिला दिया था। तत्कालीन उपन्यासों में नारी-जागरण का स्वर सबसे ऊँचा दिखाई देता है। हरिभाऊ और उनके युग के बहुतांश लेखकों ने नारी की स्थिति का चित्रण ही नहीं किया, बल्कि उसके अस्तित्व की आकांक्षाओं की ओर भी संकेत किया है। हरिभाऊ ने नारी का चित्रण अत्यंत उदार और सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण से किया है। नारी की दयनीय स्थिति का वास्तविक चित्रण उनके उपन्यासों में मिलता है। पितृसत्तात्मक समाज में और संयुक्त परिवार में नारियों पर पुरुष और स्त्री दोनों ओर से होने वाले अत्याचार, मर्यादा-पालन के कठोर प्रतिबंध, शारीरिक और मानसिक कष्ट, धार्मिक कर्मकांडों पर अत्यधिक विश्वासों के कारण नारी की कठपुतली के समान स्थिति, आदि पर उनके उपन्यासों में प्रकाश डाला है। सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन के अंतर्गत समाज सुधार के द्वारा नारी की स्थिति में सुधार लाने के लिए जिन महत्वपूर्ण बातों पर अत्यधिक बल दिया गया था। उनमें प्रमुख हैं—बाल विवाह का निषेध, विधवा विवाह का समर्थन, नारी शिक्षा का प्रचार तथा नारी स्वतन्त्रता का समर्थन।

आइए, हम हरिभाऊ आपटे के उपन्यासों में नारी-जागरण की चेतना के स्वर को उन्होंने किस सशक्त रूप में अभिव्यक्त किया है देखें।

बाल विवाह समस्या का स्वरूप

हरिभाऊ आपटे का एक उपन्यास "मी" (मैं) में भावानंद की बहन ताई का विवाह बूढ़े व्यक्ति के साथ किया जाता है। लेकिन वह बूढ़े पति के साथ रहना स्वीकार नहीं करती और अपने भाई के साथ रहने लगती है। स्वयं शिक्षा प्राप्त कर सुंदरी के साथ घर-घर में जाकर नारी शिक्षा का प्रचार करने लगती है। सुंदरी, जो भावानंद से प्रेम करती है, नारी उद्धार के लिए शिक्षा प्रचार में साथ देने हेतु अपने प्रेम को भुला देती है और आजीवन अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा करती है।

बाल विवाह से जुड़ी एक और नारी समस्या थी बाल-विधवा और केशवपन। नारी जाति पर पुरुष समाज द्वारा थोपे गए नीति मूल्यों, वर्चस्व तथा धर्म के प्रतिबंधों का यह सबसे घिनौना रूप था। हरिभाऊ आपटे ने उपन्यास "पण लक्षात कोण घेतो" (लेकिन कौन समझ पाता है?) में बाल विधवा और केशवपन के क्रूर प्रसंगों का प्रभावशाली चित्रण किया है। "पण लक्षात कोण घेतो" की नायिका यमू बाल विधवा है। उससे दो गुना बड़ी उसकी सास के गर्भाधान संस्कार के लिए ब्राह्मण आने से इंकार करता है, क्योंकि यमू का केशवपन संस्कार नहीं हुआ है। फिर यमू का जबरदस्ती केशवपन किया जाता है। इस करुण प्रसंग को हरिभाऊ ने चित्रित करते समय तत्कालीन स्त्री-पुरुषों के बीच की विषमता को और स्त्री की असहाय अवस्था को चित्रित करने का प्रयास किया है।

हरिभाऊ आपटे ने अपने उपन्यास में स्त्री समस्या का जो स्वरूप चित्रित किया है वह केवल विधवाओं की स्थिति तक सीमित नहीं है, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक बंधनों में जकड़ी हुई स्त्री और उसके जीवन के दुखों का दर्शन यहाँ पर विविध स्वरूपों में होता है। समाज-व्यवस्था में उसका स्थान दोयम दर्जे का है अतः पुरुष सत्तात्मक कुटुंब में उसका स्थान पालतू जानवर

से बेहतर नहीं था। बाल-विवाह, केशवपन, विधवा विवाह निषेध, विषम विवाह, शिक्षा लेने पर बंदी आदि अन्यायपूर्ण रूढ़ियों की जंजीरों से स्त्री श्रृंखलाबद्ध थी। आपटे के उपन्यासों में केन्द्रित समस्याएं तत्कालीन समाज में आरूढ़ थी। जिसके कारण स्त्री को प्रताड़ित किया जाता, उसकी स्वतन्त्रता, अस्तित्व को पूरी तरह से नकारा गया था।

सामाजिक सुधार आंदोलनों, स्त्री विषयक कानून बनने से कुछ परिवर्तन दिखाई देने लगा था जिसका चित्रण हरिभाऊ के एक और उपन्यास (1897) "मी" में हुआ है। बदलती सामाजिक स्थिति के अनुसार हरिभाऊ के उपन्यासों की स्त्रियाँ शिक्षा प्राप्त करने लगी। शिवरामपंत सुंदरी को मिशनरी स्कूल में दाखिल करते है। इसी उपन्यास का एक चरित्र "ताई" शिक्षित होने के कारण अत्याचारी पति से अलग रहने का निर्णय ले पाती है। हिन्दू स्त्रियाँ भी पुनर्विवाह करने के लिए आगे आने लगी थीं। सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया अधिक तेज होने लगी थी। 1916 में अण्णासाहेब कर्वे द्वारा महिला विद्यापीठ की शुरुआत इसी परिवर्तन का परिणाम था। लेखक तत्कालीन सामाजिक वास्तविकता से प्रेरणा ग्रहण करते हैं और उस प्रेरणा निर्मित साहित्य रचना समाज-परिवर्तन चेतना का निर्माण करती है। अच्छी साहित्य रचना और समाज के बीच इस प्रकार का दोहरा संबंध है।

वा. भ. जोशी के उपन्यास "रागिणी" (1915) में पुनर्विवाह की समस्या को चित्रित किया है। रागिणी के पति भैयासाहब की मृत्यु के कुछ वर्षों बाद रागिणी के पुनर्विवाह की चर्चा चलती है। वेदांत को अभिमानी शास्त्री जी कहते हैं, मेरा मत है कि उसको पुनर्विवाह कर लेना चाहिए। अब लोग भी पुनर्विवाह के उतने खिलाफ नहीं रहे।

वा. भ. जोशी के "सुशीले चा देव" में सुशीला बलवन्तराय से पुनर्विवाह करते समय किसी प्रकार का नैतिक अथवा धार्मिक तनाव का अनुभव नहीं करती। वह पुनर्विवाह को उसी रूप में स्वीकार करती है जिस रूप में प्रथम विवाह को किया जाता है।

लगभग 1857 से मराठी उपन्यासों में स्त्री समस्याओं पर प्रकाश डालकर उन्हें दूर करने का प्रयत्न मराठी लेखकों ने अपनी रचनाओं के द्वारा किया और जिसका काफी हद तक समाज परिवर्तन पर परिणाम भी हम देख रहे हैं। आप मराठी के नामवंत उपन्यासकार हरिभाऊ आपटे की रचनाशीलता से परिचित हो गए। आइए, अब हम आपके मराठी के एक अन्य उपन्यासकार और समाज सुधारक वि. स. खांडेकर के उपन्यास सामाजिक परिवर्तन चेतना को किस प्रकार गति देने में सफल हुए इस से परिचित कराते हैं।

सुधारवादी आंदोलनों के पहले से ही महाराष्ट्र में वैचारिक जागृति हो चुकी थी, जिसका विस्तार से आपने इस इकाई के शुरू में ही परिचय प्राप्त किया है। वर्ण व्यवस्था को और ब्राह्मणों द्वारा फैलाएं धार्मिक आडंबर को लोकहितवादी, महात्मा फुले, डॉ. अम्बेडकर ने चुनौती दी थी। महात्मा फुले, ने सत्यशोधक समाज के माध्यम से ब्राह्मणों की श्रेष्ठव भावना के विरोध में ब्राह्मणेतर वर्ग में विद्रोह की भावना को जगाया था । डॉ. अम्बेडकर ने जातिप्रथा, वर्णव्यवस्था को बनाए रखने में ब्राह्मणवाद की चालाकी का पर्दाफाश करके, समानता, स्वतंत्रता और भाईचारे के सभी मूल्यों पर आधारित समाज रचना की मांग की और उसके लिए अछूतों की समस्या राजनैतिक मोर्चे पर हल करने का प्रयत्न किया। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध और बीसवीं सदी के प्रथम दो दशकों तक महाराष्ट्र के विचारकों ने जाति और वर्ण विरोध पर बहुत लिखा था।

मराठी के लगभग सभी उपन्यासकारों ने जाति भेद का विरोध किया और इस व्यवस्था को बदलने के लिए प्रेम विवाह का समर्थन किया। वि. स. खांडेकर ने तत्कालीन सामाजिक समस्याओं को अपने उपन्यासों में चित्रित करने के साथ-साथ नयी समाज-व्यवस्था की आवश्यकता का भी जोरदार समर्थन किया है। हरिनारायण आपटे के बाद मराठी उपन्यासों में सामाजिक सुधार आंदोलनों के पश्चात् समाज में आए वैचारिक परिवर्तन को वास्तविक रूप में चित्रित करने का श्रेय खांडेकर को दिया जाता है। आइए, उनके कुछ उपन्यासों के द्वारा उनके इस योगदान का परिचय प्राप्त करें।

.....

.....

.....

10) "हरिनारायण आपटे के उपन्यासों में नारी जागरण का स्वर सबसे ऊँचा दिखाई देता है।" इस कथन का स्पष्टीकरण लगभग पांच पंक्तियों में कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

अभ्यास

1) सनातनी हिंदू धर्म और पुरुष सत्तात्मक समाज-व्यवस्था ने नारी के शोषण की जो घिनौनी प्रथाएं खोज निकाली थी वो हैं "बाल विवाह", "विधवा विवाह का निषेध" इस कथन का समर्थन हरिभाऊ आपटे के उपन्यासों में वर्णित प्रसंगों द्वारा कीजिए :

i) बाल विवाह

ii) विधवा विवाह निषेध

उपन्यासकुमार वि. स. खांडेकर

"दोन मने" वि. स. खांडेकर द्वारा लिखित इस उपन्यास का नायक अछूत है। वह जिस गांव में अस्पृश्यता के विरोध में सत्याग्रह के लिए जाता है वहाँ अभिनेत्री चपला से उसकी मुलाकात होती है। दोनों में प्रेम बढ़ता है और परिणती विवाह में हो जाती है।

वि. स. खांडेकर ने अपने उपन्यासों में आदर्शवाद को अधिक अपनाया है लेकिन "दाने मने" में खांडेकर हृदय परिवर्तन के गांधीवादी तरीके को हरिजनों की समस्या को हल करने में अपर्याप्त समझते हैं। उनकी मान्यता है कि यह तरीका वर्ग और वर्ण संघर्ष को होने से रोकता है। दोन मने का नायक सामाजिक-क्रांति करना चाहता है। गांधीवादी विचारों से प्रेरित नायक सुबोध कहता है "समाज के सारे अन्याय ऐसे ही हैं। अन्याय दूर करने के लिए सभी गुलामों को एकजुट होकर संघर्ष करना होगा। संघर्ष की यह प्रवृत्ति हरिजनों में पैदा हुई है। उसे जीवित रखने तथा शक्तिशाली बनाने के लिए सत्याग्रह की आवश्यकता है। सभी हरिजनोद्धार क्रांति के बाद ही संभव है।"

डॉ. बाबा साहेब आंबेडकर उस समय सामाजिक क्रांति की बात कर रहे थे और उनके द्वारा उठाए गए कदम संपूर्ण क्रांति का ही संकेत दे रहे थे। कालाराम मंदिर सत्याग्रह, चवदार तालाब सत्याग्रह, पार्वती मंदिर सत्याग्रह आदि इसी की श्रृंखला में चल रहे थे। उपरोक्त नायक द्वारा कही गयी क्रांति भाषा डॉ. आंबेडकर के चलाए गए चेतना आंदोलन का परिणाम थे।

खांडेकर ने इसी जाति भेद की समस्या दूर करने के उद्देश्य से लिखा अन्य उपन्यास है "हिरवा चाँफा"। जिसका नायक कुनबी है और नायिका ब्राह्मण। वह अपने पिता की इच्छा की उपेक्षा कर निम्नवर्गीय और देशभक्त युवक कांबली को प्यार करती है। इनके प्यार को जातिभेद की दीवारें रोक नहीं पाई हैं। जातिभेद समस्या तत्कालीन समाज की ज्वलंत समस्या थी। इसी प्रकार बाल विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह की समस्या को भी खांडेकर जी ने अपने लेखन द्वारा उजागर किया है। 1930 में प्रकाशित खांडेकर के उपन्यास "कांचन मृग" में सुधाकर विधवा सुधा से पुनर्विवाह करता है। अनमेल विवाह के कारण कौटुंबिक जीवन ध्वस्त हो जाता है। वैवाहिक असंतोष निर्माण होना अनमेल विवाह का परिणाम है। खांडेकर जी ने "जलालेला मोहर" में इसी ज्वलंत समस्या का चित्रण किया है।

वि. स. खांडेकर जी ने नारी और पुरुष को परस्पर विचारों, रुचियों तथा व्यक्तियों के प्रति सहिष्णु होने का संदेश दिया है। विवाह विच्छेद के कानून की आवश्यकता बताकर अनमेल विवाह की समस्या पर एक मार्ग सुझाया है।

मध्यवर्ग का चित्रण : वि. स. खांडेकर स्वयं निम्न मध्यवर्ग की कठिनाइयों, विडंबनाओं और चिंताओं से जूझ रहे थे। मेहनतकशी और गरीबों के प्रति उनके मन में सहानुभूति होना स्वाभाविक सी बात थी। उनके उपन्यासों के अधिकतर नायक सुविधा और संपन्नता का शहरी जीवन त्याग कर देहातों में आते हैं। उनके उपन्यास "कांचन मृग", "दोन ध्रुव", " उल्का" और "दोन मने" में मध्यमवर्गीय युवकों के मन में गाँवों में जाकर वहाँ के गरीब, किसान, मजदूर और अछूतों की समस्याओं को हल करने की इच्छा है। परंतु मध्यवर्गीय समाज के गांवों के प्रति सहानुभूतिशील रवैये के अलावा वे वहां के यथार्थ जीवन को अपना नहीं सकते। उनके प्रेम संबंधी रोमानी आदर्श वहाँ भी कायम ही रहते हैं। फिर भी सुख-सुविधापूर्ण जीवन को त्याग कर गावों के असुविधाजनक माहोल में युवक वर्ग क्रांति की प्रेरणा जगाने के लिए कार्य करने में तत्पर हैं। उन्होंने मध्यवर्गीय युवकों को संदेश दिया था कि भविष्य की समाज-व्यवस्था के लिए वे क्रांति के लिए आवश्यक मनोभूमि उत्पन्न करने में स्वयं कष्ट और यंत्रणा सहन कर सहयोग दे।

"अश्रू" में (1950) खांडेकर जी ने मध्यवर्ग की आर्थिक कठिनाइयों का चित्रण किया है। उनका मध्यवर्ग के प्रति पूरा विश्वास था कि यही वर्ग क्रांति ला सकता है। वे कहते हैं—"सामाजिक क्रांति को अंतिम सीमा तक ले जाने की शक्ति इस वर्ग में उत्पन्न न होना स्वाभाविक ही है। पद-दलित वर्ग का प्रक्षोभ ही सच्ची क्रांति की आग प्रज्वलित कर सकता है। परंतु इस क्रांति के लिए साधना की आवश्यकता है—यह मध्यवर्ग के व्यक्ति ही कर सकते हैं। ऐसे व्यक्ति अपनी-अपनी आत्मिक प्रेरणा के कारण अपनी वर्गीय सीमाओं को लांघ सकते हैं। मध्यवर्ग के विशेष व्यक्तियों में—जिनकी आध्यात्मिक भूख प्रबल होती जाती है—ही क्रांति के लिए पौषक बुद्धि तथा भावना का योग्य समन्वय होता है।" (दोन ध्रुव)

उनके मध्यवर्गीय नायक सामाजिक और आर्थिक विषमता को प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहते हैं। उनके मन में शोषित समाज के प्रति सहानुभूति है। इसलिए मजदूरों और किसानों का जीवन देखने के लिए शहरों से गांवों में मजदूर, किसानों के बीच जाकर रहने लगते हैं। वि. स. खांडेकर का मानना था कि "मध्यवर्ग आंखों वाला बुद्धिवादी वर्ग हैं। उसका विद्रोह अंध नहीं होगा, उसकी महत्ता जब तीव्र ध्येयवाद से प्रेरित होती है तब सहज ही वह क्रान्ति का नेतृत्व कर सकती है। हर प्रकार की सामाजिक विषमता का विरोध करने में महाराष्ट्र में मध्यवर्ग ही अग्रसर था।" लेकिन मध्यवर्ग के प्रति उनकी यह आस्था धीरे-धीरे कम होती गयी। सामाजिक क्रांति के लिए मध्यवर्ग को अनेक सीमाओं को पार करना पड़ता, जोकि उसके लिए संभव नहीं था। परिणामस्वरूप खांडेकर जी ने अपने उपन्यास "हिरवा चाँफा" और "दोन मने" के लिए नायक क्रमशः कुनबी और महार जाति से लिए हैं। (कुनबी और महार जाति महाराष्ट्र में निम्न जातियाँ हैं) वि. स. खांडेकर का विश्वास गांधीवादी आदर्शवाद में था, इसलिए उनके नायक शहरों से गांवों की ओर अग्रसर होते हैं, लेकिन बाद में उनका विश्वास साम्यवाद में अधिक बढ़ता गया। आगे वे गांधीवाद का विरोध करते हुए वर्ग-चेतना की बात करते हैं। वर्गीय जागृति के परिणामस्वरूप आने वाली क्रांति को अधिक महत्व देते हैं। देखिए उनके उपन्यास "पांढरे ढग" (सफेद बादल) का नायक अभय कहता है—"गांधीवाद। गाँधी जी ने बहुजन समाज को अपनी सादगी से अंकित किया। परन्तु गांधी जी क्रांति कहाँ चाहते हैं, यंत्र-युग के कारण उठी हुई समस्याओं को वे पुराणपोथियों के तत्वों से हल करना चाहते हैं। वैयक्तिक प्रश्न आत्मिक हो सकते हैं, लेकिन समाज आत्मिक सिद्धान्तों पर जिन्दा नहीं रह सकता। शराबबंदी तथा संत-तिनियमन गरीबों के लिए आवश्यक है, परन्तु गरीबों को गांधी सलाह देंगे— तुम भाई-बहनों की तरह रहो। गांधी के पास हृदय है परन्तु सामाजिक मन नहीं। समाज के मनुष्य का दुख-सुख वे उसकी दृष्टि से नहीं देख सकते।" (पांढरे ढग, पृ. 206)

वि. स. खांडेकर समाजवाद को ही सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण हथियार मान रहे थे। उनकी यह धारणा थी कि अछूतों, गरीबों का प्रश्न मूलतः आर्थिक है और गांधीवादी मार्ग से उसका समाधान नहीं हो सकता। खांडेकर के मन में गरीब जनता के प्रति सच्ची सहानुभूति है, जिनके दरिद्र जीवन का चित्रण उन्होंने अपने मध्यवर्गीय नायकों के माध्यम से किया। मार्क्सवाद के प्रति उनका रूझान बढ़ गया था और गांधीवादी विचारों के खोखलेपन को वे खुद देख चुके थे। खांडेकर बार-बार गांधीवाद, समाजवाद और यथार्थ की तरफ मुड़ते हुए दिखाई देते

है। उनका उपन्यास "अश्रू" में वे साम्यवाद का विरोध करते हुए दिखाई देते हैं तो "क्रौंच वध" में गांधीवाद की ओर आकृष्ट हुए हैं। उनका "ययाति" जिसके लिए उन्हें ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला था रोमानी प्रवृत्ति का उपन्यास है। इस प्रकार आपने देखा कि खांडेकर ने तत्कालीन युग के बदलते विचारों, प्रवृत्तियों और संदर्भों को अपने उपन्यासों में समेटना चाहा और सामाजिक परिवर्तन के उस काल में अपनी साहित्य रचनाओं द्वारा नया दृष्टिकोण, विचार देने का सफल कार्य किया है।

अभ्यास

2) "लेखक अपनी रचना द्वारा सामाजिक परिवर्तन लाने हेतु तत्कालीन सामाजिक वास्तविकता से प्रेरणा ग्रहण करता। है।" इस कथन का हरिभाऊ आपटे और वा. म. जोशी के उपन्यासों के उदाहरण द्वारा विवेचन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

बोध प्रश्न

11) वि. स. खांडेकर ने अपने उपन्यासों में तत्कालीन समय की कौन-कौन सी समस्याओं को उठाया है?

.....

.....

.....

.....

12) वि. स. खांडेकर गांधीवादी आदर्शवाद को सामाजिक क्रांति को रोकने वाला तथा दलितों की समस्या को हल करने में अपर्याप्त तरीका क्यों मानते हैं?

.....

.....

19.4.3 नाटक

मराठी नाटकों का प्रारंभ पौराणिक कथाओं पर आधारित नाटकों से हुआ है। विष्णुदास भावे नामक नाटककार ने लगभग पचास आख्यान लिखे थे। ये नाटक आख्यान के रूप में लिखे गए थे। अंग्रेजों के आगमन और उसके बाद शिक्षा के विकास के साथ परिस्थितियाँ बदलने लगी थीं। बंबई विश्वविद्यालय और उससे संबद्ध महाविद्यालयों की स्थापना हुई। उनमें संस्कृत और अंग्रेजी नाटक पाठयक्रम में पढ़ाए जाने लगे। यहीं से संस्कृत और अंग्रेज़ी नाटकों के अनुवाद की परंपरा शुरु हुई । संस्कृत नाटकों में "उत्तररामचरित्र", "शाकुन्तल", "मृच्छकटिक" आदि नाटकों के अनुवाद हुए। उसके एक दशक बाद अंग्रेजी नाटकों के विशेषकर शेक्सपियर के नाटकों के अनुवाद किए गए। जिनमें "ओथेलो" (1861), "टेम्पेस्ट" और "जूलियस सीजर" (1872) प्रमुख हैं। मराठी नाटकों पर इन दोनों ही प्रकार के नाटकों का प्रभाव पड़ा। इसी प्रभाव को ग्रहण कर विनायक जनार्दन कीर्तने ने एक मौलिक नाटक की रचना की जिसका नाम था—"माधवराव पेशवा" (1861)। इस नाटक से मराठी नाटक का प्रारंभ माना जाता है। बाद में उन्होंने "जयपाल" नाटक की रचना की। यह नाटक श्रृंगार रस प्रधान था। इन्होंने ऐतिहासिक और कल्पनारम्य प्रवृत्ति के नाटकों का प्रारंभ किया।

मराठी नाटक अपने वास्तविक रूप में अण्णासाहेब किर्लोस्कर के नाटक "शाकुन्तल" (1880) में प्रकट हुआ। पुराने पौराणिक नाटकों, प्रहसनों और उर्दू के नाटकों में जो कुछ सीखने योग्य था वह सब ग्रहण करके उन्होंने आधुनिक मराठी नाटकों का नया स्वरूप निर्मित किया। उनके प्रमुख नाटक "शाकुन्तल" सौभद्र और "रामराज्य वियोग" हैं। किर्लोस्कर के नाटक में नाटकीय कौशल और गीतों में विशिष्ट सौन्दर्य है मराठी नाटकों में संगीत का स्थान प्रमुख रहा है। नाटक का अधिकांश हिस्सा गीतों के माध्यम से ही प्रस्तुत किया जाता था। किर्लोस्कर ने अपने नाटकों में संगीत का स्तर ऊँचा उठाया और उनके गीतों में अधिक औचित्य और मार्दव है। इन विशेषताओं के कारण वे मराठी नाटक के जनक कहलाते हैं।

किर्लोस्कर के प्रतिभाशाली शिष्य ग. बं. देवल ने किर्लोस्कर की परंपरा को जीवित रखा। उन्होंने तीन अंग्रेजी नाटकों के और दो संस्कृत नाटकों के मराठी रूपांतर किए। उनकी सर्वोत्तम रचना "शारदा" (1899) है। यह मराठी का पहला संपूर्ण सामाजिक नाटक है। बाल विवाह के दुष्परिणामों पर आधारित यह नाटक है। बाल विवाह को रोकने का शारदा ऐक्ट उस समय तक पास हो चुका था। "शारदा" में एक लोभी पिता के लोभ के कारण अपनी कन्या का विवाह एक ऐसे वृद्ध से कर देता है जो कुछ ही घड़ी में मर सकता है।

स्त्री शिक्षा, स्त्री स्वातंत्र्य, बाल विवाह, स्त्री पुनर्विवाह आदि तत्कालीन समय में चर्चा के विषय थे। अतः "शारदा" को मराठी प्रेक्षकों ने पसंद किया। इस नाटक ने नाटक की सामाजिक उपयोगिता कैसे है, इस बारे में साहित्यिकारों को सोचने पर मजबूर किया। कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर, श्री कृ. कोल्हटकर, मामा वरेरकर, नरसिंह चिंतामण केकर, रामगणेश गडकरी आदि नाटककारों ने समय की आवश्यकता को समझते हुए अपने नाटकों को सामाजिक समस्याओं को अभिव्यक्त करने और सामाजिक परिवर्तन को गति देने के लिए ऐसे ही विषयों को प्रस्तुत किया। रामगणेश गडकरी ने "एकच प्याला" में मद्यपान से एक परिवार के विनाश का चित्रण किया है। "प्रेम सन्यास" में विधवा विवाह जैसी विवाह विषयक समस्याओं पर विचार किया है। आइए इस समय के एक प्रमुख नाटककार कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर (1897-1920) के सामाजिक, राजनैतिक और वैयक्तिक ध्येयवादिता के नाटकों का परिचय प्राप्त करें।

कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर (1897-1920)

खाडिलकर मराठी नाटक क्षेत्र में ध्येयवादी नाटककार के रूप में जाने जाते हैं। सर्वप्रथम राजनीतिक, सामाजिक और उदात्त ध्येय का चित्रण उन्होंने अपने नाटकों द्वारा किया। नाटक केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि नाटक के द्वारा नया दृष्टिकोण और चेतना निर्माण की जा सकती है, यह प्रथम बार खाडिलकर ने अपने द्वारा नाटकों द्वारा दिखा दिया था।

19.5 मराठी पद्य साहित्य

कविता

अंग्रेजों के आगमन के बाद शिक्षा के प्रचार-प्रसार के कारण आधुनिक युग का मराठी गद्य नए सिरे से प्रारंभ हुआ था। परन्तु कविता के क्षेत्र में यह बात नहीं थी। काव्य कई शतकों की परंपरा के साथ तब भी विद्यमान था। मोरोपंत ने अपने काव्य रचनाओं द्वारा एक काव्य परंपरा ही निर्मित की थी। कवि मोरोपंत की काव्य परंपरा का अनुसरण करने वाले कवियों की एक लंबी कतार खड़ी थी। मोरोपंत परंपरा का स्वरूप अर्धलौकिक और अर्ध-पौराणिक था। काव्य के लिए पौराणिक कथाओं का आधार लिया जाता था। भारत-भागवत रामायण को मुख्य रूप से आधार बनाया जाता था। ईश्वर भक्ति का एक साधन के रूप में चरित्र गायन को काव्य का रूप दिया जाना स्वाभाविक था। ये रचनाएँ मुख्यतः आर्या (पद्य रचना की शैली) में हुआ है। इस संप्रदाय के मुख्य कवियों में बापु साहेब, कुरूदवाडकर, राजा टी. माधवराज, और पु. बा. जोशी शामिल हैं।

काव्य की दूसरी परपरा भी उस समय जीवित थी, वह थी—शाहीरी परंपरा । अनंत फंदी, रामजोशी के मरणापरांत प्रभाकर ने ये परंपरा कायम रखी। ब्रिटिश शासनकाल में शाहीरी काव्य को मान्यता प्राप्त नहीं हुई। इसी समय अंग्रेजी कविताओं के अनुवाद का दौर भी शुरू हो चुका था। अंग्रेजी काव्य के कुछ महत्वपूर्ण अनुवाद उस समय हुए। स्कॉट के Lady of the take का

अनुवाद देवसेनी नाम से हुआ। टैनिसन के Princess का अनुवाद भी किया गया। वर्ड्सवर्थ के अंग्रेजी हीरोइक इपिक का अनुवाद "राजा शिवाजी" नामक काव्य के रूप में म.म. कुटे ने किया। इस प्रकार आपने देखा कि एक ओर कवि मोरोपंत की परंपरा को निबाहने वाली काव्य परंपरा थी तो दूसरी ओर अनुवाद के द्वारा अंग्रेजी काव्य रचना की शैली, गुणों को अपनाया जा रहा था। अंग्रेजी काव्य के अधिकाधिक काव्य वाचन के कारण मराठी काव्य परंपरा में परिवर्तन के चिह्न नजर आने लगे थे। "राजा शिवाजी" की भाषा को जन-साधारण की भाषा में अनुवादित करने प्रयत्न किया। इस प्रकार धीरे-धीरे कवित्व के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। शब्दावली की सरलता की ओर प्रवृत्ति बढ़ने लगी। अंग्रेजी प्रभाव से मराठी काव्य में भी वैचारिकता, सरलता और वैयक्तिकता का समावेश बढ़ा। इस प्रकार मराठी काव्य के क्षेत्र में परिवर्तन की प्रक्रिया शुरू हो गई थी। मराठी के क्रांतिकारी कवि केशवसुत के उदय पूर्व यह पृष्ठभूमि बन चुकी थी। नए काव्य की विविध प्रवृत्तियाँ इस संधिकाल में नजर आने लग गई थी। यदि हम 1840 से 1885 तक का काल क्रांतिपूर्व काल माने तो 1885 से 1920 तक का काल काव्य की क्रांति का काल कहा जाना चाहिए। आइए अब आपका परिचय मराठी के क्रांतिकारी कवि केशवसुत के काव्य से कराएं।

19.5.1 केशवसुत (1886-1905)

कवि परिचय : कवि केशवसुत का पूरा नाम कृष्णा जी केशव दामले था। इनका जन्म रत्नागिरी के मालगुंड नामक गाव में हुआ। इनके पिता सरकारी पाठशाला विभाग में कार्यरत थे। इनकी प्राथमिक शिक्षा वर्धा-नागपुर में और हाई स्कूल की शिक्षा पुणे के न्यू इंगलिश स्कूल में पूरी हुई। उनके समय के नेता तिलक और आगरकर की विचारधारा का केशवसुत पर अधिक प्रभाव पड़ा। हाई स्कूल में ही इन्होने कविता रचना प्रारंभ कर दिया था। 39 वर्ष की अल्पायु में ही उनकी प्लेग के कारण मृत्यु हुई।

19.5.2 रचनाएँ और काव्य दृष्टि

केशवसुत की महत्वपूर्ण कविताएँ हैं "मूर्तिभंजन", हरपलेले श्रेय", "पुष्पाप्रत", "आम्ही कोण", "नवा शिपाई" (नया सिपाही), "तुतारी"। केशवसुत की कविताओं का कोई काव्य संग्रह नही है। उन्होंने लंबी कविताएँ और छोटी कविताएँ ही लिखी। विविध पत्र-पत्रिकाओं में उनकी ये कविताएँ प्रकाशित होती रही।

केशवसुत जिस समय रचना के क्षेत्र में उतरे, उस समय राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में आगरकर, तिलक, रानाडे जैसे विचारक अपने विचारों और नई दृष्टि से देश का भविष्य बना रहे थे। सामाजिक सुधार चेतना से संपूर्ण देश आंदोलित हो रहा था। साहित्य और इसका प्रभाव क्या हो रहा था, इसे आप गद्य साहित्य की चर्चा के दौरान देख चुके हैं। काव्य पर भी नए सुधारवादी आंदोलन का परिणाम दिखाई देना स्वाभाविक था। आइए इनके काव्य में अभिव्यक्त मुख्य प्रवृत्तियों की चर्चा करें।

19.5.3 सामाजिक परिवर्तन के स्वर

केशवसुत परंपरागत सामाजिक रूढ़ियों-रीतियों, पाखंड, धार्मिक, सांस्कृतिक विश्वास, असमानता, अन्याय, जीर्ण समाज व्यवस्था को देश की अवनति का कारण मानते हैं। जर्जर रूढ़ि-रीतियों, मृतप्राय जीवन मूल्यों, सामाजिक विषमता के प्रति उनके मन में घृणा पैदा हो गई है। इनके विरुद्ध वे विद्रोह कर उठते हैं। वे कहते हैं—

"जुने जाऊं द्या मरणालागुनि
जाळुनि किंवा पुरुनि टाका
सडत न एक्या ठायी ठाका"

अनुवाद :

पुरानी परंपराओं को हो जाने दो मृत्यु
जला दो या गाड दो

अर्थः केशवसुत ऐसे समाज की रचना करना चाहते हैं जिसमें समानता, स्वतन्त्रता और भाईचारा हो। रूढ़ि, परंपराओं को वे मिटा देना चाहते हैं। जब तक अंधविश्वास, धार्मिक आडंबर, भेदभाव इस समाज में होगा देश में सामाजिक परिवर्तन नहीं आ सकता। वे कहते हैं:

अवडम्बरली ढगे कितीतरी
रविकिरणांचा चूर होत से
मोहोर सकळा गळुनि जात से
कीउ पिकावरी सर्वत्र दिसे।
गाफीलगिरी तरिही जगावरि।

अनुवाद :

आडंबर के बादल घिर आए हैं।
रवी किरणों का नाश हो रहा ।
बौर सारा झर रहा हैं।
फसल पर किट नजर आ रहे।
फिर भी संसार गाफिल है।

वर्ण-व्यवस्था पर आधारित समाज रचना के विरोध में केशवसुत कहते हैं कि यह असमानता पर आधारित समाज रचना, जाति के आधार पर निर्धारित भेदभाव हमारे समाज और देश को खोखला कर रही है। एक मानव दूसरे से श्रेष्ठ और कनिष्ठ कैसे हो सकता है। अस्पृश्यता के विरोध में वे तुकाराम जैसे कटु शब्दों में इस व्यवस्था की आलोचना कर रहे हैं:

पडली छाया मनुजाची पर
विटाष्ठ होतो तर मनुजाला
व्हावे स्नानाचि सचैल त्याला
काय म्हणावे या मूर्खाला?
नरेच केला हीन किती नर।

अनुवाद :

पड़ी अगर छाया एक मनुज की दूजे पर
क्या अपवित्र हो जाए दूजा मनुज
क्यों कर, वह सचैल स्नान
मूर्ख को क्या बताएँ?
नर ने किया नर को कितना हीन।

केशवसुत ने तत्कालीन सामाजिक चेतना के स्वर को अपनी कविताओं के द्वारा अभिव्यक्त किया है। स्त्री-विषयक समानता की भावना, जाति भेदभाव निर्मूलन, गरीब और अमीर के बीच की विषमता को नष्ट करने की भी बात वे अपनी कविता में करते हैं। फ्रेंच राज्य क्रान्ति से संपूर्ण विश्व में समता, स्वतन्त्रता और भाईचारे की भावना को अपनाना शुरू किया। केशवसुत इन्हीं तीन सूत्रों को अपनी कविता के माध्यम से स्वीकार कर रहे हैं–

"ब्राह्मण नाही, हिंदुहि नाहि न भी एक पंथाचा।
तेच पतित की जे आंखडिती प्रदेश साकल्याचा"

अनुवाद :

ना मैं ब्राह्मण, ना मैं हिन्दू,
ना ही मैं किसी एक पंथ का।
पतित वही जो संकुचित करे प्रदेश उदारता का।

केशवसुत उस समय की व्यवस्था का निषेध कर रहे हैं। वे केवल निषेधात्मक शब्दों का ही प्रयोग नहीं करते तो क्रांति का बिगुल बजाकर सोए हुए समाज को जगाना चाहते हैं।

इसलिए उन्होंने वाद्य भी ऐसा पसंद किया है जिससे निद्रित समाज हड़बड़ाकर जाग उठे--वे कहते हैं

एक तुतारी (तुरई- वाद्ययंत्र) द्या मज्ञ आणुनि
फुंकिन मी जी स्वप्राणाने
भेदुनि टाकिन सगळी गगने
दीर्घ जिच्या त्या किंकाळीने
अशी तुतारी, द्या मजलागुनि,

अनुवाद :

ऐसी तुरही दो मुझे
जिसमें मैं प्राण भर दूँगा
जिसके नाद से सारे गगनों को भेद दूंगा
ऐसी तुरही दो मुझे
(तुरही-वाद्ययंत्र, युद्ध के समय सैनिक में चेतना लाने के लिए बजाया जाने वाला यंत्र)

आइए केशवसुत की एक कविता का आपको परिचय कराएँ।

19.6 काव्य वाचन

मूर्तिभंजन

अनुवाद :

मूर्ति तोड़ो, दोड़ो, दौड़ो, तोड़ो मूर्ति
अंदर की संपत्ति, लूटो। 1
व्यर्थ पूजा-अर्चना और चढ़ावा
नाक रगड़ने से क्या मिलता? 2
पहाड़ों से आए हैं हम शूरवीर बलदंड,
नहीं हमें है परवाह संपत्ति की 3
पहेली डालकर-बैठी है डाकीन
बुझो, नहीं तो खा जाएगी 4
उसकी सीमा में नहीं है हमें जाना
करना है यह कोशिश 5
मूर्ति तोड़कर देंगे उसे जोड़
लेकिन बेचेंगे नही उसे। 6
जो बेचेंगे वही है हरामखोर
वही है असली चोर, हम नहीं। 7

19.6.1 भावार्थ

1) मूर्तियाँ तोड़ दो, रूढ़ियों को तोड़ दो, आओ, हम इसके अंदर की संपत्ति को लूट ले चले।

2) आज तक पूजा अर्चना करके, नाक रगड़कर हमने व्यर्थ ही अपना समय गंवाया इससे क्या लाभ हुआ?

3) दूर देशों के लुटेरे आए हैं पशुतुल्य बलदंड जो उन्हें सिर्फ अंदर गर्भगृह में इकट्ठी की हुई।

4) संपत्ति से सरोकार है, बाह्य रूपी मूर्ति से उन्हें कोई लगाव नहीं है। लुटेरों को केवल संपत्ति चाहिए। हमें इस जड़ता की मायावी मूर्ति तोड़कर अंदर के सौन्दर्य को लूटना है।

लुटेरों के सरदार से मंदिर का पुजारी दया की भीख मांग रहा है। पुजारी के हाथों की आरतियाँ थर-थर काँप रही हैं। कुछ एक डर के मारे मूर्ति के सामने लोट गए हैं। सरदार उनको कह रहा है व्यर्थ तुमने आडंबर में समय नष्ट किया।

5) इस माया रूपी संसार में जब आए हैं तो उस मायाविनी की इस पहेली को बूझना होगा। नहीं तो हमें वह निगल जाएगी। अर्थात् हमारा अस्तित्व नष्ट हो जाएगा।

6) मायावी संसार के इस खेल में हमें फँसना नहीं है। किसी तरह प्रयास करके हमें इससे छूटना है। कवि मूर्तियों को तोड़कर फिर से उसे जोड़ना चाहता है, उसे वे बेचना नहीं चाहते।

7) जो इन मूर्तियों को बेचते हैं, अर्थात् मूर्तियों के नाम पर धन इकट्ठा करते हैं उन्हें कवि केशवसुत चोर, हरामखोर कहते हैं। उनका संकेत पुजारियों की ओर है।

19.6.2 विश्लेषण

केशवसुत की यह कविता "मूर्तिभंजन" सात पदों (ओवी) की है। भाषा अतिशय सरल और सुबोध है। मूर्ति अर्थात रूढ़ि को तोड़ा जाना चाहिए, ऐसा इस कविता का अभिप्राय है।

केशवसुत वास्तविक रूप में क्रांतिकारी कवि थे। रूढ़ियों-रीतियों के दास बन चुके इस समाज की वे अपने तीखे शब्दों से आलोचना कर रहे हैं। उनके मन में जो प्रक्षोभ पैदा हुआ है उसकी अभिव्यक्ति उनके इस सामाजिक काव्य में हुई है। मनुष्य अपनी सुख-सुविधाओं के लिए नीति नियम बनाता है। कुछ समय तक उपयुक्त लगने वाले ये नीति नियम आने वाले समय में रूढ़ियों का रूप धारण कर लेते हैं। इस नीति नियमों की उपयोगिता काल के प्रवाह में खो चुकी होती है, बाह्य कवच मात्र कायम रह जाता है। इस कवच को भंग करके समाज की प्रगति का मार्ग खोल देना एक क्रांतिकारक का कर्तव्य बन जाता है। केशवसुत अपने काव्य द्वारा यही मूर्तिभंजन का कार्य कर रहे हैं। इन रूढ़ि रूपी मूर्तियों की पूजा-आरती करके क्या लाभ? इसके आगे नाक क्यों रगड़ा जाएं? ये प्रश्न केशव रूढ़ियों का पालन करने वाले समाज से कर रहे हैं और इन्हें ही मूर्ति तोड़ने का आदेश दे रहे हैं। पुरानी रीति-रिवाजों को तोड़े बिना नए नीति नियम स्थापित नहीं किए जा सकते, इसीलिए विध्वंस का कार्य वे कर रहे हैं। इससे भी महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने जो किया है, वह है "ईश्वर" की कल्पना का खंडन।

"ईश्वर" की कल्पना के कारण विधि निषेधों और नीति नियमों का जो जाल तैयार हुआ है, उसने मनुष्य के ऐहिक जीवन पर प्रभाव करके उसे असहाय बना दिया है। हमेशा से प्रगति के मार्ग में प्रतिगामी लोग (परंपरावादी) रुकावटें खड़ी करते रहते हैं। इसीलिए केशवसुत ईश्वर की कल्पना का ही खंडन करके उसके अस्तित्व को नकारते हैं। यह एक महत्वपूर्ण सामाजिक स्थापना है। केशवसुत जब परंपरावादी विचारधारा को नकारते हैं तो विचारों की सृष्टि भी कर रहे हैं। नए समाज की रचना भी वे करना चाहते हैं।

19.6.3 कविता का उद्देश्य

राष्ट्रीय नवजागरण का उद्देश्य जन-मानस को जागृत करना था। रूढ़ि-रीतियों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए उनके प्रभाव से समाज-व्यवस्था किस प्रकार विषमता के आधार पर स्थित है, इसे समझाना था। समाज में स्थित विषमता को दूर करके नई समाज-व्यवस्था को साकार करना था, जिसकी बुनियाद समानता, स्वतंत्रता और भाईचारे पर आधारित थी। समाज सुधारकों ने पूरे

भारत में समाज परिवर्तन की चेतना जगाने का कार्य शुरू किया था। इसी नैतिक दायित्व का निर्वाह केशवसुत जैसे कवि ने किया था। मूर्तिभंजन इसका उदाहरण है।

केशवसुत ने सामाजिक सुधार चेतना के इस आंदोलन में न केवल "मूर्तिभंजन" काव्य के द्वारा ईश्वर की कल्पना और विश्वास को नकारा है बल्कि जाति-व्यवस्था के खोखलेपन का वर्णन भी किया है। उनकी एक कविता "अंत्यजाच्या मुलाचा पहिला प्रश्न" (अंत्यज = अछूत के बालक का पहला प्रश्न) इस कविता में बालक के द्वारा जाति-व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाया है। जब सभी मानव एक जैसे एक हाड़, मांस, खत से बने हैं तब उनमें भेदभाव कैसा? यह किसने पैदा किया है? यदि यह ईश्वर निर्मित है तो फिर उस ईश्वर पर कैसे विश्वास करें? और क्यों कर करें? जिसने पद दलित के जीवन में केवल निराशा, अंधकार, अपमान, अन्याय प्रताड़ना ही भर दी है। अछूत का बालक यह प्रश्न इस समाज-व्यवस्था से कर रहा है। उन समाज के ठेकेदारों से जिन्होंने इसे धर्म का आधार देकर आज तक बरकरार रखा है।

मज़दूर की भूखमरी की समस्या पर उन्होंने "मजुरावर उपासमारीची पाली" नामक कविता में प्रकाश डाला है। आर्थिक विषमता पर यह कविता आघात करती है। समाज में स्त्रियों की दयनीय स्थिति का भी चित्रण उन्होंने "पण लक्षात कोण घेते? च्या कर्त्यास" (कौन इस ओर ध्यान देगा?) में किया है। देश की पराधीनता के प्रति कवि केशवसुत अत्यंत दुखी हैं। इस पराधीनता को दूर करने के लिए जीर्ण व्यवस्था को नष्ट करके नए समाज की रचना करके, भाईचारे की भावना के सूत्र में बंधकर, एकजुट प्रयत्न हमें करने होंगे। यह कवि का प्रमाणिक मत है। केशवसुत के ये विचार आज भी प्रासंगिक हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि मराठी साहित्य की विभिन्न विधाओं में रचे गए साहित्य ने नवजागरण चेतना को जगाने के साथ-साथ जन-मानस में राष्ट्रीय चेतना जगाने का कार्य भी किया।

बोध प्रश्न

13) निम्नलिखित प्रश्नों के दो वाक्यों में उत्तर दीजिए :

i) कवि केशवसुत ने अपने काव्य में पुरातन परंपराओं को छोड़ने के लिए क्यों आह्वान किया है?

.....

.....

.....

ii) केशवसुत जातिवादी व्यवस्था का विरोध करके किस प्रकार के समाज की रचना करना चाहते हैं?

.....

.....

.....

iii) केशवसुत क्रांति का बिगुल (तुतारी) क्यों फूँकना चाहते हैं?

.....

.....

.....

अभ्यास

3) "मूर्तिभंजन" कविता का संक्षेप में सार लिखिए।

19.7 सारांश

पश्चिमांचल साहित्य : मराठी साहित्य-II नामक इस इकाई में आपने राष्ट्रीय आंदोलन में मराठी साहित्य के योगदान का परिचय प्राप्त किया। नवजागरण की चेतना के फलस्वरूप महाराष्ट्र में हुए वैचारिक बदलाव को मराठी साहित्य ने किस प्रकार जन सामान्य तक पहुंचाया और राष्ट्रीय स्वाधीनता की भावना को हर एक भारतीय के मन में जगाया। मराठी साहित्य के उद्‌भव से पहले, आपने मराठी भाषा के उद्‌भव और विकास का परिचय प्राप्त किया। मराठी भाषा का विस्तार काफी बड़े क्षेत्र में था यह भाषा प्राचीन भाषाओं में से एक हैं। "लिळचरित्र" के रचयिता म्हाईभट और "भावार्थ दीपिका" के रचयिता संत ज्ञानेश्वर ने मराठी में अपनी रचनाएं रचकर मराठी भाषा को सम्मान का स्थान प्रदान किया। संस्कृत के स्थान पर लोक भाषा को अपनाकर इन दोनों संत रचनाकारों ने मराठी भाषा के महत्व को समझकर जन-जन तक ज्ञान का स्रोत पहुंचाया। बाद में मध्यकाल के अन्य संतों ने मराठी भाषा में ही अपने काव्य की रचना करके मराठी भाषा को और समृद्ध बनाया।

- पेशवाओं के काल में कृष्ण दयार्णव और श्रीधर कवि ने तथा मोरोपंत ने काव्य रचनाओं से मराठी साहित्य भंडार को समृद्ध बनाया। होनाजी बाला, अनंत फंदी, रामजोशी आदि शाहीर कवियों ने पवाड़ों, लावणियों आदि के द्वारा मराठी साहित्य भंडार को और अधिक बढ़ाया। यादवकाल तक मराठी साहित्य का गद्य और पद्य साहित्य द्वारा विकास होता गया।

- अंग्रेजों के शासनकाल में मराठी भाषा के विकास की ओर भी ध्यान दिया गया तथा अंग्रेजी भाषा से अनुवादित साहित्य ने मराठी भाषा साहित्य का विस्तार ही किया। ईसाई धर्म प्रचारकों ने मराठी भाषा के माध्यम से ही ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार किया। अंग्रेजी भाषा के संपर्क के कारण यहाँ के विद्वानों ने मराठी भाषा के माध्यम से राष्ट्रीय आंदोलन को आगे बढ़ाया। अपने लेखन द्वारा राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए लोगों में चेतना जगाई। इसके लिए विद्वानों, लेखकों ने मराठी भाषा का ही सहारा लिया।

- मराठी भाषा में छपने वाली विभिन्न पत्रिकाओं और समाचार पत्रों ने नवजागरण और राष्ट्रीया चेतना के आंदोलन में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक स्थिति पर नजर रखते हुए उसके बदलाव के लिए प्रयास किए जाते रहे। इन सभी प्रयासों की ही अगली कड़ी है – साहित्यिक रचनाएँ।

- आपने देखा कि गद्य साहित्य निर्मिती का मुख्य हेतु ज्ञान प्राप्ति और ज्ञान प्रसार था। सदियों से ज्ञान प्राप्ति वंचित समाज को शिक्षा की सुविधा के कारण ज्ञान प्राप्ति का अवसर मिला। विष्णुशास्त्री चिपळुणकर की निबंधमाला वास्तविक रूप से मराठी गद्य की आधारशिला मानी जाती है। मराठी उपन्यास साहित्य में हरिभाऊ आपटे ने तत्कालीन सामाजिक स्थिति और सामाजिक कुप्रथाओं के कारण ग्रसित समाज-व्यवस्था का वास्तवपूर्ण चित्रण किया। नारी की दयनीय स्थिति का वास्तविक चित्रण हरिभाऊ ने किया। बाल विवाह का निषेध तथा विधवा विवाह का समर्थन करते हुए नारी स्वतंत्रता का समर्थन किया।

- उपन्यासकार वि. स. खांडेकर ने उपन्यासों के माध्यम से तत्कालीन युग के बदलते हुए विचारों, प्रवृतियों और संदर्भों को अभिव्यक्त किया। गांधीवाद से प्रभावित होने के कारण उन्होंने शहर से गांव की ओर जाने के लिए युवाओं को प्रेरित करने का प्रयास किया। तत्कालीन समाज में फैले जातिवाद का विरोध उन्होंने अपने कुछ उपन्यासों द्वारा किया। बाद में उन्होंने गांधीवाद का विरोध करते हुए वर्गीय जागृति के परिणामस्वरूप आने वाली क्रांति को अधिक महत्व दिया। यह भी आपने देखा कि वि. स. खांडेकर के उपन्यासों में समाजवाद को ही सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण आधार माना गया है।

- आधुनिक काल में लिखे गए मराठी नाटकों में सामाजिक समस्याओं को अभिव्यक्त किया गया और सामाजिक परिवर्तन में मराठी नाटकों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। नाटक केवल मनोरंजन का कार्य करने वाले साहित्य ही नहीं हैं, बल्कि नया दृष्टिकोण और चेतना निर्माण करने वाले साहित्य भी हैं।

- आपने मराठी कविता का परिचय भी प्राप्त किया। मराठी पद्य साहित्य का राष्ट्रीय नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान कैसे है। आधुनिक युग के क्रांतिकारी कवि केशवसुत ने भी अपने काव्य के द्वारा सामाजिक असमानता, गुलामी को नष्ट करके एक नए समाज की स्थापना का स्वरूप देखा था। जिसकी बुनियादी समानता, स्वतंत्रता और भाईचारे जैसे जीवन के मौलिक तत्त्वों पर आधारित हो। समाज में फैले धार्मिक आडंबर, छुआछूत, स्त्री-पुरूष असमानता का केशवसुत ने जोरदार विरोध किया। कैसे सामाजिक परिवर्तन के लिए केशवसुत ने क्रांति का बिगुल बजाय है यह आपने देखा।

19.8 उपयोगी पुस्तकें

भारतीय साहित्य डा. नगेन्द्र, प्रभात प्रकाशन, चावड़ी बाजार, दिल्ली

मराठी साहित्य का इतिहास, साहित्य अकादमी, दिल्ली

भारतीय भाषाओं के साहित्य का रूप दर्शन, गौरीशंकर पंडया, इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन कृष्णनगर, दिल्ली

भारतीय भाषाओं का संक्षिप्त इतिहास, संपादित, राजपाल एंड संस, दिल्ली

19.9 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

1) i) नलोपाख्यान

   ii) रूक्मिणी स्वयंवर

2) देखिए उपभाग 19.2

3) (i) x (ii) √ (iii) √ (iv) √ (v) x

4) एल्फिन्स्टन ने अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार करने के लिए।

5) फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना की गई थी।

6) ज्ञानोदय, ज्ञानप्रकाश (समाचार पत्र)

   ज्ञानोचंद्रोदय, ज्ञानप्रसारक (पत्रिकाएँ)

7, 8) देखिए उपभाग 19.4.1

9) देखिए उपभाग 19.4.2

10) हरीनारायण आपटे ने अपनी रचनाओं में तत्कालीन समाज में नारी की हीन-दीन स्थिति का चित्रण किया। धर्म के आधार पर नारी के होने वाले शोषण, बाल विवाह, विधवा विवाह की समस्याओं, समाज में नारी का दोय्यम स्थान, उसमें शिक्षा के अभाव के कारण पलता अंधविश्वास, चारों तरफ से बंधनों में जकड़ा हुआ व्यक्तित्व जैसी स्थिति को उजागर किया है।

11) वि. स. खांडेकर ने उनके उपन्यास में अस्पृश्यता से जुड़ी दलितों की आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति पर प्रकाश डाला है। तत्कालीन मध्यमवर्ग की आर्थिक स्थिति पर भी प्रकाश डाला है। सामाजिक परिवर्तन के लिए समाज में स्थित असमानता की भावना को नष्ट करने पर जोर दिया है।

12) वि. स. खांडेकर की मान्यता है कि गांधीवादी आदर्शवाद हृदय परिवर्तन का आग्रह करता है अंतर्जातीय भोज या अंतर्जातीय विवाह जैसे निर्वाहों से जातिप्रथा तोड़ी नहीं जा सकती। क्योंकि हिंदू धर्म पर आधारित जाति-व्यवस्था और कुछ नहीं बल्कि उच्च हिंदू

समूहों का निम्न हिंदू समूहों पर अधिकार, उनमें गैर बराबरी थी। गांधीवादी विचारों में उच्च हिंदू समूहों का जब तक हृदय परिवर्तन नहीं होगा जाति-व्यवस्था और अछूतों की समस्या हल नहीं होगी। और कोई भी हिंदू अपने अधिकार और सत्ता छोड़ने का विचार भी नहीं कर सकता। अतः केवल अछूतों का एकजुट होकर इस धर्मप्राणित व्यवस्था का विरोध करना और सामाजिक क्रांति से सामाजिक परिवर्तन लाना ही आवश्यक है जिससे समाज का पुनःनिर्माण हो सके।

13) स्वयं प्रयास करें।

उपभाग 19.5.2 देखिए।

अभ्यास

1) देखिए उपभाग 19.4.4

2) वही

3) देखिए उपभाग 19.6.2

इकाई 20 गुजराती साहित्य-I

इकाई की रूपरेखा

20.0 उद्देश्य

20.1 प्रस्तावना

20.2 गुजराती भाषा साहित्य की पृष्ठभूमि

20.2.1 राजनैतिक, भौगोलिक एवं धार्मिक परिप्रेक्ष्य

20.2.2 मध्यकालीन भाषा साहित्य

20.3. आधुनिक गुजराती भाषा साहित्य का विकास

20.3.1 गद्य

20.3.2 पद्य

20.4 गुजराती भाषा साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति

20.4.1 नर्मद

20.4.2 बलवंतराय क. ठाकोर

20.5 सारांश

20.6 उपयोगी पुस्तकें

20.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

20.0 उद्देश्य

यह खंड गुजराती साहित्य से संबंधित है। इसमें आप स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान गुजराती साहित्य में विकसित हुई राष्ट्रीय, सामाजिक व आर्थिक चेतना के बारे में जानेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- गुजराती साहित्य के इतिहास की रूपरेखा समझ सकेंगे।
- गुजराती भाषा और साहित्य के विकास के बारे में बता सकेंगे।
- विभिन्न साहित्य स्वरूपों के क्रमिक विकास के बारे में बता सकेंगे।
- प्रत्येक साहित्यस्वरूप के उल्लेखनीय रचनाकारों के बारे में बता सकेंगे।
- *राष्ट्रीय नवजागरण* और राष्ट्रीय मुक्ति के दौर में लिखे गये साहित्य के बारे में बता सकेंगे।
- *गुजराती साहित्य* के दो रचनाकारों के विशिष्ट योगदान के बारे में बता सकेंगे।

20.1 प्रस्तावना

ऐच्छिक पाठ्यक्रम-05 से संबंधित यह 5वें खंड की तीसरी इकाई है अर्थात् इस पाठ्यक्रम की यह बीसवीं इकाई है। पांचवा खंड गुजराती और मराठी साहित्य से संबंधित है। इस इकाई में आप राष्ट्रीय नवजागरण और राष्ट्रीय मुक्ति के दौर में लिखे गये साहित्य में गुजराती साहित्य का क्या योगदान रहा है, इसके बारे में जानकारी पाएंगे। इससे पहले आपके लिए यह जानना जरूरी है कि गुजराती साहित्य का इतिहास क्या है, साहित्य के विकास के विभिन्न पहलू कौन-कौन से हैं, सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक चेतना कैसे विकसित हुई, गद्य और पद्य के मुख्य रचनाकार कौन-कौन रहे इत्यादि।

गुजराती भाषा के विकास के साथ-साथ गुजराती साहित्य का विकास हुआ। साहित्य के माध्यम से हम तत्कालीन परिवेश को जान सकते हैं। सामाजिक एवं राजनैतिक व्यवस्था का साहित्य पर

काफी प्रभाव पड़ता है। सन् 942-1304 का समय गुजरात का सुवर्ण युग था। तब सोलंकी वंश का शासन था। सिद्धराज जयसिंह और कुमारपाल जैसे राजाओं ने विद्या और कला को प्रोत्साहन दिया। विद्या और कला किसी भी देश की संस्कृति का दर्पण हैं। यहीं से गुजरात के साहित्य के इतिहास का प्रारंभ होता है।

इस युग से लेकर आधुनिक काल तक लंबी यात्रा में राजनीति, साहित्य और संस्कृति के कई सीमास्तंभ हैं। इनका परस्पर संबंध समझने से हम साहित्य की नूतन धाराओं को आसानी से समझ सकते हैं। अतः इस इकाई में हम गुजराती भाषा साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को देखेंगे। उसके बाद गद्य और पद्य रचनाओं का विहंगावलोकन करके आधुनिक युग के प्रारंभ के दो मुख्य रचनाकारों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे। वे हैं नर्मद और बलवंतराय क. ठाकोर। उनके लेखन के कुछ उदाहरण लेकर उन्हें विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे। साहित्य के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना व सामाजिक चेतना जगाने में उनका क्या योगदान रहा, अन्य साहित्यकारों पर उनका क्या प्रभाव पड़ा, यह जानेंगे। इनकी एक-एक महत्वपूर्ण रचना का पाठ करेंगे।

20.2 गुजराती भाषा साहित्य की पृष्ठभूमि

आइये अब गुजराती भाषा साहित्य के इतिहास की जानकारी प्राप्त करें। गुजरात के सुवर्ण युग याने सोलंकी युग में विद्या और कला को प्रोत्साहन मिलने के कारण आचार्य हेमचंद्र, मलयगिरी, अमरचंद्र सूरि जैसे विद्वानों ने शब्दशास्त्र, काव्यशास्त्र, भाषातत्व जैसे विषयों पर अपूर्व ग्रंथ लिखे। ये ग्रंथ समग्र देश के साहित्य के लिए मूल्यवान थे। कश्मीर के कवि बिल्हण भी इसी युग में गुजरात आये थे। उन्होंने "कर्णसुंदरी" नामक नाटिका की रचना की और पाटण के आदिनाथ के यात्रामहोत्सव में उसका मंचन भी हुआ। कई नाटक, काव्य और प्रबंध लिखे गये। लेकिन ये सारा साहित्य अधिकांश संस्कृत और प्राकृत भाषाओं में लिखा जा रहा था। सोलंकी युग में गौर्जर नामक अपभ्रंश भाषा और साहित्य के विकास का प्रारंभ हुआ। "गुर्जर देश" और गुजरात के नाम से इस प्रदेश को प्रसिद्धि भी इस युग में प्राप्त हुई।

प्राचीन गुजराती में लिखी गई सर्वप्रथम कृतियाँ बारहवीं शताब्दी की हैं। अतः गुजराती भाषा साहित्य का विकास इसी समय से शुरू होता है। संस्कृत और प्राकृत के साथ अपभ्रंश साहित्य भी लगभग पांचवी शताब्दी से शुरू हो गया था। जैसे मार्जित भाषा के साथ लोकबोली जुड़ी होती है उसी तरह अपभ्रंश जुड़ी हुई थी। लोकबोलियों का प्रभाव बढ़ने पर साहित्य की रचना में भाषा का परिवर्तन होने लगा और धीरे-धीरे, लगभग सात सौ वर्षों के बाद प्राचीन गुजराती कही जाने वाली भाषा सामने आई। इस भाषा के साहित्य में संस्कृत और प्राकृत का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है क्योंकि उस समय के साहित्यकारों में अधिकांश संस्कृत और प्राकृत के पंडित थे। इस प्रकार संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य के साथ प्राचीन गुजराती साहित्य का संबंध कुछ हद तक बिंब-प्रतिबिंब जैसा है।

प्राचीन गुजराती की विशिष्ट देन हैं आख्यान, रास, चरित और कथा। इन चारों विधाओं में विपुल साहित्य रचा गया। जैसा कि हमने प्रारंभ में जाना, भाषा और साहित्य के विकास में राजनीति, भौगोलिक परिस्थिति एवं धार्मिक आंदोलनों का काफी योगदान होता है। यही तो हमारा सांस्कृतिक विकास है। आइए, अब हम इस बात को कुछ विस्तार से समझें।

20.2.1 राजनैतिक, भौगोलिक एवं धार्मिक परिप्रेक्ष्य

गुजरात की राजनैतिक सीमाएं हमेशा बदलती रहती थीं। गुजरात कभी खानदेश या बंबई तक फैल जाता था तो कभी पश्चिम राजस्थान और मालवा तक। कभी उज्जैन के शासक गुजरात का कुछ हिस्सा ले लेते थे तो कभी दक्षिण का लाट प्रदेश किसी के राज्य से जुड़ जाता था। सौराष्ट्र, लाट प्रदेश और उत्तर गुजरात पर जब-जब किसी एक राजवंश का सार्वभौम शासन रहा तब-तब उसका सांस्कृतिक विकास हुआ और पड़ोसी राज्यों से भी सांस्कृतिक आदान-प्रदान होता रहा।

गुजरात अपने विशाल समुद्र किनारे के कारण प्राचीन काल से व्यापार के क्षेत्र में आगे रहा है। विदेशी व्यापारियों के आने से उस पर विदेशी संस्कृतियों का प्रभाव भी पड़ा है।

गुजरात की संस्कृति पर वैदिक, जैन एवं बौद्ध परंपरा का असर स्पष्ट है। इन धर्म संप्रदायों के आचार-विचार, मान्यताएं एवं मूल्यों का प्रतिबिंब साहित्य में पाया जाता है। ईसवी सन् के प्रारंभ से लगभग आठवीं शताब्दी तक पालि एवं अन्य भाषाओं में बौद्ध साहित्य का सृजन हुआ। गुजरात में जैन धर्म के कई केन्द्र होने के कारण उस समय से लेकर आज तक प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में गुजरात का सर्वाधिक योगदान रहा है।

इस प्रकार गुजरात के प्राचीन साहित्य के प्रेरक और पुरस्कर्ता या तो राजा और मंत्री (अमात्य) थे या धर्म था।

सोलंकी युग में वस्तुपाल और तेजपाल नामक दो बंधु मंत्री के स्थान पर थे। उनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन से गुजरात की संस्कृति और साहित्य अमर हो गये।

प्रथम उत्तर भारत के ऊपर और बाद में भारत के अन्य भागों पर तुर्कों और इस्लाम धर्म के अनुयायी विदेशियों ने विजय प्राप्त की तब अनेक धार्मिक व सामाजिक प्रश्न खड़े हुए जो पहले नही थे। इस परिवर्तन के कारण, भारतीय मानस और भारतीय संस्कारिता को एक नये युग की अभिव्यक्ति चाहिये थी। लोकप्रचलित भाषाओं में तत्कालीन समाज की व्यावहारिक आवश्यकताओं को पूरा करने का काम उठा लिया। पूर्वजों के उच्च संस्कार और आध्यात्मिक विचारों को लोगों की भाषाओं में प्रस्तुत किया गया। संस्कृति, प्राकृत और अपभ्रंश के स्थान पर लोकभाषाओं का प्रयोग होने लगा। और इस प्रकार प्रादेशिक साहित्य का सृजन शुरू हुआ।

यही वह समय है, 1450 से 1850 तक का, जो मध्यकालीन गुजराती साहित्य का युग माना जाता है। इसी युग में गुजरात और मारवाड़ की दो स्वतंत्र भाषाओं का विकास हुआ। दोनों में काफी साम्य था। बोलीभेद भी था। लोक साहित्य और भाषा का विकास, इस प्रकार साथ-साथ होता रहा। मध्यकालीन साहित्य को लोकसाहित्य भी अनेक प्रकार से प्रभावित करता रहा।

20.2.2 मध्यकालीन भाषा साहित्य

पंद्रहवी शताब्दी के बाद के समय में जैन साहित्य बहुत बड़ी मात्रा में पाया जाता है। इसका एक कारण यह भी है कि जैन ग्रंथ भंडारों को व्यवस्थित रूप से संभाला गया था, इसलिए प्रायः समग्र साहित्य आज उपलब्ध है। थोड़ा-बहुत जैनेतर साहित्य भी जैन भंडारों में सुरक्षित रहा था। इसमें संस्कृत तथा प्राकृत में लिखे गये राधा-कृष्ण के दोहे भी पाये जाते हैं। भागवत-वैष्णव धर्म के प्रचार और प्रसार से गुजरात अछूता नही था। नरसिंह महेता और मीराबाई का तीव्र भाव आकस्मिक नही था। समग्र देश में प्रवर्तमान भक्ति-आंदोलन पुष्टिमार्ग के संस्थापक वल्लभाचार्य के आगमन के बाद और भी उत्कट हो गया। स्वामीनारायण संप्रदाय के संस्थापक सहजानंद ने इस आंदोलन की गति को बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इसीलिए गुजरात का मध्यकालीन साहित्य बहुधा धर्मप्रधान या धर्ममूलक है। लेकिन इसके अतिरिक्त प्रेम और विरह, शौर्य और साहस के भावों को भी विभिन्न स्वरूपों में बुना गया है। इस युग के प्रधान साहित्य प्रकार आठ हैं, मुक, पद, पदमाला, गरबो-गरबी, रास, आख्यान, कथा-कहानी और गद्य।

मध्यकाल में साहित्य, समाज और धर्म एक-दूसरे के साथ बहुत ही घनिष्ठता से जुड़े हुए थे। इसलिए एक ही साहित्य प्रकार और भी कई नामों से जाना जाता है।

पंद्रहवी शताब्दी में उत्तर भारत में स्वामी रामानंद के शिष्यों में कबीर, रोहिदास, पीपाजी, नरहरि इत्यादि विभिन्न जाति के संत-कवियों की गणना होती है। बारहवीं शताब्दी में कर्नाटक में वीरशैव या लिंगायतों का पंथ अस्तित्व में आया। इस पंथ के प्रवर्तक थे बसवेश्वर। इसमें भी जातिभेद नही था और विपुल साहित्य रचा गया। उसी तरह गुजरात में नरसिंह, मीरा, भालण, प्रेमानंद, शामल, दयाराम आदि विभिन्न वर्गों के लोग विख्यात भक्त कवि माने जाते हैं।

मध्ययुग के भक्ति साहित्य में पूर्व भारत में श्रीकृष्ण के अतिरिक्त शक्ति की उपासना की जाती थी। एक ओर जयदेव का "गीतगोविंद" और विद्यापति की राधाकृष्ण की भक्ति रचनाएं थी, तो दूसरी ओर आसाम में शंकरदेव भागवत पुराण से प्रेरित होकर "नामघोष" और "कीर्तनघोष" की धुनें रच रहे थे।

गुजरात के भक्त कवियों में नरसिंह महेता (1456) अग्रणी हैं। उनको "आदिकवि" कहा जाता है। उन्हीं का लिखा हुआ भजन "वैष्णवजन तो तैने कहिये जे पीड़ पराई जाणे रे", याने वैष्णवजन तो उसी को कहेंगे जो पराये की पीड़ा को पहचान सके, महात्मा गांधी का अत्यंत प्रिय भजन था और गांधीजी ने उसे "राष्ट्रीय भक्तिगीत" के रूप में घोषित किया था। नरसिंह ने ही अपने एक भक्तिगीत में अस्पृश्य जाति के लोगों के लिए "हरिजन" शब्द का प्रयोग किया था जो गांधीजी ने अपना लिया था और बाद में उसी नाम से पत्रिका निकाली थी। इस युग में भक्ति पदों का मानों ज्वार उठा था।

मध्यकाल के और एक प्रखर कवि हैं अखो। उन्होंने ज्ञानमार्ग को अपना कर तत्कालीन समाज एवं राजनीति के प्रति कटाक्ष किये। अखो ने मुक्तक स्वरूप की रचनाएँ की जो "छप्पा" कही जाती हैं। अध्यात्म के क्षेत्र में अखो के प्रदान के कारण उन्हें गुजरात का कबीर कहा जाता है। अपने आध्यात्मिक अनुभवों को समाज के समक्ष रखने वाले कवियों में अखो, धनराज, गोपाल इत्यादि कई हैं।

सोलहवी शताब्दी में जैन रासा और जैनेतर आख्यानों की रचना हुई। प्राचीन गुजराती साहित्य के सबसे लोकप्रिय साहित्य प्रकार थे रास और आख्यान। कथा और पद्य-कथा भी काफी लोकप्रिय थे। "फागु" प्राचीन गुजराती साहित्य का विशिष्ट प्रदान है। संस्कृत शब्द "फल्गु" याने वसंत का द्योतक "फागु" गुजराती भाषा के आरंभ से उन्नीसवी शताब्दी तक रचा गया साहित्य प्रकार है। यह विशेषकर से वसंत वर्णन का साहित्य प्रकार है इसमें श्रृंगार रस प्रधान है।

उन्नीसवी शताब्दी तक पहुँचने पर आधुनिक युग का प्रारंभ हो जाता है, स्वतंत्रता संग्राम का दौर शुरू हो जाता है। उस दौर में प्रवेश करने से पहले उपर्युक्त सामग्री से संबंधित कुछ प्रश्नों का उत्तर दें, जिससे कि गुजराती भाषा साहित्य की पृष्ठभूमि स्पष्ट हो जाय।

20.3 आधुनिक गुजराती भाषा साहित्य का विकास

भारत के विभिन्न भाषा साहित्य में आधुनिक युग के प्रारंभ का समय अलग-अलग माना गया है। इन विभिन्न मतों में एकमत यह है कि सभी ने पाश्चात्य प्रभाव या अंग्रेजी शिक्षा से संबंधित परिस्थिति को आधुनिकता का प्रारंभ माना है। कन्नड़ साहित्य में यह 19वीं शताब्दी का तीसरा दशक माना जाता है और उसके विकास को अंग्रेजी शिक्षा एवं नवीन विचाराधारा से जोड़ा जाता है। कुछ मलयालम साहित्यकार मानते हैं कि 1930 में केरल के युवा साहित्यकार कार्ल मार्क्स, सिगमंड फ्रोयड एवं फ्रेन्च यथार्थवाद के जादू में फंस गये। यहीं मलयालम साहित्य का आधुनिक युग शुरू हुआ। और गुजराती साहित्य में गुजरात के ऊपर अंग्रेजों का शासन पूर्ण रूप से स्थापित हो गया। तब से, याने 1818 से आधुनिक युग का प्रारंभ माना जाता है।

गुजराती साहित्य के इतिहास में दयाराम को मध्ययुग का अंतिम कवि माना जाता है। दयाराम का देहांत हुआ 1852 में। उस समय आधुनिक युग के दो प्रखर कवि, दलपतराम और नर्मद साहित्यसृजन के क्षेत्र में प्रवेश कर चुके थे। दलपतराम रचित काव्य "वापानी पीपर" आधुनिकता का निर्देश करता हुआ पहला काव्य है।

गुजरात पर अंग्रेजों का वर्चस्व होने से इतिहास ने मानों बहुत बड़ा मोड़ ले लिया। दो भिन्न संस्कृतियों का संगम हुआ। एक ओर प्राचीन भारतीय संस्कृति की धारा, दूसरी ओर पाश्चात्य संस्कृति की धारा, और इन दोनों के संगम के फलस्वरूप बहने लगी तीसरी धारा—आधुनिक भारतीय संस्कृति की।

1822 में सर्वप्रथम गुजराती साप्ताहिक "मुमबई समाचार" बंबई से प्रकाशित होने लगा। हमें मुद्रणयंत्र और वर्तमानपत्र पाश्चात्य संस्कृति से मिले थे। अंग्रेजी व्याकरण को देखकर गुजराती व्याकरण की पहली पुस्तक प्रकाशित हुई। इसके बाद 1850 में अहमदाबाद से "बुद्धिप्रकाश" नामक सामयिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू हुआ। फिर तो कई वर्तमानपत्र और पत्रिकाएँ निकली, कुछ चली, कुछ बंद हो गयी।

1851 में बंबई में साहित्यिक एवं बौद्धिक चर्चा के लिए "बुद्धिवर्धक सभा" की स्थापना हुई। इस सभा में कवि नर्मद (सन् 1833-1886) ने दो लाक्षणिक व्याख्यान दिये थे। एक का शीर्षक

था "ईश्वर ने अवतार नहीं लिया" और दूसरे का "पुनर्विवाह"। इस प्रकार के विषय को लेकर उन पर चर्चा करना बड़े साहस का काम था। कवि नर्मद ने अपने जीवन एवं लेखन के द्वारा नई विचारधाराओं का प्रसार किया।

ऐसी परिस्थिति में साहित्य का विकास किस दिशा में और किस प्रकार हुआ, यह हम देखेंगे।

20.3.1 गद्य

गुजराती गद्य साहित्य में कई प्रकार के साहित्यस्वरूप पाये जाते हैं। जैसे कि उपन्यास, कहानी, निबंध, आत्मकथा, यात्रावर्णन, नाटक इत्यादि। अब हम इन स्वरूपों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

गुजराती साहित्य का सर्वप्रथम मौलिक उपन्यास है नंदशंकर रचित "करणघेलो"। इस उपन्यास के प्रकाशन के चार वर्ष पूर्व सोराबशा नाम के एक पारसी लेखक ने "हिंदुस्थान मध्येनुं एक झुपडुं" नामना लघु उपन्यास लिखा था लेकिन आज की उपन्यास की परिभाषा को देखते हुए "करणघेलो" को ही गुजराती का प्रथम उपन्यास मानना होगा। यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इससे पूर्व संपूर्ण भारत में केवल बंगाल में ऐतिहासिक उपन्यास लिखा गया था। "करणघेलो" के माध्यम से उपन्यास लेखक नंदशंकर धर्म की जय और पाप का क्षय स्थापित करना चाहते थे।

प्रबंध के क्षेत्र में देखा जाय तो दलपतराम (सन् 1820-1898) को अग्रणी माना जाता है। दलपतराम ने गुजराती में सर्वप्रथम आयोजित प्रबंधस्पर्धा में हिस्सा लिया था। उन्होंने भूत-प्रेत के वहम को दूर करने से संबंधित विषय पर प्रबंध लिखा था। यह प्रबंध 1850 में एक पुस्तिका के रूप में प्रकाशित किया गया। कई विद्वान इस रचना को गुजराती की प्रथम गद्य रचना मानते हैं। दलपतराम के प्रबंधों में कहानियाँ और "दृष्टांतकथाएं" सम्मिलित थे और कहानीनुमा कृतियों में बोधात्मक प्रबंध रचना के लक्षण पाये जाते थे। दलपतराम का काव्य रचना में ही प्रचुर योगदान रहा है। इनके बारे में अधिक जानकारी हम पद्य से संबंधित चर्चा करते समय प्राप्त करेंगे।

कवि नर्मद (1833-1886) एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने गद्य रचनाओं से भी गुजराती साहित्य को समृद्ध किया। "मारी हकीकत" शीर्षक से आत्मकथा लिखकर उन्होंने जीवनी साहित्य का प्रारंभ किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने ऐसे-ऐसे निबंध लिखे जो समाज की कुरीतियों के प्रति रोष प्रकट करते थे और लोगों को सही रास्ते पर चलने के लिए उत्साहित करते थे।

नर्मद के ही समवयस्क नवलराम (1836-1888) साहित्य के प्रखर विचारक और समीक्षक थे। मध्यकाल में साहित्य का सृजन विपुल मात्रा में हुआ था लेकिन उसका विवेचन करने वाला कोई नहीं था। नवलराम ने साहित्य की इतनी बड़ी त्रुटि को दूर किया। उन्होंने काव्य और नाटक भी लिखे।

ऐसे तीन महान सृजकों के बाद उनका अनुसरण और अनुकरण करने वाले भी अनेक कवि और लेखक अपनी कृतियों से गुजराती भाषा और साहित्य को समृद्ध करते रहे। अंग्रेज शासन का वह युग ही ऐसा था कि प्रत्येक जागरूक व्यक्ति किसी न किसी माध्यम से मुक्ति की बात करता था। समाज की कुरीतियों और पिछड़ेपन के अंधकार को दूर करना चाहता था। इस युग के कुछ उल्लेखनीय गद्य रचनाकार हैं नभूलाल द्विवेदी, दुर्गाराम दवे, महीपतराम नीलकंठ, रणछोड़भाई दवे, अंबालाल देसाई, हरगोविंददास कांटावाला, इच्छाराम देसाई इत्यादि।

इस युग का एक महत्वपूर्ण आयाम है पारसी साहित्य। उन्नीसवी शताब्दी के मध्य में शुद्ध गुजराती भाषा के विरुद्ध पारसी गुजराती भाषा में रचनाएँ प्रकाशित होने लगीं। पारसी गुजराती का व्यक्तित्व बनाये रखने के लिये पारसी रचनाकारों ने भाषा की अशुद्धियाँ भी बनाये रखीं। इस क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण रचनाकार हैं खबरदार। उन्होंने और जहाँगीर देसाई ने चालीस से अधिक नये छंद रचे और इस प्रकार गुजराती छंदो में वृद्धि हुई। उनकी भाषा के फारसी शब्दों से गुजराती भाषा का शब्द भंडार बढ़ा।

गुजराती भाषा के प्रखर उपन्यासकार गोवर्धनराम त्रिपाठी (1855-1907) का जीवनकाल भारत के नवजागरण का ही समय है। 1857 का विप्लव, राजा राममोहनराय जैसे महान समाज

सुधारक, पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव और ऐसे वातावरण में गोवर्धनराम का जन्म। उनका उपन्यास "सरस्वतीचंद्र", जो चार भागों में लिखा गया है उसका प्रथम भाग 1887 में और अंतिम 1901 में प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास को केवल गुजराती साहित्य का ही नहीं वरन् भारतीय साहित्य की असाधारण रचना माना जाता है। इसमें प्राचीन सांस्कृतिक विरासत, वर्तमान परिस्थिति और पश्चिम का प्रभाव इन तीनों का त्रिवेणी संगम पाया जाता है।

बोध प्रश्न

उचित शब्द रखकर वाक्य पूर्ति कीजिए।

1) (क) सोलंकी वंश के शासन के दौरान ———— तथा ———— राजाओं ने विद्याकला को प्रोत्सहित किया।

(ख) ————, ———— तथा ———— आरंभिक गुजराती लेखक के जिन्होंने शब्दशास्त्र, काव्य शास्त्र आदि पर ग्रंथ लिखे।

(ग) सोलंकी काल में ही कश्मीर से प्रसिद्ध कवि ———— गुजरात आए थे।

(घ) सोलंकी युग में ही ———— नामक भाषा साहित्य का विकास हुआ।

(ड) गुजराती भाषा का प्रारंभिक साहित्य आख्यान, चरित्र ———— और ———— विधाओं से संबधित।

2) दो तीन पंक्तियों में उत्तर लिखे।

(क) किन कारणों से गुजराती में लोक साहित्य की रचना प्रारंभ हुई?

.....

.....

(ख) प्रारंभिक गुजराती जैन साहित्य का बड़ी मात्रा में उपलब्ध होने का कारण क्या है?

.....

.....

(ग) मध्यकालीन गुजराती साहित्य किन-किन विधाओं में रचे गए?

.....

.....

(घ) किस कवि को गुजराती भक्ति साहित्य का आदि कवि माना जाता है?

.....

.....

(ड) कवि अखो ने "छप्पा" मुक्तक रचना द्वारा क्या संदेश दिया?

.....

.....

(च) वसंत ऋतु के उत्साह को प्रकट करने के लिए कवियों द्वारा जो रचनाएँ की गई उसे किस उसे किस नाम से पुकारते है?

.....

.....

3) (क) गुजराती के किस कवि की विकास रचना को आधुनिकता का प्रथम काव्य माना जाता है?

.....

.....

(ख) गुजराती का प्रथम साप्ताहिक पत्र कौन-सा था और वह किस वर्ष प्रकाशित हुआ?

.....

.....

(ग) "ईश्वर ने अवतार नहीं लिया" तथा "पुनर्विवाह" नामक व्याख्यान किसने और किस वर्ष दिया?

.....

.....

(घ) गुजराती का प्रथम उपन्यास कौन-सा है? इसके रचयिता का भी नाम लिखिए।

.....

.....

(ङ) गुजराती साहित्य में जीवनी विद्या की शुरूआत किसने की?

.....

.....

(च) पारसी साहित्य की रचना का मुख्य उद्देश्य क्या था?

.....

.....

अभ्यास

1) दस पंक्तियों में "गोवर्धनराम" के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

गोवर्धनराम के समकालीन बालाशंकर (1858-1898), मणिलाल द्विवेदी (1858-1898), नरसिंह राव दीवेटिया (1859-1937), रमणभाई नीलकंठ (1868-1928), आनंदशंकर ध्रुव

(1869-1942), बलवंतराय ठाकोर (1869-1952) इस युग के साहित्य के कर्णधार हैं। प्रत्येक, साहित्यकार का योगदान इतना विपुल और इतना महत्वपूर्ण है कि प्रत्येक पर एक-एक पुस्तक लिखी जा सकती है। इसी समय के विख्यात कवि कान्त और कलापी के बारे में हम पद्य की बात करते समय जानकारी प्राप्त करेंगे।

20.3.2 पद्य

गुजराती भाषा साहित्य के विकास की बात करते समय हमने देखा कि सन् 1185 में "भरतेश्वर बाहुबलिरास" या उससे कुछ समय पूर्व रचित "भरतेश्वर बाहुबलिघोर" से प्राचीन गुजराती साहित्य का प्रारंभ हुआ और उसके बाद जैन कवियों ने रास, प्रबंध, फागु जैसे कई काव्य प्रकारों को लेकर रचना की। मध्यकाल के आख्यान एवं पद्यकथाओं द्वारा पद्य साहित्य में जैसे बहार आ गई।

लेकिन अंग्रेज़ों के संपर्क में आने के बाद काव्य के विषयों में एवं रचना में परिवर्तन आया। जीवन की हर रोज़ की साधारण बातें काव्य का विषय बन गईं। वैयक्तिक संवेदनाओं को काव्यों में वा वा मिलने लगी। पौराणिक और ऐतिहासिक कथाओं का स्थान समकालीन सामाजिक परिस्थितियों ने लिया। दलपतराम और नर्मद के काव्यों में काव्यतत्व भले ही कम रहा हो लेकिन उन्होंने दूसरों के लिए रास्ता बना दिया। नई भाषा का प्रयोग किया। पद्य रचना का चेहरा ही बदल डाला।

1857 में बंबई विश्वविद्यालय की स्थापना हुई थी। इस विश्वविद्यालय के स्नातकों ने अंग्रेज़ कवियों के ऊर्मिकाव्य पढ़े। उसके बाद गुजराती कवि नरसिंहराव दीवेटिया ने शेली के "द क्लाउड" नामक काव्य का गुजराती में अनुवाद किया। कन्नड़ साहित्य में भी सर्वप्रथम आधुनिक काव्य अंग्रेज़ी काव्य "पिलग्रिम्स प्रोग्रेस" का कन्नड़ अनुवाद ही था। बंगाल के माइकेल मधुसूदन दत्त तो अंग्रेज़ी कविता के चाहक थे। उन पर पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव तो था ही लेकिन वे अंग्रेज़ी भाषा पर भी मोहित थे।

उस युग के गुजराती साहित्य में पद्य के क्षेत्र में विशिष्ट प्रदान करने वाले कवि थे दलपतराम (1820-1898), नर्मद (1833-1886), नरसिंहराव दिवेटिया (1859-1937), मणिशंकर भट्ट "कान्त" (1867-1923), बलवन्तराय ठाकोर (1869-1952) और सुरसिंहजी गोहिल 'कलापी' (1874-1900)।

हमने देखा कि दलपतराम और नर्मद के गद्य और पद्य से जिस आधुनिक गुजराती साहित्य का प्रारंभ हुआ वह नये-नये रचनाकारों के योगदान से समृद्ध होता गया।

दलपतराम के पद्य में उनकी अभिव्यक्ति सहज थी। संस्कृत की वृत्त परंपरा और देशी रागिनी, अर्थ चमत्कृति, शब्द चमत्कृति, अलंकार, छंद इन सब में दलपतराम स्वाभाविकता से विचरण करते थे। विषयों का वैविध्य भी निभाते थे। एक निबंध में उन्होंने कहा है :

"मेरा विचार हिंदुशास्त्र से उल्टा नहीं है, और याज्ञवल्क्यस्मृति एवं मनुस्मृति इत्यादि को मैंने भली-भांति जाँचा है, लेकिन ऐसा तो कहीं भी नहीं देखा कि अन्य जाति के ब्राह्मणों की कन्या से विवाह करने से या उनका पकाया खाने से भ्रष्ट हो जाते हैं या पाप लगता है।" इस गद्यांश से दलपतराम के नवचेतना के विचारों का परिचय मिलता है।

विविध धार्मिक संप्रदायों के बारे में वे एक काव्य में कहते हैं कि किसी भी एक पंथ को व्यर्थ कैसे कहूँ। किसी भी पंथ को झूठा कहने के लिए मेरी ही बुद्धि काम नहीं करती। और प्रेम का बयान करते हुए अन्य एक काव्य में कहते हैं :

"महारोग की रीत, प्रीत में प्रत्यक्ष है,
न करना कोई प्रीत, प्रीत देती दुःख प्राण को।"

नर्मद इनसे भी आगे बढ़कर नवचेतना को अपने निजी जीवन में से आये थे। उनके बारे में हम विस्तार से बाद में देखेंगे।

नरसिंहराव और कान्त ने प्रकृति व प्रणय के काव्य लिखे। लेकिन नरसिंहराव के भक्ति काव्य अधिक सफल रहे हैं। उनके भक्ति काव्यों में बाल-विवाह और विधवा से संबंधित सामाजिक

विषमता की बातें भी पाई जाती हैं। उन्होंने अंग्रेज़ कवि वर्डसवर्थ और शैली के काव्यों का बहुत ही सुंदर अनुवाद किया है।

बलवंतराय ठाकोर गुजरात के सुप्रसिद्ध कवि, विवेचक एवं चिंतक माने जाते हैं। उनके बारे में भी विस्तार से आगे पढ़ेंगे।

कलापी ने गद्य और पद्य दोनों विधाओं में लेखन किया लेकिन उनको प्रसिद्धि मिली एक कवि के रूप में। उनका गद्य भी काव्यात्मक ही है। प्रकृति, प्रणय, भावुकता कलापी के प्रिय विषय रहे।

20.4 गुजराती भाषा साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति

जैसा कि हमने ऊपर देखा, इस युग के गद्य और पद्य रचनाकार समाज की कुरीतियों और अंधविश्वासों का विरोध करते थे। कई बार उनकी रचनाएँ आत्मकथात्मक बन जाती थीं। तो दूसरी ओर पाश्चात्य कवियों के प्रभाव से वे भावुक रचनाएँ भी करते थे। इन दोनों प्रवाहों का मिश्रण प्रायः सभी रचनाकारों में पाया जाता था। कहीं एक की मात्रा अधिक तो दूसरे की कम और कहीं दूसरे की अधिक और प्रथम की कम। समाज में नवचेतना का जागरण प्रायः सभी साहित्यकारों का प्रत्यक्ष या परोक्ष उद्देश्य था। यहाँ हम दो रचनाकारों के बारे में विस्तार से पढ़ेंगे। एक हैं नर्मद और दूसरे हैं बलवंतराय ठाकोर।

20.4.1 नर्मद

1833 में सूरत के एक नागर परिवार में नर्मद का जन्म हुआ था। बंबई के ऐल्फिन्स्टन कॉलेज में उन्होंने शिक्षा ली। सूरत और बंबई के सामाजिक एवं सांस्कृतिक हवामान के परिवर्तनों का अनुभव करते हुए नर्मद बड़े हुए। विद्यार्थी अवस्था से ही वे समाज को बदलने का स्वप्न देखते थे। 1850 में उन्होंने "युवा पुरुषों की अन्योन्य बुद्धिवर्धक सभा" की और उसमें सबसे पहला भाषण दिया, जिसका विषय था। "मंडली मलवाथी तथा लाभ" याने जुट बनाकर मिलने से होते हुए लाभ। बाद में यह एक निबंध के रूप में लिखा गया और जैसा कि हम शुरू में देख चुके हैं, इसे गुजराती की प्रथम गद्य रचना भी कहा जाता है।

नर्मद स्वयं कविता भी लिखते थे लेकिन उनका मानना था कि गद्य लिखना कविता की अपेक्षा अधिक कठिन है। वे कहते थे, "अंग्रेज़ी और संस्कृत कवि गद्य अच्छा लिख लेते थे लेकिन गुजराती कवियों ने गद्य में तो कुछ लिखा ही नहीं है। कविता की रचना करने में काफी छूट मिल जाती है लेकिन गद्य लिखने में कई बंधन हैं। गद्य के लिए व्याकरण और रचना इन दोनों के नियमों का पूरा ज्ञान होना चाहिए।"

नर्मद ने "मारी हकीकत" शीर्षक से आत्मकथा लिखी है। गुजराती साहित्य में आत्मकथा शैली के लेखन का प्रारंभ भी नर्मद ने ही किया। उन्होंने आत्मकथा लिखने के चार उद्देश्य बनाये हैं। जिनमें से अंतिम उद्देश्य है, कि "हमें भी पता तो चले कि क्या सही है और क्या गलत।"

जैसा कि हमने अभी देखा, नर्मद समाज में परिवर्तन लाना चाहते थे। अपनी कविता, निबंध, व्याख्यान, पत्रकारिता, इत्यादि सभी माध्यमों का प्रयोग वे अपने विचारों को प्रस्तुत करने के लिए करते थे।

"नर्मगद्य" नामक ग्रंथ में नर्मद के महत्वपूर्ण निबंध संग्रहित हैं। उनमें से एक है "हिंदुओनी पड़ती" याने "हिंदुओं का पता"। आइये, इस निबंध के एक अंश को देखें। पहले गुजराती भाषा एवं लिपि में इसे देखें। बाद में गुजराती भाषा किंतु नागरी लिपि में इस गद्यांश को पढ़ेंगे और उसके बाद उसका हिंदी अनुवाद देखेंगे।

गुजराती लिपि में :

" ક્યાં પ્રજામાં જાતિભેદ, કુલકાલ્પિતપણા, જે
હિંદિલાકિમાન એ થકી તદ્દન પ્રતિબંધાએલાં - ક્યાં બીજ

ક્યાં પ્રજામાં જાતિભેદ, કુલઅભિમાન, ને ધર્મમતાભિમાન એ થકી તડાં બંધાએલા—જ્યાં એક વર્ગ ધર્મને બહાને બીજાને પોતાના તાબામાં રાખે છે ને એ બીજો અજાણ રહી ભોળા ભાવમાં તાબે થઈ રહે છે ને કુલનો ન ઉદ્યમ કરે છે—જ્યાં વર્ગોમાં પરસ્પર ખાવાપીવાનો ને કન્યા આપવા લેવાનો અટકાવ છે—જ્યાં ધર્મ સંબંધી મતભેદ ઘણા હોઇને તે જનમાં પરસ્પર વિરોધ કરાવે છે—જ્યાં સૌ વર્તમાનના જ લાભને જોય છે, પણ ભવિષ્યના જોતા નથી—જ્યાં જીવતા સુખ ભોગવવા ઉપર થોડી ને મુઆ સુખ ભોગવવાના બોધ આપવા લેવાની બહુ કાળજી છે—જ્યાં ગરમ લોહીથી મળતા ઊંચા સુખની શુભેચ્છા નથી, પણ ઠંડા લોહીના સુખથી સંતોષ છે—ત્યાં ઐક્યની દેશદાઝની—સમજ ક્યાંથી જોવામાં આવે?"

अब इस गद्यांश को नागरी लिपि में देखें :

ज्यां प्रजामां जातिभेद, कुलअभिमान, ने धर्ममताभिमान ए थकी तडां बंधाअेला—ज्यां एक वर्ग धर्मने बहाने बीजाने पोताना ताबामां राखे छे न ए बीजो अजाण रही भोला भावमां ताबे थई रहे छे ने कुलनो न उद्यम करे छे—ज्यां वर्गोमां परस्पर खावापीवानो ने कन्या आपवा लेवानो अटकाव छे—ज्यां धर्म संबंधी मतभेद घणा होइने से जनमां परस्पर विरोध करावे छे—ज्यां सौ वर्तमानना ज लाभने जोय छे, पण भविष्यना जोता नथी—ज्यां जीवता सुख भोगववा उपर थोड़ी ने मुअे सुख भोगववाना बोध आपवा लेवानी बहु कालीजी छे, ज्यां गरम लोहीथी मलता ऊंचा सुखनी शुभेच्छा नथी, पण ठंडा लोहीना सुखथी संतोष छे—त्यां ऐक्यनी देशदाझनी—समज क्यांथी जोवामां आवे?

इस गद्यांश का हिंदी में भावांतर इस प्रकार है :

जहाँ प्रजा में जातिभेद, वंशाभिमान एवं धर्ममताभिमान के कारण गुट बन गये हैं, जहाँ एक वर्ग धर्म के बहाने दूसरे को अपने नियंत्रण में रखता है या वह अन्य अनजाने में भोलेपन के कारण नियंत्रण को स्वीकार करता है और अपने वंश के प्रति ही उद्यम करता है—जहाँ वर्गों में परस्पर खाने-पीने और कन्या देने-लेने पर प्रतिबंध है, जहाँ धर्म संबंधी मतभेद प्रचुर होने के कारण वह लोगों में परस्पर विरोध खड़ा करता है—जहाँ सब केवल वर्तमान के ही लाभ को देखते हैं, पर भविष्य के (लाभों को) नहीं देखते—जहाँ जीते जी सुख भोगने पर कम और मृत्यु के बाद सुख भोगने के उपदेश देने और लेने के प्रति अधिक ध्यान है वहाँ गरम खून से मिलने वाले उच्च सुख की शुभ इच्छा भी नहीं, किन्तु ठंडे खून के सुख से संतोष है—वहाँ ऐक्य की, स्वदेश प्रेम की समझ कहाँ दिखाई देगी?

नर्मद कहते हैं कि जिस देश की प्रजा अपनी जाति, वंश और धर्म को दूसरे से ऊंचा समझे और इनको मुद्दा बनाकर समाज को गुटों में बांट दे उस प्रजा में एकता की भावना, देशप्रेम की भावना कहां से आएगी? ऐसी प्रजा में एक गुट अपना वर्चस जमाता है और दूसरा अपनी नासमझी के कारण, भोलेपन के कारण उसका नियन्त्रण स्वीकार कर लेता है। निचले स्तर का गुट अपने ही दायरे में बंधा रहता है। इन गुटों के बीच आपस में खाने-पीने का या विवाह संबंध का निषेध होता है। ऐसी प्रजा में धर्म को लेकर मतभेद इतना अधिक होता है कि वे खुद ही एक दूसरे के खिलाफ लोगों को उकसाने लगते हैं। लोग केवल वर्तमान लाभ को देखते हैं। उनमें दूरंदेशी का अभाव है। अभी का लाभ भविष्य में नुकसान भी कर सकता है, लेकिन यह बात इस संकुचित मानस की प्रजा को समझ में नहीं आती। लोगों को उपदेश देनेवाले इस बात पर ध्यान नहीं देते हैं कि मनुष्य अपनी जिन्दगी को किस प्रकार सही रास्ते पर चलाकर सही तरीके से जी सके, जिससे उसे सुख मिले। वे तो मृत्यु के बाद की, परलोक या स्वर्ग के सुख की बातें करते हैं। मृत्यु होने पर खून ठंडा पड़ जाता है। जीनेवाले का खून गर्म होता है। उस गर्म खून से, जिन्दगी से काफी सुख पाया जा सकता है। लेकिन लोग तो मरणोपरांत सुख की बात से ही संतोष मान लेते हैं। जहाँ लोगों की विचारधारा इतनी संकुचित और इतनी स्वार्थपरक हो, वे लोग एक होकर देश एक होकर मर मिटने की बात तो सोच ही नहीं सकते। एकता के लिए, देशभक्ति के लिए दूसरों के सुख पर भी ध्यान देना पड़ता है। लेकिन जनमानस उससे विपरीत है।

नर्मद के उपर्युक्त गद्यांश से एक बात स्पष्ट हो जाती है कि वे अपने देश की प्रजा को झकझोरना चाहते थे। इसीलिए प्रत्येक वाक्य के पहले शब्द पर वजन देकर उस समय की सामाजिक परिस्थिति की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं। "बाल विवाह" के प्रति अपने विचार प्रकट करते समय नर्मद एक के बाद एक प्रश्न पूछकर अपने भाव को तीव्रता से अभिव्यक्त करते हैं :

> "बाल लड़कों" का विवाह करके उन्हें बंधन में रखते हो—15 वर्ष का होते ही वह गृहस्थाश्रम को दौड़ेगा। अब ऐसे लड़के क्या विद्याभ्यास करेंगे और क्या ही पैसे कमाएंगे? क्या स्त्री को पाकर वे सुखी होंगे? वह विद्यारहस्य कहां से जानेंगे? क्या खोज करेंगे और क्या नाम कमाएंगे? 20 वर्ष के भीतर तो वह कम से कम दो बच्चों से घिर जाएंगे।"

इस प्रकार नर्मद स्पष्ट वक्ता थे। अपनी बात वे डरे बिना साफ-साफ शब्दों में कह देते थे। जैसे कि अपने "स्वदेशाभिमान" नामक निबंध में राजाओं की चापलूसी करने वाले भाट-चारणों को संबोधित करते हुए नर्मद कहते हैं—

> "तुमने अपनी कला कहाँ खो दी है? राजाओं को अयोग्य रीति से यश के ताड़ (वृक्ष) पर क्यों चढ़ा रहे हो?... तुम राजाओं के दुर्विकारों को नेकी समझकर घोषित कर रहे हो?"

अपने निबंध, काव्य एवं वर्तमान पत्र के लेखन में भी नर्मद सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध एवं समाज को दूषित करने वाले लोगों के खिलाफ निर्भय होकर आवाज उठाते रहे।

उनके बाद उनका अनुसरण करने वाले कई साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से नवजागरण की मशाल प्रज्वलित रखी। लेकिन गुजराती साहित्य के इतिहास में नर्मद का एक विशिष्ट स्थान बना रहा।

अब हम एक कवि के प्रदान को देखेंगे।

20.4.2 बलवंतराय क. ठाकोर

गुजरात के सुप्रसिद्ध कवि, समीक्षक एवं विद्वान बलवंतराय ठाकोर का जन्म 23 अक्टूबर 1869 के दिन भरुच शहर में हुआ था। उनकी प्रखर प्रतिभा का प्रथम परिचय तब हुआ जब वे 1885 में भावनगर के शामलदास कालेज में पढ़ते थे। अपने संस्कृत के अध्यापक की प्रेरणा से उन्होंने "महाकवि कालिदास के जीवन एवं कवन" पर डेढ़-सौ-पौने दो सौ पंक्तियों का छंदोबद्ध काव्य संस्कृत में लिखा। नर्मद की शैली में उन्होंने, 24 पंक्तियों का प्रेमविषयक प्रथम काव्य

लिखा और उसे पारितोषिक प्राप्त हुआ। समाज सुधार के विषय को लेकर "विधवा विवाह" पर गद्य निबंध लिखा। और उसके बाद रचनाओं का लगातार सृजन होता गया।

1891 में उन्होंने पूणे के डेक्कन कालेज में एम.ए. की पढ़ाई शुरू की। वहीं उनकी "फेलो" के पद पर नियुक्ति हुई। लोकमान्य तिलक के निमंत्रण से वे "मराठा" के उपसंपादक बने। साथ-साथ साहित्यिक सृजन एवं अनुसंधान कार्य भी चलते रहे। उनके अंग्रेजी में लिखे प्रबंधों, को पारितोषिक और चंद्रक मिले। विवेचन ग्रंथ "कविता शिक्षक", "उगती जुवानी" नामक नाटक और "दर्शनियु" शीर्षक से कहानी संग्रह प्रकाशित हुए। "भणकार" उनका महत्वपूर्ण काव्य संग्रह है।

1952 में बंबई में उनका देहांत हुआ। ब.क.ठा. के कई ग्रंथ उनकी मृत्यु के बाद भी प्रकाशित हुए हैं। संस्कृत की रचनाओं के अनुवादों में से कालिदास रचित "मालविकाग्निमित्र" का गुजराती अनुवाद प्रकाशित हुआ। उन्होंने मेघदूत और भगवद्गीता का भी अनुवाद किया था।

बलवंतराय की कविप्रतिज्ञा थी—"खुदकलमी, इतर न लिखना"। उनकी कवितासिद्धि एवं साहस के आदिम एवं अंतिम रहस्य यह प्रतिज्ञा ही थी। उनका सृजन काल दीर्घ था। केवल उन्नीस वर्ष की आयु से प्रारंभ करके ब्यासी वर्ष की उम्र तक वे लिखते ही रहे। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। वे कवि, नाटककार, कहानीकार, निबंधकार, जीवनीलेखक, इतिहासकार, प्रवचनकार, समीक्षक विवेचक, अनुसंधान-विद्वान, भाषांतरकार, इत्यादि सब कुछ थे।

बलवंतराय ने अपने काव्यों में शुद्ध गुजराती के साथ संस्कृत एवं लोकबोलियों का प्रयोग किया। "पृथ्वी" छंद का प्रयोग करके साहित्य को समृद्ध किया। गुजराती भाषा का प्रथम "सॉनेट" किसने रचा, इस प्रश्न के उत्तर में तीन कवियों के नाम गिने जाते हैं, जिनमें से एक है बलवंतराय।

बलवंतराय के समग्र काव्यों को दो प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। पहला प्रकार है आत्मलक्षी काव्यों का। इस में स्वानुभव के काव्यों को सम्मिलित किया जा सकता है, जैसे कि प्रेम, मैत्री, वृद्धावस्था एवं मृत्यु संबंधी काव्य। और दूसरा है परलक्षी काव्य जिसमें सर्वानुभव के काव्य हैं, जैसे कि समाज, राज्य, इतिहास, प्रकृति एवं परमेश्वर संबंधी काव्य।

बलवंतराय के काव्यसंग्रह "म्हारा सॉनेट" से लिया हुआ एक सॉनेट है "कवितानी अमरता"। अब हम इस काव्य को विस्तार से देखेंगे। पहले गुजराती लिपि में, फिर नागरी लिपि में, उसके बाद उसका अनुवाद और अंत में उस काव्य की व्याख्या करेंगे।

गुजराती लिपि में :

કવિતાની અમરતા

વધે નિમિત્ત, શૌલશૃંગ કુસુમ્યા ઉંચે મસ્તકે
અને ગોળિઓ વછૂટે, તટ, છવાય સૌ કાંકરે;
કુલાસિ મધુરા જ જાય ગણિ સર્વ કલ્લોલ તે,
નિકુંજ વનરાઈ શી ખુખરે, રે બને મૂક તે;
ગઈ ખુતિ ઉડયા ગગો, ગતિ વિલાસ લીલા બધા
મુલાયમ બુલંદ તે ગરવા ગીત જે બોલતા
મુક્ત પ્રતિ મ્રેક, મરોદક વલોષ મ્રેકેકડી,
અહો ગત શું તે થયાં, રહ્યું કવિને મુખાલાં બાબી?

વધ્યા પછી ફરી ઉગે દિવસ, ગ્રીષ્મ વાસે વર્ષા;
અને ભુલિ અહં જુવે મનુસમાજ કેરી દશા
જુવે છ દૃગ તે જગે યુગ રસાલુ સૂકાતણી
ક્રમે ભરતિઓટ ઓટભરતી તણી બેલડી.
ન મૂક કવિતા થતાં કવન મૂક આ પેઢિમાં
અહં વિસરિને જુવો: કવિ યુગે યુગે નૌતમા.

यह कविता नागरी लिपि में इस प्रकार है :

कवितानी अमरता

वधे तिमिर, शैलशृंग बुरखा धरे मस्तके,
सरे द्युति जलोतणी, तरु छवाय सौ काठडे;
हलासी मधरा ज जाय शमि सर्व कल्लोल ते,
निकुंज वनराई शी मुखर, रे बने मूस ते;
गई द्युति उडया खगो, गति विलास लीला अदा
मुलायम बुलद ते सरत गीत जे एकदा
सुरूप प्रति एक, मोहक विशेष एकेक्थी,
अहो गत शुं ते थयां, शु फरिने गुणावा नथी?

निशा पछि फरी उगे दिवस, ग्रीष्म वासे वृषा;
अने भुलि अहं जुवे मनुसमाज केरी दशा
जुवे छ दृग ते जगे युग रसालु सूकातणी
क्रेम भरतिओट ओटभरती तणी बेलडी,
न मूक कविता थतां कवन मूक आ पेठिमां
अहं विसरिने जुवो:, कवि युगे युगे नौतमा।

अब इस कविता का हिन्दी में अनुवाद देखिये :

कवि की अमरता

बढ़े तिमिर, शैलशृंग बुरका धरे मस्तक पर ;
जलों की द्युति सिरकी, तरु छा गये सारे किनारे पर
उल्लासमय मधुर कल्लोल सब शांत हो गया,
मुखर निकुंज वन-वनस्पति मूक बन गई;
प्रकाश गया पक्षी उड़े, विलास की लीला में
मुलायम बुलंद सरस गीत जो एकदा थे
प्रत्येक सुरूप, एक-एक से मोहक थे
वे क्या समाप्त हो गये, क्या फिर से नहीं सुनाई देंगे?

निशा के बाद फिर से दिन उगता, ग्रीष्म के बाद वर्षा;
अहम् भूलकर मनुष्य की समाज की स्थिति
देखते हैं ये नैन सूखे युग को रसपूर्ण होते
क्रम से ज्वारभाटा भाटाज्वार की जोड़ी,

नहीं मूक होती कविता कवन मूक होते हैं इस पीढ़ी में
अहम् को भूलाकर देखो : कवि युग-युग में नूतन

इस काव्य में कवि की अमरता का वर्णन करते हुए कवि प्रकृति के उदाहरण देते हुए बताते हैं कि सब कुछ परिवर्तनशील है, सबका प्रारंभ और अंत है। लेकिन कुछ भी हमेशा के लिए समाप्त नहीं होता। कविता अमर है। कवि हर युग में नया रूप धारण करके नई बात बताता

काव्य के आरंभ में कवि कहते हैं कि अंधकार के बढ़ते ही पर्वतों के शिखर मानों बुरका ओढ़ लेते हैं, पानी में प्रतिबिंबित पेड़ों की परछाई वहाँ से हटकर किनारे आ बैठती है। पक्षियों की मधुर आवाज जो दिन भर पेड़ों पर गूंजती रहती है, अब शांत हो जाती है। पक्षियों के गीत बंद हो जाते हैं, वे उड़ जाते हैं, अदृष्य हो जाते हैं। कवि के मन में प्रश्न उठता है। कि क्या अब ये गीत कभी नहीं सुनाई देंगे।

लेकिन इसके बाद ही कवि सांत्वना देते हुए कहते हैं कि हर रात के बाद फिर से सूरज उगता है, दिन होते ही संसार का सौन्दर्य फिर से खिल उठता है। जैसे ग्रीष्म ऋतु के बाद वर्षा ऋतु आती है जो प्यास से पीड़ित धरती को, मनुष्य व पशु-पक्षियों को तृप्त कर देती है। ऐसा ही परिवर्तन मनुष्य के भीतर भी आता है। अंधकार मिटता है, नये विचार, नई भावनाओं का उदय होता है। जिस प्रकार ज्वार-भाटा का सिलसिला अनवरत चलता रहता है। उसी प्रकार किसी भी क्षेत्र में एक युग की समाप्ति होने पर नये युग का प्रारंभ होता ही है।

कई बार समाज में अंधाधुंध मच जाती है। साहित्य, कला, संस्कृति सभी का मानो अंत आ गया हो, ऐसा लगता है। लेकिन ऐसे समय पर हम निराश न हों, उदास न हों। कवि की प्रतिभा सोये हुए जमाने को जगा देगी।

इस प्रकार इस काव्य में कवि छवि रात्रि की बनाते हैं पर बात सूर्योदय की करते हैं। मौन का वर्णन करते हैं पर उसमें से आर्विभाव होता है वाणी का। युग की समाप्ति का बयान करते हैं लेकिन उसमें से उभर कर आता है नया जीवंत युग, जो नवजागरण, नवचेतना का युग है।

बलवंतराय ने राष्ट्रप्रेम के भी कवि काव्य हैं, जैसे कि "युगमुबारक", "मेयानी सेवा", "खेती", "असलनेरना नूरमा" इत्यादि। "खेती" काव्य में उन्होंने भारत की प्राचीन कृषि-संस्कृति का गौरव किया है और आधुनिक यंत्र-संस्कृति का स्वागत भी किया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद लिखे हुए लगभग बारह काव्यों में कवि ने स्वतंत्रता, गांधी और नेहरू की प्रशस्ति की है। 1939 में दूसरा विश्व युद्ध हुआ तब बलवंतराय ने सोलह "विग्रहकाव्यों" की रचना की। बलवंतराय भारत के अन्य कवियों की तरह भारत की आजादी के लिए तो चिंतित थे ही, पर उन्हें मनुष्यजात की महा आजादी की विशेष चिंता थी। मानव संस्कृति का संहार करने वाले हिटलर के प्रति उनका प्रकोट प्रकट होता है "हिट्लरा-ब्लिट्झरा" काव्य में। "आजादी वधशेज", याने "आज़ादी बढ़ेगी ही" शीर्षक से कवि ने कई सॉनेट लिखे।

कवि की अमरता को बलवंतराय ने अपनी कृतियों द्वारा प्रमाणित कर दिया।

अभ्यास

2) गुजराती साहित्य में आधुनिकता का आरंभ किन-किन कारणों से हुआ?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

3) कवि नर्मद के कार्यों का महत्व स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

4) रचनाकार बलवंतराय क. ठाकोर के काव्य में व्यक्त सामाजिक चेतना को बारह पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

20.5 सारांश

- गुजराती भाषा भारत की महत्वपूर्ण भाषाओं में से एक है। सोलंकी राजाओं के स्थिर शासन काल में एक ओर गुजरात में व्यापार आदि में प्रगति हुई तो दूसरी ओर कला और साहित्य का भी विकास हुआ। इस काल के शासकों ने साहित्य को बढ़ावा देने के लिए कवि एवं लेखकों को प्रोत्साहित किया। आप तत्कालीन साहित्य की जानकारी दे सकते हैं।
- अन्य भाषाओं के साहित्य के समान गुजराती भाषा का प्रारंभिक साहित्य भी धर्म तथा राजाओं के ऐश्वर्य गायन से जुड़ा हुआ है। आप प्राचीन साहित्य के विषयवस्तु पर प्रकाश डाल सकते हैं।
- मध्यकाल में भक्ति के परिपूर्ण रचनाकार कवियों ने जहाँ जनता में एक नयी आशा जगाई वहीं समाज में व्याप्त असमानता पर भी प्रहार किया।
- अंग्रेज़ों के आगमन के बाद गुजराती साहित्य में परिवर्तन आया। एक नए राजनीतिक परिवेश में तथा अनुवाद आदि के माध्यम से रचनाकारों ने व्यक्ति एवं समाज से जुड़ी समस्याओं को साहित्य का विषय बनाया। आप स्पष्ट कर सकते हैं कि गुजराती भाषा में आधुनिकता का समावेश किन रूपों में हुआ।

20.6 उपयोगी पुस्तकें

गुजराती साहित्य नो इतिहास, भाग 1-4 (गुजराती)

प्र : गुजराती साहित्य परिषद, अहमदाबाद

ब.क.ठा.नी. काव्यद्युति

प्र : आर. आर. शेठनी कंपनी, अहमदाबाद

कवि अने कविता (गुजराती)

प्र. : सोमैया पब्लिकेशन्स प्रा. लि., बम्बई

कथा भारती : गुजराती कहानियां (हिंदी)

प्र : नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली

गुजराती एकांकी (हिंदी)

प्र : नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, नई दिल्ली

गूंगे सुर बांसुरी के (हिंदी)

प्र : भारतीय ज्ञानपीठ

जीवन एक नाटक (हिंदी)

प्र : नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली

सोरठ तेरा बहता पानी (हिंदी)

प्र : नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली

20.7 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) देखें भाग-20.2

2) देखें उपभाग-20.2.2

3) देखें उपभाग 20.3.1

अभ्यास

1) देखें उपभाग 20.3.1

2) 3, 4, देखें उपभाग 20.3.2

इकाई 21 गुजराती साहित्य-II

इकाई की रूपरेखा

21.0 उद्देश्य

21.1 प्रस्तावना

21.2 आधुनिक गुजराती साहित्य में गांधीजी का प्रभाव

21.2.1 उपन्यास और कहानी

21.2.2 काव्य और नाटक

21.2.3 निबंध और आत्मकथा

21.3 आधुनिक गुजराती साहित्य में नवजागरण का विकासक्रम

21.3.1 रामनारायण वि. पाठक "झिरेफ"

21.3.2 झवेरचंद मेघाणी

21.4 सारांश

21.5 बोध प्रश्नों/अभ्यासों के उत्तर

21.0 उद्देश्य

गुजराती साहित्य से संबंधित यह दूसरा खंड है। इसमें आप आधुनिक गुजराती साहित्य की विभिन्न विधाओं पर स्वतंत्रता आंदोलन एवं गांधीजी के प्रभाव के बारे में जानेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- आधुनिक गुजराती साहित्य की रूपरेखा समझ सकेंगे।
- आधुनिक गुजराती साहित्य की उपन्यास, कहानी, काव्य निबंध एवं आत्मकथा जैसी विधाओं पर गांधीजी के प्रभाव के बारे में बता सकेंगे।
- गुजराती साहित्य के नवजागरण के रचनाकारों के बारे में बता सकेंगे।
- आधुनिक गुजराती साहित्य के दो रचनाकारों के विशिष्ट प्रदान के बारे में बता सकेंगे।

21.1 प्रस्तावना

ऐच्छिक पाठ्यक्रम-05 से संबंधित यह 5वें खंड की चौथी इकाई है। अर्थात् इस पाठ्यक्रम की यह इक्कीसवीं इकाई है। पांचवां खंड गुजराती और मराठी साहित्य से संबंधित है। इस इकाई में आप राष्ट्रीय नवजागरण और राष्ट्रीय मुक्ति के दौर में लिखे गये साहित्य में गुजरात का क्या योगदान रहा, इसके बारे में जानकारी पाएंगे। पिछली इकाई में आपने गुजराती भाषा के विकास के साथ-साथ पनपते साहित्य के बारे में जाना। इस इकाई में बीसवीं शताब्दी में, अंग्रेज शासन के प्रारंभ के बाद की गतिविधियों के दौरान विकसित शिक्षा और साहित्य के बारे में जानेंगे। आज़ादी की लड़ाई और गांधीजी के प्रभाव को साहित्यकारों ने अपनी कृतियों में कैसे प्रतिबिंबित किया यह भी देखेंगे।

सन् 1880 के बाद विश्वविद्यालय से डिग्री प्राप्त लेखकों ने लिखना शुरू किया। इससे रचनाओं में साहित्य और कला का पुट पाया गया। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत के साथ पंडितयुग समाप्त हो गया और इसके बाद जिस युग का प्रारंभ हुआ वह नवजागरण का युग था। इसे गुजराती में "जागृतियुग" या "संसार सुधारयुग" कहते हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हम दो प्रकार के लेखकों को पाते हैं। एक वे जिन्होंने अंग्रेजी पद्धति से गुजराती भाषा में शिक्षा प्राप्त की और दूसरे वे जिन्होंने बड़ी शिक्षा अंग्रेजी भाषा में प्राप्त की। इन दोनों प्रकार के लेखकों ने नई शिक्षा के माध्यम से जागृति और उत्साह प्राप्त किये थे। वे लोगों को प्रगति की ओर ले जाना चाहते थे। इसलिए हम देखेंगे कि इस युग में

जिस साहित्य का सृजन हुआ, जो कविताएँ, कहानियाँ, नाटक, निबंध इत्यादि लिखे गये उन सब में लोगों की शिक्षा का ध्येय था। यह साहित्य लोगों को बोध देने वाला था।

गांधीजी के आगमन से पहले ही भाषा में सादगी आने लगी थी। अफ्रीका में सत्याग्रह की सफलता के बाद गांधीजी 1915 में भारत आये। उन्होंने भारत को अपनी कर्मभूमि बनाया। 1915 से लेकर 1948 में उनके देहांत तक का समय सभी क्षेत्रों में उनके विचारों से सभर रहा। इसलिए इतिहास एवं साहित्य में यह गांधीयुग कहा जाता है।

इस इकाई में हम साहित्य पर गांधीजी के प्रभाव को देखेंगे। यह समय लगभग तीस वर्षों का है। इस दौरान तीन महत्वपूर्ण सत्याग्रह हुए, 1920-22 का, 1930-32 का और 1942 का। और इनके फलस्वरूप 1947 में भारत आज़ाद हुआ। इन वर्षों में गांधीजी ने बहुत कुछ लिखा और कहा। समग्र भारत के लिए और विशेषकर गुजरात के लिये यह साहित्य अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। गांधीजी की अधिकांश रचनाएं मूलरूप से गुजराती में लिखी और कही गई थी। इस इकाई में हम गांधीजी के साहित्य व उनके विचारों से प्रभावित अन्य उपन्यास, कहानी, निबंध और आत्मकथा की विधाओं में किन साहित्यकारों ने विशेष योगदान दिया उनके बारे में जानेंगे। और अंत में रामनारायण वि. पाठक एवं झवेरचंद मेघाणी नामक इस युग के महत्वपूर्ण साहित्यकारों की एक-एक रचना का विस्तार से अध्ययन करेंगे।

तो आइये, सब से पहले आधुनिक गुजराती साहित्य में गांधीजी के प्रभाव के बारे में जानें।

21.2 आधुनिक गुजराती साहित्य में गांधीजी का प्रभाव

गांधीजी ने "हिंदस्वराज" नामक पुस्तिका में "स्वराज" के बारे में अपने विचार और भावना प्रकट की। अपने संकल्प की बात भारत की प्रजा को बताने के लिए "नवजीवन" नामक पत्रिका का प्रारंभ हुआ। इस पत्रिका की भाषा इतनी अधिक सरल थी कि अल्पशिक्षित या नवशिक्षित पाठक भी उसे आसानी से पढ़ और समझ सकता था। गांधीजी के नेतृत्व में लड़े गये अहिंसक स्वातंत्र्य संग्राम को साहित्यकारों का अनुमोदन और सक्रिय साथ मिला। इसीलिये उस समय रचे गये साहित्य में राष्ट्रभक्ति, शौर्य, स्वतंत्रता एवं बलिदान की भावनाएं पाई जाती हैं। सत्याग्रह के सेनानियों ने जेल जीवन की एवं इस विरल युद्ध की कथाएं लिखी।

गांधीजी ने "स्वदेशी" का प्रचार किया। इससे पहले कई साहित्यकार तथा साहित्य में रुचि लेने वाले लोग लोकसाहित्य की उपेक्षा करते थे। उसे शिष्ट साहित्य नहीं मानते थे। लेकिन स्वदेशी की भावना ने इस उपेक्षा को हटाकर लोकसाहित्य के प्रति ममता जगाई। लोकसाहित्य का अनुसंधान, संपादन व प्रकाशन होने लगा। इस क्षेत्र में अग्रणी रहे झवेरचंद मेघाणी।

गांधीजी द्वारा प्रेरित सत्याग्रहाश्रम की पाठशाला, अहमदाबाद का गुजरात विद्यापीठ और भावनगर के "दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी" भवन जैसी शिक्षा संस्थाएं अधिक लोकप्रिय बनीं। इन शिक्षा संस्थाओं के कारण गुजरात को काका कालेलकर, किशोरलाल मशरूवाला और नानाभाई भट्ट जैसे लोगों द्वारा लिखा गया शिक्षा संबंधी साहित्य मिला। गिजुभाई बधेका और जुगतराम दवे जैसे लोगों ने बाल शिक्षा के क्षेत्र में अभिनव प्रयोग किये और अपूर्व बाल साहित्य दिया। गांधी जी की पत्रिका "नवजीवन" और अमृतलाल शेठ के साप्ताहिक "सौराष्ट्र" द्वारा गुजरात को निर्भीक पत्रकारिता का आदर्श उदाहरण प्राप्त हुआ।

इस प्रकार गांधीजी ने साहित्य को लोगों से, उनके दैनंदिन जीवन से जोड़ दिया। साहित्य में मानवता प्रेमी दृष्टिकोण उभरने लगा। अस्पृश्य, वेश्या, किसान और मजदूर, जिनकी साहित्य ने सदा उपेक्षा की थी वे अब गाँधीजी के प्रभाव से साहित्यकारों ने केन्द्रबिंदु बन गये। 1930-40 का समय तो दलितगान और क्रान्तिगान का ही समय था। इसी समय पूरे देश में प्रगतिशील साहित्य का नारा सुनाई दिया। धूमकेतु, मेघाणी, पन्नालाल पटे, ईश्वर पेटलीकर, चूनीलाल मड़िया ग्रामीण जीवन के यथार्थ को लेकर साहित्य की रचना करने लगे।

पाश्चात्य साहित्य में "क्लासिकल" साहित्य के बाद "रोमांटिक" साहित्य का युग आया और उसके बाद वास्तवदर्शी साहित्य रचा गया। समकालीन गुजराती साहित्य का विकास भी प्रायः उसी प्रकार हुआ है। "कला के लिये कला" जैसी विचारधारा का समय समाप्त हुआ। गांधी और मार्क्स की प्रेरणा से साहित्य में सामाजिक संवेदना और समाज धर्म प्रतिबिंबित होने लगे।

कहानी, उपन्यास और नाटक के कथानकों में मनोवैज्ञानिक निरूपण का महत्व बढ़ता गया। कहानी का स्वरूप भी इसी युग में विकसित हुआ। लघु एवं ललित निबंध, जीवनी, यात्रा वर्णन के बारे में भी यही कहा जाएगा। नाटक का क्षेत्र भी प्रायः स्थगित हो गया था, अब आगे बढ़ने लगा।

इतना ही नही, गुजराती भाषा, साहित्य और शिक्षा के विकास के लिये कई संस्थाएं शुरू हुई, जैसे कि गुजराती साहित्य परिषद, गुजरात वर्नाक्युलर सोसायटी (जो अब गुजरात विद्यानसभा के नाम से जानी जाती है), फॉर्बस गुजराती सभा, गुजरात साहित्य सभा, साहित्य संसद, इत्यादि। इसी प्रकार पुस्तक प्रकाशन एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में भी काफी विकास हुआ। "बुद्धिप्रकाश" "ज्ञानसुधा", "सुंदरी सुबोध" "बीसमी सदी", "कुमार", "कौमुदी", "प्रस्थान", "ऊर्मि", "प्रजाबंधु" जैसे साप्ताहिक शुरू हुए।

ऐसे वातावरण में कहानी, उपन्यास, काव्य, निबंध और आत्मकथा जैसी विधाओं का कैसा विकास हुआ और प्रत्येक विधा के खास रचनाकार कौन-कौन थे, उनके बारे में कुछ जानकारी प्राप्त करें।

21.2.1 उपन्यास और कहानी

अर्वाचीन गुजराती भाषा की सर्वप्रथम कहानी "शान्तिदास" अम्बालाल साकरलाल देसाई ने सन् 1900 में लिखी थी। वे एक अर्थशास्त्री थे। स्वदेशी वस्तुओं के समर्थक थे। अपने विचारों को उन्होंने कहानी के माध्यम से प्रस्तुत किया। इस प्रकार कहानी लिखने का उद्देश्य न होते हुए भी "शान्तिदास" गुजराती साहित्य की पहली कहानी बन गई। उस युग के प्रायः सभी कहानीकार समाज सुधारक का दायित्व निभा रहे थे। समाज की कुरीतियों का विरोध करते थे। व्यंग्य या विनोद का प्रयोग करके कुछ मूल्यों को प्रस्थापित करते थे।

बीसवी शताब्दी के पहले दो दशकों में कहानी की विधा को प्रोत्साहन देने में "सुन्दरी सुबोध" नामक मासिक पत्रिका का काफी योगदान रहा है। भोगीन्द्रराव दिवेटिया और रणजितराम महेता ने मौलिक कहानियाँ लिखीं। प्रमीला, अरविंदा, विद्याबहन नीलकंठ, सुमति, ऊर्मिला जैसी महिलाओं ने नारी के अधिकार और समाज में उसके स्थान को लेकर कहानियां लिखी। सामाजिक अन्याय के प्रति कहानी के माध्यम से आवाज उठाई। 1909 में प्रमीला और अरविंदा द्वारा संपादित कहानियों का एक संकलन प्रकाशित किया गया।

बीसवी शताब्दी के दूसरे शतक में धनसुखलाल महेता, रमणभाई नीलकंठ, कन्हैयालाल मुन्शी, कचनलाल महेता "मलयानिल" और मटुभाई कांटावाला "नारद" ने कहानियों की विद्या में महत्वपूर्ण काम किया। "मलयानिल" की कहानी "गोवालणी" (1918) आदर्श गुजराती कहानी मानी जाती है। इसीलिए कुछ लोग उसे आधुनिक गुजराती साहित्य की पहली कहानी भी कहते हैं।

गौरीशंकर गोवर्धनराम जोशी "धूमकेतु" (1892-1965) के आगमन से गुजराती साहित्य को और एक राह मिली। धूमकेतु से पूर्व की कहानियों में मध्यवर्ग एवं उच्चवर्ग के पात्र हुआ करते थे। लेकिन हरिजन महिला, मोची जैसे दलित पीड़ित पात्र गुजराती कहानियों में धूमकेतु ही प्रथम ले आये। कहानियों का परिवेश जो सदा गुजरात ही हुआ करता था, उससे हटकर धूमकेतु ने अपनी कहानियों की घटनाएं कश्मीर, बंगाल और हिमालय में दिखाई। इससे कहानी के आयाम का विस्तार हुआ।

रामनारायण विश्वनाथ पाठक (1887-1955) कहानी, काव्य और ललित निबंध के प्रखर रचयिता थे। प्रत्येक विधा में अलग उपनाम लिखते थे, जैसे कि "द्विरेफ" से कहानी, "शेष" से काव्य और "स्वैरविहारी" से ललित निबंध। इनके बारे में हम विस्तार से बाद में जानेंगे।

झवेरचंद मेघाणी (1817-1947) और रमणलाल वसंतलाल देसाई (1887-1954) की कहानियों का भी विशेष प्रदान है। मेघाणी ने लोकसाहित्य का समृद्ध भंडार खोल दिया है। उनकी कहानियों में निरूपति दलित-पीड़ित वर्ग के संघर्षों में प्रगतिवाद की झलक है। र. व. देसाई ने आदर्शवाद और उच्च संस्कारों का प्रस्थापन किया है। मेघाणी के बारे में भी विस्तार से बाद में देखेंगे।

उपन्यासों में स्वातंत्र्य संग्राम का प्रभाव काफी दिखाई देता है। र. व. देसाई का "दिव्यचक्षु", जयंती दलाल का "पादरना तीरथ", "धीमु अने विभाग", चुनीलाल मड़िया का "पावक ज्वाला" और "ईधन ओछां पडयां" इसी विषय को लेकर लिखे गये उपन्यास हैं। जैसे बंगला साहित्य में ताराशंकर बंदोपाध्याय का उपन्यास "धात्री देवता", मानिक बंदोपाध्याय का 'चिह्न' या सतीनाथ भादुड़ी का "जागरी" भी इसी श्रेणी के उपन्यास हैं। मराठी में खांडेकर का "क्रौंचवध" 1930 के स्वतंत्रता आंदोलन की पृष्ठभूमि में और गजानन माडखोलकर का "प्रमद्वरा" 1942 के आंदोलन की पृष्ठभूमि में लिखे गये उपन्यास हैं।

मोहनलाल महेता "सोपान" (1910-1986) रचित उपन्यास "9 अगस्त" 1942 की लोकक्रांति का चित्रण था। यह उपन्यास अंग्रेज सरकार ने जब्त कर के जला डाला। इससे उस उपन्यास की शक्ति का अनुमान हो सकता है। 1967 में उसका "राजेन" नामक नवसंस्करण प्रकाशित किया गया। नये संस्करण में "9 अगस्त" में छपे हुए कुछ आंकड़े और ऐतिहासिक हकीकतों को हटा दिया गया।

अब हम गुजराती साहित्य के काव्य और नाटक के क्षेत्र को देखेंगे।

बोध प्रश्न

1) (क) सन् 1880 के बाद के लेखकों में मुख्य परिवर्तन क्या था?

.....

.....

(ख) गुजराती में नवजागरण काल को किस नाम से जाना जाता है?

.....

.....

(ग) गांधीजी के आगमन से गुजराती साहित्य में क्या-क्या परिवर्तन आया?

.....

.....

(घ) "हिंदस्वराज" नामक पुस्तक की रचना किसने तथा किस उद्देश्य से की?

.....

.....

.....

.....

(ङ) स्वदेशी आंदोलन का साहित्य पर मुख्य प्रभाव क्या पड़ा?

.....

.....

(च) "दक्षिणमूर्ति विद्यार्थी भवन" का क्या महत्व है?

.....

.....

(छ) "नवजीवन" तथा सौराष्ट्र पत्रिकाओं द्वारा जनता में किस प्रकार का परिवर्तन आया?

.....

(ज) बाल सहित्य के दो रचनाकारो का नाम लिखिए।

अभ्यास

1) सन् 1930-40 के दौरान लिखे गए गुजराती साहित्य के महत्व को दस पंक्तियों में लिखिए।

2) संस्थाओं की स्थापना तथा पत्रिकाओं के प्रकाशन से गुजराती साहित्य में क्या परिवर्तन आया?

21.2.2 काव्य और नाटक

उपन्यास और कहानियों में जिस प्रकार स्वतंत्रता आंदोलन और गांधीजी का प्रभाव दिखाई देता है वैसा ही काव्य और नाटकों में भी पाया जाता है।

कवि न्हानालाल (1877-1946) उस युग के अत्यंत प्रतिभावान कवि माने जाते हैं। उनकी छंदोबद्ध रचनाओं में ऊर्मि और सौंदर्यदर्शन हैं। उनकी देशभक्ति की कविताओं में स्वतंत्रता आंदोलन और गांधीजी के नेतृत्व का अनुमोदन है। उन्होंने गांधीजी को "साचना सिपाई" याने सत्य के सेनानी कहा है। उनके एक काव्य में गांधीजी को संबोधन करते हुए वे कहते हैं–

'सिंह ने शस्त्र शां? वीर ने मृत्यु शां?.....

सुभट छो सज्जननिः शस्त्रताथी

धर्मध्वज तम खड़ा, शस्त्र स्हाभां बड़ा

श्री हरि सत्याना समरसाथी।

याने सिंह को शस्त्र की क्या आवश्यकता? और वीर को मृत्यु से क्या डर? आप तो निःशस्त्र होकर ही सही ज्ञान दे रहे हैं। आप धर्म की पताका है, सामने बड़े शस्त्र हैं लेकिन आप तो युद्ध में ईश्वर के साथी हैं।

खबरदार (1881-1953) पारसी कवि थे। कवि दलपतराम के उपासक थे और उन्होंने कवि नर्मद के स्वदेशभक्ति और स्वभाषाभक्ति जैसे विषयों पर काव्य लिखे। गांधीजी के संदेश और महिमा को उन्होंने अपने काव्यों द्वारा समझाया। सत्याग्रह, अहिंसा, सत्य, सहकार, संयम, शुद्धि, तप, सेवा, सात्विकता, निडरता, समर्पण, वीरता जैसे गांधीजी के दिये सत्यों को उन्होंने काव्यों में पिरोकर गुजराती जनता को दिये।

"स्नेहरश्मि" के "वहाणु" नामक काव्य में राष्ट्रीय चेतना की बात है, जो 1947 में आज़ादी मिलने पर लिखा गया था। गांधीजी की मृत्यु ने सारे संसार को हिला दिया था। कई कवियों की कलमें रोई थीं। उमाशंकर जोशी, सुंदरम्, बालमुकुंद दवे, निरंजन भगत, सुंदरजी बेटाई, मनसुखलाल झवेरी इत्यादि कई कवियों ने उस घटना से संबंधित काव्य रचे थे। गांधीवादियों की गांधीजी के विचारों से विपरीत प्रवृत्ति देखकर कुछ कवियों ने व्यंग्यात्मक काव्य भी लिखे हैं। हंसमुख पाठक ने एक मुक्तक में कहा है :

'इतने फूलों के नीचे, इतने लंबे अरसे तक
गांधी कभी नहीं सोया।"

नाटकों के क्षेत्र में भी लगभग यही धारा रही है। कन्हैयालाल मुंशी ने ऐतिहासिक एवं सामाजिक नाटक लिखे। उनके सामाजिक नाटकों में वे समाज निरीक्षक एवं सुधारक के रूप में सामने आये हैं। उनके "ब्रह्मचर्याश्रम" नाटक में ब्रह्मचर्य का आडंबर करने वालों का उन्होंने मजाक उड़ाया।

वैसे तो 1850 के दशक में देशभर में राष्ट्रीय जागृति के नाटक लिखे गये थे। गुजराती समाज के अच्छे शिक्षक, साहित्यसर्जक, कवि, विद्वान और नेता सभी ने अपनी तरह के नाटक लिखे-लिखवाये और उनका मंचन भी हुआ। नाटक की विधा का विकास होते ही पौराणिक और ऐतिहासिक नाटकों की संख्या बढ़ गई।

मूलशंकर मूलाणी, नृसिंह विभाकर, जशवंत ठाकर, बापुलाल नायक, फूलचंद शाह, प्रभुलाल द्विवेदी, चांपशी उदेशी इस युग के अग्रणी नाटककार हैं। धीरे-धीरे गुजरात के लोकनाट्य भवाई, संस्कृत नाटक और शेक्सपियरी नाटक का प्रभाव कम होता गया। गांधीजी के प्रभाव से यथार्थ और वास्तविकता पर जोर दिया जाने लगा। चंद्रवदन महेता जैसे प्रतिभावन नाटककार ने गुजराती नाटकों और रंगभूमि को समृद्ध किया। शिवकुमार जोशी, जयंती दलाल, चुनीलाल मड़िया जैसे लेखकों ने रंगमंच को जीवित कर दिया।

21.2.3 निबंध और आत्मकथा

इन दोनों विधाओं में गांधीजी के साथियों और अनुयायिओं ने प्रचुर साहित्य दिया है। सर्वप्रथम तो गांधीजी ने ही अपनी आत्मकथा "सत्यना प्रयोगो" (भाग 1-1927, भाग 2-1929) के द्वारा गुजराती भाषा को नई राह दी। आत्मकथा का उद्देश्य एवं माध्यम स्पष्ट किया।

गांधीजी का साहित्य उनके पत्र, व्याख्यान एवं लेखों द्वारा पाया जाता है। वे "इंडियन

ओपिनियन", "यंग इंडिया", "नवजीवन" और "हरिजन" नामक पत्रिकाएं प्रकाशित करते थे। उनकी आत्मकथा भी पत्रिका में ही हर हफ़्ते एक कड़ी के रूप में छपती थी।

1915 में गांधीजी शांतिनिकेतन गये थे। वहां दत्तात्रेय कालेलकर (1885-1981) पहली बार गांधीजी से मिले। वे मराठी में लिखते थे। फिर गुजराती में भी लिखने लगे। गुजराती में उनकी लगभग 40 पुस्तकें हैं। वे निबंध, यात्रावर्णन, आत्मवृत्तांत, पत्र इत्यादि लिखते थे। ललित निबंध उनकी विशेषता थी। वे समाज और संस्कृति के संवर्धन और पोषण के लिए आखिर तक कार्यरत रहे।

गुजराती साहित्य की ऐसी और एक विभूति है किशोरलाल मशरूवाला (1890-1952)। वे गांधीजी के अधिकृत भाष्यकार कहलाते हैं। वे कहते हैं, "विवेकबुद्धि को मैं इष्ट देवता की तरह पूज्य मानता हूँ।" उनके ग्रंथों में से तीन ग्रंथ अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते हैं। वे हैं "केलवणीना पाया", "जीवनशोधन" और "समूली क्रांति"। "समूली क्रांति" (1948) क्रांतिकारी विचारधारा की पुस्तक है। उसमें धर्म, समाज, आर्थिक एवं राजनैतिक विषय तथा शिक्षा संबंधी विचार प्रस्तुत किये गये हैं। लेखक कहते हैं कि भाषा, लिपि इत्यादि को लेकर हमारे देश में झगड़े होने के कारण यह है कि हमारे दिल की क्रांति नहीं हुई है। हमारी अपनी संकुचित अस्मिता को हम छोड़ नहीं सकते और हम ऐसे काम करते रहते हैं कि हम छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट जाते हैं।

इसी युग में पंडित सुखलालजी और स्वामी आनंद जैसे महान दार्शनिकों ने विद्वत्तापूर्ण कृतियाँ लिखी। गांधीजी के दाहिने हाथ समाना महादेवभाई देसाई (1892-1942) ने अपनी डायरी के माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन और गांधीजी के जीवन को शब्दों में उतारा है। इसमें पूरे विश्व की बातें हैं। चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, महादेवभाई को "गांधीजी की दूसरी काया" कहते थे। गांधीजी के और एक साथी नरहरिभाई परीख कहते हैं : "महादेवभाई की डायरियां गांधीजी के जीवनचरित्र के लिए कच्चा लेकिन अत्यंत महत्वपूर्ण मसाला है। इस कच्चे मसाले के अतिरिक्त मानव जाति को प्रेरणा देने वाला और मनुष्य जीवन का गठन करनेवाला बहुत ही उपयोगी चिरंजीव साहित्य के रूप में इन डायरियों का स्वतंत्र महत्व भी है। ··· इस प्रकार का साहित्य गुजराती भाषा में यह पहला है।"

बोध प्रश्न

2) गुजराती की प्रथम कहानी सन्----------में----------ने लिखी।

3) सुन्दरी बोध पत्रिका ने किस विधा को प्रोत्साहित किया।

.....

.....

4) गौरीशंकर गोवर्धनराम जोशी "धूमकेतू" ने अपनी कहानियों में किन विषयों को रखा।

.....

.....

5) झवेरचंद मेघाणी की कहानियों की क्या-क्या विशेषताएँ हैं?

.....

.....

21.3 आधुनिक गुजराती साहित्य में नवजागरण का विकासक्रम

हमने अब तक जिन लेखकों और कवियों के बारे में जाना वे नवजागरण की ओर अभिमुख थे और उनकी रचनाएँ आज़ादी और गांधीजी के प्रभाव से अभिभूत थीं। ये लेखक गांधीवादी विचारधारा के साथ-साथ समाज को स्वच्छ और स्वस्थ बनाना चाहते थे। इसीलिए इस युग का साहित्य आदर्शवादी भी है।

यह आदर्शवाद केवल समाज के ब्राह्य अंग तक सीमित नहीं रहता। साहित्य और संस्कृति के प्रेणता सामाजिक स्वस्थता के सूक्ष्म स्तर पर ले जाते हैं। मानव मन के स्वस्थ गठन की बारीकियों को ध्यान में रखकर साहित्य और कला का संवर्धन करते हैं।

रामप्रसाद बक्षी, विजयराम वैद्य, विष्णुप्रसाद त्रिवेदी, डोलरराय मांकड इत्यादि ऐसे विद्वान हैं जो शास्त्रों का गूढ़ अध्ययन करके उन्हें आधुनिक साहित्य से जोड़ना चाहते हैं। यह भी साहित्य के क्षेत्र के लिए नवजागरण है।

एक ओर ये विद्वान कार्यरत थे तो दूसरी ओर प्रगतिवादी लेखक पाठक को झकझोर कर नई तथा न्यायपूर्ण समाज-रचना की ओर ले जाना चाहते थे। सुंदरम् की कहानी "भाजावेलानुं मृत्यु" में फुटपाथ पर रहने वालों का संघर्ष और संवेदना है। पूरी कहानी में धारदार व्यंग्य है। सुंदरम् की कहानियों में प्रगतिवाद का प्रभाव कहीं स्थूल है तो कहीं सूक्ष्म।

उमाशंकर जोशी की कहानियाँ समाजगत बाह्य परिस्थिति को पृष्ठभूमि में रखकर पात्रों की मानसिक प्रक्रिया का निरूपण करती हैं। गुलाबदास ब्रोकर ने अपनी कहानियों में जातीयता के प्रश्न को बड़ी प्रगल्भता से उठाया है "लता शुं बोले?" नामक कहानी इसका उल्लेखनीय उदाहरण है। मानव जीवन के कल्याणकारी भावों को पकड़ने की प्रवृत्ति स्नेहरश्मि की कहानियों में पाई जाती है। जयंत खत्री की कहानियों में घटनाएँ प्रतीक बनकर रह जाती हैं जब कि जयंती दलाल सामाजिक सचेतनता और प्रयोगशीलता को कहानी में ले जाते हैं।

कहानी कहने की शैली के प्रयोग सबसे अधिक "द्विरेफ" में पाये जाते हैं। आइए, "द्विरेफ" के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त करें।

21.3.1 रामनारायण वि. पाठक "द्विरेफ"

1887 के अप्रैल की आठ तारीख को सौराष्ट्र के धोलका तालुक के गाणोल गांव में रामनारायण का जन्म हुआ था। उनकी स्कूल शिक्षा सौराष्ट्र के अलग-अलग शहरों में हुई। भावनगर के कॉलेज में बी.ए. प्रथम श्रेणी में पास किया। बी.ए., एल.एल.बी. करके अहमदाबाद में वकालत शुरू की।

1903 में मणिगौरी से विवाह किया। और केवल पंद्रह वर्ष के विवाहित जीवन के बाद पत्नी का देहांत हो गया। रामायण स्कूल में पढ़ाने लगे। तब असहकार आंदोलन शुरू हुआ और गांधीजी के विचारों के प्रति आकृष्ट होकर वे 1920 में गुजरात विद्यापीठ में पढ़ाने लगे। अब वे अध्यापन के कार्य के साथ राष्ट्रीय सेवा के कार्य भी करने लगे। सत्याग्रह में हिस्सा लेकर जेल की सजा भी भुगती। 25 वर्ष तक अकेले रहने के बाद उन्होंने हीराबहन से विवाह किया।

रामनारायण पत्रिकाओं में तो लिखते ही थे, पर जब से उन्होंने स्वयं "प्रस्थान" नामक मासिक का प्रकाशन शुरू किया तब से सृजन और विवेचन का काम बढ़ गया। "प्रस्थान" में ही वे "शेष", "द्विरेफ,", स्वैरविहारी", "भूलाराम" इत्यादि उपनामों से लिखने लगे। वे गुजराती साहित्य परिषद् गुजरात विद्या सभा जैसी संस्थाओं के अध्यक्ष बने। उन्हें कहानी के लिए 1943 में मोतीसिंहजी महिडा सुवर्णचंद्रक, "प्राचीन गुजराती छंदो" के लिए 1949 में हरगोविंददास कांटावाला पारितोषिक और नर्मद सुवर्णचंद्रक और 1956 में साहित्य अकादमी का पारितोषिक मिला था।

रामनारायण पाठक ने काव्य, कहानी, निबंध, विवेचन, छंद संबंधित साहित्य लिखा।

काव्यों में दोहा, सोरठा, गरबा, भजन, गीत, मुक्तक, सानेट —— सब कुछ लिखा। कहानी तो कुल मिलाकर 40 लिखीं। 40 में से 18 कहानियां स्त्री-पुरुष के संबंध के बारे में लिखी गई हैं। कहानी का कथावस्तु काल्पनिक, वास्तविक तथा सामाजिक हुआ करता था। "जगजीवननुं ध्येय" जैसी कहानियों में गांधी विचारधारा का निरूपण है। "कुलांगर" नामक नाटक में अस्पृश्यता का प्रश्न उठाया गया है।

अब हम रामनारायण पाठक की "खेमी" कहानी के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त करेंगे। खेमी और धनिया पाखाने साफ करने का काम करते थे। एक दिन धनिया जिन घरों में काम करता था उनमें से एक के यहाँ दावत हो रही थी। धनिया अपनी पत्नी खेमी के रूप पर मोहित है।

उसे बहुत प्यार करता है। खेमी ने शादी के समय धनिया से वचन लिया था कि वह कभी दारू नहीं पीयेगा। गालियां नहीं देगा। खेमी पर हाथ नहीं उठायेगा। और यदि धनिया ने एक दिन भी ऐसा किया तो वह उसे छोड़कर चली जायेगी। धनिया खेमी की सच्चाई और प्रखरता के आगे हतप्रभ हो गया। इतने में कोलाहल मच गया। एक कुत्ता अन्दर घुस आया। नौकर और सेठ खाने के इंतजार में बैठे लोगों को गालिया देने लगे। धनिया और खेमी वहां से चल दिये। महीने बीते। धनिया ने दारू पी और खेमी उसे छोड़कर चली गई। अहमदाबाद छोड़कर नडियाद में रहने लगी।

खेमी चाहती थी कि धनिया उसे बुला ले लेकिन उसकी कोई खबर नहीं थी। एक दिन खेमी और उसकी साथिन मंगी गीत गाती हुई रास्ते पर झाडू लगा रही थी कि उनका कारिंदा परसोतम आ पहुंचा। गाने के लिए दोनों को बुरी तरह से डांटा और फिर तनख्वाह देने लगा जो रजिस्टर पर अंगूठा लगाने के लिए कहा। मंगी ने तो लगा दिया पर खेमी ने कहा कि पहले पैसे, बाद में अंगूठा।

खेमी की इच्छा पूरी हुई। धनिया की सास खेमी को बुलाने आई। खेमी धनिया के पास लौट गई। इस बीच खेमी को पाने के लिए धनिया ने और धनिया को पाने के लिए खेमी ने कई मनौतियों मान ली थी। ऊपर से पंचों का दंड भी भरना था। धनिया फिर से दारू पीने लगा। खेमी को धनिया पर दया आई। दोनों की हालत बिगड़ती गई। धनिया मर गया। खेमी अब भी सुंदर और आकर्षक थी। पर वह विवाह से इन्कार कर रही थी। धनिया की मनौतियां अपने पैसों से पूरी करना चाहती थी। शादी बाद में। इस काम में सात साल लग गये। जब सारी मनौतियां पूरी हुई तो खेमी ने कहा, "नहीं, नहीं, अब इतने बरस बाद अपनी जिंदगी पर पैबंद नहीं लगाऊंगी।"

और यहां कहानी समाप्त होती है। उस जमाने में इस प्रकार की कहानी लिखना याने एक नयी विचारधारा को साहित्य में जगह देना।

आइये अब खेमी कहानी के एक गद्यांश को गुजराती और नागरी लिपि में देखें।

"મહારાજ, કોઈનો દહ્યો માનવા સોતો મરી ગયો હોય, તેની વહુ માનવા ઇચ્છે તો તેને પહોંચે કે ન પહોંચે? વિચાર જોજો, મહારાજ."

આંગળીના વેઢા ગણી મહારાજે કહ્યું: "ઊં."

"ગાયું મહારાજ", કહી જોગી ગાવાનો નવી કડી ત્યાં મહારાજે ફરી ટોકવાની કર્યું: "પણ માનવે ત્યારે તો ના પહોંચે." જોગી પણે ગાતી ગઈ.

જોગીએ હવે માનવા પૂરો કરવા પૈસા ભેગા કરવાનો આંબ્યા. જોગીની કલા પણ ગઈ હતી, પણ તેનું સૌંદર્ય ઓછું થયું નહોતું. ઘણા ગાંગીઓએ તેને માનવું કરવા કહેલવાનું. પણ સૌને એક જ જવાબ આપ્યો કે દાનિયાની માનતા પૂરી કર્યા વિના તેનાથી માનવું ના કરાય. એક ગાંગીએ માનતાના પૈસા લોકડા ઉઘરાવવાનું કહ્યું પણ જોગીએ પોતાની કમાણીની જ માનતા પૂરી કરવાનો નિશ્ચય જાહેર કર્યો.

આમ વરસો તે દાનિયાની માનતા પૂરી કરી રહી. એક ગાંગીએ તેને ફરીથી કહેલવાનું. ત્યારે જવાબ આપ્યો: "ના, ના, આટલે વરસે મારે ખુવાર પર ચીંગડું નથી દેવું."

अब इस गद्यांश को नागरी लिपि में देखें :

"महाराज, कोईनो धणी मानता सोतो मरी गयो होय, तेनी वहु तेनी वहु मानता करे तो तेने पहोचे के न पहोचे? बराबर जोजो, महाराज।"

आंगलीना वेढा गणी महाराजे कहुयुं : "हा।"

"सारूं महाराज", कही खेमी चाववा जती हती त्यां महाराजे फरी बोलावी कहुयुं "पण नातरे जाय तो न पहोंचे।" खेमी पगे लागी चाली गई।

खेमीअे हवे मानता पूरी करवा पैसा बचाववा मांडया। खेमीनी कळा पड़ी गई हती, पण तेनुं सौंदर्य ओछुं थयुं नहोतुं। घणा भंगीओअे तेने नातरुं करवा कहेवारव्युं. तेणे सौने एक ज जवाब आप्यो के धनियानी मानता पूरी कर्या विना तेनाथी नातरुं न कराय। एक भंगीअे मानताना पैसा रोकड़ा, आपवानुं कहुयुं पण खेमी पोतानी कमाणीथी ज मानता पूरी करवानो निश्चय जणाव्यो।

सात वतेरसे ते धनियानी मानताओं पूरी करी रही। एक भंगीअे वळी तेने घरघवा कहेवारव्युं। तेणे जवाब आप्यो : "ना, ना, आटले वरसे मारे जीवतर पर धींगडं नथी देवुं।"

इस गद्यांश का हिंदी भाषांतर इस प्रकार है :

"महाराज, किसी का पति मनौतियां पूरी किये बिना मर गया हो, और वह औरत उसकी मनौतियां पूरी करे, तो उनका फल उसके पति तक पहुंचेगा या नहीं? ठीक-ठाक देखना महाराज।"

उंगलियों के पोर गिनकर महाराज ने कहा—"हां"।

"अच्छा महाराज।" कहकर खेमी जाने लगी तो महाराज ने उसे फिर बुलाकर कहा—"लेकिन वह औरत किसी से नाता कर लेगी तो नहीं पहुंचेगा।

खेमी ने महाराज को प्रणाम किया और चली गई।

अब खेमी ने मनौतियां पूरी करने के लिए पैसे बचाना शुरू किया। खेमी की उम्र ढलने लगी थी, पर उसका सौंदर्य कम नहीं हुआ । कई भंगियों ने उससे नाता करने की इच्छा प्रकट की। खेमी ने सबको एक ही उत्तर दिया कि वह धनिया की मनौतियां पूरी किये बिना किसी से नाता नहीं कर सकती। एक भंगी ने तो मनौतियों का पूरा खर्चा देने के लिए भी कहा, लेकिन खेमी ने अपनी ही कमाई से मनौतियां पूरी करने का निश्चय उसे बता दिया।

सात साल बाद वह धनिया की मानी हुई मनौतियां पूरी कर पायी। एक भंगी ने फिर से उसे नाता करने की इच्छा प्रकट की। खेमी ने उत्तर दिया — "नहीं—नहीं, अब इतने बरस बाद अपनी जिंदगी पर पैबद नहीं लगाऊंगी।"

अब हम इस गद्यांश के अर्थ को समझे :

मनौतियां मानने से अपनी इच्छा पूरी होती है, ऐसा अंधविश्वास निरक्षर और पिछड़े हुए लोगों में अधिक है। एक अंधविश्वास यह भी है कि मनौती पूरी किये बिना यदि किसी की मृत्यु हो जाये तो उसकी आत्मा की सद्गति नहीं होती। खेमी को धनिया के प्रति अपार प्रेम था। उसकी मजबूरी और कमजोरी वह अच्छी तरह समझती थीं। वह चाहती थी कि धनिया की आत्मा को शांति मिले। इसीलिये वह उसकी मनौतियां पूरी करनी चाहती थी। जब उसने महाराज से पूछा कि पत्नी के किये हुए काम का फल उसके मृत पति को मिलेगा या नहीं तो महाराज ने बताया कि मिल तो सकता है यदि विधवा फिर से विवाह न करे।

खेमी अकेली थी। उसके पास पैसे की कमी थी। उसे बच्चों को भी पालना था। अगर वह चाहती तो दूसरा विवाह करके आराम से रह सकती थी पर उसे अपने पति के सुख की चिंता थी। इसलिए धनिया की मनौतियां पूरी करने का निश्चय किया और थोड़े-थोड़े पैसे जुटाकर सात साल बिता दिये। जब सारा काम पूरा हो गया तो खेमी को शांति हुई। अब वह चाहती तो दूसरा विवाह कर सकती थी, पर वह अबला नहीं थी। विधवा होकर भी असहाय नहीं थी। उसने सोचा कि वह अपने आप में संपूर्ण है, शक्तिमान है। दूसरे विवाह का पैबद लगाने की उसे आवश्यकता नहीं। दूसरा विवाह तो वह तब करती जब उसे जीवन अधूरा लगता।

रामनारायण पाठक ने जब यह कहानी लिखी थी तब महिलाओं के इस प्रकार के विचार क्रांतिकारी माने जाते थे। पर उन्होंने तो वही लिखा जो वे स्वयं सोचते और अपने जीवन में भी लागू करते थे। नई विचारधारा को लेकर लिखी गई ऐसी कहानियों ने भावी पीढ़ी को नयी राह दिखाई। लेखक ने गांधीजी की तरह महिलाओं को अपनी कहानियों में विशेष स्थान दिया।

बोध प्रश्न

6) कवि न्हानालाल ने कविताओं में किस विचारधारा को स्थान दिया।

.....

.....

7) "वहाणु" रचना किसने की तथा इसका मुख्य उद्देश्य क्या है।

.....

.....

8) गांधीजी की हत्या पर कई कवियों ने दर्द भरी रचनाएं की। चार कवियों के नाम लिखिए।

.....

.....

9) "ब्रह्मचर्याश्रम" नाटक की रचना किसने की। इसका मुख्य उद्देश्य क्या है?

.....

.....

10) चार नाटककारों के नाम लिखिए जिन्होंने अपनी रचनाओं से गुजरात में नवजागरण को प्रोत्साहित किया।

.....

.....

.....

.....

11) चार पत्रिकाओं का नाम लिखिए जिसे गांधी ने आरंभ किया।

.....

.....

.....

12) सन् 1915 में शांतिनिकेतन में गांधीजी से मिलने के बाद दत्तात्रेय कालेलकर के लेखन में क्या परिवर्तन आया।

.....

.....

13) तीन-चार पंक्तियों में किशोरीलाल मशरूवाला के लेखन की विशेषताएं लिखिए।

.....

.....

14) रामनारायण का जन्म सन्———— में————नामक गांव में हुआ।

15) किस पत्रिका के माध्यम से रामनारायण ने लेखन कार्य शुरू किया।

16) लेखन कार्य के लिए रामनारायण को किन-किन पुरस्कारों से सम्मानित किया गया।

17) कुलांगर नामक नाटक में रामनारायण ने किस समस्या को स्थान दिया है।

18) किस गुजराती लेखक ने अपनी डायरी के माध्यम से गांधीजी के जीवन एवं कार्य को प्रस्तुत किया।

अभ्यास

4) खेमी कहानी के माध्यम से लेखक ने किन-किन समस्याओं को उजागर किया।

28 अगस्त 1896 के दिन सौराष्ट्र के चोटीला गांव में झवेरचंद मेघाणी का जन्म हुआ था। पिता पुलिस में थे। नौकरी में तबादला होता रहता था। इस बहाने झवेरचंद को भी सौराष्ट्र के अलग-अलग स्थानों में रहने का मौका मिला। 1912 में मैट्रिक करने के बाद उन्होंने अंग्रेजी और संस्कृति शिक्षा लेकर बी.ए. किया। फिर पारिवारिक संयोगों के कारण कलकत्ता में अलमुनियम के कारखाने के मालिक के निजी सचिव के रूप में नौकरी की। लेकिन अपनी धरती की पुकार उन्हें सौराष्ट्र खींच लाई। कुछ समय तो दिशाशून्य स्थिति में गुज़र गया। वे तय नहीं कर पाये कि खेती करनी है, व्यापार करना है या शिक्षक की नौकरी करनी है। इन्हीं दिनों वे लोकसाहित्य के घनिष्ठ संपर्क में आये। उनका विवाह भी हुआ। उन्होंने लेख लिखना शुरू किया।

'चोरानो पोकार' नामक एक लेख उन्होंने साप्ताहिक "सौराष्ट्र" के संपादक अमृतलाल शेठ को भेजा। वे लेख से प्रभावित हुए और मेघाणी को अपने संपादकगण में शामिल होने के लिए राणपुर बुला। लिया। मेघाणी को सही राह मिल गई। उनकी कलम खिल गई। वे लोकसाहित्य का सर्वेक्षण और अनुसंधान करने लगे। इसी कार्य के लिये उन्हें 1928 में रणजितराम सुवर्णचन्द्रक प्राप्त हुआ। वे सत्याग्रह में भी जुड़े। "सौराष्ट्र" बंद होने पर "फूलछाब" साप्ताहिक में काम शुरू किया। जब अमृतलाल सौराष्ट्र छोड़कर बंबई में आये और "जन्मभूमि" अखबार निकाला तो उसमें साहित्य के स्तंभ "कलम अने किताब" संभालने के लिए मेघाणी को बंबई बुला लिया। इस दौरान मेघाणी ने बहुत लिखा। उन्हें "माणसाईना दीवा" नामक पुस्तक के लिये महीडा पारितोषिक प्राप्त हुआ। केवल 50 वर्ष की उम्र में अचानक दिल की गति रुक जाने से उनकी मृत्यु हुई।

मेघाणी ने कविता, उपन्यास, विवेचन, निबंध, काफी कुछ लिखा, लेकिन उनका सिरमौर था लोकसाहित्य। उनके 13 उपन्यास, 16 कहानी संग्रह हैं, 10 गीत संग्रह हैं और 5 विवेचन ग्रंथ हैं। "सौराष्ट्रनी रसधार" – पांच भाग में और "सोरठी बहारवटिया"–तीन भाग में सौराष्ट्र के लोकजीवन का अपूर्व निरूपण हैं। "युगवंदना" काव्य संग्रह ने मेघाणी को "राष्ट्रीय शायर" का बिरूद दिया। गांधीयुग के ये एकमात्र कवि है जिनकी रचनाएं लोगों के हृदय और कंठों तक पहुंच गई थी। "युगवंदना" के पांच खंड हैं। पहले खंड के 24 काव्य राष्ट्रभक्ति के हैं। मुक्ति आंदोलन की भूमि का में इन काव्यों की रचना हुई और चार गांधी काव्यों में से सबसे अधिक लोकप्रिय काव्य था "छेल्लो कटोरो"।

गांधीजी "राउन्ड टेबल कोन्फरन्स" के लिए इंग्लैंड जा रहे थे तब मेघाणी ने कहा था कि ज़हर का यह आखरी कटोरा पी लीजिए–'छेल्लो कटोरो झेरनो आ पी जजो बापु, सागर पीनारा। अंजलि नव ढोलजो बापु।" आप तो सागर पी गये हैं। अब इतनी-सी अंजलि को आप गिरा मत देना और एक काव्य में कवि, कवि को ही संबोधित करके कहते हैं, "अहोरात करोड़ों गरीबों के प्राण धनिकों के हाथ में खेलते हैं, तब हाय रे हाय कवि! तुम्हें पृथ्वी और पानी के गीत कैसे भाते हैं?" मेघाणी ने दलित और पीड़ितों को केन्द्र में रखकर कई काव्य लिखे हैं। उन्होंने हमेशा लोगों को आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया है, फिर जीवन का संघर्ष हो या आजादी की लड़ाई। इसी बात का समर्थन करता हुआ एक काव्य है, "आगे कदम"। आइए हम इस काव्य का अध्ययन करें।

गुजराती लिपि में "आगे कदम" इस प्रकार है :

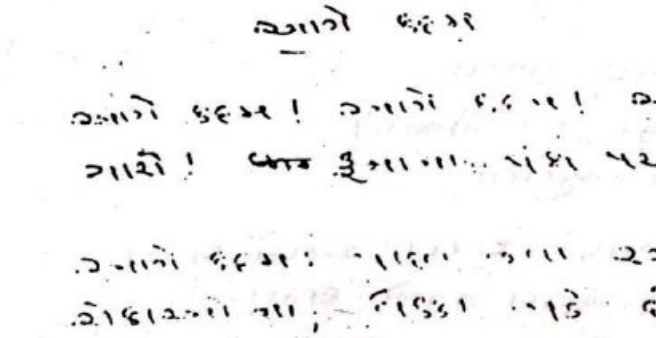

આગે કદમ! આગે કદમ! આગે કદમ!

લોકી જનારા કોણ હેરો લેવારા?
આ હર ઘડી ચાલની રહ્યાં ગુણો ગાતાં,
આપણા ત્યજો આરામસેજે લેવલા
આગે કદમ! આગે કદમ! આગે કદમ!

આગે કદમ : હિમાલની ધારી પરે;
નિર્ભેળ રહો, ગાઢાં અરણ્યો ઠુંગરે;
પંથે તલે ધન ધૂળતો કે ધૂ ઝરે,
આગે કદમ! આગે કદમ! આગે કદમ!

રહેશો અધૂરી વાટ, ત્યાંથી ફૂરથી;
પડશો ગળામાં ફોજ, ફાંસ્યા તૂટશે;
રસ્તે છતાં કૂકી જવાની શું ધરી?
આગે કદમ! આગે કદમ! આગે કદમ!

આગે ન આલે ચાહીઓ ચાલે છતાં,
ધિક્કાર, બદનામી, ધૂરાઈ તેડતાં,
તેંકીજનોનાં વૈરનેગે લોહતાં
આગે કદમ! આગે કદમ! આગે કદમ!

ક્યાં છોળપ્રાણે? નીચે નયે જે પથરાયો,
બાહેર શીતળ, નીચે લાવા ધગધગે,
અંગાર ઉપર ફૂલડાં શીદ પાથરો?
આગે કદમ! આગે કદમ! આગે કદમ!

આ તો બધા જેલ્લા પહાડા ચાલના,
હોશો બલમ: જો ભાઈ! આગો વાર ના.
પૂરી થશે નાદીમ મુલાકાતાતા.
આગે કદમ! આગે કદમ! આગે કદમ!

જવાનમુખીના ઘૂંગા ઉપર ધ્રુવતા
તેં ચાલની ટગારી ચકુર, ગો ગોજતાં!
માતા તણે ચુંબિતકપાલે ચૂમતા
આગે કદમ! આગે કદમ! આગે કદમ!
આગે કદમ! આગો કદમ! આગે કદમ!
આગે ચૂગાના પંથ પર આગા કદમ!

आगे कदम

आगे कदम। आगे कदम । आगे कदम ।

यारो । फनाना पंथ पर आगे कदम ।

आगे कदम : पाछा जवा रस्तो नथी ;

रोकाओ ना ; धक्का पड़े छे पीठथी।

रोतां नहि—गातां गुलाबी तोरथी

आगे कदम । आगे कदम । आगे कदम ।

बेसी जनारा। कोण देशे बेसवा ?

आ हर घड़ी सळगी रहुया युद्धो नवां ;

आशा त्यजो आरामसेजे लेटवा

आगे कदम । आगे कदम । आगे कदम ।

आगे कदम : दरियावनी छाती परे ;

निर्जळ रणे; गांढा अरण्ये डुंगरे ;

पंथे भले घने गूधवे के लू झरे,

आगे कदम । आगे कदम । आगे कदम ।

रहेशे अधूरी वाट, भातां खूटशे ;

पडेशे गळामां शोष, शक्ति तूटशे ;

रस्ते, छतां, बूकी, जवाथी शुं थशे?

आगे कदम । आगे कदम । आगे कदम।

आवे न आवे साथीओ साथे छतां,

धिक्कार, बदनामी, बूराई वेठतां,

वैरीजनोनां वैरने ये भेटतां

आगे कदम । आगे कदम । आगे कदम।

क्यां ऊभशो? नीचे तपे छे पथ्थरो,

बाहेर शीतळ, भीतरे लावा भर्यो,

अंगार उपर फूलडां शीद पाथरो?

आगे कदम । आगे कदम । आगे कदम ।

आ तो बधा छेल्ला पछाड़ा पापना ;

होशे खतम : जो भाई। झाझी वार ना।

पूरी थशे तारीय जीवनयातना;

आगे कदम । आगे कदम । आगे कदम ।

ज्वालामुखीना शृंग ऊपर जीववा

ते आदरी प्यारी सफर, ओ नौजवां।

माता तणे मुक्तिकदंबे झूलवा

आगे कदम । आगे कदम । आगे कदम ।

आगे कदम । आगे कदम । आगे कदम ।

यारो। फनाना पंथ पर आगे कदम।

मेघाणी ने इस काव्य में कई हिंदी और ऊर्दू शब्दों का प्रयोग किया है, इसलिए काव्य का अर्थ तो आप समझ ही गये होंगे। फिर भी कहीं-कहीं सौराष्ट्र की बोली के खास शब्द भी हैं, तो इस काव्य का अनुवाद भी देख ही लेते हैं।

अनुवाद :

आगे कदम

आगे कदम । आगे कदम । आगे कदम।

यारों । फना के पंथ पर आगे कदम ।

आगे कदम : मुड़ने का है न रास्ता

रुको नहीं : पीछे से पड़ता धक्का ।

रोओ नहीं —गाओ गुलाबी तौर से

आगे कदम । आगे कदम । आगे कदम।

बैठने वाले। कौन देगा बैठने?

हर पल यहाँ सुलगते युद्ध नये ;

आशा छोड़ो आरामसेज पर लेटने की

आगे कदम । आगे कदम । आगे कदम ।

आगे कदम : सागरों की छाती पर

जलहीन रेगिस्तान, घने वन, पर्वत पर ;

राह में भले गरजे बादल या लू बरसे

आगे कदम। आगे कदम । आगे कदम ।

राह अधूरी रहेगी, पाथेय कम पड़ेगा ;

गला सूखेगा, बल न रहेगा ;

राह में फिर भी रुक जाने से क्या होगा?

आगे कदम । आगे कदम । आगे कदम ।

साथी साथ चले या न चले,

धिक्कार, बदनामी, बुराई सहनी पड़े,

वैरीजनों के वैर को गले लिये

आगे कदम । आगे कदम । आगे कदम ।

कहां ठहरोगे ? नीचे पत्थर सम गया,

बाहर शीतल, भीतर है लावा भरा,

अंगारों पर फूलें क्यों बिछाते हो?

आगे कदम । आगे कदम। आगे कदम ।

ये सब तो हैं अंतिम फटकार पाप की

होगी खतम : देखो भाई, अब देर नहीं

पूरी होगी तुम्हारी भी जीवनयातना ;

आगे कदम । आगे कदम । आगे कदम।

ज्वालामुखी के शिखर ऊपर है जीना

यह सफर शुरू किया है ओ नौजवां।

माता के मुक्तिकदंब पर है झूलना

आगे कदम । आगे कदम । आगे कदम ।

आगे कदम । आगे कदम । आगे कदम ।

यारो फना के पंथ पर आगे कदम ।

इस काव्य का भावार्थ बिलकुल स्पष्ट है। कवि कहते हैं कि परिस्थिति कितनी भी विकट क्यों न हो, हमें आगे बढ़ते रहना है। यह काव्य वैसे तो भारत के स्वातंत्र्य संग्राम के दौरान लिखा गया था। कवि कहते हैं कि इस पथ पर आगे बढ़ने में मृत्यु भी हो सकती है, लेकिन हमें तो बढ़ते ही रहना है। यह बात केवल उस समय के लिए नहीं, सदा के लिए याद रखने लायक है। मनुष्य के संघर्षपूर्ण जीवन में कई रुकावटें आती हैं, हमें लगता है कि जिंदगी में कोई रस नहीं है, आनंद नहीं है। सांस लेना भी मुश्किल लगता है। लेकिन इस तरह हिम्मत हारने से काम नहीं चलेगा। हमें आगे तो बढ़ना ही है, एक लक्ष्य को ध्यान में रखकर बढ़ना है।

कवि कहते हैं कि अब मुड़कर लौटने का रास्ता तो है ही नहीं। पीछे से भी आगे बढ़ने के लिए धक्के पड़ रहे हैं। इसलिए हमें इसी दिशा में गीत गाते हुए, मन को प्रसन्न रखकर चलते रहना है। जब हर पल एक नई लड़ाई है तो बैठने का तो समय है ही नहीं। चाहे मूसलाधार बारिश हो या गर्म-गर्म हवा चल रही हो, अब आराम करने का वक्त नहीं है। राह में समुद्र पार करना पड़ेगा। सूखे रेगिस्तानों में, घने जंगलों में या पर्वतों पर चलना पड़ेगा। भूखे-प्यासे भी आगे ही बढ़ते रहना पड़ेगा। अब हम रुक नहीं सकते।

ऐसी स्थिति भी हो सकती है जब हमारा साथ देने वाला कोई नहीं होगा, हम पर धिक्कार और बदनामी की बौछारें होंगी, लेकिन हमें दुःख देने वालों को भी गले लगाकर हम आगे बढ़ते रहेंगे। ऐसी स्थिति में हम कहीं ठहर नहीं सकते। नीचे धरती तप रही है। बाहर ठंड है, अंदर लावा धधक रहा है। लड़कर जीतने की, आगे बढ़ने की तमन्ना की गर्मी है। इन अंगारों पर चलकर आगे बढ़ना है। इस समय नर्मी का काम नहीं है। ऐसी नर्मी तो आग में डाले हुए फूलों की तरह जल जायेगी।

अब शायद हमारे पापों का यह अंतिम फल है। परिस्थिति बदलने में अधिक देर नहीं है। फिर हमारे सारे दुःख, सारी यातनाएं दूर हो जायेंगी। जब हमें मालूम है कि हमने तो ज्वालामुखी के शिखर पर बैठने के लिए ही यह यात्रा शुरू की है, तो हे नौजवान, अब रुकने का नाम नहीं लेना है। हम तो अपनी मातृभूमि की मुक्ति के पेड़ पर झूलना चाहते हैं। हमें तो आगे ही बढ़ते रहना है।

झवेरचंद मेघाणी भरी सभा में अपनी बुलंद आवाज में ऐसे गीत गाकर लोगों को प्रोत्साहित करते थे। मेघाणी की कलम आज भी गुजरात में जीवित है।

बोध प्रश्न

18) झवेर चंद मेघाणी का जन्म सन् ———— में ———— के ———— गाँव में हुआ था।

19) मेघाणी ने ———— विषयों में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की।

20) ———— की पुकार ने मेघाणी को कलकत्ता से वापस सौराष्ट्र बुला लिया।

21) ———— नामक लेख के कारण वे सौराष्ट्र पत्रिका के संपादकगण में शामिल हो सके।

22) मेघाणी को ———— तथा ———— नामक पुरस्कार प्राप्त हुआ।

23) ———— वर्ष की आयु में मेघाणी का निधन हुआ।

अभ्यास

5) झवेरचंद मेघाणी की रचनाओं में एक साथ राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना का दर्शन होता है। बारह पंक्तियों में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

21.4 सारांश

अंगेजी शासन के साथ-साथ गुजरात में शिक्षा का भी प्रचार हुआ। नई शिक्षा प्राप्त प्रबुद्ध व्यक्तियों में लेखन के प्रति रुचि जागी। अपनी रचनाओं के माध्यम से रचनाकारों ने लोगों में राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना को जागृत किया। आप तत्कालीन गुजराती लेखकों के कार्यों का विश्लेषण कर सकते हैं।

राष्ट्रीय आंदोलन में गांधीजी के आने से एक नए दौर की शुरुआत होती है। विभिन्न प्रकार के सत्याग्रहों द्वारा गांधीजी ने अंग्रेजी सरकार की नींव को हिलाना शुरू कर दिया था। उनके कार्यों से गुजरात की जनता और विशेषरूप से लेखकगण बहुत प्रभावित हुए। लेखकों ने अपनी रचनाओं में गांधीजी की विचारधारा को स्थान दिया। आप उस काल के साहित्य का आकलन कर सकते हैं।

रामनारायण पाठक, झवेरचंद मेघाणी, आदि लेखकों ने जनजागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आप इन लेखकों के कार्यों का विश्लेषण प्रस्तुत कर सकते हैं।

21.5 बोध प्रश्नो/अभ्यासो के उत्तर

बोध प्रश्न

1, 2, 3, 4, 5 देखें भाग 21.2
6 ,7 ,8 9, 10 , 11, 12, 13 14, 15 16, देखें भाग 21.3
17, 18, 19, 20, 21, 22, 23 देखें उपभाग 21.3.1

अभ्यास

1, 2, देखें उपभाग 21.2.1
3, 4, देखें उपभाग 21.3.1
5. देखें उपभाग 21.3.2

Notes

Notes

Notes